पुस्तक प्रकाशन :

संदर्भ और दृष्टि

कृष्णचन्द्र बेरी

प्रचारक ग्रन्थावली परियोजना
हिन्दी प्रचारक पब्लिकेशन्स प्रा० लि०
सी० २१/३०, पिशाचमोचन, वाराणसी-२२१०१०

पुस्तक प्रकाशन
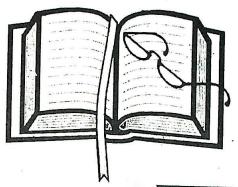
संदर्भ और दृष्टि

पुस्तक प्रकाशन

संदर्भ और दृष्टि

कृष्णचन्द्र बेरी

संपादन

डॉ. देवीप्रसाद कुंवर

प्रचारक ग्रंथावली परियोजना
हिन्दी प्रचारक पब्लिकेशन्स प्रा.लि.
पिशाचमोचन, वाराणसी-221 010

प्रचारक ग्रन्थावली परियोजना

Pustak Prakashan

Sandarbh Aur Dristi

By

Krishna Chandra Beri

Edited By

Dr. Devi Prasad Kunwar

प्रथम संस्करण : सन् 1997

मूल्य : 200 रुपया मात्र

विजय प्रकाश बेरी

हिन्दी प्रचारक पब्लिकेशन्स प्रा.लि.

सी. 21/30, पिशाचमोचन, वाराणसी-221 010

फोन : 350425, 358470, 356850

फैक्स : (0542) 350670

द्वारा प्रकाशित

अक्षर संयोजन : ज्योतिष प्रकाश प्रिन्टर्स, वाराणसी

मुद्रक : माडर्न दीपक प्रेस, वाराणसी

अपने प्रिय पुत्रों—

विजय प्रकाश बेरी

राजेन्द्र प्रसाद बेरी

अनिल कुमार बेरी

तथा

अनुज

आनंद बेरी

के लिए

जिनके हाथों में

अपनी पूरी धरोहर

इस पुस्तक के रूप में

सौंप रहा हूँ।

— लेखक

प्रकाशकों की दृष्टि में

आपका किन शब्दों में धन्यवाद करूँ कि आपने प्रकाशन सम्बन्धी अपनी पुस्तक की सम्पूर्ण प्रतिलिपि मेरे अनुरोध पर तत्काल भिजवा दी। मैं इसे पढ़ भी गया हूँ। इतने व्यापक स्तर पर प्रकाशन के सभी पहलुओं पर विस्तृत विचार और विवेचना कर पाना आप ही के वश की बात है, क्योंकि आपका सारा जीवन हिन्दी प्रकाशन को समर्पित रहा है। मैं तो सोच भी नहीं सकता था कि इस विषय पर इतनी अधिक सामग्री दी जा सकती है। कोई भी महत्वपूर्ण या गौण पक्ष आपकी दृष्टि से नहीं चूका। एक तरह से यह प्रकाशन जगत की एनसाइक्लोपिडिया है। महत्वपूर्ण संदर्भ-ग्रंथ के रूप में इसका उपयोग असन्दिग्ध है और वर्षों लोग इसका उपयोग करेंगे।

–विश्वनाथ

राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली-6

■ ■ ■

आपका किन शब्दों में अभिनन्दन करूँ कि आपने इतना बड़ा हिन्दी प्रकाशन का इतिहास लिख दिया। मेरी ऐसी धारणा है कि आपके अतिरिक्त शायद कोई दूसरा व्यक्ति इसे न कर पाता। आपने स्वास्थ्य की कठिनाइयों के होते हुए भी इस काम को किया अतएव आप सभी हिंदी प्रकाशकों के आदर व श्रद्धा के पात्र हैं।

यह इतना बड़ा ग्रंथ प्रकाशित हो जाएगा तो हमेशा के लिए हिन्दी प्रकाशन का महत्व हिन्दी वालों की नजर में आएगा व सारे देश के अन्य भाषाओं के लोगों में भी यह ग्रंथ हिन्दी को आदर का स्थान दिलाएगा। सचमुच ही यह प्रशंसनीय है कि आपने इतना सारा ब्योरा और कागजात संभालकर रखे जो वक्त पर काम दे सके।

–दीनानाथ मल्होत्रा

हिन्द पॉकेट बुक्स, (शाहदरा) दिल्ली-95

प्रकाशकीय

हिन्दी प्रकाशन जगत के शलाका पुरुष श्री कृष्णचन्द्र बेरी बहुमुखी प्रतिभा के धनी हैं। उन्होंने अपने को एकसाथ प्रकाशन, लेखन, समाजसेवा, स्वतन्त्रता संग्राम आन्दोलन तथा मजदूर आन्दोलन आदि जैसे महत्वपूर्ण कार्यों में संलग्न रखा है। वे वैविध्य के धनी पुरुष हैं। शायद ही किसी समसामयिक प्रकाशक ने इतने विविध क्षेत्रों में काम किया हो। उन्होंने अत्यल्प मूल्यों में महत्वपूर्ण एवं सुरुचिपूर्ण पुस्तकों के प्रकाशन का आदर्श प्रस्तुत कर प्रकाशन जगत को नयी और क्रांतिकारी दिशा दी है। समय-समय पर प्रकाशन जगत की गतिशीलता एवं आवश्यकताओं को देखते हुए अनेक चिन्तनपूर्ण और वैचारिक निबन्ध लिखे तथा संगोष्ठियों और सम्मेलनों के पदों से वक्तव्य दिये हैं। बेरी जी अपनी अटहत्तर वर्ष की आयु में आज भी क्रियाशील हैं।

श्री बेरी के लेखकीय और विचारक व्यक्तित्व को हिन्दी जगत के समक्ष प्रस्तुत करने के उद्देश्य से उनके अबतक के लिखे गये यत्र-तत्र बिखरे निबन्धों को एकसाथ प्रकाशित किया जा रहा है। वे कभी किसी वाद या पार्टी से बंधकर नहीं रहे। श्रम और कर्म के द्वारा हिन्दी सेवा ही उनके जीवन का ध्येय रहा है। श्री बेरी की मूलदृष्टि लोक-शिक्षण की ओर रही है। जन-जन तक पुस्तक पहुँचाने की दृष्टि से वे अत्यल्प मूल्य पर सत्साहित्य का प्रकाशन कर रहे हैं जो सभी ओर प्रशंसित है।

श्री बेरी का विपुल साहित्य पहली बार हिन्दी के बृहत्तर पाठकों के समक्ष इस पुस्तक के रूप में उचित दाम पर लाने का प्रयास है। ध्यान देने की बात है कि विद्वानों द्वारा अब तक हिन्दी साहित्य के बहुत से इतिहास लिखे गये, लेकिन प्रकाशन जगत का इतिहास आज कहीं प्राप्त नहीं है। इस दृष्टि से यह पुस्तक इस कमी को दूर करने में बहुत हद तक कामयाब होगी, ऐसा विश्वास है। यह काम बेरी जी द्वारा ही सम्भव हो सकता था क्योंकि प्रकाशन जगत के शुरू से लेकर अब तक के उतार-चढ़ाव को उन्होंने बहुत करीब से देखा है।

डॉ. देवीप्रसाद कुंवर, प्रवक्ता कुलभाष्कर आश्रम कृषि कालेज, इलाहाबाद हिन्दी के चर्चित लेखक, कवि एवं पत्रकार हैं। उन्होंने बेरी जी के सम्पूर्ण निबन्धों को बड़े मनोयोग एवं परिश्रम से संकलित करके इस पुस्तक का संपादन किया है। इस कार्य को मूर्तरूप देने के लिए उनका अथक प्रयास सराहनीय है।

–प्रकाशक

प्रशिक्षण

- ✍ प्रकाशन उद्योग
- ✍ प्रकाशकों की क्षमता और कर्त्तव्य
- ✍ पुस्तक प्रकाशन के कुछ उपयोगी मानक
- ✍ प्रकाशन क्षेत्र की विभिन्न इकाइयाँ
- ✍ पुस्तक प्रकाशन के विविध अंग
- ✍ पुस्तक प्रकाशन और प्रकाशक
- ✍ पुस्तकों की दुकानें, भूमिका और कर्त्तव्य
- ✍ पुस्तकों की दुकानों का कार्य-व्यापार
- ✍ पुस्तकों की दुकानों का प्रबन्ध
- ✍ दुकानों में पुस्तकों का प्रदर्शन
- ✍ विक्रय और प्रचार प्रसार की समस्याएँ
- ✍ अपने ग्राहक को पहचानिए
- ✍ वाचनाभिरुचि का सर्वेक्षण
- ✍ पुस्तकों की खरीद और स्टॉक का नियंत्रण
- ✍ सेल्समैनशिप तथा पुस्तकों की बिक्री
- ✍ पुस्तकों की दुकानों में हिसाब-किताब की व्यवस्था
- ✍ पुस्तकों के स्टॉक की देखभाल और उनका संरक्षण
- ✍ हिन्दी प्रकाशन और पुस्तकालय
- ✍ ग्रामीण पाठकों के लिए साहित्य का प्रकाशन और वितरण
- ✍ गाँवों में पुस्तकों का प्रसार
- ✍ ग्रामीण क्षेत्र के प्रकाशनों में निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्र के प्रतिष्ठानों में सहयोग
- ✍ सरकारी संस्थानों द्वारा पुस्तक-क्रय की समस्या
- ✍ पुस्तकों का सामूहिक प्रचार-प्रसार

- नये निकासी केन्द्रों की खोज
- सहकारी पुस्तक संगठन की रूपरेखा
- भारतीय भाषाओं तथा हिन्दी पुस्तक परिषदों की भूमिका
- हिन्दी पुस्तक प्रसार परिषद नियम-विनियम
- लेखक-प्रकाशक सहकारी संघ
- हिन्दी प्रकाशन के दो सौ वर्ष
- प्रकाशक-विक्रेता संगठनों का इतिहास और उनकी भूमिका

प्रकाशन उद्योग

नित्य सुबह और शाम चढ़ते-उतरते मूल्यों के इस युग में प्रकाशन व्यवसाय की जो भयावह स्थिति हो रही है, प्रकाशन उद्योग को इस परिप्रेक्ष्य में गम्भीरता-पूर्वक विचार कर कुछ निदेशक सिद्धान्त स्थिर करने होंगे, जिससे हम आज की समस्याओं की चुनौती को स्वीकार कर सकें। इन समस्याओं पर विचार करने के लिए हमें तीन पहलुओं को सामने रखना है:

१. सामयिक, २. सहकारी और ३. आन्तरिक।

कोई भी उद्योग तभी जीवित रह सकता है जब उसमें बल हो। प्रसन्नता की बात है कि अखिल भारतीय प्रकाशन जगत अपने २०० वर्ष के जीवनकाल में एक सक्रिय संस्था के रूप में जीवित है।

उद्योग की मान्यता

१९७२ के पिछले विश्व पुस्तक मेले के अवसर पर जब गाँधी शान्ति प्रतिष्ठान में हम मिले थे, उस समय से हमारी संगठनात्मक शक्ति में वृद्धि तो हुई, परन्तु हमें यह चेष्टा करनी है कि देश के हिन्दी के सभी प्रकाशकों को एक मंच पर लायें और ऐसा कार्यक्रम प्रस्तुत करें जो हिन्दी के प्रकाशकों के लिए ही नहीं, वरन् समूचे हिन्दी-जगत के लिए लाभकर हो। इस प्रसंग में हिन्दी प्रकाशक संघ और नेशनल बुक ट्रस्ट के सहयोग से संघ द्वारा १९६५ में लखनऊ में आयोजित विचारगोष्ठी की ओर आकृष्ट करूँगा, जिसमें पुस्तक व्यवसाय को उद्योग की मान्यता देने की सिफारिश की गयी थी। ट्रस्ट ने इस सम्बन्ध में तत्कालीन उद्योग मंत्रालय को एक पत्र २७ जनवरी १९६६ को लिखा था और २८ जुलाई १९६६ को मंत्रालय के डिप्टी सेक्रेटरी बाल सुब्रह्मण्यम् ने अपने पत्र द्वारा सूचित किया कि प्रकाशन व्यवसाय को उद्योग की मान्यता दे दी गयी है, परन्तु दुःख का विषय है कि वह दस्तावेज कूड़े में सड़ रहा है। उस पर कोई भी कार्यवाही न तो ट्रस्ट कर रहा है और न शिक्षा मंत्रालय। यदि सरकारी समझौता इस तरह अपने आप में मिथ्या सिद्ध हुआ तो हमें निर्णय करना होगा कि हम इस दिशा में क्या करें।

कागज तथा अन्य सामग्रियों के बढ़ते मूल्य

पिछले वर्षों में कागज के मूल्य को लेकर बड़ी चर्चा होती रही है। परन्तु दिनोत्तर कागज के मूल्य की स्थिति और भयावनी हो गई है। साथ ही कागज मिलों के द्वारा अनाप-शनाप मूल्य बढ़ाये गये हैं। स्थिति यह है कि कागज का मूल्य १९९५ से प्राय: दुगुना हो गया है। वितरक कहते हैं कि—'मिलें प्रीमियम भी ले रही हैं और नई-नई

दुकानों को खुलवाकर कागज भी बेच रही हैं। असली उपभोक्ता तो सहज रूप से कागज पाता ही नहीं। कागज के अतिरिक्त अन्य मुद्रण सामग्री जैसे जिल्दसाजी के सामान आदि का भाव भी आसमान छू रहा है। जीवन की दैनन्दिन वस्तुओं के मूल्य बढ़ने के कारण स्टाफ आदि का वेतनमान भी बढ़ा है। कागज के मूल्यों के कारण देश की अनेकानेक प्रकाशन तथा मुद्रण संस्थायें बन्द हो रही हैं। हजारों लोग बेकार हो रहे हैं। दूसरी ओर इस बढ़ती हुई कीमतों के कारण पुस्तकों का मूल्य पाठकों की क्रय-क्षमता के बाहर है। अभिभावक बच्चों के लिए पाठ्य-पुस्तकें भी खरीद पायेंगे, इसमें संशय है। देश में लगभग ७०० सरकारी प्रकाशन संस्थाएँ हैं, जिनमें बहुत-से तो उपयोगी काम कर रहे हैं और बहुत से संस्थानों से ऐसी पुस्तकें छप रही हैं जो अनावश्यक हैं। अत: अनावश्यक पुस्तकों के प्रकाशन में कटौती कर दी जाय तो काफी कागज की बचत हो सकती है और उस कागज का उपयोग पाठ्य-पुस्तकों के लिए किया जा सकता है।' हमारी सरकार को कागज की समस्या के निराकरण के लिए निम्नलिखित उपायों का अवलम्बन करना चाहिए :

१. एक लाख से ऊपर की आबादीवाले शहरों में कागज वितरण करनेवाली कन्ज्यूमर्स कोआपरेटिव सोसाइटी की स्थापना की जाय, जिसके माध्यम से उपभोक्ता मिल रेट पर कागज पा सकें।

२. जब कागज की कमी हो, सरकारी प्रकाशन संस्थायें अति आवश्यक पुस्तकें ही छापें ताकि उनके हिस्से का जो कागज बचे उसका व्यवहार अन्य प्रकाशक कर सकें।

३. अविलम्ब एक कमीशन की नियुक्ति की जाय जो २-३ माह के अन्दर कागज के बढ़ते मूल्य व मिल-मालिकों तथा वितरकों की धाँधली पर अपनी रिपोर्ट दे।

४. कागज के मूल्य पर पुन: कन्ट्रोल लागू किया जाय।

नेशनल बुक ट्रस्ट

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास की भूमिका की चर्चा करना भी आवश्यक है। कहने को तो इस संस्था का गठन भारतीय भाषाओं की उन्नति के लिए हुआ है, परन्तु ट्रस्ट के कार्य-कलापों से देश में अँग्रेजी भाषा के प्रचार-प्रसार को और बल मिला है। ट्रस्ट की ओर से एक पुस्तिका भी प्रचारित हुई है जिसमें विश्वविद्यालय स्तर के अँग्रेजी पाठ्य ग्रन्थों को सबसिडी देने की बात कही गयी है। हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के लिए इस सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा गया है, वस्तुस्थिति क्या है इसे ट्रस्ट के अधिकारी ही स्पष्ट कर सकते हैं?

राष्ट्रीय पुस्तक मेले की परम्परा का प्रारम्भ अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ ने १९६३ में किया था। नेशनल बुक ट्रस्ट ने अपनी स्थापना के साथ राष्ट्रीय पुस्तक प्रदर्शनी को प्रारम्भ किया और पुस्तक मेलों को लगाने की परम्परा आरम्भ की। इन पुस्तक मेलों से भारतीय भाषाओं के प्रकाशनों को बढ़ावा मिला।

ट्रस्ट इन पुस्तक मेलों के लिए प्रकाशक संघों का सहयोग माँगता है। हिन्दी और भारतीय भाषाओं के प्रचार की दृष्टि से संघ स्वत: इन मेलों में विचारगोष्ठियाँ आदि आयोजित करते हैं। जहाँ लाखों रुपये ट्रस्ट अपनीं ओर से आयोजित विचारगोष्ठियों के लिए खर्च करता है, वहाँ प्रकाशक संघ के लिए उसे कुछ भी व्यय नहीं करना पड़ता। प्रसन्नता है कि नि:शुल्क सहयोग प्राप्त होने पर भी ट्रस्ट के अधिकारी हिन्दी तथा भारतीय भाषाओं को प्रोत्साहित करते हैं, जिसके फलस्वरूप हिन्दी प्रकाशकों ने निर्णय लिया है कि वे मेले में भाग लेंगे। इन मेलों से हिन्दी प्रकाशन व्यवसाय को बहुत बड़ी चुनौती मिली है। ट्रस्ट अपने लक्ष्यों और उपयोगिता पर निष्पक्ष मत प्रकट करने के साथ फिजूल खर्ची पर भी अंकुश लगा रहा है।

रेल सम्बन्धी सुविधाएँ

प्रकाशकों के संघों के प्रयत्नों के कारण पुस्तकों के रेलभाड़े को आधा करने का सरकारी सहयोग अभिनन्दनीय है। इस सम्बन्ध में हम एक सुविधा और चाहेंगे कि अखबारों को जिस तरह यातायात की सुविधा प्राप्त है वैसी सुविधा पुस्तकों को भी प्राप्त होनी चाहिए। देखा जाता है कि शिक्षासत्र प्रारम्भ होने के समय पाठ्य-पुस्तकें महीनों स्टेशनों पर पड़ी रहती हैं जिससे समय पर छात्रों को सुलभ नहीं होतीं।

हिन्दी ग्रन्थ अकादमी

हिन्दी ग्रन्थ अकादमी द्वारा विश्वविद्यालय स्तर के पुस्तकों के प्रकाशन की योजना बनाई गई है। राजस्थान, मध्यप्रदेश, हरियाणा, बिहार और उत्तरप्रदेश की हिन्दी ग्रंथ अकादमियाँ हिन्दी के क्षेत्र में कार्य कर रही हैं। प्रत्येक अकादमी को एक-एक करोड़ रुपये का अनुदान प्राप्त हुआ है। पिछले वर्षों में इन अकादमियों ने ५ करोड़ रुपये खर्च किये हैं, परन्तु उसका व्यवसाय की दृष्टि से कोई लाभ नहीं है। अच्छा हो कि हिन्दी अकादमियों तथा हिन्दी प्रकाशकों के बीच तालमेल बैठाया जाय, जिससे पुस्तकों का शीघ्र प्रकाशन तथा वितरण उचित रूप से हो। इससे हिन्दी में विश्वविद्यालय स्तर की पाठ्य-पुस्तकें शीघ्र आयेंगी और हिन्दी को विश्वविद्यालयों में प्रतिष्ठित करने का लक्ष्य भी पूरा होगा।

लेखक प्रकाशक अनुबन्ध और कापीराइट ऐक्ट

लेखक प्रकाशक अनुबन्ध को लेकर कुछ क्षेत्रों में कापीराइट ऐक्ट में संशोधन की चर्चा हुई। जहाँ तक साहित्यिक पुस्तकों के प्रकाशकों का सवाल है, यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि वे लेखकों की पुस्तकें रॉयल्टी पर छाप रहे हैं। लेखक और प्रकाशक संघों के प्रतिनिधि आपस में मिलकर अपनी समस्याओं का हल ढूँढ सकते हैं। कापीराइट ऐक्ट में जहाँ लेखकों को संरक्षण की आवश्यकता है वहाँ प्रकाशकों का हित-संरक्षण भी होना चाहिए। इस प्रश्न पर विचार करते समय प्रकाशकों के प्रतिनिधियों को

भी आमन्त्रित किया जाना चाहिए और उनका दृष्टिकोण भी सुना जाना चाहिए। हम सर्वदा से यह मानते हैं कि कागज के कोरे पन्ने नहीं बिकते वरन् लेखक की सजीव लेखनी पाठकवर्ग को पुस्तकों के प्रति आकृष्ट करती है।

पाठ्य-पुस्तकों का राष्ट्रीयकरण

पाठ्य-पुस्तकों का व्यवसाय पूरे पुस्तक व्यवसाय का ९० प्रतिशत है। जिस गति से पाठ्य-पुस्तकों के राष्ट्रीयकरण की प्रक्रिया चल रही है, इससे विदित होता है कि सरकार समूचे पुस्तक-व्यवसाय को अपने हाथ में ले लेना चाहती है। आज जब देश में सरकार को विभिन्न क्षेत्रों में अनेक कार्य करने हैं, ऐसी स्थिति में पुस्तकों का राष्ट्रीयकरण सरकार को केवल प्राइमरी की पुस्तकों तक ही सीमित रखना चाहिए। शेष कार्य प्रकाशकों के लिए छोड़ देना चाहिए। इससे इस व्यवसाय में लगे लाखों लोग अपने काम में लगे रहेंगे।

प्रकाशन कला को पाठ्य-विषय बनाया जाय

देश में पुस्तक व्यवसाय की बढ़ोत्तरी को देखते हुए विभिन्न विश्वविद्यालयों में प्रकाशन व्यवसाय को एक विषय रूप में व्यापक ढंग से पढ़ाया जाना चाहिए। अभी यह व्यवस्था कुछ विश्वविद्यालयों में आरम्भ हुई है। अच्छा हो कि देश के केन्द्रीय विश्वविद्यालयों में इस पाठ्यक्रम को तत्काल प्रारम्भ किया जाय और कालान्तर में अन्य विश्वविद्यालयों में भी। हमें प्रसन्नता है कि केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, प्रकाशन तथा मुद्रण सम्बन्धी पाठ्य-पुस्तकें हिन्दी में तैयार करा रहा है। इसके लिए हम निदेशालय के अधिकारियों को बधाई देते हैं।

जाली पुस्तकों का प्रकाशन

पाठ्य-पुस्तकों के क्षेत्र में राष्ट्रीयकरण से भी अधिक जटिल एक और समस्या प्रकाशकों के सम्मुख है। जो पुस्तकें पाठ्य-पुस्तक के रूप में स्वीकृत होती हैं उनके जाली संस्करण असामाजिक तत्त्व फौरन प्रकाशित कर देते हैं। इससे लेखक और प्रकाशक दोनों की बहुत क्षति होती है। कापीराइट ऐक्ट में इस अपराध के लिए कड़ी से कड़ी सजा निर्धारित की जानी चाहिए, जिससे जाली पुस्तक छापनेवाले असामाजिक तत्त्व दण्डित किये जा सकें। फिलहाल कानून का जो रूप इस सम्बन्ध में है वह बहुत प्रभावकारी नहीं है। इसमें सुधार की आवश्यकता है।

विदेशों से आयात-निर्यात

विदेशों से अवांछनीय पुस्तकों का आयात रोकने के लिए भारत सरकार ने विवश होकर जो कदम उठाये हैं, उसका भारतीय प्रकाशक हृदय से स्वागत करते हैं। वस्तुत: भारतीय प्रकाशक चाहते थे कि आयात पर नियंत्रण हो ताकि भारतीय प्रकाशनों की देश में अधिक खपत हो। विदेशी पुस्तकें आयात करनेवाले बहुधा बाजार में ऐसी अवांछनीय

पुस्तकें पाट देते थे जो हमारी संस्कृति के प्रतिकूल होती थीं। आयात की स्थिति यहाँ तक बदतर हो गयी थी कि १९७१ में १२ करोड़ रुपये के आयात के लाइसेंस दिये गये जिसमें ८ करोड़ रुपये की पुस्तकें आईं। सुनने में आया कि कहीं-कहीं तो ५ प्रतिशत प्रीमियम लेकर लाइसेंस बेचने की चेष्टा की गई। हिन्दी पुस्तकों के निर्यात के लिए विश्व पुस्तक मेले के अवसर पर गोष्ठियाँ आयोजित की गयी थीं, जिनमें निर्णय हुआ था कि हिन्दी पुस्तकों के निर्यात के लिए प्रवासी भारतीयों के बीच मार्केट की खोज की जाय। शिक्षा मंत्रालय के निर्यात अधिकारी ने अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ से विदेशों में प्रतिनिधि मण्डल भेजने के लिए नाम भी माँगे थे।

पुस्तकालय आन्दोलन

पुस्तकालय आन्दोलन को सुदृढ़ करने और देश में पठनाभिरुचि के विकास के लिए सरकार को अनिवार्य पुस्तकालय योजना चलानी चाहिए। हमारे देश की आर्थिक स्थिति और विशाल जनसंख्या को देखते हुए प्रकाशन की गति बहुत धीमी है। भारत में प्रति दस लाख आबादी पर प्रतिवर्ष २५ पुस्तकें प्रकाशित होती हैं जो जनसंख्या के अनुपात से नगण्य हैं। वस्तुत: जनता में क्रय शक्ति नहीं है। ऐसी स्थिति में पुस्तकों के सुविकसित प्रकाशन के लिए पुस्तकालय आन्दोलन ही एक मार्ग है। कई राज्य सरकारों द्वारा पुस्तकालयों में पुस्तकों की खरीद के लिए ८-८ प्रतियाँ आमन्त्रित की जाती हैं और लाखों रुपयों की पुस्तकों का भण्डार सरकार तक पहुँच जाता है। जो पुस्तकें नहीं खरीदी जाती उनकी प्रतियाँ भी वापस नहीं होतीं और कभी-कभी यह भी होता है कि जितने रुपये की पुस्तकें किसी प्रकाशक ने वहाँ जमा कर दी उतने रुपये का क्रयादेश भी प्राप्त नहीं हुआ। ८-८ प्रतियों के स्थान पर यदि तीन-तीन प्रतियाँ जमा कराई जायँ तो उचित होगा।

पी. आई. बी. का प्रशंसनीय कार्य

हमें प्रसन्नता है कि प्रेस इन्फार्मेशन ब्यूरो ने पुस्तकों की आलोचना का स्तम्भ आरम्भ किया। यह आलोचना स्तम्भ देश के समाचार पत्रों को उसी तरह प्राप्त होगा जिस तरह से उन्हें संवाद प्राप्त होते हैं। हम इसका स्वागत करते हैं और साथ ही सम्बन्धित मंत्रालयों का ध्यान इस ओर आकृष्ट करते हैं कि हिन्दी तथा भारतीय भाषाओं की पुस्तकों को प्राथमिकता दी जाय।

पोस्टेज का प्रश्न

प्रकाशक संघ तथा प्रकाशन संस्थाओं की माँग पर सरकार ने ५ रुपये तक की पुस्तकों पर रजिस्ट्री चार्ज आधा कर दिया था। पुस्तकों की निकासी के लिए यह बहुत ही शुभ-संवाद है। हम सरकार से माँग करते हैं कि पुस्तकों के जितने पैकेट पोस्ट से जायें, उन सबका रजिस्ट्री दर आधा करने में सरकार उदारता दिखाये। इससे ग्रामीण क्षेत्र के लोगों को पुस्तकें डाक द्वारा सुगमतापूर्वक प्राप्त हो सकेंगी। १९९५-९६ में पोस्टेज का रजिस्ट्री चार्ज ७ रु० हो गया।

संघ का भावी कार्यक्रम क्या हो?

पिछले वर्षों में संघ ने कागज के लिए आन्दोलन, १९७२ में कलकत्ता पुस्तक मेले के अवसर पर मानस गोष्ठी और पुस्तक-विक्रेता सम्मेलन, पठनाभिरुचि के लिए पोस्टरों का प्रकाशन, राजा राममोहन राय प्रोजेक्ट की खरीद के लिए पत्र-व्यवहार, उत्तरप्रदेश सरकार द्वारा खरीद पर कमीशन की दर कम कराने, पोस्टेज की दरों के लिए आन्दोलन आदि अनेक कार्य किये। इसके लिए संघ के अधिकारियों को धन्यवाद मिला। पुस्तक व्यवसाय को संगठित करने के लिए निम्नलिखित सुझाव विनम्रतापूर्वक उपस्थित हैं।

हिन्दी में प्रतिमाह प्रकाशित होनेवाले नये प्रकाशनों का सामूहिक विज्ञापन संघ के माध्यम से प्रतिमाह देश के दो विशिष्ट साप्ताहिक पत्रों में कराने का प्रयत्न होना चाहिए। इससे प्रकाशकों को खर्च भी कम पड़ेगा और जनता को हिन्दी प्रकाशनों की सूचना भी मिलती रहेगी।

विदेशों में सामूहिक रूप से हिन्दी की उत्कृष्ट पुस्तकों का प्रचार करने के लिए संघ के माध्यम से एक सूची प्रतिवर्ष प्रकाशित की जानी चाहिए। इस सूची का व्यय भार सभी सदस्य अपनी पुस्तकों की संख्या के अनुपात से वंहन करें।

बाजार में उधार न डूबे और समय पर पैसा मिले इसके लिए विधिसंहिता तैयार होनी चाहिए।

पुस्तक-विक्रय को प्रोत्साहन और नये-नये पुस्तक-विक्रेता साहित्यिक पुस्तकों के विक्रय में रुचि लें, इसके लिए सामूहिक प्रयत्न होना चाहिए। माँग होते हुए हिन्दी की पुस्तकें बाजार में सुलभ न होने के कारण, हिन्दी प्रकाशन व्यवसाय उतना नहीं पनप रहा है जितना कि आवश्यक है। पुस्तक-विक्रय को प्रोत्साहन तभी मिलेगा जब प्रकाशक लाइब्रेरियों और खुदरा ग्राहकों को माल न बेचें, सिर्फ स्थानीय पुस्तक-विक्रेताओं को ही इसका माध्यम बनायें।

अच्छे विशिष्ट प्रकाशन बढ़ती हुई कीमतों के कारण इतने मँहगे हो गये हैं कि सामान्य पाठक उसे नहीं खरीद सकता। ऐसी स्थिति में प्रकाशकों को छोटे-छोटे ग्रुपों में अपने विशिष्ट प्रकाशनों को बुक क्लब के माध्यम से प्रकाशित करना चाहिए। ये विशिष्ट प्रकाशन बुक क्लब के सदस्यों को आधे मूल्य में मिलें तो पुस्तक प्रकाशन को बल मिलेगा। लेखक भी बुक क्लब की पुस्तकों पर आधी रॉयल्टी स्वीकार करेंगे ऐसी आशा है।

समग्र हिन्दी पुस्तक-व्यवसाय में समन्वय स्थापित हो, इस दृष्टि से संघ का कार्यक्षेत्र हिन्दी प्रकाशन में रत सरकारी, अर्द्ध सरकारी तथा सार्वजनिक संस्थाओं तक होना चाहिए।

निरन्तर बढ़ रहे पुस्तक प्रकाशकों को प्रशिक्षित करने के लिए रिफ्रेशर कोर्स प्रतिवर्ष आयोजित करना चाहिए। इससे पुस्तक व्यवसाय की आधुनिकतम तकनीक का ज्ञान प्रकाशकों तथा उनके स्टाफ को प्राप्त हो सकेगा।

अपनी विभिन्न प्रकार की समस्याओं को सुलझाने के लिए हमे विशेषज्ञों का अध्ययन दल बनाना होगा। विशेषज्ञों की रिपोर्ट पर अमल भी तत्परतापूर्वक होना चाहिए।

विश्वविद्यालयों में हिन्दी पुस्तकों की आपूर्ति के लिए प्रकाशकों को सक्रिय होना चाहिए और संघ के सदस्यों को सबमिशन की तिथि से अवगत कराते रहना चाहिए।

अखिल भारतीय प्रकाशक महासंघ के साथ हमें प्रकाशकीय समस्याओं को सुलझाने के लिए एकजुट होकर काम करना चाहिए। संघ के कई पदाधिकारियों ने व्यक्तिगत रूप से पुस्तक विक्रेता संघ के पदाधिकारियों को इस सम्बन्ध में लिखा भी है।

अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ : कार्य योजनाएँ

१९५४ में स्थापित अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ ने अपने स्थापना काल से जिन कार्य योजनाओं की नींव डाली आज उनमें से कुछ स्वरूप ले चुकी हैं और कुछ जीवन्त प्रकाशकीय समस्या के रूप में उपस्थित हैं जिनपर संघ का ३५वाँ अधिवेशन विचार करेगा।

इसमें कागज की समस्या सर्वोपरि है। १९३५ में जहाँ कागज आठ आना रीम था, वहाँ आज लगभग ५०० से ७०० रुपये रीम है। इतनी बड़ी मूल्य वृद्धि सोने के भाव में भी नहीं हुई। कई बार सरकार से अनुरोध किया गया कि भारतीय पेपर मिलों के कागज मूल्यों की संरचना की जाँच ब्यूरो आफ कास्टिंग से करायी जाय। सरकारी पेपर मिल हिन्दुस्तान पेपर कारपोरेशन आज २८ रुपये के.जी. के भाव से इकनामी मैपलिथो दे रही है। उसी कोटि का कागज देश की अच्छी मिलें ३० रुपये के.जी. में बेच रही हैं।

हिन्दी पुस्तकों का मूल्य इस कदर आसमान छू रहा है कि पाठक दिनोत्तर पुस्तकों से दूर होते जा रहे हैं। प्रकाशक सीधा रास्ता छोड़कर लेन-देन का मार्ग पकड़ चुके हैं। हिन्दी का पूरा व्यवसाय पाठकों से दूर जा चुका है। पुस्तकें मात्र सरकारी खरीद होकर आलमारियों में कैद हो जाती हैं। वाराणसी और दिल्ली से अल्पमोली पुस्तकें निकालने की कुछ योजनायें चली हैं। उनसे हिन्दी का पाठक प्रभावित है, परन्तु इने-गिने प्रकाशन संस्थानों से पाठकों की विभिन्न विषयों की पुस्तकें पढ़ने की पिपासा नहीं दूर हो सकती। इन प्रकाशन गृहों को बुकसेलरों का सहयोग प्राप्त नहीं है, क्योंकि उन्हें अन्धाधुन्ध लाभ नहीं मिलता।

बंगला प्रकाशकों ने पाठकों की पठन तुष्टि के लिए समग्र प्रकाशन का आन्दोलन छेड़ा और पुस्तक मेलों के माध्यम से पुस्तकों को कस्बे-कस्बे तक पहुँचाया। बंगला के पुस्तक मेलों से पुस्तकें आज इतनी दूर तक पहुँच गयी है कि कलकत्ता के अधिकांश पूजा मण्डपों में पुस्तक प्रदर्शनी लगायी जाती है। बंगाल का कोई भी कस्बा या म्युनिसिपल टाउन नहीं है जहाँ प्रतिवर्ष पुस्तक प्रदर्शनी न लगती हो। नवम्बर से मार्च तक पुस्तक मेलों की धूम रहती है। हिन्दी प्रकाशक संघ को इसका अनुकरण करना चाहिए। बंगाल में ये कार्यक्रम जिला प्रकाशक संघ, पश्चिम बंग प्रकाशक संघ और बुकसेलर

एण्ड पब्लिशर्स गिल्ड द्वारा आयोजित होते हैं। पश्चिम बंगाल सरकार द्वारा आयोजित पुस्तक मेला अनुकरणीय है। इसमें लगी हुई पुस्तक की प्रत्येक दुकान को सरकार पुस्तकों का आर्डर देती है। पब्लिशर्स एण्ड बुकसेलर्स गिल्ड मेले का तो कुछ कहना ही नहीं है। इसे लगभग दस लाख लोग प्रतिवर्ष देखते हैं और पाँच से सात करोड़ तक की बिक्री होती है।

नेशनल बुक ट्रस्ट का पुस्तक परिक्रमा कार्यक्रम उ० प्र०, बिहार, हरियाना, मध्यप्रदेश और राजस्थान में हो चुका है। कार्यक्रम प्रशंसनीय है। परन्तु इन कार्यक्रमों में अल्पमोली समग्र योजना की पुस्तकें और गीता प्रेस की पुस्तकों को स्थान नहीं दिया गया। उनसे ४० प्रतिशत कमीशन की माँग की गयी जो अनुचित है।

ऐसे सुझाव आ रहे हैं कि प्रकाशक संघ को ट्रस्ट के सहयोग से सोनपुर, ददरी, नौचण्डी, देवाशरीफ, पुष्कर जैसे स्थानों पर लगनेवाले मेलों में पुस्तक प्रदर्शनियाँ लगानी चाहिए। कुम्भ और अर्द्धकुम्भ का भी सहारा लेना चाहिए।

प्रसन्नता की बात है कि नये निदेशक के आने के बाद विगत कुछ वर्षों से ट्रस्ट बहुत ही सक्रिय है और देश के कोने-कोने में प्रदर्शनियों और पुस्तक परिक्रमा के कार्यक्रम चल रहे हैं।

इन मेलों से जो अनुभव प्राप्त हुए हैं उसका सारांश यह निकलता है कि हिन्दी प्रकाशक मिशनरी भावना से कार्य करें तो सार्थकता का वातावरण बनेगा। अल्पमोली पुस्तकें प्रकाशित की जायँ और विश्व स्तरीय समसामयिक प्रकाशन यथासमय हों तो हिन्दी प्रकाशन का बहुत कल्याण होगा। भारतीय भाषाओं से आदान प्रदान हिन्दी प्रकाशकों ने अवश्य किया है, परन्तु अभी कुछ कमियाँ हैं। अन्य भारतीय भाषाओं की पुरस्कृत कृतियाँ हिन्दी में समय पर नहीं आ पातीं।

हिन्दी पुस्तकों की सुलभता एक प्रश्न चिन्ह है। देश में कोई भी ऐसा स्थान नहीं है जहाँ हिन्दी की सभी पुस्तकें सुलभ हों। कम से कम प्रदेशों की राजधानियों में तो यह सुविधा होनी चाहिए। ऐसे सूचना केन्द्रों की भी आवश्यकता है जहाँ से हिन्दी का पाठक यह जान सके कि अमुक पुस्तक को किस प्रकाशनगृह ने प्रकाशित की है और वह कहाँ सुलभ होगी। पाठक हिन्दी की पुस्तकें खोज-खोज कर थक जाता है।

हिन्दी पुस्तकों को जो प्रश्रय मिल रहा है उसका लाभ हिन्दी के प्रकाशक नहीं उठा रहे हैं। संचार माध्यम कमोबेश हिन्दी में समाचार लिखते हैं। हिन्दी पुस्तकों पर पुरस्कारों की बाढ़ सी आई हुई है। पुस्तकों के विमोचन समारोहों की गिनती नहीं है, परन्तु पुस्तकों की महँगाई के कारण यह सारा कार्य व्यर्थ चला जाता है।

शिक्षा का व्यापक प्रसार हो रहा है। पचास प्रतिशत से ऊपर जनसंख्या में बोली जानेवाली हिन्दी की पुस्तकों की खपत बहुत होनी चाहिए। स्मरणीय है कि तीसरे और चौथे दशक में हिन्दी पुस्तकों के पाँच हजार से पचास हजार तक के संस्करण होते थे

और आज ग्यारह सौ का एक संस्करण और वह भी सरकार की मदद से लगभग दो-तीन वर्ष में बिकता है। ऐसा क्यों है? इस पर गम्भीरता से विचार करना चाहिए।

१९३५ में लाला भगवानदीन का वीर पंचरत्न की कलकत्ता की एक प्रकाशन संस्था ने पचास हजार प्रतियाँ छापीं। इसी समय 'दारोगा दफ्तर सीरिज' छत्तीस हजार प्रतिमास छपती थी। ऐतिहासिक, सामाजिक उपन्यास दस हजार से कम नहीं छपते थे। पाँचवें-छठें दशक में साहित्यिक पुस्तकों तथा शोधप्रबन्धों के दो संस्करण आसानी से निकलते थे। चिन्तनीय है कि जब भारत गरीब था, समृद्धि नहीं के बराबर थी, तब पाठक थे, अब क्यों गायब हो गये। आज मुद्रण की उत्तमोत्तम सुविधा सुलभ है। उत्तमोत्तम लेखन हो रहा है। भाषा की सम्प्रेषण क्षमता बढ़ी है। स्कूल-कालेजों की बाढ़ आ गयी है। पब्लिक स्कूल गली-गली में खुल गये हैं। ऐसे स्कूल देश में एक लाख के करीब हैं। कहते हैं इन पब्लिक स्कूलों में ८८.५५ प्रतिशत ऐसे हैं जहाँ पुस्तकालय ही नहीं है। क्या हिन्दी के प्रकाशकों ने कभी इन स्कूलों से सम्पर्क किया है?

केन्द्रीय सचिवालय की हिन्दी परिषद ने प्रत्येक सरकारी आफिसों में अपना कार्यालय खोला है। हर कार्यालय में एक हिन्दी अधिकारी मौजूद है। ऐसे कार्यालयों की संख्या २५०० के आस-पास है। परन्तु ऐसे अधिकांश पुस्तकालयों में आप वही पुस्तकें पायेंगे जो सर्वश्रेष्ठ नहीं कही जा सकतीं। उनकी खरीद का आधार सही नहीं है।

हिन्दी क्षेत्र में उ०प्र० अग्रणी था, परन्तु उसका लखनऊ स्थित हिन्दी संस्थान आज उतना सजीव नहीं है जैसी मध्यप्रदेश की हिन्दी सम्वर्द्धन संस्थाएँ हैं।

आपरेशन ब्लैक बोर्ड और प्रौढ़ शिक्षा के नाम पर जो कुछ खरीदा जा रहा है उसे स्तरीय बनाया जाना चाहिए। हिन्दी में वैज्ञानिक पुस्तकों का अभाव तो नहीं है, परन्तु जो पुस्तकें विदेशों में वर्षों पूर्व आती हैं वे हिन्दी में १० वर्ष बाद दिखायी देती हैं। हमारे यहाँ रचनाकारों की शतियों की भीड़ दिखायी दे रही है, परन्तु ऐसी शतियों के समारोहों में रचनाकार की कृतियाँ कभी प्रदर्शित नहीं होतीं। केवल व्याख्यान होते हैं, जिन्हें सुनकर लोग कुछ पाये बिना चले जाते हैं।

अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ ने देश में विचार गोष्ठियों का प्रचलन शुरू किया। पहली विचार गोष्ठी १९५६ में दिल्ली में आयोजित हुई जिसमें लेखन, मुद्रण, प्रकाशन और वितरण की समस्या पर चर्चा हुई। संघ ने अन्तर्राष्ट्रीय प्रकाशक संघ के सम्मेलनों में १९५६ से ही भाग लेना शुरु कर दिया है। संघ ने पुस्तक प्रकाशन की उत्कृष्टता के लिए अन्तर्राष्ट्रीय बुक जैकेट एक्जीबिशन किया। यूनेस्को के सहयोग से ग्राम पुस्तक प्रचार योजना प्रारम्भ की और पुस्तकों को ग्राम-ग्राम तक पहुँचाने की चेष्टा की गयी।

वाराणसी के हिन्दी प्रचारक संस्थान द्वारा चलाये समग्र योजना के साढ़े छः हजार ग्राहकों का सर्वेक्षण करने पर जो निष्कर्ष निकला वह नीचे दिया जा रहा है। इससे राज्यवार पाठकीय प्रवृत्ति का पता चलता है।

राज्य	प्रतिशत	राज्य	प्रतिशत
बिहार	२०	राजस्थान	१५
उत्तर प्रदेश	८	आन्ध्र प्रदेश	१
पंजाब	१	केरल	१
हरियाणा	२	अरुणाचल प्रदेश	१
दिल्ली	१५	जम्मू कश्मीर	१
गुजरात	१	हिमाचल प्रदेश	१
असम	१	गोवा	१
प० बंगाल	१६	दमन दीव	१
मणिपुर	१	मेघालय	१
मध्य प्रदेश	१०	पाण्डिचेरी	१
महाराष्ट्र	१	अण्डमान-निकोबार	१
तमिलनाडु	१	मिजोरम	१
कर्नाटक	२	त्रिपुरा	१
उड़ीसा	१	चण्डीगढ़	१

जापान का हमारे लिये आदर्श उदाहरण है। वहाँ प्रकाशित पुस्तकों का ९० प्रतिशत पाठक खरीदते हैं और सिर्फ १० प्रतिशत पुस्तकें पुस्तकालयों में खरीदी जाती हैं।

प्रकाशकों की क्षमता और कर्त्तव्य

पुस्तकें राष्ट्ररूपी शरीर का हृदय होती हैं। वह राष्ट्र मानसिक दृष्टि से सबल, सुलझा हुआ और सुविकसित होता है, जिसका जन-समुदाय पुस्तकों की दुनिया के नजदीक है।

भारत को स्वतंत्र हुए लगभग ५० वर्ष बीतने को आये, लेकिन आँकड़े बताते हैं कि अभी भी इस देश की प्राय: ४० करोड़ से अधिक जनता अनपढ़ है। जिस विकासगामी देश की आबादी का लगभग आधा जनसमूह अनपढ़ है, उस देश के भविष्य को लेकर खिलवाड़ नहीं होना चाहिये, बल्कि थोड़ा थमकर गम्भीरता से समझने और विचार करने की जरूरत है। यही नहीं, हमारे बीच पढ़े-लिखे कहे जानेवाले लोग भी अपने दायित्व का निर्वाह कितनी सजगता से कर रहे हैं—यह भी एक विचारणीय प्रश्न है। इस सबके बावजूद स्थिति अभी न तो भयावह है और न निराशाजनक।

तीन पहलुओं से विचार

इस समूची समस्या पर तीन पहलुओं से विचार करने की आवश्यकता है—१. नव-साक्षरों के लिए साहित्य की प्रस्तुति, २. पढ़ी-लिखी जनता के लिए किस तरह का साहित्य लिखा जा रहा है और ३. पुस्तक-प्रकाशकों-विक्रेताओं ने पुस्तकों के समुचित प्रचार-प्रसार में अपनी भूमिकाओं का कहाँ तक निर्वाह किया है।

नवसाक्षरों के लिए हमारे देश में व्यवस्थित और वैज्ञानिक ढंग से साहित्य लिखा जा रहा है और उसकी प्रकाशन-प्रस्तुति भी उत्तम कोटि की है। सात लाख ग्रामोंवाले हमारे देश भारत में अभी भी ऐसे ४० करोड़ व्यक्ति हैं, जिनको साक्षर बनाने के लिए नवसाक्षर साहित्य आवश्यक है। इस तरह का साहित्य प्रस्तुत करने के लिए हमारे लेखकों ने नवीन शैली और आधुनिक रचना-प्रक्रिया को अपनाया है। उन्होंने यह ध्यान रखा है कि जिन लोगों के लिए यह साहित्य प्रस्तुत करना है वह उनके अनुरूप हो, ऐसे लोग पुराने समय की श्रुति के आधार पर प्रचलित धार्मिक साहित्य और लोक कृतियों में ज्यादा अनुराग रखते हैं। एक तरफ जहाँ इन नवसाक्षरों के लिए वेद, उपनिषद, पुराण, रामायण, महाभारत आदि की कथाओं के सरल और मोटे-मोटे अक्षरों में छपे हुए संस्करण उपलब्ध हैं, वहीं दूसरी ओर आज के आधुनिक परिवेश की जानकारी के लिए उत्सुक इस वर्ग के लिए युद्ध समाचार, संस्मरण, सामान्य सेक्स, विज्ञान, नागरिकता, कृषि आदि विषय की पुस्तकें भी लिखी गई हैं। परिणाम यह हुआ है कि नवसाक्षरों का बहुत बड़ा भाग धीरे-धीरे साक्षर होता जा रहा है और साहित्य के प्रति उसकी रुझान बढ़ रही है।

नवसाक्षरों के लिए साहित्य प्रस्तुत करते समय तीन खतरों से हमें बचना है—इनके लिए ऐसा साहित्य लेखक कदापि न लिखें जिनमें वाद-विशेष का पुट हो। दूसरा विचारणीय तथ्य यह है कि हमें विदेशों के आधारित नवसाक्षरों की पुस्तकों की नकल नहीं करनी चाहिए, क्योंकि हमारी संस्कृति, हमारा साहित्य और हमारे विचार पश्चिम से प्रभावित नहीं हैं, बल्कि वे उन ऋषि-मुनियों से प्रभावित हैं जिन्होंने महान् भारतीय संस्कृति को जन्म दिया है। हमारे नवसाक्षर राम, कृष्ण, बुद्ध, राजा हरिश्चन्द्र, भक्त प्रहलाद, वीर अर्जुन, सती दमयन्ती, सती अनुसूया, वीर अभिमन्यु, वीर बभ्रुवाहन आदि के सम्बन्ध में जानने के लिए अधिक उत्सुक रहते हैं, इसलिये उन्हें ग्रीक और रोमन युग के वीरों के सम्बन्ध में प्रारम्भ से ही जानकारी देना ठीक नहीं। हमें यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि वे भारत के नवसाक्षर हैं और उन्होंने अपने पूर्वजों से कथा-कहानियों के माध्यम से भारतीय महापुरुषों के जीवन चरित्र को सुना है और यही उनकी विरासत है।

नवसाक्षरों के उपयोग में आनेवाले ग्रामीण पुस्तकालयों के लिए पुस्तकों का चयन करते समय इस बात के प्रति सजग रहने की बड़ी आवश्यकता है कि उनके लिये नैतिकता से सम्बन्धित पुस्तकों का समावेश हो और ऐसी पुस्तकों का बाहुल्य हो जिससे धर्म के प्रति व्यक्ति की रुचि बढ़े। यदि इस तथ्य की ओर ध्यान दिया गया तो आज ग्रामों में बढ़ता हुआ अनाचार धीरे-धीरे दूर हो जायगा और हम नवसाक्षर वर्ग के बहुत बड़े भाग को जनकल्याण के कार्यों में लगा सकेंगे। आधुनिकता का बोध करानेवाली पुस्तकें भी धीरे-धीरे जोड़नी चाहिए, परन्तु आधुनिकता-बोध के नाम पर ऐसी पुस्तकें न रक्खी जायें, जिनका नवसाक्षरों के जीवन से कोई सम्वन्ध न हो।

प्रबुद्ध लोगों के लिए उत्कृष्ट साहित्य

पढ़े-लिखे लोगों के लिए क्या लिखा जा रहा है, यह भी एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। बताना न होगा कि बीसवीं सदी के पिछले दो दशकों में भारतीय लेखकों ने अपने क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति की है और साहित्य का कलेवर ही बदल दिया है। मसलन हिन्दी को ही लीजिए। स्वतन्त्रता के पूर्व जो भाषा-शैली और भावव्यंजना हिन्दी में थी उसमें आज की स्थिति में जमीन-आसमान का अन्तर हो गया है। हमारे अनेक कलाकार अपने कृति-कौशल से आलोचकों के प्रशंसा के पात्र बन गये हैं और यह साधारणतया स्वीकार किया जाता है कि नयी पीढ़ी का नया कलाकार वस्तुतः नयी शैली का जन्मदाता है। साहित्य के आधुनिक स्रष्टा यह अच्छी तरह समझ रहे हैं कि हिन्दी की पुस्तको को अँग्रेजी का हिमायती 'इन्टेलीजेन्शिया' नहीं पढ़ रहा है, वरन् एक ऐसा वर्ग उन्हें अपना रहा है जो वास्तव में इन्टेलीजेन्शिया बनना चाहता है। लेखकों की नयी पीढ़ी निस्सन्देह तदनुकूल साहित्य-रचना भी कर रही है। यह संशय किया जाता है कि साक्षरता के अनुपात में पुस्तकों की बिक्री कम हो रही है, परन्तु इसके लिए हमारे साहित्यकारों तथा लेखकों का

दोष नहीं है। दोष है हमारी वितरण और प्रचार-पद्धति का, जिसका सर्वेक्षण करना एक भिन्न वर्ग का कार्य है।

आज के युग में पैदा हुआ युवक भाग्यशाली है, क्योंकि उसे प्रत्येक विषय पर सुरुचिकर पुस्तकें पढ़ने के लिए प्राप्त हो रही हैं। आज ज्ञान-विज्ञान का अगाध कोश पुस्तकों के रूप में उपलब्ध है। आर्थिक, वैज्ञानिक तथा नैतिक स्तर का सुधार करनेवाला साहित्य हिन्दी में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। आज की रचनायें मानव में अपने मौलिक अधिकारों के प्रति आस्था उत्पन्न करने में सहायक हो रही हैं। आज के साहित्य ने वर्णभेद, रंगभेद और अर्थभेद की दीवारें तोड़ दी हैं तथा भारतीय साहित्यकारों ने अपने लेखन से यह प्रमाणित कर दिया है कि वे विश्व के किसी साहित्यकार से रचना-प्रक्रिया में कम नहीं हैं। सचमुच यह बड़ी बात है। लेकिन हमें इतने से ही सन्तोष नहीं करना है। हमारी यात्रा तो बहुत लम्बी है, अभी तो यह शुरुआत है।

सभ्य एवं अश्लील साहित्य

समाज में एक चर्चा आजकल बहुत जोरों से उठी हुई है। स्वस्थ और सत्साहित्य जहाँ एक ओर जीवन के निर्माण के लिए उपयोगी है, वहीं अश्लील साहित्य के निर्माण पर रोक लगाना भी आवश्यक है। साहित्य से माँग है कि वह समकालीन परिवेश को अभिव्यक्ति दे और यदि इस मर्यादा को भंग किया जाता है तो उसे साहित्य नहीं कहा जा सकता। भोले-भाले सुकुमार अबोध तरुण पाठकों की भावनाओं से खेलने के लिए सस्ता, गलित, लिजलिजा, घिनौना और अतिवादी साहित्य 'यथार्थवाद' नहीं कहा जा सकता—जैसा नारा नौसिखिए लिक्खाड़ लगाते हैं। साहित्य उसे कहा जायेगा जो एक मर्यादा-रेखा के अन्दर हो। पुराने लेखकों में हिन्दी के प्रेमचन्द, बंगला के शरतचन्द्र और टैगोर, पंजाबी के नानक सिंह और गुजराती के क० मा० मुंशी और धूमकेतु के पात्र रोमांस करते हुए भी पवित्र हैं। आधुनिक युग में भी बंगला के विमल मित्र और ताराशंकर वन्द्योपाध्याय, हिन्दी के अज्ञेय, राहुल, यशपाल, अमृतलाल नागर, भगवतीचरण वर्मा, धर्मवीर भारती, शिवप्रसाद सिंह, फणीश्वरनाथ 'रेणु', शिवानी, हिमांशु, नरेन्द्र कोहली, मनुशर्मा, निर्मला वर्मा, भिक्खु, हिमांशु जोशी के पात्र पाठक को यथार्थ से परे नहीं ले जाते, वरन् समाज का सही-सही बोध कराने में सहायक हैं। कुछ ऐसी बचकानी और लोफर कृतियाँ भी हमारे यहाँ 'बुक स्टालों' पर बिकती हैं—जिन पर पाबंदी होनी चाहिए। ऐसी कृतियाँ पाठकों को बहकाती हैं। विशेषकर हमारे नये आनेवाले छात्रों का वर्ग इनसे प्रभावित न हो, इसके लिए हमें सचेष्ट रहना है।

स्वतन्त्रता के पूर्व साहित्यकार 'स्वान्तःसुखाय' के लिए लिखता था, परन्तु आज के भौतिकवादी युग में उससे यह अपेक्षा करना कि वह 'स्वान्तःसुखाय' ही लिखे—न सम्भव है और न उचित ही। आवश्यकता इस बात की है कि सभी विषयों पर लिखनेवाले नये कृतिकार, प्रकाशकों तथा सरकारों-द्वारा आर्थिक दृष्टि से प्रोत्साहित किये

नवसाक्षरों के लिए साहित्य प्रस्तुत करते समय तीन खतरों से हमें बचना है—इनके लिए ऐसा साहित्य लेखक कदापि न लिखें जिनमें वाद-विशेष का पुट हो। दूसरा विचारणीय तथ्य यह है कि हमें विदेशों के आधारित नवसाक्षरों की पुस्तकों की नकल नहीं करनी चाहिए, क्योंकि हमारी संस्कृति, हमारा साहित्य और हमारे विचार पश्चिम से प्रभावित नहीं हैं, बल्कि वे उन ऋषि-मुनियों से प्रभावित हैं जिन्होंने महान् भारतीय संस्कृति को जन्म दिया है। हमारे नवसाक्षर राम, कृष्ण, बुद्ध, राजा हरिश्चन्द्र, भक्त प्रहलाद, वीर अर्जुन, सती दमयन्ती, सती अनुसूया, वीर अभिमन्यु, वीर बभ्रुवाहन आदि के सम्बन्ध में जानने के लिए अधिक उत्सुक रहते हैं, इसलिये उन्हें ग्रीक और रोमन युग के वीरों के सम्बन्ध में प्रारम्भ से ही जानकारी देना ठीक नहीं। हमें यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि वे भारत के नवसाक्षर हैं और उन्होंने अपने पूर्वजों से कथा-कहानियों के माध्यम से भारतीय महापुरुषों के जीवन चरित्र को सुना है और यही उनकी विरासत है।

नवसाक्षरों के उपयोग में आनेवाले ग्रामीण पुस्तकालयों के लिए पुस्तकों का चयन करते समय इस बात के प्रति सजग रहने की बड़ी आवश्यकता है कि उनके लिये नैतिकता से सम्बन्धित पुस्तकों का समावेश हो और ऐसी पुस्तकों का बाहुल्य हो जिससे धर्म के प्रति व्यक्ति की रुचि बढ़े। यदि इस तथ्य की ओर ध्यान दिया गया तो आज ग्रामों में बढ़ता हुआ अनाचार धीरे-धीरे दूर हो जायगा और हम नवसाक्षर वर्ग के बहुत बड़े भाग को जनकल्याण के कार्यों में लगा सकेंगे। आधुनिकता का बोध करानेवाली पुस्तकें भी धीरे-धीरे जोड़नी चाहिए, परन्तु आधुनिकता-बोध के नाम पर ऐसी पुस्तकें न रक्खी जायें, जिनका नवसाक्षरों के जीवन से कोई सम्बन्ध न हो।

प्रबुद्ध लोगों के लिए उत्कृष्ट साहित्य

पढ़े-लिखे लोगों के लिए क्या लिखा जा रहा है, यह भी एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। बताना न होगा कि बीसवीं सदी के पिछले दो दशकों में भारतीय लेखकों ने अपने क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति की है और साहित्य का कलेवर ही बदल दिया है। मसलन हिन्दी को ही लीजिए। स्वतन्त्रता के पूर्व जो भाषा-शैली और भावव्यंजना हिन्दी में थी उसमें आज की स्थिति में जमीन-आसमान का अन्तर हो गया है। हमारे अनेक कलाकार अपने कृति-कौशल से आलोचकों के प्रशंसा के पात्र बन गये हैं और यह साधारणतया स्वीकार किया जाता है कि नयी पीढ़ी का नया कलाकार वस्तुतः नयी शैली का जन्मदाता है। साहित्य के आधुनिक स्रष्टा यह अच्छी तरह समझ रहे हैं कि हिन्दी की पुस्तको को अँग्रेजी का हिमायती 'इन्टेलीजेन्शिया' नहीं पढ़ रहा है, वरन् एक ऐसा वर्ग उन्हें अपना रहा है जो वास्तव में इन्टेलीजेन्शिया बनना चाहता है। लेखकों की नयी पीढ़ी निस्सन्देह तदनुकूल साहित्य-रचना भी कर रही है। यह संशय किया जाता है कि साक्षरता के अनुपात में पुस्तकों की बिक्री कम हो रही है, परन्तु इसके लिए हमारे साहित्यकारों तथा लेखकों का

दोष नहीं है। दोष है हमारी वितरण और प्रचार-पद्धति का, जिसका सर्वेक्षण करना एक भिन्न वर्ग का कार्य है।

आज के युग में पैदा हुआ युवक भाग्यशाली है, क्योंकि उसे प्रत्येक विषय पर सुरुचिकर पुस्तकें पढ़ने के लिए प्राप्त हो रही हैं। आज ज्ञान-विज्ञान का अगाध कोश पुस्तकों के रूप में उपलब्ध है। आर्थिक, वैज्ञानिक तथा नैतिक स्तर का सुधार करनेवाला साहित्य हिन्दी में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। आज की रचनायें मानव में अपने मौलिक अधिकारों के प्रति आस्था उत्पन्न करने में सहायक हो रही हैं। आज के साहित्य ने वर्णभेद, रंगभेद और अर्थभेद की दीवारें तोड़ दी हैं तथा भारतीय साहित्यकारों ने अपने लेखन से यह प्रमाणित कर दिया है कि वे विश्व के किसी साहित्यकार से रचना-प्रक्रिया में कम नहीं हैं। सचमुच यह बड़ी बात है। लेकिन हमें इतने से ही सन्तोष नहीं करना है। हमारी यात्रा तो बहुत लम्बी है, अभी तो यह शुरुआत है।

सभ्य एवं अश्लील साहित्य

समाज में एक चर्चा आजकल बहुत जोरों से उठी हुई है। स्वस्थ और सत्साहित्य जहाँ एक ओर जीवन के निर्माण के लिए उपयोगी है, वहीं अश्लील साहित्य के निर्माण पर रोक लगाना भी आवश्यक है। साहित्य से माँग है कि वह समकालीन परिवेश को अभिव्यक्ति दे और यदि इस मर्यादा को भंग किया जाता है तो उसे साहित्य नहीं कहा जा सकता। भोले-भाले सुकुमार अबोध तरुण पाठकों की भावनाओं से खेलने के लिए सस्ता, गलित, लिजलिजा, घिनौना और अतिवादी साहित्य 'यथार्थवाद' नहीं कहा जा सकता—जैसा नारा नौसिखिए लिक्खाड़ लगाते हैं। साहित्य उसे कहा जायेगा जो एक मर्यादा-रेखा के अन्दर हो। पुराने लेखकों में हिन्दी के प्रेमचन्द, बंगला के शरतचन्द्र और टैगोर, पंजाबी के नानक सिंह और गुजराती के क० मा० मुंशी और धूमकेतु के पात्र रोमांस करते हुए भी पवित्र हैं। आधुनिक युग में भी बंगला के विमल मित्र और ताराशंकर वन्द्योपाध्याय, हिन्दी के अज्ञेय, राहुल, यशपाल, अमृतलाल नागर, भगवतीचरण वर्मा, धर्मवीर भारती, शिवप्रसाद सिंह, फणीश्वरनाथ 'रेणु', शिवानी, हिमांशु, नरेन्द्र कोहली, मनुशर्मा, निर्मला वर्मा, भिक्खु, हिमांशु जोशी के पात्र पाठक को यथार्थ से परे नहीं ले जाते, वरन् समाज का सही-सही बोध कराने में सहायक हैं। कुछ ऐसी बचकानी और लोफर कृतियाँ भी हमारे यहाँ 'बुक स्टालों' पर बिकती हैं—जिन पर पाबंदी होनी चाहिए। ऐसी कृतियाँ पाठकों को बहकाती हैं। विशेषकर हमारे नये आनेवाले छात्रों का वर्ग इनसे प्रभावित न हो, इसके लिए हमें सचेष्ट रहना है।

स्वतन्त्रता के पूर्व साहित्यकार 'स्वान्तःसुखाय' के लिए लिखता था, परन्तु आज के भौतिकवादी युग में उससे यह अपेक्षा करना कि वह 'स्वान्तःसुखाय' ही लिखे—न सम्भव है और न उचित ही। आवश्यकता इस बात की है कि सभी विषयों पर लिखनेवाले नये कृतिकार, प्रकाशकों तथा सरकारों-द्वारा आर्थिक दृष्टि से प्रोत्साहित किये

जायें, ताकि वे अपनी रचनाओं के माध्यम से देश के सामाजिक, आर्थिक और वैज्ञानिक युग के उत्थान में योग दे सकें।

प्रकाशक-विक्रेताओं के दायित्व

पुस्तकों के प्रकाशकों तथा विक्रेताओं ने पुस्तकों के प्रकाशन और समुचित प्रचार-प्रसार के क्षेत्र में अपनी भूमिका का कहाँ तक निर्वाह किया है, यह एक विवादास्पद प्रश्न है। जहाँ देश में प्रबुद्ध, पढ़े-लिखे सुलझे विचारोंवाले प्रकाशकों का एक छोटा वर्ग समय की पुकार पर उभरा है, वहाँ आज भी इस व्यवसाय में लगे अधिकांश व्यक्तियों का एक ऐसा समूह है जो अपने कर्त्तव्य को समझ ही नहीं रहा है। जब तक पुस्तक-व्यवसायी अपने व्यवसाय को अन्य व्यवसायों से भिन्न न समझेंगे, उनके दिमाग में येन-केन-प्रकारेण पैसा कमाना ही सर्वोपरि रहेगा, तब तक न तो उनके व्यावसायिक उद्देश्य का कल्याण होगा और न ही वे अपने उस कर्त्तव्य का पालन कर पायेंगे जो पुस्तक व्यवसाय के लिए आज अपेक्षित हैं। पुस्तकें विटामिन, कॉसमेटिक्स परिधान नहीं हैं, ये मानव-हृदय का ज्ञान परिधान हैं, मानव मस्तिष्क को विचार-पुष्प की तरह सुगन्धित कर देनेवाली कॉसमेटिक्स भी हैं और मानसिक कमजोरी के लिए विटामिन भी हैं। परन्तु यह सब तभी सम्भव है, जब इनका प्रकाशन ऐसा दिव्य और हृदयस्पर्शी हो कि पुस्तक को देखते ही साधारण से साधारण व्यक्ति पुस्तकों की दुनियाँ में खो जाय। यह कार्य सच्चा प्रकाशक ही कर सकता है और इस व्यवसाय का दूसरा वर्ग पुस्तक-विक्रेता इन्हें घर-घर पहुँचा सकता है। पुस्तकों का काम तो आम के आम और गुठलियों के दामवाला है। सेवा भी कीजिए और मेवा भी खाइए। वास्तव में इस क्षेत्र में लगे लोगों को अपनी महत्ता समझनी होगी और तदनुकूल आचरण भी करना होगा। पुस्तक-प्रकाशन तथा विक्रय-संस्थानों को आदर्श व्यवसाय-केन्द्रों के रूप में परिणत करना होगा। प्रकाशक लेखकों के प्रति उदार हों, उनकी कृतियाँ सुमुद्रित करें, समय पर उन्हें रॉयल्टी दें, पुस्तकें भूल-रहित साफ-सुथरी छापें, अच्छी पुस्तकों के सस्ते संस्करण प्रकाशित करें, आधुनिक युग के अनुकूल विज्ञापन-प्रणाली अपनायें, मधुरभाषी और शिष्ट बनें, समय की यही माँग है।

एक प्रकाशक के लिए सुसभ्य और सुसंस्कृत होना नितान्त आवश्यक है। यदि प्रकाशक में यह गुण नहीं है तो वह प्रकाशक कैसे होगा? उसका दैनिक आचरण, उसकी भाव-व्यंजना और उसके संस्थान का संगठन ऐसा आदर्श होना चाहिए जिससे बरबस पाठकों का खिंचाव उस प्रकाशन संस्था-द्वारा प्रकाशित कृतियों की ओर हो और लेखकों को यह अनुभव हो कि उचित संस्था द्वारा उनकी रचना प्रकाशित हुई है।

पुस्तकालयों से सम्पर्क

समय बदल रहा है। नये-नये पाठक आ रहे हैं और उनकी विभिन्न रुचियों का पता लगाना आवश्यक है। पाठकों की रुचि का पता लगाना प्रकाशकों की प्रचार-क्षमता पर निर्भर करता है। वे सहज ही सर्वेक्षण कर सकते हैं कि किस तरह की पुस्तकें पाठकों

में प्रिय हो रही हैं और आज के युग की माँग क्या है। इस कार्य में उन्हें पुस्तक-विक्रेताओं तथा पुस्तकालयाध्यक्षों से भी सहायता लेनी पड़ेगी। आज बच्चों और स्त्री पाठकों की संख्या सबसे अधिक है। इस वर्ग के लिए पुस्तकों के प्रकाशन में प्रकाशकों को बहुत सचेष्ट रहना है। यदि साज-सज्जा से पूर्ण, सुमुद्रित, बढ़िया पुस्तकें प्रकाशित की जायँ तो निश्चित है कि इस वर्ग की माँग पूरी करने के लिए मौजूदा प्रकाशकों से पाँच गुना अधिक प्रकाशकों को इस क्षेत्र में आना पड़ेगा।

आवश्यकता इस बात की भी है कि प्रकाशक राज्याश्रय के पीछे न दौड़ें। वे आत्मनिर्भर बनें और जनता से सीधे सम्पर्क स्थापित करें। इससे वे अपना हित तो करेंगे ही, साथ ही उनमें आत्मनिर्भरता भी आयेगी, जिसकी आज प्रकाशक-समाज में नितान्त अभाव है। सरकार इसलिए पुस्तकों के लिए अनुदान दे रही है कि पुस्तक व्यवसाय को प्रोत्साहन मिले, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि प्रकाशक अपने कर्त्तव्य और क्षमता को भूल जायें।

पुस्तक प्रकाशन के कुछ उपयोगी मानक

प्रारम्भिकी

पुस्तकें किसी भी राष्ट्र के विचारों की बुनियादी नींव और समाज के विचारों का दर्पण होती हैं। मानव में मौलिक अधिकार के प्रति आस्था उत्पन्न करना पुस्तकों द्वारा ही सम्भव है। भारत में दस लाख जनता पर प्रतिवर्ष २५ पुस्तकें प्रकाशित होती हैं, इनमें २४ प्रकाशकों और एक सरकारी प्रकाशनगृह द्वारा । देश में लगभग ७०० सरकारी प्रकाशनगृह और ८००० निजी प्रकाशनगृह हैं। पुस्तकों की ही महिमा है कि भारत में विगत ५० वर्षों में ४० करोड़ व्यक्ति साक्षर बने। यह लेख पाठ्य-पुस्तकों को छोड़कर उन पुस्तकों के उत्पादन मानकों पर विशेष रूप से प्रकाश डालेगा जो सर्वसाधारण के लिए पाठ्य-सामग्री प्रस्तुत करती हैं। प्रस्तुत विषय बहुत ही व्यापक है और जो कुछ लिखा गया है, वह संक्षिप्त रूप में व्यावहारिक अनुभव के आधार पर है।

पुस्तक की परिभाषा

यूनेस्को की १९५० में आयोजित एक कान्फ्रेंस में ऐसे साहित्यिक प्रकाशनों को, जिसमें कवर छोड़कर ४९ या इससे अधिक पृष्ठ हों और पत्रिका न हो, को 'पुस्तक' कहा गया है। ग्रेट-ब्रिटेन में ऐसे किसी भी प्रकाशन को पुस्तक माना जाता है जिसका मूल्य कम से कम ६ पेंस होता है। इटली और आयरलैंड में पुस्तक १०० पृष्ठ की होनी चाहिये, अन्यथा उसे पुस्तिका माना जाता है। डेनमार्क में कम से कम ६० पृष्ठ, हंगरी में ५४ पृष्ठ, दक्षिण अफ्रीका में ५० पृष्ठ, कनाडा में ४९ पृष्ठ, चेकराज्य में ३२ पृष्ठ और आयरलैंड में ११ पृष्ठों का कोई भी प्रकाशन 'पुस्तक' कहलाता है। लेकिन भारत, इण्डोनेशिया और रूस में पुस्तक और पुस्तिका (पम्फ्लेट) में कोई अन्तर नहीं माना जाता।

लेखक-प्रकाशक अनुबन्ध, कापीराइट तथा अनुवाद

हमारे देश में लेखक-प्रकाशक सम्बन्ध १९५७ के कापीराइट ऐक्ट के अनुसार आधारित है। प्रकाशनगृहों के अपने-अपने अनुबन्ध (Agreement) हैं। साधारणतया कापीराइट तीन प्रकार के होते हैं :

(अ) पुस्तक पर लेखकों का सर्वाधिकार।

(आ) लेखक को अनुबन्ध-पत्र के अनुसार रायल्टी देते रहने पर प्रकाशक का अधिकार।

(इ) एकमुश्त पारिश्रमिक पर लेखक द्वारा प्रकाशक को कापीराइट बेच देना। लेखक तीन तरह के अनुबन्ध करते हैं :

(क) साधारण अनुबन्ध

(ख) पेपरबैक और बुक क्लब की पुस्तकों का अनुबन्ध

(ग) फिल्मी, नाटक, रेडियो व टेलीविजन के अनुबन्ध की रायल्टी दरें अमूमन निम्नप्रकार से स्थिर की जाती हैं:

(च) बाल-साहित्य, पाकेट बुक्स, बुक क्लब संस्करण अथवा प्राइमरी की पाठ्य-पुस्तकों पर पाँच प्रतिशत ।

(छ) जूनियर हाईस्कूल तक की पाठ्य-पुस्तकों, किशोरोपयोगी साहित्य तथा नये लेखकों की कृति पर दस प्रतिशत।

(ज) हाईस्कूल से विश्वविद्यालय स्तर तक की पाठ्य-पुस्तकों तथा प्रसिद्ध लेखकों की साहित्यिक कृतियों पर १५ प्रतिशत।

कुछ ऐसे प्रकाशनगृह भी हैं जो सभी प्रकार की पुस्तकों पर एक जैसी रायल्टी देते हैं। कुछ प्रकाशनगृह ख्यातिप्राप्त लेखकों को बीस प्रतिशत तक रायल्टी देते हैं।

भारत 'बर्न कापीराइट कन्वेंशन' को मानता है। साथ ही १९७१ में अनुमोदित स्टॉकहोम प्रोटोकोल को भी भारत ने मान्यता दी है। स्टॉकहोम प्रोटोकोल के अन्तर्गत विकासशील देशों के प्रकाशकों को यह सुविधा दी गयी है कि वे रायल्टी की धनराशि विदेशों के प्रकाशकों को अपनी मुद्रा में दे सकते हैं और साथ ही रायल्टी की दरें भी सुविधाजनक होंगी। बर्न कापीराइट कन्वेंशन के नियमानुसार रायल्टी की दरें तय करना विदेशों के प्रकाशकों के अपने निर्णय के आधार पर है। अनुवाद के सम्बन्ध में दो तरह की दरें प्रचलित हैं :

१. सरकारी

२. गैर-सरकारी।

अनुवाद के मामले में सरकार १० रुपये प्रतिपृष्ठ अनुमानित शब्द संख्या २००, शेष प्रकाशनगृह ८ से १० रु० प्रतिपृष्ठ अनुमानित शब्द २०० की दर से पारिश्रमिक देते हैं। कहीं-कहीं अनुवादक मूल लेखक से शर्त तय करके उसकी रायल्टी से अधिक या एक-तिहाई रकम प्रकाशक से ले लेता है।

कापीराइट ऐक्ट में कुछ सुधार आवश्यक है जिससे जाली पुस्तकों के छापने पर और कड़ा दण्ड दिया जा सके। कापीराइट प्रक्रिया का न्यूनतम पारिश्रमिक दर भी निर्धारित किया जाय जिससे लेखक की तात्कालिक आवश्यकता का नाजायज फायदा किसी के द्वारा न उठाया जा सके। मृत लेखक के नाम से किसी दूसरे से लिखवा कर पुस्तकें प्रकाशित करवाने की कुप्रथा को रोकने की विधि भी सोचनी चाहिए।

पाण्डुलिपि का चुनाव तथा उसकी तैयारी

पाण्डुलिपि का चयन प्रकाशक के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। इस कार्य में प्रकाशक की व्यावसायिक बुद्धि, सामाजिक चेतना और सांस्कृतिक विचारधारा चयन का मापदण्ड है। यदि प्रकाशक का दृष्टिकोण शुद्ध व्यावसायिक नहीं है तो वह ऐसी पाण्डुलिपि को भी चुन सकता है जो बिक्री की दृष्टि से उपयोगी न होते हुए भी इस फर्म की साख जमाने के लिये महत्त्वपूर्ण हो। इसके बावजूद कभी-कभी प्रकाशक बिक्री की दृष्टि से ऐसी कृतियों को भी प्रकाशित कर देते हैं जो सामाजिक जीवन के लिए कुरुचि की परिचायक होती हैं। अतः प्रकाशकों को पाण्डुलिपियों का चयन करते समय निम्नलिखित बातों पर विशेष ध्यान देना चाहिए :

१. पाण्डुलिपि की विषय-वस्तु समाज के लिए उपयोगी हो।

२. व्यवसाय की दृष्टि से प्रकाशन के बाद उससे आर्थिक लाभ हो तथा फर्म की साख जमे।

पुराने जमाने में जब टाइपराइटर आदि का आविष्कार नहीं था, तब हस्तलिखित पाण्डुलिपियाँ ही तैयार होती थीं। उस जमाने में न तो अच्छा कागज उपलब्ध था और न ही पाण्डुलिपियों के संरक्षण के लिए वैज्ञानिक पद्धतियाँ थीं। आज वैज्ञानिक युग में पाण्डुलिपि प्रेस को प्रस्तुत करते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान अधिक रखना चाहिए :

१. पाण्डुलिपि कागज के एक तरफ टाइप की हुई हो।

२. कागज का साइज २० x २८ सेमी० हो।

३. टाइप डबल स्पेस में हो।

४. चारो किनारों पर ३-४ सेमी० का मार्जिन हो।

५. प्रत्येक पृष्ठ पर पृष्ठ संख्या अंकित हो और यह पृष्ठ संख्या प्रत्येक पृष्ठ की दाहिनी ओर ऊपरी किनारों पर अंकित रहे।

६. पाण्डुलिपि का प्रत्येक अध्याय अलग-अलग स्टिच किया हुआ हो।

७. इनर टायटिल, भूमिका, समर्पण और विषय-सूची प्रारम्भ में रखे जाँय और अन्त में परिशिष्ट का अंश।

८. पाण्डुलिपि के मुद्रित होने पर पृष्ठ संख्या विषयसूची में भरी जा सकती है।

९. मुद्रण को दृष्टिगत रखते हुए पाण्डुलिपि के प्रत्येक पृष्ठ पर समान संख्या में शब्द रखे जायँ। इससे पृष्ठ के अनुमान में सहायता मिलेगी।

१०. पाण्डुलिपि तैयार करते समय लेखक को टाइप सम्बन्धी निर्देश भी देना चाहिए।

११. पाण्डुलिपि में चित्र तथा डायग्राम आदि को उसी स्थान पर चित्रित करना चाहिए जहाँ उसकी आवश्यकता हो। तकनीकी पुस्तकों के लेखकों को रफ

स्केच बना देना चाहिए और अच्छा हो उसका साइज भी लेखक निर्देशित कर दे। चित्रों के नीचे उसका विवरण भी लिख देना चाहिए।

लेखक से पाण्डुलिपि प्राप्त होने के बाद प्रकाशक को उसे कार्डबोर्ड की फाइल में सुरक्षित रखना चाहिए। पाण्डुलिपि को दीमक न लगे, इसलिए उसे 'पेस्ट कंट्रोल विधि' से कैमिकलयुक्त कर देना चाहिए। पाण्डुलिपियों को लोहे की आलमारी में रखना उपयुक्त होगा। प्रत्येक प्रकाशनगृह में एक रजिस्टर होना चाहिए, जिसमें सभी पाण्डुलिपियों का नाम, लेखक का नाम व पता, विषय आदि अंकित रहना चाहिये।

पाण्डुलिपि सम्पादन तथा समीक्षा

उच्च स्तर की पुस्तकें प्रस्तुत करने के लिए प्रकाशक को बहुविज्ञ होना आवश्यक है, परन्तु यह सम्भव नहीं है कि प्रकाशक सभी विषयों का ज्ञाता हो। ऐसी स्थिति में पाण्डुलिपि की विषय-वस्तु का औचित्य और शुद्ध प्रस्तुतिकरण के लिए समीक्षक (रिव्युअर) अथवा सम्पादक (एडीटर) की आवश्यकता होती है। ये दोनों ही प्रकाशक के बहुत ही विश्वसनीय होने चाहिए और प्रकाशकों को भी उनको उचित पारिश्रमिक देना चाहिए। उचित समीक्षा और सम्पादन कृति के स्तर को बनाये रखने तथा बिक्री बढ़ाने में सहायक होते हैं। सम्पादन एवं समीक्षा का स्तर गिरने का कुप्रभाव यह होता है कि पुस्तक पाठकों में समादृत नहीं होती। संक्षेप में दोनों कार्यों में निम्नलिखित भेद हैं :

समीक्षक : वह है जो पाण्डुलिपियों के विषय-वस्तु, गुण और दोष की समीक्षा करता है।

सम्पादक : वह है जो पाण्डुलिपि के भाषागत दोषों, विराम-चिह्नों के प्रयोग, वर्तनी, पुस्तक के नामकरण, सम्बन्धित सन्दर्भ ग्रन्थों की जाँच-पड़ताल, मुद्रण के टाइप आदि के सम्बन्ध में सुझाव देता है। पाण्डुलिपि सम्पादक के निम्नलिखित कर्त्तव्य हैं :

१. प्रेस में कापी जाने के पूर्व भाषागत दोषों को दूर करना।
२. पुस्तक में दिये गये अध्यायों की उपयोगिता की जाँच और उसके नामकरण आदि पर लेखक को परामर्श देना।
३. पुस्तक के प्रत्येक अध्याय में उप-अध्याय की आवश्यकता है या नहीं, इसकी जाँच करना।
४. पुस्तक में पैराग्राफ यथाविधि रखे गये हैं या नहीं, इसकी जाँच करना।
५. पुस्तक का कोई अंश आवश्यकता से अधिक बड़ा या छोटा है, इसकी जाँच करना।
६. मुद्रण के लिए वर्तनी सम्बन्धी नियमों का ध्यान रखना। वर्तनी के अनेक सिद्धान्त प्रचलित हैं। उनमें से कौन ग्रहण योग्य हैं, कौन नहीं, इस पर लेखक को परामर्श देना।
७. प्रत्येक अध्याय में विराम चिह्नों को यथास्थान रखना।
८. पुस्तक के उपयुक्त नामकरण के लिए लेखक को परामर्श देना।

९. सन्दर्भ ग्रन्थों के सम्बन्ध में परामर्श देना।

१०. पुस्तक में कौन से टाइप कहाँ उपयुक्त होंगे, इसका सुझाव देना।

यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि बहुत से ऐसे लेखक होते हैं जिनकी पाण्डुलिपियों में सम्पादन की विशेष आवश्यकता नहीं रहती, परन्तु साथ ही ऐसे भी बहुत से लेखक हैं जिनकी पाण्डुलिपियों को प्रेस में जाने के पूर्व सम्पादक को नये रूप से लिखना पड़ता है। पाण्डुलिपि के प्रस्तुतिकरण का कार्य एक तकनीक है और किसी भी पाण्डुलिपि का संशोधन-सम्पादन लेखक व प्रकाशक दोनों के लिए बहुत ही लाभकर होता है।

समीक्षा की दृष्टि से प्रकाशकों को निम्नलिखित दृष्टिकोणों को ध्यान में रखना चाहिए :

१. ऐसे समीक्षक नियुक्त किये जाँय जो अपने विषय के विशेषज्ञ हों और उन्हें उचित पारिश्रमिक दिया जाय।

२. समीक्षक के लिए यह अत्यावश्यक है कि वह विषय की अधुनातन प्रवृत्तियों से परिचित हो।

यहाँ यह विचारणीय है कि समीक्षक की योग्यता लेखक से अधिक हो, कम न हो।

प्रूफरीडिंग

किसी भी पुस्तक के प्रकाशन में प्रूफरीडिंग का बहुत ही महत्व है। पुस्तक शुद्ध और सुरुचिपूर्ण छपे, इसके लिए कुशल प्रूफरीडर की आवश्यकता होती है। प्रूफरीडर का चुनाव करते समय यदि ऐसे व्यक्ति की खोज की जा सके जो विषय को जानता हो तो बहुत ही उत्तम होता है। प्रूफरीडिंग के सन्दर्भ में निम्नलिखित तथ्य विचारणीय हैं :

१. प्रूफ का कागज ५० से ५९ ग्राम के बीच का होना चाहिए और उसके चारों तरफ २ से १॥ इंच तक का हाशिया रखना चाहिए।

२. प्रूफरीडर अनुभवी और पढ़ा-लिखा व्यक्ति होना चाहिए और उसे प्रूफरीडिंग के अन्तर्राष्ट्रीय चिह्नों (मार्किंग) का ज्ञान होना चाहिए। यदि ऐसा नहीं होगा तो कम्पोजिटर प्रूफ का संशोधन करने में असमर्थ होगा।

३. किसी भी पुस्तक के तीन प्रूफ देखे जाने चाहिए। पहला गेली प्रूफ मुद्रक द्वारा, दूसरा प्रूफ प्रकाशक के प्रूफरीडर द्वारा, तथा तीसरा प्रूफ स्वयं लेखक द्वारा देखा जाना चाहिए। यदि अवकाश मिले तो प्रकाशक को भी सरसरी नजर से अन्तिम प्रूफ को देख लेना चाहिए। यदि प्रूफ में भूलें रह जायँ तो वह प्रूफरीडर को सतर्क कर सकता है।

४. तकनीकी, विज्ञान और गणित विषय की पुस्तकों के लिए प्रूफरीडर के साथ कापी होल्डर (Copy Holder) की भी आवश्यकता है।

५. प्रूफरीडरों को टाइपों की विभिन्न श्रेणियों तथा प्वाइन्ट की भी जानकारी होनी चाहिए; एम (इ एम) के सम्बन्ध में भी उसे जानकारी होनी चाहिए। इन जानकारियों से वह 'रांग-फाँट' आदि की भूलों को भी दूर कर सकता है।

६. प्रूफरीडर के लिए वर्तनी, विराम चिह्नों का प्रयोग, डायक्रेटिकल मार्क और कर्मकाण्ड सम्बन्धी वैदिक चिह्नों की जानकारी आवश्यक है।

पुस्तकों की मूल्य निर्धारण-नीति

पुस्तकों का मूल्य निर्धारण एक जटिल प्रश्न है। सामान्यतः पुस्तकों के मूल्य के आधार पर लेखकों की रायल्टी ५ से १५ प्रतिशत तक होती है। कहीं-कहीं लेखकों को एक साथ पारिश्रमिक देकर कापीराइट खरीद लिया जाता है। पुस्तकें कितनी संख्या में बिकती हैं, यह भी मूल्य निर्धारण का एक पक्ष होता है। पाठ्य-पुस्तकों में तो पुस्तकें नमूने में भी बाँटी जाती हैं। कहीं-कहीं सरकारी अनुदान से पुस्तकें छपती हैं अत: उसका मूल्य कम रखा जाता है। एक पक्ष और है, वह यह है कि जहाँ सरकारी प्रकाशनगृहों को कम मूल्य में कागज प्राप्त होता है, वहीं साधारण प्रकाशकों को उसी कागज के लिए अधिक मूल्य देना होता है। हमारे देश में मुद्रास्फीति भी है इसलिये प्रतिवर्ष पुस्तकों के लागत मूल्य में परिवर्तन होता रहता है। फलतः मूल्य-निर्धारण की कठिनाई हमेशा सामने रहती है। परिणामतः पुस्तकों के मूल्य-निर्धारण का कोई निश्चित फार्मूला लागू नहीं हो पाता। अतः मूल्य निर्धारण का कार्य प्रत्येक प्रकाशन संस्था निम्नलिखित मुद्दों को दृष्टिगत रखकर करती है :

१. लेखक का अंश। २. खुदरा और थोक बिक्री के कमीशन की दरें। ३. विज्ञापन। ४. एजेंट तथा कनवेसिंग-व्यय। ५. कागज का मूल्य। ६. मुद्रण-व्यय। ७. जिल्दसाजी का व्यय। ८. लेआउट और डिजाइन का व्यंय। ९. समीक्षा और सम्पादन का व्यय। १०. फर्म इस्टेब्लिशमेंट व्यय सभी टैक्सों सहित। ११. प्रकाशक का लाभ।

सामान्यतः पुस्तकों पर मुद्रण, कागज, लेआउट तथा डिजाइन की लागत से तीनगुना-चौगुना दाम प्रकाशक रखते हैं।

कुछ महत्त्वपूर्ण सुझाव

१. कापीराइट ऐक्ट में भारतीय भाषा की अनुवाद सम्बन्धी धारा नं० ३२ में इस तरह का प्राविधान होना चाहिए कि एक भाषा का दूसरी भाषा में जो अनुवाद एक वर्ष के अन्दर प्रकाशित न हो उसे प्रार्थी प्रकाशकों को अनूदित करवाकर प्रकाशित करने का अधिकार दिया जाय। अभी यह समय सात वर्ष का है।

२. बर्न कन्वेंशन के स्थान पर स्टॉकहोम प्रोटोकोल को महत्व दिया जाय।

३. प्रकाशन-व्यवसाय सम्बन्धी आँकड़े एकत्र करने के लिए एक राष्ट्रीय संस्था का गठन किया जाय।

४. अल्पमूल्य में कापीराइट की बिक्री पर प्रतिबन्ध लगाया जाय।

५. अनिवार्य बुक डिलिवरी ऐक्ट में जो पुस्तकें लाइब्रेरियों को भेजी जाती हैं, उनपर पोस्टेज फ्री हो।

प्रकाशन क्षेत्र की विभिन्न इकाइयाँ

पुस्तकों की भूमिका ज्ञानार्जन के साथ-साथ व्यावहारिक जीवन के लिए बहुत ही उपयोगी है। पुस्तकों की रचना और प्रकाशन का कार्य अनेकानेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। इस प्रक्रिया में लगे लोग इसे कोरे व्यवसाय की दृष्टि से न देखें, यह सम्भव नहीं है। उन्हें व्यवसाय के साथ समाज की दृष्टि का ध्यान भी रखना चाहिए। स्वाधीनता के बाद हिन्दी हमारे देश की विधिसम्मत राष्ट्रभाषा घोषित हो चुकी है, ऐसी दशा में हिन्दी-प्रकाशन की समस्या पर विचार करने के लिए अपना स्पष्ट मत घोषित करने के साथ ही प्रकाशन-यंत्र को सुनियोजित रूप से चलाने के लिये प्रकाशक की भूमिका महत्वपूर्ण है।

प्रकाशन क्षेत्र में जिन इकाइयों का योग है, वे हैं लेखक, प्रकाशक, मुद्रक, पुस्तक-विक्रेता, पुस्तकालय तथा सरकारी एजेन्सियाँ। हमें यह देखना है कि इन इकाइयों ने अपने-अपने क्षेत्र में कहाँ तक सफलता प्राप्त की है और उनकी कार्य-प्रणाली में क्या कमियाँ अथवा असुविधाएँ हैं। हिन्दी प्रकाशन की समस्याओं से सम्बन्धित चन्द मौलिक प्रश्न नीचे दे रहे हैं।

प्रकाशन

१. क्या कारण है कि अनेक प्रतिभावान प्रकाशक उत्साहपूर्वक प्रकाशन के क्षेत्र में आये और इतिहास बनकर रह गए?

२. प्रकाशक विज्ञापन के आधुनिक माध्यमों को अपनाने में कहाँ तक सफल हैं?

३. क्या प्रकाशन के लिए शासकीय संरक्षण का सदुपयोग हो रहा है?

४. राष्ट्रीय हित की दृष्टि से सुनियोजित प्रकाशन की दिशा में क्या कार्य हो रहा है और क्या होना चाहिए?

५. क्या प्रकाशक अपनी प्रगति से सन्तुष्ट हैं? क्या वह आर्थिक दृष्टि से अपने व्यवसाय में स्थिरता का अनुभव करता है?

६. अन्तर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय सांस्कृतिक सम्बन्धों को देखते हुए विदेशी तथा अन्य भारतीय भाषाओं से हिन्दी में अनुवाद कार्य कहाँ तक प्रगति कर सका है?

मुद्रण

७. प्रकाशनों के मुद्रण में क्या-क्या सुधार अपेक्षित हैं?

८. उन्नत मुद्रण की दिशा में प्रकाशकों के समक्ष क्या-क्या कठिनाइयाँ हैं?

पुस्तकालय सेवा और पाठक

९. पुस्तकालयों को प्राप्त अनुदान का क्या सही उपयोग हो रहा है?

१०. पाठकों की रुचि को सुरुचिपूर्ण बनाने में क्या पुस्तकालय सहायक हैं?

११. क्या हिन्दी भाषी क्षेत्र के पढ़े-लिखे समर्थ लोग हिन्दी-पुस्तकें खरीदकर पढ़ते हैं?

वितरण

१२. राजनीतिक प्रभाव सत्साहित्य के वितरण में क्या हितकर सिद्ध हो रहा है?

१३. क्या कारण है कि पुस्तक-विक्रेता हिन्दी पुस्तकों के प्रचार, प्रसार एवं विक्रय में सक्रिय योगदान नहीं कर पा रहे हैं?

१४. क्या आर्थिक-संक्रमण और देश की वर्तमान परिस्थितियों का पाठकों की क्रय-शक्ति पर प्रभाव पड़ा है?

लेखन

१५. आज का लेखक पाठकों में अध्ययन के प्रति सुरुचि उत्पन्न करने में कहाँ तक सफल हो रहा है?

१६. क्या हिन्दी-लेखक अपने प्रकाशनों की आय पर निर्भर रह सकते हैं?

१७. क्या हिन्दी का लेखक अपनी कृतियों के मुद्रण, प्रचार एवं प्रसार से सन्तुष्ट हैं?

१८. राजनीतिक हस्तक्षेप और साहित्य को प्राप्त शासकीय प्रश्रय रचनात्मक साहित्य के सृजन में कहाँ तक बाधक है?

१९. क्या हिन्दी प्रकाशकों और लेखकों के सम्बन्ध परस्पर सहयोगात्मक हैं?

२०. हिन्दी में साहित्येतर विषयों पर लिखनेवाले लेखकों को कहाँ तक प्रोत्साहन मिल रहा है?

पुस्तक-प्रकाशन के विविध अंग

आज के वैज्ञानिक युग में पुस्तक-प्रकाशन एक महत्त्वपूर्ण कार्य है। आमतौर पर हमारे देश में प्रकाशन-व्यवसाय में आनेवाले अधिकांश व्यक्ति ऐसे हैं, जो प्रकाशन के कार्य को उस दृष्टि से नहीं देखते कि आज नई तकनीकों से युक्त इस महत्त्वपूर्ण कार्य को सम्पन्न करने की आवश्यकता है। चूँकि पुस्तकों का उपयोग सर्वसाधारण में शिक्षा और संस्कृति के प्रसार के लिए होता है, ऐसी स्थिति में अब यह अपेक्षित है कि हम पुस्तकों के प्रकाशन पर गम्भीरतापूर्वक विचार करें और पुस्तक प्रकाशन के महत्त्वपूर्ण पक्षों की विवेचना करें, ताकि सर्वसाधारण के लिए अच्छी उपयोगी पुस्तकें उपलब्ध हो सकें।

यहाँ पुस्तक-प्रकाशन के सिद्धान्तों की विवेचना की जा रही है। मोटे तौर पर पुस्तक-प्रकाशन में सुरुचिकर विषय, यथास्थान उचित टाइपों का व्यवहार, कागज का चुनाव, उचित ढंग से मशीन पर छपाई, अच्छी बँधाई और आकर्षक कवर आदि विषयों का अध्ययन आवश्यक है।

प्रकाशक की समस्याएँ

प्राचीन भारत में पुस्तकों के प्रकाशन की आज की तरह सुविधाएँ नहीं थीं, मौखिक रूप से लेखकों के विचारों का प्रचार होता था। ताड़पत्रों पर पुस्तकें लिखी जाती थीं, मन्दिरों की दीवालों पर साहित्य अंकित किये जाते थे और शिलालेखों द्वारा विचारों का प्रचार होता था। आज के युग में तो रेडियो, टेलीविजन और सिनेमा आदि इलेक्ट्रानिक ऐसे उपकरण हो गए हैं, जो लेखक के साहित्य का प्रचार-प्रसार सर्वसाधारण में कर रहे हैं, परन्तु शिक्षा के माध्यम के रूप में पुस्तकों का भी अपना महत्व है। भारत की सांस्कृतिक और भावी वैज्ञानिक प्रगति में निश्चय ही पुस्तकों की भूमिका महत्वपूर्ण है। कहना न होगा कि जैसे-जैसे प्रकाशक पुस्तकों के प्रकाशन के महत्व को समझने लगेंगे वैसे-वैसे उन्हें अपनी भूमिका का महत्त्व भी विदित हो जायेगा।

जब किसी प्रकाशक के पास कोई पाण्डुलिपि आती है तो उसके सामने समस्याएँ होती हैं जैसे—सम्पादन, टाइप-चयन, सुन्दर छपाई, जिल्दसाजी और साथ ही प्रकाशन के बाद उसकी बिक्री आदि। उसे सोचना पड़ता है कि पुस्तकों का विक्रय-मूल्य क्या हो, वह कितने पृष्ठ की हो, उसकी बँधाई कैसी हो और उस अमुक प्रकाशन को सर्वसाधारण द्वारा किस प्रकार अपनाया जायेगा।

अनुबन्ध-पत्र एवं कॉपीराइट

पुस्तक प्रकाशित करने के पूर्व प्रकाशक को सबसे पहले अनुबन्ध-पत्र पर विचार करना होता है कि पुस्तक-विशेष के लिए उसे लेखक या सम्बन्धित व्यक्ति से प्रकाशन

की अनुमति मिल गयी है या नहीं। प्रकाशक और लेखक के बीच प्रकाशन के लिए अनुबन्ध-पत्र पुस्तक के प्रकाशन के पूर्व ही भरा जाता है। अनुवाद आदि के प्रकाशन में मूल लेखक या उसके प्रकाशक से अनुवाद करने की अनुमति लेकर पुस्तक प्रकाशित की जाती है। इसी के अन्तर्गत पुस्तक में व्यवहृत होनेवाले फोटोग्राफ, चित्र आदि की अनुमति प्राप्त कर लेना भी जरूरी होता है। इस तरह प्रकाशक का पुस्तक-प्रकाशन का यह पहला चरण होता है। अनुबन्ध-पत्र वाली बात कुछ मामलों में लागू नहीं होती। जैसे प्राचीन ग्रन्थों के प्रकाशन में, एक भाषा से दूसरे भाषा में अनुवाद जबकि मूल पुस्तक को प्रकाशित हुए २५ वर्ष बीत चुके हों। सार्वजनिक व्याख्यानों के प्रकाशन के लिये अनुबन्ध-पत्र की आवश्यकता नहीं पड़ती। परन्तु ऐसी चीजों को प्रकाशित करने के पूर्व प्रकाशक को इस ओर सचेष्ट रहने की आवश्यकता है कि कहीं कापीराइट के अन्तर्गत तो ऐसी चीजें नहीं हैं, जो वह प्रकाशित करने जा रहा है।

भारत बर्न कापीराइट कन्वेंशन माननेवाले देशों में है। ऐसी स्थिति में हमें उन सभी देशों के लेखकों की कृतियों के प्रकाशनार्थ अनुमति लेनी पड़ती है, जो देश कन्वेंशन को मानते हैं। रूस, ईरान आदि ऐसे देश हैं जो बर्न कापीराइट कन्वेंशन को नहीं मानते और इनके प्रकाशनों का अनुवाद स्वतन्त्रतापूर्वक किसी भी देश में हो सकता है और ये भी किसी भी देश के प्रकाशनों को अपने यहाँ अनूदित करके प्रकाशित कर सकते हैं। यह संक्षेप में इसलिये उल्लेख किया गया है, क्योंकि अनुबन्ध-पत्र के सन्दर्भ में कभी-कभी ऐसी बातें उठा करती हैं।

पाण्डुलिपि की पात्रता

प्रकाशक को पाण्डुलिपि लेते समय दो बातें स्थिर कर लेनी चाहिए—(१) पाण्डुलिपि साफ-सुथरी लिखी हुई अथवा टाइप की हुई हो। (२) उसका उचित रीति से सम्पादन किया गया हो। पाण्डुलिपि स्वीकार करते वक्त इन दोनों प्रश्नों पर विचार करना नितान्त आवश्यक हो जाता है। साफ-सुथरी पाण्डुलिपि के कारण मुद्रण में सुविधा रहती है और साथ ही लेखक को भी सुविधा होती है, जब वह अपनी पुस्तक का प्रूफ आदि देखता है। पाण्डुलिपि टंकित कराते समय इसकी कम से कम दो प्रतियाँ टंकित करानी चाहिए, जिसमें से एक लेखक के पास रहे और दूसरी प्रकाशक के पास। इससे सुविधा यह होती है कि प्रकाशक के पक्ष के प्रूफरीडर प्रूफ देखते समय टंकित प्रति का उपयोग करते हैं और मूल प्रति लेखक के पास प्रूफ के साथ नहीं भेजनी पड़ती। दूसरी प्रति जो लेखक के पास रहती है- उसका उपयोग लेखक स्वयं प्रूफ देखते समय करता है। पाण्डुलिपि तैयार करते या टाइप करते वक्त, कागज के एक ओर टाइप हो और संभव हो तो डबल स्पेस में टाइप किया जाना चाहिए। सभी पृष्ठों में एकरूपता रहे तो ज्यादा अच्छा होगा। इससे शब्दों की सही गणना हो जाती है और यह अनुमान हो सकता है कि पुस्तक कितने पृष्ठों में छपकर तैयार होगी। यदि टाइप करने में असुविधा हो तो रूलदार कागज पर पाण्डुलिपि तैयार की जानी चाहिए। हस्तलिखित पाण्डुलिपि में इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि प्रत्येक पृष्ठ पर अनुमानतः शब्दों की संख्या एक बराबर ही हो। यदि पाण्डुलिपि साफ-सुथरी और सुसम्पादित रहे तो कम्पोजिंग करने में सुविधा

होती है और उसी अनुपात से खर्च भी घट जाता है। पाण्डुलिपि की सफाई से दूसरा लाभ यह होता है कि पुस्तक शीघ्र छपती है। इसके विपरीत यदि आप भद्दी लिखी हुई पाण्डुलिपि या रद्दी टाइप की हुई पाण्डुलिपि प्रेस में देंगे तो निश्चित ही प्रकाशक को छपाई अधिक देनी होगी और मुद्रक की परेशानी के साथ ही प्रकाशक की भी परेशानी बढ़ेगी। इसीलिए अच्छे प्रकाशनगृहों में अब सम्पादक का महत्व बढ़ता जा रहा है, जो लेखक की पाण्डुलिपि को मुद्रक के काम आने योग्य बनाता है।

पाण्डुलिपि का सम्पादन

पाण्डुलिपि के सम्पादन का अर्थ होता है व्याकरण तथा विषय की दृष्टि से मूलभूत भूलों का संशोधन। यदि पाण्डुलिपि सम्पादित न की जाय, तो कभी-कभी अर्थ का अनर्थ हो जाता है। संशोधन यथास्थान पाण्डुलिपि में ही करना चाहिए और लाइन के भीतर ही। प्रूफ में संशोधन बाहर बचे हुए मार्जिन पर किया जाना चाहिए, लाइन में नहीं। यदि पाण्डुलिपि में बहुत भयानक ढंग की भूलें संपादक को मिलें तो प्रकाशन के पूर्व लेखक को इसकी सूचना दे देनी चाहिए और लेखक से ही उसका सम्पादन तथा संशोधन कराना चाहिए। शीर्षक, उपशीर्षक, फुटनोट आदि के सम्पादन में विशेष रूप से निशान लगाना चाहिए। यदि प्रकाशक उपरोक्त बताये हुए नियमों पर आचरण करे, तो पुस्तकों का प्रकाशन भी उत्तम होगा और बचत भी होगी। पाण्डुलिपियों में कभी भी लेखक की मर्जी के विरुद्ध संशोधन व सम्पादन नहीं किया जाना चाहिए। यदि कहीं आपका मतभेद हो तो तर्क द्वारा लेखक को राजी कर लीजिए। यदि लेखक राजी नहीं होता और प्रकाशक को आर्थिक हानि होने की संभावना है तो पाण्डुलिपि उसी रूप में लेखक को वापस कर देना चाहिए। एक ऐसा उदाहरण आर० एल० बर्मन ऐण्ड कं० का है, जिसमें 'लन्दन रहस्य' नामक पुस्तक छप रही थी। कम्पनी के संचालक स्व० रामलालजी वर्मन में एक गुण था कि वह प्रत्येक पुस्तक में संशोधन व सम्पादन स्वतः किया करते थे। उनका यह गुण एकबार अवगुण का काम कर गया। अनुवादक सदानन्दजी ने उनसे आग्रह किया था कि मेरी अनूदित कृति में आप संशोधन व सम्पादन नहीं करेंगे और जो संशोधन व सम्पादन होगा वह मेरी सहमति से। परन्तु बाबू साहब कब मानने वाले थे? उन्होंने मशीन पर छपते समय सदानन्दजी के अनुवाद में हेर-फेर कर ही दिया। सदानन्दजी इतने भावुक व्यक्ति थे कि उन्होंने दूसरे दिन जब आकर छपे हुए फर्मे देखे तो, एक पत्र वर्मनजी को लिखकर प्रेस से चले गये। उसके बाद बहुत चेष्टा करने पर भी रामलालजी उनका दर्शन अपने प्रेस में न पा सके।

प्रारम्भिक पृष्ठों के लिए विवरण की प्राप्ति

प्रायः देखा जाता है कि पुस्तकें प्रेस में प्रकाशनार्थ चली जाती हैं और पूरी छप भी जाती हैं, परन्तु प्रारम्भ के पृष्ठों पर क्या रहना चाहिए उस सामग्री का पता अन्त तक नहीं रहता और कभी-कभी यह भी होता है कि एक ही पुस्तक में 'फोलियो' पर कोई और नाम और इनर टाइटिल पर उसी पुस्तक में कोई दूसरा नाम छपा होता है। अतः अच्छे प्रकाशक को निम्नलिखित बातों की जाँच सावधानी पूर्वक कर लेनी चाहिए—पुस्तक का

नाम एवं उपनाम; लेखक की अन्य कृतियों के नाम; लेखक का नाम; अनुवादक का नाम; किस भाषा से अनुवाद किया गया; समर्पण, भूमिका-लेखक का नाम, चित्रकार का नाम, कापीराइट का विवरण, विषय-सूची, कितनी प्रतियाँ मुद्रित होगी, पुस्तक का मूल्य, पुस्तक का कवर पृष्ठ, मुद्रक का नाम।

पाण्डुलिपियों के द्वारा पुस्तक की पृष्ठ संख्या का अनुमान लगाना

मुद्रण से पूर्व प्रकाशक के लिए आवश्यक है कि वह अनुमान कर ले कि पाण्डुलिपि मुद्रित होने पर कितने पृष्ठों में आएगी। यह अनुमान करते समय पुस्तक में प्रकाशित होने वाली सामग्री के साथ चित्रों का स्थान भी जोड़ना पड़ेगा और जहाँ अध्याय समाप्त होगा उसके बाद यदि जगह छोड़नी हो तो उस जगह को भी इस अनुमान में शामिल कर लेना होगा। प्रारम्भिक सामग्री कितने पृष्ठों की होगी यह भी देखना होगा। कागज कैसा हो इसे भी ध्यान में रखना होगा। कभी-कभी छोटी पुस्तक होने पर मोटा कागज व्यवहृत किया जाता है, इसलिए कि पुस्तक का आकार-प्रकार छोटा न मालूम हो। पुस्तक के पृष्ठ-निर्धारण में टाइप के प्वाइन्ट का भी ध्यान रखना होगा, क्योंकि पुस्तकों के पृष्ठों का अनुमान लगाने में टाइप का बहुत महत्व होता है। पुस्तक किस आकार में छपेगी, यह भी पृष्ठांकन में सहायक होता है। उपरोक्त बातों पर साधारण रूप से ध्यान देने पर कोई भी समझदार प्रकाशक पाण्डुलिपि के द्वारा पुस्तक के पृष्ठों का अनुमान लगा सकता है और वह इस प्रकार से अपने खर्च और बिक्री का हिसाब भी आसानी से लगा सकता है।

पुस्तक के लिए कागज की व्यवस्था

पुस्तक-प्रकाशन के लिए कागज की व्यवस्था बहुत महत्व की चीज है। प्रेस में कम्पोजिंग के बाद जैसे ही प्रूफ तैयार हों, पुस्तक के मुद्रण के लिए कागज का प्रेस में पहुँच जाना नितान्त आवश्यक होता है। प्रकाशक को बाजार में उपलब्ध कागज के अनुसार किस आकार में पुस्तक छपे यह निर्णय कर लेना आवश्यक होता है। उसे अपने कागज-विक्रेता से पूर्व-व्यवस्था कर लेनी होती है कि अमुक पुस्तक में अमुक आकार का कितना कागज लगेगा और उसी आधार पर वह प्रेस को आकार और कागज की 'क्वालिटी' की सूचना देता है। कोई भी ऐसा प्रकाशक नहीं है जो कागज की लागत के अनुपात से पुस्तक के मूल्य के विषय पर विचार नहीं करता हो। प्राय: योग्य प्रकाशक ऐसी मिलों का कागज व्यवहृत करते हैं जिनका कागज अच्छा होता है और कीमत वाजिब। प्रकाशक उन मिलों से कागज लेने में घाटे में रहता है जो ५०० शीट प्रति रीम के बजाय ४८० शीट प्रति रीम कागज सप्लाई करती हैं। कागज क्रय करते समय प्रकाशक के लिए यह नितान्त आवश्यक होता है कि वह ऐसी मिलों से कागज ले जिनके रीम ५०० शीट के होते हैं। इससे पुस्तक की लागत कम होती है। यदि प्रकाशक को सीधे मिल से कागज उपलब्ध करने की व्यवस्था हो तो लागत बहुत कम होगी। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि प्रकाशक जिस तरह का कागज पुस्तक में लगाना चाहता है वह उसे इसलिए अधिक मात्रा में प्राप्त नहीं होता, क्योंकि उस तरह के कागज की

बाजार में खपत ज्यादा होती है। इस कारण कागज की कीमत थोड़ा अधिक हो जाती है। परिणामत: पुस्तक की लागत बढ़ने के भय से प्रकाशक को विवश होकर दूसरे प्रकार के कम मूल्यवाला घटिया कागज लेना पड़ता है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि प्रकाशक जिस साइज का कागज खरीदना चाहता है, वह नहीं मिलता और विवश होकर प्रकाशक आवश्यकता से बड़े साइज का कागज खरीदता है और उसे अपने साइज में कटवाना पड़ता है। इससे प्रकाशक को क्षति तो होती ही है, साथ ही पुस्तक की कीमत भी बढ़ जाती है। भारतीय मानक संस्था ने पुस्तकों में व्यवहृत होनेवाले कागज के आकारों में एक-रूपता लाने की बात कही है।

कागज का वजन, ताकत, फैलाव एवं वृद्धि

पुस्तकों के आकार-प्रकार और विषय वस्तु के महत्व को देखते हुए प्रकाशक को कागज के वजन का निर्णय करना चाहिए। उदाहरणस्वरूप यदि प्रकाशक सन्दर्भ ग्रन्थ छापता है, जिसका महत्व सैकड़ों वर्षों तक हो और उसमें भारी वजन के कागज के बजाय हल्का कागज लगाते हैं, तो यह उपयुक्त चुनाव नहीं कहा जा सकता। यह निर्णय पहले ही कर लेना होगा कि अमुक प्रकार की पुस्तक का क्या महत्व है और उसमें किस 'क्वालिटी' का और कितने वजन का कागज लगना चाहिए। पुस्तकों में बहुत पतले कागज का व्यवहार करना अच्छा नहीं होता। कभी-कभी रद्दी छपाई के कारण पतले कागज पर टाइप इस कदर उभर आते हैं कि पाठकों को पढ़ने में असुविधा होती है।

कागज का प्रकार जानने के लिए प्रकाशक को, उसके वजन, ताकत, फैलाव, रंग, मोड़ने का गुण और स्याही का उस पर कैसा असर पड़ेगा। विचार कर लेना चाहिए। मौसम का प्रभाव और पुस्तक के आकार की स्थिति जानने की आवश्यकता भी होती है। प्रकाशक को कागज का चुनाव करते समय यह ध्यान रखना होगा कि अमुक कागज में कलर वर्क ठीक से छप सकता है ।

पुस्तक का मूल्य निर्धारण

प्रकाशक को किसी पुस्तक के प्रकाशन के पूर्व उसका अनुमानित मूल्य निर्धारित कर लेना चाहिए। इससे वह पाठकों का तथा अपना लाभ करेगा।

प्रकाशक का यह कर्त्तव्य तो होता ही है कि किसी भी पुस्तक के प्रकाशन के पूर्व इस बात पर भलीभाँति विचार कर ले कि पुस्तक की लागत क्या होगी, उसके बिकने का दायरा क्या होगा और कितना लाभ होगा। कई प्रकाशक अपना प्रकाशन बजट प्रतिवर्ष स्थिर कर लेते हैं। वे इस बात का निर्णय कर लेते हैं कि उन्हें कितनी पुस्तकें कितने समय में प्रकाशित करनी हैं। प्रकाशन की लागत क्या आएगी और उन्हें अनुमानित लाभ क्या होगा। साहित्यिक पुस्तकों के प्रकाशन में यह कल्पना कभी-कभी हानिकर भी साबित हो सकती है, क्योंकि प्रकाशक की योजना के अनुसार वह पुस्तकें बिक नहीं पायीं तो क्षति उठानी पड़ती है।

पुस्तक का कवर डिजाइन

किसी भी पुस्तक के प्रकाशन के पूर्व प्रकाशक को पुस्तक के गेटअप और कवर

डिजाइन के लिए बहुत ही जागरूक रहने की आवश्यकता है। यह मान कर चलना होगा कि भारत में अधिकांश प्रकाशक अभी इस दिशा में सचेष्ट नहीं हैं। आश्चर्य तब होता है जब कई स्थितियों में प्रकाशक खर्च बचाने के लिए एक ही डिजाइन कई पुस्तकों पर छापता है। मान लें 'शकुन्तला' महाकाव्य पर जो डिजाइन उपयोग में आया है, वही डिजाइन 'उर्वशी' और 'मालिन' जैसे सामाजिक उपन्यासों में भी लग जाता है। ऐसे प्रकाशकों के दिमाग में सिर्फ एक ही चीज रहती है कि एक डिजाइन में तीन कवर चला दिये, वस्तुतः यह उसकी भूल है। इससे पुस्तक की बिक्री कम हो जाती है। योग्य और समझदार प्रकाशक विषयवस्तु को देखते हुए कवर डिजाइन बनवाते हैं। कवर डिजाइन बनवाते समय मोटेतौर पर उसकी बँधाई और प्रकार आदि को देखते हुए पहले डमी प्रति तैयार करता है और फिर उसी साइज का डिजाइन बनवाता है। जहाँ तक सम्भव हो प्रत्येक कवर के लिए प्रकाशक को अच्छे डिजाइन बनवाने चाहिए। आज कला-जगत् काफी आगे बढ़ चुका है। जनता का ध्यान आकृष्ट करने के लिए पुस्तकों के कवर अत्यन्त उच्च कोटि के होने चाहिए। इसके विपरीत कवर का आकर्षण नहीं रहा तो स्वाभाविक है कि पुस्तक की बिक्री में कमी आएगी। किसी भी पुस्तक की बिक्री में लेखक की लेखनी का प्रभाव तो होता ही है, प्रकाशक के प्रकाशन-गुण का भी महत्वपूर्ण योग है। पुस्तक-प्रकाशन में प्रधान चीज गेटअप है, जो पाठक का मन मोह लेता है।

कवर डिजाइन तैयार करते हुए डिजाइन के अनुकूल कागज का भी प्रयोग होना चाहिए। यदि आप हाफटोन प्रिन्टिंग या रूखे कागज पर छापते हैं तो वह नहीं निखरेगा, उसे आपको आर्ट पेपर या आर्ट बोर्ड पर छापना होगा। इसे दृष्टि में रखकर डिजाइन बनवाना चाहिए कि मौके पर वैसा कागज मिले, जिसका ध्यान रखकर डिजाइन आपने बनवाया है। वास्तव में आपका कवर डिजाइन इस प्रकार का होना चाहिए कि उसे देखते ही पाठक पुस्तक के विषय को आसानी से समझ ले।

टाइप और प्रेस का चुनाव

पुस्तक को प्रेस में देने के पूर्व प्रकाशक को यह निश्चय कर लेना चाहिए कि साधारण पुस्तक में कौन-सा टाइप व्यवहृत होगा, उसकी हेडिंग किस टाइप में होगी, अध्याय में किस तरह का टाइप लगेगा, प्रत्येक पृष्ठ पर यदि विषय देना है तो वह किस टाइप में रहेगा, पुस्तक के अध्याय के प्रारम्भ में पहला अक्षर किस तरह के टाइप में होना चाहिए, पुस्तक में फुटनोट के लिए कौन-सा टाइप व्यवहृत होगा, अध्याय के अन्त में यदि टेलपीस रहेंगे तो वे किस तरह के होंगे, आदि आदि। ये बातें पुस्तकों की सज्जा के लिए बड़ी ही महत्वपूर्ण हैं। अमूमन हमारे बीच बहुत कम प्रकाशक हैं जो पुस्तक छपने के पहले इन प्रश्नों पर विचार करते हैं। पाठ्य-पुस्तकों की सेटिंग में तो विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए।

पाण्डुलिपि प्रेस में देने के पूर्व प्रकाशक को यह भी सोचना पड़ता है कि किस प्रेस को अपनी पुस्तक मुद्रणार्थ दे। इसके लिए निम्नलिखित चार बातों की जानकारी प्रकाशक के लिए आवश्यक है : १. क्या उस प्रेस ने कभी उच्च स्तर की पुस्तकें मुद्रित

की हैं? २. क्या वह प्रेस प्रकाशन का कार्य दक्षतापूर्वक कर सकता है? ३. क्या प्रेस निर्धारित समय के भीतर पुस्तक प्रकाशित कर सकता है? ४. क्या उसके पास ऐसे सभी टाइप फॉन्ट मौजूद हैं, जो उस पुस्तक में व्यवहृत होने हैं?

ले-आउट और प्रेस कापी

आधुनिक युग में पाण्डुलिपि-प्राप्ति के बाद पुस्तक का ले-आउट और डमी कापी तैयार करने की पद्धति चल पड़ी है। इस स्टेज पर पाण्डुलिपि को विभिन्न रूपों से सजाया जाता है। निश्चित किया जाता है कि कौन से पृष्ठ में कितना मैटर जायेगा, कहाँ चित्र लगेगा, इनरटाइटिल कैसा होगा, कौन-सा टाइप उभरा हुआ छपेगा, समर्पण-पृष्ठ कहाँ लगेगा 'इनर टाइटिल' पर मुद्रक, प्रकाशक, लेखक, चित्रकार आदि का नाम किस तरह से रहेगा, विषय-सूची किस ढंग से कम्पोज होगी, भूमिका किस टाइप में होगी, पुस्तक पर प्राप्त सम्मतियाँ कहाँ छपेंगी, पुस्तक के भीतर चित्र हाफटोन छपेंगे या लाइन में, अध्याय का पहला शब्द किस टाइप में होगा आदि-आदि। पहले पुस्तक की डमी तैयार की जायेगी और उसी के अनुसार कवर का डिजाइन, साइज निश्चित करने के बाद बनवाया जायेगा। कवर डिजाइन बनवाते वक्त यह ध्यान दिया जायेगा कि कहीं नाम फ्लैश-कट होने पर कट तो नहीं रहा है। प्रत्येक पेज पर पुस्तक के शीर्षक का नाम रहेगा या विषय का, इसका निर्णय किया जायेगा आदि-आदि। बच्चों की पुस्तक छापते समय तो ले-आउट की बड़ी ही आवश्यकता होती है। इनमें देखना पड़ता है कि चित्रों की सजावट कैसी है। मैटर के अनुकूल चित्र बना है या नहीं, डिजाइन में उचित रंगों का प्रयोग हुआ है या नहीं, डिजाइन बच्चों की रुचि के अनुकूल बनी है या नहीं आदि-आदि। ले-आउट बनानेवाले व्यक्ति को डिजाइन बन जाने के बाद डिजाइन के पीछे चित्रों की साइज के लिए निर्देश देना पड़ता है कि चित्र छोटा-बड़ा न बने। आज २०वीं शताब्दी में छपाई में पाण्डुलिपि के बाद पुस्तक की प्लानिंग और ले-आउट पुस्तक-मुद्रण के लिए अत्यावश्यक विषय है।

भारत में अनेक भाषाओं में पुस्तकें प्रकाशित हो रही हैं। यदि सभी भाषाओं के पुस्तक-प्रकाशन के परिप्रेक्ष्य में बात की जाये तो यह एक बहुत ही लम्बी कहानी होगी। मूल रूप से इस विषय का प्रतिपादन पुस्तक-प्रकाशन के सैद्धान्तिक पक्ष को लेकर देखना होगा। भारत में पुस्तकों के प्रकाशन का भविष्य बहुत ही उज्ज्वल है और जो दायित्व प्रकाशकों के सबल कन्धों पर है, उन्हें दक्षतापूर्वक निर्वाह करना चाहिये। क्योंकि प्रसिद्ध अँग्रेज प्रकाशक सर स्टेनले अनविन के शब्दों में—'प्रकाशक न तो सबके सब निःस्वार्थ और परोपकारी होते हैं और न धूर्त। इसी प्रकार वे बहुधा न तो करोड़पति होते हैं न कंगाल भिखारी ही। वे साधारण मनुष्य की तरह होते हैं, जो एक असाधारण रूप से कठिन व्यापार-द्वारा अपनी जीविका कमाने का प्रयत्न करते हैं। प्रकाशक बन जाना तो आसान है परन्तु अधिक समय तक बने रहना कठिन है। दूसरे उद्योगों और पेशों की अपेक्षा इस व्यवसाय में अकाल-मृत्यु अधिक सम्भाव्य है।'

❀

पुस्तक प्रकाशन और प्रकाशक

पुस्तक आपने पहले भी देखी होगी। वह कहीं रखी होगी, आपने उसे उठाया होगा, घर या विद्यालय तक ले गये होंगे, उसे पढ़ा होगा और उससे लाभ भी उठाया होगा। ये सब बातें पुस्तक के गुण-धर्म में आती हैं और ऐसे गुण धर्मों की सूची बनायी जाय तो बहुत लम्बी बन सकती है। पुस्तक में कुछ लिखा होना आवश्यक है—लेकिन वह विचार अथवा भाव भी शब्दाभिव्यक्ति हो तथा ज्ञान, विज्ञान और प्राविधि के सम्बन्ध में सूचना देनेवाला हो, या लोकरंजन के निमित्त रचित हो। यह लेखन पृष्ठों पर मुद्रित होना चाहिए जो एक क्रम से सिलाई के बाद जिल्द में बँधा हो, जिसकी इकाई एक अथवा कई खण्डों में हो सकती है।

पुस्तक में कितने पृष्ठ हों? इनकी संख्या निर्धारित नहीं होती, किन्तु वह मासिक अथवा सावधिक पत्रिका न हो। यूनेस्को की १९५० में आयोजित एक कान्फ्रेंस में ऐसे साहित्यिक प्रकाशनों को जिसमें कवर छोड़कर ४९ या ४९ से अधिक पृष्ठ हों और जो पत्रिका न हो, को पुस्तक कहा गया है। ग्रेट ब्रिटेन में ऐसे किसी भी प्रकाशन को पुस्तक माना जा सकता है, जिसका मूल्य कम से कम छ पेंस हो। इटली और आयरलैण्ड में पुस्तक में कम से कम १०० पृष्ठ होने चाहिए, अन्यथा उसे पुस्तिका माना जाता है। डेनमार्क में कम से कम ६०, हंगरी में ५४, दक्षिण अफ्रीका में ५०, कनाडा में ४९, चेक में ३२ और आयरलैण्ड में ११ पृष्ठ का कोई भी प्रकाशन 'पुस्तक' कहा जाता है। भारत, इण्डोनेशिया, नेपाल और रूस में पुस्तक और पुस्तिका (पम्फ्लेट) में अन्तर नहीं माना जाता।

शिक्षा, ज्ञान और आत्माभिव्यक्ति

हम जानते हैं कि पुस्तकों में विभिन्न राष्ट्रों और मनुष्यों की आत्मा की अभिव्यक्ति होती है। मानव मन की ऊँची से ऊँची उड़ानों और उसके हृदय की गहनातिगहन भावनाओं के शब्दों को पुस्तकों के माध्यम से प्रकट किया जाता है। शिक्षा और ज्ञान के लिए पुस्तकें सबसे प्रभावी माध्यम हैं और किसी भी समाज के सांस्कृतिक उत्कर्ष और विकास का सही मापदण्ड हैं। मन की आश्चर्यजनक कल्पनायें, ज्ञान, विवेक, सृजनशीलता, त्रास और उल्लास आदि को पुस्तकों में ही संकलित करके हम अमर हो पाते हैं।

शिक्षा और ज्ञान का माध्यम, पुस्तकों का प्रकाशन वस्तुतः क्या है? वास्तव में पुस्तक प्रकाशन किसी ज्ञान या विचार को मुद्रित और तैयार करके उसे विक्रय और वितरण के लिए प्रस्तुत करना है। जो पुस्तक के निर्माण और विक्रय का दायित्व उठाता है, वह पुस्तक का प्रकाशक होता है। प्रकाशक आम जनता के लिए पुस्तकें जारी करता

है। आम जनता में बिक्री के लिए वह पुस्तकें किसी पुस्तक-विक्रेता को देता है या सीधे ग्राहक को बिक्री करता है। यूनेस्को के अनुसार प्रकाशक वह है, जो वर्ष में कम से कम चार टाइटिल प्रकाशित करता है।

व्यवसाय और सामाजिक दायित्व

व्यवसाय होने के साथ ही पुस्तक-प्रकाशन एक सामाजिक दायित्व भी है। पुस्तक-प्रकाशन से ज्ञान और शिक्षा का संचार होता है। यद्यपि संचार के माध्यम और भी हैं, किन्तु पुस्तक उठाई एवं ले जाई जा सकती है। वह सुगमता से बड़ी संख्या में प्रगुणित हो जाती है, जब चाहें देखी जा सकती है और प्रायः स्थायी होती है प्रकाशक एक ओर लेखक की कृति की अच्छी से अच्छी प्रस्तुति करता है, वहीं दूसरी ओर उसके लिए अधिक से अधिक पाठक जुटाने का प्रयास भी करता है। पुस्तक का जन्म मूलतः चाहे रचयिता के मन में हुआ हो, किन्तु उसे जनमन तक पहुँचाने का कार्य प्रकाशक ही करता है।

शिक्षा और ज्ञान के उपकरणों का जनता में संचार करके सामाजिक दायित्व निभाते हुए भी पुस्तक-प्रकाशन आज मूलतः एक व्यावसायिक जोखिम का कार्य है। लेखक किसी प्रकाशक के पास हाथ से लिखे या टाइप किये हुए कागज के पुलंदे को पाण्डुलिपि के रूप में लाता है, जिन्हें एक तैयार पुस्तक के रूप में सर्वसुलभ ढंग से प्रस्तुत करना प्रकाशक का काम है। पुस्तक की तैयारी में उसे यह जोखिम भी उठानी पड़ती है क्योंकि कुछ समय तक उसकी पूँजी रुकी रहती है। यह जोखिम उठाने से पहले उसे बहुत कुछ सोचना पड़ता है, जैसे पुस्तक की रूप-सज्जा कैसी हो, क्या उसे चित्रित भी किया जाय, उसके पृष्ठ कितने और किस प्रकार के हों, जिल्द कागज की हो या गत्ते की, उसकी कितनी प्रतियाँ तैयार कराई जायँ, ताकि वे बिक सकें। बिक्री कैसे बढ़ाई जाय, नये प्रकाशनों से लोगों को कैसे परिचित कराया जाय, आदि। क्या यह पुस्तक उसी परम्परा और प्रतिष्ठा के अनुरूप है, जो उस प्रकाशनगृह ने स्थापित की है? ऐसी ही कई और बातों पर विचार करने के बाद किसी पुस्तक का प्रकाशन प्रारम्भ किया जाता है।

पुस्तक का निर्माण

प्रकाशन की सम्पूर्ण प्रक्रिया में लेखक, मुद्रक, जिल्दसाज, विक्रेता और स्वयं प्रकाशक सहित कई पक्ष सम्बद्ध होते हैं, किन्तु इस प्रक्रिया को गति देना प्रथमतः प्रकाशक का काम है। लेखकों से पाण्डुलिपि प्राप्त करना, पूँजी जुटाना, कलाकारों, विशेषज्ञों तथा सम्पादकों की सेवायें जुटाना, मुद्रण के कार्य की देखभाल और सम्भावित बाजारों की खोज तक के सभी कार्य प्रकाशक को देखने होते हैं। यद्यपि मूलतः पुस्तक का निर्माता उसका लेखक होता है, जिसे उसकी बिक्री आदि के सभी अधिकार होने चाहिए, किन्तु वह प्रायः प्रकाशक के साथ एक अनुबंध करके ये सभी अधिकार उसे देकर बिकी हुई किताबों की संख्या के आधार पर उससे रायल्टी की राशि लेता है। मुद्रण और छपाई का काम भी वह प्रकाशक को ही सौंप देता है, और मुद्रक कम्पोजिंग, छपाई, जिल्दबंदी आदि कराकर तैयार प्रतियाँ प्रकाशक को देता है। मुद्रक को मुद्रण

आदि की लागत भी प्रकाशक देता है और फिर व्यावसायिक कमीशन के आधार पर उसे पुस्तक विक्रेताओं को बेचने के लिए भी वही देता है। इस प्रकार समस्त प्रक्रिया की धुरी प्रकाशक है, जो पुस्तक प्रकाशन का जोखिम उठाता है।

पुस्तक प्रकाशन व्यवसाय तो है परन्तु वह एक कला भी है और अब धीरे-धीरे विज्ञान का रूप ग्रहण करता जा रहा है। यह कला इस अर्थ में है कि प्रकाशक की साहसिक, कल्पनाशीलता और उसके समूचे व्यक्तित्व का प्रभाव उसके व्यवसाय पर पड़ता है। अलग-अलग प्रकाशक अलग-अलग प्रयोग इस व्यवसाय में करते हैं। पुस्तक निर्माण में कई विशिष्ट, तकनीकी दक्षताओं का योग होता है—उसका सम्पादन, आकल्पन, मुद्रण और पुस्तक का विक्रय। पुस्तक में पाठ्य-सामग्री के अतिरिक्त प्रारम्भ में इनर टाइटिल, भूमिका, समर्पण, विषय-सूची, आभार प्रदर्शन एवं अंत में परिशिष्ट तथा सन्दर्भ-ग्रन्थ की सूची भी रहती है। इन सबके लिए प्रकाशक को ये तीन कार्य करने होते हैं—(१) सम्पादन—पाण्डुलिपि प्राप्त करने के बाद प्रेस में भेजने के लिए 'प्रेस कापी' तैयार करना; (२) विक्रय—किताबों की बिक्री की व्यवस्था करना और ऐसा प्रयास करना कि लोगों के बीच अधिक से अधिक पुस्तकों की माँग हो। इसके लिए वह अन्य प्रकाशकों के साथ मिलकर सामूहिक प्रयास भी कर सकता है, ताकि समाज में पुस्तक की मानसिकता का विकास हो।

प्रकाशक की योग्यतायें

प्रकाशक को पाण्डुलिपियों को प्राप्त करने के लिए लेखक के साथ, पुस्तकें मुद्रित करने के लिए मुद्रकों, जिल्दसाजों, कलाकारों, विशेषज्ञों और सम्पादकों के साथ तथा बिक्री बढ़ाने के लिए पुस्तक विक्रेताओं के साथ तरह-तरह के अनुबंध करने होते हैं। अतएव उसे कानून एवं विशेषतः कापीराइट ऐक्ट की थोड़ी-बहुत जानकारी होनी चाहिए। चूंकि उसे इन सबका हिसाब-किताब भी रखना होता है, इसलिए उसे वाणिज्य और अर्थशास्त्र का ज्ञान भी होना चाहिए। उसे माँग और बाजार के बारे में भी ज्ञान होना चाहिए। अपने विस्तृत सम्बन्धों और कार्यकारी कर्मचारियों से कुशलतापूर्वक निर्वाह करने के लिए उसमें पटुता भी होनी आवश्यक है।

प्रकाशन कार्य भारत के लिए अब नया नहीं है। भारत उन्नत पश्चिमी देशों के प्रकाशन व्यवसाय से भी परिचित हो गया है और अब अपने अनुभव और ज्ञान के आधार पर धीरे-धीरे इसे एक व्यवस्थित विज्ञान के रूप में विकसित किया जा रहा है। किसी भी विषय के व्यवस्थित ज्ञान को विज्ञान कहते हैं और पुस्तक-प्रकाशन के सम्बन्ध में अब ऐसा व्यवस्थित ज्ञान प्राप्त होने लगा है।

❀

पुस्तकों की दुकाने : भूमिका और कर्त्तव्य

१९१४ के पूर्व परीलोक कथाओंवाले युग में कठिन से कठिन विषयों के पाठकों को भी खोजनें में दिक्कत नहीं होती थी, परन्तु आज के युग में, जब सामाजिक व्यवस्था में आमूल परिवर्तन हो रहा है और समूचे विश्व का झुकाव आर्थिक क्रान्ति की ओर है, तब यह स्थिति है कि लोग पुस्तकों का महत्व भूलते जा रहे हैं। इसका मूल कारण जीवन-संगीत का परिवर्तन है। यह नया संगीत ऐसा है जिससे भय हो रहा है कि आदमी एकान्त चिन्तन से वंचित हो जायेगा और परिणाम यह होगा कि उसकी चिन्तन-शक्ति का विकास नहीं हो सकेगा, जो कि पूर्व युग के मानव-मनीषियों को सहज प्राप्य थी।

जितना महत्व किसी बड़े-से-बड़े शिक्षा-संस्थान का शिक्षा और संस्कृति के क्षेत्र में है उससे कम महत्व पुस्तकों के संस्थानों का नहीं है। ये पुस्तक-संस्थान देश की संस्कृति के पवित्रतम प्रतिष्ठान हैं। यदि पुस्तक-व्यवसाय में लगे हुए लोग अपनी इस महत्ता को दृष्टि में रख सकें तो देश में शिक्षा और संस्कृति के प्रचार-प्रसार में उनके द्वारा काफी योग मिल सकता है। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि पुस्तकों की दुकानें व्यवसाय के कोरे केन्द्र नहीं हैं, वरन् समाज सेवा की पीठिकायें हैं। पिछले दिनों अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ के अध्यक्षीय भाषण में कहा गया था कि जो लोग पुस्तक विक्रय व प्रकाशन के क्षेत्र में पदार्पण करें, वे केवल आर्थिक दृष्टि से कदापि इस पुनीत व्यवसाय में न आयें, वरन् उनका ध्येय समाज सेवा भी हो। हमारे देश में पुस्तकों की दुकान में जाकर आप आस-पास के रहनेवालों की अभिरुचि का पता लगा सकते हैं। आपको मालूम हो सकता है कि वहाँ किस तरह के पाठक हैं और आस-पास शिक्षा के प्रति लोगों का क्या रुझान है।

विक्रेताओं का वर्गीकरण

देश के आनेवाले सांस्कृतिक उत्थान के युग में प्रत्येक पुस्तक की दुकान एक संस्था का स्वरूप ले लेगी, इसमें रंचमात्र भी सन्देह नहीं है। स्वतन्त्रतापूर्व के वर्षों में पुस्तक का व्यवसाय करनेवाले लोगों की सामाजिक प्रतिष्ठा नहीं के बराबर थी, परन्तु अब यह बात नहीं रह गई है और इस व्यवसाय के प्रति लोगों की अच्छी आस्था है। ऐसी परिस्थिति में पुस्तकों की दुकान करनेवाले लोगों को सुशिक्षित एवं सुसंस्कृत बनना होगा और सुन्दर वैज्ञानिक तरीके सीखने तथा अपनाने होंगे। हमारे देश में कितने तरह की

पुस्तक की दुकानें हैं? साधारण तौर पर इनका वर्गीकरण इस प्रकार है:—१. पाठ्य-पुस्तक विक्रेता, २. जन-साहित्य विक्रेता, ३. साहित्यिक पुस्तक विक्रेता, ४. धार्मिक पुस्तक-संस्थान, ५. प्रचार साहित्य विक्रेता।

विभिन्न प्रकार की दुकानों की कार्य-पद्धति का विश्लेषण करने के पूर्व कुछ साधारण-सी बातें हमें सोच लेनी होंगी, जिनमें प्रमुख हैं:

१. पुस्तक विक्रेता को दुकान में मौजूद पुस्तकों के विषयों की जानकारी हो।

२. आगन्तुक ग्राहकों का विनयपूर्वक स्वागत किया जाय ताकि उन्हें यह अनुभव हो कि वह एक सांस्कृतिक संस्थान के सम्पर्क में आये हैं और पुस्तकों की दुकान में आने का महत्व समझ सकें।

३. दुकानदार को ग्राहक की स्थानीय भाषा का ज्ञान हो।

४. दुकान इस ढंग से सजी हो कि सर्वसाधारण स्वत: उसमें प्रवेश करने को बरबस उत्सुक हो उठें।

५. पुस्तक-विक्रेता साफ-सुथरे परिधान पहने हों।

६. यथासंभव ग्राहकों की जिज्ञासा की पूर्ति की जाय।

७. ग्राहकों की सुविधा-असुविधा की ओर ध्यान दिया जाय।

८. दुकान में मोल-भाव की पद्धति न हो।

९. पत्राचार पर समुचित ध्यान दिया जाय।

१०. नये लेखकों की कृतियों का प्रचार किया जाय।

उपरोक्त दस तथ्यों को सामने रखकर आपके समक्ष अब पुस्तकों के पाँचों वर्गों की दुकानों का विश्लेषण किया जायेगा, जिससे यह स्पष्ट हो सके कि हमारे दायित्व क्या हैं।

पाठ्य-पुस्तकों की दुकान

देश में पठन-रुचि भले ही उस रफ्तार से नहीं बढ़ रही है जिस तरह से उसे बढ़ना चाहिए, परन्तु यह निश्चय है कि प्रत्येक माँ-बाप अपने बच्चों को विद्यालयों में पढ़ने के लिए भेजने का दायित्व बखूबी समझते हैं। हमारी सरकारें भी सचेष्ट हैं कि देश में अधिकाधिक विद्यालय खुलें और शिक्षा का स्तर ऊँचा हो। फलत: पाठ्य-पुस्तकों की दुकानें पाठ्य-पुस्तकों की माँग के बढ़ जाने के कारण बहुत अधिक संख्या में खुलती जा रही हैं। जो दस बातें ऊपर कहीं गई हैं, वे अभी देश में पाठ्य-पुस्तकों की दुकानों में नहीं के बराबर दिखाई देती हैं। विषयों की जानकारी का जहाँ तक प्रश्न है, इसमें अधिकांश दुकानों में अनपढ़ लोग काम करते हैं। आप उनसे पूछें भाई 'जुलॉजी' पर कोई पुस्तक है तो 'जुलॉजी' शब्द न समझने के कारण 'जियोलॉजी' की पुस्तक दे देंगे। उनसे

यदि प्रसिद्ध लेखकों के नाम पूछियें तो हजरत जानते ही नहीं। आपको भारत के इतिहास पर प्रामाणिक और आधिकारिक ग्रन्थ चाहिए तो कभी-कभी अज्ञान पुस्तक-विक्रेता आपको नोट्स की पुस्तक दिखा देंगे। ऐसी न जाने कितनी कहानियाँ हैं, जिन्हें आपके सामने उपस्थित किया जा सकता है। आगन्तुक ग्राहकों का स्वागत ये पुस्तक-विक्रेता इतना अच्छा करते हैं कि बयान नहीं हो सकता। रूखी जबान, कड़वी भाषा का प्रयोग आये-दिन देख लीजिए। पुस्तकों की बाजार में कमी होने पर चिड़चिड़ा कर बोलना तो इनके लिए साधारण बात है। सोचिए कि किसी बालक और अभिभावक की पुस्तक की दुकान पर इस प्रकार के स्वागत के प्रति क्या धारणा होगी? विक्रेता को स्थानीय भाषा का ज्ञान तो होना ही चाहिये, परन्तु यह भी अत्यावश्यक है कि ये स्थानीय भाषा के अतिरिक्त अंग्रेजी और हिन्दी भी जानें। यदि सिन्धी भाई, बंगाली भाई या मराठी भाई आ जायें और पाठ्य-पुस्तक-विक्रेता उनकी भाषा में दो मधुर शब्द उनसे बोल लें, जिसकी कि आशा कम है, तो कमाल का जादू ग्राहक पर हो जाय। दुकानों की सजावट पर ध्यान दिया जाय। आप देखेंगे कि पुस्तकें ऊबड़-खाबड़ ढंग से लगाई गई हैं। ये चीजें ग्राहकों को आकृष्ट करने के मार्ग में रुकावट हैं और अधिक दिनों तक यह पद्धति चालू नहीं रह सकती। साफ-सुथरे परिधान की बात जब आती है, तो क्या कहा जाय। दुकान के मालिक साहब भले ही साफ-सुथरे परिधान पहनें हों, परन्तु कम-वेतन प्राप्त कर्मचारी फटे और मैले कपड़ों में दिखाई देते हैं। ग्राहक जिज्ञासा-पूर्ति के लिए इन पाठ्य-पुस्तक विक्रेताओं की ओर जब नजर उठाता है, तो अधिकांश दुकानदार ऐसे हैं जो जवाब तक नहीं देते, जिज्ञासापूर्ति की बात तो दर-किनार है! पुस्तक का संस्करण समाप्त है और कब निकलेगा यह ग्राहकों को प्रेम से बताना इनका कर्तव्य है—यह ये नहीं जानते। पाठ्य-पुस्तकों के ग्राहक प्राय: कोमल बालक-बालिकाएँ होते हैं। इनसे प्रेमपूर्ण व्यवहार किया जाय और इनकी जिज्ञासाओं की पूर्ति की जाय ताकि इनका मन विकसित हो और ये आपकी दुकान में जायें। इससे आपकी बिक्री बढ़ेगी और आपके संस्थान का सच्चा महत्व भी कूता जायेगा। कहना न होगा कि सुविधा और असुविधा के प्रश्न पर ग्राहकों की पाठ्य-पुस्तक-विक्रेताओं के प्रति बड़ी शिकायतें हैं। कभी-कभी देखा जाता है कि कुछ पाठ्य-पुस्तक-विक्रेता (सब नहीं) पुस्तकों की ब्लैक-मार्केटिंग शुरू कर देते हैं। पुस्तकों के दाम में काला-बाजारी की कल्पना करना कितना निन्दनीय है? कोई भी दण्ड उसके समकक्ष नहीं दिखाई देता। संस्कृति और शिक्षा के पुण्य प्रचारक पुस्तक-विक्रेता भी ऐसी घृणित और निन्दनीय प्रवृत्ति को अपना सकते हैं, कोई समझ नहीं सकता। जो लोग शिक्षा के प्रचार-प्रसार का कार्य करते हैं, वे ही यदि काला-बाजारी करें तो वह शिक्षा कितनी लाभप्रद और देश के लिए हितकर हो सकती है, यह हमें सोचना होगा। लिहाजा इस घृणित आचरण से मुँह मोड़ना हमारा एक नैतिक कर्तव्य है। एक सामान्य कहानी है—आँखों देखी ! एक गरीब बाप अपनी बच्ची को लेकर किसी दुकान पर पुस्तक लेने जाता है, तो उससे कहा जाता है कि कुंजी भी खरीद लो। गरीब बाप के

पास पैसे नहीं हैं। बेटी ललचाये नेत्रों से पुस्तक की ओर देखती है। लालची दुकानदार को न तो बालिका के उत्कण्ठापूर्ण नेत्र दिखाई देते हैं और न बाप के आँखों में वात्सल्य से भरे हुए आँसू।

इस प्रकार कहने को तो बहुत कुछ है, परन्तु पाठ्य-पुस्तक-विक्रेता ऊपर कही दस बातों पर ही अमल करके देखें, जिसपर उनका उज्ज्वल भविष्य निर्भर करता है, तो उनका व्यवसाय बहुत बढ़ेगा। कुछ ऐसे दुकानदार भी हैं जो नकली पुस्तकें बेचते हैं, जिन्हें अंग्रेजी में 'पाइरेसी' कहते हैं। दुकानदार इसे 'डालडा' शब्द से भी सम्बोधित करते हैं। पुस्तकों की दुकान करनेवाले यदि चोरी को अपना पेशा बना लेते हैं तो हम नहीं सोच सकते कि सारे देश का ढाँचा क्या होगा? नकली घी, नकली तेल तथा नकली दवाई बेचनेवाले तो समाज के शत्रु गिने ही जाते हैं, परन्तु नकली किताब बेचनेवालों को भी हमें समाज का घोर शत्रु समझना होगा, क्योंकि पुस्तकों की दुकान को देश की शिक्षा, संस्कृति और आचरण संहिता का मूल उद्गम-स्थान समझा जाता है।

जन-साहित्य-विक्रेता

नब्बे करोड़ आबादीवाले भारत देश में सदियों की गुलामी के बाद आज भी वर्षों बाद करोड़ों की संख्या में कम पढ़े-लिखे हैं अथवा पढ़े ही नहीं हैं, और पढ़े हैं तो सिर्फ़ इतना कि सही दस्तखत कर सकें। परन्तु उनके बीच भी एक ऐसी चीज है जो उन्हें पुस्तकों की ओर आकर्षित करती है। पढ़े-लिखे लोगों से अधिक इस अशिक्षित अथवा अर्द्धशिक्षित वर्ग में पढ़ने-लिखने का शौक पाया जाता है। ऐसा वर्ग देश में प्रचलित लोक-कथाएँ, पौराणिक गाथाएँ, धार्मिक कृतियों जैसे—रामायण, महाभारत, बाइबिल, कुरान आदि पढ़ता है। लिहाजा ऐसे ग्राहकों के लिए समूचे देश में हजारों की संख्या में जन-साहित्य बेचनेवालों की दुकानें होनी चाहिए। जन-साहित्य के पुस्तक-विक्रेता को किसी साहित्यिक पुस्तक, पाठ्य-पुस्तक, प्रचार-साहित्य और धार्मिक पुस्तक-विक्रेता के समान ज्ञानवान होना आवश्यक नहीं है क्योंकि उनके अधिकांश पाठक कम पढ़े-लिखे होते हैं। वैसे ग्राहकों का स्वागत ये लोग अच्छी तरह करते हैं। स्थानीय भाषा का ज्ञान भी इन्हें रहता है। यदि बिहार का जन-साहित्य-विक्रेता है तो वहाँ की 'भोजपुरी' का वह मर्मज्ञ है और रायपुर (मध्यप्रदेश) का जन-साहित्य का विक्रेता है, तो वह 'छतीस गढ़ी' बोली जानता है। सजावट का प्रश्न इन दुकानों में उठता ही नहीं। जैसे अनपढ़ ग्राहक, वैसे सपाट विक्रेता! यों तो ग्राहकों की जिज्ञासापूर्ति भी ये कर देते हैं। यदि किसी ने पूछा कि 'लोरिकायन' पर कोई पुस्तक निकली है और कहाँ से प्रकाशित हुई है, तो ये बता देते हैं। ग्राहकों की सुविधा-असुविधा का इन्हें ध्यान रखने की जरूरत नहीं है, क्योंकि इस तरह के पुस्तक-विक्रेता स्वत: अनपढ़ होने के कारण आज के वैज्ञानिक युग के वातावरण से बिलकुल ही अनभिज्ञ हैं। बदली हुई परिस्थितियों में ये अपने को ढाल नहीं सकते। ऐसी स्थिति में संशय होता है कि इन्हीं की तरह इनके बाल-बच्चे भी यदि इसी पद्धति को अपनायेंगे तो वे आधुनिक युग में क्या कमा-खा भी पायेंगे? मोल-भाव तो इस तरह की दुकानों में ज्यादा है, संभवत: ग्राहक भी ऐसे ही आते हैं। जन-साहित्य की पुस्तकों पर दाम छपा रहता है १० रुपया और मोल-भाव करने पर ग्राहक तीन रुपये में

ही उसे प्राप्त कर लेता है। ग्राहकों की बात छोड़िए, ये पुस्तक-विक्रेता प्रकाशकों को भी मोल-भाव कर परेशान करते हैं। आप-बीती एक कहानी इसी संबंध में प्रस्तुत है। पुरानी बात है, एक व्यापारी भाई बिहार के गाँव से पधारे। आते ही उन्होंने कहा कि—'भइया कुछ खिलावो', अर्थात् कुछ खिलाइये। एक रुपये की पूरी उनके लिए आयी, उन्होंने भोजन किया। इसके बाद पुस्तकें छाँटीं। व्यापाराना मूल्य पर उन्होंने पुस्तकें खरीदीं। फिर उन्होंने कहा कि कुछ एक्स्ट्रा कमीशन दें। एक्स्ट्रा कमीशन एक आना रुपये दिया। १० रुपये मूल्य की किताबें उन्होंने ली थीं, दस आने कम करके ९ रु० ६ आने का सामान हुआ। अभी तक मोल-भाव का अन्त नहीं हुआ था। उन्होंने चलते-चलते कहा कि मेले में दुकान लगानी है, आप हमें एक टाट दे दीजिये। सोचा कि अपने सहयोगी हैं, टाट माँगते हैं, दे देना चाहिये। टाट की जब पूर्ति हुई तो वे बोले कि—'एक बात और कहे के हौ' पूछा गया, क्या बात है? बोले—'हमारे भाई बदै एक रामायण गुटका दे दिहल जाय।' संकोच में एक रामायण गुटका भी देना पड़ा। कहने का आशय यही कि इस प्रकार की प्रवृत्ति पुस्तक-व्यवसाय के लिए अभिशाप है। जन-साहित्य के कुछ पुस्तक-विक्रेता आजकल अश्लील साहित्य के विक्रय-केन्द्र बन रहे हैं। हमें इन पुस्तक-विक्रेताओं तक अपनी यह आवाज पहुँचानी है कि मुल्क की आजादी के बाद और विज्ञान के चरम सीमा पर पहुँचे हुए इस युग में पुस्तकों की महत्ता को वे समझें और साथ ही अपने व्यवसाय के महत्व को भी। अनपढ़ लोगों में पुस्तक बेचनेवाले इन पुस्तक विक्रेताओं पर देश के चरित्र और संस्कृति के निर्माण का दायित्व भी है। अश्लील-साहित्य बेचना और व्यभिचार बेचना एक बराबर है। जब ये पुस्तक-विक्रेता अश्लील साहित्य बेचेंगे और उन्हें इस कुत्सित कार्य से रोका नहीं जायेगा, तो आनेवाली सन्तति के चरित्र-भ्रष्ट होने का कलंक उन पर अवश्य लगेगा। कई लोग तर्क देते हैं कि यह यथार्थवाद है, परन्तु यथार्थवाद के नाम पर अश्लील साहित्य बेचने की कुचेष्टा करना अनुचित है। पुस्तकों के दुकानदारों को अपना महत्व समझना होगा। जन-साहित्य के ये पुस्तक-विक्रेता यदि पढ़े-लिखे प्रकाशकों के संस्थानों द्वारा प्रशिक्षित हो जायँ, तो निश्चय ही देश में शिक्षा का प्रचार-प्रसार जितना ये कर सकते हैं उतना अन्य कोई वर्ग (पुस्तक-विक्रेता) नहीं कर सकता। इस वर्ग के पुस्तक-विक्रेता का जनता से सीधा सम्पर्क है। इनके सहयोग से सामान्य जनता तक सत्साहित्य को पहुँचाया जा सकता है।

साहित्यिक पुस्तक-संस्थान

देश में आज साहित्यिक पुस्तकों के प्रकाशन और विक्रय की ओर ध्यान देने की बात कही जा रही है। कुछ प्रकाशक हमारे सामने आये हैं, जिन्होंने लाभ की परवाह न करते हुए भी सत्साहित्य का प्रकाशन किया है। साथ ही देश में पुस्तक-विक्रेताओं का एक ऐसा वर्ग भी आ रहा है, जो सत्साहित्य बिक्री की ओर ध्यान दे रहा है। परन्तु उसकी संख्या बहुत कम है। देश की शिक्षा और संस्कृति के निर्माण में पुस्तक विक्रेताओं के इस वर्ग की कहानी आदर्श रूप में गिनी जायेगी। साहित्यिक पुस्तकों की बिक्री करके कोई पुस्तक-विक्रेता मुश्किल से एक साधारण परिवार की जीविका पाल ले, तो बड़ी बात होगी। ऐसी स्थिति में इस वर्ग को यदि हम समाजसेवी की संज्ञा दें, तो अत्युक्ति नहीं

होगी। इस वर्ग को देश में पुस्तकों की दुकानों का आदर्श (मॉडल) बनाना ही पड़ेगा। साथ ही इन्हें पुस्तकों की दुकानों की भूमिका और कर्तव्य की वास्तविकता भी चरितार्थ करनी होगी। ऐसी दुकानों में पढ़े-लिखे लोग ही कार्य करें, चाहे वह मालिक हों या कर्मचारी। उन्हें इतना ज्ञान होना चाहिये कि यदि कोई ग्राहक आता है और पूछता है कि—'हिन्दी साहित्य का इतिहास' कितने लेखकों द्वारा लिखा गया है तो वे उसकी सही-सही सूचना ग्राहकों को दे सकें। यदि कोई शोध-प्रबन्ध लिखनेवाला विद्यार्थी आता है और पूछता है कि अमुक विषय पर पुस्तकें दीजिये, तो उसको पुस्तक संबंधी सूचना मिलनी चाहिए। इसके अतिरिक्त पुस्तक विक्रेता को विनयी भी होना चाहिए। विनय आपके पास है यही बहुत बड़ी बात नहीं है, उसकी वास्तविकता तब प्रमाणित होगी जब दुकान में आनेवाले ग्राहक उसका अनुभव करें। उसी दशा में साहित्यिक दुकान के पुस्तक-विक्रेता का कार्य सफल समझा जायेगा। स्थानीय भाषा का ज्ञान तो ऐसे विक्रेता को होना ही चाहिये, साथ ही इस तरह की दुकानों में काम करनेवाले पुस्तक-विक्रेता दो-चार भाषाओं को जानते हों तो ज्यादा अच्छा है। मोल-भाव की पद्धति ऐसी दुकानों में हरगिज नहीं होनी चाहिए, क्योंकि यहाँ प्राय: पढ़े-लिखे लोग आते हैं।

कोई भी ग्राहक समूचे भारत में पुस्तक कहीं से खरीदे, उसे एक ही मूल्य पर पुस्तक मिलनी चाहिये। यही नियम समस्त भारतीय भाषाओं की बिक्री पर लागू होना चाहिए, कम से कम साहित्यिक पुस्तकों पर अवश्य ही। साहित्यिक पुस्तकों की दुकान की सजावट इस तरह की होनी चाहिये कि प्रवेश करते ही पाठक को यह अनुभव हो कि वह किसी सांस्कृतिक स्थान में आया है और उसकी आत्मा में ऐसा भाव उदित हो, जिससे उसका झुकाव सत्साहित्य की ओर बरबस हो जाय। दुकान में पुस्तकों की सजावट से ग्राहक का झुकाव कैसे होगा, इसका आपको सामान्य उदाहरण दिया जाता है। रैकों पर पुस्तकें सजा देने से ही सजावट नहीं होगी। उदाहरणस्वरूप दो रैक समान रूप से रखिए। साधारण तौर पर एक पर पुस्तकें लगाइये और दूसरे पर कवरों के रंगों को दृष्टिगत रख इस तरह सजाइये कि मालूम पड़े कि रंग-बिरंगे फूलों का गुलदस्ता बनाया गया है। यह ठीक उसी तरह होगा जिस तरह फूल का गुलदस्ता पत्तियों तथा विभिन्न प्रकार के फूलों के रंग से, क्रम से सजा गुलदस्ता जैसा हो! दुकान की सजावट का ग्राहकों के मन पर प्रभाव पड़ता है और कभी-कभी केवल उसी आकर्षण के कारण पुस्तकें खरीदनी पड़ती हैं। बम्बई में 'नवनीत प्रकाशन' ने एक 'एयर कण्डीशन्ड' सजी-धजी पुस्तकों की दुकान खोली। स्वाभाविक था—जब ग्राहक वहाँ गये और उसकी सजावट देखी, उसमें आराम से बैठेगें तो उनका ध्यान अनायास पुस्तकों की ओर जायेगा और वे पुस्तकें खरीदेंगे तथा पढ़ेंगे। ग्राहकों की जिज्ञासापूर्ति की ओर सचेष्ट रहना इस तरह की दुकानों में नितान्त आवश्यक है। आपके पास ग्राहक आयेंगे और पूछेंगे कि अमुक लेखक की कृति कहाँ से प्रकाशित हुई हैं, आप हमें मँगा दीजिये, ऐसी दशा में यदि आपके पास वह पुस्तक न भी हो तो कम-से-कम सूचना तो होनी ही चाहिये कि यह पुस्तक अमुक प्रकाशक के यहाँ से प्रकाशित हुई है, हमारे स्टाक में इस समय समाप्त है, आपको वहाँ से पत्राचार करके मँगा देंगे।

लेखक और पाठक को जोड़ता है विक्रेता

सत्साहित्य बेचनेवाली दुकानों का बहुत बड़ा दायित्व है। प्राय: देखा जाता है कि ऐसी पुस्तकों की दुकानों पर कुछ ग्राहक ऐसे भी आते हैं जो पुराने लेखकों की अप्राप्य पुस्तकें भी खोजते हैं। साहित्यिक कार्य करनेवाले पुस्तक-विक्रेता यदि अपने कर्त्तव्य को समझें तो उनका यह भी दायित्व है कि वे ग्राहकों के लिए चेष्टा करके ऐसी पुस्तकें भी खोजें और हो सके तो उन्हें उपलब्ध करायें तथा पुस्तक कहाँ और कैसे मिल सकती है, सूचित करें। स्वाभाविक है कि जब ग्राहक को वांछित सूचना प्राप्त होगी तो वह दुकान में पुन: आयेगा और अपनी माँग की अन्य पुस्तकें भी वहीं से खरीदेगा।

सत्साहित्य के विक्रेताओं को एक बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करनी है। उन्हें पाठकों से नये प्रतिभाशाली लेखकों का परिचय कराना है। पुस्तक-विक्रेता लेखक तथा पाठक के बीच एक कड़ी है। नये लेखकों को पाठकों से परिचित कराने के कार्य में पुस्तक-विक्रेता की भूमिका पाठक और लेखक से किसी भी तरह कम नहीं है। तीनों ही अपने-अपने स्थान पर साहित्य-सेवी हैं।

इस तरह की दुकानों में व्यवस्था-कुशलता पर बहुत ही जोर दिया जाना चाहिये। कभी-कभी ऐसी स्थिति आती है कि इंसान अपनी कमजोरियों के कारण मौके-बे-मौके बरबस कुछ ऐसी बातें बोल जाता है जो कि अशोभनीय होती हैं। पुस्तकों का काम करनेवाले व्यक्ति को किसी भी हालत में अपनी वाणी को अमर्यादित नहीं होने देना चाहिये। हो सकता है कि ऐसे ग्राहक आयें जो आपको अकारण गालियाँ भी दें। ऐसे भी अवसर आ सकते हैं कि किसी प्रकाशक ने फटी पुस्तक भेज दी हो, ग्राहक ने उसे ले लिया हो और आकर आप पर बिगड़े। ऐसे भी अवसर आ सकते हैं कि कुछ ग्राहक उधार पुस्तकें माँगें और आप न दें और वे आप पर गुस्सा हो जायँ। ऐसे भी अवसर आ सकते हैं कि आप किसी ग्राहक को समझा-बुझा कर पुस्तकें बेचना चाहते हों और वह न लेता हो और आप ग्राहक पर गरम हो जायँ। इस व्यवसाय में ये बातें गवारा करनी पड़ सकतीं हैं और आपको हर हालत में विनयी होना ही पड़ेगा, क्योंकि सत्साहित्य का विक्रेता यदि विनयी नहीं हुआ तो सत्साहित्य' की मर्यादा कौन समझायेगा? आपकी मुखाकृति ऐसी होनी चाहिए कि ग्राहक बरबस प्रसन्न हो और पुस्तकें खरीद ले, न कि आपका व्यवहार ऐसा हो कि वह दुबारा दुकान पर आये ही नहीं।

नई पुस्तकों की सूचना

सत्साहित्य के विक्रेताओं को नई पुस्तकों की सूचना सर्वसाधारण को देने के लिए अपनी दुकानों के बाहर एक ऐसी तख्ती लगा रखनी चाहिये, जिसमें प्रति माह निकलनेवाली नई पुस्तकों का नाम अंकित हो। पाठकों को डाक द्वारा भी नई प्रकाशित पुस्तकों की सूचना भेजते रहना चाहिये। उन्हें ऐसे पाठकों की सूची भी बनाकर रखना चाहिये जो विषय-विशेष की पुस्तकों में रुचि रखते हों। बच्चों और महिला ग्राहकों के प्रति सजग रहते हुए बहुत ही भद्र व्यवहार करने की आवश्यकता है, क्योंकि यह वर्ग

व्यवहार-कुशलता के प्रति बहुत ही संवेदनशील है। व्यवहार में जरा-सी भी त्रुटि आई तो वे दुकान ही छोड़ देंगे। पुस्तक-सूचियों का भी प्रणयन बड़ी कुशलता से करना चाहिये। इससे ग्राहकों को पुस्तकों के चयन में सुविधा मिलेगी। सूची में विषयक्रम से पुस्तकों के नाम होने चाहिये, जिनसे पाठक लाभ उठा सकें और आपको भी जानकारी रहे कि अमुक विषय की पुस्तक अमुक प्रकाशक के यहाँ से प्रकाशित है।

ग्राहकों को आकर्षित करने के लिए ऐसी दुकानों पर उपहार, कैलेण्डर, डायरी आदि भी भेंट की जायँ तो उत्तम होगा। पुस्तकों की पैकिंग साफ-सुथरे ढंग से हो तो ग्राहक प्रसन्न रहेंगे और आपकी दुकान का स्वयं प्रचार करेंगे। ग्राहकों के पत्रों का उत्तर समुचित रूप से दिया जाना चाहिये। ऐसा देखा गया है कि ग्राहक पत्र लिखते थक जाते हैं, परन्तु पुस्तक-विक्रेता के पास यदि सम्बन्धित पुस्तकें न हों तो वे पत्र का उत्तर नहीं देते। यह पद्धति गलत है, विशेषकर सत्साहित्य विक्रेता के लिए। यदि आप किसी ग्राहक को समुचित उत्तर देते हैं तो हो सकता है कि आज नहीं तो कुछ दिन बाद उसकी ओर से आपको अन्य पुस्तकों का आदेश प्राप्त हो। सौ उत्तर के बाद आपको दस ही ग्राहक मिलें तो भी निराश होने की बात नहीं। जनता की रुचि आकृष्ट करने के लिए सत्साहित्य के विक्रेताओं को पुस्तक प्रदर्शनियों, प्रतियोगिताओं तथा आधुनिक प्रचार के तरीकों का आश्रय भी लेना चाहिये।

पुस्तकों की दुकान की भूमिका और कर्त्तव्य के सम्बन्ध में ऊपर तीन वर्गों की दुकानों का विश्लेषण किया गया है। धार्मिक पुस्तक प्रतिष्ठान और प्रचार-साहित्य संस्थान, धार्मिक पुस्तक प्रतिष्ठान और सत्साहित्य प्रतिष्ठान सर्वसाधारण से सम्बन्धित न होकर वर्ग विशेष के लिये होते हैं। उन्हें वर्ग-विशेष ग्राहकों के लिए विशेष परिश्रम नहीं करना पड़ता। प्रायः सम्बन्धित धर्मों या सिद्धान्तों के अनुयायी ही उनके ग्राहक होते हैं। परन्तु उपरोक्त दस सूत्रों वाला फार्मूला उन पर भी लागू हो तो अच्छा है।

❀

पुस्तकों की दुकानों का कार्य-व्यापार

आज की दुनिया में प्रतिक्षण ज्ञान की अभिवृद्धि हो रही है; साथ ही ज्ञान का संचार भी निरन्तर बढ़ रहा है और इस परिप्रेक्ष्य में पुस्तक-केन्द्रों का कार्य बहुत महत्त्वपूर्ण हो गया है। दक्षिणी एशिया के अपेक्षाकृत अविकसित देशों में भी साक्षरता तथा शिक्षा की प्रगति दिन दूनी रात चौगुनी हो रही है। पिछले कुछ वर्षों में तकनीकी प्रगति भी बहुत अधिक हुई है। फलस्वरूप नई पीढ़ी को शिक्षित करने और जीवन के हर क्षेत्र में ज्ञान की पिपासा को शान्त करने के लिए अधिकाधिक पुस्तकों की आवश्यकता रोज बढ़ती जा रही है। इसीलिए इस भूभाग के देशों के सर्वांगीण विकास में आज पुस्तक-केन्द्रों की बहुत ही महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

पुस्तक-प्रणेता तथा प्रकाशक को हम पुस्तकों का उत्पादक कह सकते हैं और पाठक को उपभोक्ता और इन दोनों के बीच एक महत्त्वपूर्ण कड़ी का काम करता है पुस्तक-विक्रेता। सामान्य पाठक को उन जटिल प्रक्रियाओं का बहुत कम या बिलकुल ही ज्ञान नहीं होता जो पुस्तक के उत्पादन में और उसे उपलब्ध बनाने में निहित हैं। पुस्तक का निर्माण एक बहुत ही श्रमसाध्य, पर साथ ही अत्यन्त रोचक कार्य है। लेखक को जो कुछ कहना होता है उसे पहले पाण्डुलिपि के रूप में प्रस्तुत किया करता है। यह पाण्डुलिपि प्रकाशक के हाथ में जाती है और इसके बाद पुस्तक का वास्तविक निर्माण प्रारम्भ होता है। पुस्तक का प्रकाशन वस्तुतः विभिन्न क्रियाओं का अनुक्रम है और छपकर बाजार में पहुँच जाने पर ही पुस्तक का प्रकाशन पूरा हो पाता है। न पुस्तक के लेखन, न उसके मुद्रण और न उसके वितरण को अपने-आप में पुस्तक का उत्पादन कहा जा सकता है। पुस्तक का उत्पादन और प्रकाशन तो इन सब क्रियाओं का एक व्यवस्थित संयोजित रूप है। यह बौद्धिक, तकनीकी और व्यापारिक क्रियाओं का मिला-जुला रूप है।

प्रकाशक का कार्य आसान नहीं है। कौन-सी पुस्तक प्रकाशित की जाय, किस रूप में कैसे प्रकाशित की जाय, कितनी प्रतियाँ छापी जाँय, मूल्य कितना रखा जाय और जनता में उनका विज्ञापन किस प्रकार से हो तथा किस प्रकार वे जनता तक पहुँचाई जाँय—इन सब समस्याओं का समाधान उसे करना होता है।

पुस्तक-विक्रेता का कार्य भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना प्रकाशक का। उसे तय करना होता है कि किस प्रकार की पुस्तकें बिक सकेंगी। उसकी दुकान में पुस्तकों का ढेर तो होना ही नहीं चाहिए। पुस्तकों का प्रदर्शन भी अपनी दुकान में सर्वोत्तम ढंग से करना होता है। पुस्तक की दुकान चलाने के लिए काफी कुछ योग्यता भी चाहिए, क्योंकि पुस्तकें अपने-आप में काफी जटिल और विभिन्न कोटि की होती हैं और बहुत-सी पुस्तकें भिन्न शाखा की होती हैं। दुकान के आकार के अनुसार उसे सैकड़ों या हजारों

पुस्तकें सजानी-सँभालनी और बेचनी होती हैं। अच्छे पुस्तक-विक्रेता का शिक्षित होना जरूरी है। स्वस्थ विवेक या सूझ-बूझ की परख की सामर्थ्य उसमें होनी ही चाहिए। अपने बाजार के अनुकूल उचित संख्या में उपयुक्त पुस्तकें उसे संग्रह करनी चाहिए और उनका प्रभावपूर्ण प्रदर्शन और विज्ञापन करना चाहिए।

सामान्यतः पुस्तकों की दुकानें नीचे लिखे ढंग से वर्गीकृत की जा सकती हैं:

सामान्य पुस्तक-केन्द्र

जिसमें कथा-साहित्य तथा इसके अतिरिक्त अधिक लोकप्रिय साहित्य, समाजशास्त्र, वर्तमान राजनीति से सम्बन्धित पुस्तकें, सामयिक पुस्तकें, स्वयंशिक्षक, स्वनिर्देशक और आत्मसुधार-सम्बन्धी पुस्तकें, कला-सम्बन्धी और बच्चों की पुस्तकें आदि का संग्रह और विक्रय किया जाता है।

शैक्षिक पुस्तक-केन्द्र

इनमें मुख्य रूप से स्कूलों और कॉलेजों के पाठ्यक्रमों में निर्धारित एवं सहायक पुस्तकें तथा सन्दर्भ-ग्रन्थ रहते हैं। इन पुस्तक-केन्द्रों का अधिकांश व्यापार विद्यार्थियों, शिक्षा-संस्थाओं तथा पुस्तकालयों के साथ होता है। विद्यार्थियों के लाभ के लिए इनमें पुरानी पढ़ी हुई किताबें भी रखी जाती हैं।

तकनीकी पुस्तक-केन्द्र

वैज्ञानिक विषयों की और तकनीकी पुस्तकों का संग्रह और विक्रय इनकी विशेषता होती है। इनके ग्राहक स्वभावतः औद्योगिक क्षेत्र के तकनीकी काम करनेवाले लोग और विद्यार्थी होते हैं। पुस्तकालय इनके ग्राहक होते ही हैं। तकनीकी और वैज्ञानिक पुस्तकों की कीमत प्रायः बहुत ऊँची होती है और अन्य प्रकार की पुस्तकों की अपेक्षा इन पुस्तकों की माँग का अन्दाज सही ढंग से लगाया जा सकता है।

आयुर्विभागीय पुस्तक-केन्द्र

ऐसे पुस्तक-केन्द्र मुख्य रूप से चिकित्साशास्त्र के विद्यार्थियों, मेडिकल कॉलेज के पुस्तकालयों, स्वास्थ्य-विज्ञान के शोध-संस्थानों तथा चिकित्सक समाज की आवश्यकताओं को पूरा करते हैं। चिकित्साशास्त्र सम्बन्धी पुस्तकों के अलावा इस विषय की पत्र-पत्रिकाओं का भी संग्रह और विक्रय करते हैं।

कानूनी पुस्तक-केन्द्र

ये पुस्तक-केन्द्र कानून के विद्यार्थियों और वकीलों की आवश्यकताओं को पूरा करते हैं।

बाल-पुस्तक-केन्द्र

बाल-पोथियों का बाजार बढ़ता जा रहा है और सुन्दर आकार-प्रकारवाली, चित्रों से भली-भाँति सुसज्जित, आकर्षक ढंग से विभिन्न रंगों में छपी हुई अच्छी-अच्छी बाल-पोथियाँ अधिकाधिक संख्या में बाजार में आ रही हैं।

रेलवे पुस्तक-केन्द्र

महत्त्वपूर्ण रेलवे स्टेशनों के प्लेटफॉर्मों पर पुस्तकों की दुकानें मिलती हैं। ये दुकानें लाइसेंस पाये हुए लोगों द्वारा चलाई जाती हैं जो यह व्यापार देश के रेल यातायात के बहुत बड़े भाग पर शृंखलाबद्ध केन्द्रों के रूप में चलाते हैं। ये पुस्तक-केन्द्र अधिकांश रूप में अधिक लोकप्रिय, सस्ती अजिल्द पुस्तकों का संग्रह और विक्रय करते हैं। सामान्यतः अँग्रेजी, हिन्दी और क्षेत्रीय भाषाओं की पुस्तकों की अलग-अलग दुकानें होती हैं। इन रेलवे पुस्तक-केन्द्रों में समाचार-पत्र और पत्र-पत्रिकाएँ तो अनिवार्यतः रहती हैं और इनके व्यापार का काफी अंश इन्हीं से चलता है।

डाक प्रेषी पुस्तक-केन्द्र

इस प्रकार के पुस्तक-केन्द्र अपना सारा व्यापार डाक के द्वारा चलाते हैं। इस प्रकार के कुछ पुस्तक-केन्द्रों का अपना कोई नियमित स्थान भी नहीं होता। कभी-कभी तो इनके पास लागत की अधिक पूँजी भी नहीं होती। अपने ग्राहकों द्वारा माँगी गई पुस्तकें ये सामान्यतः प्रकाशकों से अथवा थोक पुस्तक-विक्रेताओं से खरीदते हैं या उधार लेते हैं और अपने ग्राहकों को डाक या बैंक द्वारा मूल्य देय-व्यवस्था से भेजते हैं।

यद्यपि पुस्तक-केन्द्रों का वर्गीकरण उपर्युक्त ढंग से किया जा सकता है, फिर भी दक्षिणी एशिया में विशिष्ट कोटि के पुस्तक-केन्द्र बहुत कम हैं; मुख्य रूप से दो प्रकार के ही पुस्तक-केन्द्र इस क्षेत्र में सामान्यतः पाये जाते हैं—सामान्य पुस्तक-केन्द्र और शैक्षिक पुस्तक-केन्द्र। शैक्षिक पुस्तक-केन्द्रों में कुछ अधिक बिकनेवाली वैज्ञानिक, तकनीकी, आयुर्विज्ञान सम्बन्धी और कानूनी पुस्तकें भी मिल जाती हैं।

किसी विशेष विषय अथवा कुछ सम्बन्धित विषयों की पुस्तकों के क्रय-विक्रय का कार्य वही पुस्तक-केन्द्र करते हैं जिनके पास लागत की काफी पूँजी होती है और इस व्यापार का जिन्हें पूर्वानुभव भी होता है। उनकी सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि सम्बन्धित विषयों की पुस्तकों की बिक्री का व्यापक प्रयत्न करें, उसके विज्ञापन-साधनों में विशिष्ट रूप से विज्ञापन दें और अपने ग्राहकों के लिये एक चुनी हुई सूची सावधानीपूर्वक तैयार करें और उसे प्रसारित करें।

दूसरी महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि मुख्य रूप से केवल राष्ट्रीय और क्षेत्रीय भाषाओं की पुस्तकों का व्यापार करनेवाली दुकानें बहुत बड़ी तादाद में बढ़ रही हैं।

मानव-जाति के सम्पूर्ण अतीत और वर्तमान का ज्ञान युगों से चले आते मानव-जीवन और उसके क्रियाकलाप के प्रत्येक पक्ष का स्थाई अभिलेख पुस्तकों में न्यूनाधिक रूप में प्राप्त होता है। इसलिए पुस्तक-केन्द्र या पुस्तकों की दुकान को 'ज्ञान का मन्दिर' और 'संस्कृति का केन्द्र' कहा जा सकता है।

पुस्तकों की शक्ति और उनका प्रभाव मौन, किन्तु अविकल और निरन्तर सक्रिय रहता है। लिखित शब्दों की शक्ति ही लोगों के ज्ञानार्जन और चिन्तन-मनन में सहायक है। पुस्तक-केन्द्र एक प्रकार से इस शक्ति का संग्रह-केन्द्र होता है और इस रूप में समाज के प्रति उसका बहुत बड़ा उत्तरदायित्व होता है। इस उत्तरदायित्व को वह तभी पूरा कर

सकता है जब बड़ी सावधानी और विवेकपूर्ण ढंग से वह पुस्तकों का वितरण और उनकी देखभाल करे।

किसी भी देश में प्रजातन्त्र की सफलता का आधार यह होता है कि उपयुक्त ज्ञान का यथासम्भव अधिकतम प्रसार हो। इस प्रकार ज्ञान का प्रसार करनेवाले सर्वोत्तम साधनों में से पुस्तक-केन्द्र एक है। इस कार्य के सम्पादन में पुस्तक-केन्द्रों का स्थान शिक्षण-संस्थाओं और पुस्तकालयों के समकक्ष है।

पुस्तक-विक्रय में एक ऐसा आकर्षण है जो और किसी प्रकार के व्यापार में नहीं मिलता। पुस्तकों के सँभालने और उन्हें बेचने में एक प्रकार का बौद्धिक आनन्द मिलता है। दूसरे यह सन्तोष भी मिलता है कि अतीत के चिन्तकों और लेखकों की प्रेरणा, आधुनिक ज्ञान तथा अधुनातन रचनात्मक साहित्य पाठकों की तुष्टि एवं उनके कल्याण के लिए उन्हें दिया जा रहा है।

पुस्तक-व्यापाार का दायित्व दोहरा है। पहला तो यह है कि उत्तम और उपयोगी पुस्तकों का प्रकाशन किया जाए। दूसरा यह कि उन पुस्तकों का ऐसा व्यापक वितरण किया जाए कि सभी सम्भव पाठकों तक उनका पहुँचना निश्चित हो जाय। यह दूसरा दायित्व विशेष रूप से पुस्तक-विक्रेता का है।

शिक्षित वर्ग तथा नव-शिक्षितों के हाथ पुस्तकें बेचते समय पुस्तक-विक्रेता को उन नये विषयों से भी अपने-आपको परिचित रखना चाहिए जिनमें समय-समय पर पाठकों की रुचि होती रहती है; उदाहरण के लिए जनसंख्या-नियन्त्रण, अन्तरिक्ष-यात्रा, सामुदायिक विकास आदि। जब तक पुस्तक-विक्रेता उन परिवर्तनों को नहीं जानता और उनका अनुशीलन नहीं करता, जो उनके अपने देश में तथा विदेशों में तेजी के साथ हो रहा है, तब तक वह इस बात का अनुमान ही नहीं कर सकता कि उसका पाठकवर्ग क्या चाहता है।

कुछ क्षेत्रों में पुस्तक-विक्रेता को पुस्तक-प्रकाशक और पाठक के बीच एक अनावश्यक दलाल समझा जाता है। किन्तु इस बात को नहीं भूलना चाहिए कि सामाजिक जीवन में पुस्तक-विक्रेता को एक 'सेवाघटक' के रूप में अपनी निश्चित भूमिका अदा करनी होती है और जब तक समूचे देश में काफी बड़ी संख्या में पुस्तक-केन्द्र नहीं हो जाते तब तक पुस्तकों के स्वच्छन्द प्रसार में उनकी उदासीनता से बाधा ही पड़ेगी। जब तक असंख्य पुस्तक-केन्द्र न होंगे तब तक पुस्तकों में जनता की रुचि भी सजीव नहीं होगी। यदि सरकार और समाज द्वारा पर्याप्त सुविधा और कार्यक्षेत्र दिया जाए तो पुस्तक-विक्रेता राष्ट्रीय जीवन के शैक्षिक और सांस्कृतिक पक्षों को सुधारने और सँवारने में एक बहुत बड़ी भूमिका अदा कर सकते हैं। पुस्तक के रूप में ज्ञान उपलब्ध कराने वाला पुस्तक-विक्रेता समाज के मस्तिष्क को विकसित करनेवाला एक महत्त्वपूर्ण समाजसेवी होता है। अधिकाधिक ज्ञान और पारस्परिक सौमनस्य की उपलब्धि के साधन जुटाकर वह सामाजिक सदस्यों को उत्तम और अधिक उपादेय नागरिक बनाने में सहायक हो सकता है।

पुस्तकों की दुकान और समाज

अन्य व्यवसायों की भाँति पुस्तक-व्यवसाय को भी चलाने और जनता की सेवा करने के लिए यथोचित लाभ की अपेक्षा होती है। किन्तु यह एक ऐसा व्यवसाय है, जिसमें धन अर्जन को ही सदैव एकमात्र उद्देश्य मानकर नहीं चला जाना चाहिए। पूरे समाज की शिक्षा और ज्ञानवर्द्धन में योग देना इसका व्यापक उद्देश्य है। इस उद्देश्य की वजह से पुस्तक-विक्रेता पर महान दायित्व का भार आ जाता है, लेकिन साथ ही उसे समाज की सेवा का भी अवसर प्राप्त होता है।

आजकल पुस्तकों को जन-संप्रेषण तथा मनोविनोद के अन्य साधनों जैसे सिनेमा, रेडियो और टेलीविजन से होड़ लेनी पड़ती है। किन्तु पाठक को यह सुविधा रहती है कि बिना किसी कार्यक्रम या निश्चित समय का इन्तजार किए वह अपनी सुविधानुसार पुस्तकें पढ़ सकता है। सामूहिक रूप से सुनने और सोचने वाले इस युग में पुस्तकें ही सर्वोत्तम माध्यम हैं, जिनके द्वारा व्यक्तिगत विचार और राय को दूसरों तक पहुँचाया जा सकता है। पुस्तकों के अभाव में न तो ज्ञानार्जन सम्भव है और न ज्ञान-प्रसार। पुस्तकें न केवल विद्या और संस्कृति के प्रसार के लिए अनिवार्य हैं बल्कि आम जनता में राजनीतिक चेतना तथा नागरिक गुणों का विकास करने के लिए भी ये आवश्यक होती हैं।

सामाजिक जीवन में किसी भी व्यवसाय की इतनी गहरी पहुँच नहीं है जितनी पुस्तक की दुकान की। बालक, विद्यार्थी, अध्यापक, व्यवसायी, डॉक्टर, वकील, इंजीनियर, सरकारी कर्मचारी और राजनीतिज्ञ सभी अपने-अपने कार्यक्षेत्र से सम्बद्ध ज्ञान, सूचना और नये-नये विचारों के लिए पुस्तक की दुकान में आते हैं। प्रायः अपने ग्राहकों के लिए पुस्तक-विक्रेता एक परामर्शदाता की हैसियत से भी काम करते हैं।

समाज के प्रति पुस्तक-व्यवसाय की उतनी ही जिम्मेदारी होती है जितनी शिक्षा-शास्त्रियों और पुस्तकालय के अध्यक्षों की होती है। पुस्तकों का समाज पर स्वस्थ और अस्वस्थ दोनों प्रकार का प्रभाव पड़ सकता है। यह प्रभाव इस बात पर निर्भर करेगा कि किस प्रकार की पुस्तकें लोगों को पढ़ने के लिए उपलब्ध कराई जाती हैं। पुस्तक-विक्रेता को इस बात की ओर ध्यान देना चाहिए कि वह जिन पुस्तकों की बिक्री करता है, उनसे पाठकों के मस्तिष्क का विकास तथा परिष्कार हो। पुस्तक-विक्रेता को इस दिशा में बालकों और युवकों की पुस्तकों की ओर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए। उसे यह बात वराबर दिमाग में रखनी चाहिए कि यह उसका सामाजिक दायित्व भी है।

प्रतिष्ठित पुस्तक-विक्रेता को आपत्तिजनक साहित्य और विशेषकर अश्लील और उत्तेजनात्मक पुस्तकें अपने स्टॉक में नहीं रखनी चाहिए। बेशक, पुस्तक-विक्रेता को नैतिकता का ठेका खुद अपने सिर नहीं लेना चाहिए। साहित्य में अश्लील क्या है, यह एक विवादास्पद विषय है और पुस्तक-विक्रेता को इस सम्बन्ध में अपने विवेक से निर्णय का सहारा लेना चाहिए। हाँ, जिन पुस्तकों को निषिद्ध कर दिया गया है, उनके सम्बन्ध में पुस्तक-विक्रेता के अपने निर्णय के लिए कोई गुंजायश नहीं होती है। वैसे

सामान्य रूप से प्रतिष्ठित पुस्तक-विक्रेता को सस्ती सेक्सप्रधान और अश्लील विवरण वाली ऐसी पुस्तकें नहीं रखनी चाहिए जिनसे नवयुवक और अपरिपक्व बुद्धिवाले पाठकों की रुचि कुत्सित और दूषित हो।

समाज में पुस्तकों के प्रति चेतना विकसित करने का प्रयास एक निरन्तर प्रक्रिया है तथा प्रमुख व्यक्तियों और जन-नेताओं के सहयोग व सद्भावना के सहारे पुस्तक-विक्रेता को इस कार्य में नेतृत्व करना चाहिए। पुस्तक-विक्रेताओं को शिक्षक-संघों, पुस्तकालयों और लेखकों के संगठनों से नियमित सम्पर्क बनाए रखना चाहिए। इस प्रकार अपने प्रभाव का विस्तार करना चाहिए।

पुस्तकों की प्रदर्शनियों और मेलों का आयोजन करने के अतिरिक्त पुस्तक-विक्रेताओं को पुस्तकों में दिलचस्पी पैदा करने तथा नई पुस्तकों के बारे में पुस्तक-प्रेमियों को अपने दृष्टिकोण एवं सम्मतियों का आदान-प्रदान करने के उद्देश्य से सामूहिक परिचर्चाओं का भी आयोजन करना चाहिए।

पुस्तक-विक्रेता आपस में मिलकर प्रकाशकों के सहयोग से लगभग बीस हज़ार या इससे अधिक की जनसंख्यावाले शहरों के पाठकों के लिए बुक-क्लब भी चला सक़ते हैं। इस कार्य के लिए विभिन्न राज्यों के शिक्षा और सांस्कृतिक मंत्रालय, लोकोपकारी ट्रस्ट और फाउण्डेशन्स से भी सहायता ली जा सकती है। इन क्लबों में देश में प्रकाशित अच्छी-अच्छी पुस्तकों की प्रतियाँ भी महत्त्वपूर्ण तथा उपयोगी विदेशी पुस्तकें भी रखी जा सकती हैं, जिससे धीरे-धीरे लोगों में पुस्तकों के प्रति विशेष अभिरुचि उत्पन्न हो सके। इस प्रक़ार के 'बुक-क्लब' बिक्री को कम करने के बजाय उसे बढ़ायें, क्योंकि लोगों में पुस्तक पढ़ने में दिलचस्पी बढ़ जाने से अधिक पुस्तकें खरीदी जायेंगी।

एक अन्य प्रकार का 'बुक-क्लब' काफी सफलता से चलाया जा सकता है और उसके लिए प्रकाशकों के अतिरिक्त स्टॉक से विविध प्रकार की पुस्तकें सस्ती कीमतों पर प्राप्त की जा सकती हैं। सम्भव हो तो ऐसी पुस्तकों के साथ नये जैकेट भी प्राप्त कर लेने चाहिए, क्योंकि इससे जहाँ लोगों में सस्ती कीमतों पर पुस्तकें प्राप्त करने की माँग बढ़ेगी वहीं ऐसे लोग पुस्तकें खरीदने की स्थिति में हो जाते हैं जो चाहते हुए भी अधिक कीमत की पुस्तकें नहीं खरीद पाते।

यदि पुस्तक-विक्रेता जिल्दबन्दी की आवश्यक सुविधाएँ जुटाकर स्थानीय जिल्दसाज के माध्यम से पुरानी पुस्तकों की मरम्मत कर ग्राहकों को उपलब्ध करा सके, तो किफायती दरों पर इस अतिरिक्त सेवा की व्यवस्था करने में पुस्तक-प्रेमियों की सद्भावना प्राप्त होगी और वे स्थायी ग्राहक बन जायेंगे।

कुछ साहसी और उत्साही पुस्तक-विक्रेता अपनी दुकान के साथ-साथ किराए पर पुस्तकें उपलब्ध कराने की भी व्यवस्था कर सकते हैं। इस प्रकार के छोटे-छोटे पुस्तकालयों में मुख्य रूप से अच्छी कथा-कृतियाँ, समसामयिक विषयों, यात्रा-विवरण, आत्मकथा और सामान्य विज्ञान से सम्बद्ध पुस्तकें किराए पर दी जा सकती हैं। यदि इस प्रकार के पुस्तकालयों को अच्छी तरह चलाया जाए तो विशेषकर छोटे-छोटे शहरों में

लोगों में पुस्तकों को पढ़ने की रुचि बढ़ेगी और भविष्य में अधिक लोग पुस्तकें खरीदने लगेंगे।

विशेषकर देहाती क्षेत्रों में जहाँ किताबों की दुकानें नहीं हैं, 'बुक इन्स्टालमेंट योजना' और 'होम लाइब्रेरी योजना' से पाठकों का बिलकुल नया वर्ग तैयार किया जा सकता है। एक बार पुस्तकें पढ़ने की आदत पड़ने के बाद कम आय वाले भी सस्ती और आकर्षक शर्तों के साथ प्राप्त होनेवाली पुस्तकों को खरीदना चाहेंगे। इस प्रकार पुस्तकों की खपत के लिए नया क्षेत्र भी मिलेगा और अधिक संख्या में पाठकों की सेवा भी होगी।

पुस्तकों की बिक्री के लिए विस्तृत बाजार की समस्या का यह एक मुख्य हल हो सकता है कि लोगों तक पुस्तक ले जाई जाएँ। पुस्तक-विक्रेता या तो व्यक्तिगत प्रयास से तथा दूसरे पुस्तक-विक्रेताओं के सहयोग से मोटरवैन अथवा स्कूटरवैन के द्वारा दूरवर्ती देहाती इलाकों में उपयोगी और लोकप्रिय पुस्तकें भेज सकते हैं।

बहुत-सी दुकानों में पुस्तकें रखने के लिए समुचित स्थान नहीं होता है। आमतौर से दुकान की दिक्कत और विशेषकर पुस्तकों को रखने के लिए उपयुक्त स्थान न होने की वजह से लोग पुस्तक खरीदने की ओर प्रोत्साहित नहीं होते। इसलिए दुकान बनवाने वाले ठेकेदारों और सिटी इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट से यह अनुरोध किया जा सकता है कि सभी नयी दुकानों में पुस्तक रखने के लिए सुविधापूर्ण बुक-शेल्फ भी बनवाने की व्यवस्था करें, जैसे कि वे दूसरे कार्यों के लिए उपयुक्त आलमारियाँ आदि की व्यवस्था करते हैं। नई कॉलोनी के नक्शों और नियोजनों में सरकारी और गैर-सरकारी एजेन्सियों को पुस्तकों की दुकान के लिये उपयुक्त स्थल निर्धारित करना चाहिए।

आमजनता और विशेषकर अध्यापकों, शिक्षाशास्त्रियों और पुस्तकालयाध्यक्षों को यह महसूस करना चाहिए कि शिक्षा पर होनेवाले व्यय के अनुपात में पुस्तकों की लागत पर बहुत थोड़ी रकम खर्च होती है। अच्छी प्रकार की पुस्तकों के उपयोग को बढ़ावा देने की जिम्मेदारी महज पुस्तक-विक्रेताओं की ही नहीं है, बल्कि यह दायित्व सारी जनता का भी है, क्योंकि यह राष्ट्रीय महत्त्व का विषय है। अच्छी पुस्तकों को प्राप्त करने के लिए जनसमुदाय को सुसंगठित पुस्तक-व्यवसायियों की सेवा मिलनी ही चाहिए। इसलिए आमजनता को पुस्तक-व्यवसाय के विकास में सहायक होना चाहिए और इस प्रकार प्रोत्साहन देना चाहिए जिससे कि इस व्यवसाय द्वारा समाज की और अच्छी तरह सेवा हो सके। पुस्तक-व्यवसाय के साथ यह कठिनाई है कि प्रत्येक सम्बद्ध पार्टी अपने ही हितों को अपने ही दृष्टिकोण से देखने का प्रयास करती है। लेखक अपनी कृति के बदले में अच्छा प्रतिदान चाहता है, प्रकाशक और अधिक बिक्री चाहता है, पुस्तक-विक्रेता प्रकाशक से और अधिक कमीशन चाहता है और ग्राहक सस्ती कीमत पर पुस्तक चाहते हैं। किन्तु उत्कृष्ट पुस्तकें तभी अधिकाधिक प्रकाशित हो सकती हैं जबकि उनकी बिक्री से लेखक को समुचित पारिश्रमिक मिले, प्रकाशक को उचित मुनाफा प्राप्त हो और पुस्तक-विक्रेता को अच्छा लाभांश प्राप्त हो। इसलिए स्कूलों, कॉलेजों, पुस्तकालयों और सरकारी

विभागों को सामान्य कमीशन से अधिक की अपेक्षा नहीं करनी चाहिए। जब वे अधिक कमीशन के लिए आग्रह करते हैं तो इसका नतीजा होता है कि चलते किस्म की पुस्तकें ग्राहकों पर लाद दी जाती हैं और पुस्तकों की कीमत जान-बूझकर बढ़ा दी जाती है। आमजनता को कमीशन बिल्कुल ही नहीं माँगना चाहिए। यदि ग्राहक कमीशन के लिए आग्रह करते हों तो उसकी वजह से पुस्तक-विक्रेताओं में एक-दूसरे से ज्यादा कमीशन देने के प्रयास की प्रवृत्ति के कारण अस्वस्थ प्रतिस्पर्द्धा को जन्म मिलता है और ग्राहकों द्वारा कमीशन प्राप्त करने की सनक को सन्तुष्ट करने के लिए नई पुस्तकों की कीमत बढ़ाकर रखी जाती है।

वैसे तो पुस्तक की दुकान में जनता की सेवा करने के पहलू का अपना महत्व है। किन्तु पुस्तक-विक्रेता को यह नहीं भूलना चाहिए कि यह भी अन्य व्यवसायों जैसा एक व्यवसाय है और समाज के एक आवश्यकता की पूर्ति करते हुए उसे भी अन्य रोजगारों की तरह ही इस व्यवसाय से अपना जीविकोपार्जन करना है। इसलिए पुस्तक-व्यवसाय के सामाजिक सेवावाले पहलू को इसके व्यावहारिक समस्याओं से समझौता करना आवश्यक हो जाता है। वस्तुतः ऐसी स्थिति में पुस्तक-विक्रेता को जनता की सद्भावना और सहानुभूति की आवश्यकता होती है। जनता को ऐसा माहौल पैदा करना चाहिए कि पुस्तक-विक्रेता उचित तरीके से जीविकोपार्जन करते हुए समाज के सांस्कृतिक उत्थान में अपना समुचित योगदान दे सके।

पुस्तकों की दुकानों का प्रबन्ध

पुस्तकों की दुकानों का प्रबन्ध वास्तव में बहुत ही रोचक कार्य है, किन्तु इसकी सुचारु व्यवस्था कर सकना बहुत सरल नहीं है। कार्यक्षमता और सफलता के लिए अनेक गुणों की आवश्यकता है, जैसे दृढ़ निश्चय, मृदु स्वभाव, व्यावसायिक कुशलता, पुस्तकों की वास्तविक जानकारी तथा उनके प्रति रुझान। बेशक, पुस्तक-विक्रेता के पास अपनी दुकान चलाने के लिए पर्याप्त पूँजी होनी आवश्यक है। पुस्तक-विक्रेता को पुस्तकों की खरीद और स्टॉक पर नियन्त्रण रखने की ओर भी बराबर ध्यान देते रहने की जरूरत है। उसे यह जानकारी भी रखनी होगी कि प्रकाशन-क्षेत्र की नयी-नयी प्रवृत्तियाँ क्या हैं, शैक्षणिक संस्थाओं तथा पुस्तकालयों की प्रणाली में कौन-कौन से परिवर्तन हो रहे हैं और बाजार में पुस्तकें बेचने की कौन-सी नयी पद्धतियाँ चल रही हैं। यही नहीं, उसे पाठकों की वैविध्यपूर्ण और बदलती हुई अभिरुचियों पर भी सतर्क नजर रखनी होगी।

सर्वप्रथम पुस्तक-विक्रेता को पुस्तकों की पूरी जानकारी होनी चाहिए। उसे पुस्तकों के प्रति व्यापक और उदार अभिरुचि विकसित करनी होगी, जिससे कि वह पुस्तकों की नब्ज टटोल सकने की दक्षता प्राप्त कर सके। वस्तुतः इस व्यवसाय में सफलता का मूल-मंत्र यही है। पुस्तक-व्यवसाय में व्यावसायिक कुशलता का अर्थ यह नहीं है कि सस्ती-से-सस्ती किताबें खरीदकर बाजार में महँगे-से-मँहगे मूल्य पर बेची जाएँ। सच बात तो यह है कि सामान्यतः इस तरह से ऐसे व्यवसाय को चला सकना सम्भव भी नहीं है। इसमें तो व्यवस्थित मानसिक क्षमता, नियमित सही तरीके से हिसाब-किताब रखने के साथ-साथ रूढ़िगत व ख्यातिपूर्ण व्यावसायिक रीतियों का भी पालन करने की जरूरत होती है। पाठकों के स्वभाव और रुचियों का मूल्यांकन करने के लिए पुस्तक-विक्रेता को यह जानना चाहिए कि जन-साधारण के कार्य-कलाप और सोचने की दिशाएँ क्या हैं? वरना उसके लिए पाठकों द्वारा अपेक्षित पुस्तकें जुटा सकना सम्भव नहीं होगा और जब उसे बाजार में सुलभ पुस्तकों का विस्तृत ज्ञान न होगा तब तक वह पाठक को उसकी माँग के अनुसार विशेष पुस्तकों को उपलब्ध नहीं करा सकेगा। दुनिया के हर पहलू पर अनगिनत पुस्तकें बाजार में भरी पड़ी हैं, किन्तु पुस्तक-विक्रेता को अपने पाठकों की मनोवृत्तियों का अध्ययन करके उनकी आवश्यकता के अनुसार पुस्तकों की पूर्ति करनी होती है।

पुस्तक-विक्रेता को मिलनसार होना चाहिए। उसे ऐसा स्वभाव विकसित करना होगा, जिससे वह सभी वर्ग के लोगों के साथ पूरी तरह से घुल-मिल सके। इस प्रकार के व्यक्तित्व का विकास कर सकना सहज नहीं है और इस गुण का विकास विभिन्न क्षेत्रों में अनुभव प्राप्त करने के बाद ही सम्भव है। किन्तु इसके लिए आधारभूत आवश्यकता इस बात की है कि ग्राहकों में वास्तविक दिलचस्पी ली जाए और साथ ही कुछ हद तक

मनोवैज्ञानिक सूझ-बूझ का होना भी जरूरी है। पुस्तक-विक्रेता चाहे जितना व्यस्त क्यों न हो, उसे सिर्फ किताबों और दुकान में ही रम जाना मुनासिब नहीं है। उसे अपना दृष्टिकोण व्यापक बनाने के लिए अन्य बौद्धिक और सामाजिक गतिविधियों में भी रुचि लेनी होगी।

दुकान के कर्मचारी

दक्षिण एशिया के देशों की अधिकांश पुस्तकों की दुकानें प्रोप्राइटरों द्वारा चलाई जाती हैं और इनमें से अधिक संख्या ऐसी छोटी-छोटी दुकानों की है, जहाँ का सारा काम-धन्धा खुद प्रोप्राइटर ही एक सहायक या पैकर की सहायता से करता है। औसत दर्जे की दुकानों में लगभग आधे दर्जन कर्मचारी भिन्न-भिन्न काम करते हैं, बड़ी पुस्तकों की दुकान में मैनेजर के अलावा क्रय, स्टॉक, बिक्री, माल बाहर भेजने और हिसाब-किताब रखने के लिए कर्मचारी होते हैं।

चाहे दुकान में कर्मचारियों की संख्या कम हो या अधिक, लेकिन उनके बीच जो भी कार्य-विभाजन हो, उसका सभी कर्मचारियों के काम में ताल-मेल और समन्वय रहना आवश्यक है। प्रोप्राइटर या मैनेजर जो भी दुकान की देख-रेख करता हो, उसे अपने सहायकों को बराबर इस बात के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए कि वे व्यवसाय के विभिन्न पहलुओं के काम को सीखें। जितनी अधिक उनकी जानकारी होगी, उसी के अनुसार आवश्यकता पड़ने पर उनसे दूसरे कर्मचारी के स्थान पर भी कार्य लिया जा सकता है। अन्य व्यवसायों की अपेक्षा पुस्तक-व्यवसाय में दुकान का मालिक, मैनेजर और उसके सहायक वास्तविक अर्थों में सहयोगी और सहकर्मी हैं। मैनेजर को अपने सहायकों से परामर्श लेते रहना चाहिए। सहायकों को भी इस बात की छूट होनी चाहिए कि वे चालू व्यवस्था में सुधार के लिए सुझाव दे सकें। सच बात तो यह है कि सुझाव न देनेवाले सहायक बहुत उपयोगी नहीं होते। दुकान में सहायकों के काम की मैत्रीपूर्ण सराहना से मिल-जुलकर काम करने की स्वस्थ भावना विकसित होती है। ऐसी भावना के विकास पर ही व्यवसाय की कामयाबी और खुशहाली निर्भर करती है।

पुस्तक की दुकान का भविष्य बहुत-कुछ इस बात पर भी निर्भर करता है कि सहायकों का चुनाव उचित हुआ है या नहीं। इसलिए बेहतर होगा कि कर्मचारियों को कुछ महीनों के लिए परीक्षण के तौर पर नियुक्त किया जाए और इस बात पर गौर किया जाए कि क्या उनमें निम्न गुणों का विकास सम्भव है—

१. पुस्तकों की सूची या कार्ड-इन्डेक्स तैयार करने के लिए वर्णमाला के अक्षरों का प्रयोग और उन्हें क्रम से सजाने की क्षमता।

२. शुद्ध रूप से पढ़ने, लिखने, उच्चारण करने और सन्दर्भों को देख सकने की क्षमता।

३. हिसाब के औसत ज्ञान के अलावा दशमलव और प्रतिशत के सम्बन्ध में जानकारी।

४. विभिन्न विषयों और एक ही विषय पर विभिन्न प्रसंगों की पुस्तकों में भेद कर सकने योग्य शब्दों और अभिव्यक्तियों का पर्याप्त ज्ञान।

पुस्तकों की दुकानों के लिए सहायक का चुनाव उसकी अपने को विविध परिस्थितियों के अनुकूल ढाल लेने की क्षमता के आधार पर भी होना चाहिए, क्योंकि अन्य खुदरा व्यवसायों की तुलना में पुस्तकों की दुकानों का कार्यक्षेत्र अधिक विस्तृत होता है। सहायक की व्यवस्था और नियमितता के प्रति रुझान को उचित महत्व देना चाहिए। पुस्तकों के नाम, लेखक, प्रकाशक को याद रखने, किताब खोजने तथा सन्दर्भ निकालने के लिए अच्छी स्मृति-शक्ति बहुत ही अधिक सहायक सिद्ध होती है। दुकान के दैनिक कार्य के दौरान व्यवस्थित आदतों का विकास करने से स्मरण-शक्ति तीव्र होती है और धन्धे को सुव्यवस्थित रूप से करने की रुझान विकसित होती है। पुस्तकालय-सम्बन्धी प्रशिक्षण और अनुभव भी अन्य योग्यताएँ हैं। विविध प्रकार की पुस्तकों का ज्ञान और व्यापक रुचिवाले पाठकों का सम्पर्क इस व्यवसाय के लिए बड़ा ही उपयोगी है।

एक आदर्श सहायक को साहित्य का सामान्य ज्ञान होता है, उसे एक वर्ष का व्यावसायिक प्रशिक्षण लेना चाहिए और किसी अच्छी पुस्तक की दुकान में कुछ समय के लिए काम सीखना चाहिए। ऐसे पूर्व-प्रशिक्षण के अभाव में मैनेजर को चाहिए कि वह सहायक से दुकान के विभिन विभागो में बारी-बारी से थोड़े समय के लिए काम कराये। जहाँ तक सम्भव हो दुकान के कर्मचारियों को (विशेषकर बिक्री से सम्बद्ध कर्मचारियों को) व्यावसायिक संगठनों और पुस्तक-विक्रेता संघ द्वारा आयोजित रिफ्रेशर-कोर्स में प्रशिक्षण के लिए भेजना चाहिए।

चाहे एक व्यक्ति द्वारा चलाई जा रही छोटी-सी दुकान हो या बहुत बड़ी दुकान, वित्तीय योजना और बजट की देख-रेख बहुत ही आवश्यक है। ऊपरी खर्चों और करों के लिए उपयुक्त प्रावधान होना चाहिए। प्राय: कर का मद भुला दिया जाता है, जिसके फलस्वरूप पुस्तक-विक्रेता को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। पुस्तक-विक्रेता को यह बात हमेशा याद रखनी चाहिए कि उसकी आय से व्यय निकल जाने के वाद बची धनराशि ही उसे मुनाफे के रूप में मिलेगी। इसलिए उसे बिक्री की रकम के अनुपात में कम-से-कम खर्च करना चाहिए। वास्तव में दूसरे व्यावसायियों की तुलना में ऊपरी खर्चों के मामले में पुस्तक-विक्रेता की स्थिति अच्छी नहीं है। किताबों की दुकान का बहुत छोटा होना भी ठीक नहीं, क्योंकि छोटी दुकान में विविध विषयों की यथेष्ट पुस्तकें रख सकना मुश्किल होगा। इसके अलावा पुस्तक की दुकान के कर्मचारियों का थोड़ा-बहुत पढ़ा-लिखा होना भी लाजिमी है।

इस बात का ध्यान रखना जरूरी है कि व्यावसायिक समृद्धि के लिए वर्ष में पाँच बार तक स्टॉक की खपत की जाए। बड़ी-बड़ी दुकानों में प्राय: यह सम्भव नहीं होता है, फिर भी बुद्धिमत्ता इसी में होगी कि आवश्यक रद्दोबदल के लिए बिक्री की नीति पर पुनर्विचार किया जाए। चाहे दुकान छोटी हो या बड़ी, खपत की नीची दर का अर्थ है कि स्टॉक में पुस्तकें अधिक जमा हैं। इस स्थिति का सामना करने के लिए नयी किताबों की थोड़ी प्रतियां के लिए ही ऑर्डर दिया जा सकता है। किन्तु जिन किताबों की अधिक खपत है, उनके ऑर्डर बिक्री की दर के अनुसार अविलम्ब देना चाहिए। कुछ पुस्तक-विक्रेता आवश्यकता से अधिक किताबों का स्टॉक इसलिए जमा कर लेते हैं कि बिक्री के

दौरान किताबों की कमी की वजह से नुकसान न हो, किन्तु व्यवसाय को स्वस्थ रूप से चलाने के लिए स्टॉक और खपत में उचित अनुपात बनाए रखने की जरूरत होती है।

प्रकाशकों अथवा थोक-विक्रेताओं से स्टॉक-प्राप्ति

स्टॉक प्राप्त होते ही उसे तुरन्त खुलवा कर ऑडरों और बीजकों की जाँच के पश्चात् आवश्यक ऑर्डरों की पूर्ति तुरन्त करनी चाहिए। पुस्तकों की प्राप्ति को शीघ्र ही स्टॉक-कार्ड या स्टॉक-बुक में दर्ज किया जाना चाहिए। सप्लाई की कमी या हानि के सम्बन्ध में सप्लायर को शीघ्र ही सूचना दी जानी चाहिए ताकि अदायगी की राशि में उचित कमी की जा सके।

स्टॉक की व्यवस्था : स्टॉक की जाँच कर लेने के पश्चात् पुस्तकों को ठीक तरह से आलमारियों और प्रदर्शन के लिए रैक में सजा देना चाहिए। जिन पुस्तकों की बिक्री-कक्ष में आवश्यकता न हो, उन्हें सावधानी से स्टोर में रखवा देना चाहिए। यदि किताबों को व्यवस्थित रूप से नहीं लगा दिया जाता या विलम्ब से लगाया जाता है, तो इसका प्रभाव बिक्री पर भी पड़ता है।

हर पुस्तक-विक्रेता और उसके सहायकों को शेल्फ साफ करने के लिए प्रतिदिन कम से-कम आधा घंटे का समय देना चाहिए। इस प्रकार पुस्तक-विक्रेता को पुस्तकों के बारे में अधिकाधिक जानकारी हो जायेगी। पुस्तकों को साफ और व्यवस्थित रखने की इस दैनिक-चर्या से पुस्तकों को गौर से देखने, पुस्तक-सम्बन्धी अन्य विवरण प्राप्त करने, उनके नाम, लेखक, संस्करण, प्रकाशन-वर्ष, पृष्ठ-संख्या, मूल्य आदि स्मरण रखने में सहायता मिलती है। कुशल पुस्तक-विक्रेता को विभिन्न पुस्तकों की सामग्री और उनके मूल्यों की भी थोड़ी जानकारी होनी चाहिए, क्योंकि पुस्तक के इन दो पक्षों के सम्बन्ध में खरीददार कुछ-न-कुछ अवश्य पूछता है और उस स्थिति में सहायक को ग्राहक के प्रश्नों का उत्तर देने में समर्थ होना चाहिए।

'शेल्फ' में रखी पुस्तकों को रोज देखते रहने से पुस्तक-विक्रेता को यह पता चलता रहता है कि किस पुस्तक की खपत तेजी से हो रही है, किसकी बिक्री कम है और किन पुस्तकों की बिक्री बिलकुल ठप है। इसके आधार पर वह खपतवाली पुस्तकों का समय से ऑर्डर दे सकता है, कम बिकनेवाली पुस्तकों की बिक्री बढ़ाने के उपाय सोच सकता है और ऐसी पुस्तकों को बेचने की तरकीब निकाल सकता है जिनकी माँग नहीं है।

बिक्री-कक्ष के कर्मचारियों को दुकान का काम चालू होने के दस-पन्द्रह मिनट पहले आ जाना चाहिए। फर्श की सफाई वगैरह अन्य कर्मचारियों के आने के पहले पूरी हो जानी चाहिए। जो कर्मचारी सफाई करता है, उसे यह सख्त हिदायत होनी चाहिए कि वह किताबों-कागजों को कतई न छुए।

बहुत-सी दुकानों के दरवाजे 'लंच' के समय बन्द कर दिए जाते हैं। सम्भव हो तो सहायकों को बारी-बारी से काम पर लगाकर दोपहर के खाने के समय भी बिक्री-कक्ष खुला रखा जा सकता है। इस प्रकार विभिन्न ऑफिस में काम करनेवाले कर्मचारियों को उनके लंच के समय में किताबों की दुकान में आने के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है।

बिक्री-सहायक को निम्नलिखित बातें नोट करने के लिए अलग से एक नोट-बुक रखनी चाहिए—

१. ग्राहकों द्वारा माँगी गई ऐसी पुस्तक का नाम जो स्टॉक में नहीं है।

२. ऐसी पुस्तकें जिनकी बिक्री तेजी से हो रही है। इसी नोट-बुक से सहायक नयी पुस्तकें मँगवाने का सुझाव दे सकता है। इन नोट्स को प्रतिदिन या सप्ताह में एक-दो बार देखकर व्यवसाय की माँग के अनुसार आवश्यक कार्यवाही की जा सकती है।

पूछ-ताछ

पुस्तकों के सम्बन्ध में ग्राहकों की पूछ-ताछ पर अविलम्ब ध्यान देना चाहिए। पुस्तक-व्यवसाय में पूछताछ पर ग्राहक को छोटा या तुरन्त दिया गया उत्तर भी बहुत अधिक महत्व रखता है। पुस्तकों के सम्बन्ध में की गई हर पूछ-ताछ का अर्थ तो यह नहीं है कि उसका ऑर्डर मिल ही जाएगा, फिर भी प्रश्नकर्त्ता की ओर तुरन्त ध्यान देने से उसे ग्राहक बना लेने की सम्भावना रहती है। इसी प्रकार पूछ-ताछ के पत्र का उत्तर उसी दिन या दूसरे दिन अवश्य दे देना चाहिए। उत्तर बहुत विनम्र और मैत्रीपूर्ण होना चाहिए, जिससे ग्राहक की सेवा और सहायता करने का आभास मिलता हो। यथासम्भव उत्तर में सभी सूचना दे देनी चाहिए कि कौन-सी पुस्तकें तुरन्त सप्लाई की जा सकती हैं, कौन-सी पुस्तकें निकट भविष्य में आनेवाली हैं, कौन-सी पुस्तकें बाजार में प्राप्त नहीं हैं और उनके बदले में कौन-सी तुरन्त प्राप्त पूरक पुस्तकों की सप्लाई की जा सकती है। ऐसे बहुत-से उत्तरों के लिए एक स्टैन्डर्ड फार्म का उपयोग किया जा सकता है। अन्य प्रकार की पुस्तकों की माँग या पूछ-ताछ के लिए आवश्यकतानुसार विस्तृत जानकारी देनी चाहिए।

ऑर्डर की पूर्ति

ऑर्डर की तुरन्त सप्लाई करके ही ग्राहक को दुकान की कार्यक्षमता का विश्वास दिलाया जा सकता है। अक्सर ग्राहक को किसी पुस्तकविशेष की आवश्यकता होती है और यदि पुस्तक-विक्रेता असुविधा झेलकर माँग की गई पुस्तक की तत्परता से सप्लाई कर देता है तो खरीददार प्रसन्न होकर उस दुकान का आजीवन ग्राहक बन जाता है। ऑर्डर प्राप्त होने पर सावधानी से जाँच की जानी चाहिए कि—(क) कौन-सी पुस्तकें दुकान में उपलब्ध हैं, (ख) कौन-सी अन्य पुस्तकें स्थानीय थोक विक्रेता या बड़े पुस्तक-विक्रेता से तुरन्त प्राप्त की जा सकती हैं (ग) कौन-सी पुस्तकें बाहर के प्रकाशकों अथवा विदेशों से प्राप्त की जानी हैं। तीसरी श्रेणी की पुस्तकों का ऑर्डर भेजने से पहले ग्राहक को यह सूचना दे देनी चाहिए कि सम्बन्धित पुस्तकें लगभग कितने समय में प्राप्त होंगी और ग्राहक की स्वीकृति ले लेनी चाहिए ताकि विलम्ब होने पर उसे शिकायत करने का अवसर न मिले। विशेष ऑर्डरों के लिए पुस्तक-विक्रेता को अलग से एक ऑर्डर-बुक रखना चाहिए, जिसे वह समय-समय पर देखकर यह पता लगाता रहे कि सम्बद्ध प्रकाशक और थोक-विक्रेता ने ऑर्डर की सप्लाई कर दी है या नहीं।

ग्राहकों द्वारा माँग की गई ऐसी पुस्तकें, जो स्टॉक में नहीं हैं और जिनकी आमतौर से बाजार में खपत नहीं है, के ऑर्डर बाकायदा दर्ज करके उनकी पूर्ति की जानी चाहिए। जहाँ तक संस्थाओं का सवाल है, पुस्तक-विक्रेता को विश्वास होना चाहिए कि उक्त किताबें संस्था-विशेष खरीदेगी ही। किन्तु व्यक्तिगत ग्राहकों के सम्बन्ध में ऐसी निश्चितता नहीं होती कि पुस्तक बाहर से मँगा लेने पर ग्राहक उसे खरीदेगा ही। इसलिए महँगी और विशिष्ट प्रकार की पुस्तकों के लिए अपरिचित ग्राहकों के ऑर्डर तभी स्वीकार किये जाने चाहिए जबकि वे पेशगी की उचित रकम जमा कर दें। पेशगी की रसीद दे देनी चाहिए। यह सावधानी इसलिए आवश्यक हो जाती है कि अक्सर ग्राहकों की बाद में उस पुस्तक-विशेष में रुचि नहीं रह जाती या वे उसे किसी और साधन से प्राप्त कर लेते हैं या उसे बिलकुल भूल जाते हैं। हाँ लोकप्रिय सामान्य किस्म की पुस्तकों के ऑर्डर के लिए पेशगी लेने की आवश्यकता नहीं है।

स्वीकृति-पद्धति

आजकल स्वीकृत्रि मिलने पर ही संस्थाओं या व्यक्तिगत रूप से ग्राहकों को पुस्तकें भेजने का आम रिवाज-सा चल पड़ा है। लेकिन इस पद्धति में कठिनाई के साथ-साथ कुछ पुस्तकों के न खरीदे जाने की सम्भावना भी रहती है। फिर भी यह तरीका ऑर्डर प्राप्त करने का एक अच्छा साधन है। इसके अलावा यह भी सम्भावना रहती है कि भेजी गई पुस्तकें यथासम्भव शीघ्र न लौटाई जा सकें अथवा लौटाई गई किताबों में से कुछ पर धब्बे वगैरह पड़े मिलें। इसलिए सावधानी के रूप में ग्राहक को पहले ही बता देना चाहिए कि जो पुस्तकें खरीद के लिए न चुनी जा सकें, उन्हें एक निश्चित तिथि तक साफ-सुथरी हालत में पुस्तक-विक्रेता को लौटा दी जाएँ। 'स्वीकृति' के लिए पुस्तकें भेजने से पुस्तक-विक्रेता की प्रतिष्ठा को धक्का लगने का सवाल नहीं उठता। इस सम्बन्ध में कुछ लोगों की ऐसी धारणा गलत है। 'स्वीकृति' के लिए पुस्तकें या तो ग्राहक के कहने पर भेजनी चाहिए या पुस्तक-विक्रेता स्वयं अपनी ओर से भेज सकता है। पुस्तकें भेजकर उनके सम्बन्ध में सम्भावित ग्राहक को जानकारी देने का लाभ यह है कि विक्रेता को ऐसी बहुत-सी पुस्तकों के ऑर्डर मिल जाते हैं। समयाभाव के कारण ऐसे बहुत-से ग्राहक किताबों की दुकानों में खुद नहीं जा पाते।

संस्थाओं और पुस्तकालयों से सम्बद्ध पुस्तक-विक्रेता नयी-नयी पुस्तकें प्राप्त होते ही उन्हें उक्त संस्थाओं की स्वीकृति के लिए भेजते हैं। जब ऐसी भेजी हुई पुस्तकों के सम्बन्ध में शीघ्र निर्णय नहीं लिया जाता तो इससे असुविधा होती है और बिक्री का नुकसान होने की भी सम्भावना रहती है। लेकिन यदि पुस्तक-विक्रेता या सहायक नियमित रूप से एक सप्ताह या दो सप्ताह के बाद सम्बद्ध संस्थाओं से आवश्यक पूछ-ताछ करते रहें तो विलम्ब की सम्भावना कम होगी।

उधार पर पुस्तकें लेनेवाले ग्राहक

उधार पुस्तकों की बिक्री स्थानीय ग्राहकों, दुकानों, दफ्तरों तथा निवास-स्थानों पर की जाती है। बाहर के ग्राहकों को डाक, रेल या ट्रांसपोर्ट द्वारा पुस्तकों की सप्लाई की जाती है :

(क) **व्यक्तिगत ग्राहक :** ये सामान्यतः अपने पेशे के विशेषज्ञ, जैसे डॉक्टर, इंजीनियर, वकील, प्रोफेसर तथा पुस्तकों में वास्तविक रुचि रखनेवाले व्यक्ति होते हैं जो उधार पर किताबों की खरीददारी करते हैं। पुस्तक-विक्रेता को चाहिए कि वह ऐसे उपयुक्त ग्राहकों को बराबर पुस्तकें प्राप्त करने के लिए सुविधाएँ और प्रोत्साहन देता रहे।

(ख) **संस्थाएँ :** शैक्षणिक संस्थाओं से सम्बद्ध पुस्तकालय, अन्य सार्वजनिक पुस्तकालय और सरकारी विभाग अधिकतर उधार पर ही किताबें मँगाते हैं, क्योंकि वहाँ के नियम ही इस प्रकार के होते हैं। ऐसी संस्थाओं को उधार पर पुस्तकें भेजनी ही चाहिए, अन्यथा उन्हें अपना ग्राहक बनाए रखना असम्भव होगा।

(ग) **बाहर के ग्राहक :** बाहर के ग्राहकों को उधार पर सप्लाई उनके ऑर्डर प्राप्त होने पर ही की जाती है। स्वीकृति के लिए बाहर के ग्राहकों को पुस्तकें भेजने की पद्धति का अधिक चलन नहीं है, किन्तु इस दिशा में कार्य होना चाहिए। इससे बाहर के छोटे-छोटे पुस्तक-विक्रेता अपने क्षेत्र की शिक्षा-संस्थाओं और पुस्तकालयों की अधिक उपयोगी सेवा कर सकते हैं।

उधार की बिक्री से सम्बद्ध समस्याएँ

इस सम्बन्ध में पहली बात तो यह निश्चित करने की है कि ग्राहकों को किस हद तक उधार पर सप्लाई की जानी चाहिए। जहाँ तक संस्थाओं और सुसंस्थापित निकायों का सम्बन्ध है, उनकी साख की क्षमता आँकने में कोई कठिनाई नहीं होती। लेकिन जहाँ अन्य व्यक्तिगत ग्राहकों का सवाल है, उनकी अच्छी आर्थिक स्थिति होने के बावजूद उनकी साख-सम्बन्धी क्षमता का पूरा-पूरा पता लगा लेना चाहिए। निश्चय ही, अपनी पूछ-ताछ के सम्बन्ध में पुस्तक-विक्रेता को अपने चातुर्य और बुद्धिमत्ता से काम लेना चाहिए। फिर भी उसे उधार लेनेवाले ग्राहकों के लिए एक निश्चित रकम की सीमा निर्धारित कर देनी चाहिए।

रकम की सीमा निर्धारित करने के साथ-साथ भुगतान की अवधि निश्चित कर देना भी बहुत आवश्यक होता है। ऐसा स्पष्टीकरण प्रारम्भ में ही न करने और समय-समय पर विनम्र स्मृति-पत्र न भेजने से ग्राहक भुगतान के लिए अपनी सुविधानुसार अधिक समय ले लेगा। सार्वजनिक संस्थाओं द्वारा बिल-भुगतान में छः महीने से लेकर एक साल की अवधि निकल जाती है। सम्बद्ध संस्था चाहे जितनी सुसंगठित और आर्थिक दृष्टि से ठीक हो, पुस्तक-विक्रेता का समय से भुगतान न होने से संस्था के प्रति उसकी सेवा और कार्यक्षमता कम हो जाती है। प्रायः लाल फीताशाही के द्वारा इस प्रकार के विलम्ब होते हैं। पुस्तक-विक्रेता को इन संस्थाओं से संरक्षण और सदिच्छा की अपेक्षा होती है, क्योंकि वह इस स्थिति में नहीं होता कि उसके खिलाफ कड़ी शिकायत कर सके। यह तो सम्बद्ध अधिकारियों का कर्तव्य हो जाता है कि वे अपर्याप्त पूँजीवाले पुस्तक-विक्रेताओं की स्थिति को समझें और बिलों के भुगतान एक महीने या अधिक-से-अधिक दो महीने के भीतर कराने की व्यवस्था करें।

उधार के हिसाब-किताब से बिक्री तो बढ़ती जरूर है, पर बिल के भुगतान के लिए कार्यवाही तथा अन्य ऊपरी मदों पर खर्च बढ़ता है। यों भी पुस्तक-व्यवसाय में वास्तविक लाभ की रकम अधिक नहीं होती और उधार का हिसाब-किताब रखने व नियमित रूप से स्मृति-पत्र भेजते रहने से लाभ की सीमा और भी कम हो जाती है। इसलिए उधार की बिक्री के सिलसिले में अत्यन्त सतर्क नीति अपनाने की आवश्यकता होती है।

उधार की बिक्री का हिसाब-किताब अव्यवस्थित नहीं होना चाहिए। आवश्यक विवरण उसी समय दर्ज होना चाहिए और उधार का सही हिसाब-किताब रखने के लिए उसकी जाँच एक से अधिक व्यक्तियों द्वारा की जानी चाहिए। वैसे हिसाब-किताब व्यवस्थित तरीके से रखने और उधारवाले ग्राहकों को भुगतान के लिए याद दिलाते रहने पर भी कुछ ऐसी रकम रह ही जाती है, जिससे दुकानदार भुगतान में अधिक विलम्ब के कारण कठिनाई का सामना करता है। इसलिए इस प्रकार के खाते कम-से-कम होने चाहिए और पूरे उधार की रकम पूँजी के एक प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिए।

हिसाब-किताब

पुस्तक-विक्रेता के लिए हिसाब-किताब रखने के दो पहलू हैं—एक तो उसे स्टॉक का हिसाब रखना पड़ता है; दूसरे पहलू का सम्बन्ध वित्तीय लेन-देन से है।

वित्तीय हिसाब-किताब के पृथक् अनुभाग की व्यवस्था केवल बड़े-बड़े पुस्तक-विक्रेता ही कर पाते हैं। अधिकतर, एकाउन्ट्स-क्लर्क की सहायता से मैनेजर अथवा मालिक स्वयं ही हिसाब-किताब की देखभाल करता है। उनके द्वारा बिक्री की गई पुस्तकों को नियमित रूप से दर्ज किया जाता ही है, कैश-बुक, दैनिक बही और बिक्री-लेजर जैसे हिसाब-किताब के रजिस्टर भी प्राय: नियमित रूप से भरे जाते हैं। अधिकांश पुस्तक-विक्रेता विस्तृत हिसाब-किताब रखने का खर्च नहीं बर्दाश्त कर पाते। लेकिन नितान्त आवश्यक खाते व्यवस्थित रूप से भरे जाने चाहिए। इससे किसी भी समय व्यवसाय की स्थिति की जानकारी मिल सकती है। लेखा-परीक्षकों, कम्पनी कानून, साझेदारी, आयकर और बिक्री-कर से सम्बद्ध कानूनी पाबन्दियों की जाँच के लिए भी उक्त खातों को पेश किया जा सकता है।

कुछ पुस्तक-विक्रेता अपने पुरातनपंथी दृष्टिकोण के कारण पुरानी और जटिल हिसाब-किताब की प्रणाली को अपनाये हुए हैं। किन्तु सम्भावित गलतियों से बचने के लिए आधुनिक दोहरे इन्दराजात की पद्धति अपनाना अत्यन्त आवश्यक है। वैसे तो व्यावसायिक आवश्यकता से अधिक हिसाब-किताब की पद्धतियों को लागू करना जरूरी नहीं है, किन्तु चालू प्रणाली में काम को सुगम और दोषरहित बनाने के उद्देश्य से समय-समय पर सुधार होता जाना चाहिए। कुछ पुस्तक-विक्रेताओं का ऐसा ख्याल है कि अदालतों और सरकारी कार्यालयों में पुराने तरीके के हिसाब-किताब के खातों को ही स्वीकार किया जाएगा। यह सत्य नहीं है। सही, प्रामाणिक तथा क्रमिक रूप से भरे गए आँकड़े स्वीकार किए जायेंगे, चाहे वे जिस तरह भी पेश किए जाएँ। इसलिए कम्प्यूटरीकृत जैसी आधुनिक प्रणालियों को अपनाने में हिचक नहीं होनी चाहिए, जो सहज-सरल हैं तथा जिनसे समय व श्रम दोनों की बचत होती है।

जहाँ तक स्टॉक के हिसाब-किताब रखने का सवाल है, स्थिति सन्तोषजनक नहीं है। केवल इने-गिने पुस्तक-विक्रेता ही नियमित रूप से स्टॉक-रजिस्टर और स्टॉक-कार्ड भरते हैं या स्टॉक की तालिका में बिक्री के आधार पर इन्दराजात करते हैं। अधिकांश दुकानों में स्टॉक की स्थिति जानने के लिए एक-एक पुस्तक को गिनना पड़ता है। कारण यह है कि अधिकतर पुस्तक-विक्रेताओं के पास इस काम के लिए अतिरिक्त कर्मचारी नहीं हैं और जिनके पास कर्मचारी हैं भी, वे स्टॉक-कार्ड व्यवस्थित रूप से भरने के लाभ को महसूस नहीं करते। यदि स्टॉक-कार्ड का भरना सम्भव न हो तो भी प्रत्येक पुस्तक-विक्रेता को लेजर में स्टॉक का हिसाब-किताब इस दृष्टि से अवश्य रखना चाहिए कि कितनी पुस्तकें बाहर से प्राप्त हुई हैं और कौन-कौन-सी पुस्तकों की बिक्री हुई है। इस सूचना के अभाव में पुस्तकों का ऑर्डर करने या न करने के सम्बन्ध में पुस्तक-विक्रेता ऐसे निर्णय ले लेता है, जिससे उसके व्यवसाय को काफी हानि उठानी पड़ती है।

फाइलों की व्यवस्था

सभी पत्र-व्यवहार और रिकॉर्ड व्यवस्थित रूप से फाइल किए जाने चाहिए, जिससे सन्दर्भ खोजने में सुविधा हो। आमतौर से फाइलों की व्यवस्था की निम्न चार पद्धतियाँ प्रयोग में हैं :

१. **अक्षरक्रम के आधार पर :** यह बहुत ही सरल विधि है। अक्षरक्रम के आधार पर रखी फाइलें आसानी से मिल जाती हैं, किन्तु जब व्यवसाय का विस्तार बढ़ जाता है और उसके कई भिन्न-भिन्न पहलू हो जाते हैं, तो केवल इसी प्रणाली पर निर्भर नहीं रहा जा सकता।

२. **भौगोलिक आधार :** कुछ कार्यों के लिए फाइलों का विभाजन भौगोलिक क्षेत्रों के आधार पर किया जा सकता है—(राज्य, जिला आदि के आधार पर) और प्रत्येक वर्ग के लिए अक्षरक्रम के आधार का उपयोग किया जा सकता है।

३. **विषयानुसार :** प्रकाशकों, पुस्तकालयों और कुछ व्यक्तिगत ग्राहकों के लिए विषयों के आधार पर अलग-अलग फाइलें खोली जा सकती हैं।

४. **'टिक' पद्धति :** जब किसी पत्र-व्यवहार, ऑर्डर तथा अन्य मामले को बाद में गौर करने की आवश्यकता हो तो इस पद्धति को अपनाने से याद रखने में बड़ी सुविधा होगी। पहचान के लिए फाइल में रंगीन चिप्पियों का भी प्रयोग किया जा सकता हैं।

प्रत्येक पुस्तक-विक्रेता को डायरी रखनी चाहिए जिसमें वह दूसरों से मिलने का समय, टेलीफोन की बातचीत का विवरण, बाहर के प्रमुख पुस्तक-विक्रेताओं, प्रकाशकों के प्रतिनिधियों के आने तथा शहर से रवाना होने की तिथियाँ नोट कर सके।

कार्यालय का साज-समान

प्रत्येक दुकान में एक कैलकुलेटर, टाइपराइटर, फाइलिंग कैबिनेट, स्टेन्सिल डुप्लीकेटर, पंचिंग मशीन, स्टेपलर और प्रयोग में आनेवाली रबर की मोहरें होनी चाहिए।

बड़ी दुकानों में टाइपराइटर व फाइलिंग कैबिनेट अधिक होने चाहिए। इसके अलावा शीघ्रता से काम करने के लिए आवश्यक मशीनें भी ली जा सकती हैं—जैसे कि कम्प्यूटर मशीन, बिजली से चलनेवाला स्टेन्सिल डुप्लीकेटर, टिकट लगाने के लिए फ्रेंकिंग मशीन और ऐड्रसोग्राफ मशीन आदि।

पुस्तकों की दुकानों की व्यवस्था के लिए किसी अन्य व्यावसायिक संगठन के समान ही योजना, सुसंगठन, तालमेल और नियन्त्रण की आवश्यकता होती है। पुस्तक-विक्रेता के सामने अपने कार्य का निश्चित उद्देश्य होना चाहिए, जिसे पूरा करने के लिए वह अपने कर्मचारियों को स्पष्ट आदेश दे। कर्मचारी को आदेश देते समय कार्य के उद्देश्य को स्पष्ट रूप से समझा देना चाहिए ताकि वह हिदायतों पर कार्य-कुशलता के साथ अमल कर सकें। दुकान के कर्मचारियों के काम का समय-समय पर निरीक्षण करना चाहिए जिससे उनकी कार्यक्षमता और प्रगति का अनुमान लगाया जा सके। जहाँ आवश्यक हो, वहाँ स्थिति-सुधार व उद्देश्यों में आवश्यक हेर-फेर के लिए उचित कदम उठाया जा सके।

व्यावसायिक करार और दस्तूर

दक्षिण एशिया के देशों और विशेष रूप से भारत में पुस्तकों के सम्बन्ध में व्यावसायिक करार की समस्या बड़ी जटिल है। पुस्तकें दूसरी ऐसी वस्तुओं से भिन्न होती हैं जिनपर उनका मूल्य नहीं लिखा होता और बाजार की परिस्थिति के अनुसार कीमतों में उतार-चढ़ाव आता रहता है। पुस्तकों की कीमत पहले से तो निश्चित होती है। इसके अलावा कीमतें किताबों पर छपी भी रहती हैं। मुद्रित मूल्य पर पुस्तकों की फुटकर बिक्री होती है, जिसका यह अर्थ होता है कि विक्रेता को मिलनेवाला मार्जिन प्रकाशक अथवा थोक-विक्रेता को मिलनेवाले लाभांश के साथ ही निर्धारित होता है। इस मार्जिन के भीतर पुस्तक-विक्रेता को सारा खर्च चलाना होता है और बची रकम उसका लाभाँश होती है। कुछ वर्ष पहले पुस्तक-विक्रेताओं को मिलनेवाले कमीशन की दर प्रकाशकों के अनुसार बदलती रहती थी। आजकल प्रकाशकों से कुछ प्रकाशनों पर आमतौर से १५ प्रतिशत कमीशन मिलता है। शैक्षिक पुस्तकों पर छपी हुई कीमतों पर प्राय: २० प्रतिशत कमीशन दिया जाता है। कभी-कभी वैज्ञानिक और तकनीकी पुस्तकों पर यह दर २५ प्रतिशत होती है। सामान्य पुस्तकों पर कमीशन की दर २५ से ४०% प्रतिशत तक होती है। किन्तु यह कमीशन एक प्रति पर नहीं दिया जाता, बल्कि एक साथ कई प्रतियाँ खरीदने पर प्राप्त होता है। यदि एक साथ बहुत अधिक पुस्तकें खरीदी जाएँ तो कभी-कभी ५० प्रतिशत तक कमीशन दे दिया जाता है। शब्दकोश और एटलस पर प्रतियों की संख्या के अनुसार २० से २५ तथा ३० प्रतिशत तक कमीशन दिया जाता है। कभी-कभी यह दर ३३$^{१}/_{४}$ प्रतिशत तक हो जाती है।

आयात की गई शैक्षणिक व तकनीकी पुस्तकों पर प्रकाशकों के एजेन्ट २० प्रतिशत कमीशन पुस्तक-विक्रेताओं को देते हैं। कुछ विशेष प्रकाशनों पर वे २० प्रतिशत कमीशन तो दे देते हैं किन्तु शिलिंग तथा डालर की प्रचलित दर पर पुस्तक खरीदे जाने

पर इससे भी अधिक ऊँची दर पर कमीशन देते हैं। सीरीज में प्रकाशित कुछ पुस्तकों पर और अधिक कमीशन दिया जाता है और कहीं-कहीं तो यह दर ४० प्रतिशत तक हो जाती है।

यह बात ज्ञात होनी चाहिए कि विदेशों के प्रकाशकों द्वारा उनकी शाखाओं से सम्बद्ध कम्पनियों को विशेष कमीशन एवं पुस्तकों की उधार पर सप्लाई तथा न बिकी प्रतियों को वापस लौटाने आदि जैसी विशेष सुविधाएँ दी जाती हैं, जिससे वे आयात की हुई पुस्तकों को सम्बन्धित ग्राहकों को काफी अच्छी सेवाएँ उपलब्ध करा सकने की स्थिति में होते हैं। बेशक, दक्षिण एशिया के देशों में सभी विदेशी प्रकाशकों के एजेन्ट अथवा स्टॉकिस्ट नहीं होते हैं।

कुछ अन्य विदेशी प्रकाशनों को सीधे विदेशी प्रकाशकों से आयात किया जाता है और ऐसी स्थिति में विक्रेता को सामान्य कमीशन बाजार की परिवर्तित मुद्रा की दर से प्राप्त होता है। किन्तु सीधे तौर से आयात करनेवाले अधिकांश विक्रेताओं को ब्रिटेन के प्रकाशकों के साथ बैंक के चालू हिसाब-किताब की सुविधाएँ नहीं प्राप्त होती हैं, उन्हें अपनी सप्लाई थोक आयात करनेवाले व्यापारियों के माध्यम से प्राप्त करनी होती है जो इस कार्य के लिए ५ प्रतिशत कमीशन ले लेते हैं। अमरीका और कुछ अन्य देशों से सीधे प्रकाशकों के पास से आयात करना पड़ता है; कभी-कभी यह आयात थोक-विक्रेताओं के द्वारा भी होता है। वैसे सीधे आयात करनेवाले पुस्तक-विक्रेताओं की संख्या अधिक नहीं है।

पुस्तकों के आयात की लाइसेन्स-पद्धति में पहले से कुछ नर्मी अवश्य आ गई है किन्तु फिर भी इसकी वजह से पुस्तकों का अबाध रूप से आयात करना सम्भव नहीं होता। दक्षिण एशिया में विदेशी मुद्रा की वर्तमान कठिनाइयों के कारण स्थिति में सुधार की गुंजाइश नहीं लगती।

सीधे तौर पर आयात करनेवाले थोक-विक्रेता जब दूसरे पुस्तक-विक्रेताओं को विदेशी पुस्तकें बेचते हैं तो वे उतना कमीशन दे सकने की स्थिति में नहीं होते जितना कि प्रकाशकों के एजेन्टों से प्राप्त हो सकता है। वे आमतौर से शैक्षणिक पुस्तकों पर १५ प्रतिशत तक और सामान्य पुस्तकों पर २५ से ३० प्रतिशत तक कमीशन देते हैं। इसीलिए औसत पुस्तक-विक्रेता अपनी आवश्यकता की विदेशी पुस्तकें प्रकाशकों के एजेन्टों या स्टाकिस्ट से प्राप्त करना चाहता है।

बड़े-बड़े पुस्तक-विक्रेताओं द्वारा छोटे-छोटे पुस्तक-विक्रेताओं को देश में प्रकाशित पुस्तकों पर दिया जानेवाला कमीशन प्रकाशक से प्राप्त होनेवाले कमीशन के अनुसार बदलता रहता है। आमतौर से यह दर प्रकाशक के कमीशन की दर से ५ प्रतिशत कम होता है। इसलिए छोटे-छोटे पुस्तक-विक्रेता अपनी सप्लाई अधिकतर प्रकाशक से सीधे प्राप्त करते हैं क्योंकि उन्हें प्रकाशक से पूरा कमीशन मिल जाता है।

पैकिंग-व्यय और भाड़ा पुस्तक-विक्रेता को अदा करना पड़ता है, किन्तु कुछ बड़े पुस्तक-विक्रेता एक निश्चित रकम से अधिक के ऑर्डरों की सप्लाई के लिए मुफ्त पैकिंग की व्यवस्था भी करते हैं। यदि बहुत बड़ा ऑर्डर हो तो कभी-कभी पैकिंग-व्यय और भाड़ा भी नहीं लिया जाता है।

थोक-विक्रेता

पश्चिमी देशों के थोक-विक्रेता इस काम के लिए बहुत ही सहायक होते हैं—एक ओर तो वे प्रकाशकों की सहायता करते हैं और दूसरी ओर पुस्तक-विक्रेताओं की। प्रकाशक बड़ी संख्या में शीघ्र अपने स्टॉक की पुस्तकें बेचना चाहता है और उसके पास इतना समय नहीं होता कि वह असंख्य पुस्तक-विक्रेताओं के छोटे-छोटे ऑर्डरों की पूर्ति कर सके। थोक-विक्रेता प्रकाशकों से नये-पुराने प्रकाशनों का काफी अधिक स्टॉक एक साथ खरीद लेता है और ऐसा करने में उसे प्रकाशकों की ओर से उधार पुस्तकें खरीदने की पर्याप्त सुविधाएँ मिल जाती हैं। जरूरी नहीं है कि थोक-विक्रेता को प्रकाशक से प्राप्त होनेवाला कमीशन साधारण पुस्तक-विक्रेता को मिलनेवाले कमीशन से अधिक हो। इस स्थिति में होता यह है कि उसे एक साथ अधिक संख्या में पुस्तकें बिक्री के लिए प्राप्त हो जाती हैं और वह प्रकाशक को किश्तों में बिल का भुगतान करता रहता है। छोटे पुस्तक-विक्रेता कमीशन में प्राय: ५ प्रतिशत की इस कटौती की परवाह नहीं करते, क्योंकि उन्हें उधार पर खरीद आदि की अन्य सुविधाएँ प्राप्त हो जाती हैं। इसके अलावा पुस्तक-विक्रेता को यह भी लाभ होता है कि एक साथ सप्लाई प्राप्त करने से भाड़े में किफायत होती है और विभिन्न प्रकाशकों से पत्र-व्यवहार करने में लगनेवाले समय की बचत के साथ परेशानियों में कमी भी होती है। बड़े-बड़े शहरों के पुस्तक-विक्रेताओं को यह लाभ होता है कि वे थोक-विक्रेता के पास विभिन्न प्रकाशकों की बहुत-सी किताबों का निरीक्षण करने के बाद ऑर्डर का निर्णय कर सकते हैं। थोक-विक्रेता प्रकाशकों से प्राप्त प्रचार-सामग्री भी वितरित करते हैं जिससे छोटे पुस्तक-विक्रेताओं को भी अपनी बिक्री का सम्वर्द्धन करने में सहायता मिलती है।

किन्तु दक्षिण एशिया के देशों में उपर्युक्त प्रकार के थोक-विक्रेता बहुत ही थोड़े हैं। विदेशी प्रकाशकों के एजेन्ट और ऐसे पुस्तक-विक्रेता जो विदेशी प्रकाशकों के प्रमुख स्टॉकिस्ट और वितरक हैं, वे ही थोक-विक्रेता के रूप में काम करते हैं। वे पुस्तक-विक्रेताओं को निश्चित कमीशन पर विदेशी प्रकाशनों की सप्लाई करते हैं। ऐसे थोक-विक्रेताओं के अलावा देश में प्रकाशित अंग्रेजी, हिन्दी तथा अन्य प्रादेशिक भाषाओं में प्रकाशित पुस्तकों की सप्लाई के लिए बहुत ही कम थोक-विक्रेता हैं। इसकी वजह यह है कि जहाँ तक मुमकिन होता है प्रकाशक थोक-विक्रेताओं की मध्यस्थता के बिना पुस्तक-विक्रेताओं को सीधे माल बेचने का प्रयास करते हैं।

लंका को छोड़कर दक्षिण एशिया के देशों का विस्तार काफी अधिक है और यहाँ के सभी बड़े-बड़े नगरों, शहरों और शिक्षा-केन्द्रों में विश्वसनीय थोक-विक्रेताओं की पर्याप्त आवश्यकता है। आजकल कुछ बड़े-बड़े पुस्तक-विक्रेता ही कुछ हद तक थोक-विक्रेता के रूप में काम करते हैं। किन्तु कमीशन अथवा अन्य सुविधाओं में समानता न होने के कारण उनमें आपस में प्रतियोगिता बनी रहती है। कुछ प्रकाशक विभिन्न क्षेत्रों में अपने एजेन्ट रखते हैं और उन्हें मामूली एजेन्ट का कमीशन देने की व्यवस्था करते हैं। यद्यपि पैकिंग-व्यय और भाड़ा प्राय: मुफ्त होता है, फिर भी इन एजेन्टों को मिलनेवाला कमीशन बहुत ही अपर्याप्त होता है। चूँकि प्रकाशक स्वयं उसी क्षेत्र के अन्य विक्रेताओं

को सीधे माल सप्लाई करता है, इसलिए एजेन्सी-व्यवस्था ज्यादा कारगर नहीं होती। थोक-विक्रेता अथवा एजेन्ट को ठोस रूप में कारोबार चलाने के लिए आवश्यक होता है कि उसे विभिन्न प्रकार की पुस्तकों पर नियमित कमीशन के अलावा कम-से-कम १० प्रतिशत अतिरिक्त कमीशन मिले और बिना भाड़ा लिए हुए उसको पुस्तकें सप्लाई करने की व्यवस्था हो। उपयुक्त शर्तों और गारन्टी के साथ पुस्तकों के न बिकने पर उसे प्रकाशक को लौटाने की भी व्यवस्था होनी चाहिए। थोक-विक्रेता अथवा एजेन्ट के लिए यह सम्भव होना चाहिए कि वह नियमित कमीशन पर अपने क्षेत्र के पुस्तक-विक्रेताओं को पुस्तकें सप्लाई कर सके। इस प्रकार पुस्तक-विक्रेता अपने समय और भाड़े की लागत में बचत कर सकेगा।

शिक्षा-संस्थाओं को पुस्तकें सप्लाई करने की शर्तें

स्कूलों और कॉलेजों के लिए कमीशन की सामान्य दर १० प्रतिशत है, जिसे कुछ वर्ष पूर्व सौजन्य-कमीशन कहा जाता था। शिक्षा-संस्थाओं को सीधे तौर पर सप्लाई की गई पुस्तकों पर अधिकांश प्रकाशक १० प्रतिशत कमीशन देते हैं लेकिन कुछ प्रकाशक सभी प्रकार की पुस्तकों पर चाहे वे शैक्षणिक, तकनीकी तथा सामान्य हों, केवल साढ़े ७ प्रतिशत कमीशन देते हैं। आमतौर से पुस्तक-विक्रेता भी इतना ही कमीशन देते हैं। किन्तु दूरवर्ती कस्बों आदि के पुस्तक-विक्रेता, जिन्हें भाड़े आदि पर भी व्यय करना पड़ता है, शिक्षा-संस्थाओं को शैक्षणिक पुस्तकों पर सवा ६ या साढ़े ७ प्रतिशत और सामान्य पुस्तकों पर १० प्रतिशत कमीशन देते हैं। इन बहुत-से कारणों के फलस्वरूप कमीशन की दरों में परिवर्तन होते रहते हैं। किन्तु अब शिक्षा-संस्थाओं को सीधे प्रकाशकों द्वारा पुस्तकें सप्लाई करने का इस कदर आम चलन हो गया है कि स्कूलों और कॉलेजों की आवश्यकताओं की आंशिक सप्लाई करते रहने के लिए पुस्तक-विक्रेताओं को उन्हें अधिक सुविधाएँ देनी पड़ती हैं।

कमीशन की दरों को नियमित करने के लिये प्रकाशक तथा विक्रेताओं की संस्थाओं ने लाइब्रेरी एसोशिएसनों के सहयोग से गुड आफिसेस कमेटी बनाई है। अब कमेटी द्वारा निर्धारित कमीशन दरों पर पुस्तकें सप्लाई होती हैं।

❀

दुकानों में पुस्तकों का प्रदर्शन

प्रदर्शन भी एक कला है। पुस्तकों की दुकान में किताबों की बिक्री के लिए यह एक अत्यन्त सहायक तत्व है। प्रभावपूर्ण प्रदर्शन के कारण ग्राहक दुकान में प्रवेश करने के लिए आकर्षित होता है। पुस्तक की दुकानों में प्रवेश करने के पहले लोगों में एक प्रकार की हिचक-सी होती है। ग्राहकों में ऐसी हिचक दूसरे प्रकार की दुकानों में प्रवेश करते समय नहीं होती, जिसमें वे अपनी दैनिक उपयोग की वस्तुएँ, जैसे—खाद्य-पदार्थ, कपड़े आदि, खरीदने के लिए जाते हैं। इसलिए पुस्तक की दुकानों की सजावट इस प्रकार होनी चाहिए, जिससे वे ग्राहकों को आकर्षित कर सकें। इसके लिए दुकान में प्रवेशद्वार के निकट ही बाईं प्रकोष्ठ में तथा दुकान के अन्दर समुचित प्रदर्शन की बहुत आवश्यकता होती है। लेकिन कुल मिलाकर प्रदर्शन सुनियोजित और सन्तुलित होना चाहिए।

आज अन्य सभी व्यवसायों में प्रदर्शन-कला का काफी हद तक विकास हुआ है। दक्षिण एशियाई देशों के अधिकांश औसत पुस्तक-विक्रेताओं को अभी यह कला यथेष्ट रूप से विकसित करनी है। थोड़ी-सी कल्पना और सूझ-बूझ से पुस्तकों को बड़े आकर्षक ढंग से प्रदर्शित किया जा सकता है।

पुस्तकों के प्रदर्शन का मुख्य उद्देश्य यह होता है कि लोगों का ध्यान प्रदर्शित की हुई पुस्तकों की ओर आकर्षित हो, वे ठहरें और उन्हें देखें। किन्तु महज ग्राहक का ध्यान आकर्षित कर लेना उतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना कि ग्राहक का ध्यान प्रदर्शित की हुई पुस्तकों की ओर केन्द्रित रखना। प्रभावोत्पादक प्रदर्शन सिर्फ आकर्षक ही न हो वरन् उसे इस प्रकार का होना चाहिए कि वह सम्भावित ग्राहकों में दुकान के भीतर प्रवेश करने की बलवती इच्छा उत्पन्न कर दे। प्रदर्शन के नाम पर हस्तक्षेपपूर्ण, अभद्र और अश्लील प्रदर्शन नहीं होना चाहिए। विशेषकर प्रवेशद्वार पर प्रदर्शन-सामग्री का आधिक्य नहीं होना चाहिए, क्योंकि इससे प्राय: साधारण लोगों को भीतर आने में हिचक होती है।

प्रदर्शन का उद्देश्य होता है कि—(१) नयी पुस्तकों की बिक्री बढ़े (२) कम बिकनेवाली पुस्तकों की माँग पैदा की जाए जिससे उसकी बिक्री बढ़े (३) ग्राहकों को पुस्तकों की आवश्यक सूचना और तथ्यों से परिचित कराया जाय।

दुकान की बाहरी खिड़की प्रदर्शन करने के लिए सबसे अधिक उपयुक्त जगह है। थोड़ी-सी सूझ-बूझवाले सुरुचि-सम्पन्न पुस्तक-विक्रेता को मौलिक रूप से इसका प्रदर्शन करने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए। पुस्तकों के सम्बन्ध में ग्राहकों की अभिरुचि की विविध सम्भावनाएँ हैं और समय-समय पर प्रदर्शित पुस्तकें अदल-बदल करके अथवा

को सीधे माल सप्लाई करता है, इसलिए एजेन्सी-व्यवस्था ज्यादा कारगर नहीं होती। थोक-विक्रेता अथवा एजेन्ट को ठोस रूप में कारोबार चलाने के लिए आवश्यक होता है कि उसे विभिन्न प्रकार की पुस्तकों पर नियमित कमीशन के अलावा कम-से-कम १० प्रतिशत अतिरिक्त कमीशन मिले और बिना भाड़ा लिए हुए उसको पुस्तकें सप्लाई करने की व्यवस्था हो। उपयुक्त शर्तों और गारन्टी के साथ पुस्तकों के न बिकने पर उसे प्रकाशक को लौटाने की भी व्यवस्था होनी चाहिए। थोक-विक्रेता अथवा एजेन्ट के लिए यह सम्भव होना चाहिए कि वह नियमित कमीशन पर अपने क्षेत्र के पुस्तक-विक्रेताओं को पुस्तकें सप्लाई कर सके। इस प्रकार पुस्तक-विक्रेता अपने समय और भाड़े की लागत में बचत कर सकेगा।

शिक्षा-संस्थाओं को पुस्तकें सप्लाई करने की शर्तें

स्कूलों और कॉलेजों के लिए कमीशन की सामान्य दर १० प्रतिशत है, जिसे कुछ वर्ष पूर्व सौजन्य-कमीशन कहा जाता था। शिक्षा-संस्थाओं को सीधे तौर पर सप्लाई की गई पुस्तकों पर अधिकांश प्रकाशक १० प्रतिशत कमीशन देते हैं लेकिन कुछ प्रकाशक सभी प्रकार की पुस्तकों पर चाहे वे शैक्षणिक, तकनीकी तथा सामान्य हों, केवल साढ़े ७ प्रतिशत कमीशन देते हैं। आमतौर से पुस्तक-विक्रेता भी इतना ही कमीशन देते हैं। किन्तु दूरवर्ती कस्बों आदि के पुस्तक-विक्रेता, जिन्हें भाड़े आदि पर भी व्यय करना पड़ता है, शिक्षा-संस्थाओं को शैक्षणिक पुस्तकों पर सवा ६ या साढ़े ७ प्रतिशत और सामान्य पुस्तकों पर १० प्रतिशत कमीशन देते हैं। इन बहुत-से कारणों के फलस्वरूप कमीशन की दरों में परिवर्तन होते रहते हैं। किन्तु अब शिक्षा-संस्थाओं को सीधे प्रकाशकों द्वारा पुस्तकें सप्लाई करने का इस कदर आम चलन हो गया है कि स्कूलों और कॉलेजों की आवश्यकताओं की आंशिक सप्लाई करते रहने के लिए पुस्तक-विक्रेताओं को उन्हें अधिक सुविधाएँ देनी पड़ती हैं।

कमीशन की दरों को नियमित करने के लिये प्रकाशक तथा विक्रेताओं की संस्थाओं ने लाइब्रेरी एसोशिएसनों के सहयोग से गुड आफिसेस कमेटी बनाई है। अब कमेटी द्वारा निर्धारित कमीशन दरों पर पुस्तकें सप्लाई होती हैं।

❀

दुकानों में पुस्तकों का प्रदर्शन

प्रदर्शन भी एक कला है। पुस्तकों की दुकान में किताबों की बिक्री के लिए यह एक अत्यन्त सहायक तत्व है। प्रभावपूर्ण प्रदर्शन के कारण ग्राहक दुकान में प्रवेश करने के लिए आकर्षित होता है। पुस्तक की दुकानों में प्रवेश करने के पहले लोगों में एक प्रकार की हिचक-सी होती है। ग्राहकों में ऐसी हिचक दूसरे प्रकार की दुकानों में प्रवेश करते समय नहीं होती, जिसमें वे अपनी दैनिक उपयोग की वस्तुएँ, जैसे—खाद्य-पदार्थ, कपड़े आदि, खरीदने के लिए जाते हैं। इसलिए पुस्तक की दुकानों की सजावट इस प्रकार होनी चाहिए, जिससे वे ग्राहकों को आकर्षित कर सकें। इसके लिए दुकान में प्रवेशद्वार के निकट ही बाईं प्रकोष्ठ में तथा दुकान के अन्दर समुचित प्रदर्शन की बहुत आवश्यकता होती है। लेकिन कुल मिलाकर प्रदर्शन सुनियोजित और सन्तुलित होना चाहिए।

आज अन्य सभी व्यवसायों में प्रदर्शन-कला का काफी हद तक विकास हुआ है। दक्षिण एशियाई देशों के अधिकांश औसत पुस्तक-विक्रेताओं को अभी यह कला यथेष्ट रूप से विकसित करनी है। थोड़ी-सी कल्पना और सूझ-बूझ से पुस्तकों को बड़े आकर्षक ढंग से प्रदर्शित किया जा सकता है।

पुस्तकों के प्रदर्शन का मुख्य उद्देश्य यह होता है कि लोगों का ध्यान प्रदर्शित की हुई पुस्तकों की ओर आकर्षित हो, वे ठहरें और उन्हें देखें। किन्तु महज ग्राहक का ध्यान आकर्षित कर लेना उतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना कि ग्राहक का ध्यान प्रदर्शित की हुई पुस्तकों की ओर केन्द्रित रखना। प्रभावोत्पादक प्रदर्शन सिर्फ आकर्षक ही न हो वरन् उसे इस प्रकार का होना चाहिए कि वह सम्भावित ग्राहकों में दुकान के भीतर प्रवेश करने की बलवती इच्छा उत्पन्न कर दे। प्रदर्शन के नाम पर हस्तक्षेपपूर्ण, अभद्र और अश्लील प्रदर्शन नहीं होना चाहिए। विशेषकर प्रवेशद्वार पर प्रदर्शन-सामग्री का आधिक्य नहीं होना चाहिए, क्योंकि इससे प्राय: साधारण लोगों को भीतर आने में हिचक होती है।

प्रदर्शन का उद्देश्य होता है कि—(१) नयी पुस्तकों की बिक्री बढ़े (२) कम बिकनेवाली पुस्तकों की माँग पैदा की जाए जिससे उसकी बिक्री बढ़े (३) ग्राहकों को पुस्तकों की आवश्यक सूचना और तथ्यों से परिचित कराया जाय।

दुकान की बाहरी खिड़की प्रदर्शन करने के लिए सबसे अधिक उपयुक्त जगह है। थोड़ी-सी सूझ-बूझवाले सुरुचि-सम्पन्न पुस्तक-विक्रेता को मौलिक रूप से इसका प्रदर्शन करने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए। पुस्तकों के सम्बन्ध में ग्राहकों की अभिरुचि की विविध सम्भावनाएँ हैं और समय-समय पर प्रदर्शित पुस्तकें अदल-बदल करके अथवा

उनके प्रदर्शन की शैली में थोड़ा-बहुत परिवर्तन-परिवर्द्धन करके, नियमित और अनियमित, सभी प्रकार के ग्राहकों की दिलचस्पी को कायम रखा जा सकता है।

पूरी खिड़की में एक ही प्रकाशन की अनेक प्रतियों को कौशलपूर्वक प्रदर्शित किया जा सकता है। किन्तु छोटी दुकानों में यह सम्भव नहीं होगा, फिर भी विभिन्न पुस्तकों के प्रदर्शन के बावजूद एक विशिष्ट पुस्तक को प्रतिष्ठापूर्ण स्थान दिया जा सकता है। पुस्तकों से भरी खिड़की लोगों को आकर्षित अवश्य कर सकती है, लेकिन इससे यह सम्भावना कम रहती है कि ग्राहकों को दुकान में प्रवेश करने की इच्छा उत्पन्न हो। इसीलिए खिड़की को किताबों से खचाखच भरने की अपेक्षा केवल कुछ पुस्तकों का प्रदर्शन करके यह संकेत देना अधिक उपयुक्त होगा कि बहुत-सी अन्य किताबें दुकान के भीतर हैं। कभी-कभी प्रदर्शित विषयों की पुस्तकों के पास उक्त विषय की सम्बद्धित सामग्री भी रखी जा सकती है, जैसे हवाई जहाज का नवीनतम छोटा नमूना, कला-कृति, हस्तकौशल का नमूना तथा किसी उत्तेजक घटना का फोटोग्राफ आदि। प्रदर्शन की खिड़की में दुकान के भीतर उपलब्ध प्रकाशनों की प्रतियाँ रखना जरूरी नहीं है। वस्तुतः खिड़की में प्रदर्शित प्रकाशित सामग्री इस प्रकार की होनी चाहिए कि दर्शक में उत्सुकता जगे और उसमें कुछ इस तरह की प्रतिक्रिया पैदा हो कि वह चुपचाप दुकान के भीतर प्रवेश कर जाए।

प्रदर्शन की खिड़की बहुत ही साफ-सुथरी रखी जाय और उसमें प्रकाश की समुचित व्यवस्था हो। शीशे के भीतर रखी गई पुस्तकों को रोज कई बार झाड़ना चाहिए। आगामी प्रकाशनों के जैकेट भी प्रदर्शित किए जा सकते हैं। बेहतर होगा कि इनके प्रदर्शन के लिए अलग से छोटी खिड़की की व्यवस्था की जाए। यदि उसके प्रदर्शन के लिए अलग खिड़की की व्यवस्था न हो सके तो उन्हें उसी खिड़की में इस प्रकार एक कोने में प्रदर्शित किया जाए जिससे कि यह पता चल सके कि वे आगामी प्रकाशनों के जैकेट हैं। पुस्तकों अथवा जैकेटों को धूमिल नहीं होने देना चाहिए।

उपयुक्त अवसरों पर सम्पूर्ण खिड़की में किसी विशेष सामयिक पुस्तक या विषय या लोकप्रिय सीरीज के प्रकाशनों का प्रदर्शन किया जा सकता है। प्रायः प्रकाशकों से विशेष प्रदर्शन के लिए पुस्तकें प्राप्त की जा सकती हैं। इन पुस्तकों को प्राप्त करने में यह शर्त होनी चाहिए कि उक्त पुस्तकों की कीमत बिक्री हो जाने पर ही चुकाई जाएगी अन्यथा वे वापस कर दी जाएँगी। प्रदर्शन के लिए प्रकाशकों से अन्य सामग्री मुफ्त भी प्राप्त की जा सकती है, हालाँकि दक्षिण एशिया के देशों में अभी तक इसका अधिक रिवाज नहीं था। सामान्य प्रदर्शन के अपेक्षाकृत विशेष प्रदर्शन के द्वारा न केवल खिड़की में लगी पुस्तकों की बिक्री होती है, वरन् इनके साथ-साथ अन्य पुस्तकों की भी बिक्री हो जाती है, क्योंकि प्रदर्शन से आकर्षित होकर ग्राहक दुकान के भीतर आकर बहुत-सी दूसरी पुस्तकों को भी उलट-पुलट कर देखते हैं। अतिशय साजसज्जा की तुलना में सादे तौर पर किये गए प्रदर्शन अधिक प्रभावपूर्ण होते हैं। उद्देश्य यह होता है कि प्रदर्शन से ग्राहकों में तीव्र बलवती इच्छा खरीद के लिए जगे और यह कार्य जितनी शीघ्रता से होता है, सम्भावित ग्राहकों पर इसका उतना ही अधिक प्रभाव पड़ता है।

प्रदर्शन की खिड़की की प्रकाश-व्यवस्था यथासम्भव इस प्रकार होनी चाहिए कि खिड़की की फिटिंग दिखाई न दे; हाँ, कभी-कभी बल्ब या ट्यूब इस प्रकार सजाकर लगाए जा सकते हैं कि निष्प्राण प्रदर्शन में भी जान आ जाय। खादी या हथकरघे से बने हुए कपड़ों के द्वारा प्रदर्शन को रंगीन और शानदार बनाया जा सकता है। इसी प्रकार रंगीन कागजों का कौशलपूर्वक उपयोग करके खिड़की में विरोधी रंगों का उपयुक्त नियोजन किया जा सकता है।

समय-समय पर प्रदर्शन के लिए रखी गई पुस्तकों में अदल-बदल के साथ 'सीजन' पर विशेष पुस्तकों की माँग के अवसर का भी पूरा लाभ उठाया जा सकता है। स्कूल और कॉलेज खुलने के अवसर पर पाठ्य-पुस्तकें, बाल-सप्ताह के अवसर पर बच्चों के लिए उपयोगी पुस्तकें तथा नया वर्ष, दीपावली, ईदुलफितर आदि त्योहारों के अवसर पर उपहारस्वरूप दी जानेवाली पुस्तकें, इसके अतिरिक्त स्वावलम्बन, सामान्य ज्ञान, ग्राहक अभिरुचि की अन्य पुस्तकें विशेष रूप से प्रदर्शित की जा सकती हैं।

प्रदर्शन खिड़की में जो पुस्तकें प्रदर्शित की जाएँ, उनका दुकान के भीतर भी प्रदर्शन किया जाना चाहिए। दूसरे शब्दों में, बाहर प्रदर्शित की गई पुस्तकों और दुकान में उपलब्ध पुस्तकों में एक प्रकार का तारतम्य होना चाहिए, जैसे दुकान के भीतर दो-एक शेल्फ तथा रैकों में बाहर प्रदर्शित की गई पुस्तकों के अलावा उसी विषय पर अन्य पुस्तकों का भी प्रदर्शन किया जाना चाहिए।

दुकान के भीतर बिक्री के लिए पुस्तकों की व्यवस्था और सजावट भी अत्यन्त महत्व का विषय है। जहाँ तक सम्भव हो, पुस्तकें सेल्फ या 'शो-केस' में विषय के अनुसार लगाई जानी चाहिए और शेल्फ पर विषय का संकेत होना चाहिए। पुस्तक-विक्रेताओं को इस बात पर गौर करना चाहिए कि किस पुस्तक का पूरा या सामने या केवल पृष्ठ भाग ही प्रदर्शित हो।

शेल्फ का मध्य भाग पुस्तकों के सामने के भाग को प्रदर्शित करने के लिए अत्यन्त उपयुक्त होता है। सामने का कवर प्रदर्शित करनेवाली पुस्तकों का कुछ समय के बाद केवल पृष्ठ भाग ही प्रदर्शित किया जा सकता है। आकर्षक प्रकाशन और लोकप्रिय लेखकों की पुस्तकों को प्रदर्शन में विशेष स्थान दिया जाना चाहिए। सीरीजवाली पुस्तकों को मेज या स्टैण्ड पर न लगाकर उन्हें शेल्फ में सजाना चाहिए। छोटी-छोटी पुस्तकें सामने और बड़ी पुस्तकें पीछे की ओर लगानी चाहिए। पुस्तकों की विविधता को सजावट में बल दिया जाना चाहिए। ऐसा न हो कि बहुत अधिक वर्गीकृत करने के प्रयास में उपलब्ध पुस्तकों की विविधता में कमी का आभास हो।

'पेपर-बैक' वाली पुस्तकें अन्य पुस्तकों से अलग रखी जानी चाहिए। 'पेपर-बैक' पुस्तकों की खरीददारी प्रायः दुकान में ही हो जाती है, इसलिए उन्हें विषय के अनुसार लगाने की आवश्यकता नहीं है। हाँ, उनका प्रदर्शन अत्यन्त आकर्षक होना चाहिए। ऐसे प्रदर्शन के लिए परफ़ोरेटेड शीट या बोर्ड का इस्तेमाल किया जा सकता है।

बच्चों की पुस्तकें भी अलग से प्रदर्शित की जानी चाहिए, जिससे बच्चे बिना रोक-टोक के उन पुस्तकों को उलट-पलट कर देख सकें। जहाँ तक सम्भव हो,

बालोपयोगी पुस्तकों को प्रदर्शन के लिए इस प्रकार रखा जाना चाहिए कि मुखपृष्ठ दिखाई दे।

कुछ विशेष विषयों की पुस्तकें अलग से एक-दो मेजों पर रखी जानी चाहिए, जिससे सम्भावित ग्राहकों का ध्यान उनकी ओर आकर्षित हो सके। इस प्रकार छोटे-छोटे प्रदर्शनों से ग्राहकों का ध्यान उनकी ओर केन्द्रित होता है। प्रदर्शन-खिड़की में नयी पुस्तकों को रखने के लिए वहाँ से हटाई गई पुस्तकों को दुकान के भीतर फिर प्रदर्शन के लिए रखा जा सकता है। इस प्रकार इन पुस्तकों में ग्राहकों की दिलचस्पी कुछ और समय तक बनी रहेगी।

भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रदर्शनों के लिए चुनी गई पुस्तकें समय-समय पर बदलती रहनी चाहिए। नये प्रदर्शन के साथ-साथ नई पृष्ठभूमि भी होनी चाहिए, जिससे नवीनता का आभास मिल सके। प्रदर्शन में पुस्तकों की आवृत्ति तो होगी ही, लेकिन उससे बचा भी नहीं जा सकता। वैसे पुस्तकों के आकार-प्रकार और भिन्न-भिन्न शैली के जैकेटों के द्वारा अपनी सूझ-बूझ से पुस्तक-विक्रेता प्रदर्शन की अनेक सम्भावनाओं का उपयोग कर सकते हैं। उसे यह बात बराबर स्मरण रखनी चाहिए कि बिकनेवाली पुस्तकों की अपेक्षा न बिकनेवाली पुस्तकों पर अधिक ध्यान देने की जरूरत होती है और पुरानी पुस्तकों को आकर्षक ढंग से सजाकर रखने से उनकी बिक्री की सम्भावना बढ़ जाती है।

'शो-कार्ड' और अन्य बिक्री-सामग्री शेल्फ और मेजों के ऊपर कुशलतापूर्वक रख दी जानी चाहिए।

आमतौर से प्रयुक्त शेल्फ और रैकों के अतिरिक्त दुकान में अच्छी डिजाइन के तार के बने रैक और झुकावदार तथा चारों तरफ घूम जानेवाले प्रदर्शन-स्टैण्ड की व्यवस्था की जा सकती है। इस प्रकार के विभिन्न आकार और नमूनों के स्टैण्ड बाजार से आसानी से उपलब्ध किये जा सकते हैं। तार के ये रैक और स्टैण्ड प्रायः सस्ते और बहुत ही उपयोगी होते हैं। पुस्तकों के मुखपृष्ठ के प्रदर्शन के लिए तो ऐसे स्टैण्ड बहुत ही अधिक प्रयुक्त होते हैं और इनके द्वारा कम-से-कम लागत पर अधिक-से-अधिक उपयोगिता प्राप्त की जा सकती है। घूमनेवाले रैक में स्थान कम लगता है और उसके चारों तरफ पुस्तकें प्रदर्शित करने में भी सहूलियत होती है। ऐसे रैक विशेष रूप से 'पेपर-बैक' वाली पुस्तकों के प्रदर्शन के लिए बहुत ही उपयोगी होते हैं। खासतौर से छोटी दुकानों के लिए इस प्रकार की प्रदर्शन-सामग्री बहुत ही सुविधापूर्ण होती है।

पुस्तकों की दुकान की साज-सज्जा और स्थान का उपयोग

अधिकांश दुकानों के विन्यास और साजसज्जा के सिद्धान्त मूलतः एक ही हैं। किन्तु व्यवसाय के अनुसार विन्यास का उद्देश्य बदलता रहता है। पुस्तक की दुकानों में विन्यास का लक्ष्य होता है कि पुस्तकों को उपयोगी ढंग से समुचित सजावट के साथ रखा जाए और ग्राहकों को घूम-फिरकर पुस्तकें देखने में असुविधा न हो। पाश्चात्य देशों में पुस्तक की दुकानों के भीतर सजावट की विधियों को विकसित किया गया है, किन्तु

दक्षिण एशिया के देशों में इस पहलू पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया। बड़े-बड़े शहरों की चन्द दुकानों के सिवाय आमतौर से पुस्तकों की दुकानों में न तो साज-सज्जा का आकर्षण होता है और न पर्याप्त प्रकाश की व्यवस्था ही। दुकान में उपलब्ध स्थान का बुद्धिमत्तापूर्ण उपयोग करने की ओर भी प्रायः विशेष ध्यान नहीं दिया जाता। यों भी अधिकांश दुकानों में खाली स्थान बहुत-ही सीमित होता है। इसी कारण यह अत्यन्त आवश्यक हो जाता है कि उपलब्ध स्थान का उपयोग कुशलतापूर्वक किया जाए। सर्वप्रथम पुस्तक-विक्रेता को यह महसूस करना चाहिए कि पुस्तक की दुकान में सजावट, व्यवस्था और विन्यास के आकर्षण की उतनी ही आवश्यकता है जितनी फैशन-सम्बन्धी सामग्री रखनेवाली दुकानों में। पहला उद्देश्य तो यही होता है कि साज-सज्जा से आकर्षित होकर ग्राहक दुकान में प्रवेश करे और यदि ग्राहक दुकान के भीतर आ गया है तो वह बिक्री की सामग्री में पर्याप्त दिलचस्पी ले। इन दुकानों में बिक्री की सामग्री तो किताबें ही होंगी, जिनकी प्रायः उतनी माँग नहीं होती है, जितनी कि दैनिक उपयोग में आनेवाली अन्य वस्तुओं की हो सकती है। इसलिए ग्राहक को दुकान में प्रवेश कराने के लिए विशेष प्रयास की आवश्यकता होगी। जब तक कि दुकान बाहर से देखने में आकर्षक नहीं लगती तब तक ग्राहक उधर आकृष्ट नहीं होंगे और जब तक पुस्तकों को इस प्रकार सजाकर न रखा जाए कि उनमें ग्राहक की अभिरुचि पैदा हो सके, तब तक वह उपलब्ध पुस्तकों को घूम-फिरकर देखने में ज्यादा दिलचस्पी नहीं लेगा।

दुकानदार को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि दुकान के भीतर रंग-बिरंगे सजावट और समुचित प्रकाश-व्यवस्था से आकर्षित होकर ही ग्राहक दुकान में प्रवेश करेंगे। रंग-बिरंगी साज-सज्जा का व्ययसाध्य होना जरूरी नहीं है। यदि दीवारों पर डिस्टेम्पर करवाना तथा अन्य साज-सज्जा सम्भव न हो, तो महज अच्छे रंग से पुताई करवा देने से भी काम चल सकता है। भूरे, हरे और बादामी रंगों का इस्तेमाल किया जा सकता है और शोख रंग के साथ हल्के रंग का मेल खपाया जा सकता है। पुस्तक-विक्रेता को मेल खानेवाले रंग पसन्द न हों तो वह विरोधी रंगों का उपयोग कर सकता है। दुकान के पिछले भाग में किसी गहरे रंग से पुताई करवाई जा सकती है और दूसरी तरफ हल्के रंग या सफेदी का इस्तेमाल किया जा सकता है। हाँ, दीवारों का अच्छी स्थिति में होना बेहद जरूरी है। फर्श ऊबड़-खाबड़ न हो और न उसमें दरारें हों। कम-से-कम उस पर सीमेन्ट का अच्छा पलस्तर तो होना ही चाहिए। अगर सम्भव हो तो फर्श हल्के आकर्षक रंगों के मोजेक या टाइल्स का होना चाहिए। मामूली किस्म के सीमेन्ट के फर्श को भी जूट या नारियल के रेशे की दरी या लाइनोलियम के द्वारा काफी आकर्षक बनाया जा सकता है। किन्तु इसके साथ अत्यन्त आवश्यक है कि दुकान का फर्श साफ-सुथरा, दीवार रौनकदार और आकर्षक हो।

बिजली के युग में समुचित प्रकाश की व्यवस्था कर सकना कठिन नहीं है। फिर भी अकसर बहुत-सी तुकानों में छत में लगे हुए धीमी रोशनी वाले बिना शेड के बल्ब टिमटिमाते दिखाई देते हैं। इस समस्या को फ्लोरेसेन्ट ट्यूब लगाकर आसानी से हल किया जा सकता है, यद्यपि इसकी आकर्षक सज्जापूर्ण व्यवस्था खर्चीली अवश्य होती है।

सादे रिफलेक्टर के साथ लगे हुए फ्लोरेसेन्ट ट्यूब लगाने से भी काम चल सकता है, बशर्ते कि उन्हें इस तरह लगाया जाए कि सभी शेल्फों पर उनका प्रकाश पड़ सके। आजकल दीवारों पर विशेषकर सुनियोजित आधुनिक प्रकाश-व्यवस्था काफी किफायत से हो सकती है। इनके द्वारा दुकान के वातावरण में आकर्षण पैदा किया जा सकता है। यदि सारे बल्ब ही लगाने हों तो उन्हें रंग-बिरंगे प्लास्टिक शेड के साथ आकर्षक ढंग से लगाना चाहिए। तरह-तरह की आकृतियों के रंग-बिरंगे प्लास्टिक शेड सस्ती दरों पर बाजार में उपलब्ध हैं।

जहाँ तक पुस्तकों के प्रदर्शन के लिए रैक्स और शेल्फ का सवाल है, पुस्तक-विक्रेता को यह ध्यान में रखना चाहिए कि औसत ग्राहक २ या २½ फीट से नीचे या ७ या ७½ फीट से ऊँचाई पर रखी हुई पुस्तकों को नहीं देखेगा। इसलिए शेल्फ की व्यवस्था बहुत ऊँची नहीं होनी चाहिए और प्रत्येक शेल्फ के नीचे के खानों का बन्द आलमारी के रूप में पुस्तकों की अतिरिक्त प्रतियाँ रखने के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है। हर शेल्फ या रैक पर प्रदर्शित की हुई पुस्तकों के विषय का नाम छपी हुई पट्टियों में लगा दिया जाना चाहिए।

शेल्फ का सम्बन्धित खाना लगभग एक फुट ऊँचा होना चाहिए, अन्यथा पुस्तकों को विषयानुसार न रखकर आकार के अनुसार ही रखना पड़ता है। लेकिन, इसमें कोई सन्देह नहीं कि छोटे आकार की पुस्तकों के लिए छोटे खाने और बड़े आकारवाली पुस्तकों के लिए बड़े खानों की अपनी एक अलग उपयोगिता है। हाँ, इनमें यह सावधानी बरतनी पड़ती है कि कहीं दूसरे विषय की पुस्तकें भी उसमें घुल-मिल न जाएँ। शेल्फ इतने मजबूत होने चाहिए कि वे किताबों का भार बखूबी सम्भाल सकें। सबसे अधिक सुविधाजनक व्यवस्था है शेल्फों को दीवार के सहारे लगाना। अगर स्थान पर्याप्त हो, तो दुकान के बीच में भी शेल्फ की एक कतार लगाई जा सकती है। हाँ, जब तब पर्याप्त स्थान न हो, तब तक दीवार से लेकर मध्य तक एक तरफ या दोनों तरफ शेल्फ नहीं लगाने चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से बिक्री के सीजन में बहुत अधिक भीड़-भाड़ हो जाती है और इनसे वह जगह भी घिर जाती है जिसमें छोटी-छोटी मेज या विशेष रूप से बनवाई गई डेस्क लगाकर भारी-भारी शब्दकोश अथवा ऐसे अन्य ग्रन्थ प्रदर्शन के लिए रखे जा सकते हैं जिन्हें ग्राहक सुविधापूर्वक देख सके।

ग्राहकों के आराम के लिए बिजली के पंखों की व्यवस्था होनी चाहिए और यदि सम्भव हो तो एक ऐसी छोटी मेज और एक-दो कुर्सियों की व्यवस्था होनी चाहिए जिससे पाठक इस पर बैठकर सुविधापूर्वक उलट-पुलटकर किताबों का निरीक्षण कर सके।

छोटी-छोटी दुकानों में भी अधिक पुस्तकों के प्रदर्शन के लिए तार के रैक या प्रदर्शन-स्टैण्ड की व्यवस्था की जा सकती है। यदि सम्भव हो तो शेल्फ के बगल में भी तार के कुछ छोटे स्टैण्ड लगाए जा सकते हैं।

बुद्धिमत्तापूर्ण विन्यास के लिए निम्नलिखित सिद्धान्त ध्यान में रखने की आवश्यकता होगी—

१. विभागीकरण : पुस्तकों को विभिन्न श्रेणियों के अन्तर्गत विभक्त करके प्रदर्शित किया जाए, जिससे कि प्रत्येक वर्ग का भली-भाँति प्रदर्शन हो सके।

२. गतिशीलता : ग्राहक को पुस्तकों का निरीक्षण करने और सहायक कर्मचारियों की सेवा प्राप्त करने के लिए दुकान में घूमने-फिरने में असुविधा नहीं होनी चाहिए।

३. पुस्तकों तक ग्राहकों की पहुँच : इसका सम्बन्ध गतिशीलता के सिद्धान्त से ही है। उद्देश्य यह होना चाहिए कि शेल्फ और पुस्तकें इस प्रकार सजाई जाएँ कि नजर के सामने आनेवाली पुस्तकों को ग्राहक आसानी से देख सकें तथा निरीक्षण के लिए प्राप्त कर सकें।

४. घनात्मक स्थान : दुकान के शीर्ष स्थान का सदुपयोग होना चाहिए। इस स्थान के एक भाग का प्रदर्शन-सामग्री के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है। यह प्रदर्शन सामग्री या तो दीवार पर लगा दी जाए या लटका दी जाए। कुछ हद तक संयमित रूप से सजावट की जा सकती है, किन्तु इसका अतिरेक नहीं होना चाहिए।

५. अन्य बातों के अनुरूप सन्तोष और सुरक्षा से सम्बद्ध सुविधाएँ : दुकान का विन्यास इस प्रकार होना चाहिए कि कर्मचारियों और ग्राहकों को दुकान के भीतर किसी तरह की असुविधा या उकताहट महसूस न हो। समुचित हवा, प्रकाश की व्यवस्था, यथासम्भव ताप-नियन्त्रण, धूल और शोर-शराबे से बचने आदि से सम्बद्ध बातों को नजर में रखना होगा।

६. विन्यास में आवश्यकता के अनुरूप हेर-फेर कर सकने की गुंजाइश : दुकान का भीतरी विन्यास इस प्रकार होना चाहिए कि आवश्यकता के अनुसार उसमें परिवर्तन-परिवर्द्धन किया जा सके, जिससे बिक्री के भीड़-भाड़ के सीजन में बिना किसी कठिनाई के व्यवस्था में शीघ्र ही थोड़ा बहुत रद्दोबदल कर सकना सम्भव हो।

जहाँ तक दुकान के बाहरी भाग का सम्बन्ध है, कोशिश यह करनी चाहिए कि दीवारों पर सफ़ेदी या रंगाई कराकर उन्हें अधिकाधिक आकर्षक रखा जाए। प्रदर्शन के लिए इस्तेमाल किए जानेवाले प्रकोष्ठों को भी खूब सजाकर रखना चाहिए। प्रवेश-द्वार का भी पर्याप्त आकर्षक होना जरूरी है; जहाँ तक सम्भव हो उसे गली की सीध में ही होना चाहिए। पुस्तक की दुकान का चाहे जो नाम रखा जाए, लेकिन साइनबोर्ड से यह स्पष्ट होना चाहिए कि वह पुस्तक की दुकान है। दूसरे प्रकार की दुकानों के समान ही पुस्तक की दुकानों के लिए साइनबोर्ड बनवाने में बहुत ही अधिक मौलिकता और सूझ-बूझ चाहिए। औसत दुकानों में, जहाँ अधिक जगह नहीं होती और उनकी चौड़ाई लम्बाई अपेक्षाकृत बहुत कम होती है, दरवाजे के करीब सामान की ठूँस-ठाँस को कुशलतापूर्वक बचाना चाहिए, जिससे ग्राहक को दुकान में प्रवेश करने में असुविधा न हो।

दुकान के भीतर कम-से-कम ऑफिस-फर्नीचर रखा जाना चाहिए। फर्नीचर इस प्रकार का हो कि वह उपयोगी हो और कम-से-कम स्थान घेरे। जहाँ तक सम्भव हो, कैश और डिलीवरी काउण्टर एक ही होने चाहिए। इससे कार्य में सुगमता होगी और चाहे दुकान में एक ही कर्मचारी क्यों न हो, दुकान का पूरा दृश्य नजर के सामने रखना भी सम्भव होगा।

दुकान के पिछले भाग का पैकिंग, बाहर भेजनेवाली पुस्तकों के कन्साइन्मेन्ट करने और अतिरिक्त पुस्तकें स्टोर करने के लिए इस्तेमाल किया जाना चाहिए। जहाँ तक पुस्तकों को जमा रखने का सवाल है, बेहतर होगा यदि इसके लिए अलग से स्टॉक-कक्ष की व्यवस्था की जाय, अन्यथा दुकान का पिछला भाग इस काम के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है। बहरहाल जैसे भी हो, स्टॉक बहुत साफ-सुथरे और व्यवस्थित तरीके से ऊँचे-ऊँचे स्टील या टीक-जैसी मजबूत लकड़ी के बने रैकों में रखा जाना चाहिए। लकड़ी का चुनाव करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि ऐसी लकड़ी हो जिसकी सजावट में कल्पना और सूझ-बूझ का पूरा उपयोग हो। निःसन्देह जितनी अधिक बड़ी दुकान होगी, उसमें उतनी ही अधिक विशेषताओं को स्थान देने की सम्भावना होगी, लेकिन फिर भी १०' X २०' जैसे क्षेत्रफल की दुकानों में भी कुशलतापूर्वक विन्यास करके उनका उपयोग प्रदर्शन-कक्ष, स्टॉक-कक्ष और ऑफिस तीनों रूपों में किया जा सकता है।

विंक्रय और प्रचार-प्रसार की समस्याएँ

सबसे बड़े जनतांत्रिक देश भारत के लंबे ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक सिलसिलों को देखकर यह कहना सही होगा कि दुनिया के नक्शे में इतने अधिक रिश्ते को आपस में जोड़नेवाला कोई दूसरा देश नहीं है। लेकिन आजादी के बालिग होने के बावजूद, आज भी 'रोटी' और 'रोज़ी' जहाँ एक आम बड़ी समस्या बनी हुई है, वहाँ पुस्तकों की बिक्री और उसके प्रचार-प्रसार की समस्या कोई खास अहमियत नहीं रखती। यह भी एक सच्चाई ही है कि दिमागी खुराक की जरूरत पेट की खुराक पूरी होने पर ही महसूस होती है। लेकिन हमारे देश में दिमागी खुराक भी सीधे-सीधे पेट की भूख से जुड़ी दिखाई पड़ती है।

गो, यह एक प्रीतिकर सत्य है कि हमारे देश में प्रति वर्ष लाखों नये पाठक तैयार हो रहे हैं। आँकड़े बताते हैं कि इस संख्या में हिन्दी की पुस्तकों के पाठक अनुपातत: सर्वाधिक हैं। लेकिन दोषपूर्ण शिक्षा-प्रणाली और परिस्थितियों-मजबूरियों के कारण ये पाठक मौका पाते ही पुस्तकों से नाता तोड़ लेते हैं। असल में इनके लिए पुस्तकें महज एक बैसाखी का काम करती हैं—जो इन्हें सिर्फ किसी दफ्तर के दरवाजे तक पहुँचने में मदद देती हैं। कहा जा सकता है कि हमारे यहाँ जब तक शिक्षित होने का मतलब 'बाबूगीरी' माना जाता रहेगा, तब तक साहित्यिक-सांस्कृतिक पुस्तकों के विक्रय और प्रचार-प्रसार की भीषण समस्यांओं का सिलसिला बढ़ता ही जायेगा। माना कि जमाने की हवा आज़ फिलहाल खिलाफ है, लेकिन मनुष्य की मौलिक भूख के आगे इस खिलाफत को पनाह माँगनी पड़ेगी। यह एक ऐतिहासिक सत्य ही नहीं, मनुष्य की आन्तरिक बनावट की अनिवार्य नियति है। बहु-आयामी जीवन को उसकी तमाम आपाधापी के बावजूद पुस्तकें मनुष्य को दिशा-निर्देश देती रहती हैं, जिन्दगी को न सिर्फ खुश रखने की, बल्कि जीने लायक बनाने की जिम्मेदारी भी अच्छी पुस्तकें निभाती हैं।

समस्या के प्रमुख आयाम

पुस्तकों के विक्रय और प्रचार-प्रसार की समस्याओं को समझने के लिए हमें कई मुद्दों पर विचार करना होगा। मसलन लेखकीय समस्याएँ, अखबारी समस्याएँ, सरकार द्वारा दी गयी समस्याएँ और प्रकाशकीय समस्याएँ। पाठक और पुस्तक-विक्रेता की समस्याएँ भी किसी न किसी रूप में इन्हीं में समाहित हैं। विचार के लिए सबसे पहले हम लेखक तथा जनित समस्याओं को लें।

सृजेता यानी लेखक की हैसियत और उसकी भूमिका किसी भी जीवित देश या व्यक्ति के लिए एक बहुत बड़ा अवदान है। लेकिन यह एक दुखद सत्य है कि हिन्दी में

नये लेखन के नाम पर आज जो साहित्य हमारे सामने आ रहा है वह आतिशबाजी ज्यादा, साहित्य कम है। नयी पीढ़ी के अधिकांश लेखकों के सृजन को देखकर यह हरगिज़ नहीं लगता कि वे अपने परिवेश के प्रति सजग, प्रतिबद्ध और जिम्मेदार हैं। इस सन्दर्भ में हिन्दी के नये कथा-साहित्य की हालत ज्यादा पतली है। दरअसल प्रेमचन्द जी के बाद यह जमीन लगभग परती दिखाई पड़ रही है। कुछ पेड़ जरूर लगे हैं, लेकिन उनके आधार पर किसी 'वृन्दावन' की कल्पना करना बेईमानी होगा।

अख़बारी समस्या

हिन्दी प्रकाशनों के विक्रय एवं प्रचार-प्रसार के कामों में हिन्दी की पत्र-पत्रिकाएँ अच्छा सहयोग दे सकती हैं। लेकिन यह भी एक अप्रीतिकर सत्य है कि इस दिशा में अपेक्षाओं के मुकाबले ज्यादातर निराशा ही हाथ आयी है। हिन्दी की कुछेक पत्र-पत्रिकाओं को छोड़ प्राय: सबके पुस्तक समीक्षा स्तम्भ की हालत खस्ता है। संभवत: उन पत्र-पत्रिकाओं के सामने पुस्तक समीक्षकों की दिक्कत है। अच्छी पुस्तकों की महत्वपूर्ण समीक्षाओं का असर प्रबुद्ध पाठकों पर अवश्य ही पड़ता है। लेकिन हिन्दी पुस्तकों के प्रचार-प्रसार का यह महत्वपूर्ण माध्यम भी अपनी सीमाओं और परिस्थितियों के कारण दिन पर दिन कमजोर होता गया है और लगभग बेअसर हो चुका है। उल्लेखनीय है कि प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं का यह नैतिक कर्त्तव्य है कि वे हिन्दी-पुस्तकों की बिक्री और उसके प्रचार-प्रसार में अपना पूरा सहयोग दें तथा अपने पुस्तक-समीक्षा स्तम्भ में उन्हें अपेक्षित महत्व दें। इस सन्दर्भ में हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं को पुस्तकों के विज्ञापनों में भी विशेष सुविधाएँ देनी चाहिए, ताकि छोटी पूँजी वाले प्रकाशकों के प्रकाशनों की कृतियाँ भी सही पाठकों के आगे उजागर हो सकें। विज्ञापन कला की आधुनिकतम उपलब्धियाँ अधिक व्यय-साध्य होने के कारण हिन्दी के प्रकाशकों की पकड़ से बाहर जैसी हैं। अत: प्रकाशकों और पत्र-पत्रिकाओं के बीच सहयोग-सद्भाव का होना बहुत जरूरी है। विज्ञापन-कला के नवीनतम तरीकों का व्यवहार भी हिन्दी प्रकाशनों के विक्रय और प्रचार-प्रसार को बढ़ाने में अत्यधिक सहायक हो सकता है। हिन्दी के अनेक प्रकाशन-संस्थानों की प्रचार-पत्रिकाएँ, 'मसलन प्रकाशन समाचार', 'हिन्दी प्रचारक', 'ज्ञानपीठ पत्रिका', 'नया साहित्य', 'पुस्तक-परिचय' तथा अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ के मुखपत्र 'हिन्दी-प्रकाशक' आदि ने भी हिन्दी पुस्तकों की बिक्री बढ़ाने में काफी योग दिया है।

सरकारी कृपा के मोहताज

अधिकांश हिन्दी के लेखक, प्रकाशक और पुस्तक-विक्रेता किसी न किसी रूप में सरकारी 'कृपा' के मोहताज दिखाई पड़ते हैं। पुस्तकों की खरीद के लिए विभिन्न माध्यमों को सरकार से मिलता अनुदान तो हिन्दी प्रकाशकों की विक्रय-समस्या के लिए संजीवनी है। राजधानी दिल्ली में सरकारी खरीद के मौके पर मेला लग जाता है। कम पूँजीवाले प्रकाशकों की तो बात ही छोड़िए, हिन्दी के अनेक नामी प्रकाशक भी इस 'विष' को

फिलहाल 'अमृत' समझ कर पीने के लिए दूर-दूर से यहाँ पहुँच जाते हैं। हर साल लगभग एक महीने राजधानी पुस्तक-प्रकाशकों-विक्रेताओं की भीड़ से आबाद रहती है।

अक्सर हिन्दी के प्रकाशकों को इस दर्द का इजहार करते सुना गया है कि हिन्दी में पाठक नहीं के बराबर हैं और यदि साहित्यिक पुस्तकों की सरकारी खरीद बन्द हो जाये तो यह व्यवसाय ठप्प पड़ सकता है। इस मुद्दे पर हम आगे बात करेंगे, यहाँ इतना ही कहना काफी होगा कि फिलहाल यह स्थिति है प्रकाशकों की, और निस्सन्देह यह स्थिति समूचे अक्षर-जगत के लिए लज्जास्पद भी है।

और सरकारी लेखक!

पुस्तकों की सरकारी खरीद पर आश्रित होने का साफ मतलब है कि हम सबका वर्तमान और भविष्य बन्द सरकारी अँधेरे कमरों में कैद हो गया है। हमारी टकटकी कुछ फाइलों, मुलाजिमों और स्वीकृति देनेवाली सरकारी उँगलियों पर ही लगी रहती हैं। मौके का सही-गलत फायदा तो हर कोई उठाता है। इसलिए सरकारी तंत्र ने हमें दिये हुए अवसर का लाभ उठाया तो आश्चर्य की बात नहीं। पुस्तकों की खरीद में टेण्डर-प्रणाली, सिफारिश, भाई-भतीजावाद—इन सारे हथकंडों का अपने-अपने तरीके से इस्तेमाल सरकारी तंत्र में आम बात हो चुकी है। और तो और देखते ही देखते जाने कितने 'सरकारी लेखकों' की पुस्तकों की हजारों प्रतियाँ अनुदानी खरीद में खप गयीं। सवाल उठता है कि ऐसे 'लेखकों' की पुस्तकें किसनें छापी, किसने लिखीं और किन सूत्रों ने बिकवायी? टेण्डर प्रणाली के सन्दर्भ में एक बात याद आती है। अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ का एक प्रतिनिधि मंडल श्री जवाहरलाल नेहरू से इस मसले पर बात करने कें लिए मिला था। नेहरू जी ने प्रतिनिधि-मंडल से स्पष्ट कहा था कि किताबों के साथ टेण्डर-प्रणाली अनुचित है। किताबें मोल-भाव से नहीं बिकनीं चाहिए। बहरहाल, सरकार सरकार है। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि पुस्तकों के विक्रय में सरकारी सहयोग को हम नकार दें। किसी न किसी रूप में सरकारी तंत्र ने पुस्तक-व्यवसाय की सहायता अवश्य की है। जैसे सरकार ने पुस्तक-व्यवसाय को प्रोत्साहित करने के लिये आयकर में २० प्रतिशत की छूट दी है।

दमघोंट सरकारी तंत्र

देश पर जब भी कोई छोटा-बड़ा संकट आया—समूचा प्रकाशन-व्यवसाय उससे तुरंत प्रभावित हुआ। कहा भी जाता है कि कमजोर हर मौके पर पीड़ित किया जाता है। लेकिन यह दुखद है कि सरकार ने बड़े-बड़े उद्योगों को तौलनेवाले बटखरों का इस्तेमाल प्रकाशन-उद्योग का भी मूल्य निर्धारित करने में किया। किताबों की खरीद के लिए स्वीकृत अनुदानों का उचित उपयोग हो रहा है या नहीं—यह पड़ताल करने के बजाय अनुदानों में कटौती, कागजों के मूल्यों में भारी वृद्धि, लालफीताशाही की दमघोंट प्रक्रियाएँ, सही और गलत की विवेकहीन पहचान आदि बातें प्रकाशन-व्यवसाय को सरकारी तंत्र से मिली। कहना न होगा कि इन तमाम प्रसंगों में हिन्दी के प्रकाशन-व्यवसाय को महत्वपूर्ण सरकारी निर्देश अपेक्षित थे।

इसी सन्दर्भ में एक दूसरी बात—केन्द्र और हिन्दीभाषी अनेक राज्य सरकारों द्वारा भी हिन्दी की पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। निस्सन्देह सरकारी प्रकाशन महत्वपूर्ण हैं और उनका प्रस्तुतिकरण भी आकर्षक हैं, लेकिन उन प्रकाशनों का विक्रय एवं प्रचार-प्रसार सरकार के लिए भी एक विकट समस्या है। कई करोड़ रुपये की पुस्तकें सरकारी गोदामों में सही पाठकों के इन्तजार में बँधी लावारिस पड़ी हैं। सरकारी तंत्र की इस व्यवस्था को क्या कहा जा सकता है—यह बताने की जरूरत नहीं। दरअसल यदि इतनी धनराशि का सदुपयोग प्रकाशकों के माध्यम से सत्साहित्य के प्रकाशन और उचित प्रचार-प्रसार में किया जाता तो ज्यादा बड़े और उपयोगी परिणाम हाथ आते। अब हिन्दी-प्रकाशनों के प्रचार-प्रसार एवं विक्रय के सन्दर्भ में कुछ तथ्यों का उल्लेख करने का मतलब है अपने बारे में ही बात करना।

पाठकों की कमी का झूठा रोना

समग्र हिन्दी प्रकाशन-व्यवसाय पर सोचते समय आँखों के आगे एक इतिहास आकर खड़ा हो जाता है। बीते समय की उपलब्धियों को देखकर खुशी होती है, साथ ही गौरव का भी अनुभव होता है। लेकिन इतनी लम्बी विकास-यात्रा के बाद जब आज की परिस्थितियों पर निगाह पहुँचती है तो मन मसोस उठता है। कहाँ खो गयी वह चेतना, वह 'मिशनरी स्पिरिट'? किस अभाव का धुन इस व्यवसाय की जड़ में लग गया? किस खोट ने हमारे आगे समस्याएँ ही समस्याएँ फेंक दीं? वैसे तो यह गहरे मन्थन का विषय है, फिर भी तत्काल जो बात उभर कर आती है, वह है इस व्यवसाय में लगे अधिकांश लोगों में 'मिशनरी स्पिरिट' का अभाव। इसके अलावा व्यवसाय की चेतना, उसके दायित्वों और मूल्यों की भरसक उपेक्षा। यह स्वीकार करने में तनिक भी संदेह नहीं कि हिन्दी प्रकाशकों ने अपनी व्यावसायिक समस्याओं के तात्कालिक समाधान के लिए किसी भी सही-गलत रीति से भुनाने में ही अपनी शक्ति केन्द्रित कर दी है।

जिस देश के राष्ट्रभाषा का प्रकाशक अपने प्रकाशनों के लिए पाठकों की कमी का रोना रोता है, सचमुच वह अपनी जिम्मेदारियों से दूर भागता है। इसी सन्दर्भ में सन् १९३२ की बातें याद आ रही हैं। बिना किसी अनुदान के, मात्र जनता से सीधे संपर्क के द्वारा हिन्दी में छपी 'दारोगा दफ्तर' सीरीज़ के उपन्यासों की चालीस हजार प्रतियाँ बिकती थीं। पौराणिक ऐतिहासिक कहानी और उपन्यास आदि की पुस्तकें धड़ल्ले से भारी संख्या में पाठकों के पास पहुँचती थीं। अनेक सांस्कृतिक पुस्तकें थीं जिनके दस हजार प्रतियों के संस्करण कुछ ही महीने में चुक जाते थे। आखिर क्या कारण है कि नामवर लेखकों की अच्छी कृतियों की दो हजार प्रतियाँ बिकने में भी आज सालों बीत जाता हैं। तर्क दिया जा सकता है कि उन दिनों सत्साहित्य को पढ़ने की भूख पाठकों में थी, जो अब नहीं है। यह तर्क सच्चाई से काफी दूर है। अच्छे साहित्य के पाठक आज भी हैं, बल्कि कई गुना ज्यादा हैं। लेकिन खेद तो इस बात का है कि उन पाठकों के पास तक हम और हमारे प्रकाशन पहुँच नहीं पाते। शायद पहुँचने की कोशिश भी हम नहीं करते। हम हिन्दी के प्रकाशक और पुस्तक विक्रेता अपने सही पाठकों से दूर, उन तक सीधे पहुँचने की बजाय सरकारी अनुदानों पर टकटकी लगाये जोड़-तोड़ की गुत्थी में उलझे रहते हैं।

प्रचार एवं सूची सेवा का अभाव

इसी प्रसंग में हिन्दी के प्रकाशकों की प्रचार-प्रसार प्रणाली पर सोचा जा सकता है। एक आँकड़ा बताता है कि प्रारंभ में विदेशों के प्रकाशक अपने प्रकाशनों के विज्ञापन और प्रचार-प्रसार में अपनी पूँजी का ६० प्रतिशत व्यय करते हैं, शेष ४० प्रतिशत पुस्तकों की तैयारी में। लेकिन लगभग चालीस करोड़ पाठकों का हिन्दी प्रकाशक ठीक इसके विपरीत चलता है, बल्कि और भी गयी-गुजरी हालत में। क्या यह प्रक्रिया व्यवसाय के हित में हो सकती है? बताने की जरूरत नहीं कि हिन्दी के प्रकाशनों की दूषित प्रचार-पद्धति, प्रबुद्ध पाठकों तक नई पुस्तकों की आवश्यक परिचयात्मक जानकारी का न पहुँचना, सूची-सेवा का अभाव, पुस्तक-विक्रेताओं को उचित महत्व और प्रोत्साहन न देकर स्वयं प्रकाशकों द्वारा विक्रय के लिए साँठ-गाँठ, ग्रामीण पाठकों की घोर उपेक्षा, पुस्तकों के मूल्यों में मनमानी वृद्धि, और सबसे बढ़कर आपसदारी का अभाव—आदि कुछ ऐसे तथ्य हैं जिनका फल हिन्दी का प्रकाशन-व्यवसाय बखूबी झेल रहा है। आज जबकि यूनेस्को ने हिन्दी को मान्यता देने पर विचार प्रारम्भ कर दिया है और मारिशस, सूरिनाम फिजी, ट्रिनीडाड जैसे देशों में हिन्दी पुस्तकों की माँग हो रही है, उस हिन्दी का प्रकाशक पाठकों के अभाव को लेकर उदास हो—सचमुच हैरानी की बात है।

लेकिन यह हैरानी तब तक बरकरार रहेगी जब तक समूचे हिन्दी-प्रकाशन जगत् में नये संकल्प, नयी चेतना, नयी दृष्टि और नयी प्रक्रियाओं का अभाव बना रहेगा। नये निर्माण के लिए सही तोड़-फोड़ (डिस्ट्रक्शन फार न्यू क्रिएशन) जरूरी है। हिन्दी के प्रकाशन-व्यवसाय में भी सारी समस्याओं से निजात पाने के लिए सलीके का तोड़-फोड़ अब जरूरी है, और यह प्रक्रिया क्रान्तिकारिता के स्तर तक अपनानी होगी।

एक और कड़ी–विक्रेता

एक नये लेखक-मित्र ने कुछ दिनों पहले उदास होकर कहा था: अब तो अधिकांश हिन्दी प्रकाशक दो ही तरह की किताबें छाप और बेच रहे हैं—या तो 'कोर्स बुक' या फिर 'इण्टरकोर्स बुक'। अवश्य ही यह सुनकर हँसी आयी मगर माथा भी झुका। मित्र की बात में पीड़क सच्चाई थी। यह माना जा सकता है कि हर प्रकाशक के पास प्रेमचन्द, प्रसाद, निराला, महादेवी, यशपाल, अमृतलाल नागर, अज्ञेय सरीखे लेखक नहीं हैं, लेकिन यह भी सत्य है कि अपनी शुतुरमुर्ग-पद्धति पर चल कर हम इन—जैसी नयी प्रतिभाओं को नजर-अन्दाज कर रहे हैं। असल में, जरूरत है सही दृष्टि की—नयी पीढ़ी में सही और कालजयी लेखन के परख की। हिन्दी के प्रकाशन-व्यवसाय को जीवित रखने के लिए सही ढंग से नयी प्रतिभाओं की खोज आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है। यह सत्य है कि नयी लेखन-प्रतिभाएँ गलत हाथों का मोहरा बन गयी हैं। उन्हें अपेक्षित प्रोत्साहन का न मिलना भी अच्छे साहित्य के अभाव का एक बड़ा कारण है। इसी प्रकार क्षेत्रीय भाषाओं की साहित्यिक उपलब्धियों का भी सहयोग लिया जाना चाहिए। देश में

चल रहे अँगरेजीवाद की पेशेबन्दी से मोरचा लेना भी हिन्दी प्रकाशक की भारी जिम्मेदारी है। क्षेत्रीय भाषाओं की प्रतिष्ठित कृतियों से नाता जोड़कर इस दायित्व का निर्वाह भी किया जा सकता है।

पूरे देश में लगभग तीस हजार से अधिक हिन्दी पुस्तक-विक्रेता हैं। कहना न होगा कि हिन्दी पुस्तकों की बिक्री बढ़ाने में इन विक्रेताओं से बहुत सहयोग मिल सकता है। समझने की बात है कि यदि किसी पुस्तक की एक प्रति भी प्रति-पुस्तक-विक्रेता द्वारा बेची जाये तो सहज ही कोई अच्छी कृति की तीस हजार प्रतियाँ पाठकों तक पहुँच सकती हैं। लेकिन इस व्यवस्था को कारगर करने के लिए हमें पुस्तक-विक्रेताओं को सहयोगी बनाना होगा, उन्हें अपेक्षित सुविधाओं के साथ प्रचार-प्रसार सामग्री देनी होगी, साथ ही उन्हें व्यावसायिक व्यावहारिकता से भी सम्पन्न बनाना होगा। ग्रामीण पाठकों से सम्बद्ध पुस्तक-विक्रेताओं का भी उपयोग इसी सन्दर्भ में करना चाहिए। इस दिशा में कुछ काम अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ ने किया हैं। अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ और नेशनल बुक ट्रस्ट के सत्प्रयासों से कई पुस्तक-प्रदर्शनियाँ भी समय-समय पर आयोजित की गयीं और उनके अनुकूल परिणाम भी निकले। संघ ने महत्वपूर्ण मसलों को हल करने की कोशिशें की हैं। लेकिन संघ के कर्णधारों की मनोवृत्ति और विचारों में तालमेल न होने के कारण संघ की उपलब्धियाँ बहुत ठोस रूप न ले सकीं। पुस्तक-प्रदर्शनियों का असर पाठक पर पड़ता है। अत: सहयोगी भाव से समय-समय पर देश के विभिन्न अंचलों में पुस्तक-प्रदर्शनियाँ आयोजित होनी चाहिए। बिक्री बढ़ाने की गरज से बुक-क्लब योंजना भी असरदार होगी। 'बुक क्लब' के द्वारा विभिन्न विषयों की अच्छी पुस्तकें सुरुचि-सम्पन्न पाठकों को लगभग आधे मूल्य पर उपलब्ध करायी जा सकती हैं।

सहकारी प्रकाशन

अंत में एक बात और—देश में छोटी पूँजीवाले बहुत से प्रकाशक हैं। अच्छा होगा यदि इस तरह के प्रकाशक सहकारी (कोआपरेटिव) रीति से काम करें। इस प्रक्रिया से स्वयं उनकी तथा सम्पूर्ण हिन्दी प्रकाशन तंत्र की विक्रय और प्रचार-प्रसार की समस्याओं के समाधान की संभावनाएं जुड़ेंगी।

कुल मिलाकर स्थिति बहुत निराश होने की नहीं है। जरूरत है—प्रबुद्ध और सुरुचि सम्पन्न पाठकों को अपनी भाषा, अपने साहित्य और अपनी सांस्कृतिक उपलब्धियों से परिचित कराने की और सम्पन्न बनाने की। वास्तव में कठिनाई तो अपने ही अन्दर से, अपनी निजी प्रकृति से आती है। इसलिए जरूरत है नयी संकल्प-शक्ति, नयी चेतना और नयी संभावनाओं के प्रति आस्था के साथ 'निजी-प्रकृति' को सही परिप्रेक्ष्य में जोड़ने की।

❀

अपने ग्राहक को पहचानिए

पुस्तक-विक्रेता के लिए ग्राहक केवल वे ही लोग नहीं है जो अपनी आवश्यकतानुसार उसके पास से पुस्तकें खरीदते हैं—जैसे छात्र, अध्यापक, शिक्षा-संस्थाएँ, पुस्तकालय तथा नियमित व अनियमित ग्राहक। वास्तव में ग्राहकों की कोटि में वह सारी आमजनता भी शामिल है जो पुस्तक-विक्रेता का सम्भावित ग्राहक बन सकती है। प्राय: औसत पुस्तक-विक्रेता इस अन्तिम कोटि की उपेक्षा करता है। यह ठीक ही है कि पुस्तकों की खरीद करनेवाले नियमित ग्राहकों की परवाह करनी ही चाहिए, लेकिन तेजी से साक्षर, शिक्षित और जागरूक हो रही असंख्य आमजनता में लगभग सभी प्रकार की पुस्तकों की बिक्री में वृद्धि होने की असीमित सम्भावनाएँ निहित हैं। वास्तव में इस क्षेत्र की सम्भावनाओं का पता लगाने और उनका उपयोग करने की आवश्यकता है। इसलिए पुस्तक-विक्रेता को अपना ध्यान सभी वर्ग तथा विविध एवं व्यापक अभिरुचियोंवाली आमजनता की ओर केन्द्रित करने की आवश्यकता है। पुस्तक-विक्रेता को चाहिए कि वह इस वर्ग में पुस्तकों के प्रति रुझान और दिलचस्पी बढ़ाये। निश्चय ही यह बड़ी धीमी प्रक्रिया है। लेकिन सभी छोटे-बड़े पुस्तक-विक्रेता यह तय कर लें कि आमजनता में पुस्तकों के प्रति रुझान पैदा करना ही है, तो कुछ समय बाद साधारण तबके के व्यक्ति भी अपने सामान्य ज्ञान और दिल-बहलाव की पुस्तकें भी उसी तरह खरीदने लगेंगे जैसे वे अपनी रोजमर्रा की उपयोगी वस्तुएँ खरीदते हैं।

पुस्तक-विक्रेता को पुस्तकों के सम्बन्ध में पूरी जानकारी होनी चाहिए, लेकिन अन्य व्यवसायों की तुलना में उसे अपने ग्राहकों को बहुत अच्छी तरह जानने की जरूरत होती है। पुस्तक-विक्रेता के ग्राहकों को कई श्रेणी में विभक्त किया जा सकता है—(१) छात्र, (२) अध्यापक, (३) शिक्षा-संस्थाएँ और पुस्तकालय, (४) पुस्तक-भण्डार और शिक्षा-संस्थाओं से सम्बद्ध सहकारी स्टोर, (५) सामान्य जनता तथा व्यक्तिगत ग्राहक।

छात्र

ये विशेष रूप से स्कूल और कॉलेज खुलने के समय शिक्षा-सम्बन्धी पुस्तकें रखनेवाले पुस्तक-विक्रेताओं के नियमित ग्राहक होते हैं। ये लोग अधिकतर निर्धारित एवं परामर्श दी गई पाठ्य-पुस्तकें खरीदते हैं। ऐसी पुस्तकों की माँग काफी हद तक स्थिर रहती है, किन्तु विद्यार्थी-वर्ग में व्यवसाय में वृद्धि करने के लिए किसी भी पुस्तक-विक्रेता को अपनी सेवा में तत्परता और कार्यक्षमता लाने की आवश्यकता होती है। उसे अपने समीपवर्ती क्षेत्र की अनुमानित माँग का हिसाब लगाकर उसी के अनुरूप आवश्यक स्टॉक की समय से व्यवस्था करनी चाहिए। उसे कभी भी विद्यार्थी को यह कहकर खाली हाथ नहीं लौटने देना चाहिए कि कल या अगले सप्ताह आइए। उसे ऐसी पुस्तकों का

व्यवसाय करनेवाली अन्य प्रतियोगी दुकानों को भी ध्यान में रखना होगा, यदि वह समय से माँग की पूर्ति नहीं कर सकेगा तो यह भी सम्भव है कि बाद में बहुत-सी पुस्तकों की बिक्री ही न हो। यदि पुस्तकों के स्टॉक के साथ-साथ अच्छी नोट-बुक, कलम, पेन्सिल, सादे एवं रूलदार कागज जैसी चीजों को भी स्टॉक में रख लिया जाय तो इससे विद्यार्थियों को ग्राहक बनाने में सहायता मिलती है।

हाई स्कूल और कॉलेजों के छात्र पाठ्य-पुस्तकों के अलावा उनकी कुंजियाँ, गाइड और सरल व्याख्यात्मक पुस्तकें भी खरीदते हैं। कभी-कभी तो वे इन पुस्तकों को पाठ्य-पुस्तकों से भी अधिक महत्त्व देते हैं। शैक्षणिक दृष्टिकोण से इस प्रवृत्ति को बढ़ावा नहीं देना चाहिए, किन्तु कुंजी और गाइड-सम्बन्धी पुस्तकें आज धड़ल्ले से बिकती हैं, इससे इस बात का संकेत मिलता है कि कुछ विद्यार्थी ऐसी पुस्तकें खरीदना चाहते हैं। इस बात से भी इन्कार नहीं किया जा सकता है कि यदि छात्र पाठ्य-पुस्तकों के साथ-साथ ही गाइड का भी इस्तेमाल करें तो निस्सन्देह वह सहायक सिद्ध हो सकती हैं। इसलिए पुस्तक-विक्रेता अच्छे स्तर की निर्देशात्मक पुस्तकें भी स्टॉक में रख सकता है, लेकिन उन्हें कामचलाऊ, गलत तथ्यों से भरी और सस्ते तरीकों से प्रस्तुत की गई पुस्तकों को स्टॉक में नहीं रखना चाहिए। कुछ प्रकाशक इस प्रकार की सस्ती पुस्तकें पुस्तक-विक्रेताओं के स्टॉक में जमा करते रहते हैं। क्योंकि इस प्रकार की घटिया पुस्तकों पर अच्छा खासा कमीशन मिलता है और न बिकने पर प्रकाशक द्वारा वापस ले लेने की सुविधा भी दी जाती है। प्रतिष्ठित पुस्तक-विक्रेता को ऐसी चालों का शिकार नहीं होना चाहिए।

विक्रेता को सुप्रसिद्ध प्रामाणिक पुस्तकों के संस्करण अपने स्टॉक में अवश्य रखने चाहिए, क्योंकि ऐसी पुस्तकें विद्यार्थी आसानी से खरीद सकते हैं और इनकी अच्छी-खासी संख्या में बिक्री भी होती है। आजकल ऐसे पार्टटाइम विद्यार्थियों की संख्या काफी अधिक है जो विभिन्न शिक्षा-संस्थाओं तथा ट्यूटोरियल की सन्ध्या कक्षाओं में पढ़ने के साथ-साथ दूसरे विश्वविद्यालयों, शिक्षा-संस्थाओं की डिग्री, डिप्लोमा तथा सर्टीफिकेट परीक्षाओं के लिए भी तैयारी करते रहते हैं। इन विद्यार्थियों के बीच भी सस्ते संस्करणों की पर्याप्त माँग रहती है। कभी-कभी दूर की शिक्षा-संस्थाओं की परीक्षा के लिए निर्धारित पुस्तकें स्थानीय पुस्तक-विक्रेताओं के पास उपलब्ध नहीं होतीं, क्योंकि ऐसी पुस्तकों की माँग कम और अनिश्चित होती है। किन्तु कुछ जाँच-पड़ताल के बाद पुस्तक-विक्रेता ऐसी पुस्तकों के विवरण प्राप्त कर सकता है और इनकी कुछ प्रतियाँ मँगा कर रख सकता है, यद्यपि उसे ऐसी पुस्तकों को देश के दूसरे भागों के प्रकाशकों अथवा प्रमुख पुस्तक-विक्रेताओं के पास से मँगाने के लिए कुछ अतिरिक्त प्रयत्न करना पड़ेगा।

कम माँगवाली ऐसी पुस्तकों को स्टॉक में रखकर विद्यार्थियों को उपलब्ध कराने पर अन्ततोगत्वा अच्छा व्यापारिक परिणाम निकलेगा।

आजकल स्नातकोत्तर तथा इससे भी ऊँचे स्तर के शोध-कार्य में लगे हुए छात्रों को पुस्तक-विक्रेताओं से किसी भी प्रकार की सेवा उपलब्ध नहीं होती है। जिस प्रकार

की पुस्तकों की उन्हें आवश्यकता होती है, वे पुस्तक-विक्रेता के स्टॉक में होती ही नहीं, क्योंकि इनकी माँग बड़ी सीमित होती है। किन्तु ऐसे शोध-कार्य में लगे हुए छात्रों के प्रति ध्यान देना चाहिए। पुस्तक-विक्रेताओं को उनकी सहायता करनी चाहिए। विशिष्ट पुस्तकों के प्रकाशकों के पते और मूल्य का ब्यौरा खोजकर उन्हें इन छात्रों को उपलब्ध कराना चाहिए। यदि ऐसी पुस्तकों की शीघ्र बिक्री नहीं होती है तो पुस्तक-विक्रेता को अपना श्रम व्यर्थ नहीं समझना चाहिए। अनुसन्धान करनेवाले स्नातक अपनी आवश्यकता की पुस्तकें मँगाने के लिए पुस्तक-विक्रेता के प्रति आभार महसूस करेंगे और उसके आजीवन ग्राहक भी बने रहेंगे। बाद में जब वे शैक्षणिक जगत् या औद्योगिक संस्थानों में दायित्वपूर्ण पद सम्भालेंगे, तो अपने पुस्तकालयों के लिए पुस्तकों के ऑर्डर देते समय इन पुस्तक-विक्रेताओं को हमेशा याद रखेंगे।

अध्यापक

अध्यापक ही पुस्तक-विक्रेताओं के सही अर्थों में संरक्षक हैं। यह सदैव स्मरण रखना चाहिए कि अध्यापक की सिफारिश पर ही छात्र पुस्तकें खरीदते हैं। इसके अतिरिक्त अध्यापक स्वयं अपने लिए भी पुस्तकें खरीदना चाहते हैं।

पुस्तक-व्यवसाय में यह आम चलन है कि अध्यापकों को शिष्टाचारवश थोड़ा कमीशन दिया जाता है। बहुत-से प्रकाशक १०% कमीशन देते हैं और पुस्तक-विक्रेता भी लगभग इतना ही कमीशन या कम से कम ६१/४% कमीशन जरूर देते हैं। यद्यपि उन्हें यह व्यवस्था प्रकाशक से मिलनेवाली कमीशन की धनराशि में से ही करनी पड़ती है, किन्तु प्रत्येक पुस्तक-विक्रेता को चाहिए कि वह अध्यापक को थोड़ा-बहुत कमीशन अवश्य दे। पुस्तक-विक्रेता को उन्हें उधार पुस्तकें देने के साथ-साथ थोड़े समय बाद अथवा किश्तों में भुगतान करने जैसी सुविधाओं की व्यवस्था करनी चाहिए। उन्हें अध्यापकों को निरीक्षण और स्पेसीमेन्स के लिए भी पुस्तकें उपलब्ध कराने का प्रबन्ध करना चाहिए। अध्यापक अथवा प्रोफेसर के प्रयास से ही उपयुक्त पुस्तकें और लोकप्रिय हो सकती हैं, क्योंकि वह उन्हें उच्च अध्ययन के लिए सिफारिशी पुस्तकों तथा सन्दर्भ-ग्रन्थों की सूची में सम्मिलित कर सकता है। वह ऐसी पुस्तकों के साथ अन्य सन्दर्भ-ग्रन्थ पुस्तकालय के लिए भी खरीदे जाने की व्यवस्था कर सकता है। जो पुस्तक-विक्रेता नगर या अपने क्षेत्र के अध्यापकों की सद्भावना का पात्र बन जाता है, वह अध्यापकों की उपेक्षा करनेवाले पुस्तक-विक्रेता की तुलना में व्यावसायिक दृष्टि से अधिक लाभ उठा सकेगा।

शैक्षणिक संस्थाएँ और पुस्तकालय

संस्थाओं के लिए पुस्तकों की बिक्री का काम दुकान पर होनेवाली पुस्तकों की बिक्री से अलग है। इसमें न केवल इस बात की आवश्यकता होती है कि विभिन्न प्रकार की शैक्षणिक संस्थाओं और पुस्तकालयों की आवश्यकताओं को समझा जाए, वरन् यह भी जानने की जरूरत होती है कि इन संस्थाओं द्वारा ऑर्डर देने और बिल का भुगतान करने के सम्बन्ध में क्या कठिनाइयाँ हैं। साथ-ही-साथ इस कार्य में नियोजन, नियमित पत्र-व्यवहार और व्यवस्थित रूप से ध्यान देते रहने की भी जरूरत होती है।

स्कूल और कॉलेज की पाठ्य-पुस्तकों पर विशेष ध्यान देनेवाले पुस्तक-विक्रेताओं को अधिकारियों से सम्पर्क बनाए रखना चाहिए। साथ ही यह जानना चाहिए कि विभिन्न कक्षाओं में कितने विद्यार्थी हैं, पाठ्यक्रम तथा निर्धारित पुस्तकों में क्या परिवर्तन हो रहे हैं। वास्तविक स्थिति की निकट जानकारी के अभाव में अपेक्षित पुस्तकों को यथासमय स्टॉक के लिए उपलब्ध करा सकना कठिन होगा। पुस्तक-विक्रेता को प्राय: उस क्षेत्र के दूसरे पुस्तक-विक्रेताओं, सहकारी स्टोर और शिक्षा-संस्थाओं से सम्बद्ध पुस्तक-भण्डारों की प्रतियोगिता का सामना करना पड़ता है। ये सभी स्टोर प्राय: सीधे प्रकाशक से पुस्तकें खरीदते हैं। इसलिए उसे स्थानीय शिक्षा-संस्थाओं के अधिकारियों से बहुत अच्छे सम्बन्ध बनाए रखना चाहिए, ताकि उसे पाठ्य-पुस्तकों की खरीद तथा पुस्तकालय व पुरस्कार-वितरण आदि के लिए अपेक्षित पुस्तकों के ऑर्डर का उचित भाग हिस्से में मिलता रहे।

वर्तमान परिस्थिति में औसत पुस्तक-विक्रेता का अधिकांश व्यवसाय सार्वजनिक पुस्तकालयों, स्कूल व कॉलेज के पुस्तकालयों से प्राप्त होनेवाले ऑर्डरों पर निर्भर करता है। पुस्तक-विक्रेता को इन संस्थाओं से अपना सम्पर्क वर्ष-भर बनाए रखना चाहिए; ऐसा न हो कि वह इनसे केवल वित्तीय वर्ष के अन्त में अपना सम्पर्क तब बनाए जब ये संस्थाएँ अपना अनुदान पूरी तरह से खर्च करना चाहती हैं।

पुस्तकालयों को अपनी सेवा उपलब्ध कराने का पहला कदम तो यह है कि उनको नवीनतम् पुस्तकों की सूची विचारार्थ बराबर भेजी जाए। सूचियाँ दो प्रकार की होती हैं—एक तो किसी निश्चित तिथि तक पुस्तकों को प्राप्त होनेवाले स्टॉक की सूची और दूसरी उन उपलब्ध पुस्तकों की सूची, जो अन्य स्थानों से प्राप्त करके सप्लाई की जा सकती हैं। पुस्तकालय दोनों ही प्रकार की सूचियों का उपयोग कर सकते हैं। स्टॉक-सूची के सम्बन्ध में प्राय: यह दिक्कत रहती है कि ये पुस्तकें बिकती रहती हैं और जब स्टॉक-सूची के आधार पर उन पुस्तकों के ऑर्डर प्राप्त होते हैं तो कभी-कभी ये पुस्तकें उपलब्ध नहीं रहती हैं। किन्तु यह सम्भावना तो हरदम रहती है कि पुस्तकालयों को इस बात के लिए राजी कर लिया जाए कि वे स्टॉक में मौजूद पुस्तकें तत्काल खरीद लें और शेष पुस्तकों की सप्लाई कुछ समय बाद लेने के लिए राजी हो जाँय। इस दौरान पुस्तक-विक्रेता ऐसी पुस्तकें प्रकाशक के प्रतिनिधि या आवश्यकता हो तो अन्य पुस्तक-विक्रेता से भी प्राप्त कर सकता है। उपलब्ध सूची में सबसे ऊपर यह स्पष्ट उल्लेख होना चाहिए कि सूचीबद्ध पुस्तकें स्टॉक में नहीं हैं, किन्तु ऑर्डर मिलने पर उपलब्ध कराई जा सकती हैं। यह भी उल्लेख कर देना चाहिए कि यदि पुस्तकें देश के भीतर प्राप्य हैं तो सप्लाई एक-दो सप्ताह के भीतर और यदि उन्हें देश के बाहर से मँगाना है तो उनकी पूर्ति दो या तीन महीने में की जा सकेगी। आजकल नये-नये स्कूलों, कॉलेजों, सार्वजनिक पुस्तकालयों, वैज्ञानिक और औद्योगिक शोध-संस्थाओं की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है। अतएव पुस्तक-विक्रेता को चाहिए कि वह इन संस्थाओं की सम्भावित आवश्यकताओं के लिए पृथक्-पृथक् फाइलें अलग-अलग विषयों के अनुसार बनाए, सन्दर्भ ग्रन्थों की सूचियाँ तैयार करें। इन सूचियों में पुस्तक का शीर्षक, लेखक, प्रकाशक, मूल्य और प्रकाशन-वर्ष की सूचना बिल्कुल ठीक होनी चाहिए। इस प्रकार की सूचियों की प्राप्ति से

पुस्तकालयों का काम काफी हल्का हो जाएगा और पुस्तक-विक्रेता को थोड़े-बहुत ऑर्डर अवश्य प्राप्त होंगे। यदि किसी कारण कोई ऑर्डर प्राप्त नहीं होता है, तो भी संस्था का अधिकारी उस पुस्तक-विक्रेता को निश्चय ही याद रखेगा और बाद में उसे कोई-न-कोई ऑर्डर जरूर देगा।

पुस्तकालय के अधिकारी तत्पर और कार्यकुशल सेवाओं की अपेक्षा करते हैं, हालाँकि उन्हें जिन पुस्तकों की आवश्यकता होती है, वे हरदम आसानी से सुलभ नहीं होती हैं। यदि पुस्तक-विक्रेता केवल आसानी से उपलब्ध कुछ पुस्तकें ही सप्लाई करता है तो इससे पुस्तकालय के अधिकारी को सन्तोष नहीं होगा। उसे प्रयत्न करके अपने सम्भव स्रोतों से ऑर्डर की सभी पुस्तकें सप्लाई करके ग्राहक को पूरा सन्तोष देना चाहिए। पुस्तकालयों के ऑडर की पूर्ति वास्तव में काफी कठिन और कष्टपूर्ण कार्य है, जिसे पूरी लगन और व्यावसायिक कौशल के साथ किया जाना चाहिए।

ऐसा भी होता है कि पुस्तक-विक्रेताओं को शिक्षा-संस्थाओं एवं पुस्तकालयों से पुस्तकों की सप्लाई करने के लिए ऐसी सूचियाँ प्राप्त होती हैं जिनमें प्रकाशक का नाम नहीं होता और कभी-कभी तो पुस्तक का पूरा शीर्षक तथा लेखक का भी नाम नहीं होता है। ऐसी स्थिति में पुस्तक-विक्रेता को धैर्य से काम लेना चाहिए। उसे व्यवस्थित तरीके से पुस्तक के सही नाम—लेखक, प्रकाशक, संस्करण, चालू मूल्य आदि के सम्बन्ध में पूरी जानकारी करनी चाहिए। उसके बाद इस सूची की एक टाइप-प्रति ग्राहक को इस उल्लेख के साथ भेज देनी चाहिए कि किन पुस्तकों की तुरन्त सप्लाई की जानी है और किन पुस्तकों की सप्लाई कुछ देर से उपलब्ध करायी जा सकती है। सप्लाई की शर्तों का भी उल्लेख कर देना चाहिए। इस प्रकार के कार्य में समय अवश्य लगता है, क्योंकि विभिन्न प्रकाशकों की सन्दर्भ सूची देखने की आवश्यकता पड़ती है, किन्तु समय और श्रम व्यर्थ नहीं जाता है। यदि उस समय तुरन्त ऑर्डर प्राप्त न हो तो भी पुस्तक-विक्रेता की निष्ठा और धैर्य की निश्चित रूप से सराहना की जाएगी।

दक्षिण एशिया के सभी देशों में पुस्तकालयों का तेजी से प्रसार हो रहा है और शिक्षा-संस्थाओं में तेजी से वृद्धि हो रही है। स्कूलों, कॉलेजों और पुस्तकालयों को राज्य की ओर से मिलनेवाले अनुदान और विशेष सहायता मिलने के कारण इन संस्थाओं द्वारा शैक्षणिक, साहित्यिक, वैज्ञानिक और प्राविधिक विषयों की पर्याप्त पुस्तकों की खरीद की जाती है। यद्यपि लोगों में पढ़ने की आदत विकसित हो रही है, लेकिन जन-साधारण की क्रय-सामर्थ्य अधिक न होने के कारण पुस्तक-विक्रेताओं के व्यवसाय का अधिकांश भाग इन संस्थाओं द्वारा की जानेवाली खरीद पर निर्भर करता है। पुस्तकालयों के लिए पुस्तकें सप्लाई करने के व्यवसाय में बड़े-बड़े पुस्तक-विक्रेताओं व प्रकाशकों के मध्य बहुत अधिक प्रतियोगिता रहती है। कुछ प्रकाशक पुस्तकालयों को सीधे पुस्तकें सप्लाई करते हैं। इस प्रतिस्पर्धा में अनेक बाहरी बातें निर्णायक तत्व साबित होती हैं। इसलिए छोटे-छोटे पुस्तक-विक्रेता इस प्रतियोगिता में टिक नहीं पाते। किन्तु प्रत्येक छोटे-बड़े पुस्तक-विक्रेता का कर्तव्य है कि वह अपने क्षेत्र की आवश्यकताओं की पूर्ति का पूरा

प्रयास करे और पुस्तकालयों एवं शिक्षा-संस्थाओं के लिए ऑर्डर करनेवाले अधिकारियों से समुचित सम्पर्क बनाये रखे, जिससे उसे इस व्यवसाय का उचित अंश प्राप्त हो सके।

स्कूल और कॉलेज के पुस्तक-भण्डार और सहकारी स्टोर

ये सहकारी स्टोर तथा पुस्तक-भण्डार आजकल विद्यार्थियों और प्राय: पुस्तकालयों के लिए भी पुस्तकों की खरीद करते हैं। यद्यपि इन सहकारी पुस्तक-भण्डारों के व्यवसाय के कारण पुस्तक-विक्रेताओं को बहुत क्षति होती है, इसलिए ऐसी संस्थाओं के रहते हुए व्यवसाय करने में अत्यन्त परिश्रम और कौशल की आवश्यकता है। इन संस्थाओं द्वारा अधिकांश पुस्तकों की खरीद सीधे प्रकाशकों से ही की जाती है, क्योंकि प्रकाशकों से कमीशन की अच्छी दरें प्राप्त होती हैं। फिर भी कुछ-न-कुछ खरीददारी तो पुस्तक-विक्रेताओं से होती ही है। ऐसे सहकारी स्टोर और पुस्तक-भण्डार अधिकांश पुस्तकों की बिक्री शिक्षा-सत्र के प्रारम्भ में या लाइब्रेरी सीजन में करते हैं, किन्तु ये संस्थाएँ अक्सर बिलों का अविलम्ब भुगतान नहीं करतीं। इसकी एक वजह यह है कि ऐसी संस्थाओं के पास अधिक पूँजी नहीं होती। किन्तु विद्यार्थियों को ऐसी पुस्तकें बेच देने के बाद बिलों के भुगतान में विलम्ब नहीं होता है।

इस समस्या के समाधान के लिए पुस्तक-विक्रेता अपनी कठिनाइयों की चर्चा सहकारी स्टोर अथवा पुस्तक-भण्डार के अध्यक्ष (जो प्राय: हेडमास्टर, प्रिन्सिपल अथवा संस्था के मंत्री होते हैं) से करके यह तय कर सकता है कि उधार की धनराशि की सीमा कितनी होगी और भुगतान की अवधि क्या होगी। साथ-ही-साथ वह उन्हें केवल आवश्यक मात्रा में पुस्तकों का ऑर्डर देने पर जोर देते हुए न बिकी हुई पुस्तकों के वापस लौटाने के सम्बन्ध में भी शर्तें निश्चित कर सकता है। पुस्तक-विक्रेताओं को सहकारी स्टोर और स्थानीय स्कूल-कॉलेजों के पुस्तक-भण्डार चलानेवाले व्यक्तियों से बराबर सम्पर्क बनाए रखना चाहिए और उनसे जहाँ तक सम्भव हो अधिक-से अधिक ऑर्डर प्राप्त करने चाहिए। अपनी कार्यकुशल और अविलम्ब सेवाओं के द्वारा वे ऐसे अधिकांश ऑर्डर प्राप्त कर सकते हैं, जिनकी सप्लाई सीधे प्रकाशकों के द्वारा की जाती है।

आमजनता

जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है, औसत पुस्तक-विक्रेता जाने या अनजाने रूप से व्यक्तिगत ग्राहकों की आमतौर से उपेक्षा करते हैं। किन्तु जन-साधारण की आवश्यकताओं के आधार पर ही वास्तव में पुस्तक-बाजार की सम्भावनाएँ निर्भर करती हैं। इसलिए आमजनता को प्रत्येक सुविधा उपलब्ध करानी चाहिए, जिससे कि वह पुस्तकों में अधिकाधिक दिलचस्पी ले। उन्हें दुकान के भीतर बे-रोक-टोक घूम-फिरकर पुस्तकें देखने की सुविधा दी जानी चाहिए। ऐसा करने से अनियमित ग्राहक अथवा महज जिज्ञासावश दुकान में दाखिल होनेवाले व्यक्ति के मन में पुस्तकों के प्रति अभिरुचि और उत्साह पैदा हो सकता है। कुछ ऐसे ग्राहक होते हैं जो विशिष्ट विषयों में दिलचस्पी रखते

हैं और उस विशिष्ट अध्ययन के क्षेत्र में होनेवाली गतिविधियों की जानकारी प्राप्त करना चाहते हैं। इस प्रकार वे अपना ज्ञान-विस्तार करते रहते हैं। इनकी समस्याओं के प्रति तत्परता से ध्यान देने से अच्छे परिणाम निकल सकते हैं। पुस्तक-विक्रेता को किसी पूछताछ के उत्तर में कभी भी यह नहीं कहना चाहिए कि 'मैं नहीं जानता हूँ', बल्कि उसे वह पुस्तक उपलब्ध कराने का प्रयास करना चाहिए, चाहे उसे कितनी परेशानी ही क्यों न उठानी पड़े और लाभ भी बहुत कम हो। सन्तुष्ट ग्राहक से अन्य ग्राहकों को भी पुस्तक-विक्रेता से परिचित कराने की आशा की जा सकती है। यद्यपि दुकान के प्रमुख ग्राहक शिक्षा-संस्थाएँ और पुस्तकालय ही होते हैं, लेकिन प्राय: पुस्तकालयों में अधिकांश पुस्तकें किसी विशेष व्यक्ति की आवश्यकता के फलस्वरूप ही खरीदी जाती हैं। लाइब्रेरियन पाठकों की सलाह और सुझावों को समुचित महत्व नहीं देते हैं। इसी प्रकार अध्यापकों की सम्मतियों का शिक्षा-संस्थाओं के अध्यक्षों की दृष्टि में विशेष मूल्य होता है तथा दायित्वपूर्ण कर्मचारियों के सुझावों पर औद्यौगिक संस्थानों के व्यवस्थापकों को विशेष ध्यान देना पड़ता है।

विशिष्ट पेशों से सम्बद्ध ग्राहकों के अलावा जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में वास्तविक रूप से अनेक पुस्तक-प्रेमी पाठक होते हैं। इन पाठकों की आवश्यकताओं की ओर व्यक्तिगत ध्यान देकर इन्हें और अधिक पुस्तकें खरीदने के लिए प्रेरित किया जा सकता है। इन लोगों के अतिरिक्त एक ऐसा धनिकवर्ग भी है जो प्रतिष्ठा के लिए नियमित रूप से पुस्तकें खरीदता है। इसका यह अर्थ नहीं है कि ऐसे ग्राहक खरीदी गई पुस्तकें पढ़ते ही नहीं हैं। पुस्तक-विक्रेता को इस वर्ग के ग्राहकों की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए, क्योंकि ये लोग न केवल अपने लिए पुस्तकें खरीदते हैं, वरन् मित्र-मण्डली में पुस्तकों की सराहना और सिफारिश भी करते हैं।

इसलिए व्यक्तिगत ग्राहक को भी उतना ही महत्व देना चाहिए जितना कि दूसरे वर्ग के ग्राहक़ को दिया जाता है। सन्तुष्ट व्यक्तिगत ग्राहक पुस्तक-विक्रेता का स्थायी ग्राहक बन सकता है और अपनी दिलचस्पी के कारण वह एक प्रकार से दुकान के अवैतनिक एजेन्ट के रूप में काम करता रहता है।

पुस्तकों की बिक्री बढ़ाना और उनका प्रचार करना

मोटे तौर से बिक्री बढ़ाने का अर्थ है सभी उपलब्ध साधनों और सभी आवश्यक कार्यविधियों का इस प्रकार उपयोग करना कि लोग माल को खरीदने की ओर प्रवृत्त हों। इसका प्रमुख उद्देश्य होता है कि व्यवसाय से अधिकतम लाभ उठाया जाए। बिक्री-प्रवर्द्धन के लिए समस्त नियोजन और विविध कार्यविधियाँ इसी ध्येय की पूर्ति के लिए होती हैं। किन्तु सदैव ऐसा नहीं होता कि अधिकतम बिक्री से अधिकतम लाभ प्राप्त हो। जैसा कि चतुर व्यवसायी जानते हैं कि बिक्री-सम्वर्द्धन पर आनेवाली लागत को बिक्री के साथ सम्बद्ध करना पड़ता है। बिक्री-सम्वर्द्धन एक समन्वित प्रक्रिया है जिसमें महज किसी वस्तु की बिक्री के अतिरिक्त और बातें भी शामिल होती हैं। इसके अन्तर्गत अनेक प्रकार की गतिविधियाँ समाहित होती हैं, जैसे कर्मचारियों का प्रशिक्षण, प्रचार और जन-सम्पर्क।

पुस्तक-व्यवसाय में बिक्री-प्रवर्द्धन का उद्देश्य यही होता है कि अधिक से अधिक लोगों को अधिक से अधिक पुस्तकें खरीदने के लिए प्रवृत्त किया जाय। सामूहिक रूप से विज्ञापन और प्रचार के द्वारा विक्रेताओं के मन को प्रभावित करके इस रुझान की शुरुआत की जाती है। प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता द्वारा अपनी पुस्तकों को बाजार में बिक्री के लिए जनता तक पहुँचाने की सीधी विधि है अखबारों व पत्रिकाओं में विज्ञापन करना। प्रचार के अन्तर्गत जनता को सूचित करने, पुस्तकों के प्रति दिलचस्पी पैदा करने और अनुकूल धारणाएँ बनाने के उद्देश्य से किये गए अन्य विविध साधन भी हैं।

पुस्तकों की बिक्री-सम्वर्द्धन में प्रकाशक का दायित्व अधिक होता है। वैसे तो प्रकाशक ही पुस्तकों की प्रारम्भिक माँग पैदा करता है, किन्तु पुस्तक-विक्रेता को इस माँग को बनाए रखना और बढ़ाते रहना होता है, हालाँकि प्रकाशक केवल अपने प्रकाशनों का प्रचार करता है। पुस्तक-विक्रेताओं को विभिन्न प्रकाशकों की अगणित पुस्तकों की माँग की वृद्धि के लिए प्रयास करना होता है। इसलिए प्रकाशक को विज्ञापन, सूचीपत्र, पुस्तक, प्रचार-पत्र, पोस्टर, इश्तहार और अन्य साधनों द्वारा बिक्री-सम्वर्द्धन के कार्य में पूरी क्षमता से पुस्तक-विक्रेता की सहायता करनी चाहिए। पुस्तक-विक्रेता को भी अपनी ओर से गश्ती-पत्र, पुस्तक-सूची आदि भेजकर तथा अन्य साधनों से बिक्री बढ़ाने का प्रयास करना चाहिए।

किसी भी पुस्तक-विक्रेता को महज इस बात से सन्तोष नहीं करना चाहिए कि वह चुपचाप बैठकर अपने ग्राहकों की प्रतीक्षा करे और उन पुस्तकों की सप्लाई करके सन्तुष्टि महसूस करे जिनकी समय-समय पर लोग माँग करें। उसे अपने क्षेत्र के सभी सम्भावित ग्राहकों को अपना बनाने का प्रयास करना चाहिए और निरन्तर नये-नये ग्राहक बनाने चाहिए। नियोजित सम्वर्द्धन के द्वारा ही बिक्री-वृद्धि सम्भव है।

पुस्तक-विक्रेता की चेष्टा हो कि उनकी दुकान से सभी सम्भावित ग्राहक परिचित हों, उनका ध्यान दुकान की ओर आकर्षित हो और विक्रेता उन्हें दुकान में आने के लिए प्रोत्साहित करे। दुकान में दुकानदार की जनता की सेवा करने की इच्छा और तत्परता उसके ग्राहकों के प्रति किए जानेवाले विनम्र व्यवहार से प्रकट होनी चाहिए। उसे ग्राहकों के पास नवीनतम और आगामी प्रकाशनों की सूचना बराबर भेजते रहना चाहिए। सुनियोजित सम्वर्द्धन में दुकान की समुचित साजसज्जा, पुस्तकों का आकर्षक प्रदर्शन, तत्पर एवं कार्यकुशल सेवा, ग्राहकों के प्रति मृदु व्यवहार और सुमधुर सम्बन्ध अपना निश्चित योगदान दे सकते हैं।

दक्षिण एशिया के देशों के औसत पुस्तक-विक्रेता विज्ञापन पर अधिक खर्च कर सकने की स्थिति में नहीं होते। चूँकि इन देशों में उनका व्यवसाय बड़ा नहीं है और लाभ भी अधिक नहीं है, फिर भी यह आवश्यक हो जाता है कि ऐसे पुस्तक-विक्रेता भी कुछ-न-कुछ हद तक विज्ञापन की व्यवस्था करें। बेशक उन्हें अपनी आर्थिक स्थिति का ख्याल रखना पड़ेगा। लेकिन विज्ञापन के बहुत-से तरीके हैं। प्रत्येक पुस्तक-विक्रेता ऐसे विज्ञापन की व्यवस्था अपना सकता है जो उसके साधनों और बाजार की आवश्यकताओं के अनुकूल हो।

विज्ञापन की अनेक विधियाँ हैं, जैसे—दूरदर्शन, समाचारपत्र, लोकप्रिय साप्ताहिक पत्रिका, साहित्यिक पत्र, व्यावसायिक पत्रिका, सिनेमा-स्लाइड, पोस्टर, पर्चियाँ, ग्राहकों को सीधे प्रचार-सामग्री आदि के माध्यम से पुस्तकों की बिक्री बढ़ाने के लिए विज्ञापन किए जा सकते हैं इनमें से प्रत्येक साधन अपने में उपयोगी है और पुस्तक-विक्रेता अपने आर्थिक दृष्टिकोण से व्यावहारिक साधन का चुनाव कर सकता है।

समाचारपत्रों तथा दूरदर्शन में विज्ञापन व्ययसाध्य होता है और इन साधनों का प्रकाशक बहुत कम उपयोग करते हैं। बड़े-बड़े पुस्तक-विक्रेता कभी-कभी समाचार-पत्रों में पुस्तक-समीक्षा तथा अन्य वर्गीकृत स्तम्भों में चुनी हुई पुस्तकों के विज्ञपान देते हैं। इस प्रकार के प्रचार से ऐसी ही पुस्तकें स्टॉक में रखनेवाले अन्य पुस्तक-विक्रेताओं को भी अप्रत्यक्ष रूप से लाभ होता है। वस्तुत: छोटे पुस्तक-विक्रेताओं को बड़े पुस्तक-विक्रेताओं के विज्ञापन का लाभ उठाकर विज्ञापित पुस्तकों की बिक्री के लिए अपने स्टॉक में मँगाना चाहिए। इसी प्रकार प्रकाशकों और थोक-विक्रेताओं द्वारा समाचार-पत्रों, पत्रिकाओं और अन्य पत्रों में दिये गए विज्ञापनों का भी छोटे पुस्तक-विक्रेता लाभ उठा सकते हैं। पुस्तक-व्यवसाय-क्षेत्र में वितरण के हेतु प्रकाशित व्यापारिक पत्र-पत्रिकाओं में पुस्तकों के विज्ञापन अत्यन्त लाभप्रद सिद्ध हो सकते हैं। व्यावसायिक पत्रों में अधिकांश विज्ञापन प्रकाशक ही देते हैं, किन्तु हजारों विदेशी पुस्तकों की अत्यधिक माँग के कारण पुस्तक-विक्रेता भी अपने स्टॉक में उपलब्ध विदेशी पुस्तकों के विज्ञापन व्यावसायिक पत्रों में प्रकाशित करवाना उपयोगी समझते हैं। इस प्रकार न केवल प्रचार होता है वरन् पुस्तक-विक्रेताओं के बीच इस सूचना का भी आदान-प्रदान हो जाता है कि उनके पास कौन-सी पुस्तकें हैं। इस तरह व्यवसाय को नियन्त्रित व नियमित करने में सहायता मिलती है। दक्षिण एशिया के देशों में पुस्तक-व्यवसाय की वर्तमान परिस्थितियों में छोटे-छोटे पुस्तक-विक्रेताओं के लिए नियमित रूप से प्रकाशित होनेवाले व्यावसायिक पत्रों में विज्ञापन देने की अधिक सम्भावनाएँ नहीं हैं। लेकिन वे स्थानीय पत्र-पत्रिकाओं और विशेष रूप से एक निर्दिष्ट क्षेत्र में वितरित होनेवाली प्रादेशिक भाषाओं की पत्रिकाओं में विज्ञापन दे सकते हैं। छोटे पुस्तक-विक्रेता स्थानीय समारोहों के अवसर पर बहुतायत से प्रकाशित होनेवाली विविध प्रकार की स्मारिकाओं में छोटे-मोटे विज्ञापन दे सकते हैं।

विज्ञापन तैयार कराने में यह उद्देश्य दिमाग में रहना चाहिए कि विज्ञापन लोगों का ध्यान आकर्षित कर सके। विज्ञापन में पूर्ण विवरण होना चाहिए और यदि गुंजाइश हो तो यह भी उल्लेख होना चाहिए कि पाठकों को विज्ञापित पुस्तकें क्यों खरीदनी चाहिए और फिर उसी पुस्तक-विक्रेता से वह क्यों प्राप्त करे। यदि पुस्तक-विक्रेता का अपना कोई विशिष्ट चिन्ह हो तो ऐसे विज्ञापनों में उसका उपयोग किया जा सकता है।

पोस्टरों से भी पुस्तक-विक्रेता को काफी सहायता मिल सकती है, बशर्ते कि वे मोटे-मोटे अक्षरों और आकर्षक रंगों में मुद्रित किये गए हों। वह उन्हें अपनी दुकान के बाहर, अपने समीपवर्ती क्षेत्र व नगर के उपयुक्त स्थलों पर प्रदर्शित कर सकता है। छोटे-छोटे शहरों में पोस्टर आदि लगाने के लिए अधिक व्यय नहीं करना पड़ता। बड़े-बड़े

शहरों में सार्वजनिक परिवहन की बसों में भीतरी स्थान को विज्ञापन के लिए सुरक्षित किया जा सकता है।

सिनेमा-स्लाइडों के माध्यम से विज्ञापन का तरीका अत्यन्त प्रभावपूर्ण साधन था। विशेष रूप से यह छोटे शहरों और ग्रामीण क्षेत्रों में उपयोगी साबित हो सकता था। आजकल प्रत्येक गाँव के निवासी दूरदर्शन देखते हैं। दूरदर्शन में दिये विज्ञापन बहुत अधिक संख्या में लोग देखते हैं और इनके द्वारा सारे देश में पुस्तकों का सन्देश पहुँचाने का सबल माध्यम उपलब्ध होता है। जहाँ तक सम्भव हो इन्हें विरोधी रंगों में अत्यन्त कौशल के साथ तैयार किया जाना चाहिए और दुकान तथा किसी विशेष पुस्तक के सम्बन्ध में दी गई जानकारी स्पष्ट और प्रभावपूर्ण होनी चाहिए।

पुस्तक की दुकान के लिए बिक्री-सम्वर्द्धन का सबसे अच्छा और कदाचित् अधिकतम प्रभावपूर्ण तरीका है सूचीपत्र, विषयानुसार सूची, पाठ्यक्रम-निर्देशिका और विशेष गश्ती-पत्र को सम्भावित ग्राहकों के पास भेजना। सूचियाँ और गश्ती-पत्रों को जिरोक्स कर लिया जाना चाहिए। बेहतर होगा कि इस काम के लिए स्टैन्डर्ड साइज का ऐसा कागज इस्तेमाल किया जाए, जिस पर विशेष चिन्ह और पुस्तक-विक्रेता का नाम व पता पहले से ही मुद्रित हों। सूचीपत्र समय-समय पर साफ-सुथरे तरीके से छपवाने चाहिए। छोटे-छोटे पुस्तक-विक्रेता भी सादे तथा सस्ती लागत के निजी सूची भेजने की व्यवस्था कर सकते हैं।

सूचीपत्र बनाते समय विषयों का सूक्ष्म वर्गीकरण करने की आवश्यकता नहीं है; किन्तु लेखक, पुस्तक का आकार, पृष्ठ, संस्करण और मूल्य आदि का स्पष्ट उल्लेख होना चाहिए। केवल जहाँ आवश्यक हो, वहीं पुस्तक का संक्षिप्त विवरण देना चाहिए। छपाई में जगह और टाइप के उपयोग का भी विशेष ध्यान रखना चाहिए। सूचीपत्रों में कुछ पुस्तकों के चित्र आदि भी दिए जा सकते हैं। इसके लिए प्रकाशक से आवश्यक डिजाइन भी प्राप्त किए जा सकते हैं। यह बहुत ही अच्छा होगा यदि सूचीपत्र के प्रत्येक पृष्ठ पर पुस्तक विक्रेता का नाम, पता व टेलीफोन नम्बर आदि छपे हुए हों।

पुस्तक-विक्रेता को अपने सूचीपत्र प्रत्येक छः मास के बाद और विषय-सूची समय-समय पर संशोधित करते रहना चाहिए। वर्ष में कम-से-कम एक बार नया सूचीपत्र तो अवश्य ही प्रकाशित होना चाहिए। विशेष सूचियों, नयी तथा आगामी पुस्तकों की सूचियों को भी समय-समय पर जारी किया जाना चाहिए। इनके अतिरिक्त बड़े-बड़े पुस्तक-विक्रेता मासिक तथा त्रैमासिक बुलेटिन भी जारी कर सकते हैं जिनके माध्यम से न केवल नयी पुस्तकों का टिप्पणी सहित परिचय प्राप्त होगा, बल्कि पाठकों को नये प्रकाशनों की निर्देशिका भी उपलब्ध होगी। सूचीपत्रों के साथ ऑर्डर शीट की एक प्रति देना बेहतर होगा, मगर ग्राहकों की सुविधा के लिए ऑर्डर शीट को आसानी से अलग करने की व्यवस्था रहे। यदि प्रत्येक सूचीबद्ध पुस्तक की क्रम-संख्या भी दे दी जाए तो ग्राहक आर्डर देते समय केवल क्रम-संख्या दे सकते हैं और इस प्रकार दोनों ओर से समय की बचत हो सकती है।

किसी विशेष पुस्तक क सम्बन्ध में पत्रक तथा सीरीज से सम्बद्ध फोल्डर

आकर्षक रूप में तैयार किए जाने चाहिए। विशेष प्रचार के लिए ऐसे पैम्फलेट प्राय: प्रकाशक ही जारी करते हैं। किन्तु इन पर पुस्तक-विक्रेता अपने नाम व पते आदि की मोहर लगाकर इनका सदुपयोग कर सकते हैं।

पुस्तक-विक्रेता को विभिन्न प्रकार की पुस्तकों के सिलसिले में नियमित, सम्भावित, व्यक्तिगत और संस्थागत ग्राहकों की सूची तैयार करना चाहिए। कुछ ग्राहक एक से अधिक विषय की पुस्तकों में दिलचस्पी रखते हैं, इसलिए विशेष रूप से संस्थाओं और पुस्तकालयों के सम्बन्ध में मोटे तौर पर उनका वर्गीकरण करना चाहिए। ग्राहकों की अभिरुचि के अनुसार उनके पते के साथ अकारादि-क्रम से तालिकाबद्ध सूची भी तैयार की जानी चाहिए। मेलिंग सूची को बराबर संशोधित करते रहना चाहिए और ऐसे ग्राहकों के नाम उस सूची से हटा दिए जाने चाहिए जो लगातार सूचीपत्र आदि भेजने पर भी कोई दिलचस्पी नहीं प्रदर्शित करते। किन्तु यह काम बड़ी सावधानी से किया जाना चाहिए, क्योंकि अनेक ऐसे ग्राहक होते हैं जिनसे लम्बे अन्तराल के बाद काफी अच्छे ऑर्डर प्राप्त होते हैं। नामों को सूची में से हटाने का एक अच्छा तरीका यह है कि ऐसे ग्राहकों को सूचीपत्रों के साथ जवाबी कार्ड या डाकखर्च अदायगी की गारण्टी के बिजनेस रिप्लाई कार्ड (या अपने पते लिए हुए सादे कार्ड) भेजकर यह सूचित करने के साथ आग्रह किया जा सकता है कि पुस्तकों की सूचियों में उनकी दिलचस्पी है या नहीं। शायद इनमें से कुछ ही कार्ड वापस प्राप्त होंगे, लेकिन इससे यह पता चल जाएगा कि कितने लोग ऐसी सूचियों में अभिरुचि रखते हैं। इस प्रणाली से पुस्तक-विक्रेता को अपनी सूचियों को वास्तविक रूप से प्रभावपूर्ण बनाने में सहायता मिलेगी। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि सूची में ग्राहकों के नाम बढ़ाये नहीं जाने चाहिए। समीपवर्ती और दूरस्थ क्षेत्रों के सम्भावित ग्राहकों के सम्बन्ध में प्राप्त सूचना के आधार पर इस सूची में बराबर नये नाम जुड़ते रहने चाहिए। व्यक्तियों की परिचयात्मक सूची, टेलीफोन-डायरेक्टरी, प्रसिद्ध क्लबों व संस्थाओं की सदस्य-सूची, विविध सन्दर्भ-ग्रन्थ, निर्देशिकाओं के आधार पर विभिन्न विषयों और अभिरुचियों के सम्भावित ग्राहकों की सूची तैयार की जा सकती है।

सूचीपत्रों, सूचियों और विवरण-पत्रिकाओं को यथासमय भेजने का अत्यधिक महत्व होता है। ऐसी सामग्री ऐसे दिन भेजी जानी चाहिए जिससे कि वह सप्ताहान्त में सम्भावित ग्राहक को मिले, जब उनके पास उसे गौर से देखने की फुरसत हो या फिर पुस्तकों की सूचियाँ मास के अन्त में भेजी जानी चाहिए जबकि लोग वेतन प्राप्त करते हैं। जहाँ तक शिक्षा-संस्थाओं और पुस्तकालयों का सम्बन्ध है, सूचीपत्र और पुस्तकों की सूचियाँ उस समय भेजी जानी चाहिए जब ऐसी संस्थाएँ काफी संख्या में किताबों की खरीद करती हैं। किन्तु इन्हें यथावत् समय-समय पर नयी पुस्तकों की सूचियाँ भी भेजी जाती रहनी चाहिए।

डाक से पुस्तकों की सूचियाँ भेजने के अलावा दुकान में आनेवाले ग्राहकों को नयी पुस्तकों, आगामी प्रकाशनों से सम्बद्ध सूचियाँ तथा पत्रक आदि भी विवेकपूर्ण तरीके से वितरित किये जा सकते हैं। साथ-ही-साथ दुकान में बिकी हुई प्रत्येक पुस्तक के साथ

ग्राहक को सम्बद्ध पुस्तक का परिचय-पत्रक या संक्षिप्त पुस्तक-सूची भी दी जा सकती है। इसी प्रकार बाहर के ग्राहकों को भेजे जानेवाले पुस्तकों के पार्सलों में प्रचार-सामग्री अथवा सूचीपत्र और विषय-सूचियाँ भी रखी जा सकती हैं। ऐसा करने से ऐसी सामग्री पर होनेवाले पृथक् डाकव्यय की बचत होगी।

राष्ट्रीय या स्थानीय महत्व की गतिविधियों, प्रतिष्ठित व्यक्तियों की यात्राओं आदि अवसरों का उपयुक्त पुस्तकों की बिक्री-सम्वर्द्धन के लिए उपयोग किया जा सकता है। यदि कोई लोकप्रिय लेखक नगर में पधारता है तो उस अवसर पर 'ऑटोग्राफ' पार्टी की व्यवस्था करके उस लेखक की पुस्तकों में ग्राहकों की और अधिक दिलचस्पी पैदा की जा सकती है। इसी प्रकार प्रसिद्ध पुस्तकों पर आधारित फिल्मों के दूरदर्शन में प्रदर्शन के अवसरों पर उन पुस्तकों की बिक्री को प्रोत्साहित किया जा सकता है।

यह अत्यन्त सुन्दर विचार होगा कि यदि पुस्तक-विक्रेता पास के स्कूल के बच्चों के जन्मदिवस के विवरण और अभिभावकों के पते नोट कर लें और जन्मदिवस के एक-दो सप्ताह पहले अभिभावकों को पत्र लिखकर सुझाव दें कि वे अपने बच्चों को उपहारस्वरूप पुस्तकें प्रदान करें। साथ में चुनाव के लिए उपयुक्त पुस्तकों की सूची भी भेजी जानी चाहिए।

साफ-सुथरे छपे हुए पतों के कार्ड भी दुकान में रखने चाहिए। ग्राहकों से निवेदन किया जा सकता है कि वे इन कार्डों में अपना नाम, पता व अभिरुचि आदि का उल्लेख कर दें। यदि इन कार्डों का विवेकपूर्ण उपयोग किया जाए तो इससे पुस्तकों की बिक्री-सम्वर्द्धन में पर्याप्त सहयोग मिल सकता है।

ग्राहकों द्वारा खरीदी गई पुस्तकों में पुस्तक-विक्रेता का विज्ञापन करनेवाले आकर्षक पुस्तक-चिन्ह भी रखे जा सकते हैं। इसके अलावा पुस्तक पर दुकान के नाम-पते की रबर मुहर लगाने के बजाय सुन्दर और छोटे-छोटे लेबल या स्टिकर उसके पिछले कवर के भीतरी भाग में चिपकाए जा सकते हैं।

दुकान में ग्राहकों द्वारा खरीदी गई पुस्तकों को अच्छी तरह से पैक करके देना चाहिए। सम्भव हो तो इन्हें दुकान का नाम छपे हुए आकर्षक कागज में लपेटना चाहिए। यदि दुकानदार पारदर्शी पालीथीन कवर की लागत बर्दाश्त कर सके तो इस कागज में पुस्तकों को लपेटना और भी बेहतर होगा। कुछ भी हो, बिकी हुई पुस्तकें मजबूत बादामी कागज में तो लपेटी ही जानी चाहिए और ग्राहक को देने के पूर्व उन्हें अच्छे धागे से बँधा हुआ होना चाहिए। सादे धागे के स्थान पर ऐसे पतले रंग-बिरंगे फीते का भी इस्तेमाल किया जा सकता है जिस पर लम्बाई में पुस्तक की दुकान का नाम छपा हुआ हो। छोटे-छोटे बन्डल बाँधने के लिए चिपकानेवाली पट्टियों का भी उपयोग किया जा सकता है, बशर्ते कि पुस्तक-विक्रेता का नाम-पता लपेटनेवाले कागज या कवर पर दर्ज हो। उपहार के रूप में ग्राहकों को दी जानेवाली पुस्तकों की पैकिंग की ओर विशेष ध्यान देने की जरूरत है।

सद्भावना बढ़ाने के लिए ग्राहकों को कभी-कभी छोटी-छोटी चीजों का उपहार

देने में कोई हर्ज नहीं है। यदि नियमित ग्राहकों और किसी विशेष अवसर पर अतिथियों को केवल बिक्री-सम्वर्द्धन की दृष्टि से छोटी एवं कम खर्चवाली चीजें उपहार के रूप में दी जाएँ, तो उसे आपत्तिजनक नहीं समझा जाना चाहिए। वास्तव में इनका उद्देश्य तो सिर्फ पुस्तकों की बिक्री का सम्वर्द्धन ही होता है और यह भी प्रचार का एक साधन ही है। हाँ, यह ध्यान रखना बहुत जरूरी है कि इस प्रकार के उपहार देने में अतिरेक नहीं होना चाहिए और ऐसा उपहार केवल कभी-कभी ही देना चाहिए। औचित्यपूर्ण सीमाओं का उल्लंघन नहीं होने देना चाहिए।

पुस्तक-विक्रेताओं को यथासम्भव पुस्तक-विक्रेता संघ तथा अन्य संस्थाओं की ओर से आयोजित पुस्तकों की प्रदर्शनियों, शिक्षा-संस्थाओं द्वारा संचालित पुस्तक-मेलों में भाग लेना चाहिए। इनके अलावा वे महत्वपूर्ण अवसरों पर संयुक्त रूप से पुस्तक-प्रदर्शनियों का आयोजन कर सकते हैं।

ऐसी प्रदर्शनियों को पोस्टर तथा प्रचार के अन्य साधनों द्वारा समुचित रूप से विज्ञापित किया जाना चाहिए। प्रकाशकों से उपलब्ध होनेवाली प्रदर्शन-सामग्री का पूरा लाभ उठाना चाहिए।

पुस्तक-विक्रेता अपने क्षेत्र में प्रकाशकों के सहयोग से उनकी पुस्तकों की बिक्री के लिए समय-समय पर प्रचार-आन्दोलन की व्यवस्था कर सकते हैं। इस व्यवस्था पर आनेवाला व्यय आपस में बराबर-बराबर बाँटा जा सकता है। राष्ट्रीय समारोह और अन्य महत्वपूर्ण अवसरों पर भी ऐसी ही संयुक्त प्रचार-व्यवस्था की जा सकती है। ऐसे मौकों पर सावधानीपूर्वक सज्जित पुस्तकों के प्रदर्शन और उपयुक्त पोस्टर आदि के माध्यम से लोगों का ध्यान आकर्षित किया जा सकता है। दक्षिण एशिया के देशों में ऐसी सहकारी प्रचार-व्यवस्था बहुत ही उपयुक्त होगी, क्योंकि इन देशों में व्यक्तिगत आधार पर प्रचार के लिए निर्धारित वजट बहुत ही सीमित होता है।

पुस्तकों के प्रति अभिरुचि बढ़ाने के लिए सामान्य प्रचार-आन्दोलन भी चलाए जा सकते हैं—जैसे 'अधिक पुस्तकें पढ़िए', 'अधिक पुस्तकें खरीदिए' आदि प्रभावपूर्ण पोस्टरों का प्रदर्शन करके पाठक आन्दोलन को चलाया जा सकता है। इस प्रकार का सम्वर्द्धन पुस्तक-विक्रेताओं और प्रकाशक संघों के आपसी सहयोग के द्वारा काफी सफल रूप से किया जा सकता है। हाँ, जहाँ सम्भव हो, लेखकों और पुस्तकालयों के संघों का भी सहयोग प्राप्त किया जाय।

वाचनाभिरुचि का सर्वेक्षण

हिन्दी पुस्तकों की बिक्री के 'मार्केट रिसर्च' पर एक सर्वेक्षण रिपोर्ट कुछ समय पूर्व प्रकाशित की गई थी। प्रकाशन कला की वैज्ञानिक जानकारी के लिए उस रिपोर्ट का सार संक्षेप यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। इसमें हिन्दी पाठकों की वाचनाभिरुचि के विषय में कुछ महत्त्वपूर्ण दिशा-संकेत हमें मिलते हैं।

'मार्केट रिसर्च' (विक्रय अनुसंधान) के अन्तर्गत इस वाचनाभिरुचि सर्वेक्षण के लिए लगभग २५ हजार पाठकों को एक प्रश्नावली उत्तरदेयक लिफाफे के साथ भेजी गई। सर्वेक्षण बहुत बड़ा और जटिल न हो इसे ध्यान में रखते हुए एक सामान्य स्तर की प्रश्नावली देश के बहुसंख्यक हिन्दी पाठकों, समस्त अहिन्दीभाषी राज्यों की हिन्दी-प्रचार-सभाओं के हिन्दी-प्रचारकों, साहित्यकारों, अध्यापकों, संसद-सदस्यों, पुस्तकालयों आदि में वितरित की गई।

अहिन्दी क्षेत्रों में हिन्दी लोकप्रिय

सर्वेक्षण की विवरण तालिका के आँकड़ों से कुछ दिलचस्प बातें सामने आयीं। यद्यपि बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश, राजस्थान, पंजाब का कुछ हिस्सा, दिल्ली और हिमाचल प्रदेश भारत के ऐसे क्षेत्र हैं जो हिन्दीभाषी हैं; परन्तु इन प्रदेशों से प्राप्त उत्तरों का निकटतम प्रतिशत दक्षिण के आन्ध्र, मद्रास, मैसूर, केरल तथा पूर्वी बंगाल की तुलना में कम है। यह तथ्य इस बात को प्रकट करता है कि राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रति अहिन्दीभाषी क्षेत्रों के पाठकों में अच्छी रुचि है। हिन्दी के प्रति दक्षिण और बंगाल के पाठकों की रुचि से आशा की जा सकती है कि निकट भविष्य में राष्ट्रभाषा हिन्दी शीघ्र ही सभी क्षेत्रीय भाषाओं के बीच एक सम्पर्क-भाषा (लिंक लैंग्वेज) का स्थान ग्रहण कर लेगी। एक महत्त्वपूर्ण तथ्य दिल्ली के सर्वेक्षण से प्रकट हुआ। संसद के सभी सदस्यों को यह प्रश्नावली भेजी गई थी, परन्तु यह देखकर दुःख और आश्चर्य हुआ कि देश के 'भाग्यविधायक' पुस्तकों को पढ़ने के विषय में कितने उदासीन हैं। इससे बुरी और दयनीय स्थिति और क्या हो सकती है कि लगभग ५०० में केवल ५ सदस्यों ने ही इस प्रश्नावली के उत्तर भेजे, जो उनकी संख्या का मुश्किल से एक प्रतिशत होता है। यह प्रश्नावली लगभग ३००० साहित्यकारों, लेखकों, पत्रकारों और शिक्षकों के पास भी भेजी गई, परन्तु आश्चर्य की बात यह है कि इस वर्ग का उत्तर सामान्य पाठक वर्ग के मुकाबले बहुत ही कम रहा। अनुमानतः तीन हजार में २० बड़े लेखकों, लगभग ६५ शिक्षकों, पत्रकारों और अन्य साहित्यकारों के उत्तर आये। इस तरह इस वर्ग के उत्तर की संख्या २.८३ प्रतिशत है। बड़ी प्रसन्नता की बात है कि महिलाओं ने बड़े उत्साह से इस प्रश्नावली के उत्तर भेजे हैं। ४८० महिलाओं को यह प्रश्नावली भेजी गई थी, उनमें से

१५२ महिलाओं के उत्तर आये। ये आँकड़े इस बात के प्रतीक हैं कि महिलाएँ पढ़ने में दिलचस्पी लेती हैं। आवश्यकता इस बात की है कि हम उपयुक्त महिलोपयोगी साहित्य प्रस्तुत करें ताकि पाठकों का यह क्षेत्र और विस्तृत हो। उड़ीसा, त्रिपुरा, मणिपुर, गोवा और जम्मू-कश्मीर में भी यह प्रश्नावली भेजी गई, परन्तु वहाँ से उत्तर बिल्कुल नहीं आये। इससे विदित होता है कि इन क्षेत्रों में हिन्दी-पुस्तकों के प्रति जनता में विशेष उत्साह नहीं है।

विज्ञान और तकनीकी पुस्तकों की माँग

सामान्य जनता में देश की स्वतंत्रता के बाद पठन-रुचि में काफी विकास हुआ है। इसका प्रमाण है कि प्रश्नावली में जिन विषयों पर पाठकों से उत्तर माँगे गये, उससे पाठकवर्ग सन्तुष्ट नहीं था। पाठकों ने प्रश्नावली में दिये हुए विषयों के अतिरिक्त निम्नलिखित विषयों की पुस्तकें पढ़ने की भी इच्छा प्रकट की—यात्रा, संस्मरण, आखेट, वैज्ञानिक पुस्तकों के अनुवाद, राजनीतिक वृत्तान्त, विदेशी भाषा के अनुवाद, संसदीय प्रणाली की अनूदित पुस्तकें, सरकारी कार्यालयों की विधि पर प्रकाश डालनेवाली पुस्तकें, प्राविधिक ज्ञान की पुस्तकें और पुस्तकालय विज्ञान की पुस्तकें आदि।

कहना न होगा कि इन विषयों की पुस्तकों की माँग से एक बात बड़ी स्पष्ट रूप से सामने आई कि अब विज्ञान और तकनीकी पुस्तकों की माँग हिन्दी में बहुत तेजी से हो रही है। लोग चाहते हैं कि उनकी अपनी भाषा में ही उन्हें विज्ञान और तकनीकी विषय पढ़ने को मिलें। प्रसन्नता की बात है कि हिन्दी में बड़ी संख्या में विज्ञान और तकनीकी विषय की पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं तथा जिस गति से हिन्दी में प्रकाशन हो रहे हैं, उससे आशा की जा सकती है कि विज्ञान और तकनीकी विषयों के अध्ययन के लिए अँग्रेजी के सहारे की जरूरत नहीं पड़ेगी।

अनुवादों में रुचि

हिन्दी में अनुवाद साहित्य पढ़ने की रुचि पाठकों में है। बंगाल के शरत्, रविबाबू, बंकिम और विमल मित्र हिन्दी-पाठकों के प्रिय लेखक हैं। मराठी के हरिनारायण आप्टे, गुजराती के क० मा० मुंशी, पंजाबी के नानक सिंह की कृतियाँ हिन्दी में अनूदित हो कर आयी हैं। अनुवाद के क्षेत्र में हिन्दी भारतीय भाषाओं में अग्रगण्य है इसमें सन्देह नहीं। विदेशी लेखकों में पास्तरनाक, शेक्सपियर, गोर्की, तालस्ताय की पुस्तकों के अनुवाद पढ़ने की रुचि हिन्दी-पाठकों में हैं।

सर्वेक्षण-द्वारा यह भी प्रमाणित हुआ है कि हिन्दी-लेखकों में प्रेमचन्द पुरानी पीढ़ी के होते हुए भी लेखकों का नेतृत्व कर रहे हैं। उनके बाद चतुरसेन शास्त्री, मैथिलीशरण गुप्त, निराला, भगवतीचरण वर्मा, जयशंकर प्रसाद, यशपाल, राहुल सांकृत्यायन, दिनकर आदि हिन्दी के लेखक बहुत जनप्रिय हैं। सबसे जनप्रिय तो अपने 'रामचरितमानस' के कारण गोस्वामी तुलसीदासजी हैं। सर्वेक्षण में जहाँ भी अपनी चुनी हुई पुस्तकों के विषय में पाठकों से पूछा गया है, वहाँ अधिकांश पाठकों ने 'रामचरितमानस' का ही नाम प्रस्तावित किया है। इस सन्दर्भ में यह कहा जा सकता है कि हमारे देश की संस्कृति पर

जो धार्मिक प्रभाव पड़ता आया है वह अभी भी बना हुआ है। प्रमाणित है कि ऐसी धार्मिक पुस्तकें प्रकाशित की जाएँ जिनमें साम्प्रदायिकता न हो; और इसके साथ-साथ सभी धर्मों की बातें प्रकाश में आये।

नई प्रतिभाओं का चयन

देश में एक आन्दोलन नये लेखकों और कवियों को प्रोत्साहित करने के लिए चल रहा है। आज की माँग है कि तरुण साहित्यकारों को जनता के समक्ष उपस्थित किया जाए और जनता इनमें से हंस की तरह उन मोतियों को चुने जो सच्चे अर्थों में साहित्यकार हैं। पाठक सर्वेक्षण की इस रिपोर्ट में और जो हिन्दी-लेखक उभरे हैं, वे हैं—धर्मवीर भारती, मोहन राकेश, अमृतराय, डॉ० शिवप्रसाद सिंह, हिमांशु श्रीवास्तव तथा कमलेश्वर। नये कवियों का इस सर्वेक्षण में कहीं भी स्थान नहीं है। यदि हमको इन्हें जनता के समक्ष लाना है तो इसके लिए नये सिरे से प्रयत्न की जरूरत है।

तालिका देखने से यह भी स्पष्ट विदित हो जाता है कि जनता की रुचि अभी भी कथासाहित्य और उपन्यासों की ओर अधिक है। उपन्यासों में जासूसी साहित्य पढ़नेवाले अब खत्म हो रहे हैं। इनकी कुल संख्या इस सर्वेक्षण में लगभग २६ प्रतिशत है। इस सन्दर्भ में यह बात विचारणीय है कि इसके बावजूद हमारे देश में विदेशों से अकारण 'क्राइम' और 'डिटेक्टिव' पुस्तकें आ रही हैं। यह इन्हीं पुस्तकों का कुप्रभाव है कि अभी भी कुछ पाठक ऐसी पुस्तकें पढ़ना चाहते हैं। विदेशों से आनेवाले 'हाट लिटरेचर' ने हिन्दी के नये लेखन को कितना बदसूरत किया है, यह एक दुखद प्रसंग है।

बाल साहित्य, कला-साहित्य की माँग

इस सर्वेक्षण में ५ वर्ष से १० वर्ष तक के बच्चों के लिए बाल-साहित्य की माँग करनेवाले पाठकों की संख्या ३३ प्रतिशत रही और १० वर्ष से १४ वर्ष तक के बच्चों के लिए बाल-साहित्य की माँग करनेवालों की संख्या ४१ प्रतिशत। वैसे तो ये आँकड़े उत्साहवर्द्धक हैं, परन्तु अपेक्षा यह थी कि शतप्रतिशत उत्तरदाता अपने बच्चों के लिए बाल-साहित्य की माँग करते। बच्चे चाहते हैं कि उन्हें अपनी मातृभाषा में कथा-कहानी की पुस्तकें दी जाएँ। कभी-कभी देखने में आता है कि अभिभावक उनकी इच्छा न रहते हुए जबरदस्ती अँग्रेजी की पुस्तकें पढ़ने को देते हैं, क्योंकि आजकल समाज में एक फैशन-सा चल पड़ा है कि बच्चे बचपन से ही अपनी मातृभाषा न पढ़कर अँग्रेजी जरूर सीखें। ऐसी प्रवृत्ति देश की राष्ट्रभाषाओं के लिए घातक है। इस प्रवृत्ति का मुकाबला प्रकाशक अच्छी पुस्तकें निकाल कर और पुस्तकालयाध्यक्ष उन्हें पुस्तकालयों में रखकर बच्चों के बीच प्रचार कर सकते हैं। यदि हम लोग प्रारम्भ से ही बच्चों को उनकी मातृभाषा में अच्छी पुस्तकें दें और उनमें पढ़ने की रुचि उत्पन्न करें, तो निश्चय ही नई पीढ़ी के आनेवाले पाठक पुस्तकों में असाधारण रुचि लेंगे।

चिकित्सा और कला ये दो ऐसे विषय गिने जाते हैं जिनके विषय में कहा जाता है कि इनके पाठक ही नहीं हैं, परन्तु इस सर्वेक्षण ने यह सिद्ध कर दिया कि बात ठीक

इसके विपरीत है। आँकड़ों को देखने से पता चलता है कि कला और संगीत विषय के पाठक २८ प्रतिशत हैं और चिकित्सा के ३० प्रतिशत।

विषयवैविध्य और विविध समाजों में रुचि

यह सुझाव, प्रासंगिक न होगा कि अपने देश के पुस्तकालयाध्यक्षों को देश की राष्ट्रभाषा हिन्दी तथा अन्य क्षेत्रीय भाषाओं की पुस्तकें पढ़नेवाले पाठकों की रुचि का सर्वेक्षण वर्ष में एक बार अवश्य कर लेना चाहिए और जनता में यह भावना जागृत की जाय कि वे देशी भाषाओं में छपी पुस्तकें पढ़ने में रुचि ले। अकारण अँग्रेजी पुस्तकों का अम्बार पुस्तकालयों में लगाना देश की संस्कृति और साहित्य के प्रति तो अन्याय है ही, देश के अर्थतन्त्र की दृष्टि से भी हानिकर है। आज देश में एक ऐसा मध्यमवर्ग पैदा हो रहा है जो राष्ट्रीय भाषाओं का पृष्ठपोषक है। इस वर्ग की आकांक्षाओं को दृष्टिगत रखकर साहित्य निर्माण की आवश्यकता है। पुस्तकालयाध्यक्ष अपने सर्वेक्षणों-द्वारा प्रकाशकों को इस वर्ग की रुचि के सम्बन्ध में जानकारी देकर सही साहित्य के प्रकाशन में परामर्श दे सकते हैं। निस्सन्देह यह उनका एक विशिष्ट योगदान होगा।

इस सर्वेक्षण में प्रकाशकों के लिए ध्यान देने योग्य कुछ बातें हैं। अब प्रकाशकों को यह समझना होगा कि आज का पाठक पुस्तकों में विषय-वैविध्य और समाजवैविध्य देखना चाहता है। यदि प्रकाशक लेखक के सहयोग से अच्छी पुस्तकें प्रकाशित करें और पाठकों में समुचित रूप से आधुनिक युग के अनुकूल प्रचार करें तो हिन्दी-पुस्तकें अधिक बिक सकती हैं। प्रकाशकों को यह भी देखना चाहिए कि उनके प्रकाशन भारत के प्रमुख शहरों में पाठकों को मिलें। सर्वेक्षण का उत्तर भेजनेवाले ९० प्रतिशत लोगों ने इस बात क़ी शिकायत की है कि उनकी माँग के अनुसार हिन्दी-पुस्तकें बड़े शहरों में भी नहीं मिलतीं।

पुस्तकों की खरीद और स्टॉक का नियन्त्रण

पुस्तक की दुकान के स्टॉक के लिए किताबों की खरीद करना पुस्तक-विक्रेता का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य है। अन्य दूसरी वस्तुओं की अपेक्षा पुस्तकों की खरीद में कहीं अधिक जोखिम रहता है। यह खरीददारी पुस्तक-विक्रेता की अपनी विशेष आवश्यकताओं पर निर्भर होती है और इस सम्बन्ध में कोई ऐसा नियम या सिद्धान्त नहीं है जिस पर आँख मूँदकर अमल किया जा सके।

पुस्तकों का स्टॉक स्वाभाविक रूप से पूँजी की उपलब्धि पर निर्भर करेगा। यही नहीं, पूँजी का एक भाग दुकान के लिए आवश्यक अन्य सामग्री पर भी लगाना होगा। दुकान में पुस्तकें प्रदर्शित करने के स्थान, स्टोर और अन्य सुविधाओं के अनुसार ही पुस्तकों की खरीद, चुनाव और उनकी संख्या का निर्धारण किया जा सकता है।

अनुभव के आधार पर यह कहा जा सकता है कि विभिन्न प्रकार की पुस्तकें रखनेवाली अर्थात् सभी आयु-वर्ग के भिन्न अभिरुचियोंवाले पाठकों की पसन्द की पुस्तकें स्टॉक करनेवाली पुस्तकों की दुकानों की सफलता की सम्भावना अधिक होती है। सामान्य पुस्तक-विक्रेता को आम दिलचस्पी के सभी विषयों की चुनी हुई पुस्तकें रखनी चाहिए—जैसे साहित्य, क्लासिक्स, इतिहास, यात्रा-विवरण, जीवनी, मनोविज्ञान, दर्शन, धर्मशास्त्र, कला, व्यवसाय, लोकप्रिय विज्ञान, कथा-साहित्य, खेल, 'हॉबी', स्वयं-शिक्षक जैसी भिन्न पुस्तकों के अलावा, बाल-साहित्य, विश्वकोश तथा शब्दकोश जैसे प्रामाणिक सन्दर्भ-ग्रन्थ। निःसन्देह सभी प्रकार की पुस्तकों का स्टॉक रखना तो सम्भव नहीं है, फिर भी आमतौर पर नियमित रूप से बिकनेवाली पुस्तकों के अलावा स्टॉक अवश्य होना चाहिए और साथ ही सम्भावित माँग को ध्यान में रखकर स्टॉक के लिए नयी किताबें मँगाते रहना चाहिए। किसी भी विषय पर प्रकाशित नवीनतम पुस्तकों की प्रायः सदैव माँग रहती है। इसलिए पुस्तक-विक्रेता को चाहिए कि वह नये एवं महत्वपूर्ण प्रकाशनों की कुछ प्रतियाँ अवश्य रखे।

पुस्तकों की खरीद के प्रति सन्तुलित दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। न तो बिना सोचे-समझे दनादन खरीद करके स्टॉक में पुस्तकें भर देना चाहिए और न यही उचित है कि बहुत डर-डर कर पुस्तकें खरीदी जाएँ। बहुत अधिक पुस्तकें खरीद लेने से स्टॉक में बिना खपत की पुस्तकों का ढेर लग जाएगा और जरूरत से ज्यादा सावधानी बरतकर पुस्तकें खरीदने से बिक्री में गिरावट आने की सम्भावना रहती है। पुस्तकों का चुनाव करते

समय उनके स्तर की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। निश्चय ही मामूली एवं निम्न कोटि की किताबों की तुलना में अच्छी किस्म की पुस्तकों की बिक्री अधिक होती है। पाठकों को ज्ञानवर्द्धक और मनोरंजक पुस्तकें उपलब्ध करानी चाहिए, किन्तु पुस्तक-विक्रेता को यह बात हमेशा याद रखनी चाहिए कि वह पुस्तकें इसलिए खरीद रहा है कि उसे उनकी बिक्री करनी है। इसलिए विविध प्रकार की पुस्तकों की सम्भावित खपत की ओर पुस्तक-विक्रेता को विशेष ध्यान देने की जरूरत है। किसी पुस्तक को स्टॉक में सिर्फ इसलिए नहीं जमा कर लेना चाहिए कि पुस्तक-विक्रेता को वह पुस्तक पसन्द है। जब तक पुस्तक-विक्रेता को यह विश्वास न हो कि बाज़ार में अमुक पुस्तक की माँग होगी, तब तक उस पुस्तक को खरीदकर अपने स्टॉक में नहीं जमा करना चाहिए। खरीद के लिए पुस्तकों का चुनाव करते समय बिक्री से सम्बद्ध कर्मचारियों की राय ले लेना आवश्यक है, क्योंकि उनकी बिक्री की सही जानकारी इन्हीं लोगों से प्राप्त हो सकती है।

कौन-सी पुस्तक कितनी संख्या में खरीदी जाए, यह पुस्तक के मूल्य और उसकी माँग पर निर्भर होगा। पाठ्य-पुस्तकों, पुस्तकालयों के अलावा राष्ट्रीय व धार्मिक पर्वों के अवसर पर भेंट के लिए खरीदी जानेवाली पुस्तकों का पर्याप्त स्टॉक रखना आवश्यक है, किन्तु इसके अलावा ऐसी पुस्तकों का स्टॉक जमा करते समय विक्रेता को सावधान रहना चाहिए। आमतौर से उतनी ही पुस्तकें खरीदकर स्टॉक में रखनी चाहिए जितनी कि अगले तीन महीनों में बिक सकने की आशा हो। यदि कोई पुस्तक अनुमान से अधिक संख्या में बिकती है तो उसकी और प्रतियों की खरीद के लिए यथासमय ऑॅर्डर दे देना चाहिए, जिससे कि पिछले स्टॉक की खपत होने से पूर्व ही नये ऑर्डर की पुस्तकें स्टॉक में उपलब्ध रहें

खरीद के लिए पुस्तकों की सूची बनाते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि पुस्तक कितनी लोकप्रिय है और दुकान में उस पुस्तक-विशेष की बिक्री की क्या स्थिति है। प्रकाशक अथवा थोक पुस्तक-विक्रेता से मिलनेवाले कमीशन की रकम भी पुस्तकों की खरीददारी में महत्वपूर्ण एवं निर्णायक तत्व है। यह बात भी ध्यान में रखनी होगी कि पैकिंग और भाड़े में कितनी धनराशि खर्च हो रही है। डाक-दरें अधिक होती हैं और प्राय: उनमें वृद्धि भी होती रहती है, इसलिए बेहतर यही होगा कि डाक के जरिए केवल उतनी ही पुस्तकों के ऑर्डर दिए जाएँ, जिनकी शीघ्र सप्लाई करनी है। स्टॉक के लिए अधिकांश रूप से नियमित खरीददारी के लिए परिवहन के सस्ते-से-सस्ते साधन समुद्री जहाज, रेल, मोटर-लॉरी का उपयोग करना चाहिए।

'आधारभूत स्टॉक' और 'विशेष सीजन के समय असाधारण माँगों पर 'आधारित स्टॉक' का भेद स्पष्ट होना चाहिए। आधारभूत स्टॉक का अधिकांश भाग ऐसी पुस्तकों का होना चाहिए जिनकी बराबर खपत होती रहती है; इसमें कुछ भाग ऐसी पुस्तकों का भी हो सकता है जिनकी माँग लगभग निश्चित-सी होती है। आधारभूत अथवा मूल स्टॉक के लिए ऑर्डर की जानेवाली पुस्तकों में विविध प्रकार की किताबें शामिल होनी चाहिए। साप्ताहिक खपत के औसत के आधार पर आधारभूत स्टॉक की पूर्ति का नियोजन लगभग छ: सप्ताह के लिए किया जाना चाहिए। इस प्रकार के स्टॉक के लिए पुस्तकों के ऑर्डर

देने की पद्धति पर समय-समय पर विचार किया जाना चाहिए, ताकि प्रकाशन एवं पुस्तकों के विक्रय की नयी प्रवृत्तियों से उचित लाभ उठाया जा सके। इस उद्देश्य से कि पूँजी फँसे नहीं, इक्का-दुक्का पुस्तकों को बराबर मँगाते रहना वास्तव में बहुत ही हानिकारक होता है, क्योंकि पुस्तक मँगाने पर जो व्यय होता रहता है, उससे लाभ की रकम कम होती रहती है। सिर्फ बराबर खपतवाली पुस्तकों को ही महत्व देने और अन्य प्रकार के महत्वपूर्ण प्रकाशनों की उपेक्षा करने से भी अन्ततोगत्वा लाभ नहीं होगा। इस प्रकार दुकान में बहुत-सी पुस्तकें उपलब्ध नहीं होंगी और विशेष पुस्तकों को खरीदने की गरज से आनेवाले ग्राहकों को निराश होकर लौटना पड़ेगा। सही रास्ता तो यही होगा कि विभिन्न विषयों पर विविध प्रकाशनों के सुनियोजित स्टॉक की व्यवस्था की जाए। इसके लिए आवश्यक है कि स्टॉक की निरन्तर जाँच होती रहे और नये-नये प्रकाशनों की बिक्री के आधार पर ऑर्डर दिए जाएँ।

छोटे और औसत दर्जे के पुस्तक-विक्रेताओं को महँगी पुस्तकों के स्टॉक जमा करने की दिशा में पर्याप्त सावधानी बरतनी चाहिए। इस प्रकार की पुस्तकें रखने से उनकी व्यावसायिक प्रतिष्ठा में वृद्धि अवश्य होती है, लेकिन ऐसी पुस्तकों को बेचना कठिन होता है। इसलिए ऐसे प्रकाशनों का ऑर्डर बहुत सोच-समझकर देना चाहिए।

विशेष प्रकार के पुस्तक विक्रेताओं को इस श्रेणी की महत्वपूर्ण पुस्तकों का पर्याप्त स्टॉक रखना चाहिए। इस प्रकार की किताबों की खपत का अनुमान लगाना मुश्किल नहीं होता और इसलिए आवश्यक स्टॉक की व्यवस्था करने में अधिक दिक्कत नहीं होती। पाठ्यक्रम की पुस्तकें रखनेवाले पुस्तक-विक्रेताओं को ऐसी पुस्तकों का इतना अधिक स्टॉक रखना चाहिए जिससे वह समीपवर्ती क्षेत्र के माँग की पूर्ति कर सकें।

जहाँ तक पॉकेट-बुक सीरीज की अजिल्द और अखबारी कागज पर प्रकाशित पुस्तकों का सवाल है, इनकी लोकप्रियता दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। लोकप्रियता बढ़ने का कारण सिर्फ यही नहीं है कि ये ग्रन्थ, कथा-कृतियाँ आदि सभी पॉकेट-बुक सीरीज में प्रकाशित होने लगी हैं। यद्यपि बाजार में महँगी सजिल्द पुस्तकों की खपत कुछ कम होती जा रही है, लेकिन पाश्चात्य देशों और दक्षिण एशिया के देशों में अधिकांश श्रेष्ठ प्रामाणिक प्रकाशन सजिल्द पुस्तकों के रूप में ही किए जाते हैं। आज भी यही सजिल्द प्रकाशन पुस्तक-उत्पादन-व्यवसाय के प्रमुख अंग हैं। इसलिए पुस्तक-विक्रेता इनकी उपेक्षा नहीं कर सकते, क्योंकि इनकी बिक्री निरन्तर होती रहती है और इनकी कीमतें ऊँची होने के कारण लाभांश भी अधिक होता है। यह स्मरण रखना होगा कि पुस्तकालय सजिल्द और सुन्दर रूप से प्रकाशित पुस्तकें ही खरीदना पसन्द करते हैं। किन्तु आजकल अजिल्द और पॉकेट-बुक सीरीज की पुस्तकों का समुचित स्टॉक रखना निश्चय ही पुस्तक-विक्रेता के लिए उपयोगी और लाभप्रद होगा। प्रत्येक सामान्य पुस्तक-विक्रेता को 'पेपर-बैक' पुस्तकों की बिक्री और स्टॉक के लिए पृथक् अनुभाग की व्यवस्था करनी चाहिए। इन पुस्तकों पर कमीशन की दर प्रायः अधिक होती है और अन्य पुस्तकों की अपेक्षा इनकी बिक्री भी अच्छी होती है।

पिछले कुछ वर्षों के पुस्तक-व्यवसाय-जगत् में एक नयी प्रवृत्ति परिलक्षित हो रही है। दक्षिण एशियाई देशों में विविध योजनाओं के अन्तर्गत अनेक प्रकार के प्रामाणिक विदेशी प्रकाशन बहुत ही सस्ती कीमत पर उपलब्ध कराये गये हैं। ऐसी योजनाओं में इंगलिश लैंग्वेज बुक सोसाइटी एडीशन्स, एशियन एडीशन्स, अमरीकी प्रकाशकों द्वारा प्रकाशित ईस्टर्न इकॉनॉमी एडीशन्स और विदेशी प्रकाशकों द्वारा प्रकाशनाधिकार प्राप्त करके सस्ते संस्करणों के प्रकाशन महत्वपूर्ण हैं।

इस प्रकार के प्रकाशनों में सम्मिलित हैं लोकप्रिय तकनीकी विषयों की पाठ्य-पुस्तकें, सन्दर्भ-ग्रन्थ, ज्ञान-विज्ञान की सामान्य और व्यावहारिक जानकारी की लोकप्रिय पुस्तकें। इस प्रकार की पुस्तकों में विविध विषयों पर लिखे गए अनेक रूसी प्रकाशन सस्ते मूल्य पर बाजार में उपलब्ध थे, परन्तु अब ऐसा नहीं है।

पुस्तक-विक्रेता को इस प्रकार के सस्ते संस्करण रखने चाहिए, क्योंकि विद्यार्थी-समुदाय में पाठ्य-पुस्तकों की काफी माँग रहती है। इस प्रकार की अन्य सामान्य पुस्तकें भी शिक्षित-वर्ग में पर्याप्त लोकप्रिय होती जा रही हैं।

दक्षिण एशियाई देशों में विशेषत: भारत में पुस्तक-व्यवसाय की एक प्रमुख विशेषता यह है कि पिछले दो दशक में हिन्दी और प्रादेशिक भाषाओं का पुनरुत्थान हो रहा है और इस वजह से इन भाषाओं में पुस्तक-प्रकाशन के क्षेत्र में विशेष प्रगति हो रही है। प्राचीन पुस्तकों के नये-नये संस्करण निकाले जा रहे हैं और सभी विषयों पर नयी-नयी असंख्य पुस्तकें प्रकाशित हो रही हैं। साक्षरता के प्रसार के साथ-साथ प्रादेशिक भाषाओं में लिखी गई पुस्तकों की माँग दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। सार्वजनिक पुस्तकालयों के विकास के कारण भी इस प्रकार की पुस्तकों की माँग में वृद्धि हुई है। इसलिए विक्रेता को हिन्दी और अन्य स्थानीय भाषाओं में लोकप्रिय पुस्तकों के पर्याप्त स्टॉक की व्यवस्था करनी चाहिए, ताकि वह इन भाषाओं में लोगों की दिलचस्पी बढ़ जाने के फलस्वरूप प्राप्त होनेवाला लाभ उठा सके।

प्रत्येक पुस्तक-विक्रेता यहाँ तक कि विशिष्ट प्रकार की पुस्तकों को रखनेवाले विक्रेता को भी, अपनी दुकान में बालकों की पुस्तकों के अनुभाग की व्यवस्था करनी चाहिए। आजकल बच्चों की पुस्तकें पूरे वर्ष बिकती रहती हैं; ऐसा नहीं है कि पहले की तरह इनकी खपत वर्ष के केवल कुछ महीनों में हो। बच्चों के मानसिक विकास के लिए आजकल बालोपयोगी पुस्तकों के महत्व को अधिकाधिक स्वीकार किया जा रहा है और बच्चों की पुस्तकों को आकर्षक साजसज्जा के साथ प्रकाशित किया जा रहा है। वैसे तो बच्चों की पुस्तकों की बिक्री से प्राप्त होनेवाला लाभ औसत दुकान के लिए व्यावसायिक दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण नहीं होगा, लेकिन इससे बच्चों में पुस्तकें पढ़ने की रुचि पैदा करने का दूरगामी लाभ होगा। बड़े होकर इन बच्चों में पुस्तकों के प्रति विशेष अभिरुचि जगेगी।

समय-समय पर सार्वजनिक दिलचस्पी की महत्वपूर्ण पुस्तकों का प्रकाशन होता रहता है। चाहे ये देशी या विदेशी प्रकाशन हों, प्राय: इनकी बहुत अधिक कीमत रखी जाती है। इन पुस्तकों की ऊँची कीमतों के कारण पुस्तक-विक्रेता को ऐसी किताबें अपने स्टॉक में

रखने में संकोच नहीं करना चाहिए। इन पुस्तकों का प्रकाशन अपने में ही बहुत महत्वपूर्ण होता है और ऊँची कीमतों के बावजूद लोग इन्हें खरीदते हैं। छोटे-छोटे पुस्तक-विक्रेताओं को भी ऐसी पुस्तकें बेचने की सम्भावनाओं का पूरा लाभ उठाना चाहिए, क्योंकि इनमें लाभांश अधिक रहता है; हाँ, उन्हें इन पुस्तकों के स्टॉक रखने की दिशा में सावधानी अवश्य बरतनी चाहिए।

कुछ प्रकाशक एक साथ अनेक पुस्तकों के विक्रय पर बहुत अधिक कमीशन की रकम देते हैं, किन्तु जब तक पुस्तक-विक्रेता को यह विश्वास न हो कि खरीदी जानेवाली पुस्तकों की बाजार में काफी खपत है, तब तक केवल कमीशन के लोभ में आकर ऐसी पुस्तकों की खरीद कर लेना खतरे से खाली नहीं है। इसी प्रकार किसी पुस्तक को बहुत अधिक संख्या में खरीदने पर भी कमीशन की अधिक दरें दी जाती हैं, इसलिए पुस्तक-विक्रेता को सावधानी से केवल उन्हीं पुस्तकों की अधिक प्रतियाँ खरीदनी चाहिए जिनकी उसकी दुकान पर अधिक खपत है। अनिश्चित और कम माँगवाली पुस्तकों के बड़े ऑर्डर नहीं देने चाहिए। कभी-कभी प्रकाशक कुछ पुस्तकों के प्रकाशन के पूर्व ही निर्धारित कीमतों पर व्यवसाय के लिए पुस्तक-विक्रेताओं से सम्पर्क स्थापित करते हैं। इस प्रकार से साहसी और सावधान पुस्तक-विक्रेता आकर्षक शर्तों का पूरा-पूरा लाभ उठा सकते हैं। इसी प्रकार पुस्तक और उसके मूल्य के आधार पर सूझ-बूझ से निर्णय लेने पर प्रकाशन से पूर्व की शर्तों के आधार पर ऑर्डर देने से बिक्री बहुत शीघ्र होती है और लाभ भी अधिक होता है। इस तरह के ऑर्डर देने की पद्धति को कभी-कभी चन्दे के आधार पर ऑर्डर देने की प्रणाली की संज्ञा दी जाती है।

पुस्तकों के स्टॉक की एक अन्य पद्धति 'कन्साइन्मेन्ट' के आधार पर की जाती है। आमतौर से पुस्तक-विक्रेताओं की यह राय है कि यह प्रणाली अत्यन्त लाभप्रद है, क्योंकि इसमें न तो पूँजी लगानी पड़ती है और न नुकसान होने की ही गुंजाइश रहती है। किन्तु यह धारणा कभी-कभी भ्रामक सिद्ध होती है, क्योंकि इस पद्धति का लाभ तभी प्राप्त होता है जब कोई पुस्तक अधिक संख्या में ऑर्डर की जाती है। जब तक यह विश्वास न हो कि प्रकाशक द्वारा निर्धारित पुस्तकों की प्रतियाँ एक निश्चित अवधि में बेची जा सकती हैं, तब तक केवल पुस्तकों का स्टॉक जमा कर लेने और बाद में उन्हें लौटा देने से तो कोई लाभ नहीं होगा। इसके अलावा पुस्तकें स्टोर में रखने और उसके रख-रखाव की समस्या भी होगी। कभी-कभी पुस्तक-विक्रेता 'कन्साइन्मेन्ट' स्टॉक की समुचित देखभाल नहीं करते हैं, क्योंकि उनके दिमाग में यह बात रहती है कि ऐसी पुस्तकों के लिए उन्हें कीमत नहीं चुकानी पड़ी है। किन्तु प्रकाशक न बिकी हुई केवल ऐसी ही पुस्तकों को वापस लेगा जो साफ-सुथरी हालत में हों और बेची जा सकती हों। प्रायः इस सम्बन्ध में झगड़े और गलतफहमियाँ पैदा हो जाती हैं। इसलिए जब तक कि 'कन्साइन्मेन्ट' से पूर्ति की शर्तें पुस्तक-विक्रेता के लिए व्यावसायिक दृष्टि से अनुकूल और लाभप्रद न हों, तब तक उसे पुस्तकों की आवश्यक प्रतियाँ नकद या उधार की सामान्य शर्तों के आधार पर मँगानी चाहिए।

पुस्तक-विक्रेताओं द्वारा पुस्तकें मँगाने की एक और पद्धति है जिसे 'सी सेफ' कहा जा सकता है। इसके अन्तर्गत पुस्तक-विक्रेता अपनी सम्भावित आवश्यकता के आधार पर पुस्तकें खरीदकर सामान्य तरीकों से बिल का भुगतान कर देता है, किन्तु उसे यह भी अधिकार होता है कि वह एक निश्चित अवधि के भीतर न बिकी हुई पुस्तकें प्रकाशक को लौटाकर उनकी कीमत वापस ले ले। यह ऑर्डर देने के सामान्य तरीके और खाते के बीच की पद्धति है। इसमें पुस्तक-विक्रेता को पहले पूँजी अवश्य लगानी पड़ती है, लेकिन उसे अधिकार होता है कि न बिकी हुई पुस्तकों को वह लौटा सके। यदि पुस्तक-विक्रेता को अपने क्षेत्र की सम्भावित माँग का अनुमान नहीं है, तो इस पद्धति के द्वारा बुद्धिमानी से लाभ उठाया जा सकता है।

पुस्तक-विक्रेता को अपने पास आनेवाले प्रकाशकों के प्रतिनिधियों का पूरा लाभ उठाना चाहिए। विवेकपूर्ण ऑर्डर दिलवाने, यथासमय नये प्रकाशनों और पुरानी और विस्मृत ख्यातिपूर्ण पुस्तकों के स्टॉक के लिए उचित राय देने के सम्बन्ध में ये प्रतिनिधि बहुत अधिक सहायक सिद्ध हो सकते हैं। बेशक पुस्तक-विक्रेता को इस दिशा में सतर्क रहना चाहिए कि वह प्रकाशकों अथवा थोक-विक्रेताओं के प्रतिनिधियों के दाँव-पेंच में फँसकर आवश्यकता से अधिक प्रतियों का ऑर्डर न दे।

विभिन्न विषयों पर नये-नये प्रकाशनों की जानकारी के लिए पुस्तक-विक्रेताओं को पुस्तकों के सूचीपत्र, प्रमुख समाचारपत्रों के पुस्तक-समीक्षा वाले स्तम्भ, साहित्यिक तथा अन्य पत्रिकाएँ देखते रहना चाहिए। 'पुस्तक-समीक्षा' और 'पुस्तक-प्राप्ति-स्वीकार' के स्तम्भों के आधार पर खरीदी जानेवाली पुस्तकों का बुद्धिमत्तापूर्ण चुनाव किया जा सकता है। समाचार-पत्रों और अन्य पत्रिकाओं के पुस्तक-समीक्षा वाले पृष्ठों पर प्राय: प्रमुख पुस्तकों और नये-नये प्रकाशनों के सम्बन्ध में विज्ञापन छपते रहते हैं। किन्तु अकसर पुस्तक-प्रकाशन और पुस्तक-समीक्षा के बीच समय का ज्यादा अन्तराल हो जाता है तब इन समीक्षाओं की उपयोगिता कम हो जाती है।

थोक पुस्तक-विक्रेता

दक्षिण एशिया के देशों में पाश्चात्य देशों की भाँति पुस्तक-व्यवसाय में थोक-विक्रेताओं और बड़े-बड़े वितरकों की संख्या अधिक नहीं है। केवल राजधानियों और बड़े-बड़े शहरों में कुछ ऐसे विक्रेता और वितरक हैं, जो कुछ हद तक इस कमी को पूरा करते हैं। लेकिन आमतौर से सीधे प्रकाशकों से ही पुस्तकों की खरीद की जाती है। हाँ, विदेशी प्रकाशन अवश्य या तो सीधे आयात करनेवाले पुस्तक-विक्रेताओं से प्राप्त किए जाते हैं या अगर विदेशी प्रकाशक के एजेन्ट या स्टॉकिस्ट हैं तो उनसे खरीदे जाते हैं। प्रकाशकों के हित को ध्यान रखनेवाले थोक-विक्रेता काफी उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं, क्योंकि उनसे भारी-भारी ऑर्डर प्राप्त होते हैं और वे प्रकाशकों के पूँजी-सम्बन्धी भार का भी कुछ भाग वहन कर लेते हैं। थोक-विक्रेताओं के कारण प्रकाशकों द्वारा पुस्तकें जमा रखने की समस्या भी कुछ हद तक हल हो जाती है और छोटे-छोटे असंख्य ऑर्डरों की ओर ध्यान देते रहने की उनकी दिक्कत में कमी होती है। ये थोक-विक्रेता

विशेषकर छोटे-छोटे पुस्तक-विक्रेताओं के लिए तो बहुत ही उपयोगी होते हैं, क्योंकि इनके द्वारा पुस्तक-विक्रेता को विभिन्न प्रकाशनों की पुस्तकें एक ही स्थान से उपलब्ध हो जाती हैं और साथ ही समय, भाड़ा तथा डाक-व्यय की बचत होती है।

जहाँ थोक-विक्रेता हैं, उनके द्वारा खुदरा विक्रेताओं को पुस्तकों की सप्लाई की सुविधाएँ निरन्तर प्राप्त हो सकती हैं, ऐसी जगह पर पुस्तक-विक्रेताओं को इन थोक-विक्रेताओं की सेवाओं से पूरा लाभ उठाना चाहिए। एक समय में एक ही ऑर्डर देने के कारण पुस्तक-विक्रेता को पत्र-व्यवहार भी कम करना पड़ता है, हिसाब-किताब में कमी के कारण समय और धन की बचत होती है और कार्यक्षमता में वृद्धि भी होती है। अपेक्षाकृत दुर्लभ पुस्तकों का पता लगाने में भी थोक-विक्रेता छोटे पुस्तक-विक्रेताओं की कठिनाई में सहायक सिद्ध हो सकते हैं। सुचारु सेवा और इकट्ठी सप्लाई के लिए वितरकों को दी जानेवाली अतिरिक्त धनराशि का अपना औचित्य है।

किन्तु थोक-विक्रेताओं द्वारा निर्धारित व्यवसाय की शर्तों, उधार सप्लाई करने की व्यवस्था और अन्य सुविधाओं पर ही यह निर्भर करेगा कि पुस्तकों के ऑर्डर उन्हें दिए जाएं या सीधे प्रकाशकों द्वारा पुस्तकें खरीदी जाएँ। यदि किसी विशेष प्रकाशक से बहुत-सी पुस्तकें खरीदनी हों तो सीधे प्रकाशक को ही ऑर्डर देना अधिक लाभप्रद होगा। अधिकांशत: अनेक प्रतियों के ऑर्डर की तुलना में एक प्रति पर प्रकाशक द्वारा दिए जानेवाले कमीशन की दर कम होती है, इसलिए विभिन्न प्रकाशकों से पुस्तक की एक प्रति का ऑर्डर थोक-विक्रेता को ही देना चाहिए।

सूचीपत्र और सन्दर्भ के लिए उपयोगी पत्र-पत्रिकाएँ

प्रकाशकों की विषयानुसार पुस्तक-सूची, विस्तृत सूची और इकट्ठी तैयार की गई पुस्तकों की सूची के आधार पर ही पुस्तक-विक्रेता अपनी दुकान के लिए पुस्तकों का चुनाव करता है। बुद्धिमत्तापूर्ण ऑर्डर देने के लिए इन सूचियों का होना अति आवश्यक है। जब भी प्रकाशकों द्वारा सूचीपत्र प्राप्त हों तो उन्हें ऐसे ही फेंक नहीं देना चाहिए, वरन् उनका अध्ययन करना चाहिए और उनमें से आवश्यक सूचीपत्रों को सन्दर्भ के लिए फाइल में लगा देना चाहिए। देश के विभिन्न प्रकाशकों से प्राप्त पुंस्तक-सूचियाँ और सूचीपत्रों के अतिरिक्त पुस्तक-विक्रेता को अपने व्यवसाय के अनुरूप विदेशी प्रकाशकों अथवा उनके एजेन्टों अथवा सीधे तौर पर आयात करनेवाले पुस्तक-व्यवसायियों से विदेशी प्रकाशकों की सूचियाँ भी प्राप्त करने की कोशिश करना चाहिए। बड़े पुस्तक-विक्रेताओं को देश में प्रकाशित पुस्तक-व्यवसाय से सम्बद्ध पत्रिकाओं को नियमित रूप से मँगाना चाहिए। इसके अतिरिक्त उन्हें ब्रिटेन से प्रकाशित प्रमुख व्यावसायिक साप्ताहिक पत्रिका 'बुकसेलर' और अमरीकी पुस्तक-व्यवसाय पत्रिका 'पब्लिशर्स वीकली' का भी सदस्य होना चाहिए। पुस्तक-व्यवसाय से सम्बद्ध अन्य उपयोगी पत्रिकाएँ हैं: १. 'ब्रिटिश बुक्स' (मासिक), २. 'ब्रिटिश बुक न्यूज' (मासिक), ३. 'टाइम्स लिटरेरी सप्लीमेन्ट' ४. 'टाइम्स एजूकेशन सप्लीमेन्ट'। जो पुस्तक-विक्रेता कुछ अधिक रकम खर्च कर सकते हैं,

वे ब्रिटेन में प्रकाशित 'ह्विटेकर क्यूमूलेटिव बुक लिस्ट्स' और बौकर एण्ड कम्पनी, यू० एस० ए० द्वारा प्रकाशित 'बुक्स इन प्रिण्ट' और 'सब्जेक्ट गाइड टु बुक्स इन प्रिण्ट' की प्रतियाँ मँगाने की व्यवस्था कर सकते हैं। इनमें से अधिकांश पत्र-पत्रिकाएँ केवल बड़े-बड़े पुस्तक-विक्रेताओं के लिए ही हैं। किन्तु छोटे और देश के भीतरी भागों के पुस्तक-विक्रेताओं को भी यथासम्भव अधिक-से-अधिक प्रकाशकों के सूचीपत्र एकत्र करना चाहिए। साथ-ही-साथ उनमें होनेवाले संशोधनों-परिवर्द्धनों को भी नोट करते रहना चाहिए और स्टॉक के लिए ऑर्डर करते समय इन सूचीपत्रों की सहायता लेनी चाहिए। प्रकाशकों की हाउस मैगजिन भी देखना लाभकर होगा।

सरकारी प्रकाशनों के स्टॉक की व्यवस्था

राज्य की गतिविधियों में वृद्धि होने के फलस्वरूप दक्षिण एशिया के देशों और विशेष रूप से भारत में सरकारी प्रकाशनों की विविधता और उनकी संख्या में भी वृद्धि हुई है। मोटे तौर से इन सरकारी प्रकाशनों को नीचे दिए तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—

१. ऐसे प्रकाशन को जनता के सूचनार्थ सरकारी विभागों की गतिविधियों का लेखा-जोखा प्रस्तुत करते हैं।
२. ऐसे प्रकाशन जो विभिन्न सरकारी अनुसन्धान-संस्थाओं द्वारा किए जा रहे वैज्ञानिक और तकनीकी अनुसन्धानों के परिणामों का विवरण प्रस्तुत करते हैं।
३. ऐसी पुस्तकें जो सामान्य अथवा विशेष अभिरुचि के विषयों पर आम जनता को जानकारी उपलब्ध कराती और मार्गदर्शन करती हैं।

किन्तु पुस्तक-विक्रेताओं के पास ऐसे प्रकाशन आसानी से उपलब्ध नहीं होते। इसका कारण यह है कि सरकार स्वयं पुस्तक-विक्रेताओं को ऐसे प्रकाशनों का स्टॉक रखने की दिशा में कोई प्रोत्साहन नहीं देती है और पुस्तक-विक्रेता भी कोई खास जोखिम उठाना गवारा नहीं करते। सम्बद्ध सरकारी विभागों के बिक्री सेक्शन की कार्य-प्रणाली में इस तरह सुधार किया जाना चाहिए कि पुस्तक-विक्रेताओं के ऑर्डर की पूर्ति में अधिक विलम्ब न हो। साथ-ही-साथ वितरण के साधनों का विस्तार किया जाना चाहिए और पुस्तक-विक्रेताओं को कमीशन देने में इतनी उदारता बरती जानी चाहिए कि वे विविध प्रकार के सरकारी प्रकाशनों की खरीद कर सकें।

सरकारी प्रकाशनों से सम्बद्ध अनेक प्रकार के विभागों-अनुभागों की स्थापना की गई है, किन्तु इसके बावजूद यह होना चाहिए कि पुस्तकों की आवश्यक जानकारी देनेवाला विस्तृत सूचीपत्र समय-समय पर प्रकाशित होता रहे, जिसे पुस्तक-विक्रेताओं को उपलब्ध कराया जाए। इन सूचीपत्रों में सभी प्रकार की पुस्तकों की सूचियाँ सम्मिलित होनी चाहिए और इन सूचियों का वार्षिक संस्करण भी प्रकाशित होना चाहिए। सम्पूर्ण सूचीपत्र के अतिरिक्त लोकप्रिय पुस्तकों की सूची विषयानुसार समय-समय पर निकलती रहनी चाहिए।

स्टॉक-नियन्त्रण

स्टॉक के नियन्त्रण की कुशलता ही पुस्तक-व्यवसाय में सफलता का मूल-मंत्र है। प्रत्येक पुस्तक-विक्रेता को यह ध्यान रखना चाहिए कि उसके लाभ की रकम बिकी हुई पुस्तकों से आती है, न कि अलमारियों और स्टॉक-कक्ष में रखी हुई पुस्तकों से। दक्षिण एशिया के देशों के प्रकाशनों की आम नीति यही है कि ऑर्डर प्राप्त होने के बाद पुस्तक-विक्रेताओं से किताबें वापस लेने का झंझट न रखा जाए। इस प्रकार यदि पुस्तक-विक्रेता के पास ऑर्डर की गई ६ प्रतियों में से एंक नहीं बिक पाती है, तो इसका अर्थ यह हुआ कि उसे इस सौदे में कोई लाभ नहीं हुआ। इसीलिए स्टॉक की स्थिति का सावधनी से निरीक्षण करते रहना चाहिए। व्यवस्थित रूप से स्टॉक के नियन्त्रण के द्वारा बिक रही पुस्तकों की स्पष्ट रूपरेखा सामने रहती है और इससे आगे ऑर्डर देने में सहायता मिलती है।

उपलब्ध सभी प्रकार पुस्तकों की स्टॉक में स्थिति का सही-सही लेखा-जोखा रखना नितान्त आवश्यक है। स्टॉक-कार्ड में पुस्तक-प्राप्ति और बिक्री की सूचना के अतिरिक्त अधिकतम और न्यूनतम प्रतियों के ऑर्डर और संख्या आदि का विवरण रखना भी अत्यन्त उपयोगी होगा। पर्याप्त स्टॉक न रखने से व्यवसाय में घाटा हो सकता है। सुनियोजित स्टॉक का लाभ यह भी है कि विलम्ब से दिये गये ऑर्डर के कारण तुरन्त पुस्तकें मँगाने पर लगनेवाले व्यय में कमी हो जाती है।

पुस्तक-विक्रेता को, अन्य वस्तुओं के विक्रेताओं को प्राप्त होनेवाले लाभों की तरह सुविधाएँ नहीं मिल पाती हैं। इसलिए उसके हक में अधिक स्टॉक रखना या कम स्टॉक पर निर्भर रहना दोनों ही खतरनाक स्थितियाँ हैं। उसे समय-समय पर अपने स्टॉक की सही-सही स्थिति की जानकारी लेते रहना चाहिए; कभी-कभी तो उसे स्टॉक की दिन-प्रतिदिन की स्थिति का लेखा-जोखा रखने की जरूरत पड़ती है। इस उद्देश्य को ध्यान में रखकर कर्मचारियों की सहायता से स्टॉक की नियमित रूप से आंशिक जाँच करते रहना चाहिए। कुछ पुस्तकों की प्रतियाँ प्रत्येक सप्ताह गिनी जानी चाहिए; यह जाँच-कार्य बारी-बारी से होना चाहिए, जिससे एक निश्चित अवधि के भीतर अधिकांश पुस्तकों की जाँच अपने-आप हो जाएगी। अधिक बिकनेवाली और कीमती पुस्तकों की जाँच की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। इस प्रकार स्टॉक की जाँच में अधिक समय नही लगेगा और स्टॉक का ऑर्डर देते समय अनुभव होनेवाली अनिश्चितता, अस्पष्टता और सन्देहपूर्ण स्थितियों का भी निराकरण हो जाएगा। इसके अलावा स्टॉक में जमा पुस्तकों की खपत के लिए भी आवश्यक कदम उठाया जा सकेगा।

बाहर भेजे गए ऑर्डरों की समय-समय पर जाँच की जानी चाहिए। जिन ऑर्डरों की सप्लाई प्राप्त हो चुकी है, उन्हें अलग फाइल में नत्थी कर देना चाहिए, जिससे शेष ऑर्डरों के सम्बन्ध में आवश्यक पत्र-व्यवहार जारी रखा जा सके। प्रकाशकों के जवाब के आधार पर उनके ऊपर 'पुनर्मुद्रण', 'नये संस्करण की प्रतीक्षा', 'मुद्रण नहीं हो रहा है' आदि उपयुक्त टिप्पणियाँ अंकित कर देनी चाहिए।

सीरीज में प्रकाशित पुस्तकों में कुछ ऐसी पुस्तकें अवश्य होती हैं, जो उपयुक्त विषय के अन्तर्गत वर्गीकृत की जा सकती हैं। उनमें से कुछ की बिक्री भी अधिक होती है, इसलिए ऐसी पुस्तकों को सम्बद्ध विषयों के अनुसार वर्गीकृत करना चाहिए, जिससे ऑर्डर देने में विलम्ब न हो। मुमकिन है कि पूरी सीरीज की खपत होने में देर लगे और उसकी सप्लाई पर बाद में विचार किया जाय।

पुस्तक-विक्रेता के स्टॉक और बिक्री-कक्ष में कौन-कौन-सी पुस्तकें हैं, यह एक नजर में देखने के लिए 'की' शेल्फ की व्यवस्था करना एक अत्यन्त स्तुत्य प्रयास होगा। इस शेल्फ में प्रत्येक पुस्तक की एक-एक प्रति रखी जानी चाहिए। पुस्तकों को बुद्धिमत्तापूर्वक वर्गीकृत करके सजाना चाहिए और उन पर इस प्रकार के साफ-साफ निशान या लेबिल लगे होने चाहिए, जिससे यह पता चल सके कि अमुक पुस्तक स्टॉक-कक्ष में किस स्थान पर रखी है। ग्राहकों को इस शेल्फ को खोलने की अनुमति नहीं होनी चाहिए और यदि सम्भव हो तो उसे ऐसी जगह रखना चाहिए जहाँ ग्राहकों की नजर ही न पड़े। इसमें पुस्तकें लेखक और विषय के अनुसार रखी जानी चाहिए। बिक्री-कक्ष में पुस्तकें विषयानुसार और स्टॉक-कक्ष में भिन्न-भिन्न प्रकाशकों के अनुसार रखी जानी चाहिए। इस व्यवस्था के आधार पर दुकान के कर्मचारी बिक्री-कक्ष की प्रतियाँ बिक जाने पर स्टॉक से सुविधापूर्वक पुस्तकें निकाल सकते हैं और उन पुस्तकों की सप्लाई के लिए आर्डर भेज सकते हैं। एक अन्य लाभ यह है कि यदि सभी प्रतियाँ बिक गई हैं तो भी अत्यन्त आवश्यक बिक्री के लिए 'की' शेल्फ की प्रति दी जा सकती है। इस प्रकार पुस्तक-विक्रेता को यह बात याद करने में सहायता मिलेगी कि उस पुस्तक का दुबारा ऑर्डर देना है।

पुस्तकों के साथ अन्य सम्बद्ध वस्तुओं की बिक्री

पुस्तक की दुकानों के सन्दर्भ में अन्य सम्बद्ध वस्तुओं की बिक्री की धारणा कोई नयी सूझ नहीं है। स्कूलों के लिए पुस्तकों की दुकानों में प्राय: शिक्षा-सत्र के आरम्भ में नोटबुक, पेन्सिल, कलम, कागज, दवात और विद्यार्थियों के काम की अन्य सामग्री भी मिलती है। इसी प्रकार सामान्य प्रकार की पुस्तकें रखनेवाले विक्रेता भी ग्राहकों के लिए स्टेशनरी, कलम, लिखने की अन्य सामग्री और कभी-कभी पत्रिकाएँ तथा ग्रीटिंग कार्ड आदि भी रखते हैं। पाश्चात्य देशों में विशेषकर छोटे शहरों में, पुस्तकों की दुकानों में अखबार, पत्रिकाएँ, स्टेशनरी, फैशन के सामान वगैरह भी रखे जाते हैं। लेकिन भारत और दक्षिण एशिया के देशों में पुस्तकों के साथ-साथ अन्य सम्बद्ध सामग्री बेचनेवाली दुकानों की संख्या, पुस्तकों की दुकानों के अनुपात में बहुत थोड़ी है। यों भी इन देशों में पुस्तकों की दुकानों की संख्या पर्याप्त नहीं है। पड़ोस की आवश्यकताओं के अनुरूप पुस्तक की दुकानों में अन्य सामग्री रखने की आवश्यकता के महत्व को ठीक तरीके से महसूस नहीं किया गया है, किन्तु पिछले कुछ वर्षों से पुस्तक की दुकानों में इस दिशा में प्रयोग किए जा रहे हैं।

पुस्तक-व्यवसाय से सम्बद्ध अन्य सामग्री दुकानों में रखने की आवश्यकता क्यों होती है और विशेष रूप से छोटी-छोटी पुस्तक की दुकानों में ऐसा करना जरूरी क्यों हो जाता है? इसकी वजह यह होती है कि पुस्तकों की बिक्री प्राय: इतनी पर्याप्त नहीं होती कि उससे दुकान सुचारु रूप से चलायी जा सके। इसलिए पुस्तकों के अलावा रोजमर्रा के उपयोग की अन्य सामग्री भी दुकान में रखना बेहतर होगा। पुस्तकों की खरीद के लिए आनेवाला सामान्य पाठक तथा विद्यार्थी स्टेशनरी, लेखन-सामग्री एवं पत्रिकाएँ आदि भी खरीद सकता है, यदि ये वस्तुएँ दुकान में उपलब्ध हों। इसी प्रकार स्टेशनरी तथा पत्रिकाओं की खरीद के लिए आनेवाले ग्राहक प्रदर्शित की हुई पुस्तकों को देखकर आकर्षित हो सकते हैं और दो-एक किताब खरीद सकते हैं। इस प्रकार की खरीद ग्राहक पहले के किसी इरादे के बिना भी कर लेता है। इसप्रकार अन्य सम्बद्ध सामग्री रखने से पुस्तकों की बिक्री में भी वृद्धि हो सकती है। पत्र-पत्रिकाओं में लोकप्रिय साप्ताहिक और मासिक पत्रिकाएँ रखना अधिक लाभप्रद होगा। विशेषकर प्रादेशिक भाषाओं में प्रकाशित होनेवाली पत्रिकाओं के साथ यह शर्त रहती है कि न बिकने पर विक्रेता उन्हें प्रकाशक को वापस कर सकेगा, इसलिए इनको स्टॉक में रखने से कोई खतरा नहीं होता है। इस प्रकार ऐसी पत्रिकाओं के ग्राहक नियमित रूप से पुस्तक की दुकान में आने लगेंगे और उनके द्वारा पुस्तकों के खरीदने की भी सम्भावना रहेगी। स्टेशनरी की सामग्री रखने से भी यही लाभ होता है। जिन लोगों को नियमित रूप से स्टेशनरी की आवश्यकता होती है, वे शिक्षित होते हैं और प्राय: पुस्तकों में दिलचस्पी रखते हैं। जब लोग इस प्रकार की सामग्री खरीदने के लिए दुकान में प्रवेश करते हैं तो उनकी नजर पुस्तकों पर भी पड़ती है। इस तरह बराबर किताबें देखते रहने से अन्य वस्तुओं के ग्राहक भी पाठक बन जाते हैं और बाद में पुस्तक-प्रेमी कहलाते हैं। पुस्तकों के साथ-साथ बिक्री के लिए अन्य सम्बद्ध सामग्री उपलब्ध होने से और अधिक ग्राहक दुकान में आयेंगे और अक्सर ऐसे ग्राहक भी दुकान में प्रवेश करेंगे और जिनके उस दुकान में आने की कोई भी सम्भावना नहीं होती, यदि वहाँ केवल पुस्तकें ही बिकती होतीं।

तर्क पेश किया जा सकता है कि अन्य सम्बद्ध वस्तुओं का व्यवसाय सिद्धान्त रूप से तो ठीक है, परन्तु इसको आसानी से व्यावहारिक रूप देना मुमकिन नहीं होगा, क्योंकि तमाम छोटी-छोटी चीजें रखने से काम और परेशानी दोनों बढ़ जाती है। मुख्य व्यवसाय अर्थात् पुस्तकों की बिक्री में भी बाधा उत्पन्न होने की सम्भावना रहती है। किन्तु अनेक यूरोपीय देशों, अमरीका तथा जापान में इस बात के अनेक प्रमाण मिलते हैं कि सम्बद्ध वस्तुओं का व्यवसाय चालू करने के बाद पुस्तकों की दुकानों का कारोबार और भी बढ़ गया।

दक्षिण एशिया के देशों में पुस्तकों की बिक्री अधिक नहीं होती। अधिकांश पुस्तकें विद्यार्थियों और पुस्तकालयों द्वारा उनकी अपनी आवश्यकतानुसार खरीदी जाती हैं। विशेषकर भारत में अखबार और पत्र-पत्रिकाएँ खरीदने की आदत बढ़ती जा रही है। इसके बाद पुस्तकें पढ़ने की भी आदत पड़ जाना स्वाभाविक है। यदि यह बात ध्यान में रखी जाए तो प्रत्येक पुस्तक-विक्रेता लोकप्रिय साप्ताहिक, पाक्षिक और मासिक पत्रिकाओं को स्टॉक

में रखने के महत्व को आसानी से समझ सकता है। पत्र-पत्रिकाओं के लाखों पाठक कालान्तर में पुस्तकों को पढ़ने में भी रुचि लेंगे और उनकी रुचि को अविलम्ब परिवर्तित करने का यह एक बहुत अच्छा तरीका है।

इस सन्दर्भ में यह बात विचारणीय है कि पेट्रोलियम-उद्योग में विक्रेताओं द्वारा सम्बद्ध अन्य सामग्री की बिक्री का कारोबार बहुत ही अधिक विकसित हो गया है। कुछ वर्ष पहले पेट्रोल-उद्योग में बिक्री अधिक नहीं थी, लेकिन लाभांश काफी था। इन दिनों यातायात में अत्यधिक वृद्धि होने के कारण पेट्रोल की बिक्री में अतिशय वृद्धि हुई है, किन्तु अनेक कारणों से लाभांश में कमी हो गई है। इसलिए पेट्रोल-विक्रेताओं के दिमाग में यह विचार आया कि टायर, ट्यूब, बैटरी और अन्य सामान को उपलब्ध कराने के साथ-साथ मुफ्त हवा, पानी भरने तथा किफायती दर पर सर्विसिंग की व्यवस्था करके अधिकाधिक ग्राहकों को भी आकर्षित किया जाय। विक्रेता को अन्य सम्बद्ध वस्तुओं से पेट्रोल की तुलना में अधिक मुनाफा होता है। सहायक सामग्री और सर्विसिंग की व्यवस्था करके पेट्रोल-पम्प सर्विस-स्टेशन के रूप में विकसित किए जा रहे हैं। इनमें बिक्री की वृद्धि के साथ-साथ लाभांश भी बढ़ा है। अमेरीका आदि कुछ पाश्चात्य देशों में सर्विस-स्टेशन द्वारा मोटर-चालकों की लगभग सभी आवश्यकताएँ पूरी करने की व्यवस्था की गई है। इनके द्वारा सहायक पुर्जे तथा अन्य सामान के साथ-साथ कार की आवश्यक जाँच के अलावा विश्राम-कक्ष, नहाने-धोने की सुविधाएँ तथा कैन्टीन आदि की भी व्यवस्था की गई है। दक्षिण एशिया के देशों में भी पेट्रोल-पम्पिंग स्टेशनों पर सहायक सेवाओं और सम्बद्ध बिक्री की सामग्री की व्यवस्था को इधर विकसित किया गया है।

पेट्रोल-व्यवसाय के अनुभव से पुस्तक-व्यवसाय काफी लाभ उठा सकता है। यदि पुस्तक-विक्रेता पुस्तकों के अतिरिक्त पाठकों की आवश्यकताओं की अन्य वस्तुओं की भी सप्लाई करने की व्यवस्था करते हैं, तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि अन्य चीजों की बिक्री के साथ-साथ पुस्तकों की बिक्री में भी वृद्धि होगी।

यह आवश्यक नहीं है कि एक साथ बहुत-सी सम्बद्ध वस्तुओं की बिक्री की व्यवस्था की जाए। इसलिए प्रारम्भ में पुस्तक-विक्रेता को अपेक्षाकृत कम खर्चवाली चीजें चुननी चाहिए, विशेषकर ऐसी वस्तुएँ जो बिक्री न होने की स्थिति में थोक-विक्रेता को लौटाई जा सकें। पड़ोस की माँग के अनुसार सम्बद्ध वस्तुओं का स्टॉक धीरे-धीरे बढ़ाया जा सकता है। लेकिन पुस्तक की दुकान को विविध वस्तुओं का स्टोर भी नहीं बना लेना चाहिए, जिससे पुस्तक की दुकान के रूप में उसका स्वरूप ही विनष्ट हो जाए। केवल वही वस्तुएं दुकान में रखनी चाहिए जो पुस्तकों के साथ स्वाभाविक रूप से सम्बद्ध हैं और आस-पास के लोगों की आवश्यकताओं और अभिरुचियों के अनुकूल हैं। किसी भी पुस्तक की दुकान में ग्रीटिंग-कार्ड, पत्रिकाएँ, स्टेशनरी और लेखन-सामग्री आदि रखी जा सकती है। जब ये वस्तुएँ बिकने लगें तो डायरी, फाइलें, एलबम, पेपरवेट आदि भी रखे जा सकते हैं। विद्यार्थियों के लिए पुस्तकें रखनेवाले विक्रेता ज्यामेट्री बॉक्स, वाटर कलर और शैक्षणिक फिल्म की पट्टियाँ भी रख सकते हैं। बड़े-बड़े नगरों में वीडियो कैसेट, सड़कों के नक्शे,

पढ़ने के लैम्प, छोटी-मोटी कलात्मक कृतियाँ, सूचनात्मक फिल्मों की पट्टियाँ, फोटोग्राफी तथा चित्रकला के लिए आवश्यक सामग्री भी पुस्तक की दुकानों में रखी जा सकती है।

सम्बद्ध वस्तुओं के सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण बात यह है कि इन्हें अच्छी तरह से प्रदर्शित करना चाहिए। किसी अलमारी में तमाम तरह की चीजों को एक साथ भरकर ताला बन्द करके रखने से कोई लाभ नहीं होगा। यदि प्रदर्शन की खिड़की में थोड़ी जगह खाली है तो कुछ वस्तुएँ वहाँ प्रदर्शित की जा सकती हैं। बेशक, कीमती चीजें ऐसी सुरक्षित जगह पर रखी जानी चाहिए कि उन पर किसी जिम्मेदार कर्मचारी की नजर पड़ती रहे। लेकिन ये चीजें दिखाई देती रहनी चाहिए, जिससे ग्राहकों को पता चल सके कि कौन-कौन वस्तुएँ बिक्री के लिए उपलब्ध हैं। स्टेशनरी, पत्रिकाएँ आदि कम कीमत की चीजें ग्राहकों को देखने के लिए आसानी से उपलब्ध होनी चाहिए। उनके चुराए जाने के बारे में अधिक सशंकित रहने की जरूरत नहीं है। सभी लोग चोर नहीं होते और फिर चोर भी चुराने के लिए कीमती चीजों की खोज में रहते हैं, न कि पेन्सिल तथा पत्रिकाओं को। पुस्तकों के अलावा अन्य सम्बद्ध चीजों की बिक्री में तभी लाभ होगा जब कुछ सिद्धान्तों का पालन किया जाएगा। ये सिद्धान्त हैं : (१) प्रभावपूर्ण प्रदर्शन, (२) उचित प्रचार (३) कुशल हिसाब-किताब की व्यवस्था।

पुस्तक की दुकान के विन्यास में इस प्रकार का नियोजन तथा परिवर्तन होना चाहिए, जिससे सम्बद्ध वस्तुओं का ठीक से प्रदर्शन हो और वे लोगों का ध्यान आकर्षित करें। इन वस्तुओं पर लाभांश काफी होता है। इन्हें इस प्रकार रखा जाना चाहिए कि वे बराबर दिखाई देती रहें और यथासम्भव उन चीजों तक ग्राहक की निरीक्षण के लिए पहुँच होनी चाहिए।

प्रदर्शन की खिड़की, पोस्टर तथा स्थानीय सिनेमाघरों में स्लाइडों के द्वारा इन वस्तुओं का प्रभावपूर्ण ढंग से प्रचार किया जाना चाहिए। सर्वसाधारण को यह पता होना चाहिए कि दुकान में पुस्तकों के अलावा और चीजें भी बिकती हैं। सम्भावित ग्राहकों की सेलिंग सूची से भी काफी सहायता मिल सकती है। जब यह अच्छी तरह से प्रचारित कर दिया जाएगा कि किसी अमुक पुस्तक की दुकान में अन्य वस्तुएँ भी बिक्री के लिए उपलब्ध हैं, तभी दुकानदार यह उम्मीद कर सकता है कि उस 'प्रकार की वस्तुओं के ग्राहक उसके यहाँ आयेंगे।

इस प्रकार की वस्तुओं के कारोबार में हिसाब-किताब की कुछ अजीब दिक्कतें रहती हैं, क्योंकि कई चीजों का हिसाब रखना पड़ता है और इनमें से कुछ वस्तुएँ काफी कीमती भी हो सकती हैं।

स्टॉक में आनेवाली और बिक्री की गई वस्तुओं का विवरण सही तौर पर दर्ज होना चाहिए। छोटी-छोटी चीजों का हिसाब रखने में काफी परेशानी हो सकती है, लेकिन नुकसान से बचने के लिए स्टॉक पर नियन्त्रण रखना जारूरी हो जाता है। कम बिकनेवाली चीजों के सन्दर्भ में विशेषरूप से आवश्यक हो जाता है क्योंकि ऐसी वस्तुएँ प्रायः कीमती होती हैं।

पुस्तकों के साथ-साथ अन्य सम्बद्ध वस्तुओं की बिक्री की व्यवस्था करने की उपयोगिता और उसके लाभों के सम्बन्ध में बहुत-कुछ कहा जा चुका है। दक्षिण एशिया

के अपेक्षा अविकसित देशों में पुस्तक की दुकानों में अन्य सम्बद्ध सामग्री रखने की उपयोगिता तो और भी अधिक है। इस प्रकार सम्बद्ध वस्तुओं के कारोबार से ग्राहकों की संख्या बढ़ेगी। दूसरे शब्दों में, इसकी वजह से और भी ऐसे ग्राहक दुकान में आएँगे जो अभी तक पुस्तक खरीदने के आदी नहीं थे। आजकल शिक्षित लोगों को पुस्तकों के अलावा अपने दैनिक उपयोग के लिए बहुत-सी अन्य वस्तुओं की भी आवश्यकता होती है। इन दूसरी वस्तुओं के ग्राहक पुस्तकों की ओर आकर्षित होकर पुस्तकें खरीदने की ओर प्रवृत्त होने लगेंगे। जिस प्रकार ग्राहकों की आवश्यकताओं का बराबर अध्ययन करके पुस्तकों के स्टॉक में वृद्धि की जाती है उसी प्रकार अनुभव के आधार पर अन्य वस्तुओं के कारोबार को भी बढ़ाया जा सकता है।

पुरानी पुस्तकें

दक्षिण एशिया के देशों में पुस्तक-विक्रेताओं ने पुरानी किताबों का स्टॉक रखने और उनकी बिक्री की व्यवस्था करने की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया है। बेशक, कुछ पुस्तक-विक्रेता नयी पुस्तकों के साथ पुरानी पुस्तकों का भी स्टॉक रखते हैं, किन्तु इन पुस्तकों की संख्या अधिक नहीं होती है। ऐसे पुस्तक-विक्रेता, जो केवल पुरानी पुस्तकें बेचते हैं, बहुत थोड़े हैं और वे भी केवल बड़े-बड़े शहरों तक ही सीमित हैं। इनमें से अधिकांश पुरानी पुस्तकों की दुकानों को बड़े ही अव्यवस्थित तरीके से चलाया जाता है। पुरानी पुस्तकों की आवश्यकता का महत्व ठीक से महसूस नहीं किया गया है और प्राय: यह भी लोगों को पता नहीं होता है कि व्यवस्थित रूप से संचालित पुरानी पुस्तकों की दुकान की आमदनी अपेक्षाकृत उस औसत दुकान से कहीं अधिक हो सकती है जहाँ केवल नयी पुस्तकें बेची जाती हैं। पुरानी पुस्तकों की दुकानों की कमी और आमतौर से चलनेवाली दुकानों में पुरानी पुस्तकों के और अधिक अनुभाजन होने का कारण यह है कि अधिकांश पुस्तक-विक्रेताओं को पुरानी पुस्तकें खरीदने और बेचने के व्यवसाय की पर्याप्त जानकारी नहीं होती है। इस कार्य को प्राय: आम दुकानदारी से विशिष्ट और इतर समझा जाता है और इससे बचने की कोशिश की जाती है। कुछ पुस्तक-विक्रेताओं की यह भ्रान्त धारणा होती है कि पुरानी पुस्तकों की दुकानदारी करना प्रतिष्ठापूर्ण नहीं है।

पुरानी पुस्तकों के विक्रेताओं की विविध श्रेणियाँ होती हैं—

१. ऐसे पुस्तक-विक्रेता जो विद्यार्थियों के लिए पाठ्य-पुस्तकों और सन्दर्भ-ग्रन्थों का विशेष स्टॉक रखते हैं। ये पुस्तक-विक्रेता प्राय: लोकप्रिय पाठ्य-पुस्तकों का भी सीमित स्टॉक रखते हैं।
२. ऐसे पुस्तक-विक्रेता जो विविध प्रकार की पुस्तकों का काफी अधिक संख्या में स्टॉक रखते हैं। ये विक्रेता केवल कुछ हद तक विशेष प्रकार की पुस्तकें रखने में दिलचस्पी रखते हैं।
३. ऐसे पुस्तक-विक्रेता जो कुछ विशिष्ट विषयों, वर्गीकृत विषयों जैसे—इतिहास, दर्शन, मानव-शास्त्र, प्राकृतिक इतिहास, धर्म, यात्रा-विवरण आदि से सम्बन्धित पुरानी पुस्तकें रखते हैं।

४. जो बहुत पहले प्रकाशित अप्राप्य बहुमूल्य ग्रन्थों, प्रामाणिक प्रथम संस्करणों तथा विशेष संस्करणों की प्रतियाँ स्टॉक में रखते हैं।

५. सड़कों की पटरियों पर बैठनेवाले पुस्तक-विक्रेता।

विद्यार्थियों के लिए पुरानी पुस्तकें रखनेवाले पुस्तक-विक्रेता अपने व्यवसाय के सम्बन्ध में पूरी तरह से निश्चिन्त रहते हैं, क्योंकि उन्हें विभिन्न प्रकार की निर्धारित तथा अनुमोदित पाठ्य-पुस्तकों की वार्षिक माँग की जानकारी रहती है। प्रत्येक वर्ष स्कूल और कॉलेज खुलने पर पुरानी किताबों की दुकानों पर काफी अधिक संख्या में विद्यार्थियों की भीड़ जमा रहती है, जो अपनी आवश्यकता की पुस्तकें सस्ते-से-सस्ते मूल्य पर प्राप्त करना चाहते हैं। ऐसी पुस्तकों के अलावा जिनके नये संस्करण छप भी गये हैं, अधिकांश विद्यार्थी उन संस्करणों की भी पुरानी पुस्तकें ही खरीदना चाहते हैं। जरूरी नहीं है कि ऐसे विद्यार्थी आर्थिक दृष्टि से विपन्न हों। इनमें से कुछ विद्यार्थी नयी पुस्तकें भी खरीदते हैं। प्राय: पुस्तक-विक्रेताओं द्वारा प्रकाशित मूल्य में मामूली-सी कमी कर देने के कारण छात्र नयी पुस्तकें खरीदने की ओर आकर्षित होते हैं। पुस्तक-विक्रेताओं की यह प्रवृत्ति सराहनीय नहीं कही जा सकती, क्योंकि विद्यार्थियों को आकर्षित करने के लिए इधर विक्रेताओं में इस कदर प्रतिस्पर्धा बढ़ी है कि नयी पुस्तकों को छपी हुई कीमत से कम पर बेचने की प्रवृत्ति कम होने के बजाय और बढ़ती ही जा रही है। लेकिन इससे पुरानी पुस्तकों के विक्रेता को न केवल अपनी नयी पुस्तकें बल्कि बहुत-सी पुरानी पुस्तकों को भी बेचने में मदद मिलती है। पाठ्य-पुस्तकों की पुरानी प्रतियों को रखनेवाला पुस्तक-विक्रेता अन्य प्रकार की पुरानी पुस्तकें रखनेवाले पुस्तक-विक्रेताओं से अधिक अच्छी आर्थिक स्थिति में रहता है, किन्तु स्कूल और कॉलेजों का सीजन समाप्त होने के बाद उसकी दुकानदारी ठंडी पड़ जाती है। इसलिए इस प्रकार के पुस्तक-विक्रेता अब पुरानी सामान्य पुस्तकें भी रखने लगे हैं जिससे व्यावसायिक मन्दी के दिनों में वे कम-से-कम जीविकोपार्जन कर सकें।

पुरानी पाठ्य-पुस्तकों की सप्लाई का सबसे प्रमुख स्रोत विद्यार्थियों से प्राप्त होनेवाली पुस्तकें ही हैं। विद्यार्थी प्राय: अपनी पढ़ी हुई पुरानी पुस्तकें बेच डालते हैं। कभी-कभी सन्दर्भ-ग्रन्थ भी विद्यार्थियों से प्राप्त हो जाते हैं, यद्यपि पुस्तक-विक्रेता को अनेक प्रकार के सन्दर्भ ग्रन्थों का स्टॉक जमा करने के लिए विशेष प्रयास करना पड़ता है।

विविध प्रकार की पुरानी पुस्तकें रखनेवाले पुस्तक-विक्रेता अपने स्टॉक में क्लासिकल के पुराने संस्करण, काल की दृष्टि से पुरानी जान पड़नेवाली कथा-कृतियाँ, यात्रा-सम्बन्धी पुस्तकें, जीवनी, संस्मरण, इतिहास, दर्शन, धर्म, कला जैसे विषयों पर शाश्वत पुस्तकों के अलावा सीमित अभिरुचि की विविध प्रकार की पुस्तकें, हल्की तथा चिकनी, रंग-विरंगी सचित्र विदेशी पत्रिकाओं की पुरानी प्रतियाँ भी रखते हैं। ऐसे पुस्तक-विक्रेता मामूली आर्थिक हैसियत के पुस्तक-प्रेमियों और हल्के मनोरंजक साहित्य में दिलचस्पी रखनेवाले पाठकों के लिए वर्षभर पुस्तकों की बिक्री करते रहते हैं। इस प्रकार की पुरानी पुस्तकों की दुकानों में पुस्तकों की विविधता ही पाठकों को आकर्षित करती है।

इन दुकानों के स्टॉक की सप्लाई के प्रमुख स्रोत हैं—घटी हुई दरों पर प्राप्त सामान्य पुस्तकों की मैली हो गई प्रतियाँ, प्रकाशकों के अवशिष्ट स्टॉक, बड़े-बड़े पुस्तक-विक्रेताओं और न्यूज-एजेन्टों द्वारा निकासी की गई पत्रिकाएँ।

किसी विशेष विषय का स्टॉक रखनेवाले पुस्तक-विक्रेताओं से विद्वानों, शोध-छात्रों और ग्रन्थ-सूची तैयार करनेवालों को ही सहायता नहीं मिलती, वरन् इनसे लेखकों, प्रकाशकों और कलाकारों को भी मदद मिलती है। सार्वजनिक पुस्तकालयों और विशिष्ट प्रकार की पुस्तकें रखनेवाले पुस्तकालय भी कभी-कभी अपनी आवश्यकता की पुस्तक बहुत खोजने के बाद इन्हीं पुस्तक-विक्रेताओं से प्राप्त करते हैं। विशिष्ट प्रकार की पुरानी पुस्तकों को रखनेवाले विक्रेता का कार्य अत्यन्त कठिन होता है। उसे पुस्तकों के सम्बन्ध में बहुत अच्छी जानकारी रखनी चाहिए। उसे यह जानना चाहिए कि किन पुरानी पुस्तकों की माँग बनी हुई है। इसलिए पुस्तक-विक्रेता को सम्बद्ध विषयों की जानकारी रखनी होगी। उसे लेखकों तथा उनकी ख्याति के सम्बन्ध में भी पर्याप्त सूचना होनी चाहिए। उसे बौद्धिक-जगत् और अनुसन्धान-क्षेत्र की आवश्यकताओं से परिचित होना चाहिए और सम्भावित माँग को पूरा करने के लिए सभी सम्भव स्रोतों से उपयुक्त पुस्तकों की प्रतियाँ अवश्य प्राप्त करनी चाहिए। सफल होने के लिए उसे प्रसिद्ध और प्रामाणिक ग्रन्थों के नाम और उनके लेखकों, प्रकाशित संस्करणों आदि के सम्बन्ध में विशेष जानकारी होनी चाहिए। यही नहीं, उसे अपने क्षेत्र की दुबारा न मुद्रित होनेवाली पुस्तकों की कमी के महत्व का भी एहसास होना चाहिए। इस प्रकार के पुस्तक-विक्रेताओं को जीवन के विभिन्न क्षेत्रों से ग्राहक प्राप्त हो सकते हैं। अपनी विस्तृत जानकारी के आधार पर वह न केवल ग्राहकों की आवश्यकता के अनुरूप पुस्तकें सप्लाई करने की स्थिति में होगा वरन् वह अपने ग्राहकों के प्रिय विषयों पर दूसरी अच्छी पुस्तकों के भी सुझाव दे सकेगा।

पुरानी दुर्लभ पुस्तकों का पुस्तक-विक्रेता एक तरह विशेषज्ञ पुस्तक-विक्रेता के रूप में कार्य करता है। प्रायः पुरानी पुस्तकों का विशेषज्ञ पुस्तक-विक्रेता पुराविद् पुस्तक-विक्रेता की भाँति होता है। दुर्लभ पुस्तकों के विक्रेता उत्कट पुस्तक-प्रेमी पाठकों की विचित्र रुचियों और इच्छाओं को पूरा करने का प्रयास करता है। ऐसे ग्राहक पुस्तकों के प्रथम संस्करण, विशेष भाषान्तर, लेखक के हस्ताक्षरवाली प्रति, स्थान-वर्णन, समुद्री-यात्राओं, खोज-सम्बन्धी यात्राओं, आदिकालीन इतिहास, प्राच्य विद्या के ग्रन्थों, प्रत्येक प्रकार की असाधारण और विचित्र पुस्तकों की तलाश में रहते हैं। विशेषकर पाश्चात्य देशों में १५०० ई० के पूर्व मुद्रित पुस्तकों अर्थात् 'इन्कूनाबुला' की काफी माँग रहती है।

पुराविद् पुस्तक-विक्रेता का कार्य बहुत ही कठिन होता है। किन्तु यह विशेष रूप से लाभदायी भी होता है। विस्तृत और इधर-उधर के विभिन्न स्रोतों से विविध विषयों पर प्रत्येक प्रकार की दुर्लभ और अनुपम पुस्तकों को उपलब्ध करने के लिए पर्याप्त कुशलता तथा व्यावसायिक चातुर्य की आवश्यकता होती है। इसके लिए पहली आवश्यकता है पुस्तक-विक्रेता में विभिन्न प्रकार की पुस्तकों के प्रति वास्तविक प्रेम होना। उसे पुरानी पुस्तकों के प्रति वास्तविक लगाव की भावना अपने भीतर विकसित करनी होती है तथा

पुरानी व दुष्प्राप्य पुस्तकों का सम्यक् मूल्यांकन करना सीखना पड़ता है। इस प्रकार की पुस्तकों की सप्लाई के साधन हैं—लोगों के घरों में पुरानी पुस्तकों के संग्रह, संग्रहकर्त्ताओं, रिटायर्ड स्कॉलर्स के पुस्तकालय, व्यक्तिगत संग्रहकर्त्ताओं द्वारा संगृहीत पुस्तकें, सम्पन्न परिवारों के पीढ़ियों पुराने पुस्तकालय, पुराने क्लबों के सुस्थापित पुस्तकालय और ऐसे नीलाम-कक्ष जहाँ अन्य वस्तुओं के साथ-साथ पुस्तकें भी नीलाम होने के लिए आती हैं।

पटरियों पर बैठनेवाले पुस्तक-विक्रेता प्राय: सन्ध्या के समय बड़े-बड़े शहरों की व्यस्त सड़कों के किनारे बैठकर पुरानी पुस्तकों के विलक्षण-संग्रह और हर प्रकार की पत्रिकाएँ बेचते हैं। ये पुस्तक-विक्रेता पुरानी पुस्तकों के अलावा लोकप्रिय साप्ताहिकों और मासिक पत्रिकाओं की पुरानी प्रतियाँ भी सस्ते जिल्दों में बाँधकर बेचते हैं। वे इन पत्रिकाओं से धारावाहिक कथाएँ निकालकर उन्हें अलग से एक जगह सजिल्द रूप में बँधवाकर भी बेचते हैं। वे अपने स्टॉक को न केवल प्रकाशकों के अवशिष्ट स्टॉक और पुस्तक-विक्रेताओं के अतिरिक्त स्टॉक से प्राप्त करते हैं, बल्कि उन्हें रद्दी बेचनेवाले व्यापारियों से भी बहुत-सी काम की पुस्तकें मिल जाती हैं। रद्दी बेचनेवालों को प्राय: काफी अधिक मात्रा में फेंकी गई पठनीय सामग्री प्राप्त हो जाती है। पुराने अखबार अवश्य ही पैकिंग के रूप में इस्तेमाल करने के लिए बेच डाले जाते हैं, परन्तु रद्दी के अवशिष्ट ढेर से ये साहसी पुस्तक-विक्रेता काफी अधिक पठनीय सामग्री चुनकर निकाल लेते हैं। श्रमिक तपके के शिक्षित लोग पटरी पर बैठनेवाले इन पुस्तक-विक्रेताओं के प्रमुख ग्राहक होते हैं। ये लोग ऐसी पठनीय सामग्री चाहते हैं जिसके लिए उन्हें अपनी हैसियत से अधिक खर्च न करना पड़े और उनकी आवश्यकता की पूर्ति ऐसे पुस्तक-विक्रेताओं द्वारा बड़ी ही सस्ती लागत पर सम्भव होती है। कभी-कभी शिक्षित लोग भी इन पुस्तक-विक्रेताओं के पास से कतिपय पुस्तकों की खरीद करते हैं।

पुरानी पुस्तकों के विक्रेताओं को अपने व्यवसाय की अधिकाधिक जानकारी अनुभव के आधार पर प्राप्त होती है। पुरानी पुस्तकों को बराबर एक साथ खरीदने और बेचने के द्वारा ही इस धन्धे से सम्बद्ध बिक्री की विशिष्ट पद्धतियों से पुस्तक-विक्रेता परिचित होता है। पुरानी पुस्तकों का कारोबार शुरू करनेवाले विक्रेता को व्यावसायिक पत्रों में विज्ञापन देकर और अपनी दुकान के सामने इस आशय का नोटिस लगवाकर जाहिर कर देना चाहिए कि वह पुरानी पुस्तकों की खरीद-बिक्री का धन्धा कर रहा है। इस प्रकार उसे पुरानी पुस्तकों की इक्की-दुक्की प्रतियों से लेकर पुस्तकों के संग्रह तक प्राप्त होने लगेंगे। पुरानी पुस्तकों के नियमित विक्रेता के रूप में जम जाने पर उसके सामने पुस्तकें प्राप्त करने के अनेक स्रोत खुल जायेंगे और यह पुस्तक-विक्रेता पर निर्भर करेगा कि, किस विवेकपूर्ण तरीके से वह अपने स्टॉक के लिए पुस्तकों का संग्रह करता है। पुरानी पुस्तकों की दुकान में भी पुस्तकों का समुचित प्रदर्शन उतना ही महत्वपूर्ण होता है जितना अन्य नियमित पुस्तकों की दुकानों के लिए अपेक्षित है। स्टॉक को विषयानुसार वर्गीकृत करना चाहिए और पुस्तकों को साफ-सुथरे तरीके से व्यवस्थित करके रखने से ग्राहकों को काफी सहायता मिलेगी।

प्राय: पुरानी पुस्तकों के विक्रेता से गूढ़ विषयों एवं अल्प जानकारी वाले विषयों से सम्बद्ध पुस्तकों की माँग की जाती है। कभी-कभी धर्मग्रन्थों, अन्य प्रसिद्ध ग्रन्थों के विशेष संस्करणों, बड़े टाइप में छपे संस्करणों और कभी-कभी गुटका संस्करणों की माँग की जाती है। प्राचीनकाल की असाधारण और विलक्षण पुस्तकों की ओर कुछ लोगों का अत्यधिक लगाव होता है। अवसर मिलने पर इस प्रकार की कृतियों को प्राप्त करना व्यावसायिक दृष्टि से काफी उपयोगी होता है। पुरानी पुस्तकों के विक्रेताओं को चाहिए कि वे अपने ग्राहकों की आवश्यकताओं की अनुक्रमणिका का कार्ड बनाकर रखें। अक्सर पुस्तक-विक्रेता ग्राहक द्वारा अपेक्षित पुस्तक की माँग पूरी नहीं कर पाता है, किन्तु वह ग्राहक के लिए पुस्तक प्राप्त करने का आश्वासन दे सकता है। इस उद्देश्य से उसका नाम और पता वह नोट कर सकता है। जब पुस्तक प्राप्त करके ग्राहक को उपलब्ध कराई जाती है तो इसमें अधिक लाभ की गुंजाइश तो नहीं होती है; लेकिन इससे ग्राहक को प्रसन्नता अवश्य होती है। यह भी मुमकिन है कि अपेक्षित पुस्तक खोजकर प्राप्त करने के बाद पता चले कि ग्राहक को उसकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि उसने किसी अन्य स्थान से वह पुस्तक प्राप्त कर ली अथवा वह उसके लिए काफी मँहगी है। व्यवसाय में ऐसी बातें अक्सर होती रहती हैं, किन्तु यह याद रखना चाहिए कि नयी पुस्तकों के विक्रेताओं के लिए ग्राहकों की सद्भावना का अधिक महत्व होता है। ग्राहकों की आवश्यकताओं की अनुक्रमणिका का सम्यक् उपयोग करके महत्वपूर्ण सेलिंग सूची बनाई जा सकती है। प्रत्येक पुरानी पुस्तकों के विक्रेता को अपने स्टॉक के अनुसार जीरोक्स किये या छपे हुए सूचीपत्र तैयार करवाने चाहिए। उसे विशिष्ट पुस्तकालयों, निजी संग्रहकर्त्ताओं और आवश्यकतानुसार अन्य पुरानी पुस्तकों के विक्रेताओं में विवेकपूर्ण तरीके से वितरित करना चाहिए। सूचियों में लेखक का नाम, पुस्तक का पूरा शीर्षक, पृष्ठ-संख्या, प्रकाशन-तिथि, पुस्तक की स्थिति, उसके सजिल्द अथवा अजिल्द होने की सूचना आदि मूल्य के साथ दिया जाना चाहिए। पुरानी पुस्तकों की सूची तैयार करने, उसे छपवाने आदि का कार्य श्रमसाध्य और खर्चीला होता है, क्योंकि बिक्री के लिए पुस्तकों की प्रतियों की संख्या निश्चित रूप से कम ही होती है। कभी तो पुस्तक की केवल एक ही प्रति उपलब्ध होती है। किन्तु चुने हुए ग्राहकों को विशिष्ट सूचियाँ भेजने की अपनी अलग उपयोगिता होती है। विभिन्न संस्थानों, विद्वत्समाजों और ऐसे अन्य संगठनों को ऐसी सूचियाँ भेज़ना सहायक और उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

पुरानी पुस्तकों के बेचने का कार्य बहुत ही कठिन होता है। विशेषकर दुर्लभ और विशिष्ट प्रकार की पुस्तकों के विक्रेता का कार्य तो और भी दुष्कर होता है। पुरानी पुस्तकों के स्टॉक का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत होता है, जिसमें पिछले पाँच शताब्दियों में विभिन्न देशों में मुद्रित पुस्तकें शामिल हो सकती हैं। वैसे व्यावहारिक रूप में ये पुस्तक-विक्रेता अपने स्टॉक को किन्हीं विशेष काल, विषय तथा भाषा तक ही सीमित रखते हैं।

जैसे-जैसे पुरानी पुस्तकों का विक्रेता अपना स्टॉक बढ़ाता जाए वैसे-वैसे उसे और अधिक पुस्तकें खरीदने के सम्बन्ध में सावधानी बरतनी चाहिए। उसके सामने अक्सर यह कठिनाई आ सकती है कि वह या तो पुस्तकों के ऐसे ढेर को खरीदना स्वीकार करे जो

उसके स्टॉक में पहले से ही काफी संख्या में मौजूद है। बिलकुल मना कर देना उचित नहीं। फिर भी उसके काम की महज थोड़ी-सी ही पुस्तकें निकल सकती हैं। ऐसी पुस्तकों को व्यर्थ जमा करने के बजाय उसके लिए यह उचित होगा कि वह ऊल-जलूल पुस्तकें लेना अस्वीकार कर दे।

नयी पुस्तकों की भाँति ही पुरानी पुस्तकों का भी महत्व घटता रहता है, खासतौर से जब ऐसी पुस्तकों की हालत ठीक न हो। इसलिए स्टॉक का परीक्षण करते समय पुस्तकों की घटती हुई उपयोगिता और अवमूल्यन का ध्यान रखना चाहिए। बेशक, यह ऐसी पुरानी पुस्तकों पर लागू नहीं होता है जिनकी बहुत थोड़ी प्रतियाँ उपलब्ध हों, जो महत्व की दृष्टि से बहुमूल्य होती हैं। उन्हें भली-भाँति सुरक्षित रखा जा सकता है। पुरानी पुस्तकों की बिक्री होती तो है, किन्तु बहुत धीमी गति से। ऐसी पुस्तकें शेल्फ पर काफी अधिक समय तक पड़ी रहती हैं, इसलिए इनको सुरक्षित रखने के लिए पर्याप्त सावधानी बरतने की आवश्यकता होती है। फटी हुई किताबों की मरम्मत करवानी चाहिए और बहुमूल्य पुस्तकों को इस तरह से न उठाना चाहिए जिससे उसके जिल्द एवं पृष्ठ आदि के फटने की सम्भावना हो।

दक्षिण भारत में अब पुरानी पुस्तकों की बिक्री का क्षेत्र दिनोंदिन बढ़ता ही जा रहा है। हजारों घरों में अनेक प्रकार की लाखों पुस्तकें पड़ी-पड़ी बेकार हो रही हैं। इन पुस्तकों के मालिक इनके महत्व को नहीं समझते हैं और न उन्हें इस बात की जानकारी है कि ऐसी पुस्तकों की कितनी अधिक माँग है। साहसी और उत्साही पुरानी पुस्तकों के विक्रेता ऐसी पुस्तकों के मालिकों के साथ समझौता करके असंख्य बहुमूल्य पुस्तकें बिक्री के लिए प्राप्त कर सकते हैं। इस समय इन देशों में पिछले सौ वर्षों में प्रकाशित अधिकारी विद्वानों के पांडित्य ग्रन्थों की विशेष माँग है। इनमें से अधिकांश पुस्तकों का पुनर्मुद्रण नहीं हो रहा है, इसलिए यदि देश के विभिन्न भागों से इनकी प्रतियाँ प्राप्त करके बाजार में बिक्री के लिए उपलब्ध कराई जाएँ तो इससे हजारों विद्यार्थियों, अनुसन्धानकर्त्ताओं और ज्ञानोपार्जन में लगे हुए विद्वानों को लाभ होगा। इनमें से बहुत-से ग्रन्थ मौलिक अनुसन्धान और पाण्डित्य का परिणाम है और उन्हें दुबारा छापा जाना चाहिए। इससे विभिन्न विषयों में और अधिक अध्ययन और अनुसन्धान के लिए आधार प्राप्त होगा। इतिहास, दर्शन, धर्म आदि विषयों पर उच्च स्तर के इन ग्रन्थों के अलावा पुरानी पुस्तकों के विक्रेता अनुसन्धान संस्थाओं की पत्रिकाओं की पुरानी प्रतियाँ भी प्राप्त कर सकते हैं। पुस्तकालयों और अन्य लोगों द्वारा बाहर निकाली बेकार पुस्तकों में से कुछ महत्वपूर्ण पुस्तकें मिल सकती हैं और सावधान पुस्तक-विक्रेता को ऐसे सौदों पर बराबर नजर रखनी चाहिए। पुरानी पुस्तकों के विक्रेता को न केवल अपने देश के विभिन्न स्रोतों से पुस्तकें प्राप्त करनीं चाहिए, बल्कि उसे पड़ोसी देशों और पश्चिमी देशों से भी पुरानी पुस्तकें प्राप्त करने की कोशिश करनी चाहिए। पाश्चात्य देशों में दुर्लभ पुस्तकों के विक्रेताओं के पास काफी अच्छा स्टॉक रहता है और वे नियमित रूप से ऐसी पुस्तकों के पूरे विवरण के साथ उनका विस्तृत सूचीपत्र जारी किया करते हैं। प्रत्येक पुरानी पुस्तकों के विक्रेता को विदेशों के बड़े-बड़े पुस्तक-विक्रेताओं से सम्पर्क बनाए रखना चाहिए—जैसे ब्रिटेन के फोयल्स, न्यूयार्क के

ब्लैकवेल और नीदरलैण्ड के लेडेन। उसे दुष्प्राप्य पुस्तकों से सम्बद्ध प्रकाशनों, जैसे—ब्रिटेन से प्रकाशित 'द क्लीक', विदेशों के प्रसिद्ध पुरानी पुस्तकों के विक्रेताओं द्वारा जारी की गई पुस्तकों की सूचियों को भी देखते रहना चाहिए। दुर्लभ और पुनर्मुद्रित न होनेवाली पुस्तकों की विस्तृत जानकारी रखने से यह लाभ होता है कि यदि ऐसी पुस्तकें उसके पास उपलब्ध हों तो वह उन्हें अच्छी कीमत पर बेच सकता है।

यों तो पुरानी पुस्तकों की बिक्री का काम आसान नहीं है, लेकिन इस व्यवसाय में विक्रेता को कुछ छूट अवश्य रहती है। वह व्यावसायिक स्पर्धा और पुस्तकों की अहमियत को देखते हुए स्वयं पुस्तकों की खरीद और बिक्री का मूल्य तय कर सकता है। यदि ऐसे अवसरों से पूरा लाभ उठाने की ओर विक्रेता सचेष्ट रहे तो व्यावसायिक दृष्टि से पुरानी पुस्तकों की दुकान से उसे अच्छा-खासा मुनाफा हो सकता है।

दुर्लभ और महत्वपूर्ण पुस्तकों पर जहाँ औसत से अधिक मुनाफा मिलता है; वहीं दक्षिण एशिया के देशों में लोगों की क्रय-क्षमता अधिक न होने के कारण पुरानी पुस्तकों की बिक्री के व्यवसाय को और भी अधिक विकसित करने की जरूरत है।

इन दिनों अधिक लोग पुस्तकें पढ़ते हैं, किन्तु नयी पुस्तकें खरीद न सकने के कारण ऐसे लोग निश्चित रूप से पुरानी पुस्तकों का स्वागत करेंगे, यदि ऐसी पुस्तकें सस्ती कीमतों पर उपलब्ध हों। दिल-बहलाव और विविध प्रकार की सूचना प्राप्त करने के लिए कम आमदनीवाले लोगों द्वारा पुरानी पुस्तकों को खरीदने की अधिक सम्भावनाएँ होती हैं। पुरानी पुस्तकों के विक्रेताओं को इस बात का एहसास होना चाहिए कि सभी विषयों पर पुरानी पुस्तकों की बिक्री की व्यापक सम्भावनाएँ हैं। विद्यार्थी, अध्यापक, मनोरंजन और दिल-बहलाव के लिए पढ़नेवाले पाठक, सभी वर्गों की आम जनता और पठन-पाठन में रुचि रखनेवाली महिलायें सस्ती कीमतों पर अच्छे प्रकार की पुरानी पुस्तकों को चाव से पढ़ना चाहती हैं। पुरानी पुस्तकों के विक्रेताओं को पठनीय सामग्री की इस आवश्यकता को शीघ्र ही पूरा करना चाहिए। लोगों की इस माँग को पूरा करने के लिए शहरों और देहातों में अधिकाधिक पुरानी पुस्तकों की दुकानें खुलनी चाहिए। विशेषरूप से पुरानी पुस्तकों की खपत के लिए विस्तृत क्षेत्र और सम्भावनाएँ हैं। आवश्यकता इस बात की है कि पुस्तक-विक्रेता जागरूक रहकर पूर्ण उत्साह और साहस से इस परिस्थिति का लाभ उठाएँ और अपनी तथा समाज की सेवा करें।

सेल्समैनशिप तथा पुस्तकों की बिक्री

सेल्समैनशिप का अर्थ केवल काउण्टर पर किसी वस्तु की बिक्री करना अथवा ऑर्डर प्राप्त करना ही नहीं है। इसका उद्देश्य और भी बहुत-कुछ है। वास्तव में यह सुमधुर, विश्वसनीय और प्रभावपूर्ण मानव-सम्बन्धों का व्यावहारिक अभ्यास है। सेल्समैनशिप में मानव-मनोविज्ञान के अनेक तत्व समाहित होते हैं। उसका अभिप्राय महज किसी वस्तु की बिक्री की तात्कालिक सफलता नहीं है, वरन् उसका महत्व इस बात में है कि ग्राहक के मन में अच्छा और अनुकूल प्रभाव पैदा किया जाय। अगर इस प्रकार का असर पैदा कर दिया जाता है तो बिक्री चाहे तुरन्त न हो, किन्तु कालान्तर में अवश्य होगी। सबसे पहले बिक्री के लिए अच्छा वातावरण पैदा करने की जरूरत होती है। सफल सेल्समैन को अत्यन्त व्यावहारिक होने की आवश्यकता होती है। इसलिये उसे अपने स्वभाव को ग्राहक के अनुरूप ढालना पड़ता है। बाजार की स्थिति, ग्राहकों के आर्थिक, सामाजिक और बौद्धिक स्तर तथा बिक्री किए जानेवाले माल के सम्बन्ध में पूर्ण जानकारी सेल्समैन को होनी चाहिए। बिक्री-संवर्द्धन, प्रचार और विज्ञान के अन्य साधनों द्वारा पैदा की गई माँग एक स्थिति पर पहुँचकर समाप्त होने लगती है और वास्तव में इस स्थिति में सेल्समैन को अपना महत्वपूर्ण रोल अदा करना होता है।

पुस्तक की दुकान में बिक्री

मूल उद्देश्य यह होता है कि अधिक लोगों को अधिक पुस्तकें बेची जाएँ और बराबर नये-नये ग्राहक बनाये जाएँ। पुस्तकों की बिक्री का महत्व किसी अन्य व्यवसाय से कुछ अधिक है, किन्तु यह न भूलना चाहिए कि मूलत: यह भी एक व्यवसाय है, अध्ययन-केन्द्र का संचालन नहीं। इसलिए बिक्री का अपना महत्व है और सेवा भाव से बिक्री का प्राथमिक महत्व होता है। दुकान में आनेवाले प्रत्येक व्यक्ति को सम्भावित ग्राहक के रूप में देखना चाहिए और उसके साथ वैसा ही बर्ताव करना चाहिए। ग्राहक के प्रति निजी रूप से ध्यान देने का अपना महत्व होता है। लोग दुकान में या तो किसी विशेष पुस्तक की माँग महसूस करने पर आते हैं या यह देखने आते हैं कि उनकी रुचि के अनुकूल कौन-सी पुस्तकें उपलब्ध हैं। जब किसी पुस्तक की माँग होती है और वह दुकान में उपलब्ध भी होती है, तो सेल्समैन का कार्य अपेक्षाकृत बहुत आसान होता है। जब माँग की गई पुस्तक स्टॉक में नहीं होती है, तो सेल्समैन का कर्तव्य हो जाता है कि वह इस स्थिति में भी ग्राहक की तरफ से उदासीन न हो। ग्राहक से निवेदन करना चाहिए कि उसके लिए विशेष रूप से पुस्तक मँगाई जा सकती है। केवल उन्हीं पुस्तकों की

बिक्री नहीं होनी चाहिए जिनकी माँग ग्राहक अपनी तरफ से करता है। ग्राहक की आवश्यकता तथा उसकी विशेष पसन्द जानने के बाद विकल्प रूप में अन्य पुस्तकों के बुद्धिमत्तापूर्ण सुझावों के फलस्वरूप दूसरी पुस्तकों की बिक्री को भी कौशलपूर्वक बढ़ाया जा सकता है। सेल्समैन को पुस्तकों की पर्याप्त जानकारी होनी चाहिए और विभिन्न वर्ग के ग्राहकों के साथ सौदा करने में धैर्य तथा व्यवहार-कुशलता से काम लेना चाहिए। उसे महज इक्के-दुक्के ऑर्डर की सप्लाई या तात्कालिक बिक्री से ही सन्तोष नहीं कर लेना चाहिए, बल्कि ऐसी सद्भावना उत्पन्न करनी चाहिए जिससे ग्राहक बार-बार दुकान पर पधारे।

कुछ ग्राहक अपनी माँग के सम्बन्ध में स्पष्ट नहीं होते हैं और उन्हें इस बात का पता नहीं होता है कि वे क्या चाहते हैं। कुछ ग्राहक अपनी आवश्यकता के सम्बन्ध में निश्चित नहीं होते। ऐसे ग्राहकों से कुशलतापूर्वक उनकी आवश्यकता का पता लगाना चाहिए और उनके साथ ऐसा बर्ताव करना चाहिए कि वे किसी प्रकार की उलझन महसूस न करें। कुछ ग्राहक दुकानदार से बहुत अधिक अपेक्षा रखते हैं और उनका व्यवहार अशिष्ट होता है। किन्तु अशिष्टता को विनम्रता और मुस्कराहट के साथ झेल जाना चाहिए। ग्राहक के अभद्र व्यवहार का सामना करने के लिए सेल्समैन को संयम और सौम्यता से काम लेना चाहिए। सभी परिस्थितियों में विनम्र व्यवहार के फलस्वरूप उग्र स्वभाव के ग्राहकों को भी दुकान का नियमित ग्राहक बनाया जा सकता है। विभिन्न वर्ग के ग्राहकों से व्यवहार करते हुए धैर्य और चातुर्य के साथ-साथ थोड़ी-बहुत विनोदशीलता और कहीं-कहीं जीवन के प्रति दार्शनिक दृष्टिकोण अपनाने की भी आवश्यकता होती है।

कुछ ग्राहक बड़े बातूनी होते हैं। ऐसे ग्राहकों के साथ सेल्समैन को अच्छा श्रोता बनने की जरूरत होती है, किन्तु इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि दूसरे ग्राहकों की उपेक्षा न हो। जब ग्राहकों को व्यर्थ में इन्तजार करना पड़ता है तो उन्हें सबसे अधिक झुँझलाहट होती है। इसलिए जहाँ तक सम्भव हो, यह सिद्धान्त बना लेना चाहिए कि जो ग्राहक पहले आए, उसके आर्डर की पूर्ति सबसे पहले की जाएगी। एक ग्राहक की माँग की ओर ध्यान देते समय दूसरे ग्राहकों को यह आभास नहीं होना चाहिए कि उसकी उपेक्षा की जा रही है। ऐसे समय अन्य ग्राहकों से निवेदन किया जा सकता है कि वे पहले पुस्तकें देखें। तात्पर्य यह कि ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि वे किसी प्रकार की उलझन न महसूस करें। उद्देश्य यह नहीं होना चाहिए कि नियमित ग्राहकों की ओर अधिक ध्यान देकर उन्हें सन्तुष्ट किया जाय, वरन् नये ग्राहक बनाने का लक्ष्य भी सदैव सेल्समैन के सामने रहना चाहिए।

बिक्री-सहायक को यह बात भाँप लेने की क्षमता होनी चाहिए कि किस ग्राहक को उसकी सहायता और निर्देश की जरूरत है और कौन-सा ग्राहक ऐसा है जो अपनी आवश्यकता को समझते हुए स्वयं पहले अपनी माँग के अनुरूप पुस्तक खोजना पसन्द

करेगा। दूसरे शब्दों में, सेल्समैन को यह समझना चाहिए कि कब किस ग्राहक के पास पहुँचकर उससे बात करनी चाहिए और कब उसे दुकान में घूमने-फिरने के लिए छोड़ देना चाहिए। उसे बिना जताए हुए ग्राहक की मौजूदगी का एहसास होना चाहिए।

जहाँ तक ग्राहकों के प्रति विनम्रता और ध्यान देने का सवाल है, इस सम्बन्ध में किसी तरह का भेदभाव नहीं बरतना चाहिए। बिक्री-सहायक को न तो सम्पन्न जान पड़नेवाले ग्राहकों के प्रति चापलूसी का व्यवहार करना चाहिए और न मामूली हैसियत वाले ग्राहकों के प्रति ऐसा भाव प्रदर्शित करना चाहिए जैसे वह उनके प्रति मेहरबानी दिखा रहा हो। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि महत्वपूर्ण पुराने ग्राहकों और प्रतिष्ठित अतिथियों की ओर विशेष ध्यान ही न दिया जाय।

जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है सेल्समैन को स्टॉक का पूर्ण ज्ञान और सामान्य पुस्तकों की जानकारी होना अत्यन्त आवश्यक है। ग्राहक द्वारा कोई पुस्तक माँगे जाने पर यदि सेल्समैन उसके सम्बन्ध में अनभिज्ञता जाहिर करता है तो इससे सम्भावित ग्राहक हतोत्साहित होता है। यदि पुस्तक उपलब्ध है तो उसे तुरन्त लाया जाना चाहिए; यदि वह पुस्तक स्टॉक में नहीं है तो ग्राहक को इस प्रकार का समुचित उत्तर दिया जा सकता है कि पुस्तक ऑर्डर करके बाहर से उसके लिये मँगाई जा सकती है। दूसरे उसी प्रकार की अन्य पुस्तकें देखने का सुझाव पेश किया जा सकता है। सूचीपत्रों और सन्दर्भ-ग्रन्थों को ग्राहक के सामने ही देखना चाहिए, न कि दुकान के किसी और हिस्से में। यदि ग्राहक बिक्री-सहायक को उसके द्वारा वांछित जानकारी प्राप्त करने में प्रवृत्त देखता है तो उसे इन्तजार करना नहीं खलता।

बिक्री के प्रति निश्चयात्मक दृष्टिकोण अपनाना अनिवार्य होता है। किन्तु सेल्समैन द्वारा ग्राहक को उसके मनोनुकूल सभी प्रकार की पुस्तकें दिखाने, पुस्तकों के शेल्फ़ तक ले जाने और उसे अपने-आप पुस्तकों का चुनाव करने के लिए प्रोत्साहित करने के बावजूद कभी भी पुस्तक को ग्राहक के गले लगाने का प्रयास नहीं होना चाहिए। इस प्रकार की आग्रहपूर्ण सेल्समैनशिप कभी-कभी फलदायी साबित हो सकती है, परन्तु इससे ग्राहक के मन पर बुरा असर पड़ता है और वह महसूस करता है कि जैसे उसे धोखा दिया गया। यदि आवश्यकता हो तो पुस्तक के महत्व के सम्बन्ध में थोड़ा आग्रह के साथ संक्षिप्त परिचय दिया जाय। सेल्समैन की कुशलता इस बात में है कि वह ग्राहक को उसकी पसन्द की पुस्तक का चुनाव कराके और उसकी खरीद करने में आवश्यक सहायता करे। ग्राहक को आश्वस्त करके उसके मन में पुस्तक प्राप्त करने की इच्छा पैदा करने की कला का वास्तविक महत्व होता है। इस दृष्टि से सुझाव सेल्समैनशिप का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण पहलू है। उसका महत्व ऐसी स्थिति में और अधिक होता है जब सम्भावित ग्राहक अपनी माँग के सम्बन्ध में अस्पष्ट और अनिश्चित होता है। ऐसी स्थिति में ग्राहक की सम्भावित अभिरुचियों का तत्काल अनुमान लगा सकना अत्यन्त उपयोगी और सहायक सिद्ध होता है। जब ग्राहक किसी पुस्तक को खरीदने का विचार करने में हिचक रहा हो तो सेल्समैन उस पुस्तक की अच्छाइयों पर जोर दे सकता है और उस पुस्तक के

खरीद लिए जाने तथा ग्राहक को उसी विषय की अन्य सहायक पुस्तकों के सम्बन्ध में भी सुझाव दे। इस दिशा में किये गए विवेकपूर्ण प्रयासों के फलस्वरूप अतिरिक्त बिक्री भी होगी, क्योंकि बहुत-से ग्राहक अन्ततोगत्वा ऐसी पुस्तकें खरीद लेते हैं। यह बात जुदा है कि ऐसी पुस्तकें तुरन्त या एक साथ न खरीदी जाएँ।

चातुर्यपूर्ण और कौशलपूर्वक दिये सुझावों के द्वारा बिक्री उस बिक्री से भिन्न है जो आग्रहपूर्ण ढंग से की जाती है। ऐसी बिक्री के ढंग से प्रायः ग्राहक को झुँझलाहट होती है। सुझाव देकर बिक्री-संवर्द्धन के कार्य में अन्तर्बोध और नैसर्गिक कौशल का बड़ा ही महत्त्वपूर्ण योगदान होता है, किन्तु इस क्षमता को अनुभव के आधार पर विकसित किया जा सकता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अनुभव के साथ-साथ पुस्तकों की पर्याप्त जानकारी हासिल करना होगा। बिक्री की सफल आधुनिक प्रणालियों ने यह सिद्ध कर दिया है कि आग्रहपूर्ण सेल्समैनशिप अन्ततोगत्वा फलदायी साबित नहीं होती है। आजकल इस बात पर जोर दिया जा रहा है कि सुझाव देकर पुस्तकें बेची जाएँ और ग्राहकों में पुस्तकें खरीदने की प्रवृत्ति को विकसित किया जाय। विशेष रूप से पुस्तक-व्यवसाय में, जहाँ ग्राहक प्रायः शिक्षित व्यक्ति हुआ करते हैं, वहाँ आग्रह करके पुस्तकें खरीदवाने का उल्टा ही असर हो सकता है। विनम्र सुझाव और विवेकपूर्ण सिफारिश के द्वारा पुस्तकों की बिक्री करना अधिक प्रभावपूर्ण पद्धति है। अतः अन्य तरीकों की अपेक्षा ग्राहकों में विश्वास पैदा करके अधिक पुस्तकों की बिक्री की जा सकती है।

प्रायः पुस्तकालयाध्यक्ष, अधिकारी, अध्यापक व प्रोफेसर दुकान में आते हैं और पुस्तकों का अपने-आप चुनाव करते हैं। जागरूक और पुस्तकों के सम्बन्ध में पर्याप्त जानकारी रखनेवाले बिक्री सहायक ऐसे अवसरों पर अपनी व्यावसायिक कुशलता का परिचय दे सकते हैं। वे इस प्रकार के ग्राहक की दिलचस्पी ऐसी दूसरी पुस्तकों के प्रति भी पैदा कर सकते हैं जिनके सम्बन्ध में उस ग्राहक ने पहले से विचार नहीं किया था। इस प्रकार ऐसे सुझावों के आधार पर पर्याप्त अतिरिक्त बिक्री सम्भव होती है।

सेल्समैन को ग्राहक के साथ विवादास्पद विषयों पर चर्चा नहीं करनी चाहिए। सेल्समैन को ग्राहक के साथ व्यवहार में राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक तथा सामाजिक समस्याओं के सम्बन्ध में निजी धारणाओं को लादने का प्रयास नहीं करना चाहिए। यदि ग्राहक इस सम्बन्ध में कोई चर्चा चलाता है तो सेल्समैन को किसी प्रकार का समर्थन या खण्डन किए बिना विनम्र होना चाहिए। ग्राहकों से यह शिकायत नहीं करनी चाहिए कि लोग पुस्तकें पढ़ते तथा खरीदते नहीं हैं। सेल्समैन के वास्तविक व्यावसायिक कौशल की सार्थकता तो तब है जब वह प्रतिकूल परिस्थितियों में भी पुस्तकों की बिक्री करे। सेल्समैन को अपने या अपने मालिक के सम्बन्ध में कोई ऐसी टीका-टिप्पणी नहीं करनी चाहिए जिसमें ग्राहक की कोई दिलचस्पी न हो। ग्राहक तो सिर्फ इस बात की सराहना करेगा कि उसकी आवश्यकताओं तथा उसकी वांछित पुस्तकों के सम्बन्ध में कितनी अधिक मैत्रीपूर्ण दिलचस्पी ली जा रही है।

'मेल आर्डर' के द्वारा पुस्तकों की बिक्री

पिछले पन्द्रह वर्षों में 'मेल ऑर्डर' के द्वारा पुस्तकों की बिक्री में बहुत अधिक बढ़ोत्तरी हुई है। इस प्रकार की बिक्री पाश्चात्य देशों में काफी अधिक विकसित की गई है और यह पद्धति दक्षिण एशिया के देशों के लिए भी पर्याप्त रूप से अनुकूल है। डाक के द्वारा व्यवसाय करने के प्रयास से पुस्तक-विक्रेता कम लागत पर सैकड़ों और हजारों सम्भावित ग्राहकों से सम्पर्क स्थापित कर लेता है। समय और स्थान की दूरी की बाधाओं को पार करने में उसे कोई खास कठिनाई नहीं उठानी पड़ती है। इस प्रकार बिक्री से सम्बद्ध पत्रों, गश्ती चिट्ठियों, फोल्डरों और सूचीपत्रों के माध्यम से सहज ही सम्भावित ग्राहकों के घरों व कार्यालयों तक उसकी पहुँच हो जाती है। वास्तव में प्रचार के उक्त साधन ही बिक्री से सम्बद्ध बातचीत का लिखित रूप हैं और चूँकि ग्राहक को यह छूट होती है कि वह इन्हें सुविधानुसार देख सके, इसीलिए वह इनकी ओर ध्यान दे सकने की स्थिति में होता है। यहाँ दृष्टिकोण यह होता है कि विनम्र अनुरोध के द्वारा पुस्तकें बेची जाएँ और वास्तव में इस तरीके से ग्राहकों को काफी हद तक बढ़ाया जा सकता है और प्रचार के फलस्वरूप आनेवाले मेल ऑर्डरों से अधिक और कम बिक्रीवाले सीजन के बीच का अन्तराल भरा जा सकता है।

चूँकि मेल ऑर्डरों के द्वारा पुस्तकों की बिक्री में पर्याप्त ऊपरी खर्च पड़ता है, इसलिए यह पद्धति तभी लाभप्रद होती है जब व्यवसाय प्रायः एक निश्चित स्तर तक विकसित हो चुका हो। इस प्रकार की बिक्री में भी उतनी ही कुशलता की आवश्यकता की जरूरत है जितनी कि दुकान के भीतर व्यक्तिगत रूप से की जानेवाली बिक्री में अपेक्षित है। इस पद्धति में भी अधिक पुस्तकें बिक्री करने, ग्राहकों की विशिष्ट आवश्यकताओं का पता लगाने और अपनी तत्पर, कार्यकुशल सेवाओं के द्वारा ग्राहकों की सद्भावना बनाये रखने तथा उसको बढ़ाने की अनेक बातें होती हैं। यह अच्छा होगा यदि दुकान के भीतर होनेवाली दैनिक स्थानीय बिक्री से सम्बद्ध सहायकों से मेल ऑर्डरों को भी देखने का काम कराने के बजाय अलग से मेल ऑर्डर अनुभाग खोला जाए।

मेल ऑर्डर के माध्यम से होनेवाले व्यवसाय की प्रत्येक कार्यविधि अत्यन्त व्यवस्थित होनी चाहिए। प्रत्येक मेलिंग के पूर्व लागत का सही-सही अनुमान लगाने का प्रयास करना चाहिए, यद्यपि इस प्रकार कितने ऑर्डर प्राप्त होंगे, यह अनुमान लगाना सरल नहीं होता है। यदि भेजी गई सूचियाँ और विवरण-पत्रिकायें वास्तव में उपादेय हों, यथासमय प्राप्त हों और सूचीबद्ध पुस्तकें उपयुक्त हों, तो अधिक ऑर्डर प्राप्त हो सकते हैं। वैसे व्यवसाय की सामान्य स्थिति और मेल ऑर्डर से होनेवाली बिक्री में प्रतिस्पर्द्धा को देखते हुए यदि औसतन ४ या ५ प्रतिशत लोगों के ऑर्डर मिल जाएँ, तो भी पुस्तक-विक्रेता को सन्तोष होना चाहिए।

इस प्रकार की बिक्री-व्यवस्था में समय का बहुत अधिक महत्व होता है। वर्ष के सभी महीने इस उद्देश्य के लिए अनुकूल नहीं होते हैं। सीधे तौर से डाक द्वारा ऑर्डरों

की पूर्ति की व्यवस्था के उन दिनों सफल होने की अधिक सम्भावना रहती है जब व्यावसायिक या शैक्षणिक गतिविधियों में काफी सरगरमी रहती है। जब स्कूल और कॉलेज छुट्टियों के बाद खुलते हैं या जब सरकारी तथा व्यापारिक वित्तीय वर्ष का आरम्भ और समाप्ति होती है, जब लोग पर्व-त्यौहार आदि के मौकों पर ज्यादा चीजें खरीदते हैं, तो मेल ऑर्डर की संख्या भी अधिक होने की सम्भावना रहती है।

पुस्तक-विक्रेता को यह तय कर लेना चाहिए कि वह किस प्रकार की पुस्तकों को किस प्रकार के ग्राहकों के बीच डाक से ऑर्डर प्राप्त करने की व्यवस्था का संवर्द्धन करना चाहता है। पुस्तक-विक्रेता को यह निश्चित कर लेना चाहिए कि उसे व्यक्तिगत रूप से फर्मों, सरकारी विभागों, शिक्षा-संस्थाओं, पुस्तकालयों, अनुसन्धान-संस्थाओं, विशिष्ट संगठनों तथा विशिष्ट व्यक्तियों से सम्पर्क स्थापित करना है। यहाँ तक कि बड़े पुस्तक-विक्रेता के लिए भी यह सम्भव नहीं होता कि वह प्रत्येक श्रेणी के ग्राहकों की आवश्यकताओं की सफलतापूर्वक पूर्ति कर सके। औसत स्तर के पुस्तक-विक्रेता को चाहिए कि वह प्रत्येक श्रेणी के ग्राहकों में से केवल कुछ विशेष प्रकार के ग्राहकों की आवश्यकताओं की पूर्ति करे और इसी दिशा में विशिष्टता प्राप्त करे। पुस्तक-विक्रेता नमूने के लिए कुछ प्रचार-सामग्री ग्राहकों के पास भेजकर उसकी प्रतिक्रिया के आधार पर बाजार की सामान्य स्थिति का पता लगा सकता है और उसके बाद मेल ऑर्डर सम्बन्धी अपनी व्यावसायिक गतिविधियों की सीमा निर्धारित कर सकता है।

सम्भावित ग्राहकों के नाम और पते जानने के कुछ निश्चित साधन हैं जैसे—व्यावसायिक निर्देशिकाएँ, स्थानीय चेम्बर ऑफ कॉमर्स से प्राप्त व्यवसायियों की सूचियाँ, सरकारी विभागों द्वारा जारी की गई निर्देशिकाएँ, प्रमुख क्लबों के सदस्यों की सूचियाँ, फैकल्टी सदस्यों की सूचना देनेवाले विश्वविद्यालयों के कैलेन्डर, टेलीफोन डायरेक्टरी और पुस्तक-विक्रेता द्वारा बनाइ गई ग्राहकों और अतिथियों की अपनी सूचियाँ। मेल ऑर्डर के व्यवसाय के लिए विषयानुसार ग्राहकों और सम्भावित ग्राहकों की वर्गीकृत सूची रखना अत्यन्त आवश्यक है। इस प्रकार की सूची तैयार करवाना और उसे बराबर परिवर्द्धित करते रहना आसान काम नहीं है, क्योंकि समय-समय पर अनुभव के आधार पर कुछ नये नाम जोड़ने और कुछ दर्ज नाम हटाने होते हैं। सामान्य पुस्तकों के अलावा महत्वपूर्ण और महँगी पुस्तकों को बेचने तथा विशिष्ट आगामी प्रकाशनों के अग्रिम ऑर्डर प्राप्त करने के लिए विषयों में विशेष अभिरुचि रखनेवाले ग्राहकों और संस्थाओं की चुनी हुई सूची रखना बहुत ही उपयोगी होता है। अपने में पूर्ण मेलिंग सामग्री में समुचित रूप से लिखा गया संक्षिप्त बिक्री-पत्र, सम्बद्ध पुस्तकों की सूची, ऑर्डर-फार्म, जहाँ आवश्यक हो वहाँ कुछ पुस्तकों का विवरण-पत्र अथवा पत्रक और पता लिखा हुआ जवाबी लिफाफा आदि सम्मिलित होना चाहिए।

मेल ऑर्डर किसी जिम्मेदार व्यक्ति द्वारा खोले जाने चाहिए, क्योंकि इनमें कुछ के साथ चेक तथा पोस्टल ऑर्डर भी आ सकते हैं। पत्र तथा ऑर्डर फार्म के ऊपरी सिरे पर

सभी संलग्नकों को चिह्नांकित कर देना चाहिए। सबसे पहले मेल ऑर्डर को सम्बद्ध विशेष रजिस्टर में दर्ज किया जाना चाहिए और उसकी पूर्ति के लिए तुरन्त ध्यान देना चाहिए। शिकायतों की शीघ्र जाँच की जानी चाहिए और अन्य ऑर्डरों के अपेक्षाकृत आवश्यक ऑर्डरों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

प्रायः ऑर्डर की गई कुछ पुस्तकें स्टॉक में नहीं होती हैं। ऐसी दशा में परिस्थितियों को देखते हुए दो रास्तों में से एक को चुनना चाहिए। स्टॉक में उपलब्ध पुस्तकें तुरन्त सप्लाई कर दी जानी चाहिए। साथ ही यह नोट कर लेना चाहिए कि अन्य पुस्तकें बाद में भेजनी हैं। बेशक, ग्राहक को यह सूचित कर देना चाहिए कि कौन-सी पुस्तकें स्टॉक में नहीं हैं और वे कब तक उपलब्ध होंगी।

दूसरा रास्ता यह हो सकता है कि ऑर्डर की प्राप्ति-सूचना के तुरन्त बाद यथासम्भव शीघ्र सारी पुस्तकें एकत्र करके एक साथ भेजने की व्यवस्था की जाए। इस प्रकार ग्राहक को माल भेजने पर आनेवाले खर्च में थोड़ी बचत होगी, किन्तु पुस्तकें तुरन्त नहीं प्राप्त होती हैं तब ग्राहक को झुँझलाहट होती है। यदि कुछ पुस्तकें उपलब्ध नहीं हैं और विकल्प स्वरूप सुझाव देने के अलावा और कोई चारा न हो, तो उपयुक्त परिस्थितियों में पुस्तक-विक्रेता कुछ अन्य पुस्तकें इस शर्त के साथ ग्राहक को सप्लाई कर सकता है कि पसन्द न आने पर वे पुस्तकें वापस लौटा दी जाएँ। प्रायः ऐसा होता है कि विकल्पस्वरूप भेजी गई पुस्तकें सहर्ष स्वीकार कर ली जाती हैं। अनुभव के आधार पर पुस्तक-विक्रेता इस बात का निर्णय कर सकता है कि किन ऑर्डरों की आंशिक सप्लाई की जा सकती है या बिना ग्राहक के एतराज और आशंका के ऑर्डर की पूर्ति पूरक पुस्तकों के द्वारा की जा सकती है अथवा किन ऑर्डरों की सप्लाई ग्राहक के अन्तिम निर्णय की सूचना न मिलने तक स्थगित की जानी चाहिए। कुछ भी हो, बिना यह सूचित किए हुए कि किन कारणों से पूरे ऑर्डर की पूर्ति नहीं की गई है, कभी भी आंशिक सप्लाई नहीं करनी चाहिए। मेल ऑर्डर की सप्लाई करने के बाद उसे भविष्य के सन्दर्भ के लिए फाइल करके अलग रख देना चाहिए।

किश्तों पर बिक्री की व्यवस्था

बिक्री का एक और तरीका यह है कि बिल का भुगतान किश्तों में स्वीकार किया जाय, प्रायः यह तरीका विश्वकोश, बड़े-बड़े शब्दकोशों अथवा इसी प्रकार के कई भागोंवाले कीमती ग्रन्थों की बिक्री के सम्बन्ध में अपनाया जा सकता है। सामान्य तरीका यह है कि ग्राहक से निश्चित किश्तों में भुगतान की जानेवाली धनराशि के समझौते पर हस्ताक्षर करवा लिए जाएँ और विलम्ब से भुगतान होने के कारण थोड़ी अधिक रकम लेने का प्राविधान भी समझौते में हो। इस प्रकार की बिक्री की पद्धति का अभी तक अधिक विकास नहीं हुआ है, क्योंकि पुस्तक-विक्रेता पूँजी को अधिक समय तक फँसाकर रखने की स्थिति में नहीं होते हैं। वैसे महँगे सन्दर्भ-ग्रन्थों की बिक्री बढ़ाने के

लिए यह तरीका काफी उपयोगी होगा। यदि विश्वसनीय ग्राहक हों तो दूसरे प्रकार की पुस्तकों की बिक्री के लिए भी यह तरीका व्यवहार में लाया जा सकता है।

गृह-पुस्तकालय योजना

हाल ही में भारत में कुछ उत्साही वितरक और पुस्तक-विक्रेता 'गृह-पुस्तकालय योजना' की नयी पद्धति से लोगों को आसान शर्तों के साथ पुस्तकें खरीदने और घर में रखने के लिए प्रोत्साहित कर रहे हैं। सस्ते मूल्यों पर विभिन्न विषयों पर काफी अधिक संख्या में अच्छी पुस्तकें योजना में शामिल होनेवाले लोगों को चुनाव के लिए उपलब्ध होती हैं। १२ या १८ महीने की अवधि में छोटी-छोटी मासिक किश्तों के द्वारा इन पुस्तकों के बिल का भुगतान करना होता है। पसन्द के अनुसार कुछ पुस्तकें प्रत्येक ३ या ६ महीने बाद बिना डाक-व्यय के ग्राहकों को भेजी जाती हैं, साथ में कुछ पुस्तकें मुफ्त बोनस के रूप में ग्राहक को भी दी जाती हैं। इस पद्धति के द्वारा विशेष रूप से नगर से दूर रहनेवाले पुस्तक-प्रेमी ग्राहकों के लिए यह सुविधा हो जाती है कि वे आसान किश्तों के आधार पर अपनी खुद की छोटी-मोटी लाइब्रेरी बना लें, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में, जहाँ कई-कई किलोमीटर तक कोई पुस्तक की दुकान नहीं होती है, ऐसी योजनाएँ पाठकों के लिये वरदान स्वरूप हैं।

घटी हुई दरों पर पुस्तकों की बिक्री

समय-समय पर कम बिकनेवाली पुस्तकों के स्टॉक की खपत करने के लिए घटी दरों पर पुस्तकें बेचने की व्यवथा करनी चाहिए। इस प्रकार की पद्धति में आमतौर से केवल वही पुस्तकें बिक्री के लिए रखी जाती हैं जो सामान्य रूप से नहीं बिक पातीं। इसलिए घटी दर पर पुस्तकों के बेचने का यह मतलब नहीं लगाना चाहिए कि जान-बूझकर कम कीमत पर पुस्तकें बेची जा रही हैं।

इस प्रकार की बिक्री के दो लाभ होते हैं। जो लोग कुछ पुस्तकें नियमित दरों पर नहीं खरीद पाते हैं, वे घटी हुई दरों पर पुस्तकें उपलब्ध होने के अवसर का स्वागत करते हैं। अन्य लोग घटी हुई कीमतों पर कुछ पुस्तकें प्राप्त करने के अवसर से लाभ उठाना चाहते हैं, कुछ ऐसे लोग केवल इसीलिए पुस्तकें खरीदने की ओर आकर्षित होते हैं, क्योंकि वे समझते हैं कि पुस्तकें नियमित मूल्य से कम पर उपलब्ध हैं। इसलिए घटी हुई दरों पर बिक्री की व्यवस्था का सम्भावित ग्राहकों पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव उत्पन्न करने के लिए काफी पहले से प्रचार करना चाहिए।

घटी हुई दरों पर पुस्तकों की बिक्री के द्वारा पुस्तक-विक्रेता पुराने स्टॉक और अतिरिक्त स्टॉक की यथासमय खपत कर सकता है। ऐसा न करने से इस प्रकार की पुस्तकों की बिक्री बाद में बिलकुल बन्द हो सकती है। दूसरा लाभ यह होता है कि पुस्तक-विक्रेता को तुरन्त आय हो जाती है। तीसरा लाभ यह है कि इन दिनों अधिक लोगों के दुकान में आने के कारण नई पुस्तकों की बिक्री में भी वृद्धि हो सकती है, बशर्ते कि ये समुचित ढंग से प्रदर्शित की जाएँ।

यदि सारे प्रयास के बावजूद कुछ पुस्तकों की बहुत ही कम या बिलकुल ही बिक्री न होती हो तो पुस्तक-विक्रेता को ऐसी पुस्तकों को सस्ते-से-सस्ते मूल्य पर भी बेचने में संकोच नहीं करना चाहिए। उसे अधिक प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए। इस प्रकार की विधि को अवशिष्ट स्टॉक को खपाने की संज्ञा दी जा सकती है। पाश्चात्य देशों में अवशिष्ट स्टॉक को खरीदनेवाले विशेष व्यापारी होते हैं, जो प्रकाशक से न बिके हुए स्टॉक को खरीदकर उसे पुस्तक-विक्रेताओं को सस्ती दर पर बेचते हैं। कभी-कभी स्वयं प्रकाशक ही अवशिष्ट स्टॉक की बिक्री करने का काम करता है। दक्षिण एशिया के देशों में इस कार्य का अभी समुचित विकास नहीं हो सका है। जहाँ भी सम्भव हो, पुस्तक-विक्रेता को इस प्रकार का अवशिष्ट स्टॉक खरीदकर घटी हुई दर पर उसकी बिक्री करनी चाहिए। घटी हुई दर पर ऐसी पुस्तकों की बिक्री के बाद भी बची हुई पुस्तकों को शीघ्र ही और सस्ती कीमतों पर निकाल देना चाहिए। छोटे-छोटे पुस्तक-विक्रेताओं के लिए भी यह मुमकिन है कि वे उपयुक्त अवसर पर इस प्रकार के न बिकने वाले स्टॉक को सस्ती-से-सस्ती दर पर निकाल दें, कम-से-कम उन्हें पूरा नुकसान तो नहीं उठाना पड़ेगा। इस प्रकार दुकान में ऐसी पुस्तकों को रखने के लिए स्थान भी निकल आएगा, जिनके बिकने की अधिक सम्भावना है।

घटी हुई दर पर बिक्री के अलावा पुरानी और कम बिकनेवाली पुस्तकें उन ग्राहकों को मुफ्त भी दी जा सकती हैं, जो एक निश्चित मूल्य तक की नई पुस्तकें खरीदते हैं।

पुस्तकों की निकासी की अन्य नई पद्धतियाँ

पुस्तकों को और अधिक ग्राहकों तक पहुँचाने का एक नया साधन है, चलती-फिरती गाड़ियों का उपयोग। इस प्रणाली के द्वारा देश के भीतरी भागों तक पुस्तकें पहुँचाकर दिन-ब-दिन बढ़नेवाली नवसाक्षरों की जमात में पुस्तकें पढ़ने के प्रति उत्साह पैदा किया जा सकता है। विशेषकर दक्षिण एशिया के देशों में कुछ संस्थाओं और वहाँ के कुछ पुस्तक-विक्रेताओं के इस क्षेत्र के अनुभवों से इस प्रकार की सम्भावना का पता लगता है, किन्तु इस संसाधन को पूर्णरूप से प्रभावकारी बनाने के लिए आवश्यक है कि आरम्भ में अपेक्षानुसार परिणाम न निकले, फिर भी इस दिशा में पूरी लगन और निष्ठा से प्रयास करना चाहिए। इस प्रकार देहातों में भी लोगों को पुस्तकें सुलभ कराने के इस प्रयास के द्वारा सरकार का ध्यान आकृष्ट किया जा सकता है और प्रोत्साहन-स्वरूप व्यक्तिगत पुस्तक-विक्रेताओं अथवा पुस्तक-विक्रेता-संघों को इस कार्य के लिए सरकारी अनुदान प्राप्त हो सकता है।

मोटरकार अथवा स्कूटर वैन में देहातों तक पुस्तकें ले जाने के अलावा पुस्तकों की निकासी का एक और तरीका यह है कि विशेष प्रकार के माल को बेचनेवाले व्यापारियों की तरह पुस्तकों की बिक्री के संवर्द्धन के लिए ऐसे पुस्तक-विक्रेताओं को प्रोत्साहित किया जाए। पुस्तकों की बिक्री को बढ़ाने के लिए कुछ और तरीके भी अपनाये जा

सकते हैं। मिसाल के तौर पर खिलौने की दुकान पर बाल-साहित्य की पुस्तकें बेची जा सकती हैं, फोटोग्राफर फोटोग्राफी-कला से सम्बन्धित पुस्तकों की भी बिक्री कर सकता है, बागबानी के औजार और बीज बेचनेवाली दुकान पर उद्यान-सम्बन्धी पुस्तकें भी बेची जा सकती हैं और रेडियो की दुकान पर तत्सम्बन्धी पुस्तकों की भी बिक्री की व्यवस्था की जा सकती है। अन्य प्रकार का माल रखनेवाले पुस्तक-विक्रेता अपने पड़ोस के दुकानदारों को इस बात के लिए राजी कर सकते हैं कि वे अपने ग्राहकों की रुचि की पुस्तकें रखें। हाँ, ऐसे दुकानदारों को मुनाफे का उचित भाग दिए जाने की व्यवस्था होनी चाहिए।

दक्षिण एशिया के देशों में सस्ती पुस्तकें बेचने के लिए भीड़-भाड़वाली गलियों में कोने की दुकानों अथवा परचून की दुकानों का उपयोग करने के विचार पर गम्भीरतापूर्वक सोचा जा सकता है, यदि जगह ठीक है और दुकानदार वहाँ बिक्री के लिए रखी गई पुस्तकों की ओर ध्यान देता है। इस प्रकार काफी हद तक बिक्री बढ़ सकती है। ऐसी दुकानों के अलावा, अच्छे किस्म के होटल भी लोकप्रिय पुस्तकों की बिक्री के लिए काफी उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। नये-नये होटलों के खुलने के साथ-साथ इस प्रकार की व्यवस्था से पुस्तकों की बिक्री में वृद्धि होती जा रही है।

साहसी और उत्साही पुस्तक-विक्रेता पड़ोस के सिनेमाघरों में सिनेमा जाने वाले लोगों के बीच लोकप्रिय पुस्तकें बेचने के लिए छोटे-छोटे काउण्टर लगा सकते हैं। या वे चाय-पान आदि का स्टाल रखनेवाले व्यक्ति से यह तय कर सकते हैं कि स्टाल का एक भाग पुस्तकों के प्रदर्शन और बिक्री के लिए वह सुलभ कराये। इस प्रकार की बिक्री की व्यवस्था विशेषकर दूरवर्ती कस्बों और बाजारों के केन्द्र एवं बस-स्टाप पर भी की जा सकती है।

आजकल दैनिक समाचारपत्रों, साप्ताहिकों और अन्य लोकप्रिय पत्रिकाओं के एजेन्ट न केवल शहरों और कस्बों में मिल सकते हैं, वरन् छोटी-छोटी जगहों में भी इनसे सम्पर्क स्थापित किया जा सकता है। ये एजेन्ट पत्र-पत्रिकाओं का वितरण करने के अलावा प्रायः इन्हीं पत्रों की फुटकर बिक्री के लिए छोटी-छोटी दुकानें भी खोल लेते हैं और पत्र-पत्रिकाओं की कुछ प्रतियाँ बिक्री के लिए रखते हैं। पुस्तक विक्रेता कुछ प्रकार की पुस्तकों के वितरण के लिए अपने शहर अथवा पड़ोस के कस्बों के चुने हुए एजेन्टों से सम्पर्क स्थापित करके वितरण की इस व्यवस्था का पूरा लाभ उठा सकता है। परचून और कपड़ा आदि बेचनेवाले अनेक उपभोक्ता सहकारी भण्डारों में पुस्तकों की बिक्री की व्यवस्था करवाई जा सकती है। अपनी पारिवारिक आवश्यकताओं की चीजें खरीदने के लिए सहकारी भण्डारों में आनेवाली महिलाएँ इन पुस्तकों में भी दिलचस्पी ले सकती हैं और धीरे-धीरे पुस्तकें खरीदने की ओर प्रवृत्त हो सकती हैं।

पुस्तकें बेचने का एक और उपयोगी तरीका यह हो सकता है कि अस्पतालों को रोटी, मक्खन, दूध आदि सप्लाई करनेवाले कॉन्ट्रैक्टर अथवा लाइसेंस-होल्डर को

अस्पताल के अधिकारियों की सहमति से इस बात के लिए राजी किया जा सकता है कि वह अन्य चीजों के साथ पुस्तकें भी सुलभ करा सकें। इसी प्रकार कारखानों के श्रमिकों अथवा मालिकों द्वारा चलाए जानेवाले स्टोर्स में भी पुस्तकों को बेचने की व्यवस्था के लिए संचालकों को राजी किया जा सकता है। सैनिक केन्द्रों पर सेना के अधिकारियों द्वारा संचालित स्टोर्स में भी विशेषकर छोटे दर्जे के सैनिकों के लिए अलग से पुस्तकों की बिक्री का अनुभाग खोलने की व्यवस्था कराई जा सकती है।

पुस्तकों का निर्यात

दक्षिण एशिया के देशों में पुस्तकों का निर्यात विदेशी व्यापार का महत्त्वपूर्ण भाग नहीं है, किन्तु इस प्रकार के निर्यात का महत्त्व इस बात में होता है कि इन पुस्तकों के माध्यम से सम्बद्ध देशों की संस्कृति और परम्परा का ज्ञान-प्रसार विदेशों में होता है। दक्षिण एशियाई देशों से अमरीका और यूरोप के लिए निर्यात होनेवाली अँग्रेजी की कुछ पुस्तकों के अलावा राष्ट्रीय और प्रादेशिक भाषाओं की भी पुस्तकों का विदेशों के लिए निर्यात होता है। उदाहरण के लिए हिन्दी की पुस्तकों की दक्षिणी अफ्रीका, मॉरीशस, फिजी आदि देशों में माँग है; इसी प्रकार तमिल की पुस्तकों की लंका और मलाया में। गुजराती की पुस्तकों की दक्षिणी और पूर्वी अफ्रीका तथा उर्दू व बंगला की पुस्तकों की भारत व पाकिस्तान में माँग रहती है। अधिकांश निर्यात रजिस्टर्ड पोस्ट, रेल या जहाज द्वारा होता है; बिल का भुगतान या तो पेशगी में होता है या विदेशी मुद्रा का लेन-देन करनेवाले बैंकों द्वारा प्रलेखों की स्वीकृति के आधार पर होता है। विदेशी मुद्रा-नियन्त्रण प्रणालियों के कारण प्रायः अधिकांश देर में अग्रिम भुगतान सम्भव नहीं होता है। दक्षिण एशिया के देशों की सरकारों को चाहिए कि पुस्तकों का निर्यात बढ़ाने के लिए वे वर्तमान डाक-सुविधाओं में वृद्धि करें। विदेशी मुद्रा की कठिनाइयों के बावजूद इस दिशा में कुछ-न-कुछ कार्य अवश्य किया जा रहा है।

अवशिष्ट स्टॉक

अनबिकी पुस्तकों की समस्या काफी परेशानी पैदा करनेवाली और बराबर बनी रहनेवाली समस्या है। इसका सामना न केवल प्रकाशकों को वरन् फुटकर बिक्री करने वाले पुस्तक-विक्रेताओं को भी करना पड़ता है। पश्चिमी देशों के प्रकाशक व्यावसायिक पत्रों आदि के माध्यम से अपने ग्राहकों को यह सूचित करते हैं कि किस पुस्तक का नया या संशोधित संस्करण निकलने जा रहा है। दक्षिण एशिया के देशों में भी यही पद्धति व्यापक रूप से अपनाई जानी चाहिए। इससे पुस्तक-विक्रेता स्वयं अपना स्टॉक शीघ्र ही खपाने की व्यवस्था कर सकता है और आवश्यक हो तो वह पुस्तकों की घटी हुई कीमतों पर बिक्री करने की व्यवस्था भी कर सकता है। पश्चिमी देशों में यह रिवाज है कि यदि अनबिके पुराने संस्करण की प्रतियाँ एक निश्चित समय तक लौटा दी जाएँ तो प्रकाशक उन्हें वापस ले लेते हैं। दक्षिण एशिया के देशों के प्रकाशकों द्वारा भी पुस्तक-विक्रेताओं को इस प्रकार की सहूलियत देने की पद्धति अपनानी चाहिए।

व्यापारी ग्राहक

पुस्तक-विक्रेता को यह नहीं भूलना चाहिए कि उसकी तरह के अन्य पुस्तक-विक्रेता भी उसके ग्राहक हैं। उसे यह स्मरण रखना चाहिए कि सभी पुस्तक-विक्रेता एक ही व्यावसायिक बिरादरी में शामिल हैं और पुस्तकों की बिक्री के समान हितों से परस्पर बँधे हुए हैं, इसलिए इन सभी को सेवा की समान भावना से प्रेरित होना चाहिए। समाज को बेहतर सेवा उपलब्ध कराने की दिशा में प्रतियोगिता की भावना के बावजूद पुस्तक-विक्रेताओं में आपसी सहयोग की भावना का होना भी जरूरी होता है। कोई भी अकेला पुस्तक-विक्रेता अपने क्षेत्र के लिए अपेक्षित सभी प्रकार की पुस्तकें रखने या माँग को पूरी कर सकने की स्थिति में नहीं होता है, क्योंकि इस व्यवसाय में किसी विशिष्ट प्रकार की पुस्तकों की ओर ध्यान उसे केन्द्रित करने की जरूरत महसूस नहीं होती। इसलिए अकसर ऐसा होता है कि पुस्तक-विक्रेता को ऑर्डर की सप्लाई के लिए कुछ ऐसी पुस्तकों की आवश्यकता होती है जो उसके स्टॉक में नहीं है, परन्तु उसके पड़ोसी पुस्तक-विक्रेता के पास उपलब्ध हैं। ऐसी स्थिति में दूसरे पुस्तक-विक्रेता का यह नैतिक कर्तव्य हो जाता है कि माँग होने पर वह पहले पुस्तक-विक्रेता को उपलब्ध पुस्तकें दे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि ग्राहक को पुस्तक बेचने का लाभ पहले पुस्तक-विक्रेता को प्राप्त होगा, किन्तु दूसरे पुस्तक-विक्रेता को यह सन्तोष होना चाहिए कि उसने अपने व्यवसाय के एक सदस्य की सहायता की और बिक्री को हाथ से नहीं निकल जाने दिया, जैसा कि ऐसी स्थिति में प्राय: होता है। ऐसी स्थिति में दूसरे पुस्तक-विक्रेता द्वारा पहले को दी जानेवाली कमीशन की राशि दोनों पुस्तक-विक्रेताओं के बीच आपस में सन्तोषजनक रूप से तय कर लेनी चाहिए। इसके अलावा, पुस्तक-विक्रेता को कभी-कभी अतिरिक्त स्टॉक और कम बिकनेवाली पुस्तकों की सूचियों की अपने क्षेत्र, शहर अथवा समीपवर्ती शहरों के पुस्तक-विक्रेताओं से अदला-बदली करनी चाहिए। आपसी करार के आधार पर स्टॉक की भी इस प्रकार अदला-बदली की जा सकती है, जिससे दोनों पुस्तक-विक्रेताओं को लाभ हो। मुमकिन है कि पहली नजर में यह तरीका कुछ अजीब-सा और गैर-व्यावसायिक किस्म का लगे, किन्तु इस क्षेत्र में सहयोग की काफी गुंजाइश है, क्योंकि किसी दुकान या किसी शहर में न बिकनेवाली पुस्तकों की दूसरी दुकान अथवा दूसरे शहर में बिक्री होने की सम्भावना रहती है। पुस्तकों का स्टॉक जमा करने में सभी पुस्तक-विक्रेताओं से बराबर भूलें हुआ करती हैं और इस समस्या के समाधान के लिए पुस्तक-व्यवसाय में स्टॉक अदला-बदली का यह तरीका निश्चित ही कारगर साबित हो सकता है।

बाजार-सम्बन्धी अनुसन्धान

बाजार-सम्बन्धी अनुसन्धान के द्वारा उत्पादक और विक्रेता यह पता लगाने का प्रयास करते हैं कि सम्भावित ग्राहक कौन हैं, वे कहाँ-कहाँ हैं और कौन-सी वस्तुएँ

किस मात्रा में खरीदते हैं, उनमें पुस्तक बिक्री को किस प्रकार प्रोत्साहित किया जा सकता है और उनके लिए किस प्रकार पुस्तक बिक्री सुविधापूर्ण बनायी जा सकती है। जैसे अन्य सभी प्रकार के व्यवसायों के लिए बाजार-सम्बन्धी अनुसन्धान जरूरी होता है, उसी प्रकार पुस्तक-व्यवसाय के लिए भी यह अनुसन्धान आवश्यक है। बल्कि कहना यह चाहिए कि पुस्तक-व्यवसाय के लिए ऐसा अनुसन्धान और भी अधिक आवश्यक होता है, क्योंकि पुस्तकों की दैनिक अथवा निरन्तर आवश्यकता नहीं होती है। यदा-कदा की गई विशेष जाँच-पड़ताल निश्चय ही विशिष्ट बाजार-अनुसन्धान की कोटि में आती है, किन्तु वास्तव में बाजारसम्बन्धी अनुसन्धान, अध्ययन और विश्लेषण एक क्रमिक प्रक्रिया है। पुस्तकों के सम्बन्ध में बाजार-अनुसन्धान का अर्थ है पाठकों की आवश्यकताओं, अभिरुचियों और पसन्दगी का मूल्यांकन और विज्ञापन-विधियों तथा वितरण-साधनों के बदलते हुए स्वरूपों का अध्ययन। पुस्तक-व्यवसाय के क्षेत्र में बाजार-अनुसन्धान प्राथमिक और माध्यमिक दो साधनों पर निर्भर रहता है। प्राथमिक साधन में वह सूचना शामिल है जो पुस्तक की दुकान के अपने रिकार्ड्स, आँकड़ों और दैनिक कार्यविधि से प्राप्त होती है। इस क्षेत्र से सम्बद्ध सेल्समैन, व्यापारी आदि और कभी-कभी दूसरे व्यवसायों से सम्बद्ध लोग भी प्राथमिक सूचना उपलब्ध कराते हैं। माध्यमिक साधन उन अनुसन्धान-रिपोर्ट पर आधारित हैं जिनकी व्यवस्था सरकारी विभागों, चेम्बर ऑफ कॉमर्स, शिक्षा-संस्थाओं, पुस्तकालय-संघों, अन्य व्यावसायिक संस्थाओं, शैक्षणिक तथा व्यापारिक पत्रिकाओं द्वारा की गई है। इन साधनों से प्राप्त सामग्री के आधार पर महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त हो सकती है और पुस्तक-व्यवसाय के सन्दर्भ में उसकी व्याख्या द्वारा लाभ उठाया जा सकता है।

दक्षिण एशिया के देशों में पुस्तकों और पुस्तक-व्यवसाय से सम्बद्ध बाजार-अनुसन्धान का कार्य व्यापक और व्यवस्थित रूप नहीं ले पाया है। विशेष रूप से भारत जैसे विस्तृत देश में यह अनुसन्धान-कार्य अत्यन्त कठिन और व्ययसाध्य है, क्योंकि इस देश में सांस्कृतिक समानता के बावजूद अनेक भाषागत भेद हैं। फिर भी इन देशों में विभिन्न प्रकार की पुस्तकों की खपत के लिए सम्भावित बाजार, पाठकों की रुचियों और रुझानों पर कई प्रकार के सर्वेक्षण किये गए हैं। प्राय: ऐसे अनुसन्धान विशेष सर्वेक्षण के रूप में मुख्य रूप से उसे देश की सरकारों अथवा व्यावसायिक संघों के सहयोग से यूनेस्को द्वारा किये गए हैं। इन रिपोर्टों के द्वारा पर्याप्त उपयोगी सूचना और आँकड़े उपलब्ध हुए हैं। किन्तु औसत स्तर के पुस्तक-विक्रेता को सबसे महत्वपूर्ण सामग्री उसके निजी अनुभव से प्राप्त होती है। बुद्धिमान पुस्तक-विक्रेता को अपने ग्राहकों की अभिरुचियों व पूर्वग्रहों का पर्यवेक्षण करके उन पर गौर से विचार करना चाहिए और इस प्रकार कुछ वर्षों के बाद उसमें यह सूझ-बूझ और निर्णयक्षमता विकसित हो जाएगी कि कौन-सी पुस्तकें उसके क्षेत्र में बिक सकती हैं और कौन-सी नहीं बिक सकती हैं। विभिन्न प्रकार की पुस्तकों की बिक्री के सम्बन्ध में उसके अपने पिछले वर्षों के रिकार्ड्स से लगभग

ठीक-ठीक अनुमान लगाया जा सकता है कि उस प्रकार की कितनी पुस्तकों की माँग की सम्भावना होगी।

पुस्तकों की बिक्री के लिए अपेक्षित व्यावसायिक कुशलता

पुस्तकों बिक्री के लिए अपेक्षित व्यावसायिक कुशलता से तात्पर्य है ऐसी व्यावसायिक नीति जिसके द्वारा बाजार-व्यवस्था पर आनेवाली कम-से-कम लागत पर किसी माल की पर्याप्त बिक्री की जा सके। पुस्तक-व्यवसाय के सन्दर्भ में व्यावसायिक कौशल का अर्थ है कम-से-कम बाजार-व्यवस्था सम्बन्धी खर्च पर अधिक-से-अधिक पुस्तकों की बिक्री करना अथवा इस व्यवसायिक कुशलता के द्वारा पुस्तक-विक्रेताओं के गोदामों और शेल्फों में भरी पुस्तकों को शीघ्रता से ग्राहकों तक पहुँचाना—वह ग्राहक चाहे कोई पाठक हो अथवा कोई अन्य संस्था, जैसे—स्कूल, कॉलेज और पुस्तकालय।

इसे थोड़ा और स्पष्ट करने की जरूरत है। किसी पुस्तक को साहित्यिक पुरस्कार प्राप्त हो सकता है, परन्तु उसके खरीददार नहीं मिलते; पुस्तक के विज्ञापन जिन पत्र-पत्रिकाओं में छपते हैं, उनकी ग्राहक-संख्या भी अच्छी-खासी होती है, फिर भी पाठक उस पुस्तक को खरीद नहीं रहे हैं। प्रेस में प्रकाशित समीक्षाएँ भले अनुकूल और सराहनापूर्ण हो, फिर भी उसे खरीदने की कोई परवाह नहीं करता; बिक्री से सम्बद्ध प्रतिनिधियों की दौड़-धूप के बावजूद बिक्री नहीं हो रही है; छपाई और साजसज्जा का स्तर ऊँचा हो सकता है, फिर भी ग्राहक नहीं मिल रहे हैं, वितरण की व्यवस्था यथेष्ट है पर प्रभावपूर्ण नहीं है—इसका अर्थ है कि इस सारे नियोजन में किसी चीज की कमी है और वह है व्यावसायिक कौशल की कमी।

व्यावसायिक कौशल से अर्थ है बिक्री की ऐसी व्यवस्था लागू करना जिसके माध्यम से ठीक प्रकार की पुस्तक, ठीक जगह पर, सही संख्या में, उचित मूल्य पर, उपयुक्त समय पर प्राप्त की जा सके। यह व्यावसायिक कौशल सेल्समैनशिप तथा मार्केटिंग से थोड़ा भिन्न है। मार्केटिंग का सम्बन्ध पुस्तकों की बिक्री की समस्त प्रक्रिया से होता है। मर्चेन्डाइजिंग तो बाजार-व्यवस्था का उप-कार्य है, जिसका सम्बन्ध विशेष रूप से केवल उस व्यावसायिक प्रणाली से है जिसके द्वारा पुस्तक अधिक-से-अधिक संख्या में कम-से-कम खर्च पर बाजार में बराबर खपती रहे। वास्तव में 'उपयुक्त' शब्द मर्चेन्डाइजिंग का मूल-मंत्र है, जैसे उपयुक्त पुस्तक, उपयुक्त स्थान इत्यादि भी इसका मतलब होता है। पुस्तक-विक्रेता के अपने मूल्यांकन में जिस अंश तक यह उपयुक्तता विद्यमान है, उसी के अनुपात में उसके व्यावसायिक कौशल का औचित्य निर्भर करेगा।

यह व्यावसायिक कुशलता अथवा इसके उपयोग की सम्भावनाएँ महज सेल्समैन तक ही सीमित नहीं हैं। बाजार-व्यवस्था से सम्बद्ध प्रत्येक कर्मचारी का बिक्री में योगदान होता है। बड़ी पुस्तकों की फर्म में मैनेजर, सेल्स-मैनेजर, सेल्स-प्रमोशन अफ़सर, विज्ञापन-मैनेजर, मार्केट-रिसर्च अफ़सर, सेल्स-असिस्टेन्ट और बिक्री के लिए बाहर दौड़-धूप करनेवाले सभी कर्मचारियों का योगदान रहता है। छोटी और औसत पुस्तक की

दुकानों में ये सारे कार्य एक या कुछ व्यक्तियों को करने पड़ते हैं और उन्हें परिस्थितियों तथा कारोबार की आवश्यकताओं के अनुसार अपने कार्यों का मूल्यांकन और निर्धारण करना पड़ता है।

पुस्तक-विक्रेता की समस्याएँ अनेक होती हैं, क्योंकि प्रत्येक प्रकार की पुस्तक का अपना पृथक् स्थान होता है और सभी को अलग-अलग तरीके से बिक्री के दृष्टिकोण से देखने-समझने की अपेक्षा होती है। चूँकि इस प्रकार की पुस्तकों की संख्या काफी ज्यादा होती है, इसलिए औसत दुकान में यह सारा कार्य समुचित रूप से नहीं हो पाता है। अन्त में इसका परिणाम यह होता है कि विक्रेताओं द्वारा पुस्तकों की खरीद अनियमित और अविवेकपूर्ण हो जाती है; पुस्तक-विक्रेता को अपने ग्राहकों की अभिरुचियों का ठीक पता नहीं होता, इसलिए उसके विज्ञापन प्रभावहीन हो जाते हैं और बिक्री भी पर्याप्त नहीं हो पाती है। यह जान लेना समीचीन ही होगा कि मर्चेन्डाइजिंग और बाजार-व्यवस्था के अन्य उप-कार्यों, जैसे बाजार की स्थिति का अनुसन्धान, बिक्री की वृद्धि, विज्ञापन-प्रचार और बिक्री में क्या सम्बन्ध है आदि।

बाजार-अनुसन्धान के द्वारा यह ज्ञात होता है कि बाजार में पुस्तकों की खपत की क्या स्थिति है, उचित मूल्य-श्रेणी का निर्धारण कैसे किया जाय, कितनी प्रतियों की आवश्यकता होगी और वर्ष में किस समय उन्हें बेचा जा सकेगा। उदाहरण के लिए यदि पुस्तक की दुकान ऐसे क्षेत्र में है जहाँ कला, संगीत और नृत्य में अभिरुचि रखनेवाली ऐसी सांस्कृतिक संस्थाएँ हैं जो वर्ष के किसी समय काफ़ी बड़े पैमाने पर वार्षिक समारोहों का आयोजन करती हैं, तो पुस्तक-विक्रेता का ध्यान निम्न बातों की ओर अवश्य होना चाहिए:

१. वर्ष के किस समय वार्षिक समारोह का आयोजन होगा?

२. समारोह में किस प्रकार के कार्यक्रम आयोजित होंगे?

३. इस प्रकार के कार्यक्रमों पर कितनी धनराशि व्यय होने का अनुमान है?

४. किस प्रकार की पुस्तकों में ऐसी संस्थाओं तथा उनके संरक्षकों की अभिरुचि है अथवा पैदा की जा सकती है?

५. वे किस मूल्य-श्रेणी की पुस्तकें खरीद सकेंगे?

इन प्रश्नों का सही जवाब पाने के उद्देश्य से पुस्तक-विक्रेता को किसी-न-किसी प्रकार का बाजार का अनुसन्धान तो करते ही रहना चाहिए। व्यावसायिक कुशलता इस जानकारी और तथ्यों को प्राप्त कर, यथेष्ट संख्या, उचित समय और समुचित मूल्य पर वह ठीक जगह पर उपयुक्त लोगों को पुस्तकों की बिक्री के लिए स्टॉक (उपर्युक्त स्थिति में संगीत, नृत्य और कला-सम्बन्धी पुस्तकें) जमा करने में संलग्न होता है।

बिक्री-वृद्धि-सम्बन्धी प्रयासों से ग्राहकों तथा ऐसी बिक्री-संस्थाओं को पुस्तकों की खरीद में प्रोत्साहन मिलता है, जो इन पुस्तकों की पुन: बिक्री करने के लिए व्यवस्था करेंगी। इन प्रयासों से अन्य पुस्तक-विक्रेताओं को बिक्री बढ़ाने के लिए आवश्यक साधन

और सहायता भी उपलब्ध होती है। उदाहरण के लिए यदि संगीत-सम्बन्धी पुस्तकों की खपत करनी है, तो संगीत-समारोह के अवसर पर एक विशेष संगीत सहायक की नियुक्ति लाभप्रद हो सकती है। समारोह के आयोजकों के सहयोग से उत्सव-कक्ष के निकट ही विशेष स्टाल या पुस्तकों के प्रदर्शन के स्टैण्ड लगाने की व्यवस्था की जा सकती है अथवा इस व्यवस्था के लिए आवश्यक साधन जुटाए जा सकते हैं या अपेक्षित सहायता उपलब्ध कराई जा सकती है।

विज्ञापन ग्राहकों को वास्तविक बिक्री के लिए प्रभावित करते हैं। ऊपर का ही उदाहरण लीजिए। समारोह के मुख्य द्वार और हॉल के चारों तरफ प्रवेश-द्वारों के पास पुस्तकों के सम्बन्ध में हाथ से लिखे हुए पोस्टर लगाए जा सकते हैं और बिक्री के लिए उपलब्ध सम्बद्ध पुस्तकों के सम्बन्ध में साफ़-सुथरी छपी हुई पर्चियाँ वहाँ आनेवाले व्यक्तियों के बीच मुफ्त बाँटी जा सकती हैं। यदि समारोह के अवसर पर प्रकाशित 'स्मारिका' में कोई छोटा-सा विज्ञापन दे दिया जाए तो उससे निश्चित ही संगीत-प्रेमियों का ध्यान उधर आकर्षित होगा और वह उन्हें पुस्तकें खरीदने की दिशा में प्रेरित करेगा। बिक्री ऊपर दिये गए उन सभी प्रभावों का योग है जिनसे प्रेरित होकर ग्राहक पुस्तक की वास्तविक खरीद करता है। प्राय: यह कहा जाता है कि बाजार-अनुसन्धान मर्चेण्डाइजिंग का दृष्टिकोण है। बिक्री-वृद्धि मर्चेन्डाइजिंग की पद्धति है, विज्ञापन मर्चेन्डाइजिंग का मुद्रित रूप है और बिक्री मर्चेन्डाइजिंग का क्रियात्मक रूप है।

पुस्तक-विक्रेता के लिए मर्चेन्डाइजिंग का उपयोग इसी बात में है कि वह बिक्री के लिए बुद्धिमत्तापूर्वक पुस्तकों का स्टॉक जमा करे और उन्हें व्यावसायिक कुशलता के साथ बेचे। खरीदी जानेवाली पुस्तकें दो प्रकार की हो सकती हैं—

(१) ऐसी पुस्तकें जिनकी आवश्यकता है और

(२) ऐसी पुस्तकें जिनकी उपेक्षा हो सकती है। पाठ्य-पुस्तकों, सन्दर्भ-ग्रन्थों और विशिष्ट पेशों से सम्बद्ध पुस्तकों की वास्तविक आवश्यकता होती है, जबकि अन्य दूसरे प्रकार की पुस्तकों की खरीद की नितान्त आवश्यकता नहीं होती, बल्कि उन्हें लोग जानकारी या महज पढ़ने के आनन्द के लिए खरीदते हैं। दूसरी कोटि की पुस्तकों की माँग का जिक्र दूसरे प्रकार से भी किया जा सकता है। सामान्य-ज्ञान या मन-बहलाव के लिए पठनीय सामग्री की आवश्यकता रहती है। जब उपयुक्त पठनीय सामग्री उपलब्ध करा दी जाती है, तो लोग उसे पढ़ना चाहते हैं और इस प्रकार पुस्तक खरीदने की आवश्यकता उन्हें उत्पन्न होती है। छात्रों तथा शिक्षा-संस्थाओं द्वारा पाठ्य-पुस्तकों की खरीद विशेष सीजन में होती है और खरीदी जानेवाली पुस्तकों की संख्या बहुत अधिक होती है। सामान्य जनता तथा व्यक्तिगत ग्राहकों द्वारा पुस्तकों की खरीददारी किसी विशेष सीजन से बँधी न रहकर वर्ष-भर चलती रहती है। इस सम्बन्ध में कोई निश्चितता नहीं होती कि इन पुस्तकों की खरीददारी वर्ष में कितनी बार होगी, यद्यपि कभी-कभी किन्हीं

विशेष अवसरों पर इनकी खरीद की संख्या काफी अधिक हो जाती है। इसलिए पुस्तक-विक्रेता को माँग में वृद्धि को ध्यान में रखकर स्टॉक के लिए पुस्तकें खरीदनी चाहिए।

मर्चेन्डाइजिंग का सबसे महत्वपूर्ण पहलू है—काफ़ी पहले से खरीद की योजना बना लेना। पुस्तक-विक्रेता को अग्रिम योजना बनानी चाहिए, किन्तु नियोजन ऐसा न हो कि उसमें परिवर्तन की कोई गुंजाइश न हो। छोटे या बड़े सभी पुस्तक-विक्रेताओं के लिए मासिक आधार पर नियोजन करने की सलाह दी जाती है, क्योंकि यह तरीका सबसे अधिक सुविधापूर्ण है। प्रत्येक महीने में धार्मिक त्योहार या अन्य राष्ट्रीय पर्वों के विशेष अवसर आते ही रहते हैं। पुस्तक-विक्रेता को चाहिए कि वह इन पर्वों के अवसरो पर आवश्यक पुस्तकों का स्टॉक रखने और उनकी बिक्री करने के लिए व्यवस्था करे। इसी प्रकार समय-समय पर आनेवाले अन्य सामाजिक या सांस्कृतिक अवसरों का भी सदुपयोग करना चाहिए। नये वर्ष, फ़सल की कटाई, शादी-विवाह, धार्मिक अथवा सामूहिक उत्सव आदि अवसरों पर लोग निजी उपयोग या उपहार देने के लिए पुस्तकें खरीदते हैं। इसी प्रकार स्वतन्त्रता-दिवस, गणतन्त्र-दिवस और ऐसे ही राष्ट्रीय महोत्सवों के अवसर पर उपयुक्त पुस्तकें का प्रचार किया जा सकता है। ऐसे अवसरों पर दुकानों में राष्ट्रीय ध्वज और राष्ट्रीय नेताओं के चित्र भी विशेष रूप से प्रदर्शित किये जा सकते हैं। विभिन्न खेलों के सीजन में भी सम्बद्ध पुस्तकों की बिक्री के लिए पर्याप्त प्रचार किया जा सकता है। इसी प्रकार जिस मौसम में बच्चे पतंग उड़ाते और लट्टू नचाते हैं, उस समय बच्चों को किताबों की बिक्री से प्रोत्साहित किया जा सकता है और बिक्री पर विशेष छूट भी उन्हें दी जा सकती है। महत्वपूर्ण विख्यात व्यक्तियों की यात्राओं के अवसर का उनके जीवन और कृतित्व से सम्बन्धित पुस्तकों की बिक्री बढ़ाने के लिए उपयोग किया जा सकता है।

प्रत्येक माह के लिए नियोजन लगभग ३ मास पूर्व हो जाना चाहिए, ताकि नियोजन का वास्तविक रूप से कार्यान्वयन हो सके। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, नियोजन इस प्रकार का होना चाहिए कि उसमें बदलती हुई परिस्थितियों के अनुरूप आवश्यक परिवर्तन किये जा सकें। नियोजन-सम्बन्धी सूझ-बूझ का प्रभाव न केवल बिक्री की वृद्धि पर पड़ेगा; वरन् उसके द्वारा ग्राहकों के मन पर दुकान के स्वरूप की भी गहरी छाप पड़ेगी।

जब स्थानीय सिनेमाघरों में किसी प्रसिद्ध पुस्तक पर आधारित फ़िल्म दिखाई जा रही हो, या किसी सुविख्यात नाटक-मंडली द्वारा कोई महान् नाटक को अभिनीत किया जा रहा हो, या कोई विदेशी थियेटर-मंडली शेक्सपियर के नाटक अथवा विदेश के किसी आधुनिक नाटकों का प्रदर्शन कर रही हो, तो उत्साही पुस्तक-विक्रेता को चाहिए कि वह अपनी दुकान में उक्त पुस्तकों के प्रदर्शन और समुचित प्रचार की विशेष व्यवस्था करे। यदि सम्भव हो तो उसे सम्बद्ध पुस्तक की प्रतियाँ और तत्सम्बन्धी अन्य साहित्य प्रदर्शन-स्थल पर भी लगाने

की व्यवस्था करे। इस प्रकार के प्रदर्शन का विशेष अवसरों से सम्बद्ध होना भी आवश्यक नहीं है। उदाहरण के लिए ये सीज़नल भी हो सकते हैं, किन्तु उन्हें प्रभावोत्पादक बनाने के लिए समुचित प्रोत्साहन की आवश्यकता होती है।

विज्ञापन और बिक्री-प्रोत्साहन से सम्बद्ध इन प्रयासों से ग्राहक दुकान की ओर आकर्षित हो सकता है। किन्तु पुस्तक की ओर आकर्षित करना तो चातुर्यपूर्ण मर्चेन्डाइजिंग का ही काम है। लोग पुस्तक की दुकान में इसलिए प्रवेश करते हैं कि उनकी पुस्तकों में दिलचस्पी होती है, यह दिलचस्पी चाहे सामान्य रूप से पैदा हो, चाहे विशेष प्रोत्साहन के कारण हो। मर्चेन्डाइजिंग ऐसी व्यावसायिक कुशलता है जो ग्राहक की इस दिलचस्पी को बराबर बनाए रखे, चाहे वह पुस्तक खरीदे या न खरीदे। इसलिए दुकान के भीतर पुस्तकों का आकर्षक प्रदर्शन मर्चेन्डाइजिंग सिस्टम का सबसे महत्वपूर्ण पहलू है। पुस्तकों को बहुत साफ़-सुथरी हालत में रखना जरूरी होता है, क्योंकि मैली पुस्तक को कोई भी खरीदना नहीं चाहता है। पुस्तकें वर्गीकृत करके शेल्फ़ में इस प्रकार बुद्धिमत्तापूर्वक सजाकर रखनी चाहिए कि ग्राहक अपनी आवश्यकता की पुस्तक शीघ्र ही खोज सके और अविलम्ब पसन्द की पुस्तक का चुनाव कर ले। उपर्युक्त दिशा में किये गये मर्चेन्डाइजिंग सिस्टम के प्रयासों के फलस्वरूप व्यावसायिक प्रगति अवश्यम्भावी है।

❀

पुस्तकों की दुकानों में हिसाब-किताब की व्यवस्था

प्रत्येक प्रकार के व्यवसाय में सभी महत्वपूर्ण सौदों को, नियमित रूप से और तारीखवार दर्ज करना न केवल सामान्य तरीके से व्यवसाय संचालन के लिए अनिवार्य होता है, वरन् इससे व्यवसाय के सिलसिले में समय-समय पर विविध विषयों पर सही निर्णय लेने में भी सहायता मिलती है। जब कभी आवश्यकता हो तो सही-सही आँकड़े उपलब्ध रहते हैं और यह तभी सम्भव है जबकि हिसाब-किताब की कुशल और नियमित व्यवस्था लागू हो। समुचित हिसाब-किताब की इस पद्धति में सभी सौदों को नियमित रूप से दर्ज किया जाता है और विविध प्रकार के लेन-देन का लेखा-जोखा निश्चित समय के भीतर उनके प्रभावों के अनुसार विश्लेषित करना होता है।

किसी दूसरे कारोबार की भाँति ही पुस्तक-व्यवसाय में भी ठीक-ठीक हिसाब-किताब, सही स्टॉक की गणना और अन्य प्रासंगिक आँकड़ों को रखने की आवश्यकता होती है। पुस्तक की दुकान में व्यवसाय का विस्तार दूसरे व्यवसायों से कम है, महज इसलिए पुस्तक-विक्रेता को हिसाब-किताब में कम सावधानी बरतने की छूट नहीं मिल जानी चाहिए। जिन प्रमुख प्रमाणों के अन्तर्गत हिसाब-किताब रखा जाना चाहिए, वे इस प्रकार हैं:

१. विक्री का बीजक

२. बिक्री का हिसाब

३. खरीद का हिसाब

४. नकदी रकम का लेखा

५. स्टॉक हिसाब-किताब

६. व्यय का रिकार्ड

यद्यपि ऊपर प्रयुक्त शब्द थोड़े-बहुत पारिभाषिक लग सकते हैं, किन्तु छोटी-से-छोटी दुकान की भी कार्यविधि में हिसाब-किताब की इन पद्धतियों का बहुत उपयोग होता है। किसी भी पुस्तक-विक्रेता को हिसाब-किताब के इन पहलुओं की उपेक्षा महज इसलिए नहीं करनी चाहिए कि कारोबार में खरीद-फरोख्त अधिक नहीं है। वास्तव में यदि बिक्री कम हो तो इसे जानने के लिए और भी अधिक ठीक-ठाक हिसाब-किताब रखने की आवश्यकता होती है कि कारोबार की हालत क्या है और उसे कैसे सुधारा जा सकता है।

बिक्री का बीजक

बिक्री के बीजक से ग्राहक को यह पता चलता है कि उसने क्या खरीदा है और दूसरे इससे दुकानदार के पास यह रिकार्ड रहता है कि उसने क्या बेचा है। यह रिकार्ड विभिन्न प्रकार से रखा जा सकता है जैसे कैश-बिल, वी० पी० द्वारा बिल, बैंक के माध्यम से प्राप्त सी० ओ० डी० बिल और उधार के बिल। कैश-बिल दुकान में ही उस बिक्री के बाद बनाए जाते हैं जब ग्राहक खरीदी गई सामग्री के लिए नकद कीमत अदा करता है। वी० पी० बीजक और बैंक के माध्यम से प्राप्त सी० ओ० डी० बिल का उस सप्लाई से सम्बन्ध होता है जो शहर के बाहर के ग्राहकों को वी० पी० या बैंक के द्वारा प्राप्त होते हैं। उधार के बिल से सम्बन्धित होते हैं स्थानीय अथवा बाहर के ग्राहक जिन्हें उधार माल दिया जाते है। उधार के बिल दो प्रकार के हो सकते हैं: (१) ऐसे बिल जिनका भुगतान आमतौर से एक महीने के भीतर कर दिया जाता है। (२) ऐसे बिल जिनका भुगतान बैंकों द्वारा ३० दिन, ६० दिन बाद या इससे भी अधिक समय बाद किया जाता है। चाहे जिस प्रकार का बीजक या बिल इस्तेमाल किया जाए उसमें सप्लाई किये हुए माल की तादाद, कीमत, कमीशन और जहाँ आवश्यक हो पैकिंग-व्यय, भाड़ा, उसका कुल योग और सप्लाई की शर्तों आदि का स्पष्ट रूप से उल्लेख होना चाहिए। बीजक हाथ से लिखे जा सकते हैं या टाइप कराये जा सकते हैं। यदि कारोबार लम्बा हो तो बिल में पता लिखने या टाइप करने के बजाय श्रम और समय दोनों के बचाव लिए कम्प्यूटर का व्यवहार किया जा सकता है। लेकिन यह तभी सम्भव है जब काफी अधिक संख्या में ग्राहकों के नियमित रूप से ऑर्डर प्राप्त होते हों। बीजकों और विशेष रूप से कैशमेमो में उपयुक्त संकेत-चिह्न इस्तेमाल करके समय की बचत की जा सकती है, जिससे ग्राहकों को अधिक समय तक इन्तजार न करना पड़े।

बिक्री का हिसाब

उधार की बिक्री के हिसाब का सबसे महत्वपूर्ण रिकार्ड बिक्री-लेजर होता है। यह दुकान की आवश्यकता के अनुसार जिल्दबन्द या अलग-अलग सफों वाले 'बाइण्डर' या 'कार्डेक्स' जैसी अन्य किसी विधि से तैयार किये जा सकते हैं। बिक्री का ठीक-ठीक हिसाब रखने से यह सहायता मिलती है कि: (१) बीजक में दर्ज सामग्री का हिसाब सही ग्राहक के नाम़ दर्ज किया गया है या नहीं; (२) बिके हुए माल क़ी रकम जिससे वसूल की जा सके और (३) उधार रखनेवाले ग्राहकों तथा बिक्री के सम्बन्ध में ठीक आँकड़े इससे प्रांप्त हो सकें।

बिक्री के लेजर में पोस्टिंग करने का अर्थ है सम्बद्ध बीजक अथवा बिक्री-जरनल से बीजक का योग ग्राहकों के लेजर एकाउन्ट में दर्ज किया जाना। बड़ी-बड़ी फर्मों में मशीन, एकाउन्टिंग अथवा मैनीफोल्डिग पद्धति का उपयोग किया जा सकता है, जिससे लेजर में पोस्टिंग करने के साथ-साथ स्टेटमेन्ट भी तैयार होता है। जैसे ही एक महीने की पोस्टिंग पूरी हो जाए, वैसे ही स्टेटमेन्ट भेज देना चाहिए। बिल के भुगतान के लिए स्मरण-पत्र भेजने के लिए स्टैन्डर्ड फार्म बनाया जा सकता है लेकिन भारत जैसे देशों में

जहाँ सस्ते दर पर अन्तर्देशीय पत्र भेजने की व्यवस्था है, वहाँ एकाउन्ट-स्टेटमेन्ट के स्टैन्डर्ड फार्म और स्मरण-पत्र आदि इन्हीं अन्तर्देशीय पत्रों पर भेजे जा सकते हैं। इस प्रकार पोस्टेज और लिफाफों की लागत पर बचत होगी। इस कार्य के लिए कार्डेक्स विधि का भी उपयोग किया जा सकता है। सिग्नल कन्ट्रौल जैसी विधि से और भी अधिक सहायता मिलेगी, क्योंकि इसके द्वारा एक नजर में यह पता चल जाएगा कि कौन-सा हिसाब एक, दो, तीन या छः महीने से अदायगी के लिए बाकी पड़ा हुआ है। इस प्रकार तत्काल उसी समय आवश्यक कार्यवाही की जा सकती है। इस पद्धति से यह भी सम्भव होगा कि बकायादारों को दुकानदार की लगाई हुई पूँजी का बेजा फायदा न मिलता रहे।

बिक्री के हिसाब का मुख्य रिकार्ड लेजर है, यद्यपि मुख्य पोस्टिंग दैनिक बही में की जाती है। यह सलाह दी जाती है कि पुस्तकों और स्टेशनरियों के हिसाब का अलग-अलग मद रखें और इसी प्रकार कैश, वी० पी०, सी० ओ० डी० और उधार की बिक्री को भी अलग-अलग दर्ज किया जाए।

विभिन्न प्रकार की बिक्री का लेखा-जोखा करने के लिए अलग रजिस्टर रखना भी उपयोगी साबित होगा।

उधार की रकम की वसूली

उधार की रकम की वसूली का तरीका इस प्रकार का होना चाहिए जिससे बिना विलम्ब के नियमित रूप से अदायगी हो सके। उधार के ग्राहकों को बिल-भुगतान के सम्बन्ध में स्मरण-पत्र भेजने में विलम्ब नहीं करना चाहिए, क्योंकि यह बात सभी लोग जानते हैं कि जितना ही पुराना बिल होगा, उसको वसूल करना उतना ही अधिक मुश्किल होगा। उधार के खातों की संख्या बढ़ाने में कोई लाभ नहीं है। बकाया हिसाब की वसूली की दिशा में पहला काम तो यही करना चाहिए कि हर खाते के सम्बन्ध में प्रत्येक महीने का हिसाब बनवाना चाहिए। आमतौर से यह स्टेटमेन्ट हर महीने बिना किसी पत्राचार के भेजते रहना चाहिए। लेकिन लम्बी रकम के बकायों के स्टेटमेन्ट के साथ-साथ छपा हुआ कार्ड भी भेजा जाना चाहिए जिसमें अदायगी की ओर शीघ्र ध्यान देने का विनम्र अनुरोध हो। प्रायः ऐसा करने से ग्राहक पर तुरन्त असर होता है।

जब हिसाब बहुत लम्बे अर्से से बकाया में पड़ा हो तो उसके लिए विशेष पत्र भेजने पड़ेंगे। किन्तु इस प्रकार के पत्र एक प्रकार से बिक्री के ही पत्र हैं क्योंकि इनमें बकाये की रकम चुकाने के निवेदन के साथ-साथ व्यवसाय में अच्छे सम्बन्ध बनाए रखने पर जोर देना चाहिए। इन पत्रों की विनम्र भाषा की ओर विशेष ध्यान होना चाहिए। बेशक, आमतौर से विनम्र रूप में लिखे गए स्टैन्डर्ड फार्म उपयोग में लाए जा सकते हैं जिससे समय और व्यय में बचत होगी। कुछ ग्राहकों से पुराने बकायों की अदायगी के लिए व्यक्तिगत रूप से पत्र लिखा जाना चाहिए और उसमें उपयुक्त भाषा का प्रयोग होना चाहिए। कभी-कभी पत्रों का असर ग्राहक पर नहीं होता। ऐसी स्थिति में तार भेजना जरूरी हो जाता है। बकाये की अदायगी के लिए ग्राहकों को टेलीफोन पर भी स्मरण कराते रहना चाहिए। कुछ भी हो पुस्तक-विक्रेता को इस दिशा में सावधान रहना चाहिए कि बकाये रकम की वसूली, निर्दिष्ट समय से पहले ही हो जाय।

खरीद का हिसाब-किताब

खरीद का हिसाब-किताब रखने के लिए जो मुख्य फार्म उपयोग में लाये जाते हैं उनमें खरीद के ऑर्डर, माल-प्राप्ति के कागजात, सप्लायर्स के बीजक, स्टेटमेन्ट और बिक्री के जरनल आदि सम्मिलित हैं। खरीद के जरनल और लेजर के लिए सुविधाजनक स्टैन्डर्ड फार्म का उपयोग किया जा सकता है।

कैश-नियन्त्रण

पुस्तक की दुकान के आकार के अनुरूप उसमें कई स्थानों पर कैश का लेन-देन करना होता है। जैसे कैश-डेस्क पर कैशियर, काउण्टर पर फुटकर बिक्री से सम्बन्धित सेल्समैन और बाहर से आनेवाली डाक प्राप्त करनेवाले कर्मचारी का कैश से वास्ता रहता है। भिन्न-भिन्न दुकानों में व्यवसाय की स्थिति को देखकर ही यह निश्चित किया जा सकता है कि हिसाब-किताब रखने के लिए कौन से फार्म व्यवहृत हों, कौन-सी प्रणाली अपनायी जाय और सुरक्षा के लिए क्या कार्यवाही की जाय। कैश और रकम की प्राप्ति व भुगतान को दर्ज करने की जिम्मेदारी कैशियर की होती है। कैश को हिफाजत से रखने का दायित्व भी कैशियर का ही होता है। कहीं-कहीं कैश को सुरक्षित रूप से रखने का कार्य मैनेजर का होता है। छोटी-छोटी दुकानों में यह काम दुकान का मालिक खुद करता है। सभी भुगतानों के लिए रसीद दी जानी चाहिए और जहाँ जरूरी हो वहाँ रसीदी टिकट लगाना चाहिए।

सबसे महत्त्वपूर्ण रिकार्ड कैशबुक होता है। कारोबार के विस्तार के अनुसार कैश-बुक में भिन्न-भिन्न पोस्टिंग की जा सकती है। कैशबुक की रोकड़-बाकी प्रतिदिन निकालनी चाहिए और उसकी कैश से मिलाकर जाँच करनी चाहिए।

रोज प्राप्त होनेवाले बिलों के भुगतान की रकम कैश, मनीऑर्डर, पोस्टल ऑर्डर, चेक, ड्राफ्ट आदि बैंक में दूसरे दिन या छुट्टी होने पर उसको अगले दिन जमा कर देना चाहिए। आवश्यकता पड़ने पर रोजमर्रा के खर्च के लिए बैंक से धन निकलवा लेना चाहिए। दुकान द्वारा आमतौर से दूसरे सभी भुगतान चेक के द्वारा करना चाहिए। छोटी-छोटी दुकानों में इस प्रणाली पर अमल करना मुमकिन नहीं होता। खर्चे, बिक्री से प्राप्त होनेवाली रकम से किये जाते हैं और जब शेष रकम एक निश्चित तादाद तक पहुँच जाती है तो उसे बैंक में जमा कर दिया जाता है। चेक आदि यथासम्भव शीघ्र ही बैंक में जमा कर दिए जाते हैं। कुछ भुगतान अवश्य चेक के द्वारा किये जाते हैं। यदि पुस्तक की दुकान बड़ी है तो थोड़ा-बहुत कैश रखना सुविधापूर्ण होता है। कैश की यह रकम वास्तविक आवश्यकताओं तक ही सीमित होनी चाहिए और इसे अधिक-से-अधिक औसत साप्ताहिक व्यय का डेढ़ गुना तक होना चाहिए। पेटी कैश बुक में विविध कार्यों के लिए होनेवाले दैनिक भुगतानों का विवरण दर्ज होना चाहिए।

कैशबुक के आधार पर ही लेजर की पोस्टिंग की जाती है। निश्चित समय के बाद बैंक की पास-बुक और कैश बुक के बैलेन्स का मिलान करना चाहिए, जिससे यह पता

लगता रहे कि दोनों में कोई अन्तर तो नहीं है। रसीद बुक, चेक बुक आदि कैश के सभी फॉर्म मैनेजर या दुकान के मालिक को अपने संरक्षण में रखना चाहिए।

स्टॉक का हिसाब-किताब

प्रत्येक प्रकार के छोटे-बड़े व्यवसाय में स्टॉक को समुचित रूप से दर्ज करने की समस्या होती है। पुस्तक-व्यवसाय में यह काम और भी मुश्किल हो जाता है, क्योंकि यहाँ प्रत्येक प्रकार की पुस्तक को अलग आइटम के रूप में दर्ज करना होता है। स्टॉक के रिकार्ड और नियंत्रण करने के व्यवस्थित तरीके पर पुस्तक की दुकान की सफलता और समृद्धि निर्भर करती है। स्टॉक की स्थिति के सम्बन्ध में तुरन्त आसानी से जानकारी न मिलने से पुस्तक-विक्रेता को अपने कारोबार की हालत का कोई अन्दाज नहीं मिलता है। इसलिए स्टॉक में पुस्तकों की प्राप्ति और उनकी बिक्री का अविलम्ब हिसाब-किताब दर्ज करना बहुत ही जरूरी होता है और उसकी अहमियत उतनी ही अधिक होती है जितनी कि पुस्तकों की कीड़ों आदि से हिफ़ाज़त करने की।

स्टॉक-रिकार्ड मोटे-मोटे विषयों के अन्तर्गत रखा जा सकता है और उसके बाद लेखकों के नाम के अनुसार पुस्तकों को अकारादि क्रम से लगाया जा सकता है। यदि पुस्तकों की संख्या अधिक हो तो इसी प्रकार की व्यवस्था प्रकाशकों के अनुसार भी की जा सकती है। पुस्तकों की स्टॉक में प्राप्ति और उनकी बिक्री को दर्ज करने का पुराना तरीका यह है कि मोटी-मोटी सजिल्द बहियों के पन्ने उलट-उलटकर विभिन्न जगहों और विभिन्न पृष्ठों पर पोस्टिंग की जाती है। यह तरीका काफी दिनों तक बखूबी चलता रहा क्योंकि तब बाजार में न तो पुस्तकों की ही संख्या अधिक थी और न बिक्री ही इतनी ज्यादा थी। आजकल पुस्तकों की संख्या बेशुमार हो गई है, भले उसी अनुपात में बिक्री न बढ़ी हो, इसलिये पोस्टिंग का पुराना तरीका अब उपयुक्त नहीं है। आजकल स्टॉक रिकार्ड रखने का सबसे अच्छा और सुविधापूर्ण तरीका है, कार्ड अनुक्रमणिका के द्वारा यह कार्य करना। खुले सफे के लेजर अथवा कार्ड-इन्डेक्स को प्रदर्शित करने के लिये कैबिनेट में सुविधापूर्ण आकार के कार्ड रखे जा सकते हैं। बेशक बड़े-बड़े पुस्तक-विक्रेताओं के लिए कार्ड-इन्डेक्स कैबिनेट रखना अधिक उपयोगी होगा। छोटे पुस्तक-विक्रेताओं के लिए खुले सफे में रखने की पद्धति उपयोगी होगी, बशर्ते कि वे प्रत्येक महत्वपूर्ण विषय अथवा सम्बद्ध विषय-समूहों के लिए अलग-अलग जिल्दवाले रजिस्टर का इस्तेमाल करें। ये कार्ड-इन्डेक्स दिखाई पड़नेवाली कन्ट्रोल विधियों के माध्यम से भी रखे जा सकते हैं। समय बीतने के साथ स्वाभाविक रूप से बहुत-सी पुस्तकों का महत्त्व घट जाता है और यही नहीं, वे विषय-सामग्री की दृष्टि से भी पुरानी पड़ जाती हैं। दूसरे शब्दों में पुस्तकों का अवमूल्यन दर तुरन्त खराब होनेवाली वस्तुओं को छोड़कर अन्य सभी प्रकार की वस्तुओं की तुलना में अधिक होता है। इसलिए बिक्री में अधिक समय नहीं लगना चाहिए और आवश्यक हो तो वहाँ क़ीमतों में संशोधन करके भी यह प्रयत्न करना चाहिए कि अविलम्ब उक्त पुरानी पुस्तक की बिक्री सम्भव हो। बिक्री में वृद्धि और लगी हुई पूँजी से अधिकाधिक लाभ उठाने के लिए

यह आवश्यक हो जाता है कि स्टॉक का सही-सही रिकार्ड रखा जाय, जिससे स्टॉक की जाँच करने में सुविधा हो और आवश्यकतानुसार और अधिक स्टॉक मँगाना सम्भव हो।

प्रकाशक का कमीशन दर और पुस्तक के प्राप्त होने का वर्ष पुस्तक के पीछे फ्लैप के भीतरी भाग अथवा पिछले कवर के भीतरी भाग के उल्टे तरफ लिख दिया जाना चाहिए। यह संख्या 'कोड' में लिखी जानी चाहिए। इस वर्णमाला के पहले दस अक्षर-शून्य से ९ तक संख्याओं का द्योतन करने के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है और इस प्रकार उसपर कमीशन की दर लिखी जा सकती है। पुस्तक की प्राप्ति का वर्ष और सम्भव हो तो महीने का भी उल्लेख करने से पुस्तक-विक्रेता को स्टॉक की जाँच करने और उसका मूल्यांकन करने में सहायता मिलेगी। उदाहरण के लिए ९।९६ से सितम्बर, १९९६ का द्योतन हो सकता है।

निश्चित अवधि पर स्टॉक की जाँच पुस्तक-विक्रेता का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य है जिसे सारी परेशानी के बावजूद किया ही जाना चाहिए। ६ महीने में एक बार स्टॉक की पुस्तकों की गिनती करके जाँच की जानी चाहिए। ऐसा न करने से दुकान में अव्यवस्था रहेगी और बहुत से निर्णय महज अनुमान के आधार पर लेने पड़ेंगे। नियमित रूप से स्टॉक की जाँच करने से पुस्तक-विक्रेता को अपना स्टॉक पुनर्व्यवस्थित करने, भूली हुई पुस्तकों को स्टॉक में दुबारा प्राप्त करने, अधिक जमा हो गई पुस्तकों का लेखा-जोखा करने और न बिकनेवाली पुस्तकों की जानकारी प्राप्त करने में सहायता मिलती है। स्टॉक का मूल्यांकन बड़े ही विवेकपूर्ण तरीके से होना चाहिए। स्टॉक के समुचित मूल्यांकन के द्वारा ही उपलब्ध स्टॉक के महत्व के सम्बन्ध में कोई निश्चित राय कायम की जा सकती है। स्टॉक की पूरी-पूरी जानकारी न होने से पुस्तक-विक्रेता अपनी वित्तीय स्थिति का सही-सही मूल्यांकन नहीं कर सकता है।

स्टॉक की जाँच और उसका मूल्यांकन

स्टॉक की जाँच बहुत ही श्रमसाध्य कार्य है और इसका मूल्यांकन अत्यन्त जटिल प्रक्रिया है। किन्तु ये दोनों कार्य इतने महत्वपूर्ण हैं कि न तो इनकी उपेक्षा की जा सकती है और न इन्हें टाला जा सकता है। पुस्तक-विक्रेता को यह ज्ञात होना चाहिए कि: (१) स्टॉक में कौन-कौन-सी पुस्तकें हैं, (२) उनकी कितनी लागत है, (३) उनकी खरीद कब की गई थी और (४) उनकी चालू माँग कितनी है।

स्टॉक का मूल्यांकन करने में पुस्तक-विक्रेता को चालू बिक्री के लिए शेल्फ, शो-केस और स्टॉक-कक्ष में रखी पुस्तकों के बीच भेद करना चाहिए। पहले प्रकार की पुस्तकों पर बराबर नजर रखनी चाहिए और कम बिकनेवाली पुस्तकों को संशोधित कीमतों पर बेचने की व्यवस्था करनी चाहिए। किन्तु स्टॉक में रखी हुई पुस्तकों का महत्व तेजी से कम होता रहता है। एक वर्ष बीतने के बाद स्टॉक में रखी पुस्तकों का वास्तविक मूल्य छपी कीमतों का ६० प्रतिशत समझना चाहिए। दूसरे और तीसरे वर्ष उनके मूल्य में प्रति वर्ष ५ प्रतिशत की और अधिक कमी आँकी जानी चाहिए, बशर्ते कि पुस्तकों की बिक्री होती रहे, चाहे उनकी अधिक संख्या में खपत न हो। किन्तु बहुत कम बिकनेवाली

पुस्तकों का दूसरे वर्ष के बाद वास्तविक मूल्यांकन ५० प्रतिशत और तीसरे वर्ष के बाद केवल २५ प्रतिशत या ३० प्रतिशत आँकना चाहिए।

जो पुस्तक-विक्रेता ऐसे स्टॉक का मूल्यांकन लागत की कीमत पर करता है, वह जरूरत से ज्यादा उम्मीद करता है क्योंकि पुस्तकें चाहे बिकें या न बिकें, उनके रख-रखाव पर खर्च होता ही रहेगा और लगी हुई पूँजी पर ब्याज भी लगेगा।

दुकान की सामग्री, फर्नीचर, फिटिंग, स्टेशनरी आदि का व्यवसायों में लागू होनेवाले हिसाब-किताब के सिद्धान्तों के अनुसार मूल्यांकन किया जाना चाहिए। सामान्य तौर पर फिटिंग और फर्नीचर पर ५ प्रतिशत और स्टेशनरी पर १० प्रतिशत प्रतिवर्ष अवमूल्यन किया जाना चाहिए।

व्यय का हिसाब-किताब

दैनिक विक्री का रिकार्ड रखना जितना जरूरी है, उतना ही जरूरी व्यय का दैनिक रिकार्ड रखना। व्यय की मदों में नकद खरीदी गई पुस्तकें, उधार के खरीद के बिलों का भुगतान, किराया, वेतन, पोस्टेज, यात्रा, भाड़ा और विविध प्रकार के खर्चे आते हैं। डाक-व्यय वेतन रजिस्टर आदि हिसाब-किताब के अन्य रजिस्टर भी बनाए जाने चाहिए।

हिसाब के विभिन्न खातों से जमा-खर्च की पोस्टिंग सामान्य लेजर में की जानी चाहिए और तीन महीने के बाद जाँच के लिए रोकड़बाकी निकालकर यह देखना चाहिए कि पोस्टिंग सही-सही हुई है या उसमें जोड़ने-घटाने आदि की कोई गलती तो शेष नहीं है।

सभी प्रकार के हिसाब-किताब का सही-सही रेकार्ड रखने का यह प्रयोजन होता है कि वर्ष के अन्त में लाभ-हानि का पता चल सके और पुस्तक-विक्रेता को किसी भी समय यह जानने में सहायता मिल सके कि उसके लेन-देन की क्या स्थिति है। इसी आधार पर आयकर का भी हिसाब लगाया जाता है। इस उद्देश्य से पुस्तक-विक्रेता को हर वित्तीय वर्ष के अन्त में अपने हिसाब-किताब का परीक्षण करवाना चाहिए और उसके बाद (अ) व्यापारिक लेखा, (ब) लाभ-हानि का लेखा, (स) बैलेन्स-शीट आदि तैयार करानी चाहिए।

प्रत्येक वर्ष के अन्त में मिलनेवाले लाभ में से पर्याप्त धन-राशि अलग संचित कर लेनी चाहिए, जिससे अप्रत्याशित रूप में आनेवाले व्यावसायिक एवं अन्य कठिनाइयों, दायित्व का सामना किया जा सके। इसके अलावा पुस्तक-विक्रेता को इस बात की ओर भी ध्यान देना चाहिए कि उनके द्वारा कारोबार में लगाई गई पूँजी से न केवल उचित ब्याज मिलता रहे, बल्कि उसे अपनी मेहनत और समय लगाने के बदले समुचित लाभ भी प्राप्त हो।

पुस्तकों के स्टॉक की देखभाल और उनका संरक्षण

सिर्फ छोटी-छोटी दुकानों को छोड़कर अधिकांश पुस्तक की दुकानों में शेल्फ, रैक, स्टैण्ड और मेजों पर प्रदर्शित स्टॉक, कुल स्टॉक का केवल एक भाग होता है। अतिरिक्त स्टॉक अलमारियों के निचले खाने में रैक एवं शेल्फ के ऊपर भी रखा जाता है।

प्रदर्शन-कक्ष तथा बिक्री-कक्ष में पुस्तकें विभिन्न प्रकार के लकड़ी या स्टील के शेल्फ, रैक या शो-केस में रखी जा सकती हैं। यदि शेल्फ आदि लकड़ी के हों तो इन्हें ऐसी मजबूत लकड़ी का बना हुआ होना चाहिए, जिसमें कीड़े लगने का खतरा न हो। पुस्तकों को रखने की चाहे जो भी व्यवस्था हो, प्रदर्शित पुस्तकें दिखाई पड़नी चाहिए और ग्राहकों की उन तक पहुँच होनी चाहिए। यदि स्टील के रैक इस्तेमाल किये जाते हैं तो हरेक शेल्फ पर कागज रखकर पुस्तकें रखनी चाहिए, क्योंकि स्टील के सम्पर्क में आकर पुस्तकों पर धब्बे पड़ जाने की सम्भावना रहती है। चाहे स्टील या लकड़ी के रैक इस्तेमाल किये जाएँ दोनों में प्रत्येक शेल्फ के किनारों पर नयी पुस्तकों को रखने के लिए जगह छोड़ देनी चाहिए, अन्यथा सेल्स-सहायक एवं ग्राहक द्वारा पुस्तकें निकाले जाने और उन्हें दुबारा रखने से पुस्तकों को क्षति पहुँचने तथा उनके ठीक जगह से हट जाने की सम्भावना रहती है। प्रत्येक शेल्फ और रैक की धूल प्रतिदिन झाड़ना चाहिए, किन्तु यह सावधानी बरतनी चाहिए कि धूल उड़कर अन्य रैकों पर न गिरने पाए। बन्द दरवाजों और खिड़कियों के बावजूद धूल अन्दर आ जाती है, इसलिए शेल्फ की बराबर सफाई होती रहनी चाहिए और पुस्तकों पर जमी धूल झाड़ते रहना चाहिए। ऐसा करते समय पुस्तकों को लापरवाही से नहीं उठाना चाहिए, नहीं तो उनके कवर पर दाग पड़ जायेंगे। धूल-जमी पुस्तकों को साफ करने के लिए आपस में पटकना नहीं चाहिए, बल्कि एक-एक पुस्तक की धीरे से सफाई करनी चाहिए। कागज के कवरवाली पुस्तकों का ही महज धूल झाड़ना काफी होगा, लेकिन कपड़ों के कवरवाली पुस्तकों को कभी-कभी सूखे कपड़े से पोंछना भी जरूरी होता है। अगर मुमकिन हो तो फर्श, शेल्फ और पुस्तकों को कभी-कभी सूखे कपड़े से पोंछना भी जरूरी होता है। अगर मुमकिन हो तो फर्श, शेल्फ और पुस्तकों पर जमी धूल झाड़ने के लिए 'वैकुअम-क्लीनर' का इस्तेमाल किया जा सकता है। किन्तु 'वैकुअम-क्लीनर' का इस्तेमाल नियमित सफाई और झाड़-पोंछ के अलावा होना चाहिए। यदि दुकान के किसी भाग पर धूप आती हो तो उस पर उपयुक्त 'शेड' आदि की व्यवस्था की जानी चाहिए और पास रखी हुई पुस्तकों को सीधे तौर पर

सूरज की रोशनी पड़ने से बचाना चाहिए, नहीं तो पुस्तकें धूमिल पड़ जायेंगी और ज्यादा गर्मी की वजह से कपड़े के कवर भी सिकुड़ सकते हैं। इसी प्रकार खिड़कियों या अन्य खुले स्थानों से आनेवाले बरसाती पानी से भी पुस्तकों को खराब होने से बचाना चाहिए। बाहर की खिड़कियों पर उपयुक्त शेड लगाने की व्यवस्था की जानी चाहिए।

स्टॉक-कक्ष में, अतिरिक्त स्टॉक अर्थात् दुकान के अगले भाग में प्रदर्शित पुस्तकों की अतिरिक्त प्रतियाँ रखी जाती हैं। वहाँ पुस्तकों को रखने के लिए रैक आवश्यकतानुसार ऊँचा होना चाहिए, चाहे यह लकड़ी का हो या स्टील का। बेहतर होगा यदि रैक स्टील के बने हों। जहाँ तक सम्भव हो, बँधे हुए बण्डलों के रूप में पुस्तकों को स्टोर में न रखा जाय। यदि बँधे हुए बण्डलों को रखना ही पड़े तो हरेक बण्डल पर बँधी हुई पुस्तकों का शीर्षक और प्रतियों की संख्या का लेबिल जरूर होना चाहिए। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस प्रकार पुस्तकों को रखने से उन पर धूल नहीं पड़ती, किन्तु बँधी हुई होने के कारण पुस्तक-विक्रेता उन पुस्तकों के स्टॉक में मौजूद होने की बात अकसर भूल जाते हैं। ऐसी स्थिति में प्राय: पुस्तक-विक्रेता ऐसी पुस्तकों के भी ऑर्डर वापस कर देते हैं, जिनकी पर्याप्त प्रतियाँ उनके स्टॉक में मौजूद रहती हैं।

स्टॉक-कक्ष में रैकों की सफाई और पुस्तकों से धूल की झाड़-पोंछ उतनी ही जरूरी होती है जितनी दुकान में रखी पुस्तकों की सफाई। विभिन्न कक्षों में रखे शेल्फों पर उपयुक्त लेबिल अवश्य लगे होने चाहिए और स्टॉक या तो प्रकाशकों के नामों के अनुसार अथवा विषयानुसार रखा जाना चाहिए। स्टॉक-कक्ष में पर्याप्त हवा और प्रकाश जाने की व्यवस्था होनी चाहिए, किन्तु उसे अधिक गर्मी और धूल से बचाना चाहिए। फर्श अच्छा और कड़ा होना चाहिए और यह सावधानी रखनी चाहिए कि दीवारों तथा फर्श पर नमी न रहे। अनेक दृश्य-अदृश्य कारणों से पुस्तकों के खराब होने की सम्भावना रहती है। दुकान के पास के दूषित वातावरण से भी पुस्तकें खराब हो सकती हैं। बड़े-बड़े औद्योगिक शहरों में विषैली गैसों से वातावरण को दूषित होने से रोका नहीं जा सकता। इसलिए दूषित वातावरण से बचने का एकमात्र उपाय यही है कि जहाँ तक सम्भव हो इस वातावरण के प्रभाव से बचा जाए। इसके अलावा स्थान-विशेष की सामान्य जलवायु का भी असर पड़ता है। अगर जलवायु बहुत सूखा है तो कागज और चमड़ा चिटक जाता है। अगर जलवायु में बहुत अधिक नमी है तो इससे किताबों में सीलन आ जाती है। सीलन की वजह से जिल्द ढीली पड़ जाती है और कागज, कपड़े तथा चमड़े के रेशे कमजोर हो जाते हैं। अत्यधिक नमी का सामना करने के लिए कृत्रिम रूप से गर्मी पैदा करनेवाले साधनों का इस्तेमाल किया जा सकता है। इसका सबसे आसान तरीका यह है कि स्टोर में बराबर बिजली का बल्ब जलने दिया जाय, जिसकी वजह से कुछ हद तक नमी में कमी हो सकती है। अत्यधिक सीलन के मौसम में कपड़े के जिल्दवाली पुस्तकों को कम-से-कम दिन में एक बार अवश्य पोंछना चाहिए। चमड़े की जिल्द को मुलायम कपड़े से हमेशा पोंछना चाहिए। जहाँ तक सम्भव हो ऐसी पुस्तकें सूरज की रोशनी पड़नेवाले स्थान पर खुली रखी जायँ। नमी की वजह से लगनेवाली फफूँदी को दूर करने के लिए उपयुक्त रसायनों का इस्तेमाल किया जा सकता है।

किताबों को सबसे अधिक क्षति दीमकों झींगुरों उन जैसे अन्य कीड़ों की वजह से होती है जो वास्तव में पुस्तकों के घोर शत्रु होते हैं। ये कीड़े पुस्तकों को क्षति पहुँचाने में बड़े चालाक होते हैं। कुछ तो कागज का नुकसान ज्यादा नहीं करते, यद्यपि वे कागज को भी नुकसान पहुँचा सकते हैं। वे ज्यादातर जिल्द जोड़नेवाले 'पेस्ट', सरेस तथा जिल्द के कपड़े पर अधिक वार करते हैं। दीमकों की फौजें रात-भर में हजारों किताबों को नुकसान पहुँचा सकती हैं। कुछ ऐसे सफेद कीट (Silver Fish) होते हैं, जो जिल्द के सरेस और आर्ट-पेपर जैसे कई प्रकार के कागजों की सतह को बड़े चाव से चाट जाते हैं। झींगुर जिल्द बाँधनेवाली लेई को खा जाते हैं और कपड़े की जिल्दों पर अपना दाग छोड़ देते हैं। चूहे भी पुस्तकों के पक्के दुश्मन हैं और जब कभी उन्हें गोदाम में प्रवेश करने का मौका मिलता है तो वे बड़ी बेरहमी से पुस्तकों को कुतर डालते हैं। स्टॉक को सभी प्रकार से सुरक्षित रखने के लिए रसायनों और कीटनाशक दवाइयों का उपयोग किया जाना चाहिए। फर्श, शेल्फ और पुस्तकों पर छिड़कने के लिए विभिन्न रासायनिक पदार्थों को विभिन्न मात्रा और अनुपात में मिलाकर इस्तेमाल किया जाना चाहिए। पुस्तकों के स्टॉक के संरक्षण के लिए दक्षिण भारत के एक केमिस्ट द्वारा बताई गई नीचे दी जा रही विधियाँ काफी विश्वसनीय और सस्ती हैं।

औसत साइज की पुस्तकों की दुकान के लिए:

१. दीमकों से रक्षा के लिए

(अ) Para Dichloro Benzene Powder—इसे किताबों पर न छिड़ककर उसके आसपास छिड़कना चाहिए। (प्रति सप्ताह ४ औंस छिड़के जाने पर तीन रुपये का व्यय होगा और इस प्रकार वार्षिक लागत १५० रुपये से १६० रुपये तक आयेगी।

(ब) Copper Nepthanate—यह विषैला पदार्थ है जो लकड़ी के शेल्फ तथा पुस्तकों को रखनेवाली आलमारियों आदि पर छिड़का जाना चाहिए। एक भाग रसायन पदार्थ और दस भाग मिट्टी के तेल में मिलाकर इस्तेमाल करना उचित होगा। (इसकी लागत ३० रुपये से भी कम आती है और इसका असर पाँच वर्षों तक रहता है।)

२. सफेद कीट (Silver Fish) से रक्षा के लिए

डी० डी० टी० (D.D.T.)—इसे मिट्टी के तेल में १ और २० के अनुपात में घोलकर छिड़कना चाहिए। (यह डेढ़ का एक औंस मिलेगा और यदि एक औंस प्रति सप्ताह छिड़का जाए तो इसकी लागत २५ रुपये प्रति वर्ष आयेगी।

३. झींगुरों से रक्षा के लिए

Chlorodane Liquid—इसे मिट्टी के तेल के साथ १ और २० के अनुपात में मिलाकर पुस्तकों के निकट (पुस्तकों के ऊपर नहीं) छिड़कने से इसके विषकारी प्रभाव के कारण झींगुर पास नहीं आते हैं। (यह प्रतिमाह १।४ से १।२ पौंड तक इस्तेमाल किया

जाना चाहिए। १८ रुपये प्रति पौंड के हिसाब से इस पर ७५ रुपये के लगभग वार्षिक खर्च पड़ेगा।)

४. चूहों से रक्षा के लिए

(अ) Napthalene Powder—लगभग १।२ पौंड पाउडर प्रतिसप्ताह पुस्तकों आदि पर छिड़का जाना चाहिए (प्रति पौंड तीन रुपये के हिसाब से इस पर ७५ रुपये के लगभग वार्षिक खर्च आएगा।)

(ब) Creosote Oil—मिट्टी के तेल में १:१० के अनुपात में मिलाकर फर्श पर इसे छिड़कना चाहिए।

५. फफूँद तथा मकड़ी आदि से रक्षा के लिए

Shirlan Powder—इसके लिये इसका पेस्ट इस्तेमाल किया जा सकता है। (यह रंगहीन और विषरहित होता है।) इसे कार्बन टेट्राक्लोराइड या एसीटिक में १:१००० के अनुपात में मिलाकर सीधे किताबों के कवर पर प्रति सप्ताह या प्रति पखवाड़े एक बार लगाया जाना चाहिए। (शिर्लन की कीमत प्रति पौंड २४ रुपये और कार्बन टेट्राक्लोराइड प्रति पौंड डेढ़ रुपया के हिसाब से मिलता है। इसको इस्तेमाल करने की वार्षिक लागत १२० रुपये से अधिक नहीं पड़ेगी।)

उष्ण जलवायु वाले देशों के लिए उक्त विधियाँ काफी हद तक उपयोगी साबित होंगी। इनको लगाने की विधि मुश्किल नहीं है। एक साथ इतनी मात्रा में रासायनिक पदार्थ खरीदने चाहिए कि वे ६ महीने या सालभर तक ही इस्तेमाल किए जा सकें। इन्हें नियमित रूप से एकसाथ इस्तेमाल करने पर प्रत्येक रासायनिक पदार्थ के उपयोग के लिए उचित समय ध्यान जरूर रखना चाहिए और यह कार्य आवश्यक रूप से दुकान के संचालन के कार्यक्रम का एक अंग बन जाना चाहिए। स्टॉक के उचित संरक्षण की महत्ता पर जोर देने की जरूरत नहीं है। प्रति वर्ष क्षतिग्रस्त और दुकान में रखे-रखे धब्बे पड़ जानेवाली पुस्तकों के कारण विक्रेताओं को काफी नुकसान उठाना पड़ता है। इसलिए पुस्तकों के स्टॉक को ठीक हालत में रखने के लिए उक्त संरक्षणात्मक विधियों की जहमत उठाना और इसपर खर्च बरदाश्त करना ही चाहिए।

हिन्दी प्रकाशन और पुस्तकालय

आज जब भारत में राष्ट्रभाषा हिन्दी के सम्वर्द्धन और प्रचार-प्रसार की दिशा में एक आन्दोलन उठ खड़ा हुआ है, ऐसे समय में हिन्दी प्रकाशनों और पुस्तकालयों के पारस्परिक और समन्वयात्मक सम्बन्धो पर दृष्टिपात करना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी है। क्या कारण है कि राष्ट्रभाषा हिन्दी के विकास के लिये नीतिगत सिद्धान्तों और व्यावहारिक उपलब्धियों के बीच की खाई बढ़ती ही जा रही है?

देश के कतिपय प्रमुख पुस्तकालयों का सर्वेक्षण करने पर विदित हुआ है कि उनमें ८० प्रतिशत पुस्तकें अँग्रेजी की हैं और मुश्किल से २० प्रतिशत हिन्दी तथा भारतीय भाषाओं की पुस्तकों को स्थान दिया गया है। पुस्तकालयों में अँग्रेजी की ऐसी पुस्तकें भरी पड़ी हैं जिन्हें अधिकांश पाठक शायद ही कभी पढ़ते हों। इसके विपरीत इन्हीं पुस्तकालयों के सर्वेक्षणों से पता चला है कि हिन्दी पुस्तकों के लिए पाठकों की बराबर माँग बनी रहती है।

हिन्दी का स्वर्णयुग : राष्ट्रीय आन्दोलन

पुस्तकालय अधिकारियों से जब प्रश्न किया जाता है कि अँग्रेजी की इतनी पुस्तकें क्यों ली गईं तो उत्तर मिलता है कि ये सन्दर्भ ग्रन्थ हैं। समझ में नहीं आता कि अँग्रेजी की पुस्तकों को पुस्तकालयों में भरने का यह अनावश्यक क्रम कब तक चलता रहेगा?

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पहले तक हिन्दीभाषी राज्यों के पुस्तकालयों में यह स्थिति थी कि उनमें ८० प्रतिशत हिन्दी और भारतीय भाषाओं की ही पुस्तकें रखी जाती थीं। उन पुस्तकालयों में भारतीय भाषाओं और मुख्यतः हिन्दी के पाठकों की संख्या ही लगभग शत प्रतिशत रहती थी, जो आज भी है। उस समय पुस्तकालयों में अँग्रेजी की कोई पुस्तक भूले-भटके खरीद भी ली जाती थी तो वह सिर्फ 'गजेटियर' होता था या 'हिन्दी-अँग्रेजी डिक्शनरी'। राष्ट्रीय आन्दोलन का युग हिन्दी प्रचार का स्वर्णिम युग था—यह निर्विवाद है। शायद ही देश का कोई ऐसा पुस्तकालय रहा हो, जहाँ गांधीजी के असहयोग आन्दोलन पर हिन्दी में मुद्रित पुस्तकें न रखी गयी हों।

उस समय अँग्रेजी की ऐसी गूँज नहीं थी जैसी आज है। इसे अँग्रेजी का 'क्रेज' कहा जाय तो अनुचित नहीं होगा। देश में मुश्किल से २ प्रतिशत लोग अँग्रेजी पढ़ते हैं और इन दो प्रतिशत लोगों के लिए ८० प्रतिशत पुस्तकों से पुस्तकालयों को भरना कहाँ तक उचित है, यह विचारणीय प्रश्न है। लाइब्रेरी ऐक्ट में ऐसा प्राविधान होना चाहिए कि हिन्दी तथा भारतीय भाषाओं के अलावा अन्य पुस्तकों का स्थान सिर्फ २० प्रतिशत हो।

यदि ऐसा न किया गया तथा नेशनल लाइब्रेरी के पुस्तक प्रकाशन आँकड़ों की ओर हमारा ध्यान न गया तो अपने ही देश में भारतीय भाषाओं की क्या गति होगी, हम कह नहीं सकते।

स्वतन्त्र भारत के नवजागरण काल में ग्रामीण अंचलों की जनता में शिक्षा के व्यापक प्रचार हेतु विभिन्न स्तरों पर पुस्तकालय खुले, ग्रामीणों की पठन-रुचि भी इस दिशा में उन्मुख हुई। लेकिन, राजनीतिक चौधराहट के धूमाकाश में पुस्तकालयों की यत्र-तत्र मंद ज्योति विलीन होती गयी और जन-चेतना की दिशा में सरकारी स्तर पर किया गया महत् प्रयास भी मरुस्थल में बरसात की तरह व्यर्थ होकर रह गया।

प्रकाशन पुस्तकालयों तक नहीं पहुँचे

यों देश में आज भी हिन्दी पुस्तकालयों का अभाव नहीं है और न स्तरीय एवं उपयोगी हिन्दी प्रकाशनों की कमी है। गत ५० वर्षों की सुदीर्घ अवधि में हिन्दी में जो विपुल साहित्य प्रकाशित हुआ उसे हिन्दीभाषी जनता के ज्ञानवर्द्धन की दृष्टि से अतुल कहा जा सकता है। यदि आज तक छपनेवाला हिन्दी का समग्र साहित्य पुस्तकालयों में पाठकों को उपलब्ध हो पाता और उनकी स्तरीय और उपयोगी सामग्री पाठकों तक पहुँच पाती, तो आज हिन्दी के पाठक चार गुना अधिक होते।

कलकत्ता में भी हिन्दी ग्रन्थागार के रूप में बड़े-बड़े पुस्तकालय हैं। यथा—कुमार सभा पुस्तकालय, बड़ा बाजार लाइब्रेरी, ब्रह्मसेवक हिन्दी पुस्तकालय, हनुमान पुस्तकालय घुसुड़ी, माहेश्वरी पुस्तकालय, लाजपत हिन्दी पुस्तकालय और इन सब में सर्वोपरि 'नेशनल लाइब्रेरी' एक राष्ट्रीय महत्व का ग्रन्थागार है। 'नेशनल लाइब्रेरी' में इस समय २० लाख से अधिक पुस्तकें हैं और पुस्तकालय में ७०० व्यक्ति कार्य करते हैं। लेकिन राष्ट्रीय स्तर के इस पुस्तकालय की स्थिति यह है कि हिन्दी के सर्वजनीन ग्रन्थ पूर्ण रूप से इसमें उपलब्ध नहीं हैं। इस बात के लिए हम शासन को दोष नहीं दे सकते अपितु पुस्तकालय के व्यवस्थापकों की अदूरदर्शिता कहेंगे। आश्चर्य तो तब होता है जब हम देखते हैं कि हिन्दी संस्थान लखनऊ, सरस्वती सम्मान, साहित्य अकादमी तथा भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा पुरस्कृत पुस्तकें भी हिन्दी के पुस्तकालयों में स्थान नहीं पातीं।

पुस्तकालय आन्दोलन हिन्दी तथा भारतीय भाषाओं के क्षेत्र में इसलिए भी नहीं पनप पाता कि यू० जी० सी० से जो अनुदान प्राप्त होता है उस अनुदान का बहुतांश अँग्रेजी प्रकाशनों की खरीद में चला जाता है। जब तक पुस्तकालय ऐक्ट में हिन्दी तथा भारतीय भाषाओं की पुस्तकें अनिवार्य रूप से खरीदने का प्राविधान नहीं होगा, तब तक इस स्थिति में सुधार की अपेक्षा नहीं की जा सकती।

सूची सेवा का अभाव

पूरे उत्तर भारत में पुस्तकों के अभाव में गाँवों से शहरों की ओर नवयुवकों का आना जारी है। यदि गावों में अच्छे पुस्तकालय स्थापित हो जायँ, उद्योग धन्धे लग जायँ तो अपराधवृत्ति भी समाप्त हो सकती है और गाँव स्वर्ग बन सकते हैं। अँग्रेजी के

कतिपय हिमायती यह तर्क देते हैं कि हिन्दी और संस्कृत की अब वह उपयोगिता नहीं रही जो अँग्रेजी की है। अभी संस्कृत के एक विद्वान् ने इसके उत्तर स्वरूप अपने वक्तव्य में कहा है कि जीने से मरने तक हर पग पर हमारे सांस्कृतिक जीवन का अंग संस्कृत रही है और हिन्दी उसकी अनुगामिनी। यदि आज कर्मकाण्ड की पुस्तकें न होतीं तो किस प्रकार हम अपनी सांस्कृतिक धरोहर सुरक्षित रख पाते?

ऐसी बात नहीं है कि हिन्दी प्रकाशनों की गति अवरुद्ध हो गयी है। लेकिन, नेशनल लाइब्रेरी से प्राप्त भारतीय भाषाओं के प्रकाशनों के आँकड़े इसी को प्रतिपादित करते हैं कि अँग्रेजी की पुस्तकें इस देश में अधिक छप रही हैं जबकि वस्तुस्थिति इसके ठीक विपरीत है। हिन्दी में अन्यान्य पुस्तकें बहुत अधिक छप रही हैं। परन्तु दुख है कि लाइब्रेरी ऐक्ट के अनुसार हिन्दी के प्रकाशक नेशनल लाइब्रेरी में पुस्तकें नहीं भेजते। फलत: ऐसे प्रकाशनों की सरकारी आँकड़ों में कोई गिनती नहीं होती। हिन्दी के प्रकाशकों को इस दिशा में गम्भीरतापूर्वक विचार करना होगा।

हमारे पुस्तकालयों में हिन्दी पुस्तकों के अभाव का एक कारण प्रकाशकों की सूचीसेवा का अभाव भी है। बहुत से ऐसे अच्छे प्रकाशन होते रहते हैं जो कि पुस्तकालयों की दृष्टि में ही नहीं पड़ते। साथ ही स्थानीय पुस्तक-विक्रेता भी उन्हें जानकारी न होने के कारण नहीं मँगा पाते। फलत: हिन्दी की बहुत-सी उपयोगी और स्तरीय पुस्तकें पुस्तकालयों में उपलब्ध नहीं हो पातीं।

कतिपय हिन्दी पुस्तकालय पाकेट बुक्स से भरे रहते हैं। ये पाकेट बुक्स अधिकांशत: कल्पित लेखकों के नाम से प्रकाशित होती हैं, जिनमें रोमांस, रोमांच, अपराध तथा जासूसी साहित्य का बाहुल्य होता है। इस तरह की कृतियों से पाठकों की सुरुचि जागृत नहीं हो पाती और पुस्तकालयों का वास्तविक उद्देश्य भी नष्ट हो जाता है।

मूल्य उचित रखे जाँय

बंगाल में साहित्यिक पुस्तकों की कीमत बहुत वाजिब रखी जाती है जबकि हिन्दी के साहित्यिक प्रकाशन उत्तरोत्तर मँहगे होते जा रहे हैं। बंगाल में जहाँ ६०० पृष्ठों वाली ग्रन्थावली के एक खण्ड का मूल्य १०० रु० है वहीं हिन्दी के उतने ही पृष्ठों की ग्रन्थावलियों के एक खण्ड का मूल्य ५०० से ३००० रु० तक है। अत: हिन्दी पुस्तकालय आन्दोलन को यदि जीवित रखना है तो ग्रन्थावलियों का मूल्य सर्वजन सुलभ रखना होगा। प्रसन्नता की बात है कि देश में बुक क्लब आन्दोलन आरम्भ हो रहा है, जिसके माध्यम से १००० पृष्ठ की पुस्तकें १०० रु० में मिल रही हैं। ऐसे आन्दोलनों को सहयोग देकर व्यावसायिकता तथा अतिलाभ की मनोवृत्ति पर अंकुश लगाकर पाठकों की संख्या बढ़ानी होगी।

इसके अतिरिक्त अच्छी पुस्तकों की सही जानकारी भी पाठकों तक पहुँचायी जाय, इस दिशा में एक अभियान चलाना होगा।

सौभाग्य का विषय है कि हिन्दी की पत्र-पत्रिकायें अपने आलोचना स्तम्भों में

हिन्दी के सामयिक अच्छे प्रकाशनों की आलोचना और चर्चा कर रही हैं। आसार अच्छे हैं, क्योंकि, हिन्दी पत्र-पत्रिकाएँ जिस तेजी से बढ़ रही हैं, यदि वे अपने 'नये प्रकाशन' स्तम्भों में इसी तरह स्तरीय हिन्दी प्रकाशनों की चर्चा करती रहेंगी, तो पुस्तकालयों को भी अच्छी पुस्तकों की जानकारी होती जायेगी। अनेक प्रकाशन संस्थायें अपने प्रकाशनों की जानकारी देने के लिए मासिक पत्रिकायें भी निकाल रही हैं और कतिपय प्रकाशन-गृह अपने प्रकाशकों का विज्ञापन भी यदा-कदा करते रहते हैं। परन्तु इसमें अभी अपेक्षित तीव्रता नहीं आ पायी है।

अन्त में इतना और कहा जा सकता है कि हिन्दी प्रकाशनों की प्राणवत्ता पुस्तकालयों के माध्यम से हिन्दी पुस्तकों में संचित ज्ञानराशि को जन-जन तक पहुँचाने के लिए हमें केवल कारण ही नहीं ढूँढना है, बल्कि प्रयास भी करना है। सिर्फ सरकारी और गैरसरकारी संस्थाओं तथा उनके व्यवस्थापकों पर दोषारोपण करके हम हिन्दी वाङ्मय को कोई अवदान नहीं दे सकते। इसके लिए हमें अपना अन्तर्मन भी टटोलना होगा—प्रकाशकों तथा लेखकों को सत्साहित्य के उन्नयन की दिशा में ईमानदारी के साथ जागरूक होना होगा, साथ ही पाठकवृन्द और हिन्दीभाषी जनगण को भी कुछ त्याग-तपस्या करनी होगी तथा अपनी पाठकीय सुरुचि सुधारनी होगी।

❀

ग्रामीण पाठकों के लिए साहित्य का प्रकाशन और वितरण

भारतमाता ग्रामवासिनी है। इसकी लगभग ८० प्रतिशत जनता गाँवों में बसी है, जिसमें ६० प्रतिशत कृषक हैं। स्वतन्त्रता के बाद भारत में साक्षरता बढ़कर ५० प्रतिशत हो गई है। ९० करोड़ की आबादी में ४५ करोड़ शिक्षित व्यक्ति हैं, जिसमें छात्रों की संख्या २० करोड़ हैं। स्थिति यह है कि आज साढ़े चार लाख प्राइमरी विद्यालय खोले गए हैं जिनमें ७ करोड़ बच्चे पढ़ते हैं। ये स्कूल अधिकांश ग्रामों में या ग्रामों के आसपास हैं। अब नए विश्वविद्यालय भी ग्रामीण अंचल में ही खुलेंगे, फलतः ग्रामीण क्षेत्रों में पाठ्य-पुस्तकों की माँग के साथ-साथ जन-जीवन से सम्बन्धित साहित्य की चाह भी बढ़ेगी।

इस सन्दर्भ में ग्राम हमसे दो प्रकार का साहित्य चाहता है—एक प्रौढ़ शिक्षा के लिए और दूसरा उन साक्षरों के लिए जो प्रौढ़ शिक्षा की परिधि से ऊपर हैं।

प्रौढ़ शिक्षा

प्रौढ़-शिक्षा के वर्तमान कार्यक्रम में प्रशिक्षित किए जानेवाले देश के बीस करोड़ निरक्षरों में पंद्रह करोड़ गाँवों में और पाँच करोड़ शहरों में हैं। इनमें आठ करोड़ पुरुष तथा बारह करोड़ महिलाएँ हैं। गाँधी जयन्ती से केन्द्र सरकार राज्य सरकारों तथा स्वयंसेवी संस्थाओं के सहयोग से प्रौढ़ शिक्षा का कार्यक्रम कर रही है। इनके लिए ऐसा साहित्य चाहिए जो उन्हें साक्षर करने के साथ-साथ इनकी दैनिक आवश्यकताओं के सम्बन्ध में भी उपयोगी जानकारी दे सके। कृषि से सम्बन्धित वैज्ञानिक संसाधनों, रासायनिक उर्वरकों, उन्नतिशील बीजों, मौसम की सम्भावनाओं एवं मिट्टी की बनावटों आदि का आरम्भिक ज्ञान जिन पुस्तकों के माध्यम से कराना सम्भव हो, लघु कुटीर उद्योगों तथा पशु एवं घरेलू चिकित्सा का सामान्य परिचय भी इन प्रौढ़ शिक्षार्थियों को जिनसे कराया जा सके, ऐसी छोटी-छोटी पुस्तिकाएँ लिखनी होंगी। ग्रामों का प्रौढ़ मानस लोक साहित्य में सदा से अधिक रुचि लेता है। बैताल पच्चीसी तथा सिंहासन बत्तीसी आदि ऐसे ग्रामीण साहित्य हैं जिनमें ग्रामीणों की दिलचस्पी सदा से रही है और आज भी है। इनके माध्यम से प्रौढ़ों में साक्षरता तो बढ़ेगी ही, संस्कृति और संस्कार की क्षुधा भी शांत होगी। जादू-टोना, ओझाई, वशीकरण आदि अन्धविश्वासों को प्रौढ़ साहित्य के द्वारा दूर करने का प्रयास होना चाहिए।

अभी भी इस देश के छह लाख गाँवों में दस हजार ऐसे गाँव हैं जहाँ एक भी स्कूल नहीं है। वहाँ प्रौढ़ शिक्षा का यह कार्यक्रम मातृभाषा के माध्यम से ही चल सकेगा।

इस दृष्टि से हिन्दी का दायरा जितना विस्तृत है उसका दायित्व भी उतना ही गम्भीर है। प्रौढ़ों के लिए निर्मित साहित्य के सन्दर्भ में निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए—

१. प्रौढ़ों के लिए निर्मित साहित्य बड़े अक्षरों में मुद्रित हो।

२. भारत की लगभग ८० प्रतिशत ग्रामीण जनता का अधिकांश गरीबी की सीमा रेखा के नीचे है। अतएव प्रौढ़ साहित्य की पुस्तकों का मूल्य एक रुपये से लेकर तीन रूपये तक होना चाहिए।

३. प्रौढ़ साहित्य के प्रकाशनार्थ सरकार को अनुदान देना चाहिए, जिससे पुस्तकें सस्ती और अच्छी छपें।

४. प्रौढ़ों में साक्षरता के प्रति रुचि हो, इसके लिए ऐसे पोस्टर बनवाये जायँ जिनमें चित्रों के माध्यम से अधिक और भाषा के माध्यम से बहुत कम बातें कही जायें।

सत्साहित्य

प्रौढ़ शिक्षा की सीमा से बाहर निकलते ही ग्रामीण साहित्य का क्षेत्र विशाल दिखाई देता है। नवीनतम वैज्ञानिक उपलब्धियाँ आज ग्रामों को कम प्रभावित नहीं कर रही हैं। ट्रांजिस्टर, रेडियो, घड़ी, टेलीविजन, बिजली, इलेक्ट्रॉनिक उपकरण आदि अब मात्र शहरों के ही लिए नहीं रह गये हैं, वरन् अब ये गाँववालों की भी जानी-पहचानी वस्तुएँ बन गयी हैं। खेती के परम्परागत पुराने साधन इतिहास की वस्तु बनते जा रहे हैं, तकनीकी कृषि विकसित होती जा रही है। ट्रैक्टर, डीजल पम्प तथा इंजन अब खेती के मुख्य साधन बन गये हैं। पशु चिकित्सा अब प्रत्येक ग्राम की जरूरत हो गयी है। इन जीवनोपयोगी यंत्रों की मरम्मत, रख-रखाव तथा छोटी-मोटी खराबियों को दूर करने के लिए स्थानीय भाषा में गाइडनुमा छोटी-मोटी पुस्तकों की आवश्यकता स्वयंसिद्ध है।

साबुन व काठ के खिलौने बनाने तथा हथकरघा उद्योगों की विस्तृत जानकारी के लिए आज का ग्रामीण पुस्तकों पर ही आश्रित है। इसके साथ ही ग्रामीण महिलाओं के लिए सिलाई, कटाई, कढ़ाई, बुनाई सम्बन्धी साहित्य भी चाहिए।

भारतीय जीवन की आत्मा ग्राम्य संस्कृति की भी आत्मा है। संस्कृति का मूल उत्स यहीं से फूटता है, भले ही नगरीय जीवन में उसका विशेष प्रतिफल न दिखाई पड़े। उदाहरणार्थ रामचरित मानस की बौद्धिक मीमांसा विश्वविद्यालयों में भले ही हो, पर यह ग्रन्थ ग्रामीणों के मन में रचा-बसा है। अब भी चौपालों में गाया जाता है। मानस की महत्ता ही और है, हम हनुमान चालीसा को भी ग्रामों से निकाल नहीं सकते। तात्पर्य यह कि हमारा सारा वैदिक और पौराणिक साहित्य, आरण्यक जीवन की उपज है, जिसकी छाया आज भी ग्रामों में दिखाई देती है। किन्तु इस सन्दर्भ में क्या हम सद्-साहित्य ग्रामों को दे रहे हैं?

शायद इसी कमी के कारण पहले की अपेक्षा आज ग्रामों में अपराध वृत्ति बहुत जोरों से बढ़ रही है। इस बढ़ोत्तरी के मूल में आर्थिक एवं सामाजिक कारण से अधिक सांस्कृतिक कारण हैं—

१. आज ग्रामीणों के पढ़ने के लिए गांवों तक अच्छा साहित्य नहीं पहुँचता।

२. स्टेशनों पर बिकनेवाले रोमांस, अपराध, मनोरंजन, सस्ती तथा हल्के किस्म की कहानियों की पुस्तकें ही ग्रामवासियों तक पहुँचती हैं। यह स्थिति स्वास्थ्यप्रद नहीं है। जबतक ग्रामीण पठन-रुचि का स्वस्थ विकास नहीं होगा तब तक अपराध वृत्ति बढ़ती ही जायेगी।

इस सन्दर्भ में साहित्य निर्माण में अधिक सतर्कता बरतनी चाहिए और निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण तथ्यों को दृष्टिगत रखना चाहिए—

१. ऐसे साहित्य का प्रकाशन हो जो ग्रामों की समस्याओं का समाधान प्रस्तुत कर सकें। जैसे—नशाबन्दी, परिवार नियोजन, साम्प्रदायिक सद्भाव, कुटीर उद्योग, जाति-पाँति तथा दहेजविरोधी भावना का प्रचार करनेवाला साहित्य।

२. समाज कल्याण मंत्रालय इधर ग्रामीण स्वास्थ्य पर विशेष ध्यान दे रहा है। इस क्षेत्र में भी प्रकाशकों को अपना योगदान देना चाहिए। सामान्य स्वास्थ्य का ज्ञान करानेवाली पुस्तकों को प्रकाशित करना चाहिए। जैसे—सामान्य रोग तथा उनकी रोकथाम, रोग तथा दुर्घटनाओं का प्रारम्भिक उपचार, पौष्टिक आहार और जड़ी-बूटी चिकित्सा आदि। ग्रामीण स्वास्थ्य पर विचार करते समय ग्रामीण खेलकूद की उपेक्षा नहीं की जा सकती। इस सम्बन्ध में अब तक प्रकाशकों की दृष्टि नहीं गयी है। ग्रामीण खेलों में कुश्ती और कबड्डी आदि पर नगण्य साहित्य उपलब्ध है। यही कारण है कि ९० करोड़ जनसंख्या वाले इस देश में ऐसे १०० खिलाड़ी भी नहीं मिलते, जिन्हें हम अन्तर्राष्ट्रीय खेलों में भेज सकें। पूरे सोवियत रूस की जनसंख्या ३५ करोड़ है, जिसमें साढ़े छः करोड़ 'स्पोर्ट्समैन' हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि सोवियत रूस में खेल-कूद का प्रचुर साहित्य है। क्या हम अपने ग्रामों के लिए ऐसे साहित्य का निर्माण नहीं कर सकते?

३. ग्रामों में आर्थिक विषमता को दूर करने के लिए सर्वोदय साहित्य का प्रकाशन होना चाहिए। अन्त्योदय क्या है? उसकी उपलब्धियाँ क्या हैं? इसपर भी साहित्य होना चाहिए।

४. वैज्ञानिक खेती और आधुनिक वैज्ञानिक उपलब्धियों का ज्ञान करानेवाला साहित्य भी इस वर्ग के पाठकों के लिए उपयोगी है।

५. ग्रामों की सांस्कृतिक जीवन्तता लोक साहित्य और लोकसंगीत में निहित है। लोककथाएँ तथा लोकगीत ग्राम जीवन की अस्मिता से जुड़े हैं। इस दृष्टि से भी ग्रामों के लिए साहित्य उपलब्ध कराना चाहिए।

६. फिल्मों ने अपने प्रभाव से ग्रामों को भी नहीं छोड़ा है। ग्रामीण पाठकों की रुचि फिल्म साहित्य पढ़ने में भी है। अतएव सुरुचिपूर्ण फिल्मी कथाओं और गीतों की छोटी-छोटी पुस्तकें भी होनी चाहिए।

७. सांस्कृतिक एवं पौराणिक धरोहर हमारी साहित्यिक पूँजी है। वेद, उपनिषद,

रामायण, महाभारत, पुराण आदि की छोटी-छोटी कथाएँ सचित्र रोचक शैली में ग्रामों के लिए तैयार करानी चाहिए।

८. हर गाँव में शाम को लगनेवाली चौपालें विचार-विनिमय के साथ ही ग्रामीणों के मनोरंजन का भी माध्यम हैं। हमें ऐसा साहित्य देना चाहिए जो इन चौपालों की क्षुधा की तृप्ति कर सके।

९. वैदिक ऋषियों, राम, कृष्ण पौराणिक महापुरुषों, ईसा, मुहम्मद साहब, शंकराचार्य जैसे धर्म गुरुओं, तिलक, गोखले, गाँधी आदि राजनेताओं की जीवनियाँ भी ग्रामीणों के लिए प्रेरणा का स्रोत हो सकती हैं।

१०. भारत अनेक भाषाओं और संस्कृतियों का देश है। क्या यह संभव नहीं कि हम उन भाषाओं का अनूदित सद्साहित्य भी ग्रामीणों के लिए उपलब्ध करायें।

११. हम सत्ता के विकेन्द्रीकरण की ओर अग्रसर हैं। गाँधी के सपनों में भारत की प्रारम्भिक प्रशासनिक इकाई ग्राम सभा सबसे प्रमुख है। आज का ग्रामीण इन ग्रामसभाओं, ग्राम पंचायतों तथा न्याय पंचायतों के सम्बन्ध में भी साहित्य चाहता है, जो उसके अधिकार और कर्त्तव्य का बोध करा सके।

हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि ग्रामीण क्षेत्र के पाठक आज सर्वाधिक विचारशील हैं। उनकी रुचि के अनुरूप हम चलें तथा युग के अनुसार उनकी रुचि बनाने वाला साहित्य प्रकाशित करें। निष्ठावान प्रकाशन संस्थाओं को अपना कर्त्तव्यपथ निश्चित करना चाहिए। तोता-मैना, सारंगा सदावृक्ष, इन्द्रजाल आदि छाप कर बेच लेना तो बहुत आसान है, परन्तु साहित्यिक लेखकों की कृतियों को छापना और बेचना जो ग्रामीण जनता के लिए उपयोगी और महत्त्वपूर्ण हैं, निजी प्रकाशन संस्थाओं का प्रमुख कर्त्तव्य है। प्रेमचन्द, मैथिलीशरण गुप्त, वृन्दावनलाल वर्मा, अमृतलाल नागर, भगवतीचरण वर्मा आदि को ग्रामों तक ले जाया जा सकता है, परन्तु इन लेखकों के सुबोध, संक्षिप्त और ग्रामोपयोगी संस्करण प्रकाशित करने होंगे।

गाँवों में पुस्तकों का प्रसार

अधिकांश भारतीय जनता आज भी गाँवों में निवास करती है, हमारे गाँवों व शहरों के दूषित वातावरण से अभी दूर हैं तथा वे देश की भावनात्मक एकता के सृजन में महत्वपूर्ण योग देते हैं। परन्तु दुर्भाग्य की बात है कि हमारे ग्रामों में चालीस करोड़ अनपढ़ हैं। जो थोड़े पढ़े-लिखे लोग रहते हैं वे भी ग्रामों में समुचित रूप से पुस्तकों के प्राप्त न होने के कारण अच्छी पुस्तकें पढ़ने से वंचित रह जाते हैं। ऐसी स्थिति में हमारा यह दायित्व हो जाता है कि वह इस समस्या का समाधान सोचें, जिससे ग्रामों में पुस्तकों का अधिकाधिक प्रचार एवं प्रसार हो।

गाँवों में पढ़ने की रुचि

जब कभी पुस्तकों से संबंधित प्रश्न सामने आता है कि किस तरह का साहित्य प्रकाशित किया जाय, इस परिप्रेक्ष्य में हमें प्रकाशनों के पुराने इतिहास को देखने पर पता चलता है कि उन्नीसवीं सदी तक हिन्दी-साहित्य का अधिकांश प्रकाशन ग्रामों की प्रसिद्ध लोक-कृतियाँ ही रही हैं। उत्तर में पंजाब और पूर्व में बंगाल तक के प्रचलित ग्राम-साहित्य को देखा जाय तो उससे स्पष्ट हो जाता है कि साहित्य पढ़ने की रुचि पहले जितनी अधिक ग्रामीण जनता में रही है, उतनी शहरों की जनता में नहीं रही, क्योंकि लोक-साहित्य का उद्भव ही ग्रामों से हुआ है। उदाहरणार्थ पंजाबी की वारिस शाह की हीर, बुल्लेशाह दी काफियां, राजस्थानी का निहाल दे सुलतान का ख्याल, छोटे कंथ की लावनी, नत्थाराम शर्मा, श्रीकृष्ण पहलवान की नौटंकी की पुस्तकें, कैथी में हाथ से लिखी सीता पाताल, मछला, हरण, मटरूमल अत्तार का आल्हा, पूर्वी उत्तर प्रदेश व बिहार की कजरी, चैती, होली, चौताल, बिदेसिया साहित्य, उर्दू के किस्से, बंगला में छपी गोपाल भांड़ तथा जात्रा की पुस्तकें, लल्लूलाल की बैताल पच्चीसी, सिंहासन बतीसी आदि ऐसे ग्रामीण साहित्य हैं जो साहित्य की सफल सर्जना कही जा सकती हैं। ग्रामों के करोड़ों लोगों ने इन पुस्तकों को हृदयंगम किया है और आज भी बड़ी रुचि से इन्हें गाँवों में पढ़ा जाता है। आज युग बदला है और आवश्यकता है कि हम ग्रामों के लिए ऐसा साहित्य तैयार करें जो आज के प्रगतिशील वैज्ञानिक युग के अनुकूल हो।

हमारा देश विकासशील देशों में अग्रगण्य है। यदि हमारे ग्राम अच्छे साहित्य से सम्पन्न न होगें, तो जिस तरह के जन-जीवन का हम निर्माण करना चाहते हैं वह सम्भव नहीं होगा। युग की पुकार है कि गाँव के पढ़े, अनपढ़, शिक्षित और अशिक्षित लोगों के लिए उनकी शिक्षा के मानदंड को देखते हुए विज्ञान और कृषि की पुस्तकें अधिकाधिक संख्या में लिखी तथा प्रकाशित की जायें। कथा-साहित्य भी इस ढंग का लिखा जाय जो

ग्रामीण-जीवन के पात्रों के आधार पर वहाँ के आंचलिक जीवन से संबद्ध हो। आज विज्ञान और कृषि से संबंधित जो प्रकाशन हैं उन्हें ग्रामीण जनता को दृष्टि में रखकर लिखा गया है—इसमें सन्देह है। तथापि कुछ संस्थाओं ने इस दिशा में निश्चय ही उल्लेखनीय कार्य किये हैं। इनमें लखनऊ का 'साक्षरता निकेतन' और उत्तर प्रदेश सरकार का 'विकास अन्वेषणालय' प्रमुख हैं। कतिपय प्रकाशकों ने भी लेखकों को इस दिशा में प्रेरित कर विज्ञान और कृषि विषय पर पुस्तकें लिखवायी हैं। लेकिन यहीं यह कहना भी अपेक्षित है कि जो प्राचीन साहित्य गाँवों में चल रहा है उसे भी अब परिमार्जित करने की आवश्यकता है। उसकी भाषा और उसकी भावव्यंजना को समय के अनुकूल बनाना भी साहित्य-सर्जकों का कर्त्तव्य है। ग्राम-जीवन को दूषित करनेवाला साहित्य कदापि नहीं लिखा जाना चाहिये। ग्रामीण युवतियों को लेकर कई उपन्यास ऐसे लिखे गये हैं जिनके संबंध में विवाद है कि वे ग्रामीण जीवन का सही चित्रण करते हैं अथवा नहीं। साहित्य के महारथियों से यह निवेदन अवश्य किया जाना चाहिये कि वे ग्रामीण जीवन पर लिखते समय इतना ध्यान रखें कि कहीं किसी बात का चित्रण 'बम्बइया फिल्मों' की भाँति न हो जाय।

गाँवों तक साहित्य पहुँचे

आज ग्रामों में अपराध-वृत्ति बहुत जोरों से बढ़ रही है। इसका एक प्रमुख कारण है कि ग्रामीणों को पढ़ने के लिए अच्छा साहित्य नहीं पहुँचता। स्टेशनों पर बिकनेवाले रोमांस, मनोरंजक और सस्ती कहानियों की पुस्तकें ही ग्रामवासियों तक पढ़ने को पहुँचती हैं। कहना न होगा कि इस प्रकार के साहित्य के लेखन और प्रकाशन को आत्म-निरीक्षण द्वारा रोकने की आवश्यकता है।

ग्राम-जीवन को समुन्नत करने और उसे जीवन देने के लिए साहित्यिक क्षेत्र में सर्वोदय-साहित्य का निर्माण बहुत बड़ी क्रान्ति है। जिस तरह स्वतंत्रता के पूर्व स्वदेशी साहित्य का ग्राम-जीवन पर बहुत ही अच्छा असर पड़ा था, उसी तरह स्वतंत्रता के बाद आर्थिक संक्रमण के नैतिक पतनवाले इस युग में सर्वोदय साहित्य जन-जीवन को प्रकाशमान करने के लिए दीपपुंज का कार्य कर रहा है।

ग्रामों के लिए आज जो कुछ भी प्रकाशन हो रहा है उसका अधिकांश कार्यक्षेत्र लोक-साहित्य तथा धार्मिक साहित्य के प्रकाशनों तक सीमित है। अभी तक इस क्षेत्र में अभिनव साहित्यिक प्रकाशनों का प्रवेश नहीं के बराबर है। आवश्यकता है कि साहित्यिक प्रकाशक इस क्षेत्र में दिलचस्पी लें और ग्रामीण जनता के अनुकूल अच्छा साहित्य प्रकाशित करें। साथ ही उसका प्रचार करें और उचित वितरण की व्यवस्था भी करें। आज भी साहित्यिक प्रकाशन संस्थाओं के पास अनेक ऐसे प्रकाशन हैं जो प्रचार का सहारा पाने पर ग्रामीण जनता में लोकप्रिय हो सकते हैं। प्रकाशनों का स्तर किस तरह ग्रामीण परिवेश का हो, साहित्यिक प्रकाशक अच्छी तरह समझते और जानते हैं। लगनवाले साहित्यिक प्रकाशकों के पास बरबस मन मोह लेनेवाले साहित्य को प्रकाशित करने की

कला है। ग्रामों में तभी उपयोगी पुस्तकें पहुँचेंगी जब ऐसे प्रकाशक ग्रामीण क्षेत्रों की ओर बढ़ेंगें।

अब तक जो कुछ ग्रामीण जनता के बीच बिक रहा है प्रमुख रूप से वह लोक-साहित्य और धार्मिक साहित्य है, लेकिन उनका मुद्रण, गेटअप आदि रद्दी और निम्न दर्जे का होता है। इसका नमूना आप मेलों में, सड़कों पर, मिलों के गेटों पर, पुस्तक बेचनेवाले, फेरीवालों के पास देखते हैं। विचारणीय है कि जब इस तरह रद्दी छपे हुए साहित्य की भूख ग्रामीण जनता में है, तो यदि अच्छा छपा समुन्नत साहित्य ग्रामीण जनता के हाथ में पहुँच जाय तो पता नहीं हमें कितने और नये पाठक लाखों की संख्या में मिल जायें? ग्रामीण-जनता के लिए साहित्य प्रकाशन करते समय इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि पुस्तकें छोटी हों, उनकी कीमतें कम हों, उनका गेटअप बहुत ही उत्तम कोटि का और मोहक हो।

गाँवों में प्रसार के माध्यम

ग्रामों में पुस्तकों का प्रचार करनेवाली दो इकाइयाँ हैं—पहली इकाई है पुस्तक विक्रेताओं और अखबार बेचनेवालों की, जो वितरण का कार्य करते हैं तथा दूसरी इकाई है सामाजिक जीवन से सम्पर्कित शिक्षक, ग्रामों के सरपंच, पोस्ट मास्टर, शिक्षाधिकारी, सूचनाधिकारी आदि, जिनके माध्यम से प्रचार हो सकता है।

आजकल ग्रामों में पुस्तक-प्रचार और वितरण के संबंध में जो कुछ भी हो रहा है, वह बहुत कुछ नहीं है। पाठ्य-पुस्तकों को छोड़कर और किसी हद तक लोक-साहित्य तथा धार्मिक पुस्तकों के अलावा, साहित्य नाम की कोई चीज गाँव के पुस्तक-विक्रेताओं या अखबार बेचनेवालों के पास उपलब्ध नहीं है। आज ऐसी स्थिति नहीं है कि लोग पुस्तकें नहीं पढ़ना चाहते, परन्तु जब उन्हें अच्छी पुस्तकें उपलब्ध ही नहीं होतीं तो वे अपना मन मारकर रह जाते हैं। प्रायः ऐसी पुस्तकें ही पढ़कर सन्तोष कर लेते हैं जो मेले आदि से खरीदी जा सकें या गाँव का कोई व्यक्ति एक किताब खरीद लाया तो सारा गाँव ही उसे मँगनी माँग कर पढ़ ले। ऐसी स्थिति में हमें कुछ उपायों का सहारा लेना चाहिए—

१. ग्रामों में पुस्तक-विक्रेताओं और अखबार बेचनेवालों को प्रेरित किया जाये कि वे पुस्तकें मँगायें और उनका वितरण उन ग्राहकों में करें जो साहित्य में रुचि रखते हैं।
२. जिले के प्रत्येक प्रमुख गाँव में जहाँ बाजार हो वहाँ कम-से-कम एक पुस्तक विक्रेता का चुनाव किया जाय और उसे प्रारंभ में 'आन सेल रिटर्न बेसिस' पर पुस्तकें दी जायें। परन्तु ऐसे पुस्तक-विक्रेताओं का चुनाव करते समय इस बात का ध्यान रखा जाय कि वह प्रतिष्ठित व्यक्ति हो और ऐसी दुकान की बात छोड़ भी दी जाये तो ऐसे पुस्तक-विक्रेताओं का चुनाव भी हो सकता है जो

कुछ सुरक्षा धन जमा कर दें ताकि उनके पास बहुत अधिक रकम डूबने की संभावना न हो। पुस्तक-विक्रेताओं के चयन में स्कूली पुस्तकें बेचनेवाले पुस्तक-विक्रेताओं को साहित्य बेचने के लिए प्रेरित करना उत्तम होगा, क्योंकि उनका परिचय क्षेत्र के प्राय: सभी नागरिकों से रहता है।

३. यदि क्षेत्र में पुस्तक-विक्रेता अच्छी स्थिति का न हो तो वहां के बिसातबाना, गल्ला या कपड़ा बेचनेवालों को प्रेरित किया जाना चाहिए कि वे पुस्तकें बेचें। उन्हें भी उपरोक्त सुविधायें मिलनी चाहिए।

४. जिला-स्तर पर ग्रामों का निरीक्षण कर के वहाँ के प्रमुख बाजारों में अनुमानत: १० से १५ केन्द्र खोले जायें जहाँ आसानी से पुस्तकें बेचने के लिए रखी जा सकती हों।

ग्राम-साहित्य में पूँजी लाभ

उधार पर साहित्यिक पुस्तकें देने की जोखिम उठाने में प्रकाशक निश्चित ही हिचकिचाते हैं, परन्तु इस बात में दो मत नहीं हो सकते कि यदि एक बार पुस्तक बेचने का चस्का ग्रामीण बाजार के पुस्तक-विक्रेताओं को लग जाय तो यह तय है कि वे बाद में नकद पुस्तकें मँगाने लगेंगे। आज पुस्तकों का जैसा बाजार है इसमें ग्रामों और शहरों दोनों के पुस्तक-विक्रेता साहित्यिक पुस्तकों में अपनी पूँजी लगाना नहीं चाहते। इस प्रक्रिया से जहाँ प्रकाशक शहरों के विक्रेताओं को उधार देते हैं वहीं इन्हें एक छोटी जोखम और उठाना चाहिए। उन्हें ग्रामों के अच्छे पुस्तक-विक्रेताओं को भी उधार देना चाहिए। नि:सन्देह इस प्रकार से बरस-दो बरस में ही ग्रामों में बहुत बड़ा बाजार मिल जायेगा।

ग्राम-साहित्य की बिक्री के अब तक मुख्य केन्द्र मेले, साप्ताहिक बाजार, मिलों तथा कारखानों के मुख्य द्वार आदि रहे हैं। गढ़मुक्तेश्वर, सोनपुर, ददरी और कुम्भ मेले के अवसरों पर ग्रामीण-साहित्य की लाइन की लाइन सजी हुई दुकानें देखी जा सकती हैं, जबकि इन मेलों में साहित्यिक पुस्तकों का एकाध व्यापारी ही जाता होगा। ग्राम-साहित्य बेचनेवाली दुकानों पर भीड़-सी लगी रहती है। यह इस बात की परिचायक है कि पुस्तकें पढ़ने के प्रति ग्रामीण जनता में किसी से भी कम रुचि नहीं है।

विक्रेताओं के लिये रिफ्रेशर कोर्स

अधिकांश पुस्तक-विक्रेता बहुत पढ़े-लिखे नहीं होते हैं। उन्हें 'रिफ्रेशर कोर्सों' द्वारा प्रशिक्षित किया जा सकता है। यातायात की असुविधा भी ग्रामों में पुस्तकें पहुँचाने में एक बड़ी बाधा है। एक कारण यह भी है कि पढ़े-लिखे लोग गाँवों में रहना पसन्द नहीं करते। परन्तु ये सब ऐसे कारण नहीं हैं जिन्हें देख कर घबड़ाया जाय। इसका रास्ता तो खोजना ही होगा। विकासशील देशों के सामने ये समस्याएँ आती ही हैं। १७५ वर्ष पहले अमरीका में भी यही समस्या थी और पचास वर्ष पहले रूस में भी यही समस्या थी, परन्तु आज इन दोनों देशों का नक्शा पूरा बदला हुआ है। उनके ग्राम-ग्राम में पुस्तक-

विक्रय-केन्द्र स्थापित हो चुके हैं। तब ऐसी कोई बात नहीं कि भारत जैसे महान् देश के प्रकाशक ग्रामों में पुस्तक-केन्द्र स्थापित करने में असफल हों।

समय की गति बदली है। स्वाभाविक है कि ग्रामीण पाठक भी अब अच्छी पुस्तकें खरीदना चाहेंगे, परन्तु पुस्तकों के प्रति प्रेम बढ़ाने के लिए प्रचार का सहारा प्रकाशकों को लेना होगा। वैसे तो ग्रामीण-साहित्य का प्रचार परम्परागत है। गाँव का कथावाचक, उपदेशक, खंजरी पर बाबा गोरखनाथ, कबीर के भजन गानेवाला गायक, नाटक मण्डलियाँ, भाँड़ मण्डलियाँ, नौटंकीवाले, रसिया तथा बिरहा का आलाप लेनेवाली टोलियाँ, कहारों-द्वारा गाया जानेवाला कहरवा, सावन की रिमझिम में झूले पर ग्रामीण स्त्रियों द्वारा गायी जानेवाली कजरी की टेर, चक्की पीसती हुई बालाओं द्वारा तितला गायन, बुड्ढों द्वारा बच्चों को किस्से-कहानी सुनाना, गाँव की चौपालों पर हुक्के की गुड़-गुड़ाहट पर वार्तालाप, राजस्थान की क्वारी कन्याओं द्वारा गनगौर-गान, मंगल अवसरों पर गीतों को गानेवाली स्त्रियाँ, ग्रामोफोन रिकार्ड के गायक और गायिकायें आदि ग्राम-साहित्य के परम्परागत प्रचलित और मान्य प्रचार-साधन हैं।

सूचीपत्र कहाँ कहाँ भेजें

पुस्तकों के आधुनिक प्रचार के लिए ग्राम पंचायतों के सरपंच, प्राइमरी, जूनियर तथा हाईस्कूलों के शिक्षकों, गाँव में जानेवाले प्रति उप-जिलाविद्यालय निरीक्षकों, गाँवों के पोस्ट आफिसों के पोस्टमास्टरों, खादी भंडारों, सर्वसेवा संघ के केन्द्रों आदि के पास हमें अपना सूचीपत्र और प्रचार-सामग्री भेजनी चाहिए। ऐसे परिपत्र भी भेजे जायें जिनके द्वारा उनसे यह सुझाव माँगा जाय कि उनके गाँव में किस व्यक्ति को पुस्तक बेचने की एजेंसी दी जा सकती है। इसी सन्दर्भ में यहाँ एक उदाहरण देना अप्रासंगिक न होगा। 'चन्दामामा' पत्रिका के व्यवस्थापक ने एक वक्तव्य में बताया कि उन्होंने 'चन्दामामा' के लिए देश के सभी पोस्टमास्टरों को एक परिपत्र भेजा जिसमें उनसे आग्रह किया गया था कि वे अपने हलके में एक विक्रेता का नाम सुझायें जो उनके अखबार की एजेंसी ले-ले। उनमें से अधिकांश पोस्टमास्टरों के ऐसे जवाब आये कि वे स्वत: एजेंसी लेना चाहते हैं। फलत: 'चन्दामामा' पत्रिका की बिक्री की धूम का सबसे बड़ा कारण शहर नहीं, ग्रामीण क्षेत्र हैं जो डाकखाने के इर्दगिर्द हैं। अध्यापकों की बात लीजिए। अपनी पाठ्य-पुस्तकों और पाकेटबुक्स बेचने के लिए हिन्दी प्रचारक संस्थान ने प्राइमरी तथा जूनियर हाईस्कूलों के हेड-मास्टरों को पत्र लिखा कि आप किसी अच्छे पुस्तक-विक्रेता का नाम सुझायें। संस्थान द्वारा चार हजार जूनियर हाईस्कूलों के हेडमास्टरों को परिपत्र भेजा गया, जिनमें से छह सौ के लगभग अध्यापकों ने उत्तर दिया। उन्होंने या तो स्वत: एजेंसी ले ली या अपने आसपास के दुकानदार को कहा कि अमुक पुस्तकें मँगवा लो, हम बिकवा देंगे।

शिक्षाधिकारी और जिला सूचनाधिकारी का उपयोग भी ग्रामों में पुस्तकों के प्रचार में कर सकते हैं। यदि किसी ग्रामीण क्षेत्र में चलती-फिरती पुस्तक-प्रदर्शनी लगायी जाये और आसपास के दस-बीस ग्रामों के लोगों को आमंत्रित किया जाय तो ऐसी प्रदर्शनी के आयोजन में उपरोक्त वर्ग के लोग पूरी सहायता करेंगे। इन्हीं प्रदर्शनियों में पुस्तकें भी बेची

जानी चाहिये। ऐसा प्रयोग हमारे देश में मद्रास की एक संस्था 'हिगिन बाथम्स' ने किया है। वे इस प्रयोग में सफल भी हुए हैं। उनकी रिपोर्ट में बताया गया है कि ग्रामीण क्षेत्र की जनता जब अच्छी पुस्तकें देखती है तो उसका मन उन्हें खरीदने के लिए लालायित हो उठता है।

प्रचार के अधुनातन साधन अपनायें

पुस्तकें बेचने के लिए प्रचार के आधुनिकतम साधनों का उपयोग नितांत आवश्यक है। आज छोटी से छोटी वस्तु के विज्ञापन के लिए अखबारों, पोस्टरों, बुकलिस्टों, सिनेमा फिल्मों, रेडियो तथा दूरदर्शन का माध्यम उपयोग में लाया जा रहा है। कम पूँजीवाला असहाय प्रकाशक किन-किन प्रचार साधनों को अपनाये यह प्रश्न उसके सामने जीती-जागती समस्या है। भारत में साहित्यिक पुस्तकों का एक भी प्रकाशक ऐसा नहीं जो इतनी सामर्थ्य रखता हो कि आज की मँहगी आधुनिक विज्ञापन-प्रणाली को अपना सके। देखा जाता है और प्रयोग भी किया गया है कि एक लाख सूची बाँटिये तो मुश्किल से सौ आर्डर आते हैं। सूची का मूल्य और उस पर चिपकाए गए टिकट की लागत का चतुर्थांश भी इस प्रकार की पुस्तकों की बिक्री से नहीं प्राप्त होता। परन्तु दूसरी तरफ यह भी है कि इस दिशा में कुछ सामाजिक संस्थाएँ पुस्तक प्रचार के आन्दोलन में सहायता करती हैं।

पुस्तकें दवाई या साबुन नहीं हैं, बल्कि मानस-चेतना को जगानेवाली वस्तु है। इनके प्रचार के लिए प्रकाशकों को जनता के सामाजिक जीवन से सम्बन्धित सब वर्गों का सहयोग प्राप्त हो सकता है, बशर्ते उनके विज्ञापन में पाठक का हृदय छू लेनेवाली कोई बात हो। कोरे सूचीपत्र छापकर भेज देने से काम नहीं चलेगा। आपको इस तरह के प्रचार के लिए फोल्डर छापने होंगे, बुकमार्क बनाने होंगे, ऐसे पोस्टर तैयार करने होंगे जो पुस्तकालयों, ग्रामों के स्टेशनों, पोस्ट आफिसों, मिठाई की दुकानों में लगाये जा सकें। प्रश्न यह भी उठता है कि क्या सरकार स्टेशनों या पोस्ट आफिसों में नि:शुल्क पोस्टर लगाने देगी। निश्चित रूप से सरकार यह काम कर सकती है, परन्तु हमने कभी भी इस काम के लिए चेष्टा ही नहीं की। एक बात और सामने आती है कि ये पोस्टर व्यक्तिगत प्रकाशकों के विज्ञापन के रूप में हों। इन पोस्टर में सार्वजनिक भावों की अभिव्यक्ति होनी चाहिये। ऐसे पोस्टर तैयार कराना और उनको बँटवाना प्रकाशक संघों द्वारा ही संभव है। यह पोस्टर पुस्तक-विक्रेताओं और दूसरी सामाजिक इकाइयों द्वारा भी आसानी से लगवाये जा सकते हैं।

पत्र पत्रिकाओं का सहयोग

प्रचार में क्षेत्रीय समाचार पत्र भी बड़ी सहायता कर सकते हैं। प्रकाशन-उत्सवों के समाचार समाचारत्र अवश्य छापते हैं। पुस्तकों से समाचारपत्रों का सीधा सम्बन्ध होता है। ध्यान देने की बात यह है कि यदि प्रकाशक थोड़ी-सी सूझ-बूझ से काम लें तो पुस्तकों का प्रचार स्वत: समाजसेवी इकाइयों के माध्यम से हो सकता है। पुस्तकों के प्रचार में पुस्तकालयों की भूमिका भी बहुत महत्वपूर्ण है। सरकारी तथा सार्वजनिक दोनों

क्षेत्रों में इस दिशा में प्रयत्न हुए हैं। इन दोनों क्षेत्रों में जहाँ कुछ गुण सामने आये हैं, वहाँ कुछ अवगुण भी हैं। किन्तु हमें तो इनके गुणों का पक्ष लेना है, अवगुणों का नहीं। ग्राम-विकास खण्डों में पुस्तकालय खोले गये हैं। कहा जाता है कि वहाँ पुस्तकें ग्रामीणों के उपयोग के लिए उपलब्ध तो होती हैं किन्तु उन्हें पढ़ने को नहीं दी जातीं। वहाँ पुस्तकें केवल आलमारियों की शोभा बनी रहती हैं। जूनियर हाईस्कूलों और हाईस्कूलों में भी सरकार ने पुस्तकालय खुलवाये हैं। यहाँ भी शिकायत सुनने को आती है कि अध्यापक किताबों को बाक्स में बन्द रखते हैं और लड़कों को पुस्तकें घर ले जाने नहीं देते। कक्षा में उन्हें समय नहीं मिलता कि वे पुस्तक पढ़ें। परन्तु सभी जगह ऐसी हालत नहीं है। बहुत से विकास खंडों के पुस्तकालय सक्रिय हैं। अनेक हाईस्कूलों और जूनियर हाईस्कूलों के पुस्तकालयों में छात्रों को पुस्तकें घर ले जाने के लिए दी जाती हैं। आवश्यकता इस बात की है कि हम अधिकारियों का ध्यान इस ओर आकृष्ट करें और उनसे कहें कि पुस्तकालय आन्दोलन में वे हमारी सहायता करें। गाँवों में कहीं-कहीं अच्छे निजी पुस्तकालय भी हैं, जहाँ लोग बड़े प्रेम से पुस्तकें पढ़ते हैं। कई राज्यों में तो अब पंचायतों में भी पुस्तकालय खुलवाने की योजना बनी है। ये पुस्तकालय पुस्तक-प्रचार के सफल केन्द्र हैं।

दो शब्द उन संस्थाओं के प्रति भी, जो ग्रामीण-क्षेत्र में साहित्य के प्रचार के लिए संलग्न हैं। फिलहाल ऐसी संस्थायें हैं भोजपुरी संसद और ब्रज साहित्य-मण्डल। इन संस्थाओं के माध्यम से हम दो कार्य कर सकते हैं : एक तो यह कि किस तरह का साहित्य प्रकाशित किया जाय और दूसरा यह कि किस तरह ऐसे साहित्य का प्रसार ग्रामों तक किया जाय।

रुचि और पूँजी की समस्या

इस सम्बन्ध में ग्रामीण क्षेत्र के वे पाठक विचारणीय हैं जिनकी रुचि पर प्रकाशक चलें तथा युग के अनुसार उनकी रुचि बनानेवाला साहित्य प्रकाशित करें। तोता-मैना, सारंगा-सदाबृक्ष, इन्द्रजाल आदि छाप कर बेच लेना तो बहुत आसान है; परन्तु ऐसे साहित्यिक लेखकों की कृतियों को छापना, जो ग्रामीण जनता के लिए उपयोगी और महत्वपूर्ण हैं, हमारा आवश्यक कर्तव्य और उद्देश्य है। हम आसानी से प्रेमचंद, मैथिलीशरण गुप्त, बच्चन, वृन्दावनलाल वर्मा, यशपाल, अमृतलाल नागर, उपेन्द्र नाथ 'अश्क' भगवतीचरण वर्मा, मनु शर्मा, नरेन्द्र कोहली, डॉ. युगेश्वर आदि को ग्रामों तक ले जा सकते हैं। परन्तु यह प्रकाशक की जिम्मेदारी होगी कि किस तरह वे इन लेखकों के सरल, संक्षिप्त और ग्रामोपयोगी संस्करण प्रकाशित करें।

यह सब कुछ होने पर भी पूँजी लगानेवाला प्रकाशक जब अपनी आर्थिक स्थिति को देखता है तो उसका मन कसक उठता है। नकद रकम लगाना और फिर उधार बेचकर व्यापार चलाने की कल्पना, उसके समझ में नहीं आती। हमारे देश में अभी

प्रकाशन व्यवसाय में आए हुए लोग बहुत पूँजीवाले नहीं हैं। बहुत से प्रकाशक चक्रव्यूह रूपी इस व्यवसाय में अभिमन्यु की तरह घुस पड़ते हैं, परन्तु सातवें दरवाजे को पार न कर पाने के कारण वीरगति को प्राप्त हो जाते हैं। उनके पास उत्साह होता है, काम करने की अदम्य आकांक्षा होती है, परन्तु पूँजी के अभाव में फँस जाने पर वे इस चक्रव्यूह से निकल नहीं पाते और सब कुछ ठप्प हो जाता है।

सामूहिक प्रचार

प्रचार और प्रकाशन में लागत को देखते हुए आवश्यक है कि फ़िलहाल देश में दस-दस प्रकाशकों के ग्रुप बनाये जायें और ये ग्रुप सम्मिलित रूप से एक इकाई बनकर काम करें। इस तरह से सबकी सम्मिलित पूँजी रहेगी और प्रचार का जो व्यय होगा वह भी दस व्यक्तियों में बँट जाएगा। किसी एक प्रकाशक के बूते की यह चीज नहीं दिखती। जब दस प्रकाशक एक जगह होंगे तो वह एक दूसरे का हित संरक्षण भी करने में समर्थ होंगे। फलत: सबकी पुस्तकें बिकेंगी। दुर्भाग्य है कि अभी तक भारतीय प्रकाशकों ने सहकारिता का क ख ग भी नहीं पढ़ा। वैसे भारत में ही एक ऐसा प्रदेश है जहाँ सहकारिता के आधार पर ग्रामीण क्षेत्रों में पुस्तकें बेचने का सफल प्रयोग हुआ है और वह है—केरल। हमें इस सम्बन्ध में विदेशों के प्रयोगों को देखने की आवश्यकता नहीं है, सबसे पहले केरल के प्रयोग को ही लागू किया जाए तो सफलता मिल सकती है।

ग्रामीण क्षेत्र के प्रकाशनों में निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्र के प्रतिष्ठानों में सहयोग

प्रारम्भिकी

जब मुझसे यह कहा गया कि मैं निजी और सरकारी क्षेत्रों के प्रकाशनों में परस्पर सहयोग के लिए प्रबन्ध लिखूँ तो मुझे यह सारा कार्यक्रम रेखागणित के उस प्रमेय (थ्योरम) की तरह लगा जिसमें मात्र एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचने की नीयत से कुछ कल्पनाएँ की जाती हैं और बौद्धिक व्यायाम करते हुए अभीष्ट निष्कर्ष पर पहुँचा जाता है। अन्त में यह कहने की बाध्यता रहती है कि बस यही सिद्ध करना था। यदि हम मान लें कि सरकारी और निजी क्षेत्र ग्रामीण क्षेत्र के प्रकाशन के काम में सहयोग कर सकते हैं तो चिन्तन के बाद निश्चित ही कुछ ज्यामितीय परिणाम निकलेंगे।

हमारे देश में आरण्यक संस्कृति काल के पश्चात् जब ज्ञान मात्र श्रुत न रहकर लिपिबद्ध होने की ओर अग्रसर हुआ, तब पुस्तकें ऋषि-मुनियों द्वारा भोजपत्रों पर लिखी जाती थीं। यही भोजपत्र ग्रन्थ कहलाये। इस प्रकार इन ग्रन्थों का प्रकाशन जंगलों के गर्भ से हुआ। फिर वनों से ग्रामों, पुर, पट्टन तथा विशाल नगरों में पुस्तकें आयीं। तब राजाओं द्वारा उनकी यथासम्भव प्रतिलिपियाँ करायी जाती थीं और देश-विदेश के दूसरे अंचलों में वे भेजी जाती थीं। उस समय पुस्तक प्रकाशन की दिशा अरण्य से नगर की ओर थी, आज मुख्यत: नगर से नगर की ओर है और आज हम उसे ग्राम की ओर ले जाने के लिए प्रयत्नशील हैं।

लक्ष्य एक पर रास्ते दो

विश्व की दो तिहाई जनता विकासशील देशों में रहती है, इनमें से प्राय: ८० प्रतिशत लोग ग्रामों में बसते हैं। गरीबी के बावजूद इन लोगों में यह भावना है कि उनके बच्चे पढ़े-लिखें, जिससे वे उज्ज्वल भविष्य की ओर बढ़ें और विश्व तथा देश के सुयोग्य नागरिक बनें। जनता की आकांक्षाओं के अनुरूप इन विकासशील देशों की सरकारें भी शीघ्रातिशीघ्र शत-प्रतिशत साक्षरता लाने के लिए वचनबद्ध हैं। जहाँ निजी क्षेत्र प्रकाशन के कार्य को व्यापार की दृष्टि से देखता है, वहीं सरकारी क्षेत्र साक्षरता बढ़ाने के उद्देश्य से प्रकाशन को प्रोत्साहित करता है।

निजी तथा सरकारी प्रकाशन गृह दो भिन्न उद्देश्यवाले प्रकाशन प्रतिष्ठान हैं। उद्देश्य की भिन्नता के कारण उनके कार्यों में भी भिन्नता स्वाभाविक है। सरकारी प्रकाशन संस्थान में लाभ की भावना कम तथा शिक्षा प्रसार की आकांक्षा ज्यादा रहती है, जबकि निजी प्रकाशन संस्थान व्यापारिक लाभ की भावना से चलाये जाते हैं। सरकारों का लक्ष्य अशिक्षा को दूर कर जन समुदाय को शिक्षित कर कुशल प्रशासन देना होता है, परिणामत: वे कम मूल्यों पर जनहित की पुस्तकें छापती हैं। दूसरी ओर निजी क्षेत्र व्यापारिक दृष्टिकोण से यथासम्भव शिक्षा प्रसार और अशिक्षा दूर करने का प्रयत्न करता है।

मार्ग व्यापारिक और सार्वजनिक हो सकता है, पर शिक्षा प्रसार दोनों का गन्तव्य है। दोनों अपने गन्तव्य की ओर अग्रसर हैं। दोनों के परस्पर सहयोग का अर्थ होगा शिक्षा के प्रसार के साथ-साथ भविष्य के लिए एक अच्छे व्यापारिक क्षेत्र की स्थापना करना।

पुस्तकों की भूख बढ़ेगी

हमारे देश की आबादी ९० करोड़ है। ३ करोड़ ६० लाख की दर से हर पाँचवें वर्ष आबादी में वृद्धि हो रही है। २००० ई० तक यह एक अरब हो जायेगी। आजादी के समय जहाँ ५ करोड़ ३० लाख व्यक्ति शिक्षित थे वहीं ५० वर्षों में शिक्षितों की संख्या लगभग ५२ प्रतिशत हो गयी है। अर्थात यह लगभग तीन गुनी बढ़ी है। अगले चार वर्षों में सभी को शिक्षित करना हमारा लक्ष्य है। इन नव साक्षरों के लिए पुस्तकें चाहिए। आज भी ग्रामीण जनता में पढ़ने की भूख है। फिलहाल वह अपनी पाठन क्षुधा की तृप्ति गाँवों में जानेवाले अखबारों तथा मेलों से खरीदी हुई किताबों से करती है।

हमारे यहाँ प्रौढ़ शिक्षा का आन्दोलन भी बड़े पैमाने पर चल रहा है। प्रौढ़ों में देश के २० प्रतिशत लोग अनपढ़ हैं। इनके लिए भी पुस्तकों की आवश्यकता पड़ेगी। दूसरी ओर ग्रामीण क्षेत्रों में पठन रुचि का विकास स्वाभाविक गति से सम्पन्न हो रहा है। १९७१ में ग्रामीण क्षेत्रों के महज ११ प्रतिशत आई० ए० एस० अफसर थे, वहीं १९९० में इनकी संख्या ५० प्रतिशत बढ़ गई।

आज हमारे देश में दस करोड़ छात्र हैं। शिक्षा संस्थानों की गणना इस प्रकार है :

५ लाख	प्राइमरी स्कूल
१ लाख	मीडिल स्कूल
४० हजार	सेकेण्ड्री स्कूल
१२ हजार	हायर सेकेण्ड्री स्कूल
४॥ हजार	कालेज।

विश्वविद्यालय

इस विकसनशील प्रवृत्ति में पुस्तकों की भूख निरन्तर बढ़ती जायेगी। जिस तरह की विकासशील योजनाएँ चल रही हैं, उससे कभी न कभी यह विराट जन-मानस समृद्ध होगा ही और उनमें पुस्तक खरीदने की प्रवृत्ति बढ़ेगी।

सम्भावनाएँ (Scope)

पुस्तकों के प्रकाशन तथा खपत के लिए ग्रामीण क्षेत्र निराट है। विकासशील देशों में व्याप्त दरिद्रता जैसे-जैसे दूर होगी, आर्थिक सम्पन्नता के साथ-साथ वैसे-वैसे शिक्षा का प्रसार बढ़ता जायेगा और पुस्तकों की माँग भी बढ़ती जायेगी। इस सन्दर्भ में सरकारी तथा गैर सरकारी दोनों ही क्षेत्रों को यह देखना होगा कि ग्रामीण लोगों के लिये पुस्तकों के प्रकाशन व्यापार में क्या सम्भावनाएँ हैं। व्यापारिक दृष्टि से यह क्षेत्र कितना लाभकर है? विभिन्न देशों में बुक ट्रस्ट तथा बुक लीग को इस दिशा में क्या भूमिका है? किस तरह निजी और सार्वजनिक क्षेत्र परस्पर सहयोग करें? ये सभी विषय हमारी विचार परिधि में आते हैं।

प्रकाशक जिन्हें मान्यता नहीं मिली

लोक साहित्य की हिन्दी में माँग नहीं है, कहना गलत है। नये लोग इस व्यवसाय में घुसने से डरते हैं यह भी गलत है। प्राय: सभी विकासशील देशों में लोक संस्कृति की पुस्तकों को प्रकाशित करनेवाले प्रकाशक बड़ी संख्या में हैं, परन्तु उनका प्रकाशन रुढ़िवादी परम्पराओं से ग्रस्त है क्योंकि उन्हें वैज्ञानिक रीति से मार्ग निर्देशन नहीं मिला। प्रकाशकों ने ग्राम मेलों तथा बाजारों में धार्मिक तथा लोक कथाओं की पुस्तकों की भरमार कर रखी है। ऐसे प्रकाशकों में ग्रामीण पाठकों तक पुस्तक पहुँचाने की बहुत क्षमता है। इस श्रेणी के लिए पुस्तकें प्रकाशित करनेवाले प्रकाशक बहुतेरे सामान्य प्रकाशकों से धनी हैं, परन्तु उनका उत्पादन इतना अवैज्ञानिक पुरातनपंथी और रुढ़िग्रस्त हैं कि इन प्रकाशकों को मान्यता नहीं मिल पायी है। शिक्षा जगत् इस वर्ग से प्राय: अपरिचित है।

कुछ प्रयोग

विकासशील देशों में नेपाल का उदाहरण बहुत ही मौजू है। नेपाल में शिक्षा सामग्री के केन्द्र खोले गये हैं, जो ग्राम-ग्राम तक फैले हुए हैं। इन केन्द्रों का उपयोग पाठ्य-पुस्तकों, कापियों तथा अन्य स्टेशनरी के वितरण के लिए हो रहा है। ऐसे केन्द्रों का उपयोग ग्रामीण पुस्तकों के वितरण के लिए भी किया जा सकता है।

भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में सरकारी और निजी प्रकाशन गृहों में सहयोग की बात नई नहीं है। उत्तरप्रदेश सरकार के विकास अन्वेषणालय ने ग्रामीण पाठकों के लिए बहुत ही कम मूल्य पर (एक आना प्रति पुस्तक की दर से) कृषि की पुस्तकों, कहानी-संग्रहों, नाटकों आदि को प्रकाशित किया था। इस प्रयोग में पुस्तकें एक-एक लाख तक छपती थीं और अन्वेषणालय प्रत्येक ब्लाक को इनकी सूची भेज देता था। सभी ब्लाक इन पुस्तकों को मँगाकर ग्रामीण जनता में वितरित करते थे। पुस्तकें चूँकि बड़ी उपयोगी और कम मूल्य की थी, इसीलिये उनकी बिक्री अच्छी खासी होती थी, परन्तु ब्लाक अधिकारियों में रुचि का नितान्त अभाव था। फलत: ऐसा प्रयोग सफल नहीं हो सका।

१९६५ में जब अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ ने ग्राम पुस्तक प्रचार योजना प्रारम्भ की तब लेखकों तथा कवियों का उसे पूरा सहयोग मिला। सुपरिचित कवियों और लेखकों

का आगमन सुनकर ग्रामवासी बहुत बड़ी संख्या में जुटते थे। कवियों और लेखकों का प्रचार ग्रामों में होने लगा। ग्रामीण जनता किसी न किसी रूप में अच्छी पुस्तकों से परिचित हो चली है, चाहे वह पाठ्य-पुस्तक हो या साहित्यिक।

सरकार की ओर से अच्छी चुनी पुस्तकें पंचायतों को भेजी जाती हैं। इस कार्यक्रम में मध्यप्रदेश सरकार का पंचायतराज विभाग सुनियोजित ढंग से काम कर रहा है। सार्वजनिक संगठनों में लखनऊ का लिटरेसी हाउस, दिल्ली का प्रौढ़ शिक्षा संघ अच्छे प्रकाशन कर रहे हैं। ग्रामीण जीवन के लिए उपयोगी सामग्री इन संस्थाओं द्वारा सुलभ हुई।

प्रकाशकों की भूमिका एवं कर्त्तव्य

प्रकाशक की भूमिका एवं कर्त्तव्य के सन्दर्भ में सदैव एक बात का ध्यान रखना चाहिए कि प्रकाशक तथा बुकसेलर का जनसम्पर्क व्यापक हो, जो एक सम्पन्न ग्राहक से लेकर ग्रामीण पाठकों तक समान रूप से व्यवहार करे। तभी इस क्षेत्र में प्रगति सम्भव है।

सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि प्रकाशक जब काम आरम्भ करते हैं तो बड़ी तेजी के साथ, परन्तु उनका अन्त होता है डेड स्टाक के साथ। अत: ग्रामीण प्रकाशन के क्षेत्र में जो योजना बनाई जाय वह बहुत ही सुनियोजित हो।

भारत में १० लाख की जनसंख्या पर २५ पुस्तकें प्रकाशित होती हैं, जिसमें २४ निजी प्रकाशन गृहों द्वारा और एक सरकारी प्रकाशन विभाग द्वारा। ७०० सरकारी प्रकाशन गृह आज देश में हैं और वे क्या छाप रहे हैं? क्या कर रहे हैं? इसका पर्यवेक्षण होना चाहिए। प्रारम्भ में ग्रामीण क्षेत्रों के लिये प्रकाशन के काम में सरकारी सहायता आवश्यक है।

प्रश्न उठता है कि क्या अशिक्षा के कारण बेरोजगारी है या बेरोजगारी के कारण अशिक्षा है। ये दोनों प्रश्न परस्पर जुड़े है। पुस्तकों का प्रकाशन तथा बिक्री भी किसी न किसी रूप में इन दोनों प्रश्नों से जुड़े हैं। पुस्तकों की बिक्री तब होगी, जब वे उपयोगी हों तथा पाठकों की आवश्यकता की पूर्ति करती हों, किन्तु वस्तुस्थिति सर्वथा इससे भिन्न है। भारतीय प्रकाशनों के शतांश भी ग्रामीणों के लायक नहीं है। तब यदि ग्रामीण जनता पुस्तकें न खरीदें तो इसमें दोष किसका? प्रकाशकों को ग्रामीण जनता की रुचि तथा उपयोगिता को ध्यान रखकर पुस्तकें प्रकाशित करनी चाहिए। उनको प्रारम्भिक असफलता से घबड़ाना नहीं चाहिए। यह कार्य एक तरह से खेत में बीज छीटने की तरह है। यह बीज आगे चलकर अंकुरित होगा और राष्ट्र की भावी मनीषा का निर्माण करेगा।

किन्तु यह तभी सम्भव होगा जब ग्रामीण पुस्तकों के प्रकाशक पुस्तक उत्पादन तथा मुद्रण की आधुनिक टेकनीक से विज्ञ हों।

ग्रामीण क्षेत्र में प्रकाशनों की आवश्यकता

ग्रामीण परिवेश के अनुसार प्रत्येक विषय की पुस्तक तत्काल छाप लेना सम्भव नहीं है। इसके लिए बड़ी पूँजी की आवश्यकता पड़ेगी। भारत का उदाहरण लीजिये। यहाँ विभिन्न सभ्यतायें हैं। विभिन्न रीति-रिवाज हैं। जीवन की अनेक परिस्थितियों के विभिन्न सन्दर्भ हैं। इस दृष्टि से ग्रामीण भारत ५ क्षेत्रों में बाटा जा सकता है। इन क्षेत्रों की जीवन

पद्धति को दृष्टि में रखकर ही प्रकाशन करने पड़ेंगे। आदिवासियों, पूर्वी, पश्चिमी, उत्तरी, दक्षिणी भारत को दृष्टिगत रख कर प्रकाशन करना होगा।

विज्ञान की प्रगति के फलस्वरूप ग्रामीण जनता में भी रेडियो, टेलिवीजन, सिनेमा, मौसम विज्ञान, कम्प्यूटर सम्बन्धी जानकारी की भूख बढ़ी है। खेती के आधुनिक तौर-तरीकों को जानने की रुचि उनमें है। वे इन विषयों पर पुस्तकें चाहते हैं।

किस तरह का लेखन हो

प्रश्न आता है कि किस तरह का लेखन हो, क्योंकि प्रकाशन के मूल में तो लेखन ही है। यदि यह लेखन ग्रामोन्मुख नहीं हुआ तब ग्रामों के लिए ऐसे प्रकाशनों की कोई उपयोगिता नहीं रह जायेगी। इसलिये परिवार नियोजन, चूहों का उन्मूलन, कम मूल्य में घरों का निर्माण, मद्य-निषेध, खाद, बीज और कृषि आदि उपयोगितावादी विषयों के अतिरिक्त ऐसे विषयों पर भी पुस्तकें लिखी जानी चाहिए जो स्थायी महत्व की हों। अपने स्थायी मूल्यों के लिए ही रामायण और महाभारत की कहानियाँ आज ग्रामों में नगरों की अपेक्षा अधिक प्रचलित हैं।

भावों के सम्प्रेषण का माध्यम भाषा है। भाषा की अनुकूलता ही हमें समझ की ओर ले जाती है। इसलिये ग्रामीण पाठकों के लिए उनका साहित्य उन्हीं की भाषा में होना चाहिए। बच्चों और नव साक्षरों के लिए उनकी मातृभाषा में ही साहित्य की अपेक्षा है। किन्तु ग्रामीणों के लिए विषय उनके परिवेश से ही चुनना होगा। जैसे सपेरों का खेल, नौटंकी, ग्रामों में अभिनीत होनेवाले नाटक, ढोल, मजीरा, बाँसुरी आदि वाद्ययंत्र ग्रामीणों के लिए तैयार होनेवाली पुस्तकों के विषय बन सकते हैं।

आज का ग्रामीण पंचायत प्रथा में अधिक रुचि लेता है। पंचायत क्या है, वह इसपर पुस्तक चाहता है। यद्यपि आज भी ग्रामों की मानसिकता धार्मिक अन्धविश्वासों में ही उलझी है फिर भी उन्हें इससे मुक्त होने का एहसास अब हो रहा है। उसे ऐसा साहित्य चाहिए जो इन अन्धविश्वासों से मुक्ति दिला सके।

आज आत्मनिर्भरता के सन्दर्भ में ग्रामीणों को कार्यपरक प्रकाशन की अधिक आवश्यकता है। लघु तथा गृह उद्योगों पर साहित्य चाहिए। स्वास्थ्य और सफाई पर साहित्य चाहिए। जड़ी-बूटियों की उपयोगिता पर उन्हें साहित्य चाहिए।

कर्मकाण्ड से सम्बन्धित विषयों जैसे—जन्म,- विवाह तथा खेती और अपने वीर-पुरुषों से सम्बन्धित गीत भी ग्रामीण संस्कृति में रचे-बसे है। तेलगू की चिन्नम्मा, शशि अम्मा कथा की लाखों प्रतियाँ ग्रामीण पाठकों ने खरीदीं, क्योंकि वे समाज की वीर पूजा से सम्बन्धित थीं।

पुस्तक मेले कितने उपयोगी

एक प्रश्न उठा था कि ग्रामीणों के लिए पुस्तक मेलों की क्या उपयोगिता है? कुछ लोगों का कहना था कि पुस्तक मेले पढ़े-लिखे लोगों के लिए ही है, परन्तु दूसरा तर्क है कि अर्द्धशिक्षित, अशिक्षित ग्रामीणों को पुस्तक मेले शिक्षा की ओर आकर्षित कर सकते हैं। कुछ लोगों का मत है कि ये ग्रामीण पुस्तक मेले बड़े ही उपयोगी सिद्ध होंगे। प्रारम्भ में इनका आयोजन नामी-गरामी जगहों में ही होगा, जहाँ हजारों, लाखों की संख्या में ग्रामीण जुट सकें।

दूसरा सुझाव है कि जो मेले ग्रामीण क्षेत्रों में प्राचीन काल से लगते चले आ रहे हैं उनमें हम राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के पुस्तकों के मेले क्यों न लगायें। ऐसे मेलों में प्रारम्भ में तो व्यय होगा, लेकिन बाद में स्वत: भीड़ होने लगेगी। ग्रामीण जनता जहाँ पशु-पक्षी तथा अन्य उपयोगी सामग्री खरीदने जाती है, वहाँ पुस्तकों के लिए भी जायेगी। कुछ मेलों में पहले से ही पुस्तकों की दुकानें लगती हैं, परन्तु ये दुकानें सजी-धजी न होकर कबाड़िये की दुकान जैसी हुआ करती हैं।

मार्केट रिसर्च

विकास खण्डों (ब्लाकों) के माध्यम से प्रश्नावली भेजकर मार्केट रिसर्च कराया जा सकता है। ग्रामीण जनता क्या पढ़ना चाहती है इसकी एक रूप-रेखा मार्केट रिसर्च से तैयार करनी होगी, फिर यह स्थिर करना होगा कि इसमें से कौन-सा क्षेत्र निजी क्षेत्र के प्रकाशक अपनायें और कौन-सा क्षेत्र सरकारी प्रकाशन गृह चुनें। मार्केट रिसर्च किसान मेलों, ग्रामीण विद्यालयों, प्रौढ़ शिक्षा केन्द्रों साप्ताहिक बाजारों और ग्राम पंचायतों आदि माध्यम से किये जा सकते हैं। ग्रामीण शिक्षक, ब्लाक प्रमुख, ग्रामों में पुस्तक-विक्रेता, ग्राम पंचायत के प्रधान ऐसे रिसर्च में सहायक हो सकते हैं।

अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ ने यूनेस्को की ओर से ग्राम पुस्तक प्रचार योजना के सन्दर्भ में जो मार्केट रिसर्च किया था उसका परिणाम उपयोगी रहा। प्रकाशन के पूर्व जो रिसर्च होगा उसमें मुख्य रूप से ग्रामीणों की रुचि देखी जायेगी। रिसर्च का विषय होगा ग्रामीण उद्योग, खेती, पालतू पशु-पक्षी, वृक्ष-फूल आदि।

वितरण, प्रचार तथा प्रशिक्षण

भारत में आवश्यक सामग्री के वितरण के लिए ३० हजार केन्द्र अब तक खुल चुके हैं। इनके अतिरिक्त २७ हजार सहकारी समितियाँ ग्रामांचलों में ३ करोड़ किसानों के लिए हैं। इन केन्द्रों से ग्रामीण पुस्तकों के प्रचार तथा वितरण में सरकार सहयोग दिला सकती है। अनेक सामाजिक और धार्मिक संस्थाओं का प्रवेश आज ग्रामीण क्षेत्रों में है। इनमें से कई तो प्रकाशन का भी काम करती हैं। उन्हें साथ लेकर उनके वितरण केन्द्रों द्वारा अन्य प्रकाशन भी वितरित किये जा सकते हैं। अबतक हमारे देश के गाँवों में ५००० के करीब मार्केट बन चुके हैं। पुस्तकों के प्रचार के लिए इन मार्केटों का सहारा लिया जा सकता है।

भारत में ६ लाख गाँव हैं जिनमें हजारों ग्राम पंचायते हैं। इन ग्राम पंचायतों का संचालन निर्वाचित सरपंच करते हैं। इनका सहयोग पुस्तकों के प्रचार के लिए लिया जा सकता है। इसके अतिरिक्त पाँच हजार पाँच सौ पाँच विकास खंड (ब्लाक) हैं। वे भी प्रचार कार्य में सहयोग दे सकते हैं।

जब हमारे देश के २००० तक आबादी वाले ग्रामों में आवश्यक वस्तुओं की दुकानें, बैंक आदि हैं तो फिर कोई कारण नहीं है कि इन गाँवों में पुस्तकों के प्रचार और विक्रय के लिए साधन न मिले।

भारत में 'इफको' नामक संस्था ग्रामीण क्षेत्रों में बहुत बड़ा काम कर रही है। यह

संस्था उर्वरक का वितरण करती है जिससे अनाज की अच्छी उपज हो रही है। संस्था का दूसरा कार्य है कृषि की बेहतरीन विभिन्न तकनीकों द्वारा किसानों को यह बताना कि उचित मात्रा में उर्वरक का प्रयोग करने से पैदावार किस तरह बढ़ सकती है। इस संस्था के ३०० उर्वरक विशेषज्ञ ग्रामों में गोष्ठियों का आयोजन करके कृषि के महत्व को समझाते हैं। प्रदर्शनियों, किसानों की सभाओं, मेलों, रेडियो, दूरदर्शन माध्यमों से भी यह संस्था ग्रामीणों को प्रशिक्षित करती है। इस संस्था के ५७ किसान सेवा केन्द्र भी हैं और कुछ विशिष्ट परिस्थितियों वाले २२५ गावों को इस संस्था ने अपनाया है। ऐसी संस्था का सहयोग लेकर ग्रामीण क्षेत्रों में प्रकाशनों का प्रचार किया जा सकता है। जहाँ-जहाँ इसकी गोष्ठियाँ हो, वहाँ-वहाँ यदि सरकार के सहयोग से पुस्तकों का प्रचार करने का अवसर मिले तो प्रकाशकों को एक सुगठित माध्यम प्राप्त हो जायेगा। खादी ग्रामोद्योग कमीशन लघु उद्योगों की भाँति ही ग्रामीण प्रकाशन को मान्यता दे दे तो देश के ढाई हजार खादी वितरण केन्द्र भी पुस्तकों के वितरण केन्द्र बन सकते हैं।

देश की कृषि उत्पादन मण्डी समितियों के उद्देश्यों में सुव्यवस्थित और सुन्दर रूप से शिक्षा का प्रचार करना भी है। ऐसी समितियों के सहयोग से ग्रामीण प्रकाशनों का प्रचार हो सकता है, साथ ही इन समितियों को पुस्तकालय स्थापित करने के लिए भी प्रेरित किया जा सकता है।

प्रकाशकों का संयुक्त मंच : समस्या का हल

निजी तथा सरकारी क्षेत्र के प्रकाशकों का एक संयुक्त मंच (फोरम) अथवा संयुक्त समिति (कौंसिल) का निर्माण किया जाय, जिसका कार्यक्षेत्र निम्नलिखित हो :

१. प्रकाशन के कार्यक्षेत्र का विभाजन, साथ ही यह देखना कि क्या वह कार्य संयुक्त रूप से किया जा सकता है।
२. ग्रामीण जनता के लिए विश्व के उपयुक्त साहित्य का विभिन्न देशों की भाषाओं से अनुवाद की व्यवस्था।
३. विदेशों में हुए ग्रामीण प्रकाशन क्षेत्र के प्रयोगों की खोजबीन करना।
४. बच्चों, नवसाक्षरों और ग्रामीण शिक्षितों के लिए किस तरह के प्रकाशन हों, इसका ब्लूप्रिन्ट तैयार करना।
५. चेष्टा करना कि ग्रामीणों के लिये शारीरिक, मानसिक और चारित्रिक विषयों के प्रकाशन सुलभ हो।

ग्रामीण प्रकाशन क्षेत्र में जो प्रकाशक हैं उनके लिए कौंसिल, वर्कशाप आदि का आयोजन हो, जिससे उत्कृष्ट उत्पादन, लेखन, मुद्रण और बाइन्डिंग की शिक्षा प्रकाशकों को मिल सकें।

प्रकाशक कौंसिल सुनियोजित रूप से प्रकाशन की आकर्षक संयुक्त विज्ञापन योजना भी बना सकती है। प्रकाशक कौंसिल का काम होगा, बिक्री विज्ञान (सेल मैकेनिज्म) को इस तरह से विकसित करना जिससे ग्रामीण क्षेत्रों के लिए प्रकाशित होनेवाली पुस्तकें ग्रामीणों तक पहुँच सकें। प्रकाशक कौंसिल को यह भी देखना होगा कि ऐसी योजना बने जिससे पुस्तकों के प्रकाशन के क्षेत्र में पुनरावृत्ति न हो। लेखन के क्षेत्र

में भी कौंसिल को सुझाव देना चाहिए कि जिन पुस्तकों की पाण्डुलिपि पब्लिशर्स कौंसिल स्वीकृत कर दे, सरकार उनके लिए अनुदान दे।

कौंसिल रूरल डेवलपमेन्ट बैंक से कम ब्याज पर कर्ज दिलाने में ग्रामीण साहित्य छापनेवाले प्रकाशकों की सहायता करे।

पुस्तकों का उत्पादन खर्च कम पड़े, इस सन्दर्भ में भी कौंसिल को सोचना चाहिए। पुस्तकों के चित्र 'कार्मिकों' की भाँति एक साथ छापे जा सकते हैं। बाद में विषय वस्तु विभिन्न भाषाओं में छापे जायँ। सामूहिक उत्पादन के आधार पर पुस्तकों के मूल्य पर भी नियंत्रण किया जा सकता है। जब तक पुस्तकें सस्ती नहीं होंगी तब तक ग्रामीणों की क्रय सीमा के भीतर वे नहीं आ सकतीं। कौंसिल को पुस्तक मूल्य निर्धारण में भी प्रभावी भूमिका निभानी पड़ेगी। ग्रामीण क्षेत्रों में प्रकाशक कौंसिल को सहकार वितरण भण्डार बनाना चाहिए। यह कार्य सर्वप्रथम ब्लाक स्तर पर हो। इन वितरण भण्डारों को लाभ की दृष्टि से तीन तरह की सामग्री का वितरण अपने हाथ में लेना चाहिए। पाठ्य-पुस्तकें, स्टेशनरी, कापियाँ तथा ग्रामीण जनता की रुचि की पुस्तकें।

कौंसिल पुस्तकों के प्रिन्टिंग स्टैन्डर्ड निर्धारित करे, जिसमें मुद्रण के लिए टाइप सेटिंग की व्यवस्था रहे। इस संदर्भ में वह अच्छे प्रकाशकों को सम्मानित भी करे।

सरकारी माध्यम कहाँ तक सहायक हो सकते हैं

प्रदर्शन गाड़ियाँ (मोबाइल वैन) भी प्रचार कार्य में सहयोग कर सकती हैं। प्रारम्भ में यह काम देश के सूचना तथा प्रसारण मंत्रालय के सहयोग से प्रारम्भ किया जाना चाहिए। मद्रास में हिगन बाथम नामक संस्था अपने मोबाइल वैनों द्वारा ग्रामों में पुस्तकों को बेचने का कार्य कर रही है।

डी० ए० वी० पी० जैसे सरकारी विभागों द्वारा ग्रामीण पुस्तकों की उपयोगिता के पोस्टर प्रकाशित किये जाने चाहिए।

रेडियो तथा दूरदर्शन ग्रामीणों के लिए उपयोगी पुस्तकों पर वार्ताएँ प्रसारित करें तो लाभकर होगा।

सूचना तथा प्रसारण मंत्रालय द्वारा ग्रामों में पुस्तकों पर फिल्में दिखाई जा सकती हैं। ग्रामीण साहित्य उत्तमोत्तम कृतियों के प्रचार में दैनिक तथा साप्ताहिक पत्रों में छपी आलोचना व पुस्तक परिचय बहुत सहायक हो सकते हैं। इस क्षेत्र में सरकारी पत्र-पत्रिकाओं का सक्रिय सहयोग आवश्यक है।

प्रत्येक पंचायत में अखबार पढ़ा जाता है। इन अखबारों में ग्रामीण प्रकाशनों का विज्ञापन देना तथा समीक्षा छपवाना लाभप्रद होगा।

सरकारी और गैर-सरकारी क्षेत्रों द्वारा क्या हो?

ग्रामीण क्षेत्रों में पुस्तकें भेजने के लिए पोस्टेज की दर बहुत कम होनी चाहिए। विकासशील देशों की जनता की आय इतनी अधिक नहीं है कि वह वर्तमान पोस्टेज दरों पर पुस्तकें मँगा सके।

ज़िस तरह युनिवर्सिटी ग्रान्ट्स कमीशन पुस्तकालयों के लिए अनुदान देता है उसी

तरह इण्डियन कौंसिल फॉर एग्रीकल्चरल रिसर्च को भी ग्रामीण पुस्तकालयों के लिए सहायता देनी चाहिए और गाँव-गाँव में ग्राम पुस्तकालय खुलवाने चाहिए।

हमें ग्रामीण पाठकों के लिए पुस्तक सूचियाँ तैयार करनी चाहिए और उन सूचियों को निरन्तर परिवर्तित एवं परिवर्द्धित करते रहना चाहिए।

ऐसे प्रकाशकों तथा पुस्तक-विक्रेताओं की सूची बननी चाहिए जो ग्रामीण जनता के लिए प्रकाशन तथा वितरण कर रहे हैं। यह एक उत्साहवर्द्धक तथ्य है कि देश में पाठ्य-पुस्तक विक्रेताओं के बाद ग्रामीण-पुस्तकों के फेरी करनेवाले विक्रेता ही अधिक संख्या में हैं। यह वर्ग भी प्रचार के साथ-साथ बिक्री में सहायक होगा।

सरकारी क्षेत्र और निजी क्षेत्र में सफल प्रकाशन योजना बनाने के लिए गोष्ठियों तथा चर्चाओं का आयोजन होना चाहिए।

विकासशील देशों में रूरल डेवलपमेन्ट मंत्रालय हैं, प्लानिंग कमीशन है परन्तु देखा गया है कि दोनों ही विभाग ग्रामीण अंचल की पुस्तकें प्रकाशित करने के लिए बजट में कोई प्रावधान नहीं रखते। विकासशील देशों में ९० प्रतिशत प्रकाशक कम पूँजीवाले हैं, पर इनकी सहायता की कोई व्यवस्थित योजना नहीं है। यदि हम इस तथ्य की ओर सरकार का ध्यान आकृष्ट करें तो ग्रामीण अंचल के लिए अच्छे प्रकाशन सम्भव हो सकते हैं।

ग्रामीण प्रकाशन क्षेत्र में छपनेवाले साहित्य की बिक्री का वार्षिक लेखा-जोखा भी होना चाहिए। इससे यह मालूम होगा कि क्या और कितना छपा और कितना छपना है। इससे यह भी मालूम होगा कि प्रकाशन का स्तर कैसा रहा और व्यापारिक दृष्टि से यह क्षेत्र कितना लाभकर है।

आश्चर्य है कि विश्व अपने बजट का आधा अर्थात् एक मिनट में दस लाख डालर डिफेन्स पर खर्च कर सकता है, वह उसका एक अंश ग्रामीण शिक्षा पर व्यय नहीं कर सकता, जबकि पूरा विश्व शिक्षा को सेकेन्ड डिफेन्स मानता है।

भारत की छठीं पंचवर्षीय योजना ११ खरब ६२ अरब ४० करोड़ की थी जिसमें ४० अरब ग्रामीण क्षेत्रों के शिक्षा तथा अन्य विकास कार्यों के लिए खर्च करने का निश्चय किया गया था।

प्लानिंग कमीशन तथा ग्राम विकास मंत्रालय को प्रकाशकों की सहायता के लिए अपने बजट में प्रावधान रखना चाहिए।

समापन

प्रस्तुत प्रबन्ध भारतीय परिस्थितियों और अनुभवों के आधार पर है। हो सकता है कि इसमें वर्णित तथ्य अन्य देशों में पूर्ण रूप से लागू न हो सकें, परन्तु इसमें बहुत से ऐसे विचार हैं जो सभी देशों के लिए समान रूप से उपयोगी सिद्ध होंगे। यह आवश्यक नहीं है कि प्रबन्ध में वर्णित सभी कार्यक्रम अपनाये जायँ। इस दिशा में अपने बजट के अनुसार हमें बहुत सोच-समझकर योजनाबद्ध रूप से चलना पड़ेगा।

ग्रामीण पाठकों के लिये साहित्य विषय पर १९८० वर्ष की अन्तर्राष्ट्रीय गोष्ठी में पढ़ा गया कृष्णचन्द्र बेरी का प्रबन्ध।

❀

सरकारी संस्थानों द्वारा पुस्तक-क्रय की समस्या

हमारे देश में पुस्तकों के वितरण और विक्रय के क्षेत्र में पाठकों के अतिरिक्त जो व्यापार होता है उसमें प्रमुख स्थान सरकारी संस्थानों का है। कहना न होगा कि आज का पुस्तक-व्यवसाय इन सरकारी संस्थानों की बिक्री पर इतना अधिक आश्रित हो गया है कि यदि आज सरकारी खरीद बन्द हो जाय तो पुस्तक-व्यवसाय की रीढ़ ही टूट जायेगी। जिस तरह हमारे समाज में कुव्यवस्था और भ्रष्टाचार का प्राय: सभी क्षेत्रों में बोलबाला है, ठीक वही स्थिति अधिकांशत: सरकारी संस्थानों में पुस्तकों की खरीद की भी है।

खरीद की दृष्टि से सरकारी संस्थानों को हम ५ भागों में बाँट सकते हैं:— १. प्राइमरी से हायर सेकन्ड्री तक के स्कूल, २. कालेज तथा विश्वविद्यालय, ३. शिक्षा विभाग द्वारा संचालित सरकारी लाइब्रेरियाँ तथा अन्य संस्थाएँ, ४. विभिन्न मंत्रालयों द्वारा संचालित लाइब्रेरियाँ तथा संस्थान एवं ५. अर्द्धसरकारी संस्थाएँ।

खरीद का समय

सरकारी खरीद का समय अमूमन ३१ मार्च तक निर्धारित रहता है। अनुदान की रकम प्राय: मार्च में ही रिलीज की जाती है। कहीं-कहीं यह रकम ३१ मार्च तक निकाल ली जाती है और सरकार की अनुमति से कुछ समय बाद तक भी पुस्तकें ली जाती हैं। प्राय: देखा जाता है कि ये सरकारी संस्थायें पुस्तकों की खरीद के लिए विज्ञापन उसी समय निकालती हैं जब अन्तिम दो-चार दिन बाकी रह जाते हैं। परिणामत: वांछित पुस्तकें न खरीदकर जो भी पुस्तकें उनके आस-पास की दुकानों पर अधिक कमीशन वाली उपलब्ध हो जाती हैं, चाहे वे कूड़ा हों या रद्दी उसे प्रिंसिपल, लाइब्रेरियन अथवा अन्य अधिकारी खरीद लेता है। इस प्रक्रिया का दुष्परिणाम यह होता है कि अच्छी पुस्तकें बिक नहीं पातीं। हमारे देश में इने-गिने १०-२० ही ऐसे पुस्तक विक्रेता होंगे जिनके यहाँ सभी तरह के साहित्यिक प्रकाशन उपलब्ध हों। ऐसी स्थिति में इन सरकारी संस्थानों की खरीद के लिए जो अनुदान दिया जाता है उसे मार्च में न देकर जनवरी में ही रिलीज करना चाहिये और व्यवस्था यह होनी चाहिए कि खरीद के लिए कम से कम ३ माह का समय रहे, जिससे ये संस्थान मनोवांछित पुस्तकों की सूची बनायें तथा जिस दुकानदार से पुस्तकें लेना चाहें उसे समय दें, ताकि वह सूची की पुस्तकों को बाजार से जुटा कर उन्हें उपलब्ध करा सके। देखा जाता है कि समय की कमी के कारण वे पुस्तकें संस्था को सुलभ नहीं हो पातीं—जिनकी कि पाठकों को आवश्यकता है।

उदाहरणार्थ आप एक प्राइमरी स्कूल को लीजिए—इसके लिए जिस तरह की पुस्तकें चाहिये वे यदि समय पर उपलब्ध नहीं हैं और अनुदान की अवधि समाप्त हो रही है तो शिक्षक महोदय ऐसी पुस्तकों से माँग पूरी कर लेते हैं जो बाजार में उपलब्ध तो हैं लेकिन जो बच्चों के लिये अनुपयोगी है। समय का यह सरकारी प्रतिबन्ध यदि बढ़ा दिया जाये तो उपरोक्त खामियाँ काफी हद तक दूर हो सकती हैं।

पुस्तकों का चुनाव

सरकारी संस्थानों द्वारा पुस्तकों के चुनाव करने की पद्धति भी निहायत दोषपूर्ण है। जैसाकि हम सरकारी संस्थानों का ऊपर वर्गीकरण कर चुके हैं उसे देखते हुए हम यहाँ कुछ तथ्य उपस्थित करेंगे। अमूमन देखा जाता है कि लाइब्रेरियों में कमीशन की लालच या व्यक्तिगत स्वार्थों के कारण अच्छा साहित्य नहीं आता। आइये इस सन्दर्भ में एक छोटा-सा उदाहरण लें—एक हाई स्कूल, जहाँ पुस्तकों की सूची प्रायः हेडमास्टर का प्रिय पात्र एक मास्टर बनाता है, वहीं नाममात्र का लाइब्रेरियन भी होता है। अधिकांश स्कूलों की लाइब्रेरियों में पुस्तकें आज भी एक इंच गर्द से नहीं तो आधे इंच गर्द से अवश्य ढँकी रहती हैं। तथाकथित लाइब्रेरियन से जब अनुदान उपयोग के लिए तगादा होता है तब वह पुस्तकों की खरीद के लिए चलता है। हड़बड़ी में इधर-उधर के जो सूचीपत्र आये रहते हैं उसी से वह लिस्ट बनाता है। यहाँ यह भी होता है कि विद्यालय के मास्टरों की आवश्यकता भी देखी जाती हैं। अध्यापकों को प्रायः एम० ए० या बी० टी० की परीक्षा देनी होती है। पुस्तकें कहाँ से आवें, स्कूल लाइब्रेरी में हो उसे मँगा लिया जाता है, चाहे वह बच्चों के पढ़ने की चीज हो या न हो। बच्चों से लाइब्रेरी फीस भी ली जाती है, फिर भी उस नैतिकता का ध्यान विद्यालय के अधिकारी प्रायः नहीं रखते। होता यह है कि दुकानदार के पास अध्यापक या लाइब्रेरियन महोदय पहुँचे और उससे अधिक कमीशन की माँग की। यह भी नहीं देखा कि वांछित सूची की पुस्तकें मिलीं या नहीं। कभी-कभी यह भी होता है कि लाइब्रेरियन महोदय स्कूल में आई हुई नमूने की पाठ्यपुस्तकों की सूची तैयार कर लेते हैं और अनुदान के रुपयों में से आधा चौथाई माल दूकानदार से खरीद लिया जाता है। उन पाठ्यपुस्तकों का बिल भी उनके लेटर हेड पर बना लिया जाता है। परिणाम यह होता है कि छात्रों के लिए उपयोगी पुस्तकें विद्यालयों में नहीं आ पातीं।

विद्यालयों में पुस्तकालय के अतिरिक्त पुरस्कार वितरण समारोह के लिए भी पुस्तकें खरीदी जाती हैं, परन्तु वहाँ भी अर्थाभाव के कारण अधिकांश विद्यालय कमीशन के लालच में रद्दी पुस्तकें खरीदते हैं।

छात्रों की रुचि और माँग

विद्यालयों की खरीद में एक और चीज सामने आती है—वह यह है कि कभी भी छात्रों से नहीं पूछा जाता कि उनकी माँग क्या है, रुचि क्या है। अच्छा होता यदि छात्रों की रुचि का सर्वेक्षण कर उपयोगी पुस्तकें ली जायें।

विद्यालयों में यह भी देखा जाता है कि अकारण अपने देश की भाषाओं की

पुस्तकें न खरीदकर आलमारियों की शोभा बढ़ाने के लिए तथा अपनी विशेष योग्यता प्रदर्शित करने के लिए आचार्यगण अंग्रेजी का साहित्य खरीद लेते हैं जिससे हमारे देश की भाषाओं के प्रकाशन का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है। आवश्यकता है आज हमारे छात्रों को सम्राट हर्षवर्द्धन, नाना फड़नवीस, शिवाजी, अकबर, गुरुनानक के जीवन-चरित्रों की न कि अल्फ्रेड दि ग्रेट, क्रॉमवेल, किंग रिचर्ड आदि की जीवनी की। विद्यालय का जीवन विद्यार्थियों के लिए अपने देश की संस्कृति से परिचय पाने का होता है। प्रारम्भ में ही यदि आचार्य जी के अंग्रेजियत के भूत ने विद्यार्थियों को देश के जीवन, देश के परिचय से विमुख किया तो यह राष्ट्रीय अपराध माना जायेगा। दूसरी ओर पुस्तकों की खरीद में यह भी ध्यान रखना होगा कि जो कुछ खरीदा जा रहा है उसका उपयोग भारतीय विद्यार्थी करेंगे। कहने का आशय है कि हमारे संस्थान हमारे लेखकों और हमारे प्रकाशकों द्वारा लिखी और प्रकाशित पुस्तकें यथाशक्ति अधिक से अधिक मात्रा में खरीदें। जिन विषयों पर हमारे यहाँ पुस्तकें उपलब्ध नहीं हैं और जिनकी जानकारी के लिए हमें अंग्रेजी की पुस्तकें अनिवार्य रूप से खरीदनी ही पड़ेगीं उन्हें भी बजट के अनुपात में खरीदना चाहिए। यह नहीं होना चाहिए कि यदि १००० रुपये का वजट है तो समूचा बजट अंग्रेजी पुस्तकों की खरीद में लगा दिया जाय।

पुस्तकालयों के लिये चुनाव

पुस्तकालय-आन्दोलन से देश में पुस्तकालयों का विकास हुआ है। इससे सरकारी पुस्तकालय समृद्ध हुए हैं। वहाँ नियुक्तियाँ भी ऐसे लाइब्रेरियनों की होती हैं जो कि पुस्तकालय विज्ञान के डिप्लोमा होल्डर होते हैं। इन पुस्तकालयों में जो पुस्तकें खरीदी जाती हैं उनपर विचारणीय प्रश्न हैं—१. क्या पाठकों की रुचि के सर्वेक्षण के आधार पर पुस्तकें खरीदी जाती हैं? २. क्या निकटस्थ पुस्तक-विक्रेता के प्रभाव से पुस्तकें खरीदी जाती हैं? ३. क्या शिक्षा विभाग द्वारा स्वीकृत पुस्तकों की सूची से पुस्तकें खरीदी जाती हैं? ४. क्या लाइब्रेरियन अपनी इच्छा से पुस्तकें खरीदते हैं? ५. क्या सरकार द्वारा गठित पुस्तक-चयन समिति द्वारा निर्णीत पुस्तकें ही खरीदी जाती हैं?

अच्छे पुस्तकालय पाठकों की रुचि के सर्वेक्षण के आधार पर पुस्तकें खरीदते हैं। वे इस बात को दृष्टि में रखते हैं कि पाठक किस तरह की पुस्तकें पढ़ रहे हैं और किस तरह की पुस्तकों की माँग पुस्तकालय में है। कहना न होगा कि ऐसे पुस्तकालय इने-गिने ही हैं। अधिकांशत: लाइब्रेरियन अभी तक इस दिशा में प्रयत्नशील ही नहीं हैं। अर्थाभाव के कारण सभी सरकारी लाइब्रेरियों में डिप्लोमा होल्डर लाइब्रेरियन अभी तक नहीं नियुक्त किये गये हैं। फलत: जो लोग इस काम को देखते हैं उन्हें अपने दायित्व का वह ज्ञान नहीं है जो कि एक सुशिक्षित लाइब्रेरियन को होना चाहिए। पुरानी लकीर पीटनेवाले जो लाइब्रेरियन चले आ रहे हैं वे प्राय: प्रकाशकों की सूची से ही अपनी लिस्ट बना लेते हैं। जबकि अधिक पढ़े-लिखे न होने के कारण उन्हें आज के व्यापक ज्ञान-परिवेश का अनुभव भी नहीं होता। वास्तव में आज का समाज पढ़ना क्या चाहता है इसकी भी जानकारी उन्हें नहीं है। पाठकों की रुचि को दृष्टिगत रख पुस्तकें खरीदने की बात तो अभी तक उनके दिमाग में घर नहीं कर सकी है। परिणामत: वे ऐसी पुस्तकें खरीद लेते हैं जिनका उपयोग आज के पुस्तकालयों में कम होता है या नहीं के बराबर है।

देखा जाता है कि पास के पुस्तक-विक्रेता का प्रभाव लाइब्रेरियन पर प्रायः होता है। वैसे यह आवश्यक भी है कि पास के पुस्तक-विक्रेता को लाभ हो, परन्तु इस तरह की खरीद में सतर्कता बरतना आवश्यक है। किसी लोभ में ऐसी पुस्तकें नहीं खरीदनी चाहिए जिनको आवश्यकता लाइब्रेरी में न हो अथवा अवांछित पुस्तकें विक्रेता के प्रभाव में ले ली जायें।

अच्छे बड़े सरकारी पुस्तकालयों के पुस्तकालयाध्यक्ष भी इस दोष से मुक्त हैं यह नहीं कहा जा सकता। व्यक्तिगत स्वार्थों के कारण कहीं-कहीं ऐसा देखने में आया है वास्तविक पुस्तक-विक्रेता से पुस्तकें नहीं खरीदी जातीं। रातोरात लेटरहेड छप जाते हैं और एक नया फर्म स्थापित हो जाता है और इसी फर्म से पुस्तकें भी खरीद ली जाती हैं। आवश्यकता है कि ऐसे ही पुस्तक-विक्रेता से पुस्तकें खरीदी जायँ जो देश की प्रसिद्ध प्रकाशन संस्थानों से सम्बद्ध हो, जिसका सामाजिक स्तर स्थानीय क्षेत्र में ज्ञात हो तथा जो पर्याप्त स्टाक रखता हो।

चुनाव कैसे करें

पुस्तकालयों में अब शिक्षा विभाग द्वारा प्राप्त सूची की पुस्तकों को अनिवार्य रूप से खरीदने की प्रथा चल पड़ी है। इस प्रकरण का एक स्वरूप अच्छा है—वह यह कि शिक्षा विभाग प्रकाशकों से पुस्तकें आमंत्रित करता है, फीस लेता है और उन पुस्तकों की आलोचना (रिव्यू) कराकर उन्हें स्वीकृत करता है। ऐसी सूची की पुस्तकें खरीदी जायँ तो उत्तम है। परन्तु इसके साथ एक गलत परिपाटी भी चल पड़ी है। मंत्रियों और वरिष्ठ सरकारी अधिकारियों की संस्तुति से कुछ ऐसी पुस्तकें भी सरकारी सूची में आ जाती हैं जो सर्वथा अनपेक्षित होती हैं। व्यक्तिगत दबाव के कारण सूची में आई ऐसी पुस्तकें कहीं-कहीं तो पुस्तकालयों का सारा बजट ही समाप्त कर देती हैं। खेद है कि इस कुप्रथा की ओर अभी तक सरकार ने ध्यान नहीं दिया है।

प्रशिक्षित लाइब्रेरियनों को स्वेच्छया पुस्तकें चुनने का अधिकार है और वह यदि पाठकों की रुचि को ध्यान में रखक पुस्तकों की सूची बनायें तो उत्तम होगा, क्योंकि लाइब्रेरियन पाठकों और पुस्तकों के बीच की कड़ी है। प्रकाशक संघों तथा बड़े-बड़े प्रकाशकों द्वारा पुस्तक-व्यवसाय के जो पत्र निकलते हैं, सूची बनाने में उनसे भी सहायता ली जा सकती है। कहीं-कहीं बड़े-बड़े सरकारी पुस्तकालयों में आस-पास के प्रतिष्ठित नागरिकों की एक पुस्तक-चयन समिति भी गठित की जाती है, यह पद्धति सराहनीय है।

अर्धसरकारी और स्वायत्त संस्थाओं के प्राइमरी स्कूलों के पुस्तकालयों के लिए सरकारी खरीद बहुत बड़ी संख्या में होती है। पुस्तकों की कभी-कभी २००० से ८००० प्रतियों तक की माँग होती है। इस तरह की पुस्तकों के चुनाव के लिए कई राज्यों में शिक्षा विभाग गजट द्वारा पुस्तकें आमंत्रित करता है, परन्तु ऐसी खरीद में भी जैसा भ्रष्टाचार देखने में आया है उससे यह आशा नहीं की जा सकती कि प्रतिष्ठित प्रकाशन संस्थाओं और सत्साहित्य की खरीद को प्रश्रय मिलेगा। सबसे बड़ी चीज़ तो यह है कि जो समिति इन पुस्तकों की खरीद करती है, उसके सदस्यों के घर नकली प्रकाशकों की भीड़ लग जाती है। बताना न होगा कि ये प्रकाशक मंत्रियों और अधिकारियों के प्रिय-पात्र

होते हैं। लम्बी सरकारी खरीद के बाद इन नकली प्रकाशकों की छाया भी नहीं दिखाई देती। ऐसी खरीद में कमीशन, पक्षपातपूर्ण व्यवहार और पहुँच (अप्रोच) महत्व रखते हैं। एक अच्छे प्रकाशक के लिए यह सब सम्भव नहीं हैं। इस तरह की खरीद से कई राज्यों में प्रान्तीयता की आवाजें भी आयीं हैं। सुना गया है कि उन प्रकाशकों की पुस्तकों को प्राथमिकता मिलनी चाहिए जो उसी राज्य के हैं। जब हम परतंत्र थे, अनपढ़ थे, हमारे बीच पुस्तकालयों का अभाव था तब केवल एक चीज़ हमारे पास थी और वह थी हमारा पुरातन ज्ञान, परन्तु आज जहाँ शिक्षा का प्रसार बढ़ रहा है वहीं पुरानी नौकरशाही पद्धति के कारण अज्ञान भी उत्पन्न हो रहा है और अब हम शिक्षा के क्षेत्र में स्वार्थों के आगे राष्ट्रीयता को भी बेच रहे हैं। वास्तव में इस तरह की खरीद के लिए शिक्षा विभाग को बड़े ही ईमानदार व्यक्ति रखने चाहिए और समिति में प्रकाशकों तथा पुस्तक-विक्रेता के प्रतिनिधियों को भी अवश्य रखना चाहिए। इससे व्याप्त बुराइयाँ दूर हो सकेंगी और साथ ही बालकों के पास अच्छा साहित्य पहुँच सकेगा।

भुगतान

सरकारी संस्थानों से भुगतान प्राप्त करने का प्रश्न भी बड़ा जटिल है। कभी-कभी तो इस भुगतान में वर्षों लग जाते हैं। कहीं बिल में थोड़ी-सी भूल हो गयी या कोई पुस्तक वापस करने का प्रश्न उठा तो समझिये कि बिल के आने-जाने और लापरवाही से कार्यालय में पड़े रहने के कारण इतना समय बीत जाता है कि पुस्तक-विक्रेता की कमाई तो दूर रही, उस रकम का ब्याज भी उसे नहीं मिलता। कहीं-कहीं ऐसा होता है कि ३१ मार्च को ड्राफ्ट तो बन जाता है, परन्तु वह ड्राफ्ट या चैक पुस्तक विक्रेता को तब तक नहीं मिलता जब तक कि दफ्तर में काली रकम न पहुँचे। कभी-कभी तो ड्राफ्ट तब पहुँचता है जब उसके पेमेन्ट का समय बीत चुका होता है। कभी-कभी चेक या ड्राफ्ट खो भी जाते हैं। एक राज्य में तो कई फर्मों के चेक दूसरे खाते में कैश हो गये हैं।

इन स्वायत्त संस्थाओं से भुगतान प्राप्त करना एक लड़ाई जीतना है। कभी चेयरमैन साहब प्रसन्न हैं, तो डिप्टी साहब नाराज हैं। इन दोनों से छुटकारा मिला तो बड़े बाबू और दफ्तरवाले मुकाबले के लिए तैयार हैं। यदि आप व्यापारिक मर्यादा को दृष्टिगत रख भुगतान की अपेक्षा रखें तो वह ९९ प्रतिशत मामलों में सम्भव नहीं है। १ प्रतिशत ही भुगतान ऐसा होता है जिसे ईमानदारी का भुगतान कहा जायगा।

प्राय: देखा जाता है कि जल्दी से जल्दी भुगतान तीन महीनों के पहले नहीं होता। इस बात को आप छोड़ें कि कभी कोई सरकारी खरीद के लिए सेना का आफिसर या रेलवे का आफिसर नकद पैसे देकर पुस्तकें ले गया। अधिकांशत: सरकारी संस्थानों में भुगतान की ऐसी कुव्यवस्था है जिससे ईमानदार पुस्तक विक्रेता सप्लाई का काम पसन्द नहीं करता। वस्तुत: भुगतान के लिए नियम बनने चाहिए और अधिक से अधिक ३० दिन के अन्दर बिल का भुगतान हो जाना चाहिए।

टेण्डर प्रथा

पुस्तकों की खरीद के लिए टेण्डर प्रथा बहुत ही गलत चीज है। पुस्तकें साबुन नहीं हैं, तेल नहीं हैं, पाउडर नहीं हैं। जनमानस को छूनेवाली यह वस्तु हमारी संस्कृति

और हमारे इतिहास की साक्षी हैं। हृदय का स्पन्दन करनेवाली पुस्तकों का मोल-भाव वाक्‌देवी का मोल-भाव है। सरकारी संस्थाओं में टेण्डर माँगे जाने की प्रथा है! कोई सरकारी संस्था सवा छः प्रतिशत में पुस्तकें खरीदती हैं और कोई २५ प्रतिशत के नाम पर कूड़ा खरीदती हैं। एक सरकार के अनेक विभाग और अनेक तरह के कमीशन, अनेक तरह की खरीददारी। परिणाम यह हो रहा है कि साहित्य के नाम पर शासन द्वारा कूड़ा खरीदा जा रहा है। यह सही है कि अच्छी पुस्तकें ज्यादा कमीशन पर नहीं मिल सकतीं। यहाँ अच्छे प्रोडक्शन के साथ-साथ लेखक की रायल्टी, पुस्तकों पर लागत के अलावा उक्त साहित्य-कितनों दिनों तक गोदाम में पड़ा रहा है और उसपर कितना नुकसान हुआ यह भी सोचने का प्रश्न है। जब तक यह कलुषित टेंडर प्रथा समाप्त नहीं होती तब तक अच्छा साहित्य सरकारी संस्थानों में नहीं पहुँचेगा।

पुस्तक-विक्रेताओं की भूमिका

सरकारी संस्थानों को अच्छी पुस्तकें मिल सकें इसके लिए अच्छे पुस्तक-विक्रेताओं को सजग रहना होगा। उन्हें पारस्परिक व्यापारिक स्पर्धा का रास्ता बदल कर अच्छी पुस्तकों की सप्लाई के लिए सन्नद्ध होना चाहिए। आस-पास के संस्थान और लाइब्रेरियों में अच्छे प्रकाशनों की सूची मँगाकर वितरण करना चाहिए, जिससे अच्छी पुस्तकों की सूची तैयार हो। उनका यह भी कर्त्तव्य होना चाहिए कि जिस तरह की माँग संस्थानों में हो, उसी तरह की पुस्तकें बाजार से मँगा कर दें। कमीशन की होड़ में उन्हें नहीं जाना चाहिए। स्मरणीय है कि जितनी एक दूसरे की निन्दा पुस्तक व्यवसायी करते हैं ऐसा और किसी व्यवसाय में नहीं होता। संस्कृति और शिक्षा के क्षेत्र में कार्य करनेवाले संस्कृति विरोधी कार्य करेंगे तो पुस्तक-व्यवसाय कैसे पनपेगा यह विचारणीय है।

अन्त में कुछ सुझाव दिये जा रहे हैं। आशा है कि ये व्यावहारिक सिद्ध होंगे:

१. टेण्डर प्रथा समाप्त की जाय। २. खरीद की जानेवाली पुस्तकों की सूची की तैयारी में राष्ट्रीय धन के सदुपयोग के लिए पाठकों की रुचि का सर्वेक्षण किया जाय। ३. भुगतान की अवधि निश्चित की जाय। ४. भारतीय भाषाओं में प्रकाशित साहित्य को ही अधिकांशतः खरीदा जाय। ५. जो पुस्तक-विक्रेता प्रकाशक संघ द्वारा मान्य हों, उन्हीं से पुस्तकें खरीदी जायँ। ६. वार्षिक क्रय के बजाय पुस्तकों की मासिक क्रय की पद्धति चले तो ज्यादा उत्तम होगा। ७. सरकारी संस्थाओं को अपने यहाँ प्राप्त सूचियों तथा खरीद की जानेवाली पुस्तकों की प्रदर्शनियाँ लगवानी चाहिए, जिससे पाठकों की रुचि अच्छी पुस्तकों की ओर बढ़े। ८. इस बात की पड़ताल होनी चाहिए कि पुस्तकों के लिए दिये गये अनुदान का सही उपयोग हुआ या नहीं। ९. पुस्तक चयन-समिति में प्रकाशक एवं पुस्तक-विक्रेताओं के प्रतिनिधियों को रखना चाहिए जिससे वे सत्साहित्य के संबंध में सूचना और सुझाव देते रहें। १०. प्रकाशकों द्वारा प्रकाशित पत्र-पत्रिकाएँ पुस्तकालयों में अनिवार्य रूप से मँगायी जानी चाहिए, जिससे यथासमय पुस्तकों की सूची बनाने में सहायता मिलें।

पुस्तकों का सामूहिक प्रचार-प्रसार

शिक्षा के बढ़ते हुए चरण के परिप्रेक्ष्य में आज हमारे देश में पंद्रह करोड़ छात्रों और तीस करोड़ शिक्षितों की संख्या को देखते हुए पुस्तकों का उत्पादन और बिक्री नगण्य हैं। भारत विकासशील देश है और यहाँ शिक्षा की प्रगति के साथ-साथ पाठकों की संख्या भी अनवरत बढ़ रही है, परन्तु सर्जनात्मक पुस्तक जगत से पाठकों का अपेक्षित सम्बन्ध नहीं है। वैसे हमारे देश में पुस्तक प्रकाशन के बहुत प्रयत्न हो रहे हैं और गिनाने को प्रकाशकों की संख्या पाँच अंकों तक पहुँच चुकी है, परन्तु पाठ्य पुस्तकों को छोड़कर समुचित प्रचार-प्रसार के अभाव तथा स्टाक सम्पन्न पुस्तकों की दुकानों की कमी के कारण अच्छी पुस्तकें बिक नहीं पातीं। इस तरह की पुस्तकों के कम बिकने, अधिक संख्या में न छपने एवं उत्पादन-व्यय अधिक होने के कारण, इनके अधिक मूल्य के कारण पाठक इनसे दूर रहे हैं। परिणामस्वरूप कम पूँजी से खुलनेवाली अनेक नवोदित प्रकाशन संस्थाएँ त्वरित व्यापारिक उलट-फेर (टर्न ओवर) न होने के कारण बन्द हो जाती हैं।

सामूहिक हल खोजें

तरह-तरह की पुस्तकों के प्रकाशकों के अलग-अलग वर्ग हैं और इन वर्गों के पाठकों के क्षेत्र भी अलग-अलग हैं। प्रकाशकों के हर वर्ग की अपनी-अपनी समस्याएँ हैं। पाठ्य-पुस्तकों के प्रकाशक, जन साहित्य के प्रकाशक, धार्मिक साहित्य के प्रकाशक तो किसी हद तक अपने पाठकों तक पहुँच जाते हैं, परन्तु सर्जनात्मक साहित्य के प्रकाशकों के लिए इतने विशाल देश में सामान्य पाठकों तक पहुँचना एक बहुत बड़ी समस्या है। भारत जैसे गरीब देश में जहाँ पूँजी कम है वहाँ साधारण पूँजी से प्रकाशन-व्यवसाय प्रारम्भ करने का लोग साहस करते हैं। ऐसे में उत्पादन के साथ-साथ प्रचार के लिए पृथक् अच्छा-खासा बजट बनाने का प्रश्न ही नहीं उठता। पुनः ८० प्रतिशत ग्रामीण नागरिकों और बच्चों के देश में दो ऐसे वर्ग हैं जिसमें प्रचार के अभाव में पुस्तकों का प्रवेश समुचित रूप से नहीं हुआ है। इन समस्याओं का समाधान हमारे लिए एक प्रश्नचिह्न है। मिल-जुलकर काम को पूरा करने की सामाजिक प्रवृत्ति से हम इस क्षेत्र में भी सफल हो सकते हैं। पुस्तकों के विक्रय के प्रयत्न में सामूहिक प्रचार-प्रसार की विधि प्रकाशकों के लिए सर्वोत्तम है। नवोदित तथा कम पूँजीवाले प्रकाशक ऐसी योजनाओं से अधिक लाभान्वित हो सकते हैं। इस तरह की योजनाओं से साहित्य के क्षेत्र में पदार्पण करनेवाले नये लेखकों को भी लाभ पहुँच सकता है। उपरोक्त सन्दर्भों को दृष्टिगत रख इन दो पहलुओं पर हमें विचार करना है।

१. प्रचार-प्रसार के लिए क्या कार्यक्रम हो ?

२. कौन-सी ऐसी एजेंसी स्थिर की जाय जो हमारी योजना को कार्यान्वित करे।

पुस्तक-विक्रय के निम्नलिखित चार प्रमुख क्षेत्र हैं—

१. पुस्तकालय तथा सार्वजनिक संस्थाएँ

२. पाठक

३. सरकारी खरीद

४. छात्र समुदाय

प्रश्न उठता है कि साधारण प्रकाशक की आर्थिक स्थिति के परिप्रेक्ष्य में कौन-सा सामूहिक हल खोजा जाय जिससे चारों क्षेत्रों में उसके प्रकाशन पहुँच सकें।

प्रचार-प्रसार के कार्यक्रम

स्वतन्त्रता के बाद विज्ञापन के अनेक माध्यम उद्भूत हुए हैं। जैसे समाचारपत्रों के माध्यम से विज्ञापन, रेलवे प्लेटफार्मों, बस स्टेशनों, एयरपोर्टों, विभिन्न शहरों के प्रमुख स्थानों आदि पर होर्डिंग लगाना। इसके अलावा पुस्तकों की दुकानों पर आकर्षक विज्ञापन-पट प्रदर्शित करना, पुस्तक सूची, फोल्डर जैसी स्टेशनरी, पुस्तक-जगत से सम्बन्धित पत्रिकाएँ प्रकाशित करना तथा सिनेमा, आकाशवाणी एवं टेलीविजन का पुस्तकों के प्रचारार्थ उपयोग। लेकिन उपरोक्त सभी माध्यमों का सीमित उपयोग ही हमारे लिए सम्भव है। कुछ प्रकाशन संस्थाएँ तो इस तरह के विज्ञापन के लिए बजट की व्यवस्था कर लेती हैं, परन्तु साधारण वर्ग के प्रकाशकों के लिए इस प्रकार की आधुनिक विज्ञापन पद्धति पूँजी के अभाव में संभव नहीं हैं। ऐसी स्थिति में अपने प्रकाशनों के विक्रय के सामूहिक प्रचार-प्रसार के लिये निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत हैं।

१. निजी मासिक पत्रिकाओं का प्रकाशन जिनमें नई पुस्तकों के सम्बन्ध में सूचना हो। उसमें चुनी हुई पुस्तकों की आलोचना तथा पुस्तक-परिचय प्रकाशित किया जाय। पत्रिका के माध्यम से प्रकाशनों को विशेष रूप से विज्ञापित किया जाय।

२. विभिन्न प्रकाशकों की पुस्तकों का संयुक्त सूचीपत्र प्रकाशित किया जाय। सूचीपत्र के प्रकाशन में यदि विभिन्न वर्ग के प्रकाशक अलग-अलग गुट बनाकर सूची प्रकाशित करें तो ज्यादा उपयोगी होगा। यथा—विश्वविद्यालय स्तर की पुस्तकों के प्रकाशनों की सूची, साहित्यिक पुस्तकों के प्रकाशनों की सूची, धार्मिक पुस्तकों के प्रकाशनों की सूची, संस्कृत पुस्तकों के प्रकाशनों की सूची आदि। ऐसी सूची एक जगह से पोस्ट होने से पोस्टेज व्यय की बचत होगी और कई प्रकाशक एक साथ लाभान्वित भी होंगे। पुस्तकें कहाँ सुलभ होंगी इसका विवरण भी सूचीपत्रों में छपा रहना आवश्यक है।

३. प्रतिमास प्रकाशित होनेवाली उत्तमोत्तम पुस्तकों के फोल्डर तैयार किये जायँ। फोल्डर प्रकाशक ही तैयार करें और अपने चुने हुए ग्राहकों के अतिरिक्त उस

एजेंसी को भी दें जहाँ से सामूहिक रूप से इसका प्रचार पुस्तकालयों, सरकारी क्षेत्रों, शिक्षण संस्थाओं तथा पाठकों के बीच हो।

४. किसी भी प्रसिद्ध लेखक की कृति का सामूहिक रूप से प्रचार-प्रसार भी लाभदायक हो सकता है यदि उसकी कृतियाँ विभिन्न प्रकाशकों ने प्रकाशित की हों।

५. विज्ञापन एजेंसी के माध्यम से समाचारपत्रों को सामूहिक रूप से विज्ञापन देने से लाभ हो सकता है। एजेंसियाँ अधिक व्यापार पाने की आशा में अपने लाभांश के कमीशन का कुछ अंश बिलों में कम कर देती हैं। इन एजेंसियों के माध्यम से प्रकाशक व्यक्तिगत विज्ञापन भी करा सकते हैं। १०/२० प्रकाशक मिलकर नई पुस्तकों का सामूहिक रूप से नियमित विज्ञापन करें तो लाभकर होगा। स्मरणीय है कि अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ की ओर से ऐसी एक योजना बनी थी जिसमें यह विचार परिलक्षित हुआ था कि सदस्यों के प्रतिमास प्रकाशित होनवाले प्रकाशनों को देश की दो प्रमुख साप्ताहिक पत्रिकाओं—धर्मयुग और साप्ताहिक हिन्दुस्तान में प्रतिमास विज्ञापित किया जाय और प्रति पुस्तक के हिसाब से विज्ञापन का व्यय निर्धारित करके सदस्यों से प्राप्त किया जाय। विज्ञापन एजेंसियों के माध्यम से दूरदर्शन पर कुछ पुस्तकों के सामूहिक विज्ञापन का कार्य भी हो सकता है। पुरस्कृत पुस्तकों का विज्ञापन भी इसी क्रम का एक अंग बनाया जाय।

६. आकाशवाणी और टेलीविजन का व्यवहार भी पुस्तकों के लिए अच्छा माध्यम है। कई प्रकाशक आकाशवाणी के विविध भारती कार्यक्रमों में विज्ञापन देते हैं। टेलीविजन में भी विज्ञापन का कार्यक्रम प्रारम्भ होने वाला है। यह एक विचारणीय विषय है कि इन दोनों माध्यमों का समूहिक रूप से पुस्तकों के प्रचार-प्रसार के लिए क्या उपयोग हो सकता है?

७. प्रदर्शनियों द्वारा सामूहिक पुस्तक-विक्रय का आयोजन किया जाना चाहिए। ऐसी प्रदर्शनियाँ फिलहाल वहुत अधिक लाभप्रद न होते हुए भी भविष्य के लिए अच्छा बाजार बनाने में सहायक होंगीं। बड़े-बड़े कालेजों तथा जहाँ एक साथ आसपास पर्याप्त शिक्षण संस्थाएँ हों, वहाँ ऐसी प्रदर्शनियाँ लाभप्रद होंगी। मेले भी इनके लिए उपयुक्त स्थान हैं। पुस्तक केन्द्रों में पुस्तकालयाध्यक्षों, पाठकों, छात्रों, शिक्षकों तथा सरकारी प्रतिष्ठानों के अधीक्षकों को आमन्त्रित कर नये प्रकाशनों से परिचित कराया जाना चाहिए। सरकारी सहायता से जहाजों और रेलों पर भी भ्रमणशील प्रदर्शनियाँ आयोजित की जा सकती हैं। इस तरह का विदेशों में कार्यक्रम चलता है।

८. पुस्तक-विक्रय केन्द्रों की स्थापना तथा स्थापित पुस्तक-विक्रय केन्द्रों से सहायता लेना, ताकि विज्ञापित पुस्तकें पाठकों तथा अन्य संस्थाओं को आसानी से सुलभ हो जायँ। इस व्यवस्था के लिये थोक पुस्तक विक्रेता (होलसेलर) भी स्थिर किये जायें।

९. प्रचार-प्रसार के लिए एक बजट कौंसिल की स्थापना करना। सदस्यों की आवश्यकताओं को दृष्टिगत रख बजट का निर्धारण भी इसी कौंसिल का कार्य हो तथा कौंसिल खर्च का तखमीना और एक निश्चित बजट बनाकर प्रचार-प्रसार पर व्यय करे।

१०. ऐसे रेलवे स्टेशनों, पोस्ट आफिसों, हवाई अड्डों तथा बस स्टेशनों पर सामूहिक रूप से बुक स्टालों को खुलवाना जहाँ पहले से यह सुविधा न हो।

११. पुस्तकों के निर्यात के लिए सजी-धजी सामूहिक सूची का प्रकाशन।

१२. पाठ्य-पुस्तक विक्रेताओं की सूची बनाना और उनके माध्यम से साहित्यिक पुस्तकें बेचने का प्रयत्न करना। ये विक्रेता पाठ्य-पुस्तक सीजन के बाद प्रायः खाली रहते हैं और साथ ही साथ इनकी लाइब्रेरियों और पाठकों में पहुँच भी होती है।

१३. बुक क्लब आन्दोलन प्रारम्भ किया जाय। छोटे-छोटे प्रकाशक अपने प्रतिष्ठानों के सुप्रसिद्ध लेखकों की कृतियाँ सहकारिता के आधार पर एकग्रुप बनाकर छापें और छोटे-छोटे ग्रुप बुक क्लब आन्दोलन चलायें। इस योजना के अन्तर्गत रियायती मूल्य पर पुस्तकें ग्राहकों को सुलभ कराई जायें। ऐसे ग्राहक प्रकाशकों के उत्कृष्ट प्रकाशन रियायती मूल्य पर ले सकते हैं। उदाहरणार्थ एक तथ्य आपके सामने है। चर्चिल के संस्मरण की बिक्री बहुत कम थी, परन्तु जब बुक क्लब के माध्यम से उसे आफर किया गया तो उसकी लाखों प्रतियाँ बिकीं।

सफलता की कुञ्जी

सामूहिक प्रयत्नों की सफलता के लिए यह जरूरी है कि पुस्तकों में सुपाठ्य विषयवस्तु के साथ-साथ प्रकाशनों का मानक सन्तोषजनक हो। इसके अलावा कम मूल्य और विज्ञापन के बाद सप्लाई व्यवस्था ठीक रखना सफलता की कुञ्जी है।

पुस्तकालयों के लिए विशेष प्रयत्न

देश में प्रकाशित होनेवाले साहित्य का ९० प्रतिशत लाइब्रेरियों में जाता है, चाहे वह सरकारी खरीद के माध्यम से जाये या सीधे बिके। लाइब्रेरियों में सामूहिक प्रयत्नों से बड़ा लाभ हो सकता है। चुनी हुई पुस्तकों के पैकेट सामूहिक प्रचार-प्रसार एजेंसियों के माध्यम से ऐसी लाइब्रेरियों में प्रतिमास भेजे जाने चाहिये, जिनके पास प्रदर्शन कक्ष हों अथवा जैकेट प्रदर्शन के लिए प्रदर्शन-पट्ट। ऐसी लाइब्रेरियों की संख्या देश के सभी राज्यों को मिलाकर ५०० से अधिक नहीं है। विभिन्न भाषाभाषी हिन्दीतर राज्यों के प्रकाशकों के लिए प्रारम्भ में १०० से २०० कवर ही पर्याप्त होंगे और हिन्दी प्रकाशकों की दृष्टि से इन कवरों की संख्या ५०० तक जा सकती है। यदि प्रकाशक इस कार्यक्रम को बखूबी चलायें तो एक सरल उपाय यह है कि पहली बार पुस्तकों का कवर छपते

समय ही अतिरिक्त कवर भी छपवा लिये जाँय। कवरों के सार्वजनिक प्रदर्शन से यह लाभ होगा कि जहाँ पुस्तकों को आदेश लाइब्रेरियों से भी मिलेगा, वहीं साथ ही साथ कुछ समर्थ पाठक भी लाइब्रेरियों के माध्यम से पुस्तकों से परिचित होने पर अपनी मनपसन्द पुस्तकें मँगा सकते हैं। यहाँ एक समस्या उठती है कि क्या लाइब्रेरी के प्रदर्शन कक्ष में इतना स्थान उपलब्ध है, जहाँ प्रत्येक नई पुस्तक का कवर प्रदर्शित हो सके। यह एक ऐसा प्रश्न है जिसका मापदण्ड खोजना होगा और ऐसी पुस्तकों के प्रचार के लिए जिन पुस्तकों के कवर नहीं भेजे जा सके ऐसी पुस्तकों के लिये दूसरा मार्ग अपनाना होगा। नये उदीयमान लेखक इस तरह की प्रदर्शन-योजना से पाठकों के समीप शीघ्र पहुँच सकते हैं।

कार्यकारी एजेंसी

हिन्दी पुस्तकों के प्रचार-प्रसार के लिए कुछ छिटपुट प्रयत्न हुए हैं, परन्तु अभी तक कोई ऐसी एजेंसी स्थापित करने में हम असमर्थ रहे हैं जो इन कार्यक्रमों का संचालन करने का पूर्ण दायित्व ले सके। उपरोक्त योजनाओं का महत्त्व तभी है जब इनका कार्यान्वयन हो। यह एक जटिल प्रश्न है कि यह कार्य कौन करे? उसकी पद्धति क्या हो? प्रकाशक संघ, कोआपरेटिव आन्दोलन, नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया, कोई सरकारी एजेंसी अथवा प्रकाशकों का कोई ग्रुप? वर्तमान स्थिति में कोई भी एजेंसी पूरा कार्यक्रम चला सकने में समर्थ नहीं दीखतीं। अतः अन्य माध्यमों का सहारा लेना ही सर्वोत्तम है।

प्रकाशक संघ की भूमिका

देश में १९५४ से अखिल भारतीय स्तर पर प्रकाशक संघों की स्थापना प्रारम्भ हुई। हिन्दी प्रकाशक संघ भी इसी समय स्थापित हुआ। संघ ने अब तक बहुत कार्य किये, परन्तु आज इतने वर्ष बाद भी संघ को वह अपेक्षित स्थायित्व नहीं मिला। ऐसी मिलती-जुलती दशा अन्य प्रकाशक संघों की भी है। इस समय हिन्दी प्रकाशक संघ के अतिरिक्त, फेडरेशन आफ इण्डियन पब्लिशर्स तथा फेडरेशन ऑफ पब्लिशर्स एण्ड बुकसेलर्स एसोसिएशन इन इण्डिया दो संस्थाएँ और हैं। सभी संस्थाएँ विभिन्न क्षेत्रों में बहुत उपयोगी कार्य कर रही हैं, परन्तु पाठकों तक पुस्तकों के पहुँचाने की योजना के क्षेत्र में इन संघों को समन्वित रूप से बहुत कुछ करना है।

अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ पहले से ही 'हिन्दी प्रकाशक' नाम से मासिक पत्रिका का प्रकाशन करता है, जिसे चलते रहना चाहिये और इसे नये प्रकाशनों की सूचना, आलोचना, पुस्तक परिचय एवं विक्रय सम्बन्धी सूचनाओं का माध्यम बनाया जाना चाहिए। संघ के माध्यम से सदस्यों के प्रकाशनों की सूची प्रकाशित की जाय। अच्छा हो यदि विभिन्न विषयों की सूचियाँ अलग-अलग प्रकाशित हों। हमारे देश में पाठकों की आम शिकायत है कि उन्हें पुस्तकों के विषय में सटीक जानकारी नहीं मिलती। हिन्दी में प्रायः सभी विषयों पर पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। प्रकाशक संघ के माध्यम से आसानी से इसकी खोजबीन की जा सकती है और विभिन्न विषयों की पृथक् सूची प्रकाशित हो सकती है।

संघ के माध्यम से रेलवे स्टेशनों पर बुकस्टाल खुलवाया जा सकता है। संघ की माँग पर रेलवे स्टेशनों पर स्टाल मिल सकते हैं। अब तक ये स्टाल एकाधिकार वाली एजेंसियों को दिये जाते हैं। किसी एक व्यापारिक संस्था द्वारा रेलवे जैसे सार्वजनिक माध्यम पर आधिपत्य करने के बाद सत्साहित्य का प्रचार सम्भव नहीं है। अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ ने रेलवे मंत्रालय से आग्रह किया था कि संघ को रेलवे स्टेशनों पर अपने स्टाल खोलने की अनुमति दी जाय। आज जो साहित्य रेलवे स्टालों पर बिक रहा है, उनमें अधिकांशतः ऐसी पुस्तकें हैं जो युवकों के चरित्र को गुमराह तो करती ही हैं, साथ ही सत्साहित्य के प्रचार में बाधक भी हैं। हल्का-फुल्का साहित्य तो गवारा किया जा सकता है, परन्तु उसकी आड़ में अश्लील और चारित्रिक पतन की पुस्तकों का बिकना समाज सहन नहीं कर सकता। अश्लील पुस्तकों का प्रचार-प्रसार उतना ही हानिकारक है जितना स्वास्थ्य के लिए बाजार की बनी गन्दी चाट। लोग स्वास्थ्य के लिए पौष्टिक आहार जैसे ग्रहण करते हैं, उसी प्रकार सत्साहित्य भी मनःशान्ति का एक माध्यम है जिसका स्वास्थ्य पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है।

विभिन्न श्रेणी के प्रकाशक, संघ के सदस्य हैं लेकिन साथ ही संघ की अपनी सीमाएँ भी हैं। अतः प्रारम्भ में ऐसे क्षेत्र चुनने होंगे जिसमें सभी वर्गों के प्रकाशक सहयोग दें और सामूहिक प्रचार-प्रसार के कार्य को प्रोत्साहन मिले। निम्न कुछ सुझाव हैं—

१. चुनी हुई दो-तीन पत्रिकाओं में नये प्रकाशनों तथा पुरस्कृत कृतियों के सामूहिक विज्ञापन की व्यवस्था।
२. प्रतिवर्ष विभिन्न विधाओं पर २० अच्छी पुस्तकें प्रकाशित करनेवाले प्रकाशकों को पुरस्कृत करना। वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर पुरस्कार समारोह आयोजित करना और पुरस्कृत पुस्तकों का सामूहिक विज्ञापन करना।
३. पुस्तक प्रदर्शनियों का आयोजन करना जिसमें बिक्री की व्यवस्था भी हो। ग्रामों में पुस्तक प्रचार के लिये प्रकाशक संघ ने प्रदर्शनियों का जो आयोजन किया था वह अनुकरणीय उदाहरण है। उस कार्यक्रम के द्वारा सत्साहित्य को ग्रामों तक ले जा सकते हैं। इस कार्यक्रम के लिए नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया को माध्यम बनाया जा सकता है।
४. प्रचार-प्रसार सम्बन्धी सामग्री की प्रदर्शनियाँ लगाना। ऐसी सामग्री देश-विदेश के उच्च कोटि के प्रकाशकों से मँगायी जा सकती हैं।
५. वार्षिक अधिवेशनों के अवसर पर अपने बजट में प्रचार सम्बन्धी खर्च का प्रावधान रखना।
६. आकाशवाणी और दूरदर्शन के कार्यक्रमों में विज्ञापनों के लिए सरकार से विज्ञापन की दर में कमी की माँग करना।
७. ऐसे पाठ्य-पुस्तक विक्रेताओं की सूची बना कर सदस्यों में प्रचारित करना जो पाठ्य-पुस्तक सीजन के बाद साहित्यिक पुस्तकें बेचने में दिलचस्पी रखते हों।

८. पुस्तकों के निर्यात के लिए सदस्यों के प्रकाशनों की सामूहिक सूची का प्रकाशन करना। इस सम्बन्ध में जापान के प्रकाशक संघ का उदाहरण अनुकरणीय है। जापान का प्रकाशक संघ प्रतिवर्ष 'बुक्स फ्राम जापान' नामक बृहद् पुस्तिका का प्रकाशन करता है और उसे विदेशों के ग्राहकों में प्रचारित करता है।

प्रकाशकों के ग्रुप द्वारा सम्भावित कार्यक्रम

सभी कार्य प्रकाशक संघ द्वारा सम्भव नहीं हो सकते। अतः प्रकाशकों को अपने छोटे-छोटे ग्रुप बनाकर निम्नलिखित कार्य करने चाहिए।

१. संयुक्त रूप से सूचियों का प्रकाशन और वितरण। ऐसा प्रयास दिल्ली के कुछ प्रकाशकों ने किया है और उससे उन्हें बहुत लाभ पहुँचा है। प्रतिमाह प्रकाशित होनेवाली उत्तमोत्तम पुस्तकों के ऐसे फोल्डर तैयार करना जिसमें एकाधिक पुस्तकों का विवरण रहे।

२. विज्ञापन एजेंसियों से सम्पर्क स्थापित कर विज्ञापन दरों में सुविधा प्राप्त करना।

३. ऐसी प्रदर्शनियों का आयोजन करना, जहाँ १०/१५ प्रकाशक मिलकर अपने प्रकाशनों को प्रदर्शित कर बेच सकें।

४. विज्ञापित पुस्तकों को सुलभ कराने के लिए पुस्तक-विक्रय केन्द्रों की स्थापना करना तथा स्थापित पुस्तक-विक्रय केन्द्र के सम्बन्ध में अपने ग्रुप के लोगों को परामर्श देना।

५. अपनी बजट कौंसिल बनाना। कार्यक्रम संचालित करने के लिए आवश्यक रकम जुटाना।

६. बुक क्लब आन्दोलन चलाना।

नेशनल बुक ट्रस्ट आफ इण्डिया की भूमिका

१९५४ में जहाँ प्रकाशक संघों का उदय हुआ, उसके तीसरे वर्ष ही १९५७ में पुस्तकों को जनता तक पहुँचाने के लिए नेशनल बुक ट्रस्ट की स्थापना हुई। ट्रस्ट ने अपने जीवनकाल में बहुत ही उपयोगी कार्य किये हैं। जाने-अनजाने में ट्रस्ट कहीं-कहीं अपने उद्देश्य से भटक भी गया है। ट्रस्ट का सबसे अच्छा कार्य देश और विदेश में प्रदर्शनियों का आयोजन रहा है। देश के विभिन्न नगरों में बड़ी-बड़ी आंचलिक प्रदर्शनियाँ लगाना, राष्ट्रीय प्रदर्शनियों का आयोजन करना ट्रस्ट का सही दिशा में ठोस कदम है। इस अवसर पर ट्रस्ट ने सूचियाँ भी प्रकाशित की हैं और स्मारिकाएँ भी निकाली हैं, जिनमें विभिन्न भाषाओं के उत्कृष्ट साहित्य का परिचय रहता है। लेखकों के लिए वर्कशाप के आयोजन भी ट्रस्ट ने किये हैं।

विदेशों में पुस्तक प्रदर्शनियों का आयोजन ट्रस्ट का दूसरा श्लाघनीय कार्य है। इस अवसर पर प्रदर्शित प्रकाशनों की सूचियाँ प्रकाशित करना उपयोगी सिद्ध हुआ है। विदेशों

से हमारी पुस्तकों की माँग भी आने लगी है। इससे पुस्तकों के निर्यात को प्रोत्साहन भी मिला है। प्रकाशकों ने भी निर्यात सम्बन्धी व्यक्तिगत प्रयास किये हैं।

ट्रस्ट द्वारा एक भटकाव का कार्य भी किया गया है। वह स्वयं में ऐसी पुस्तकों का प्रकाशक हो गया है जो कि सामान्य प्रकाशक प्रकाशित करते हैं। इस क्षेत्र में ट्रस्ट से केवल आदर्श प्रकाशनों की ही अपेक्षा थी। ट्रस्ट को प्रकाशन के जंगल में बहुत अधिक नहीं भटकना चाहिए। देखा गया है कि अपने प्रकाशनों को उचित रूप से नहीं बेच पाने के कारण ट्रस्ट को साधारण प्रकाशकों से स्पर्द्धा करनी पड़ती है और अधिक कमीशन देकर अपनी पुस्तकें बेचनी पड़ती हैं। ट्रस्ट ने अपने प्रकाशन बेचने के लिए कुछ नगरों में पुस्तक केन्द्र खोले हैं। अच्छा हो ट्रस्ट इन्हीं केन्द्रों पर भारतीय भाषाओं में प्रतिमास प्रकाशित होनेवाले प्रकाशनों की प्रदर्शनी लगाये और उन पुस्तकों को बाजार में बेचे। ट्रस्ट को प्रतिमाह ऐसी पुस्तक-सूची प्रकाशित करनी चाहिए जिसमें देश के प्रकाशकों के प्रतिनिधि प्रकाशन अंकित हों। ट्रस्ट द्वारा पुरस्कृत प्रकाशनों का प्रचार होना चाहिए। ट्रस्ट को पुस्तकों से सम्बन्धित नीति वाक्यों के पोस्टर प्रकाशित करने चाहिए और इन्हें लागत मूल्य पर पुस्तक-विक्रेताओं को देना चाहिए। यह कार्य अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ कर चुका है। इससे पुस्तक-विक्रय के आन्दोलन को बल मिलेगा।

सरकार की भूमिका

सरकार शिक्षा तथा साहित्य के प्रचार के क्षेत्र में बराबर सहयोग देती रही है। शिक्षा और साहित्य से सम्बन्धित प्रकाशनों के लिए हम सहज ही सरकार का ध्यान आकर्षित कर सकते हैं। इस सम्बन्ध में थोड़े भी प्रयत्न और सम्पर्क से वांछित सरकारी सहयोग प्राप्त हो सकता है। रेलों तथा जहाजों में पुस्तक प्रदर्शनियों के कार्य में सरकार सहयोग कर सकती है। बड़े-बड़े पोस्ट आफिसों में पुस्तकों के स्टाल खोलने के सम्बन्ध में भी कई बार प्रस्ताव पारित हो चुके हैं। इस दिशा में भी सरकार का सहयोग अपेक्षित है। प्रकाशक संघों को प्रदर्शनी आयोजित करने के लिए अनुदान देना, पुस्तक प्रचार-प्रसार के विषय पर रिफ्रेशर कोर्स के लिए सहायता करना, समवाय के माध्यम से काम करने वाले ग्रुप के प्रकाशकों की पुस्तकें खरीदकर पुस्तकालयों को भेजना आदि कार्यों में सरकार सहायता कर सकती है। शिक्षा विभाग का हिन्दी निदेशालय, वैज्ञानिक तकनीकी शब्दावली आयोग ऐसी प्रदर्शनियों का आयोजन कर रहे हैं। उन्हें प्रकाशक संघों के माध्यम से प्रकाशक सदस्यों का अधिक सक्रिय सहयोग लेना चाहिए ताकि अधिक से अधिक पुस्तकें प्रदर्शित हो सकें।

नये निकासी केन्द्रों की खोज

हमारे देश में पुस्तकों का उत्पादन उतनी कठिन समस्या नहीं है जितनी कि उनके हाट तथा निकासी (आउट) की व्यवस्था। वैसे भी पुराने प्रकाशकों से लेकर नये से नये प्रकाशकों के लिए अपने प्रकाशनों का समुचित वितरण एक महत्वपूर्ण विषय है।

निकासी की उचित व्यवस्था के अभाव में आज साहित्यिक पुस्तकें एक हजार अथवा दो हजार के संस्करण में ही प्रकाशित हो पाती हैं। जनसाधारण तथा पुस्तकालयों के बीच पुस्तक-विक्रेताओं के माध्यम से इनकी बिक्री में दो से तीन वर्ष तक लग जाते हैं। वितरण की खामियों के कारण पुस्तकों का संस्करण भी कम संख्या में होता है। पुस्तकें कम संख्या में छपने की दशा में उत्पादन लागत भी अधिक हो जाती है। परिणामत: पुस्तकों के मूल्य अधिक होने के कारण बिक्री बढ़ने के बजाय घट जाती है।

लागत में ४० प्रतिशत कमी

इस सन्दर्भ में अब हम सबको सामूहिक रूप से यह सोचना है कि उपरोक्त त्रुटियों को कैसे दूर किया जाय। पुस्तक-वितरण का, पुस्तक-विक्रेताओं के अतिरिक्त और कौन-सा ऐसा मार्ग संयुक्त प्रयास से हो जिससे पुस्तकों की बिक्री बढ़े, अधिकाधिक संख्या में पुस्तकों के संस्करण प्रकाशित हों ताकि उनका मूल्य कम रखा जा सके और जनसुलभ भी हों। यदि हम साहित्यिक पुस्तकों के पाँच हजार के संस्करण प्रकाशित कर सकें और उन पुस्तकों की उचित वितरण व्यवस्था हो सके तो निश्चय है कि वर्तमान लागत में ४० प्रतिशत की कमी हो सकती है, साथ ही साथ जनसाधारण तक अधिकाधिक प्रकाशित पुस्तकों को पहुँचाया भी जा सकता है।

यदि पुस्तक-विक्रेताओं के अतिरिक्त पुस्तक-बिक्री के लिए नये निकासी केन्द्र खोले जा सकें, तो वितरण की बहुत बड़ी समस्या हल की जा सकती है। यह तो प्रत्येक व्यक्ति जानता और मानता है कि पुस्तकों की हाट व्यवस्था बहुत टेढ़ी बात है। प्रत्येक पुस्तक अपने-आप में एक नयी उत्पादित इकाई और प्रत्येक इकाई के लिए नये ढंग से प्रचार-प्रसार तथा हाट व्यवस्था की आवश्यकता होती है। पुस्तकों का प्रचार-प्रसार मासिक पत्र-पत्रिकाओं की तरह साफ होना चाहिये। मासिक पत्रिकाओं की तरह माल जैसे ही बिके प्रकाशक के एजेन्ट आने पर उसका मूल्य दे दें और नया माल उसके बदले में ले लें। इस तरह से एक नये निकासी की व्यवस्था हो सकती है। इसके अलावा बड़े-बड़े जनरल स्टोरों में भी, जहाँ कि जीवन की आवश्यक वस्तुओं की बड़े पैमाने पर बिक्री होती है, बुक स्टाल खुलवाये जा सकते हैं। ऐसे जनरल स्टोरों में प्राय: महिलायें कपड़ा, कटलरी, फर्नीचर, सौन्दर्य प्रसाधन की वस्तुएँ आदि खरीदने जाती हैं। यदि वहाँ पर उन्हें पुस्तकें भी मिल जायें तो निश्चय ही वे कुछ पुस्तकें खरीद सकती हैं।

यह विचार करना भी आवश्यक है कि नये केन्द्र खोलने का प्रयोग पहले कहाँ हो? इस तरह के निकासी केन्द्र प्रयोग के रूप में प्रारम्भ में बड़े-बड़े शहरों में ही खुलने चाहिए। इन केन्द्रों का चुनाव जनरल स्टोर्स, औषधि बेचनेवालों की दुकानों, कपड़े की दुकानों, पान-सिगरेट विक्रेताओं और रेस्तराओं में किया जा सकता है। हिन्दी-भाषी क्षेत्र में प्रकाशक यदि एक संस्था बनाकर इस तरह के नये निकासी केन्द्र संगठित करें तो देश के कुछ ही शहरों में काफी अधिक संख्या में निकासी केन्द्र खोले जा सकते हैं। ऐसे निकासी केन्द्रों द्वारा बड़ी ही आसानी से पुस्तकें बिक सकती हैं।

कार्य-प्रणाली

इस योजना को कार्यान्वित करने के लिए आवश्यक है कि व्यवस्थित रूप से कार्य संचालित हो। सबसे पहले कुछ बड़े शहरों में निकासी केन्द्र योजना के परिचालन के लिए कार्यालय खोले जायें। इन केन्द्रों में आबादी के अनुपात से २३ या २४ बिक्री-अधिकारी नियुक्त किये जायें, जो इस योजना को कार्यान्वित करें, उन्हें ८, १६ या २४ क्षेत्रों में बाँट दिया जाय। इन बिक्री-अधिकारियों में जो सबसे बड़ा अधिकारी माना जाय उसको नये निकासी केन्द्र खोलने के साथ-साथ यह अधिकार भी हो कि वह ऐसे निकासी केन्द्रों को बन्द भी कर सके, जहाँ यह प्रयोग लाभदायी नहीं है। शेष बिक्री अधिकारियों में से प्रत्येक के जिम्मे ६ या ८ क्षेत्र रखे जायें। जो क्षेत्र जिसके जिम्मे रहे उनमें वह समयानुसार दौरा करें और निकासी-केन्द्रों की स्थापना की योजना को कार्यान्वित करें। प्रत्येक बिक्री-अधिकारी को एक वाहन दिया जाय जिसमें रेक बने रहें, जिनमें पुस्तकें आसानी से रखी जा सकें। इन बिक्री-अधिकारियों को केन्द्र कार्यालय के ५ मील की परिधि में कार्य करने को कहा जाय। ऐसी स्थिति में कोई भी बिक्री अधिकारी ८ घण्टों में २५ से ३० निकासी केन्द्रों में प्रतिदिन आ-जा सकता है और वह प्रत्येक निकासी केन्द्र के कार्य का निरीक्षण एवं सेवा कर सकता है। सेवा और निरीक्षण का तात्पर्य होगा पुस्तकों के स्टाक की जाँच करना, बिके हुए माल का बिल बनाना, बिकी हुई पुस्तकों का मूल्य लेकर उनके स्थान पर नयी पुस्तकें पुनः देना, न बिकनेवाली पुस्तकों को वापस लेकर नयी प्रकाशित पुस्तकें देना और नये निकासी-केन्द्रों के प्रबन्धकों की कठिनाइयों को हल करना। इन कार्यालयों को ३५ से लेकर ४० प्रतिशत तक कमीशन मिलना चाहिए। साथ ही ये कार्यालय पहले ऐसी पुस्तकों का ही वितरण करें जिनके मूल्य कम हों।

१२ लाख जनसंख्या वाले शहरों में २०० निकासी केन्द्रों के द्वारा ३५ हजार रूपयों की पुस्तकों की प्रतिमाह बिक्री की जा सकती है। इसी तरह २४ लाख आबादी वाले नगर में ४०० निकासी केन्द्रं खुलने पर ५० हजार रुपये की बिक्री प्रतिमाह हो सकती है।

ऊपर दिये गये व्यय-अनुमान के आधार पर हम यह मानकर चल सकते हैं कि इस प्रकार प्रथम, द्वितीय और तृतीय श्रेणी के कार्यालयों पर क्रमशः १००० रुपये, १५०० रुपये तथा २००० रुपये का अनुमानिक मासिक व्यय होगा।

इस खर्च के अलावा प्रत्येक कार्यालय के लिए प्रारम्भ में निम्नलिखित सामानों के लिए एक बारगी खर्च की आवश्यकता पड़ेगी :

शो-केस से सुसज्जित एक चलती-फिरती मोटर गाड़ी : मूल्य बाजार भाव

साइकिल (प्रत्येक विक्रय-अधिकारी के पास एक साइकिल) होगी : १२५०.००

बुक रैक (क्रमश: कार्यालय श्रेणी १, २, ३ के लिए) :

क्रमश: १५००/-, ३०००/-, ६०००/- रुपये

कार्यालय का फर्नीचर : १००० रुपये

जितने केन्द्र उतना लाभ

पुस्तकों की निकासी की समुचित व्यवस्था के अभाव में साहित्यिक पुस्तकों की नाममात्र की बिक्री से प्रकाशक वर्ग भली-भाँति परिचित है। साहित्यिक पुस्तकों का इतनी थोड़ी संख्या में बिकना इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि उसकी निकासी-व्यवस्था अपूर्ण है। वास्तव में जो जितनी अधिक जनसंख्या का शहर होगा, वहाँ उतने अधिक निकासी केन्द्र खोले जा सकते हैं और वहाँ उतना ही अधिक लाभ होगा। कहना न होगा कि यही निकासी केन्द्र धीरे-धीरे पुस्तक-विक्रेता का भी रूप ले लेंगे। यदि इन निकासी केन्द्रों के व्यवस्थापकों को पुस्तक बिक्री के कार्य में लाभ दिखाई दिया तो ये लोग स्वत: विभिन्न प्रकाशकों का स्टाक मँगाना शुरु करेंगे। इन केन्द्रों से पुस्तकों की बिक्री आगे चलकर काफी बढ़ जायेगी।

इस तरह की योजना में प्रारम्भ में कई बाधाएँ भी आ सकती हैं, जिनका उल्लेख यहाँ करना प्रासंगिक होगा। योजना के कार्यान्वयन में जो व्यावहारिक कठिनाइयाँ आयेंगी, वे इस प्रकार होंगी :

१. निकासी केन्द्रों में स्थानाभाव, २. स्टाक का नियंत्रण, ३. निकासी केन्द्रों को उधार देने की समस्या, ४. निकासी केन्द्रों पर इस बात का नियंत्रण कि वे पुस्तकें बेचने के स्थान पर पाठकों को भाड़े पर पढ़ने को न दें।

उपरोक्त कठिनाइयों के अतिरिक्त और भी अनेक समस्याएँ खड़ी हो सकती हैं, जिन पर समय और परिस्थिति के अनुसार विचार करना होगा :

(अ) **निकासी केन्द्रों में स्थानाभाव :** ऐसा हो सकता है कि जो नये निकासी केन्द्र स्थापित किये गये वहाँ जगह का अभाव हो। मसलन पान की दुकान, अखबार बेचनेवालों की दुकान और मोदीखानों में प्राय: जगह का अभाव होता है। ऐसे स्थानों के लिए तार के बुक-रैक बनवाने उचित होंगे, जिसे आवश्यकतानुसार कहीं भी टांगा जा सके। और जब दुकान बन्द हों तो उन्हें उठाकर रखा जा सके। ऐसे रैकों द्वारा जगह की समस्या हल हो सकती है।

(आ) **स्टाक का नियंत्रण :** निकासी केन्द्रों के स्टाक का नियंत्रण करना वस्तुत: एक कठिनाई है जिसका एकमात्र उपाय यही है कि निकासी केन्द्रों पर अधिक पुस्तकें न रखी जायें। दुकानदार को प्रतिमाह उसके पास जो पुस्तकें दी गयी हैं बिक्री के लिये उन पुस्तकों का एक चार्ट छापकर दे दिया जाय जिसमें वे

अपना स्टाक प्रति सप्ताह दर्ज कर लिया करें ताकि कार्यालय का विक्रय-अधिकारी जब वहाँ पहुँचे तो वह चार्ट देखकर ही हिसाब-किताब कर ले।

(इ) **उधार देने और वसूली की समस्या :** यह तो स्पष्ट ही है कि उपरोक्त निकासी केन्द्रों पर सारी पुस्तकें उधार दी जायेगी। इनमें से कुछ केन्द्र ऐसे भी होंगे जिनसे यदि समय पर रुपया न वसूला गया तो भुगतान देर से मिलेगा और बिक्री का नुकसान भी होगा। ऐसी स्थिति में इस बात की सतर्कता बरतनी होगी कि पुस्तक-विक्रय अधिकारी निर्धारित समय पर नियमित रूप से बिक्री-केन्द्रों पर जायें और रुपये वसूलें। साथ ही वे नयी पुस्तकें ऐसे निकासी केन्द्रों पर तब तक न दें जब तक समय पर पिछला भुगतान नहीं प्राप्त हो। यह भी आवश्यक है कि माह के अन्तिम सप्ताह में हर निकासी केन्द्र का हिसाब-किताब साफ कर लिया जाय और जो निकासी केन्द्र लगातार तीन माह तक हिसाब-किताब साफ न रख सके उन्हें बन्द कर दिया जाय।

(ई) **बिक्री की पुस्तकें भाड़े पर न जायें :** ऐसा हो सकता है कि लोभवश कुछ निकासी-केन्द्रों के व्यवस्थापक पुस्तकें पाठकों को भाड़े पर पढ़ने को दे दें। इससे उस बुनियादी सिद्धान्त पर प्रभाव पड़ेगा. इस कुप्रथा के चलते निकासी केन्द्रों की उस योजना को जबरदस्त झटका लगेगा जिस पुस्तक बिक्री योजना के लिये उन केन्द्रों की स्थापना की गयी। इस कुप्रथा को रोकने के लिए निकासी-केन्द्रों के व्यवस्थापकों को पहले से ही सजग कर देना होगा कि यदि कोई भी पुस्तक उनके यहाँ ऐसी हालत में पायी गयी, जो कि पढ़ी हुई मालूम होगी, तो उसका समस्त मूल्य निकासी केन्द्र के व्यवस्थापक को देना होगा।

(उ) **मोदीखानों को निकासी-केन्द्र बनाने से लाभ और हानि :** मोदीखानों के द्वारा पुस्तकें बेचने का सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि ऐसे स्थानों में जनसाधारण जीवन की आवश्यक वस्तुएँ लेने अवश्य पहुँचता है। कई मोदीखाने ऐसे भी होते हैं जो सारा सामान अपने ग्राहकों को उधार बेचते हैं और प्रत्येक माह के आरम्भ में भुगतान ले लेते हैं। ऐसे मोदीखानों से पुस्तकें भी उधार जा सकती हैं और क्रमशः मानव-जीवन के आवश्यकीय अंग का रूप धारण कर सकती हैं। प्रायः यह भी देखा जाता है कि मोदीखानों से तेल, घी आदि चिकनी वस्तुएँ बेचने के कारण विक्रेता के हाथ में चिकनाहट लगी रह जाती है और ऐसा हाथ कहीं किताबों में लग जाये तो पुस्तकें खराब ही रही [illegible] है कि मोदीखानों में [illegible] देखने में आता है कि [illegible] अभाव रहता है और [illegible] पुस्तकें [illegible] है।

[illegible]

पर धूल और गर्द पड़ेगी। धूल और गर्द से एक ही बचाव हो सकता है। वह यह कि ऐसे निकासी-केन्द्रों पर जो पुस्तकें दी जायें उनके कवर पर वारनिश चढ़ी हो। अक्सर देखने में आता है कि धूप में पुस्तकें रखने से कवर के रंग उड़ने लगते हैं। वारनिश का भी असर धूप के सामने नहीं टिकता। इस समस्या का समाधान यही है कि कवरों की छपाई में ऐसी स्याहियों का उपयोग किया जाय जिन पर सूर्य की किरणों का प्रभाव न पड़े।

प्रचार सामग्री की उपयोगिता

निकासी-केन्द्रों पर समय-समय पर नये-नये पोस्टर तथा छोटे-छोटे सूचीपत्र दिये जाने चाहिए। पुस्तकों के आवरणों का भी स्तरीय प्रदर्शन किया जाना उचित होगा। इन चीजों से पाठक आकृष्ट होंगे और उन्हें पुस्तकों के सम्बन्ध में समझने में सहायता मिलेगी। प्रचार-प्रसार के साधनों में पुस्तकों का कवर भी बड़ा महत्व रखता है। हमें यह ध्यान रखना होगा कि पुस्तकों के कवर इतने आकर्षक बनें और छपे कि कवर देख कर ही ग्राहक की तबीयत पुस्तक खरीदने की हो जाय।

योजना का भविष्य

यदि निकासी-केन्द्रों की उपरोक्त योजना को गम्भीरता से धीर-धीरे भी लागू किया जाय तो आशा की जा सकती है कि हमारे देश में कम से कम २० से २५ लाख पुस्तकों की बिक्री प्रति माह बढ़ सकती है। हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं की साप्ताहिक बिक्री लगभग १५ लाख से ज्यादा है। यदि ये १५ लाख पाठक सहज-सुलभ होने के कारण नये निकासी केन्द्रों से १ से लेकर दो पुस्तकें तक भी प्रतिमाह खरीदें तो आसानी से २५ लाख पुस्तकों की बिक्री बढ़ सकती है। श्रेष्ठ प्रकाशकों का यह विशेष दायित्व है कि वे ऐसी पुस्तकों का प्रकाशन करें, जो जनता में ज्ञान-विज्ञान का प्रचार-प्रसार करने में सहायक हों और इन प्रकाशनों द्वारा जनता को ज्ञानवृद्धि करने में सहायता भी मिले। आशा है कि बहुत शीघ्र हिन्दी के नये युग का प्रकाशक ज्ञानवर्द्धक साहित्य अच्छे ढंग से सस्ते मूल्य में प्रकाशित करने में समर्थ होगा और निकासी केन्द्रों की यह योजना उसके प्रचार-प्रसार के कार्य में एक नयी दिशा इंगित करने में सहायक होगी।

सहकारी पुस्तक संगठन की रूपरेखा

सहकारिता के आधार पर पुस्तकों की एक व्यावसायिक संस्था बनाने के लिए हमें दो पहलुओं पर विचार करना होगा—एक केन्द्रीय सरकार द्वारा बनाए वर्तमान सहकारिता कानून के आधार पर हम देखें कि अपने नियमों में कौन ऐसी खामियाँ हैं, जो हमारे पुस्तक-व्यवसाय की सहकारिता के संगठन में बाधक हैं। यहाँ एक ऐसी संस्था की कल्पना प्रस्तुत है जो पुस्तकों का प्रकाशन एवं विक्रय दोनों ही करे और उसका कानूनी तथा व्यवस्थात्मक आधार किस प्रकार का हो।

नाम व पता

१. जो भी संस्था सहकारिता के आधार पर बनाई जायेगी उसका नामकरण करना होगा और यह जिक्र करना होगा कि उसका रजिस्टर्ड पता क्या है, उसका प्रधान कार्यालय कहाँ होगा और वह किस राज्य में किस पोस्ट आफिस के अंतर्गत किस जिले में पड़ेगा।

परिभाषाएँ

२. कुछ उपनियम होंगे और वे उपनियम ऐसे होंगे जो विषय और प्रसंग के विरुद्ध न हों :

(क) सहकारी अधिनियम—इसका प्रयोजन होगा कि संस्था कोआपरेटिव सोसाइटी एक्ट १९१२ तथा समय-समय पर संशोधित कानून की धाराओं से परिचालित हो।

(ख) 'नियमों' से प्रयोजन—किसी राज्य सरकार द्वारा कोआपरेटिव सोसाइटी एक्ट १९१२ धारा ४३ के अंतर्गत बनाये हुए नियम।

(ग) 'उपनियमावली' से प्रयोजन होगा—इस समिति की रजिस्टर्ड उप-नियमावली जो इस समय लागू होगी और उसमें उपनियमों के रजिस्टर्ड संशोधन भी शामिल होंगे।

(घ) 'रजिस्ट्रार' से प्रयोजन होगा—राज्य सरकार के रजिस्ट्रार कोआपरेटिव सोसाइटीज या वह अधिकारी जिसको राज्य सरकार द्वारा सहकारी अधिनियम के अंतर्गत रजिस्ट्रार का अधिकार दिया हो।

(ङ) 'संस्था' से प्रयोजन होगा—अमुक सहकारी संस्था, अमुक डाकखाना, जिले और अमुक राज्य जिसमें संस्था स्थित हो।

(च) 'कार्यक्षेत्र' से प्रयोजन होगा—सहकारी संस्था का कार्यक्षेत्र, जिसका वर्णन उपनियमावली संख्या ४ में किया गया है।

(छ) 'साधारण सभा' से प्रयोजन होगा—संस्था के उन मान्य सदस्यों की मिली-जुली सभा, जिसे उपनियमावली के अनुसार अधिकार प्राप्त होंगे तथा साधारण सभा वह इकाई समझी जाएगी जो कि सहकारी संस्था में शेयर खरीदनेवाले लोगों की जमात हो।

(ज) 'बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स' से प्रयोजन होगा—साधारण सभा द्वारा मान्य सहकारी संस्था के सभी कार्य सर्वोच्च निरीक्षक तथा प्रबन्धकर्त्ता के रूप में करनेवाली समिति।

(झ) 'वर्ष' से प्रयोजन होगा—अमुक सहकारी संस्था का वर्ष अमुक तारीख से अमुक तारीख तक, यथा १ अप्रैल से ३१ मार्च तक।

उद्देश्य

३. संस्था के निम्नलिखित उद्देश्य होंगे :

(क) पुस्तक-व्यवसाह में लगे हुए विभिन्न वर्गों, प्रकाशकों, पुस्तक-विक्रेताओं, एजेण्टों आदि की अभिरुचि सहकारिता के प्रति उत्पन्न करने की पृष्ठभूमि तैयार करना। हिन्दी प्रेमियों, लेखकों और शिक्षा-अधिकारियों का ध्यान आकर्षित करना कि वे सहकारिता के आधार पर स्थापित इस संस्था के कार्यों में दिलचस्पी लें।

(ख) हिन्दी भाषा या इतर साहित्य के सभी प्रकाशक, पुस्तक-विक्रेता तथा एजेण्ट इस संस्था के सदस्य हो सकेंगे।

(ग) संस्था का मुख्य उद्देश्य हिन्दी साहित्य की अभिवृद्धि एवं प्रकाशन के विविध क्षेत्रों में स्वस्थ साहित्यिक, प्राविधिक पुस्तकों का प्रकाशन एवं प्रकाशित पुस्तकों का वितरण होगा।

(घ) संस्था द्वारा प्रकाशित पुस्तकों की ओर, प्रचार के विभिन्न तरीकों द्वारा जनसाधारण में अभिरुचि पैदा करना।

(ङ) पुस्तक-व्यवसाय को अधिक से अधिक लाभ की समुचित व्यवस्था द्वारा सामाजिक परम्परा कायम करना।

(च) प्रकाशनों से पाठकों को परिचित कराने के लिए पुस्तक-व्यवसाय सम्बन्धी पत्रिका निकालना।

(छ) आवश्यकता पड़ने पर सहकारिता प्रणाली द्वारा प्रेस की स्थापना करवाना।

(ज) प्रकाशक सदस्यों के छपे हुए स्वस्थ साहित्य की वितरण व्यवस्था करवाना।

(झ) लब्ध-प्रतिष्ठित लेखकों की कृतियाँ प्रकाशित करना तथा नवोदित प्रतिभा-सम्पन्न लेखकों की कृतियों के प्रकाशन को विशेष रूप से प्रोत्साहित करना।

सदस्यता

४. हिन्दी के प्रकाशक, विक्रेता और हिन्दी पुस्तक-व्यवसाय से सुपरिचित कोई भी व्यक्ति, जिसकी अवस्था अठारह वर्ष से ऊपर हो, इस संस्था के कार्यक्षेत्र का निवासी हो, उपरोक्त संस्था का सदस्य हो सकता है।

५. संस्था के प्रारम्भिक सदस्य वे होंगे जिन्होंने संस्था के रजिस्टर्ड करने के आवेदनपत्र पर हस्ताक्षर कर दिया हो।

६. सदस्यता की स्वीकृति 'बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स' की राय से 'मैनेजिंग डायरेक्टर' द्वारा की जाएगी। किसी व्यक्ति की सदस्यता अस्वीकृत होने पर वह साधारण सभा और वहाँ से अस्वीकृत होने की दिशा में रजिस्ट्रार के पास अपील कर सकता है, जिसका निर्णय अन्तिम होगा। सदस्यता अस्वीकृत होने पर बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स उन कारणों का भी उल्लेख करेगा, जिसके आधार पर सदस्यता अस्वीकृत की गयी है।

७. (क) प्रत्येक व्यक्ति सदस्य होने के पूर्व एक घोषणापत्र पर हस्ताक्षर करेगा कि वह संस्था के नियमों, संशोधनों, परिवर्तनों तथा संवर्धनों से आबद्ध होंगे जो उसकी सदस्यता के काल में बने हैं या बनेंगे।

(ख) संस्था की रजिस्ट्री के प्रार्थना-पत्र पर हस्ताक्षर करनेवाले प्रारम्भिक सदस्य को भी ऐसे घोषणा-पत्र पर संस्था के रजिस्टर्ड होने के एक मास के भीतर हस्ताक्षर करना होगा, नहीं तो वह उस संस्था की प्रारम्भिक सदस्यता से अलग समझा जायेगा।

(ग) हर एक सदस्य को इस आशय के एक घोषणा-पत्र पर भी हस्ताक्षर करना होगा कि संस्था की साधारण सभा में जो व्यवसाय सम्बन्धी नियम उपस्थित सदस्यों के बहुमत से पास होंगे और जिनकी स्वीकृति रजिस्ट्रार से मिल गई होगी उनसे वह बंधा रहेगा। ऐसे नियमों की अवहेलना पर वह निकाला जा सकता है और संस्था उसके हिस्से से प्राप्त रकम तक जब्त कर सकती है।

८. प्रारम्भिक सदस्यों के अतिरिक्त प्रत्येक व्यक्ति को सदस्यता के लिए आवेदन पत्र

के साथ एक सौ रुपया प्रवेश शुल्क देना होगा, जिसे किसी भी दशा में वह वापस पाने का अधिकारी न होगा।

९. कोई सदस्य जब तक घोषणा-पत्र पर हस्ताक्षर न कर दे और प्रवेश शुल्क तथा हिस्से की पूरी रकम न अदा कर दे, तब तक सदस्यता के अधिकारों का उपयोग नहीं कर सकेगा।

१०. (क) संस्था की माँग पर हर सदस्य को अपनी पूँजी, ऋण अथवा अन्य जिम्मेदारियों की पूरी व सही सूचना देनी होगी।

(ख) संस्था अपने सभी सदस्यों की हैसियत का विवरण प्राप्त कर सकती है ताकि उत्तरदायित्व में उसका उपयोग हो सके।

११. कोई सदस्य यह घोषणा करके या यह लिखकर कि उसकी मृत्यु के बाद उत्तराधिकारी अमुक व्यक्ति होगा, मनोनीत कर सकता है। मनोनीत व्यक्ति की मृत्यु हो जाने की दशा में उक्त सदस्य मृत्यु की सूचना संस्था को देगा और वह दूसरे व्यक्ति को मनोनीत कर सकेगा। मनोनीत करने के लिए दो गवाहों का होना आवश्यक होगा। मनोनीत व्यक्ति नई घोषणा पर बदला जा सकता हैं। यदि मनोनीत व्यक्ति की मृत्यु मनोनीत करनेवाले सदस्य की मृत्यु के पश्चात्, परन्तु धन की वापसी के पूर्व हो जाती है, तो उस सदस्य के हिस्से की या धन की वापसी उस व्यक्ति को की जाएगी, जिसे संस्था का 'बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स' मृत सदस्य का वास्तविक उत्तराधिकारी समझे। नाबालिग को उसके संरक्षक के माध्यम से मृत सदस्य का रुपया वापस दिया जायेगा।

१२. किसी भी सदस्य को संस्था में खरीदे हुए अपने हिस्सों को वापस लेने का अधिकार न होगा और न वह भर्ती की तारिख से १ वर्ष के भीतर संस्था से त्यागपत्र दे सकेगा। ऐसी अवधि बीतने के बाद कोई भी सदस्य जिसके जिम्मे संस्था का कोई पावना नहीं है, एक महीने की नोटिस देकर सदस्यता से त्यागपत्र दे सकता है। नोटिस के समय की गणना संस्था द्वारा नोटिस प्राप्ति तिथि से होगी।

१३. (क) इन उपनियमावलियों के अनुसार संस्था के सदस्यों के लिए आवश्यक योग्यता न होने पर कोई भी सदस्य संस्था की सदस्यता से 'बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स' द्वारा पृथक किया जा सकता है।

(ख) उपनियमावली पाँच को देखने के बाद निम्नलिखित अवस्था में सदस्यता समाप्त समझी जायेगी :

(१) सदस्य की मृत्यु होने पर

(२) सदस्यता स्वीकृत होने के बाद नियमत: त्यागपत्र देने की अवस्था में

(३) उसके हिस्से हस्तांतरित या जब्त होने पर

(४) न्यायालय द्वारा दिवालिया करार देने पर

(५) संस्था के कार्यक्षेत्र को छोड़कर बाहर बस जाने पर

(६) 'बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स' द्वारा निकाले जाने पर जिनके कारणों का बोर्ड उल्लेख करेगा। परन्तु उस सदस्य को नियम ७ के अनुसार रजिस्ट्रार के पास अपील का अधिकार होगा।

(ग) निम्नलिखित कारणों से कोई भी सदस्य साधारण सभा के बहुमत पर निकाला जा सकेगा :

(१) संस्था का डिफाल्टर हो

(२) संस्था को गलत आचरण या वक्तव्य द्वारा धोखा दे

(३) आचरण सम्बन्धी मामलों में अदालत द्वारा दण्डित होने पर

(४) संस्था के उद्देश्यों के विपरीत उसके अहित में काम करे। (क) (ख) (ग) के अन्तर्गत जो सदस्यता से अलग किया जायेगा, उसको सदस्यता से अलग किए जाने की तिथि से दो मास के भीतर रजिस्ट्रार का निर्णय, संस्था तथा निकाले हुए सदस्य दोनों पर लागू होगा।

१४. कोई भी व्यक्ति जो इस संस्था या अन्य किसी भी सहकारी समिति या संस्था से निकाला हुआ हो, निकालने की तारीख से २ वर्ष के भीतर संस्था में पुनः सदस्य न हो सकेगा। किन्तु रजिस्ट्रार विशेष परिस्थितियों में इस प्रतिबन्ध से किसी भी व्यक्ति को मुक्त कर सकता है।

पूँजी

१५. संस्था की पूँजी निम्नलिखित में से एक या एक से अधिक अथवा समस्त साधनों द्वारा प्राप्त की जा सकती है :

(क) हिस्सों की पूँजी, जो कि प्रारम्भ में पाँच लाख हो तो काम सुचारु रूप से चल सकता है,

(ख) ऋण और अमानतें

(ग) विशेष सहायता प्राप्त पूँजी

(घ) रक्षित तथा अन्य कोष

(ङ) बिना बटा मुनाफा

हिस्से

१६. संस्था की पूँजी उतने हिस्सों से बनेगी जो समय-समय पर सदस्यों द्वारा खरीदे जायेंगे। प्रत्येक हिस्से का मूल्य १०० (एक सौ) रुपये होगा।

१७. प्रत्येक हिस्सा पचास-पचास रुपयों की दो किश्तों में अदा होगा। बकाये हिस्सों की रकम 'बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स' की माँग पर एक माह के अन्दर अदा करना होगा।

१८. बिके हिस्से मूल्य से अधिक पर नहीं बेचे जा सकते हैं और न वे किसी अल्पवयस्क, पागल या दिवालियों के हाथ विक्रय किए जायेंगे।

१९. सदस्य बनने के लिये किसी भी व्यक्ति को कम-से-कम एक हिस्सा खरीदना होगा। किसी भी व्यक्ति को १५००० (पन्द्रह हजार) रुपये से अधिक मूल्य के हिस्से क्रय करने का अधिकार न होगा। यहाँ यह स्पष्ट है कि कोई भी सदस्य चाहे १ हिस्सा खरीदे या पचास उसका मत एक ही माना जायेगा।

२०. किश्तें बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स की निश्चित की हुई तिथि से एक माह के अन्दर या उससे पहले अदा की जायेंगी। मुहलत विशेष परिस्थितियों और पर्याप्त कारणों पर दी जायेगी। जिन सदस्यों के जिम्मे उसके हिस्से की किश्तों का रुपया बाकी होगा वे साधारण सभा या बोर्ड की बैठकों में मत न दे सकेंगे। यदि कोई सदस्य सूचना प्राप्त होने के दो माह तक हिस्से की समस्त रकम का भुगतान न करेगा तो वह संस्था से निकाला जा सकता है। उसकी भुगतान की हुई किश्त जब्त करके बचत की पूँजी में सम्मिलित की जा सकती है।

२१. सदस्यों को साधारण सभा की स्वीकृति बिना कोई मुहलत 'बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स' के किसी सदस्य को नहीं दी जायेगी।

२२. सदस्यता भंग होने के पूर्व कोई भी सदस्य अपने हिस्से का रुपया वापस नहीं ले सकता है।

२३. कोई भी सदस्य अपना हिस्सा किसी दूसरे को हस्तान्तरित नहीं कर सकता है जब तक कि—

(क) वह न्यूनतम एक वर्ष तक उसका स्वामी न रहा हो।

(ख) वह व्यक्ति जो हिस्सा क्रय करता हो और संस्था का सदस्य न हो

(ग) 'बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स' इस कार्यवाही को बहुमत से स्वीकार न कर ले।

२४. हिस्सा क्रय करने पर वास्तविक में हिस्सा क्रय प्रमाण-पत्र तथा समस्त किश्तें चुकाई जाने पर संस्था को मुहर लगाकर प्रत्येक सदस्य को प्रमाण-पत्र दिया जायेगा। इस प्रमाण-पत्र पर 'मैनेजिंग डायरेक्टर' तथा अन्य डायरेक्टर्स के

हस्ताक्षर होंगे। यदि यह प्रमाण-पत्र खोजाय अथवा किसी अन्य कारणों से न मिले तो उसकी प्रतिलिपि १.०० (एक रुपया) देने पर मिल सकेगी।

उत्तरदायित्व

२५. संस्था के ऋण के लिए सदस्य का उत्तरदायित्व अपने हिस्से के नियत मूल्य के पाँच गुने तक होगा। यह उत्तरदायित्व केवल संस्था के भंग हो जाने पर कार्य-रूप में लाया जायेगा।

संगठन तथा प्रबन्ध

साधारण सभा

२६. संस्था की सर्वसत्ता उसकी साधारण सभा में, जिसमें समस्त सदस्य सम्मिलित होंगे, निहित होगी, परन्तु साधारण सभा 'बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स' या संस्था के किसी अन्य अधिकारी के उन कार्यों में जो कि वे इन उपनियमावलियों के अन्तर्गत दिए अधिकारों का उपयोग करने में करें, हस्तक्षेप न करेगी।

२७. साधारण सभा निम्नलिखित दशा में बुलाई जाएगी :

(क) पहली साधारण सभा की बैठक संस्था के रजिस्टर्ड होने के दो माह के भीतर होगी।

(ख) साल के समाप्त होने के बाद जितना शीघ्र संभव होनेवाली बैठक वार्षिक अधिवेशन कहलाएगी।

(ग) १।५ सदस्यों के लिखित प्रार्थना-पत्र पर साधारण सभा की बैठक बुलाई जा सकती है।

(घ) संस्था के 'मैनेजिंग डायरेक्टर' (जो कि प्रकारान्तर से सभापति का कार्य करेंगे) अथवा 'बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स' के दो-तिहाई सदस्यों की माँग पर भी साधारण सभा की बैठक बुलाई जा सकती है।

(ङ) रजिस्ट्रार, अथवा सहकारिता विभाग के किसी अन्य अधिकृत अधिकारी अथवा सम्बन्धित सहकारी बैंक के प्रार्थना-पत्र पर साधारण सभा की बैठक बुलाई जा सकती है।

२८. साधारण सभा का अधिवेशन बुलाने के लिए साधारणतया १५ दिन की नोटिस दी जायेगी।

२९. ऐसा अधिवेशन जिसके लिए रजिस्ट्रार अथवा किसी अन्य अधिकृत अधिकारी अथवा सम्बन्धित सहकारी बैंक ने माँग की हो अथवा उपर्युक्त उप-नियमावली के अनुसार किसी अधिकारी की प्रार्थना पर बुलाना हो तो, सूचना प्राप्त होने

के एक माह के अन्दर अवश्य बुलाया जाएगा। ऐसे अधिवेशन को बुलाने की सूचना लिखित रूप में करने के अतिरिक्त किसी अन्य रूप में नहीं की जाएगी।

३०. साधारण सभा में १।३ सदस्यों का या २५ प्रतिशत सदस्यों का न्यूनतम कोरम होगा। लेकिन यदि कोरम पूरा न होने के कारण सभा स्थगित हो गई तो दूसरी साधारण सभा में १।५ या १५ प्रतिशत इन दोनों में जो न्यूनतम हो, वह सदस्यों का कोरम होगा। ऐसी हालत में साधारणतया बैठक की सूचना सदस्यों को सात दिन पहले दी जाएगी।

३१. वार्षिक साधारण सभा में निम्नलिखित कार्य किए जायेंगे :

(क) सदस्यों में से 'बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स' के लिए १५ सदस्यों का चुनाव जिसमें से एक 'मैनेजिंग डायरेक्टर' जो प्रकारान्तर से सभापति का कार्य भी करेगा, एक 'सहायक डायरेक्टर' जो 'मैनेजिंग डायरेक्टर' के बाद कार्यकारी समझा जाएगा और एक कोषाध्यक्ष।

(ख) वार्षिक पावना देना, चिट्ठा और 'बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स' की रिपोर्ट पर विचार करना।

(ग) सहकारी एक्ट, राजकीय नियम और उप-नियमावली के अनुसार लाभ के विभाजन की स्वीकृति देना।

(घ) राजकीय नियम के अनुसार उत्तरदायित्व की वह अन्तरिम धनराशि निर्धारित करना जो प्रबन्ध समिति अगले वर्ष संस्था की तरफ से ऋण ले सकती है।

(ङ) अगले वर्ष के कार्यक्रम पर विचार करना।

(च) किसी और विषय पर विचार करना जिसको कि बोर्ड या अन्य सदस्य सभापति की आज्ञा से पेश करें।

३२. साधारण सभा के कर्तव्य तथा अधिकार निम्नलिखित होंगे :

(क) रजिस्ट्रार या उनके अधीनस्थ किसी अधिकारी के निरीक्षणों अथवा आडिट नोटों पर 'बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स' द्वारा सुझावों के साथ विचार करना।

(ख) किसी चुने हुए 'बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स' के सदस्य को पृथक् करने के निर्णय पर विचार करना।

(ग) 'बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स' के फैसलों की अपील सुनना।

(घ) पिछले अधिवेशन की तिथि से वर्तमान तक संस्था की प्रगति रिपोर्ट पर विचार करना।

(ङ) राजकीय नियमावली के अनुसार उप-नियमावली में संशोधन करना।

(च) उप-नियमावली ३२ में दिये गए सभी कार्य करना।

(छ) दूसरी समस्याओं को, जो उपस्थित की जाएं, तय करना।

(ज) 'बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स' के सदस्यों के मुहलत से सम्बन्धित प्रार्थना-पत्रों पर विचार करना तथा मुहलत देना या न देना।

३३. 'मैनेजिंग डायरेक्टर' सभापति की हैसियत से सभा के समस्त अधिवेशनों का सभापतित्व करेगा। उसकी अनुपस्थिति में सहायक डायरेक्टर सभापति का स्थान ग्रहण करेगा, यदि वह भी अनुपस्थित हो तो साधारण सभा अपने सदस्यों में से किसी को उस अधिवेशन का सभापतित्व करने के लिए सभापति चुनेगी।

३४. प्रत्येक सदस्य को केवल एक मत देने का अधिकार होगा, चाहे उस ने कितने ही हिस्से क्यों न लिये हो। अधिवेशन में अनुपस्थित सदस्यों को किसी दूसरे माध्यम से मत देने का अधिकार न होगा।

३५. (क) साधारण सभा या 'बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स' की बैठकों में प्रत्येक विषय पर सहकारी अधिनियम एक्ट तथा उप-नियमावली को ध्यान में रखते हुए कोई भी निर्णय बहुमत से किया जाएगा। बराबर मत आने पर सभापति को एक अतिरिक्त मत देने का अधिकार होगा परन्तु यदि वह विषय निर्वाचन से सम्बन्धित है तो सभापति अपना अतिरिक्त वोट नहीं देगा, बल्कि निर्णय लाटरी द्वारा किया जाएगा।

(ख) साधारण सभा में जिन विषयों पर चर्चा होगी तथा उन पर जो निर्णय होगा उन्हें कार्यवाही पुस्तिका में लिखा जाएगा। उस पर 'मैनेजिंग डायरेक्टर' (सभापति) तथा 'सहायक डायरेक्टर' के हस्ताक्षर होंगे।

बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स

३६. 'बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स' सर्वोच्च निरीक्षक तथा प्रबन्धक के रूप में कार्य करेगा तथा संस्था के सुचारु रूप से संचालन के लिए उत्तरदायी होगा।

३७. 'बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स' में उप-नियमावली ३२(क) के अनुसार चुने हुए सदस्य होंगे।

३८. 'बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स' से अवकाश प्राप्त सदस्य पुनः चुने जा सकते हैं, परन्तु बोर्ड का चुना हुआ सदस्य बिना रजिस्ट्रार की विशेष अनुमति के लगातार दस पदावधियों से अधिक पदासीन नहीं रह सकता।

३९. कोई सदस्य बोर्ड का सदस्य नहीं चुना जाएगा यदि :

(क) वह दिवालिया घोषित कर दिया गया हो।

(ख) उसका दिमाग खराब हो गया हो।

(ग) उसे किसी मॉरल टरपीट्यूड के लिए राजदण्ड मिला हो।

(घ) बिना किसी पर्याप्त कारण के समिति का पावना समय पर न दे सका हो।

(ङ) संस्था के कम-से-कम कुल दस हिस्से उसके पास न हों।

(च) यदि उसका कोई करीबी सम्बन्धी संस्था का वैतनिक कर्मचारी हो।

(छ) यदि वह लगातार बोर्ड की पाँच बैठकों में बिना पर्याप्त कारणों के अनुपस्थित रहा हो।

४०. 'बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स' के निर्वाचित सदस्यों का कार्यकाल तीन वर्ष, या जब तक उनके स्थान पर दूसरे सदस्य न निर्वाचित हों, तक होगा।

४१. प्रारम्भिक सदस्य जब तक उनके स्थान पर कोई अन्य व्यक्ति न चुना जाय, तब तक बोर्ड में नियमतः पदासीन रहेंगे।

४२. बोर्ड में यदि कोई स्थान संयोगवश रिक्त हो जाए तो उस रिक्त स्थान पर बोर्ड स्वयं बहुमत से कोई सदस्य चुन लेगा।

४३. बोर्ड की सभा माह में कम-से-कम एक बार या जब आवश्यकता हो, हुआ करेगी।

४४. बोर्ड की किसी बैठक में न्यूनतम तीन सदस्यों का कोरम होगा।

४५. प्रत्येक सदस्य केवल एक मत दे सकेगा। समस्याओं का निर्णय जिनका ब्यौरा उप-नियमावली में दिया गया हो, बहुमत से पास होगा। 'मैनेजिंग डायरेक्टर' या 'सभापति' का अन्य सदस्यों की भाँति सिर्फ एकमत होगा। यदि मत बराबर हो तो सभापति को एक निर्णायक मत देने का अधिकार होगा।

४६. बोर्ड के किसी अन्य सदस्य का किसी अन्य के द्वारा मत देना वर्जित है।

४७. कोई सदस्य अपने व्यक्तिगत मामले में मत नहीं दे सकेगा।

४८. 'बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स' की बैठकों में जिन विषयों पर चर्चा होगी तथा निर्णय किया जाएगा उन्हें कार्यवाही-पुस्तिका में लिखा जाएगा। उस पर बैठक के सभापति; सहायक डायरेक्टर तथा उपस्थित सभी सदस्यों के हस्ताक्षर होंगे।

४९. 'बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स' के अधिकार और कर्त्तव्य निम्नलिखित होंगे :

(१) नए सदस्य बनाना तथा यह निश्चय करना कि प्रत्येक सदस्य कितने हिस्से लेगा।

(२) उप-नियमावली तथा राजकीय नियमों के अनुसार हिस्सों को बदली तथा वापसी की स्वीकृति देना।

(३) अयोग्य या नादेहिन्दा सदस्यों को पृथक् करना।

(४) सदस्यों का त्यागपत्र स्वीकार करना।

(५) उप-नियमावली संख्या २९ और ४४ के अन्तर्गत अधिवेशन तथा बैठक आयोजित करना और साधारण सभा के वार्षिक अधिवेशन में वार्षिक रिपोर्ट, संस्था की आडिट की हुई पूँजी, जिम्मेदारी का नक्शा (बैलेंस शीट), वसूल न हो सकनेवाली तथा सन्देहास्पद रकमों की सूची व लाभ-वितरण के सुझाव एवं रजिस्ट्रार द्वारा माँगे हुए नक्शे प्रस्तुत करना।

(६) प्रकाशन क्षेत्र में मुख्यतः निम्नलिखित को प्रोत्साहन देना :

(अ) हिन्दी प्रकाशन तथा विक्रय-व्यवस्था।

(ब) मुद्रण कार्य के लिए अच्छे प्रेसों का प्रयत्न।

(७) संस्था के उपयोग हेतु आवश्यकतानुसार गोदाम, दुकान, यंत्रालय, इमारतें बनाना, मोल लेना, किराए पर लेना अथवा स्वयं प्रयोग करना।

(८) संयुक्त-विक्रय के उद्देश्यों से सदस्यों के माल का निरीक्षण करना तथा बाजारों में लेजाने का प्रबन्ध करना।

(९) एजेन्सियों के माल के स्थायित्व को देखते हुए मण्डी की प्रथानुसार उनकी मालियत की जमानत पर मालियत के पचास प्रतिशत तक माल ऋण देना और उस पर समय से भुगतान न होने पर सूद की दर निर्धारित करना।

(१०) पक्के माल को अपने या अढ़तियों के गोदाम में सुरक्षित रखने का प्रबन्ध करना।

(११) अपने तैयारी माल की बिक्री के लिए कार्यक्षेत्र के अंदर उचित शाखा स्थापित करना।

(१२) संस्था के प्रकाशन एवं अन्य कार्यों के प्रोडक्ट्स की कीमतें निश्चित करना, जिसमें बोर्ड को माल बिकवाने में सुविधा प्राप्त होगी।

(१३) अपने सदस्यों को प्रकाशन एवं मुद्रण-व्यवस्था की शिक्षा दिलाने की व्यवस्था कराने की कोशिश करना।

(१४) साधारण सभा ने यदि कोई कायदे निर्धारित किए हों तो उन प्रतिबन्धों के साथ कार्य करना होगा।

(१५) संस्था का कार्य सुचारु रूप से चलाने के लिए विशेष नियम बनाना, उप-नियमावली में संशोधन करना। विशेष नियम तथा उप-नियमों के संशोधन साधारण सभा से स्वीकृत कराना।

(१६) प्रकाशन तथा संस्था के अपने सम्बन्धित कार्यों से सम्बन्धित परिषदों (एसोसिएशन) या सार्वजनिक संस्थाओं से अपनी संस्था को सम्बन्धित कराने का प्रयास करना।

(१७) कुल रुपया, माल, सम्पत्ति जो संस्था के हिसाब में मिले या ली जाय उसके उचित रीति से वसूल करने और रखने का प्रबन्ध करना।

(१८) हिसाब-किताब की निगरानी रखना।

(१९) आगामी वर्ष के आय तथा व्यय के बजट पर विचार करना और स्वीकृति हेतु वार्षिक साधारण सभा के समक्ष प्रस्तुत करना।

(२०) हिस्से की किश्तों के ठीक समय पर अदा होने की निगरानी करना और उनकी वसूली के लिए उचित व्यवस्था करना।

(२१) नादिहिन्दा सदस्यों के विरुद्ध सालिसी कार्यवाही करना।

(२२) सालिसी फैसलों के इजरा में संस्था के कर्मचारियों की मदद करना।

(२३) आडिटर की नियुक्ति स्वयं और रजिस्ट्रार की आज्ञा से करना।

(२४) विभिन्न कार्यक्षेत्र के होने पर उसके लिए समयानुसार बहुमत द्वारा विशेषाधिकार प्राप्त समितियों तथा कुछ सदस्यों को बनाना। इस प्रकार के कार्य का निर्णय उस विशेषाधिकार प्राप्त समिति की राय के अनुसार करना।

(२५) संस्था की तरफ से उस सीमा तक कर्जे या अमानतें हासिल करना जिसको साधारण सभा ने निर्धारित किया हो और रजिस्ट्रार ने मंजूर किया हो। उनके सूद की दर तय करना और ऐसे कर्जे की अमानती को नियत समय पर वापस करना।

(२६) आडिटर की जाँच और वार्षिक साधारण सभा में पेश होने के बाद देना-पावना का चिट्ठा छपवाना।

(२७) संस्था का रुपया या कोई दूसरी सम्पत्ति वसूल करना, वापस लेना या खर्च करना या एक खास लिखित आज्ञा से अपने एक या अधिक सदस्यों को वसूल करने, वापस लेने या खर्च करने का अधिकार देना और संस्था की पूँजी, सम्पत्ति के कागजों को सुरक्षित रखने का प्रबन्ध करना।

(२८) संस्था के सभी वैतनिक कर्मचारियों की नियुक्ति, पदोन्नति, स्थायित्व, पृथक, मुअतल, अथवा कोई दंड देना।

(२९) संस्था के कुल हिसाब के रजिस्टरों और आर्थिक स्थिति की जाँच करना तथा सदस्यों को समझाना।

(३०) संस्था का हिसाब आडिटर के लिए पेश करना। नियमों के अनुसार जो आडिट शुल्क रजिस्ट्रार लगाएं उसको अदा करना। निरीक्षणकर्त्ता अधिकारियों के सम्मुख कागजात प्रस्तुत करना।

(३१) रजिस्ट्रार के सहयोगियों और उनके सहायकों के निरीक्षण-पत्र, आडिट नोटों पर विचार करना तथा समय से उनका प्रत्युत्तर भेजना।

(३२) साधारण-सभा के वार्षिक अधिवेशन के सामने विगत वर्ष का वार्षिक हिसाब देना, पावना का चिट्ठा, गत वर्ष के कार्य की रिपोर्ट प्रस्तुत करना। उनकी प्रतिलिपि, लाभ बाँटने और बट्टेखाते में रकम जमा करने पर अपनी सम्मति वार्षिक अधिवेशन की सूचना के साथ प्रत्येक सदस्य को भेजना।

(३३) राजकीय नियमों और उप-नियमों के अनुसार मुनाफा तकसीम करने तथा बचत की पूँजी के इस्तेमाल के लिए साधारण सभा में सुझाव उपस्थित करना।

(३४) साधारण सभा से स्वीकृत प्रस्तावों का पालन करना तथा संघ के लाभार्थ सभी कार्यों का संचालन करना।

(३५) विशेषाधिकार समिति की नियुक्ति पर अपने सर्व अधिकार किसी अधिकारी या 'सहायक डायरेक्टर' को देना।

(३६) संस्था का कार्य चलाने के लिए 'बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स' एक साधारण व्यवसायी के सदृश क्रियात्मक बुद्धि और परिश्रम से कार्य करेगा लेकिन कोई ऐसा कार्य नहीं करेगा जो सहकारी नियम, अधिनियम (ऐक्ट) और उप-नियमावली के विरुद्ध हो।

५०. सभापति संस्था का प्रमुख निरीक्षणकर्ता एवं [illegible] होगा और आकस्मिक आवश्यकता पड़ने पर 'बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स' के सारे अधिकारों का प्रयोग करेगा। प्रबन्ध में गड़बड़ी होने की आशंका पर, [illegible] का [illegible] आर्थिक स्थिति संकट-ग्रस्त मालूम पड़ [illegible] समिति का प्रबन्ध अपने हाथ में [illegible] ग्रहण की तिथि से एक मास के [illegible] अधिवेशन बुलाना होगा और [illegible]

५१. 'मैनेजिंग डाइरेक्टर' या 'सभापति' के निम्नलिखित अधिकार और कर्त्तव्य होंगे:

(१) संस्था की सभी बैठकों की अध्यक्षता करना। उनकी अनुपस्थिति में 'सहायक डायरेक्टर' तथा दोनों की अनुपस्थिति में प्रबन्ध समिति के उपस्थित सदस्यों में बहुमत से जो निर्वाचित हो, वह उस सभा का सभापतित्व करेगा।

(२) ५०० रु० से अधिक के संस्था के सभी दस्तावेजों, चेकों, हुण्डियों इत्यादि पर 'सहायक डायरेक्टर' के साथ संयुक्त दस्तखत करना।

(३) ४९९ रु० तक फुटकर व्यय की स्वीकृति 'सहायक डायरेक्टर' को देना।

(४) 'बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स' द्वारा निर्धारित सीमा तक आकस्मिक व्यय करना तथा बाद में उसकी स्वीकृति लेना।

५२. डायरेक्टर के निम्नलिखित कर्त्तव्य होंगे :

(१) साधारण सभा और 'बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स' की बैठकों को आमंत्रित करना और उसमें स्वयं उपस्थित रहना।

(२) संस्था की सभी सभाओं की कार्यवाही, कार्यवाही-रजिस्टर में समिति की भाषा हिन्दी में लिखना।

(३) संस्था के सभी रजिस्टरों, हिसाब की किताबों को, जिन्हें राजकीय नियम और विभागीय आदेशों के अनुसार रखना अनिवार्य है, सही ढंग से तारीखवार रखना।

(४) सभी रसीदों, वाउचरों और दूसरे कागजों को, जिनकी संस्था के कारोबार के लिए आवश्यकता हो, तैयार करना और आवश्यकता एवं जरूरत पर पत्र-व्यवहार करना।

(५) अपने कार्य में सहायता के लिए आवश्यकतानुसार वेतनयुक्त मंत्री नियुक्त करना। ऐसे मंत्री को 'बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स' का सदस्य होना आवश्यक नहीं है। वह बोर्ड का वैतनिक कार्यकर्त्ता होगा।

(६) सालिस या सालिसों को चेयरमैन के कहने पर संस्था के पावनेदारों या सदस्यों पर सालिसी सम्मनों को तामील कराने में मदद लेना।

(७) संस्था की ओर से ऐसे हुण्डी, चेक, दस्तावेज इत्यादि पर 'मैनेजिंग डायरेक्टर' के साथ संयुक्त हस्ताक्षर करना जो पाँच सौ या पाँच सौ रुपयों से ऊपर के हों।

(८) संस्था की ओर से ऐसे हुण्डी, चेक, दस्तावेज इत्यादि पर स्वयं हस्ताक्षर करना जो ४९९ रुपये तक हों।

(९) दो सौ रुपया तक फुटकर खर्च की स्वीकृति वैतनिक मंत्री को देना।

(१०) ऐक्ट की धारा २६ के अनुसार इन्दराजातों की नकल सही करना।

(११) निश्चित तिथि पर संस्था की अमानतों और ऋणों के भुगतान या वसूली का प्रबन्ध करना।

(१२) ऐसे अन्य कार्य करना जो बोर्ड रजिस्ट्रार की स्वीकृति से निश्चित करे।

(१३) आवश्यकतानुसार अधिक समय कार्य करते पद से सहायक डायरेक्टर वैतनिक भी हो सकते हैं। इन्हें वेतन में एलाउन्स स्वरूप आनरेरियम के रूप में जो कुछ दिया जाएगा उसके निर्णय का अधिकार 'बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स' को होगा।

(१४) खजान्ची कुल रुपयों को जो संस्था में सदस्यों या गैर-सदस्यों से मिलेंगे, उसे अपने हिसाब-किताब में रखेगा और 'सहायक डायरेक्टर' की हिदायतों के अनुसार व्यय करेगा। रोकड़-बही पर उसके सही रोकड़ प्रमाण होने के बाद 'सहायक डायरेक्टर' भी हस्ताक्षर करेगा और जो हिदायतें 'सहायक डायरेक्टर' द्वारा दी जाएँगी उसका खजान्ची पाबन्द होगा। जब कभी उससे कोई अधिकारी सहकारी विभाग का कहे, तहवील जाँच करने के लिए पेश करेगा।

(१५) वर्ष समाप्त होने के बाद जितना शीघ्र संभव हो, मुख्यत: अप्रैल मास में निम्नलिखित चीजें तैयार कराना :

(क) एक नक्शा जिसमें संस्था के ३१ मार्च तक के वर्ष भर के आय और व्यय का पता चल सके।

(ख) एक नक्शा उस देने-पावने का जो समिति को गत ३१ मार्च को लेना-देना था।

(ग) दूसरे नक्शे और रिपोर्ट जिन्हें 'रजिस्ट्रार' या 'बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स' ने निश्चित किया हो।

५३. खजांची का यह कर्तव्य होगा कि वह संस्था में प्राप्त सारे धन को अपने प्रबन्ध में ले और बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स, मैनेजिंग डायरेक्टर, सहायक डायरेक्टर या अन्य किसी व्यक्ति जिसे इसके लिए अधिकार प्राप्त हों, के आदेशानुसार खर्च करे। वह कैश बुक, रोकड़ बही में सही रोकड़ के प्रमाण के लिए हस्ताक्षर करेगा और बोर्ड के किसी सदस्य, रजिस्ट्रार, साधारण या विशेषाधिकार प्राप्त किसी अधिकारी के माँगने पर रोकड़ दिखा सकेगा। खजांची अपने पास बोर्ड द्वारा समय-समय पर निर्धारित सीमा तक धन रख सकता है।

५४. संस्था अपने उद्देश्यों के अनुसार अपने कार्यक्षेत्र में ही अपने व्यवसाय को करे। संस्था अपने व्यवसाय के लिए अपने कार्यक्षेत्र में विभिन्न शहरों में अपनी शाखा खोल सकेगी।

मियादी अमानतें और ऋण

५५. संस्था को अधिकार है कि ऐसे सूद की दर पर, जिसको 'बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स' ने स्वीकार किया हो, उसे सदस्यों, अन्य व्यक्तियों तथा सरकार से मियादी अमानत के रूप में अथवा किसी अन्य रूप में हिस्सों की भुगतान की हुई किश्तों और बचत की पूँजी के आठगुना भाग तक रुपया ले।

आवश्यकता पर पूँजी का विशेष उपयोग

५६. संस्था की पूँजी उसके उद्देश्यों की पूर्ति पर लगाई जाएगी। जिस धनराशि की आवश्यकता न हो वह नियम ५८ के अनुसार लौटा दी जाएगी।

५७. संस्था आवश्यकता पर अपनी पूँजी का विशेष उपयोग निम्नलिखित कार्यों में कर सकती है :

(१) गवर्नमेण्ट सेविंग बैंक में।

(२) इंडियन ट्रस्ट ऐक्ट की धारा २० में बताई हुई राजकीय हुंडियों में।

(३) किसी अन्य रजिस्टर्ड सहकारी संघों के हिस्सों में।

(४) रजिस्ट्रार द्वारा स्वीकृत बैंकों में।

५८. निम्नलिखित हिसाब किताबों और रजिस्टरों में रखे जायेंगे :

(१) सदस्यों का रजिस्टर।

(२) साधारण सभाओं और 'बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स' की सभाओं की कार्यवाही का रजिस्टर।

(३) रोकड़-बही, जिससे आय-व्यय तथा तहवील का पता चल सके।

(४) खाता, जिसके द्वारा प्रत्येक सदस्य का हिसाब ज्ञात हो।

(५) माल-बही, जिससे यह ज्ञात हो कि कितना माल आया, कितना बिका या बाहर भेजा गया और कितना जमा रहा।

(६) कैशबुक जिसमें आय और व्यय की रकम ठीक-ठीक मद में और रकम तहवील जो रोज निकाली जाएगी, दिखाई जाएगी।

(७) खाता, जिसके द्वारा संस्था का व्यक्तिगत देना-पावना मालूम हो।

(८) ऐसे दूसरे रजिस्टर जो आवश्यक हों या जिनके लिए सहायक डायरेक्टर आदेश दें।

५९. अमानतों के रजिस्टर के अतिरिक्त संस्था के सभी रजिस्टर, सदस्य जब चाहें देख सकते हैं। अमानती रजिस्टर 'बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स' के सदस्य या रजिस्ट्रार ही देख सकते हैं।

लाभ और बचत की पूँजी

६०. वर्ष का खालिस लाभ कुल लाभ में से नीचे लिखी धनराशियों को घटाकर निकाला जाएगा :

(१) सूद जो दिया जाएगा।

(२) कर्मचारियों का वेतन तथा सफर खर्च।

(३) बट्टे खाते में जानेवाली रकम।

(४) हानि की रकमें।

(५) उस मुनाफे को मालूम करने के लिए जो बाँटा जा सकता है। कुल बकाया, सूद और कुल वह सूद जो वाजिबुलअदा न हो, लेकिन जो ऐसे सदस्यों से कमाया गया हो, जिन पर सूद बकाया है, वह खालिस मुनाफों में से निकाल दिया जाएगा।

६१. बाँटे जानेवाले लाभ में से न्यूनतम १/३ बचत की पूँजी में जाएगा और शेष रजिस्ट्रार की स्वीकृति से निम्नलिखित विधि से खर्च किया जा सकता है :

(१) उन पूरे भुगतान किये हुए हिस्सों पर मुनाफा, जो गत वर्ष खत्म होने से छः माह पहले लिये गए हों :

(क) जिन हिस्सों का भुगतान ३१ दिसम्बर को हो जाएगा, उन पर साल भर का मुनाफा मिलेगा।

(ख) जिन हिस्सों का भुगतान पहली जनवरी या उसके पश्चात् होगा। उन पर छः मास का मुनाफा मिलेगा।

(२) ऐक्ट की दफा संख्या ३४ के मुताबिक खैराती कामों में लगाने के लिए।

(३) सदस्यों को बोनस देने के लिए।

(४) संस्था के किसी दूसरे फण्ड में।

(५) बचत की पूँजी बढ़ाने के लिए।

(६) अगले साल के मुनाफे में जोड़ने के लिए।

६२. बचत की पूँजी सरकारी रूल में लिखे हुए एक या उससे ज्यादा तरीकों में लगाई जा सकती है। यदि रजिस्ट्रार आज्ञा दें तो उनके निश्चय के अनुसार बचत की पूँजी का कुछ भाग संस्था अपने कारोबार में लगा सकती है।

६३. बचत की पूँजी बाँटी नहीं जाएगी और किसी सदस्य को उसमें कोई हिस्सा पाने का हक न होगा।

६४. लाभ की उप-नियमावली में कोई परिवर्तन उसी स्थिति में हो सकता है, जबकि वह न्यूनतम २/३ सदस्यों के बहुमत से ऐसे जलसे में पास हो, जिसमें बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स के कम-से-कम २/३ सदस्य उपस्थित हों और जो खासतौर से इसी कार्य के लिए किया गया हो। किसी भी परिवर्तन पर उस समय तक अमल नहीं किया जाएगा जब तक कि रजिस्ट्रार उसे स्वीकार न कर ले।

अंकेक्षा (आडिट)

६५. संस्था के हिसाब की अंकेक्षा, चीफ़ आडिट आफिसर, सहकारी समिति (जिस राज्य में संस्था हो) द्वारा अधिकृत किसी व्यक्ति द्वारा होगी। संस्था अपने हिसाब की आंतरिक जाँच के लिए एक या एक से अधिक अवैतनिक अंकेक्षक (आडिटर) नियुक्त कर सकती है।

विवाद

६६. संस्था के व्यवसाय से सम्बन्धित सभी विवाद सहकारी नियम ११५ के अनुसार सालिसी कार्यवाही द्वारा तय होंगे और कोई भी पक्ष प्रतिबन्ध कानून (लॉ ऑफ लिमीटेशन) का सहारा सालिसी कार्यवाही या डिग्री के इजरा होने में नहीं ले सकेगा।

संघ का टूटना

६७. संस्था केवल रजिस्ट्रार की आज्ञा से ऐक्ट की दफा ३० व ४० के अनुसार भंग की जा सकेगी।

भारतीय भाषाओं तथा हिन्दी पुस्तक परिषदों की भूमिका

स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद भारत में जिस अनुपात में साक्षरता और शिक्षा का प्रसार हुआ है उस अनुपात में पुस्तकों का विक्रय और जन-साधारण में पठन-रुचि का विकास नहीं हुआ। इस स्थिति पर न केवल शिक्षाविदों, पुस्तक-विक्रेताओं तथा प्रकाशकों ने ही चिन्ता व्यक्त की है, बल्कि भारत सरकार भी चिंतित है। हिन्दी-प्रकाशनों के क्षेत्र में तो यह स्थिति और भी दयनीय है। अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ तो काफी समय से इस समस्या के समाधान के लिए सक्रिय है और अतीत में अपनी कई बैठकों से इस विषय पर सम्यक विचार-विमर्श करता आ रहा है। पठन-रूचि के इस अभाव और पुस्तकों के विक्रय में ह्रास के कारण सिर्फ प्रकाशन-व्यवसाय ही संकट की स्थिति में नहीं है, बल्कि इसने मुद्रकों, जिल्दसाजों, कलाकारों तथा पुस्तक-विक्रेताओं को भी प्रभावित किया है। इससे सत्साहित्य के सृजन और प्रकाशन में भी रुकावट आई है, जिससे पाठकों में राष्ट्र-निर्माण और चरित्र-निर्माण में प्रेरणा मिलती है। किसी राष्ट्र के चरित्र का प्रमाण उसका साहित्य ही दे सकता है और भारत जैसे बहुभाषी विस्तृत देश के लिए यह दिनोत्तर स्थिति शोभनीय नहीं है।

विचार-विमर्श के दौरान इस समस्या के कई कारण प्रकाश में आए हैं। एक ओर तो जन-साधारण की क्रय-क्षमता में भारी गिरावट और दूसरी ओर पुस्तकों के बढ़ते मूल्य, तो एक महत्वपूर्ण कारण है ही, लेकिन दूसरी तरफ सरकार द्वारा पुस्तकों की थोक खरीद भी एक बड़ा कारण है। यद्यपि इस सरकारी प्रवृत्ति को पुस्तक-उद्योग के विकास में ही सहायक होना चाहिए था, परन्तु नियमों की अपूर्णता, उनका उल्लंघन तथा भ्रष्ट और लोलुप अधिकारियों के निम्न-स्वार्थ विकास रोकने में जिम्मेदार हैं। अप्रत्यक्ष रूप से इसका प्रभाव पुस्तक की विषय-वस्तु पर और प्रकाशन-स्तर पर भी पड़ता है। छिछला सेक्स, अपराध वृत्ति तथा आतंककारी साहित्य से आज बाजार पटा हुआ है। छद्मनाम तथा भ्रष्ट लेखन से विकृतियाँ पैदा करनेवाले साहित्य को प्रोत्साहन मिल रहा है।

भारतीय भाषाओं में परस्पर सहकार, व्यवस्थित तथा नियोजित आदान-प्रदान की भी बड़ी आवश्यकता है, जिससे न केवल भावनात्मक एकता को बल मिले, अपितु एक दूसरे की साहित्यिक प्रवृत्तियों को पहचान कर एक अखिल भारतीय साहित्यिक इमेज को प्रस्तुत करनेवाला साहित्य सभी भाषाओं में सृष्ट हो। कागज की बढ़ती कीमतें, डाक की

दरों में सरकार द्वारा की जा रही वृद्धि आदि को लेकर सरकारी नीति भी पुस्तक-व्यवसाय का सिर दर्द बनी हुई है। इन सभी समस्याओं की ओर न केवल सम्बन्धित व्यक्तियों तथा संस्थाओं का ही ध्यान आकृष्ट किया जाता रहा, बल्कि समय-समय पर प्रान्तीय सरकारों और केन्द्रीय सरकार का भी ध्यान आकर्षित किया गया है। इसी के फलस्वरूप नई दिल्ली में हुए पंचम विश्व पुस्तक मेले के उद्घाटन अवसर पर भारत की प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने एक पुस्तक-विकास मंडल (Book Development Board) की स्थापना का आश्वासन दिया। लेकिन इस आश्वासन के क्रियान्वयन में सरकारी गतिविधि नहीं दिखाई दी। अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ ने इलाहाबाद में १९-२० जून, १९८२ को अपने ने २५वें अधिवेशन में सर्वसम्मति से हिन्दी पुस्तक परिषद् (बुक कौन्सिल) के गठन का प्रस्ताव पारित किया और कृष्णचन्द्र बेरी को अन्तरिम अध्यक्ष नामांकित कर इस संस्था के शीघ्र गठन का आदेश दिया।

उक्त-प्रस्ताव के क्रियान्वयन की दिशा में एतद् प्रस्ताव किए गये:

१. संस्था का नाम : 'हिन्दी पुस्तक परिषद्' होगा जो अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ के तत्वावधान में कार्य करेगी।

२. परिषद का स्थायी कार्यालय : वाराणसी में होगा, किन्तु अध्यक्ष और महामंत्री की सुविधानुसार अस्थायी कार्यालय अन्य केन्द्रों में भी हो सकते हैं।

३. परिषद् का वित्तीय वर्ष, १ अप्रैल से ३१ मार्च तक होगा।

४. जिन उद्देश्यों के लिए परिषद् की स्थापना हुई है, वे हैं:

(क) केन्द्र और राज्य सरकारों से उचित स्तर पर सम्पर्क बनाए रखकर सरकारी क्रय-नीति, कागज का नियंत्रण-मूल्य, डाक-दरों आदि के निर्धारण में तालमेल बनाए रखना, जिससे पुस्तकों के उत्पादन और वितरण में अनुचित व्यय भार न बढ़े।

(ख) मौलिक-लेखन के विषयों का निर्धारण और सदस्य-प्रकाशकों में आवंटन करना ताकि दुहराहट से बचा जा सके।

(ग) विभिन्न हिन्दीतर भाषाओं से विषयवार पुस्तकों को चुनना और आदान-प्रदान के लिए सदस्यों में आवंटन करना।

(घ) पुस्तकों के संस्करण की संख्या आदि के बारे में परामर्श देना और अन्य भाषाओं के संगठनों तथा प्रकाशकों से नियमित सम्पर्क बनाये रखना।

(च) मुद्रण के प्रतिमान को उच्चतर बनाकर, उसे उसी स्तर पर बनाए रखने के लिए प्रयत्न करना।

(छ) लागत-मूल्य और ऊपरी व्यय के अनुपात में प्रत्येक पुस्तक का उचित विक्रय-मूल्य निर्धारित करना।

(ज) जनता में पठन-पाठन की रुचि का विकास करके पुस्तकों की लोकप्रियता बढ़ाने के लिए जनपद-स्तर और प्रदेश की राजधानियों में समय-समय पर पुस्तक मेले, पुस्तक-प्रदर्शनियाँ आदि आयोजित करना।

(झ) पुस्तक-प्रसार के क्षेत्र-विस्तार के लिए पुस्तकालयों, समाचारपत्रों आदि की सहायता प्राप्त करना और गोष्ठियों का आयोजन करना।

(ट) पुस्तक-प्रसार के लिए स्थान-स्थान पर बुक-क्लबों की स्थापना करना।

(ठ) सत्साहित्य के सृजन को बढ़ावा देने के लिए समय-समय पर विभिन्न स्थानों में परिसंवाद, संगोष्ठियाँ आदि आयोजित करना।

(ड) प्रकाशकों और लेखकों के बीच स्वस्थ और सहयोगी सम्बन्ध स्थापित करने के लिए प्रयत्न करना।

(ढ) पाठकों और लेखकों के बीच निकट सहयोग और विस्तृत सम्बद्धता पैदा करना ताकि लेखक, पाठकों और समाज की समस्याओं को निकट से जान सकें। परिसंवाद और गोष्ठियाँ आयोजित करना।

(त) अनुवादकों और पुस्तक-व्यवसाय से सम्बद्ध अन्य लोगों, यथा पुस्तक विक्रेता, जिल्दसाज आदि की समस्याओं पर विचार करके उनके समाधान के लिए प्रयत्न करना।

(थ) विभिन्न-स्तरों पर पुस्तकों के विक्रय पर देय कमीशन का निर्धारण करना।

(द) पुस्तक-प्रसार के लिए समाचार पत्र, रेडियो, दूरदर्शन आदि संचार-संसाधनों के अधिकाधिक प्रयोग के लिए प्रयत्न करना और सुविधा जुटाना।

(ध) समस्त भारतीय भाषा क्षेत्रों से प्रत्येक स्तर पर निकट सम्पर्क स्थापित करना।

(न) परिषद् की प्रादेशिक समितियों द्वारा मानक-पुस्तकों की सूचियाँ प्राप्त करना ताकि उपधारा (ख) और (ग) के लिए पुस्तकों का निर्धारण किया जा सके।

(प) वर्ष विशेष में प्रकाशित श्रेष्ठ पुस्तकों का निर्धारण और समुचित पुरस्कार द्वारा उन्हें सम्मानित करना।

(व) छद्मनाम से लिखे और प्रकाशित किए जा रहे साहित्य का विरोध और उसे समाप्त करने के लिए प्रयत्न करना।

(भ) यूनेस्को, नेशनल बुक ट्रस्ट आदि सरकारी, गैर सरकारी साहित्य संस्थाओं से सम्पर्क और सम्बन्ध बनाए रखना।

(म) उक्त उद्देश्यों की सम्पूर्ति के लिए आवश्यकतानुसार सर्वाधिक पत्र-पत्रिकाओं और बुलेटिन आदि का प्रकाशन करना तथा उनके समुचित वितरण की व्यवस्था करना।

(य) परिषद् में समय-समय पर विभिन्न प्रयोजनों से प्राप्त तथा सन्दर्भों के लिए आवश्यकतानुसार क्रय की हुई पुस्तकों तथा विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं का एक सन्दर्भ पुस्तकालय विकसित करना।

(र) पुस्तक-प्रचार-प्रसार, पठन-रुचि संवर्धन तथा सत्साहित्य-प्रकाशन आदि के हित में उपयोगी विधि कार्यान्वित करना, जिसे प्रबन्धकारिणी समिति उचित समझे।

(ल) जनता में पुस्तक-प्रसार और साहित्य-प्रेम विकसित करने के लिए लेखकों, कवियों, कलाकारों, साहित्यकारों, प्रकाशकों तथा पुस्तक-विक्रेताओं आदि का एक साथ समय-समय पर विभिन्न स्थानों की पदयात्रा करना एवं जन-साधारण से सम्पर्क कराना।

(व) विभिन्न नगरों के श्रेष्ठ उद्योगपतियों और व्यवसायियों के प्रतिष्ठानों को संगीत-समारोहों की भाँति साहित्य-समारोह, लेखक-सम्मेलन आदि आयोजित करने के लिए प्रेरित एवं प्रोत्साहित करना।

५. परिषद् के घोषित उद्देश्यों और लक्ष्यों की सम्पूर्ति के लिए व्यक्तियों, प्रतिष्ठानों, निगमों, न्यासों आदि से नियमित तथा आकस्मिक शुल्क, चन्दा, अनुदान, दान, उपहार आदि आर्थिक-सहायता स्वीकार करना और उसे पारित बजट के प्रावधानों के अनुसार व्यय करना।

६. किसी समान-उद्देश्यवाली अन्य भाषाओं की संस्था या समिति को आवश्यकता और साधनों के अनुसार आर्थिक या अन्य किसी प्रकार की सहायता देना या लेना।

७. समान-उद्देश्यवाली कोई समिति या संस्था परिषद में अन्तर्भुक्त होना चाहे तो उसके प्रस्ताव पर पूरी तरह विचार कर उसे विलीन करना।

८. प्रत्याभूति या बिना प्रत्याभूति के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ की पूर्वानुमति प्राप्त करके उन शर्तों पर आर्थिक राशि

उधार लेना और लौटाना जिन्हें परिषद् उपयुक्त समझे तथा ऐसी राशि को उसी उद्देश्य के लिए व्यय करना जिसके लिए वह प्राप्त की गई हो।

९. मातृ संस्था अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ की पूर्वानुमति से उद्देश्यों में परिवर्तन या परिवर्द्धन करना।

१०. परिषद् के घोषित उद्देश्यों के क्रियान्वयन के लिए सदस्य नियमानुसार एक केन्द्रीय प्रबन्ध समिति गठित करेंगे, जिसे आवश्यकतानुसार कार्यालय के लिए स्थान, फर्नीचर, आवश्यक उपकरण और वैतनिक कर्मचारियों की नियुक्ति का अधिकार रहेगा। इसी तरह आंचलिक प्रबन्ध-समितियों का भी गठन किया जाएगा जो आंचलिक परिषदों का कार्यभार सम्हालेगी।

११. परिषद् किसी भी कारण से मातृ संस्था अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ की पूर्वानुमति के बिना विघटित नहीं की जा सकेगी। उचित पूर्वानुमति से यदि परिषद् को विघटित किया जाता है, तो सबसे पहले उसकी सम्पत्ति पर अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ का अधिकार होगा। किसी भी अवस्था में वह परिषद् के सदस्यों या उनमें से किसी एक को, अथवा किसी भी कर्मचारी को नहीं दी जायेगी या वितरित की जायेगी।

हिन्दी पुस्तक प्रसार परिषद्
नियम-विनियम

परिषद् की पश्चिम बंगाल शाखा की ओर से प्रस्तुत :

१. परिभाषाएँ

इन नियमों में, जब तक कि विषय और सन्दर्भ में बहिष्कृत, असम्बद्ध या असंगत न हो :

(अ) 'परिषद' से तात्पर्य 'हिन्दी पुस्तक परिषद्' होगा।

(आ) 'संघ' से तात्पर्य 'अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ' होगा।

(स) 'सदस्य' से तात्पर्य आगे परिभाषित परिषद् या संघ के सदस्यों से होगा।

(द) 'समिति' से अभिप्रेत तत्कालीन विधिवत गठित प्रबंध-समिति से होगा।

(प) 'अध्यक्ष' 'उपाध्यक्ष' 'महामंत्री' 'संयुक्त मंत्री' 'कोषाध्यक्ष' आदि से अभिप्राय उन पदाधिकारियों से होगा, जो परिषद् की तत्कालीन प्रबन्ध समिति के पदाधिकारी हैं।

(फ) 'साधारण सभा' से तात्पर्य परिषद् की सब प्रकार की साधारण-असाधारण सभाओं से होगा।

(ब) 'निर्धारित' से तात्पर्य परिषद् के नियमोपनियम या विनियम द्वारा निर्धारित समय-सीमा या अन्य प्रकार की निर्धारित सीमा से होगा।

२. सदस्यता

(अ) संघ का प्रत्येक सक्रिय सदस्य, व्यक्ति संस्था या प्रतिष्ठान, पुस्तक-विक्रेता, पत्रकार, पुस्तकालयाध्यक्ष परिषद् का सामान्य सदस्य होगा।

(ब) संस्था या प्रतिष्ठान अपना प्रतिनिधि नामांकित करेगा।

(स) प्रत्येक सदस्य को संघ की सदस्यता-शुक्ल के अतिरिक्त :

(१) व्यक्ति के लिए १००/- प्रतिवर्ष और संस्था या प्रतिष्ठान के लिए ५००/-, प्रतिवर्ष देय होगा, जो वित्तीय-वर्ष के प्रारम्भ होते ही एक मास की अवधि में जमा हो जाना चाहिए।

(२) **मानद सदस्य :** ऐसे विशिष्ट व्यक्ति, शिक्षाशास्त्री, साहित्यकार या विद्वान्, जिन्हें परिषद् अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए, उपदेश या निर्देश के लिए आवश्यक समझे उन्हें एक वर्ष के लिए सदस्य बनाया

जा सकता है। ऐसे मानद-सदस्यों को किसी शुल्क देने की बाध्यता न होगी और ऐसे सदस्यों की सदस्यता प्रबंध-समिति द्वारा पुनर्नवीन या विस्तारित की जा सकती है।

(३) **संरक्षक-सदस्य :** ऐसे व्यक्ति जो परिषद् की प्रवृत्तियों में रुचि रखकर एक मुश्त १०,०००/- या इससे ऊपर की राशि अनुदान दें, वे संरक्षक-सदस्य होंगे और उनकी सदस्यता वर्ष तक प्रभावी रहेगी।

टिप्पणी

(१) यदि यह राशि विशिष्ट प्रयोजन, जैसे पुरस्कार, परियोजना (प्रोजेक्ट) आदि के लिए हो तो ऐसे सज्जन ऐसी तदर्थ समिति के ही विशिष्ट-सदस्य हो सकेंगे।

(२) शुल्क के निर्धारित समय पर जमा न होने पर प्रबन्ध समिति सम्बन्धित सदस्य की सदस्यता निलम्बित या निरस्त कर सकती है।

३. संगठन

(१) परिषद का संगठन द्वैपंक्तिक होगा, केन्द्रीय और आंचलिक। नियम २ के अनुसार सभी सदस्य केन्द्रीय या आंचलिक या दोनों संगठनों के समुचित शुल्क देकर सदस्य हो सकते हैं। केन्द्रीय-संगठन सम्पूर्ण देश का प्रतिनिधित्व करेगा। आंचलिक क्षेत्र नीचे लिखे अनुसार होगें :

(अ) **पूर्वांचल :** इस क्षेत्र में पश्चिम-बंगाल और उसके पूर्व के सभी प्रदेश तथा उड़ीसा-प्रदेश होंगे।

(ब) **उत्तरांचल :** बिहार, उत्तर प्रदेश, हिमांचल प्रदेश, पंजाब, कश्मीर, दिल्ली और हरियाणा।

(स) **पश्चिमांचल :** गुजरात और महाराष्ट्र।

(द) **मध्यक्षेत्र :** मध्य प्रदेश, राजस्थान।

(य) **दक्षिणांचल :** तमिलनाडु, केरल, आन्ध्र प्रदेश और कर्नाटक।

टिप्पणी

(१) आवश्यकतानुसार परिषद् जिला स्तर पर 'मण्डल-समितियाँ' भी गठित कर सकेगी।

(२) केन्द्रीय संगठन का मुख्य कार्यालय धारा २ के अनुसार होगा। आंचलिक क्षेत्रों के स्थायी कार्यालय नीचे लिखे अनुसार होंगे किन्तु अस्थायी कार्यालय धारा २ के अनुसार अन्य सुविधाजनक स्थानों पर भी स्थापित किए जा सकेंगे : (१) पूर्वांचल : कलकत्ता (२) उत्तरांचल : वाराणसी/इलाहाबाद (३) पश्चिमांचल : बम्बई (४) मध्यांचल : भोपाल/जयपुर (५) दक्षिणांचल : मद्रास/बेंगलोर/हैदराबाद/त्रिवेन्द्रम्

(३) आवश्यकतानुसार आंचलिक क्षेत्रों की सीमाएँ संशोधित की जा सकती हैं।

परिषद् का कार्य सुचारु रूप से चलाने के लिए केन्द्रीय और आंचलिक संगठनों में प्रबन्ध समितियों का नीचे लिखे अनुसार गठन किया जाएगा :

४ (अ) १ अध्यक्ष, १ उपाध्यक्ष, १ महामंत्री, १ कोषाध्यक्ष, सदस्य (नामांकित)

८ (ब) १ संयुक्त मंत्री, १ केन्द्रीय सरकार का प्रतिनिधि, १ लेखकों का प्रतिनिधित्व, ५ आंचलिक अध्यक्ष (पदेन)

१२

टिप्पणी

(१) संयुक्त मंत्री और लेखकों के प्रतिनिधि, निर्वाचित पदाधिकारियों के बहुमत से ही नामांकित किए जायेंगे।

(२) आंचलिक क्षेत्रों की प्रबन्ध समितियों का गठन भी इसी प्रकार किया जाएगा। सरकारी प्रतिनिधि प्रादेशिक शिक्षा विभाग द्वारा नामांकित होगा।

(३) प्रबन्ध समिति का कार्यकाल ३ वर्ष का रहेगा।

(४) कार्य विधि :

(अ) प्रबन्ध समिति वर्ष में कम से कम चार बार अपनी बैठकें अवश्य बुलाएगी, जिनमें से प्रथम बैठक अप्रैल में होगी। इसमें विगत वर्ष का आय-व्यय का लेखा और नए वर्ष का बजट प्रस्तुत कर पारित किया जाएगा। पारित हो जाने पर ये दोनों ही पत्रक संघ की संपुष्टि के लिए भेजे जायेंगे। बजट के लिए यदि संघ कुछ संस्तुति करना चाहे तो प्रबन्ध समिति उस पर आवश्यक ध्यान देगी, किन्तु संघ की संस्तुतियों से बाध्य नहीं होगी।

(ब) अप्रैल की प्रथम बैठक परिषद् की साधारण सभा होगी, जिसमें प्रबन्ध-समिति के अतिरिक्त परिषद् के सभी सदस्य सम्मिलित होंगे और वार्षिक विवरण के अतिरिक्त आय-व्यय का लेखा-जोखा तथा बजट, सदस्यों के बहुमत से ही पारित होंगे।

(स) प्रबन्ध समिति के कार्यकाल के अन्तिम वर्ष अन्तिम बैठक भी परिषद् की साधारण सभा होगी, जिसमें प्रबन्ध समिति उक्त उपधारा (ब) की कार्यवाही सम्पन्न करेगी और अगले सत्र के लिए पदाधिकारियों का चुनाव करेगी। नई प्रबन्ध समिति की अगली बैठक तक बर्हिगामी महामंत्री कार्यभार नए महामंत्री को सम्भालने में सहायता करेंगे।

(द) प्रत्येक निर्णय या प्रस्ताव सभा में उपस्थित सदस्यों के बहुमत से ही पारित समझा जाएगा। जहाँ मत बराबर हो, अध्यक्ष अपने मत का आवश्यकतानुसार प्रयोग कर सकेगा।

(य) प्रत्येक बैठक के लिए निर्वाचित सदस्यों की एक तिहाई उपस्थिति से ही गणपूर्ति सम्भव हो जाएगी, किन्तु प्रबन्ध समिति की बैठक के लिए यह आवश्यक नहीं है।

(फ) प्रबन्ध समिति की सभी बैठकों का सभापतित्व अध्यक्ष करेंगे। उनकी अनुपस्थिति में उपाध्यक्ष सभापति रहेंगे।

(ग) परिषद् के समस्त आय-व्यय और अर्थादि का रख-रखाव कोषाध्यक्ष के अधीन रहेगा।

(च) प्रत्येक वर्ष परिषद् के हिसाब की जाँच किसी योग्यताप्राप्त लेखा-परीक्षक द्वारा कराई जाएगी।

(ज) प्रबन्ध समिति की प्रत्येक बैठक की कार्यवाही लिखित रक्खी जाएगी। इसके लिए महामंत्री व्यवस्था करेंगे।

(क) इन नियमों के अनुसार ही आंचलिक संगठनों के नियमोपनियम होंगे। किन्तु यदि आंचलिक संगठन अपनी स्थानीय आवश्यकतानुसार किसी नियम या उपनियम में परिवर्तन, परिवर्धन या संशोधन करना चाहें तो केन्द्रीय प्रबन्ध समिति की पूर्वानुमति से ऐसा किया जा सकता है।

५. अर्थ-व्यवस्था : परिषद् की कार्य-प्रक्रिया के लिए आवश्यक अर्थपूर्ति सदस्यों के शुल्क तथा अनुदान से पूरी की जाएगी। इसके अतिरिक्त संघ एक निश्चित राशि प्रतिवर्ष परिषद् को अनुदान देगी, जिसका निर्धारण संघ की एक बैठक में परिषद् के सदस्यों के परामर्श से किया जाएगा। यदि और अधिक द्रव्य की आवश्यकता हो तो संघ से अतिरिक्त अनुदान का निवेदन किया जा सकता है। प्रबन्ध समिति अपने कोषाध्यक्ष के सहयोग और परामर्श से अर्थ-संग्रह के अन्य उपायों का भी अवलम्बन कर सकती है।

६. निर्वाचन : प्रत्येक चौथे वर्ष प्रबन्ध समिति आगामी सत्र के लिए निर्वाचन की तिथि निर्धारित कर सभी सदस्यों को सूचित करेगी और महामंत्री निर्वाचन-तिथि के सात दिन पूर्व नामांकन पत्र आमंत्रित करेंगे। नामांकन पत्र समुचित रूप से प्रस्तावित और अनुमोदित होगा तथा अभ्यर्थी की स्वीकृति भी नामांकन पत्र के साथ प्रेषित करनी आवश्यक होगी। नामांकन पत्रों की जाँच उसी दिन हो जाएगी और अभ्यर्थी निर्वाचन तिथि के ७२ घण्टे पूर्व तक नाम वापस ले सकते हैं।

निर्वाचन के एक सप्ताह के भीतर निर्वाचित पदाधिकारी अपने क्षेत्र के विशिष्ट लेखक का निर्वाचन करेंगे। चुनाव स्पष्ट बहुमत के आधार पर होगा।

७. नियमों और उपनियमों में संशोधन, परिवर्तन, परिवर्धन : परिषद् की साधारण सभा में ही बहुमत के आधार पर किए जा सकेंगे। यदि कोई संशोधन या परिवर्धन (परिवर्तन नहीं) परिषद् के हित में आवश्यक समझा जाए तो प्रबन्ध समिति दो-तिहाई बहुमत से ऐसा कर सकती है, किन्तु इसकी संपुष्टि परिषद् की आगामी बैठक में करवा लेनी होगी।

८. यदि कोई ऐसी समस्या उपस्थित हो जाए जो इन नियमों के अन्तर्गत न आती हो या न सुलझाई जा सके तो उसके लिए संघ का निर्णय अन्तिम और परिषद् के लिए मान्य होगा।

❀

लेखक-प्रकाशक सहकारी संघ

नाम और पता

१. संस्था का नाम 'लेखक-प्रकाशक सहकारी संघ लिमिटेड' होगा। इसका रजिस्टर्ड प्रधान कार्यालय, डाकखाना व जिला वाराणसी होगा।

परिभाषाएँ

२. इन उप-नियमावलियों में जब तक ये बातें, विषय या प्रसंग के विरुद्ध न हों—

(क) **सहकारी अधिनियम**—से प्रयोजन है कोआपरेटिव सोसाइटीज ऐक्ट १९१२/१९२२ की धारा तथा समय-समय पर संशोधित धारा।

(ख) **नियमों**—से प्रयोजन है उत्तर प्रदेशीय सरकार द्वारा कोआपरेटिव सोसाइटीज ऐक्ट १९१२ धारा ४३ के अन्तर्गत बनाए हुए नियम।

(ग) **उप-नियमावली**—से प्रयोजन है इस समिति की रजिस्टर्ड उप-नियमावली जो इस समय लागू होगी और इसके अतिरिक्त इसमें उप-नियमों के रजिस्टर्ड संशोधन भी शामिल होंगे।

(घ) **रजिस्ट्रार**—से प्रयोजन है, रजिस्ट्रार, कोआपरेटिव सोसाइटीज या वह अधिकारी जिसको प्रदेश सरकार द्वारा सहकारी अधिनियम के अन्तर्गत रजिस्ट्रार का अधिकार दिया गया हो।

(ङ) **संघ**—से प्रयोजन है 'लेखक-प्रकाशक सहकारी संघ लिमिटेड', डाकखाना और जिला वाराणसी, राज्य-उत्तर प्रदेश।

(च) **कार्यक्षेत्र**—से प्रयोजन है समिति का वह कार्यक्षेत्र जिसका उल्लेख उप-नियमावली संख्या-४ में किया गया है।

(छ) **साधारण सभा**—से प्रयोजन है संघ के मान्य सदस्यों की मिली-जुली एक सभा जिसे उप-नियमावली के अनुसार अधिकार प्राप्त होगा।

(ज) **प्रबन्ध समिति**—से प्रयोजन है संघ की साधारण सभा द्वारा मान्य संघ के सभी कार्यों की सर्वोच्च निरीक्षक तथा प्रबन्धकर्ता के रूप में काम करनेवाली समिति।

(झ) **वर्ष**—से प्रयोजन है सहकारी वर्ष से जो १ जुलाई से आरम्भ होकर ३० जून को समाप्त होगा।

उद्देश्य

३. संघ के निम्नलिखित उद्देश्य होंगे—

(क) लेखकों और हिन्दी-प्रेमियों के प्रति आकर्षण उत्पन्न करना, सहकारिता के नाम का भाव जाग्रत करना तथा जीवन में सहकारिता का भाव स्थापित करके आपस में सौहार्द्र, प्रेम और सहयोग के आधार पर एक-दूसरे की सहायता से सर्वसाधारण में पुस्तक-प्रकाशन व्यवसाय की ओर सहकारिता के प्रति अभिरुचि उत्पन्न करने के लिए पृष्ठभूमि तैयार करना।

(ख) हिन्दी भाषा और साहित्य के सभी लेखक तथा संवर्धन चाहनेवाले इस संघ के सदस्य हो सकेंगे।

(ग) इस संघ का मुख्य उद्देश्य हिन्दी साहित्य की अभिवृद्धि, नवोदित लेखकों को एक सूत्र में बाँधना तथा विविध क्षेत्रों में साहित्यिक पुस्तकों का प्रकाशन करना है। विशेषतः प्राविधिक एवं वैज्ञानिक ग्रन्थों का निर्माण करना होगा।

(घ) संघ द्वारा प्रकाशित पुस्तकों का अधिक से अधिक प्रसार कर सहकारिता की ओर जनसाधारण की अभिरुचि पैदा करना।

(ङ) नवोदित लेखकों और छिपी साहित्यिक प्रतिभाओं के विकास के लिए प्रयास करना।

(च) लेखकों को अधिक से अधिक लाभ हो, इसकी समुचित व्यवस्था की सामाजिक परम्परा कायम करना।

(छ) इसकी आमदनी से जो लाभांश हो उससे पीड़ित और शोषित लेखकों की सहायता करना।

(ज) हिन्दी साहित्य के विकास के लिए पत्र-पत्रिकाएँ निकालना।

(झ) आवश्यकता पड़ने पर सहकारिता प्रणाली द्वारा प्रेस की स्थापना करना।

कार्यक्षेत्र

४. इस संस्था का कार्यक्षेत्र समूचे भारत की सीमा होगी।

सदस्यता

५. हिन्दी के प्रकाशक, विक्रेता और हिन्दी पुस्तक-व्यवसाय से सुपरिचित कोई भी व्यक्ति, जिसकी अवस्था अट्ठारह वर्ष से ऊपर हो, इस संघ के कार्यक्षेत्र का निवासी हो, उपरोक्त संघ का सदस्य हो सकता है।

६. संघ के प्रारम्भिक सदस्य वे होंगे, जिन्होंने संघ के रजिस्टर्ड आवेदन-पत्र पर हस्ताक्षर किया होगा।

७. सदस्यता की स्वीकृति बोर्ड ऑफ डाइरेक्टर्स की राय से मैनेजिंग डाइरेक्टर द्वारा की जायेगी। किसी व्यक्ति की सदस्यता अस्वीकृत होने पर वह साधारण सभा

और वहाँ से भी अस्वीकृत होने की दशा में रजिस्ट्रार के पास अपील कर सकता है, जिसका निर्णय अन्तिम होगा। सदस्यता अस्वीकृत होने पर बोर्ड ऑफ डाइरेक्टर्स उन कारणों का भी उल्लेख करेगें जिनके आधार पर सदस्यता अस्वीकृत की गयी है।

८. (क) प्रत्येक व्यक्ति सदस्य होने के पूर्व एक घोषणा-पत्र पर हस्ताक्षर करेगा कि वह संस्था के नियमों, संशोधनों, परिवर्तनों तथा सम्वर्धनों से आबद्ध रहेगा, जो उसके सदस्यता काल में बने हैं।

(ख) संस्था के रजिस्टर्ड प्रार्थना-पत्र पर हस्ताक्षर करनेवाले प्रारम्भिक सदस्य को भी ऐसे घोषणापत्र पर समिति के रजिस्टर्ड होने के एक मास के भीतर हस्ताक्षर करना होगा, नहीं तो उसे संस्था की प्रारम्भिक सदस्यता से अलग समझा जायेगा।

(ग) हर सदस्य को इस आशय के घोषणापत्र पर भी हस्ताक्षर करना होगा कि संस्था की साधारण सभा में व्यवसायसम्बन्धी जो नियम उपस्थित सदस्यों के बहुमत से पास होंगे और जिनकी स्वीकृति रजिस्ट्रार से मिल गयी होगी उनसे वह बाध्य रहेगा। ऐसे नियमों की अवहेलना पर उसे निकाला जा सकता है और संघ उसके हिस्सों से प्राप्त रकम को जब्त कर सकता है।

९. प्रारम्भिक सदस्यों के अतिरिक्त प्रत्येक व्यक्ति को सदस्यता के लिए आवेदन-पत्र के साथ दस रुपया प्रवेश शुल्क के रूप में देना होगा, जिसे किंसी भी दशा में सदस्य वापस पाने का अधिकारी न होगा।

१०. कोई सदस्य जब तक घोषणापत्र पर हस्ताक्षर, प्रवेश शुल्क तथा हिस्से की पूरी रकम न अदा कर दे, तब तक वह सदस्यता के अधिकारों का उपयोग नहीं कर सकेगा।

११. (क) संस्था की माँग पर हर सदस्य को अपनी पूँजी, ऋण तथा अन्य जिम्मेदारियों की पूरी व सही सूचना देनी होगी।

(ख) संस्था अपने सभी सदस्यों की हैसियत का विवरण उनसे प्राप्त कर सकती है ताकि उत्तरदायित्व में उसका उपयोग हो सके।

१२. कोई सदस्य पूर्व घोषणा या यह लिख कर कि उसकी मृत्यु के बाद उत्तराधिकारी अमुक व्यक्ति होगा, के माध्यम से अपना उत्तराधिकारी मनोनीत कर सकता है। मनोनीत व्यक्ति की मृत्यु हो जाने की दशा में सदस्य मृत्यु की सूचना संस्था को देगा और वह दूसरे व्यक्ति को पुनः मनोनीत कर सकेगा। मनोनीत करने के लिए दो गवाहों का होना आवश्यक होगा। मनोनीत व्यक्ति नई घोषणा करने पर बदला जा सकता है। यदि मनोनीत व्यक्ति की मृत्यु मनोनीत करनेवाले सदस्य की मृत्यु के पश्चात्, परन्तु धन की वापसी के पूर्व हो जाती है तो उस सदस्य के हिस्से की तथा अन्य धन की वापसी उस व्यक्ति को की जायगी जिसे संस्था के बोर्ड ऑफ डाइरेक्टर्स मृत सदस्य का वास्तविक उत्तराधिकारी

समझेंगे। नाबालिग को उसके संरक्षक द्वारा मृत सदस्य का रुपया वापिस दिया जायगा।

१३. किसी भी सदस्य को संस्था में खरीदे हुए अपने हिस्सों को वापस लेने का अधिकार न होगा और न वह भर्ती की तारीख से १ वर्ष के भीतर संस्था से त्यागपत्र दे सकेगा। अवधि बीतने के बाद कोई भी सदस्य, जिसके जिम्मे संस्था का कोई पावना नहीं है, एक महीने की नोटिस देकर सदस्यता से त्यागपत्र दे सकता है। नोटिस के समय की गणना संस्था द्वारा नोटिस प्राप्ति की तिथि से होगी।

१४. (क) इन उप-नियमावलियों के अनुसार संघ के सदस्यों के लिए आवश्यक योग्यता न होने पर कोई भी सदस्य संघ की सदस्यता से बोर्ड ऑफ डाइरेक्टर्स द्वारा पृथक किया जा सकता है।

(ख) उप-नियमावली पाँच को देखने के बाद निम्नलिखित अवस्था में सदस्यता समाप्त समझी जायगी—

(१) सदस्य की मृत्यु होने पर।

(२) सदस्यता स्वीकृत होने के बाद नियमतः त्यागपत्र देने की अवस्था में।

(३) उसके हिस्से हस्तान्तरित या जब्त होने पर।

(४) न्यायालय द्वारा दीवालिया करार देने पर।

(५) संस्था के कार्यक्षेत्र को छोड़कर बाहर बस जाने पर।

(६) बोर्ड ऑफ डाइरेक्टर्स द्वारा निकाले जाने पर, जिन कारणों को बोर्ड उल्लेख करेगा, पर उस सदस्य को नियम सात के अनुसार रजिस्ट्रार के पास अपील का अधिकार होगा।

(ग) निम्नलिखित कारणों से कोई भी सदस्य साधारण सभा के बहुमत पर निकाला जा सकेगा—

(१) संस्था का डिफाल्टर हो।

(२) संस्था को गलत आचरण या वक्तव्य द्वारा धोखा दे।

(३) आचरण सम्बन्धी मामलों में अदालत द्वारा दण्डित होने पर।

(४) संघ के उद्देश्यों के विपरीत उसके अहित में काम करे।

(घ) 'ख' 'ग' के अन्तर्गत जो सदस्यता से अलग किया जायगा उसको सदस्यता से अलग किये जाने की तिथि से दो मास के भीतर रजिस्ट्रार के यहाँ अपील करने का अधिकार होगा। ऐसी अपील पर रजिस्ट्रार का निर्णय संस्था तथा निकाले हुए सदस्य दोनों पर बाध्य होगा।

१५. कोई भी व्यक्ति जो इस संस्था या अन्य किसी भी सहकारी समिति या संस्था से निकाला हुआ हो, निकालने की तारीख से २ वर्ष के भीतर संस्था में पुनः

भर्ती न हो सकेगा। किन्तु रजिस्ट्रार विशेष परिस्थितियों में इस प्रतिबन्ध से किसी भी व्यक्ति को मुक्त कर सकता है।

पूँजी

१६. संस्था की पूँजी निम्नलिखित में से एक या एक से अधिक अथवा समस्त साधनों द्वारा प्राप्त की जा सकती है—

(क) हिस्सों की पूँजी (जो कि प्रारम्भ में तीन लाख हो तो काम सुचारु रूप से चल सकता है)।

(ख) ऋण और अमानतें।

(ग) विशेष सहायताप्राप्त पूँजी।

(घ) रक्षित तथा अन्य कोष।

(ङ) बिना बँटा मुनाफा।

हिस्से

१७. संस्था की पूँजी उन हिस्सों से बनेगी जो समय-समय पर सदस्यों द्वारा शेयर खरीदे जायेंगे। प्रत्येक हिस्से का मूल्य १०० (एक सौ) रुपये होगा।

१८. प्रत्येक हिस्सा पचास-पचास रुपयों की दो किस्तों में अदा करना होगा। बकाये हिस्से की रकम बोर्ड ऑफ डाइरेक्टर्स की माँग पर एक माह के अन्दर अदा करनी होगी।

१९. बिके हिस्से मूल्य से अधिक पर नहीं बेचे जा सकते हैं और न वे किसी अल्पवयस्क, पागल या दिवालियों के हाथ विक्रय किये जायेंगे।

२०. सदस्य बनने के लिए किसी भी व्यक्ति को कम से कम एक हिस्सा खरीदना होगा। किसी भी सदस्य को १०,००० (दस हजार) रुपये से अधिक मूल्य के हिस्से क्रय करने का अधिकार नही होगा। यहाँ यह स्पष्ट है कि कोई भी सदस्य चाहे एक हिस्सा खरीदे या पचास उसका मत एक ही माना जायेगा।

२१. किस्तें बोर्ड ऑफ डाइरेक्टर्स की निश्चित की हुई तिथि से एक माह के अन्दर या उससे पहले अदा की जायेंगी। मुहलत विशेष परिस्थितियों और पर्याप्त कारणों पर दी जायगी। जिन सदस्यों के जिम्मे हिस्से की किस्तों का रुपया बाकी होगा वे साधारण सभा या बोर्ड की बैठकों में राय न दे सकेंगे। यदि कोई सदस्य सूचना प्राप्त होने के दो माह तक अपने हिस्सों की किस्त का भुगतान न करेगा तो वह संस्था से निकाला जा सकता है और उसकी भुगतान की हुई किस्त जब्त करके बचत की पूँजी में सम्मिलित की जा सकती है।

२२. सदस्यों को साधारण सभा की स्वीकृति के बिना कोई मुहलत बोर्ड ऑफ डाइरेक्टर्स के किसी सदस्य को नही दी जायगी।

२३. सदस्यता समाप्त होने से पूर्व कोई भी सदस्य अपने हिस्से का रुपया वापस नहीं ले सकता है।

२४. कोई भी सदस्य अपना हिस्सा किसी दूसरे को हस्तान्तरित नहीं कर सकता है जब तक कि—

(क) वह न्यूनतम एक वर्ष तक उसका स्वामी न रहा हो।

(ख) वह व्यक्ति जो हिस्सा क्रय करता हो संस्था का सदस्य न हो।

(ग) बोर्ड ऑफ डाइरेक्टर्स इस कार्यवाही को बहुमत से स्वीकार न कर ले।

२५. हिस्सा क्रय का वास्तविक हिस्सा क्रय प्रमाण-पत्र, समस्त किस्तें चुका दी जाने पर संस्था की मुहर लगाकर प्रत्येक सदस्य को दिया जायेगा। इस प्रमाण-पत्र पर मैनेजिंग डाइरेक्टर तथा एक अन्य डाइरेक्टर का हस्ताक्षर होंगा। यदि यह प्रमाण-पत्र खो जाय अथवा किसी अन्य कारणों से न मिले तो उसकी प्रतिलिपि ५ (पाँच) रुपया देने पर मिल सकेगी।

उत्तरदायित्व

२६. संस्था के ऋण के लिए सदस्य का उत्तरदायित्व अपने हिस्सों के नियत मूल्य से पाँच गुना तक होगा। यह उत्तरदायित्व केवल संस्था के भंग होने पर कार्य रूप में लाया जायेगा।

संगठन तथा प्रबन्ध

साधारण सभा

२७. संस्था की सर्वसत्ता उसकी साधारण सभा, जिसमें समस्त सदस्य सम्मिलित होंगे, निहित होगी। परन्तु साधारण सभा बोर्ड ऑफ डाइरेक्टर्स या संस्था के किसी अन्य अधिकारी के उन कार्यों में जो वे उप-नियमावली के अन्तर्गत दिए हुए अधिकारों का उपयोग करने में करें, हस्तक्षेप न करेगी।

२८. साधारण सभा निम्नलिखित दशा में बुलायी जायेगी—

(क) पहली साधारण सभा की बैठक संस्था के रजिस्टर्ड होने के दो माह के भीतर होगी।

(ख) साल समाप्त होने के बाद जितना शीघ्र सम्भव हो, बैठक होगी और वह वार्षिक अधिवेशन कहलायेगा।

(ग) १/५ सदस्यों के लिखित प्रार्थना-पत्र पर।

(घ) संस्था का मैनेजिंग डाइरेक्टर, प्रकारान्तर से सभापति का भी कार्य करेगा लेकिन बोर्ड ऑफ डाइरेक्टर्स के दो-तिहाई सदस्यों की माँग पर।

(ङ) रजिस्ट्रार अथवा सहकारी विभाग के किसी अधिकृत अधिकारी अथवा सम्बन्धित सहकारी बैंक के प्रार्थना-पत्र पर।

२९. साधारण सभा का अधिवेशन बुलाने के लिए साधारणतया १५ दिन की नोटिस दी जायगी।

३०. ऐसा अधिवेशन जिसके लिए रजिस्ट्रार या किसी अन्य अधिकृत अधिकारी अथवा सम्बन्धित सहकारी बैंक ने माँग की हो या जो उपर्युक्त उप-नियमावली के अनुसार किसी और अधिकारी की प्रार्थना पर बुलाना हो, सूचना प्राप्त होने के एक मास के अन्दर अवश्य बुलाया जायेगा। ऐसे अधिवेशन में उसके बुलाने के सूचना-पत्र में लिखे एजेण्डे के अतिरिक्त कोई अन्य कार्य नहीं किया जायगा।

३१. साधारण सभा में १/३ या २५% सदस्यों का न्यूनतम कोरम होगा। लेकिन यदि कोरम पूरा न होने के कारण सभा स्थगित हो गयी तो दूसरी साधारण सभा में १/५ या १५% सदस्य इन दोनों में जो न्यूनतम हो, सदस्यों का कोरम होगा। ऐसी हालत में साधारणतया बैठक की सूचना सदस्यों को सात दिन पहले ही दी जायेगी।

३२. वार्षिक साधारण सभा में निम्नलिखित कार्य किये जायेंगे—

(क) सदस्यों में से बोर्ड ऑफ डाइरेक्टर्स के १५ सदस्यों का चुनाव, जिसमें एक मैनेजिंग डाइरेक्टर, जो प्रकारान्तर से सभापति का कार्य भी करेगा, एक सहायक डाइरेक्टर जो मैनेजिंग डाइरेक्टर के बाद कार्यकारी समझा जायगा और एक कोषाध्यक्ष।

(ख) वार्षिक पावना-देना, चिट्ठा और बोर्ड ऑफ डाइरेक्टर्स की रिपोर्ट पर विचार करना।

(ग) ऐक्ट, राजकीय नियम और उप-नियमावली के अनुसार लाभ के विभाजन की स्वीकृति देना।

(घ) राजकीय नियम के अनुसार उत्तरदायित्व की वह अन्तरिम धनराशि निर्धारित करना जो प्रबन्ध समिति अगले वर्ष संघ की तरफ से ऋण के रूप में ले सकती है।

(ङ) अगले वर्ष के कार्यक्रम पर विचार करना।

(च) किसी और विषय पर विचार करना, जिसको बोर्ड या अन्य सदस्य सभापति की आज्ञा से पेश करें।

३३. साधारण सभा के कर्त्तव्य तथा अधिकार निम्नलिखित होंगे—

(क) रजिस्ट्रार या उनके अधीन किसी अधिकारी के निरीक्षण और ऑडिट नोट्स पर बोर्ड ऑफ डाइरेक्टर्स द्वारा सुझावों के साथ विचार करना।

(ख) किसी चुने हुए बोर्ड ऑफ डाइरेक्टर्स को सदस्यता से पृथक् करने के निर्णय पर विचार करना।

(ग) बोर्ड ऑफ डाइरेक्टर्स द्वारा पेश किये विचारों, कार्यक्रमों और व्यवसाय के ढंगों को स्वीकार करना, जिनका पालन संस्था के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए आवश्यक हो।

(घ) बोर्ड ऑफ डाइरेक्टर्स के फैसलों की अपील सुनना।

(ङ) पिछले अधिवेशन की तिथि से वर्तमान तिथि तक संस्था की प्रगति रिपोर्ट पर विचार करना।

(च) राजकीय नियमावली के अनुसार उप-नियमावली में संशोधन करना।

(छ) उप-नियमावली ३२ में दिये सभी कार्य करना।

(ज) दूसरी समस्याओं को, जो उपस्थित की जायें, तय करना।

(झ) बोर्ड ऑफ डाइरेक्टर्स के सदस्यों के मुहलत के प्रार्थना-पत्र पर विचार कर मुहलत देना या न देना।

३४. मैनेजिंग डाइरेक्टर सभापति की हैसियत से सभा के समस्त अधिवेशनों में सभापतित्व करेगा। उसकी अनुपस्थिति में सहायक डाइरेक्टर सभापति का स्थान ग्रहण करेगा, यदि वह भी अनुपस्थित हो तो साधारण सभा अपने सदस्यों में से किसी को उस अधिवेशन का सभापतित्व करने के लिए सभापति चुनेगी।

३५. प्रत्येक सदस्य को केवल एक मत देने का अधिकार होगा, चाहे उसने संस्था में कितने ही हिस्से क्यों न लिए हों। अधिवेशन में अनुपस्थित सदस्यों को किसी दूसरे व्यक्ति द्वारा मत देने का अधिकार न होगा।

३६. (क) साधारण सभा या बोर्ड ऑफ डाइरेक्टर्स की बैठकों में प्रत्येक विषय पर सहकारी अधिनियम (ऐक्ट) या नियमों तथा उप-नियमावली को ध्यान में रखते हुए निर्णय बहुमत से किया जायगा। बराबर मत होने पर सभापति को एक अतिरिक्त मत देने का अधिकार होगा। परन्तु यदि वह विषय निर्वाचन से सम्बन्धित है तो सभापति अपना अतिरिक्त वोट नहीं देगा, बल्कि निर्णय लाटरी द्वारा किया जायगा।

(ख) साधारण सभा में जिन विषयों पर चर्चा होगी, उनपर जो निर्णय होगा, उन्हें कार्यवाही पुस्तिका में लिखा जायेगा और उसपर सभापति तथा सहायक डाइरेक्टर के हस्ताक्षर होंगे।

बोर्ड ऑफ डाइरेक्टर्स

३७. सर्वोच्च-निरीक्षक तथा प्रबन्धकर्ता के रूप में कार्य करेगें तथा संस्था के सुचारु रूप से संचालन के लिए उत्तरदायी होंगे।

३८. बोर्ड ऑफ डाइरेक्टर्स से अवकाश प्राप्त करनेवाले सदस्य पुनः चुने जा सकते हैं, परन्तु बोर्ड में एक बार चुना हुआ सदस्य बिना रजिस्ट्रार की विशेष अनुमति के लगातार दस पदावधियों से अधिक पदासीन नहीं रह सकता।

४०. कोई सदस्य बोर्ड का सदस्य नहीं चुना जायगा यदि वह—

(अ) दीवालिया घोषित कर दिया गया हो।

(आ) उसका दिमाग खराब हो गया हो।

(स) उसे किसी मारल टरपीट्यूड के लिए राजदण्ड मिला हो।

(द) बिना किसी पर्याप्त कारण के समिति का पावना समय पर न दे सका हो।

(य) संघ का कम से कम कुल दस हिस्सा उसके पास न हो।

(र) कोई करीबी सम्बन्धी संघ का वैतनिक कर्मचारी न हो।

(ल) यदि वह लगातार बोर्ड की पाँच बैठकों में बिना पर्याप्त कारणों के अनुपस्थित रहा हो।

४१. बोर्ड ऑफ डाइरेक्टर्स के निर्वाचित सदस्यों का कार्यकाल तीन वर्ष तक होगा या जब तक उनके स्थान पर दूसरे सदस्य न निर्वाचित हों।

४२. प्रारम्भिक सदस्य जब तक उनके स्थान पर कोई अन्य सदस्य न चुना जाय, बोर्ड में नियमत: पदासीन रहेंगे।

४३. बोर्ड में यदि कोई स्थान संयोगवश रिक्त हो जाय तो उस स्थान पर बाकी अवधि के लिए बोर्ड स्वयं कोई सदस्य चुन लेगा।

४४. बोर्ड की सभाएँ माह में कम से कम एक बार, या जब आवश्यकता हो, हुआ करेंगी।

४५. बोर्ड की किसी बैठक में न्यूनतम तीन सदस्यों का कोरम होगा।

४६. प्रत्येक सदस्य केवल एक मत दे सकेगा और समस्याओं का निर्णय उन बातों के अतिरिक्त, जिनका ब्यौरा उप-नियमावली में दिया गया हो, बहुमत से पास होगा। मैनेजिंग डाइरेक्टर या सभापति का अन्य सदस्यों की भाँति एक मत होगा। यदि मत बराबर हो तो सभापति को एक निर्णायक मत देने का अधिकार होगा।

४७. किसी अन्य बोर्ड के सदस्य का किसी दूसरे सदस्य के द्वारा मत देना वर्जित है।

४८. कोई सदस्य अपने व्यक्तिगत मामले में मत नहीं दे सकेगा।

४९. बोर्ड ऑफ डाइरेक्टर्स की बैठकों में जिन विषयों पर चर्चा होगी तथा निर्णय किया जायगा उन्हें कार्यवाही पुस्तिका में लिखा जायेगा और उस पर बैठक के सभापति, सहायक डाइरेक्टर तथा उपस्थित सभी सदस्यों के हस्ताक्षर होंगे।

५०. बोर्ड ऑफ डाइरेक्टर्स के अधिकार और कर्त्तव्य निम्नलिखित होंगे—

(१) नये सदस्य बनाना तथा यह निश्चय करना कि प्रत्येक सदस्य कितने हिस्से लेगा।

(२) उप-नियमावली तथा राजकीय नियमों के अनुसार हिस्सों की बदली तथा वापसी की स्वीकृति देना।

(३) अयोग्य या नादेहिन्दा सदस्यों को पृथक करना।

(४) सदस्यों का त्यागपत्र स्वीकार करना।

(५) उप-नियमावली के अनुसार सदस्यों के हिस्से का रुपया वापस करना।

(६) उप-नियमावली संख्या २९ और ४४ के अन्तर्गत अधिवेशन तथा बैठक

आयोजित करना और वार्षिक अधिवेशन में वार्षिक रिपोर्ट तथा संस्था का आडिट किया हुआ पूँजी व जिम्मेदारी का नक्शा (बैलेन्स शीट), वसूल न हो सकनेवाले तथा सन्देहास्पद रकमों की सूची व लाभ वितरण के सुझाव एवं रजिस्ट्रार द्वारा माँगे हुए नक्शे प्रस्तुत करना।

(७) प्रकाशन क्षेत्र में मुख्यतः निम्नलिखित को प्रोत्साहन देना—

(अ) हिन्दी प्रकाशन तथा विक्रय व्यवस्था।

(ब) मुद्रण कार्य के लिए अच्छे प्रेसों का चयन।

(८) संघ के उपयोग हेतु आवश्यकतानुसार गोदाम, दुकान, यंत्रालय तथा अन्य इमारतें बनाना, मोल या किराये पर लेना अथवा स्वयं प्रयोग करना।

(९) संयुक्त-विक्रय के उद्देश्यों से सदस्यों के माल का निरीक्षण करना तथा बाजारों में ले जाने का प्रबन्ध करना।

(१०) एजेन्सियों के माल के स्थायित्व को देंखते हुए मण्डी की प्रथानुसार उनकी मालियत की जमानत पर मालियत के पचास प्रतिशत तक माल ऋण देना और उस पर समय से न भुगतान होने पर सूद की दर निर्धारित करना।

(११) पक्के माल को अपने या आढ़तियों के गोदामों में सुरक्षित रखने का प्रबन्ध करना।

(१२) अपने तैयार माल की बिक्री के लिए कार्यक्षेत्र के अन्दर उचित शाखाएँ स्थापित करना।

(१३) संस्था के प्रकाशन एवं अन्य कार्यों के प्रोडक्ट्स की दर निश्चित करना जिसमें समिति को अपना माल बिकवाने में सुविधा हो।

(१४) अपने सदस्यों को प्रकाशन एवं मुद्रण व्यवस्था की शिक्षा दिलाने की व्यवस्था कराने की कोशिश करना।

(१५) साधारण सभा ने यदि कोई कायदे निर्धारित किये हों, तो उनके प्रतिबन्ध के साथ कार्य करना।

(१६) संस्था का कार्य सुचारु रूप से चलाने के लिए विशेष नियम बनाना, उप-नियमावली में संशोधन करना और विशेष नियम तथा उप-नियमावली के संशोधन साधारण सभा से स्वीकृत कराना।

(१७) प्रकाशन तथा संस्था से सम्बन्धित कार्यों को सम्बन्धित परिषदों, एसोसिएशनों या सार्वजनिक संस्थाओं से सम्बन्धित करने का प्रयास करना।

(१८) कुल रुपया, माल, सम्पत्ति जो संस्था के हिसाब में मिले या लिया जाय उसको उचित रीति से वसूल करने और रखने का प्रबन्ध करना।

(१९) हिसाब-किताब की निगरानी करना।

(२०) आगामी वर्ष के आय तथा व्यय के बजट पर विचार करना और स्वीकृति हेतु साधारण सभा के समक्ष प्रस्तुत करना।

(२१) हिस्सों की किश्तों को ठीक समय पर अदा करने की निगरानी करना और उनकी वसूली के लिए उचित व्यवस्था करना।

(२२) नादेहिन्दा सदस्यों के विरुद्ध सालिसी कार्यवाही करना।

(२३) सालिसी फैसलों के इजरा में संस्था के कर्मचारियों की मदद करना।

(२४) आडिटर की नियुक्ति स्वयं और रजिस्ट्रार की आज्ञा से कराना।

(२५) विभिन्न कार्यक्षेत्र के होने पर समयानुसार बहुमत द्वारा विशेषाधिकार प्राप्त समितियों को बनाना। इस प्रकार के कार्य का निर्णय उस विशेषाधिकार प्राप्त समिति की मान्यता अनुसार कार्यवाही करना।

(२६) संस्था की तरफ से उस सीमा तक कर्जों या अमानतें हासिल करना जिसको साधारण सभा ने निर्धारित किया हो और रजिस्ट्रार ने मंजूर किया हो, उनकी सूद की दर तय करना और ऐसे कर्जों की अमानतों को नियत समय पर वापस करना।

(२७) आडिटर की जाँच तथा साधारण सभा में पेश होने के बाद देना, पावना का चिट्ठा छपवाना।

(२८) संस्था का रुपया या कोई दूसरी सम्पत्ति वसूल करना, वापस लेना या खर्च करना या एक खास लिखित आज्ञा से अपने या अधिक सदस्यों की राय से वसूल करना, वापस लेने या खर्च करने का अधिकार देना। संस्था की पूँजी, सम्पत्ति और कागजों को सुरक्षित रखने का प्रबन्ध करना।

(२९) संस्था के सभी वैतनिक कर्मचारियों की नियुक्ति, पदोन्नति, स्थायित्व तथा पृथक व मुअत्तल करना अथवा अन्य कोई दण्ड देना।

(३०) संस्था-के कुल हिसाब के रजिस्टरों की और आर्थिक स्थिति की जाँच कराना और सदस्यों को समझाना।

(३१) संस्था का हिसाब आडिटर के समक्ष पेश करना और नियमों के अनुसार जो आडिट शुल्क रजिस्ट्रार लगायें उसको अदा करना। निरीक्षणकर्ता अधिकारियों के सम्मुख कागजात प्रस्तुत करना।

(३२) रजिस्ट्रार के सहयोग और उनके सहायकों के निरीक्षण-पत्र और आडिट नोटों पर विचार करना तथा समय से उसका प्रत्युत्तर भेजना।

(३३) साधारण सभा के वार्षिक अधिवेशन में विगत वर्ष का वार्षिक हिसाब, देना-पावना का चिट्ठा और गत वर्ष के कार्य की रिपोर्ट प्रस्तुत करना। उनकी प्रतिलिपि, लाभ बाँटने और बट्टे खाते में रकम जमा करने पर अपनी सम्पत्ति वार्षिक अधिवेशन की सूचना के साथ प्रत्येक सदस्य को भेजना।

(३४) राजकीय नियमों और उप-नियमावली के अनुसार मुनाफा तकसीम करना और बचत की पूँजी के इस्तेमाल के लिए साधारण सभा में सुझाव उपस्थित करना।

(३५) साधारण सभा में स्वीकृत प्रस्तावों का पालन करना तथा संघ के लाभार्थ सभी कार्यों का संचालन करना।

(३६) विशेषाधिकार समिति की नियुक्ति पर अपने सर्व अधिकार अपने किसी अधिकारी या सहायक डाइरेक्टर को देना।

(३७) संस्था का कार्य चलाने के लिए बोर्ड ऑफ डाइरेक्टर्स एक साधारण व्यवसायी के सदृश्य क्रियात्मक-बुद्धि और परिश्रम से कार्य करेगा, लेकिन कोई ऐसा कार्य नहीं करेगा जो सहकारी नियम अधिनियम (एक्ट) और उप-नियमावली के विरुद्ध हो।

५१. मैनेजिंग डाइरेक्टर या सभापति संघ का प्रमुख निरीक्षण-कर्ता एवं नियंत्रण-कर्ता होगा और आकस्मिक आवश्यकता पड़ने पर बोर्ड ऑफ डाइरेक्टर्स के सारे अधिकारों का प्रयोग करेगा। प्रबन्ध में ऐसी गड़बड़ी होने की आशंका पर, जिससे समिति की आर्थिक-स्थिति संकट-ग्रस्त मालूम पड़े, सभापति को अधिकार होगा कि वह समिति का प्रबन्ध अपने हाथ में ले ले। लेकिन ऐसी दशा में उसे अधिकार ग्रहण की तिथि से एक मास के अन्दर संघ की साधारण सभा का अधिवेशन बुलाना होगा और उसके निर्णय के अनुसार कार्य करना होगा।

५२. मैनेजिंग डाइरेक्टर या सभापति के निम्नलिखित अधिकार और कर्त्तव्य होंगे—

(१) संघ की सभी बैठकों की अध्यक्षता करना। उनकी अनुपस्थिति में सहायक डाइरेक्टर तथा दोनों की अनुपस्थिति में प्रबन्ध समिति के उपस्थित सदस्यों में बहुमत से जो निर्वाचित हो, वह उस सभा का सभापतित्व करेगा।

(२) १००० रु० से अधिक के सभी दस्तावेजों, चेकों, हुण्डी इत्यादि पर सहायक डाइरेक्टर के साथ संयुक्त दस्तखत करना।

(३) ९९९ रु० तक के फुटकर व्यय की स्वीकृति का अधिकार सहायक डाइरेक्टर को देना।

(४) बोर्ड ऑफ डाइरेक्टर्स द्वारा निर्धारित सीमा से ज्यादा आकस्मिक व्यय करना तथा बाद में उसकी स्वीकृति लेना।

५३. सहायक डाइरेक्टर के निम्नलिखित कर्त्तव्य होंगे—

(१) साधारण सभा और बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स की सभाओं को आमंत्रित करना और उसमें स्वयं उपस्थित रहना।

(२) संस्था की सभी सभाओं की कार्यवाई को, कार्यवाही रजिस्टर में हिन्दी में लिखना।

(३) संस्था के कुल रजिस्टरों और हिसाब-किताबों को जिन्हें राजकीय नियम और विभागीय आदेशों के अनुसार रखना अनिवार्य है, सही एवं तारीखवार रखना।

(४) सभी रसीदों, वाउचरों और दूसरे कागजों को, जिनकी संस्था को कारोबार के लिए आवश्यकता हो, तैयार करना और सभी आवश्यक एवं जरूरी पत्र-व्यवहार करना।

(५) अपने कार्य में सहायता के लिए आवश्यकतानुसार वेतनमुक्त मंत्री नियुक्त करना। ऐसे मंत्री को बोर्ड ऑफ डाइरेक्टर्स का सदस्य होना आवश्यक नहीं है। वह बोर्ड का वैतनिक कार्यकर्ता होगा।

(६) सालिसी या सालिसों को चेयरमैनों के कहने पर सालिसी सम्मनों या नोटिसों को संस्था के पावनेदारों या सदस्यों पर तामील कराने में मदद देना।

(७) संस्था की ओर से ऐसे हुण्डी, चेक, दस्तावेजों इत्यादि पर मैनेजिंग डाइरेक्टर के साथ संयुक्त हस्ताक्षर करना जो एक हजार या एक हजार रुपये से ऊपर का हो।

(८) संघ की ओर से ऐसे हुण्डी, चेक दस्तावेज इत्यादि पर स्वयं हस्ताक्षर करना जो ९९९ रु० तक का हो।

(९) सौ रुपये तक फुटकर खर्च की स्वीकृति वैतनिक मंत्री को देना।

(१०) ऐक्ट की धारा २८ के अनुसार इन्दराजातों की नकल पर सही करना।

(११) निश्चित तिथि पर संघ की अमानत और ऋण का भुगतान या वसूली का प्रबन्ध करना।

(१२) ऐसे अन्य कार्य करना जो बोर्ड रजिस्ट्रार की स्वीकृति से निश्चित करे।

(१३) आवश्यकतानुसार सहायक डाइरेक्टर्स वैतनिक भी हो सकते हैं। इन्हें वेतन में एलाउन्स के स्वरूप में आनरेरियम के रूप में जो कुछ दिया जायेगा उसके निर्णय का अधिकार बोर्ड ऑफ डाइरेक्टर्स को होगा।

(१४) खजान्ची कुल रुपयों को जो संस्था में सदस्यों या गैर सदस्यों से मिलेंगे उसे वह अपने हिसाब-किताब में रखेगा और वह सहायक डाइरेक्टर की हिदायत के अनुसार व्यय करेगा। रोकड़ बही पर उसकी सही होने के बाद सहायक डाइरेक्टर भी हस्ताक्षर करेगा। जो हिदायतें सहायक डाइरेक्टर द्वारा दी जायेंगी उनका खजान्ची पाबन्द रहेगा। जब कभी उससे सहकारी विभाग का कोई अधिकारी कहे तब वह बिल जाँच करने के लिए उसे पेश करेगा।

(१५) प्रतिवर्ष, वर्ष समाप्ति पर जितना शीघ्र सम्भव हो, मुख्यत: अप्रैल मास में निम्नलिखित चीजें तैयार कराना—

(१) एक नक्शा, जिससे संघ के पिछले ३१ मार्च तक के वर्ष भर के आय और व्यय का पता चल सके।

(२) एक नक्शा उस देने-पावने का जो समिति की गत ३१ मार्च को लेना-देना था।

(३) दूसरे नक्शे और रिपोर्ट्स जिन्हें रजिस्ट्रार या प्रबन्ध समिति ने निश्चित किये हों।

५४. खजान्ची का यह कर्त्तव्य होगा कि वह संघ में प्राप्त सारे धन को अपने प्रबन्ध में ले और बोर्ड ऑफ डाइरेक्टर्स, मैनेजिंग डाइरेक्टर्स, सहायक डाइरेक्टर्स या अन्य किसी सदस्य, जिसे इसके लिए अधिकार प्राप्त हों, के आदेशानुसार खर्च करे। वह कैश बुक तथा रोकड़ बही में सही रोकड़ के प्रमाण के लिए हस्ताक्षर किया करेगा ताकि बोर्ड के किसी सदस्य, रजिस्ट्रार या रजिस्ट्रार द्वारा साधारण या विशेषाधिकार प्राप्त किसी अधिकारी के माँगने पर रोकड़ दिखा सके। खजान्ची अपने पास बोर्ड द्वारा समय-समय पर निर्धारित सीमा तक धन रख सकता है।

५५. संस्था अपने उद्देश्यों के अनुसार अपने कार्य-क्षेत्र में अपना व्यवसाय करेगी। संस्था अपने व्यवसाय के लिए अपने कार्य-क्षेत्र के अन्तर्गत विभिन्न शहरों में अपनी शाखाएँ भी खोल सकेगी।

मियादी अमानतें और ऋण

५६. संस्था को अधिकार है कि ऐसे सूद की दर पर जिसको बोर्ड ऑफ डाइरेक्टर्स ने स्वीकार किया हो, सदस्यों अथवा व्यक्तियों अथवा सरकार से मियादी अमानत अथवा किसी अन्य रूप में हिस्सों की भुगतान की हुई किश्तों और बचत की पूँजी के अठगुना तक रुपये ले सके।

आवश्यकता पर पूँजी का विशेष उपयोग

५७. संस्था की पूँजी उसके उद्देश्यों की पूर्त्ति के लिये लगाई जायेगी। जिस धनराशि की आवश्यकता न हो वह नियम ५८ के अनुसार लौटा दी जायेगी।

५८. संस्था आवश्यकता पर अपनी पूँजी का विशेष उपयोग निम्नलिखित कार्यों में कर सकती है—

(१) गवर्नमेण्ट सेविंग बैंक में।

(२) इण्डियन ट्रस्ट एक्ट की धारा २० में बतायी हुई राजकीय हुण्डियों में।

(३) किसी अन्य रजिस्टर्ड सहकारी संघों के हिस्सों में।

(४) रजिस्ट्रार द्वारा स्वीकृत बैंकों में।

हिन्दी प्रकाशन के दो सौ वर्ष

आगामी सन् २००० तक शिक्षा के विकास के साथ-साथ पुस्तकों की माँग का बढ़ना स्वाभाविक है। राजभाषा के रूप में हिन्दी का प्रतिष्ठित होना और सर्वसाधारण में सर्वाधिक लोकप्रिय होना इस बात को स्पष्ट इंगित करता है कि हिन्दी के पाठकों की संख्या अपेक्षाकृत काफी बढ़ी है। आये दिन हिन्दी में नई-नई पत्र-पत्रिकाएँ छप रही हैं और देखते ही देखते लाखों की संख्या में बिक भी रही हैं। पॉकेट-बुक्स की तो बाढ़-सी आ गयी है। ऐसा अनुमान है कि ऐसी पुस्तकों की दो करोड़ प्रतियाँ प्रतिवर्ष बिकती है। लेकिन वहीं साहित्यिक प्रकाशन की स्थिति काफी दयनीय है। साहित्यिक पुस्तकें हिन्दी पाठकों को आकर्षित क्यों नहीं कर रही हैं—चिन्ता का विषय है। हमारी दृष्टि से आज हिन्दी प्रकाशन के समक्ष अनेक समस्याएँ खड़ी हैं। पुस्तकें भेंट करने की प्रथा तो अब समाप्त-प्राय हैं। साथ ही ऐसे पुस्तक-केन्द्रों का अभाव भी खटक रहा है जहाँ पाठकों के चयन हेतु विविध साहित्य प्रचुर संख्या में सुलभ हो। हिन्दी पुस्तकों के वितरण और प्रचार की व्यवस्था भी चुश्त-दुरुस्त नहीं है। खेदजनक बात यह भी है कि नई प्रतिभाओं को समुचित प्रोत्साहन नहीं मिल पा रहा है, जिससे उनमें कुण्ठा और निराशा पनप रही है। इसके मूल में आज निष्पक्ष समालोचना का अभाव है। यही कारण है कि समसामयिक सन्दर्भों को जोड़नेवाला साहित्य सृजित नहीं हो रहा है, जो आज के पाठक को बाँध सके, जैसा कि कुछ अन्य भारतीय भाषाओं में देखने को मिलता है। प्रकाशकीय दृष्टि से देखने पर कागज का अभाव, कागज की महँगाई से जुड़ी हुई समस्या जरूर दिखती है, पर जो बात बिल्कुल स्पष्ट है और जिसे पाठक भी समझता है, वह है हिन्दी के प्रकाशकों द्वारा पुस्तकों की अधिक मूल्य रखने की प्रवृत्ति, जो हिन्दी की पुस्तकों को अन्य क्षेत्रीय साहित्य की तुलना में काफी महँगा बना देती है। हमारे लिए यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि हिन्दी प्रकाशन के २०० वर्ष बाद भी हिन्दी प्रकाशन आज विश्व के समकालीन प्रकाशनों की तुलना में समुन्नत नहीं बन पाया है। हिन्दी जगत में फैली अलगाववादी प्रवृत्ति इस दुर्दशा के लिए सर्वाधिक जिम्मेदार है। समस्यामूलक ऐसे अनेक प्रश्न आज मुखरित है जिनपर विचार करना आवश्यक हो गया है।

हिन्दी प्रकाशन के २०० वर्ष पूरे होने के उपलक्ष्य में हमारी भूमिका का भावी प्रारूप और कार्यक्रम क्या हो—इसपर चिन्तन करके स्पष्ट निर्णय लेना, दरअसल हिन्दी के विद्वानों का काम है। हिन्दी प्रकाशन से जुड़े हम सभी लोगों ने फरवरी १९८४ में आयोजित छठें विश्वपुस्तक मेले के अवसर पर निर्णय लिया कि हम लोगों की गोष्ठियों के द्वारा इस बात पर मनन करना चाहिये कि क्या ऐसा कोई आन्दोलन शुरू किया जा सकता है जो हिन्दी प्रकाशन की वर्तमान समस्याओं और कठिनाइयों पर प्रकाश डाल

सके और जन-मानस के समक्ष हिन्दी प्रकाशनों को सही रूप में प्रस्तुत कर सकें। तदर्थ 'अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ' की ओर से कुछ कार्यक्रम इस प्रकार प्रस्तावित किए गए हैं जैसे:

१. एक बृहत्तम सर्वांगीण पुस्तक-मेला कलकत्ता नगरी में आयोजित किया जाय जिसकी अवधि दस दिन से लेकर दो सप्ताह के बीच हो।

२. एक बृहद् पुस्तक-प्रदर्शनी लगायी जाय जिसमें विगत दो सौ वर्षों के हिन्दी प्रकाशन का इतिहास—कालानुक्रम के हिसाब से तत्कालीन कृतियों और साहित्यकारों के चित्र, संक्षिप्त परिचय के साथ प्रदर्शित किये जायें।

उसका वर्गीकरण इस प्रकार हो सकता है:

(क) समाचार-पत्र, पत्रकार तथा प्रकाशक

(ख) हिन्दी के अध्यापक और निर्माता (आचार्यादि)

(ग) प्रमुख कवि और उनकी कृतियाँ

(घ) गद्य-लेखक (ललित-निबन्ध साहित्य) तथा उनकी कृतियाँ

(ङ) प्रमुख प्रकाशक

(च) मुद्रण यंत्रालय (जहाँ-जहाँ सम्भव हो, चित्रों की व्यवस्था की जाए)

प्रत्येक कक्ष में एक अधिकारी निर्देशक (गाइड) भी हो, जो दर्शकों और जिज्ञासुओं को तत्कालीन कृतियों एवं प्रवृत्तियों को समझा सके और दर्शकों में पुस्तक-जगत के प्रति रुचि पैदा कर सके।

३. दृश्य एवं प्रचार माध्यमों द्वारा प्रतिदिन सायं ५ से रात्रि ७ बजे तक विचार-गोष्ठियाँ आयोजित की जाँय जिनमें विशिष्ट-काल की कृतियों का परिचय, उनके प्रकाशन स्तर का विवेचन, तत्कालीन पाठकों की अभिरुचि का चित्रण, पुस्तक-जगत की तत्कालीन समस्याओं और उनके समाधान की ओर किए गए प्रयत्नों की व्याख्या की जाय और आवश्यकतानुसार कृतियों का सुगम पाठ भी किया जाय ताकि उस समय का पूरा परिदृश्य प्रस्तुत किया जा सके।

गोष्ठी के बाद सांस्कृतिक कार्यक्रम—एकांकी नाटक, काव्यपाठ, कथापाठ आदि भी आयोजित किए जाँय ताकि प्रतिभागियों का मनोरंजन हो सके।

४. प्रातः १० से १ बजे तक प्रतिदिन सेमिनार और संगोष्ठियाँ आयोजित की जाँय, जिनमें कुछ ज्वलन्त समस्याओं पर विचार रखा जाय। जैसे—

(क) प्रकाशकों की समस्याएँ और सरकार की भूमिका

(ख) विभिन्न भारतीय भाषाओं के प्रकाशकों से समन्वय के आयाम

(ग) विभिन्न भाषाओं में अनुवाद के आदान-प्रदान की आवश्यकता

(घ) लेखकों और प्रकाशकों के सम्बन्ध

(ङ) लेखकों, पाठकों और प्रकाशकों का संयुक्त मंच

(च) विदेशी प्रकाशनों की पृष्ठभूमि में हिन्दी प्रकाशन का स्तर

(छ) हिन्दी और दक्षिण भारतीय भाषाओं में सहयोग की सम्भावनायें

(ज) सरकारी और संस्थागत पुरस्कारों के प्रारूप का विवेचन।

५. पुस्तक-मेले का उद्घाटन किसी विशिष्ट व्यक्ति द्वारा कराया जाय। संगोष्ठियों के उद्घाटन-मुख्य अतिथि एवं प्रमुख वक्ता विषयानुसार हों जिनमें सभी भाषा-भाषियों का सहयोग लिया जाय।

६. मेले में स्टाल पर लेखकों की उपस्थिति और आवश्यकतानुसार उनके हस्ताक्षरित ग्रन्थों के विक्रय की अनिवार्य व्यवस्था की जाय।

७. 'भाषायी दिवसों' का आयोजन भी किया जाय जिसमें उसी भाषा के विद्वानों को बुलाया जाय।

लेकिन ये सभी कार्यक्रम तभी सफल हो सकते हैं जब हम लेखकों, पाठकों, प्रचार माध्यमों, पुस्तक-विक्रेताओं, प्रकाशकों, हिन्दी-सेवी संस्थाओं, भारतीय भाषाओं के साहित्यकारों और सरकारी अधिकारियों का सक्रिय सहयोग प्राप्त कर सकें।

विश्वास है कि भविष्य में आयोजित होनेवाली गोष्ठियाँ इस सम्बन्ध में हमारा मार्ग-दर्शन करेंगी।

हिन्दी प्रकाशन : एक दृष्टि में

हिन्दी का प्रकाशन व्यवसाय अब लगभग दो सौ वर्ष की अवस्था पार कर रहा है। किसी व्यवसाय का दो सौ वर्ष प्रगति के लिये कम नहीं होता, किन्तु इस अवधि में हिन्दी के प्रकाशन इतिहास ने कई उतार-चढ़ाव देखे हैं, कई मुसीबतों का साहस के साथ सामना किया है। इस व्यवसाय में लगे स्मरणीय महापुरुषों की साधना, परिश्रम, त्याग तथा हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिये समर्पण की भावना से ही यह व्यवसाय आज सुदृढ़ कदमों पर खड़ा है और प्रतिद्वन्दिता के इस युग में भविष्य की चुनौतियों का सामना करने के लिए दृढ़-संकल्प है। दो शताब्दियों के बाद इस मोड़ पर पहुँच कर हमें अपने अतीत का विहंगावलोकन करना प्रासंगिक ही नहीं आवश्यक भी प्रतीत होता है।

उन्नीसवीं शताब्दी हिन्दी साहित्य के लिये बड़ी महत्वपूर्ण रही है, जिसे हम नींव का पत्थर कह सकते हैं। इसके पूर्व की लगभग एक सहस्राब्दि के अपने जीवन में वह मुख्यतः पद्य का साहित्य ही बना रहा। सन् १८०० ई० में कलकत्ता में फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना हुई थी, जिसमें देश की सभी भाषाओं के शिक्षकों की विशेष व्यवस्था थी, क्योंकि ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कर्मचारियों को देशी भाषाएँ सीखना आवश्यक था। हिन्दुस्तानी भाषा विभाग के अध्यक्ष गिलक्रिस्ट थे। छात्रों के अध्ययन के लिये पुस्तकें आवश्यक थीं। इस कालेज के हिन्दी विभाग के प्रोफेसर विलियम प्राइस ने १८२४ में 'हिन्दुस्तानी' से पृथक अपने वर्तमान विशिष्ट रूप में हिन्दी को प्रतिष्ठित किया। इस

शताब्दी में नवयुग की आवश्यकता के अनुसार हिन्दी के साहित्यिकों में विचार स्वातन्त्र्य के कारण गद्य के विकास की विविध दिशा प्रशस्त हुई। यद्यपि ललित-साहित्य के लिये उसे (और आधी शताब्दी तक) भारतेन्दु युग तक (१८५०-१९००) प्रतीक्षा करनी पड़ी।

अँग्रेजी शासन के अन्तर्गत शिक्षा के जनतंत्रीकरण और वैज्ञानिक-आविष्कारों के प्रचार-प्रसार के फलस्वरूप देश में क्रान्तिकारी, सामाजिक, धार्मिक, राज़नीतिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक परिवर्तनों से जनजीवन नई मूल्यवत्ता से स्फूर्त्त हो उठा था। यह स्वाभाविक था कि इसका प्रारम्भ बंगाल से हो, जहाँ अँग्रेजी प्रशासन जड़ जमा चुका था। सन् १७७८ ई० में बंगला टाइप में हाल हेड द्वारा लिखित बंगला की प्रथम पुस्तक बंगला-व्याकरण प्रकाशित हुई। बंगला का प्रथम मासिक-पत्र 'दिग्दर्शन' सन् १८१८ ई० में प्रारम्भ हुआ। इसी युग में राजा राममोहनराय के बाद बंगला साहित्य के दो प्रचण्ड समर्थक और संस्कारक बंकिम चन्द्र चटर्जी और ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के प्रयत्न से बंगला साहित्य में उपन्यास, नाटक आदि ललित-साहित्य ने धूम मचा दी। इन सबका प्रभाव हिन्दी पर पड़े बिना रह नहीं सकता था और इस प्रभाव की सबसे पहली अभिव्यक्ति प्रकाशन के द्वारा ही सम्भव थी। सच पूछा जाय तो हिन्दी प्रकाशनों को प्रेरणा बंगला भाषा के प्रकाशकों से ही मिली। समझा जाता है इसका प्रारंभ हुगली जिलान्तर्गत श्रीरामपुर के बैप्टिस्ट मिशन प्रेस ने किया, जिसे बंगवासी तथा बसुमति प्रेस ने आगे बढ़ाया।

हिन्दी पुस्तकों के प्रकाशन एवं व्यवसाय की दृष्टि से कलकत्ता नगर का बहुत महत्व है। प्रकाशन क्षेत्र में कलकत्ता प्रारम्भ से ही अग्रगण्य था। हिन्दी की पहली पुस्तक एवं हिन्दी का पहला समाचार-पत्र प्रकाशित करने का गौरव कलकत्ता को है। आज से ५० वर्ष पूर्व हिन्दी प्रकाशन क्षेत्र में कलकत्ता का महत्वपूर्ण स्थान था। यह लिखना अतिशयोक्ति न होगा कि हिन्दी प्रकाशकों ने प्रकाशन व्यवसाय का प्रथम दर्शन यहीं किया। उस समय हिन्दी प्रकाशन जीविका का एक साधन अवश्य था, किन्तु साथ ही साथ यह साधना भी थी और एक तप भी था। उन्हीं साधकों की साधना का फल है कि आज हिन्दी प्रकाशन-व्यवसाय इस ऊँचे धरातल पर पहुँच गया है।

कलकत्ता के पुराने प्रकाशकों में रामलाल बर्मन, निहालचन्द वर्मा, हरिदास वैद्य, रिखबदास बाहिती, चन्द्रशेखर पाठक, पद्मराज जैन, राधामोहन गोकुलजी, महावीरप्रसाद पोद्दार, बैजनाथ केड़िया, मूलचन्द्र अग्रवाल, रामदयाल अग्रवाल, उमादत्त शर्मा, शम्भू प्रसाद वर्मा, देवनारायण द्विवेदी, शिवशंकर मिश्र, विश्वम्भरनाथ खत्री, गोविन्दनारायण मिश्र, रामनारायण द्विवेदी, श्रीराम बेरी, दुलीचन्द्र परवार, काशीनाथ जैन, जयगोपाल लोहिया, गुलाबरत्न वाजपेयी, अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी, रामकुमार भुवालका, गंगाप्रसाद भौतिका, महादेवप्रसाद सेठ आदि प्रमुख नाम हैं। श्री रामलाल बर्मन ने पुस्तक प्रकाशन के लिये आर० एल० बर्मन कम्पनी की स्थापना की थी। इस कार्य में इनके सहायक निहालचन्द वर्मा थे। दोनों साझे में पुस्तक-प्रकाशन का व्यवसाय करते थे। रामलाल बर्मन

बड़े प्रतिभाशाली व्यापार-कुशल, सुलेखक एवं सूझ-बूझ के व्यक्ति थे। काशी से वह 'उपन्यास सागर' नामक एक पत्रिका का भी प्रकाशन करते थे। यह पत्रिका वाराणसी में रामघाट के हितचिन्तक प्रेस में छपती थी। इसमें ऐय्यारी एवं तिलस्मी उपन्यास धारावाहिक रूप में छपते थे। रामलाल बर्मन ने हिन्दी के प्रकाशन व्यवसाय में क्रान्तिकारी परिवर्तन किया। वास्तव में कहा जाय तो हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में जो काम भारतेन्दु ने किया, वही हिन्दी प्रकाशन के क्षेत्र में रामलाल बर्मन ने ३५० पुस्तकों को प्रकाशित करके किया। इनके यहाँ की पुस्तकें मुद्रण, आवरण, गेटअप, चित्र, कागज आदि की दृष्टि से सर्वोत्तम होती थीं। यही कारण था कि आर० एल० बर्मन कम्पनी द्वारा प्रकाशित पुस्तकों की हिन्दी संसार में उस समय बड़ी ख्याति थी। उस समय डी० एन० बनर्जी कलकत्ता में एकमात्र आर्टिस्ट थे, जो हिन्दी पुस्तकों के कवर आदि की डिजाइन बनाते थे। बाद में रामलाल बर्मन ने 'हिन्दू पंच' नामक एक राष्ट्रीय साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया, जिसके सम्पादक ईश्वरीप्रसाद शर्मा थे। राष्ट्रीय-चिन्तन के कारण कई बार ब्रिटिश नौकरशाही की ओर से इसपर प्रहार भी किया गया। अपनी निर्भीक नीति के कारण यह पत्र बड़ा जनप्रिय था। रामलाल बर्मन के स्वर्गवास के कुछ दिनों बाद उनकी कम्पनी का व्यवसाय बन्द हो गया। रामलाल बर्मन से अलग होकर निहालचन्द वर्मा अपना प्रकाशन व्यवसाय निहालचन्द एण्ड कम्पनी के नाम से करने लगे। कविवर निराला आदि कई महत्त्वपूर्ण साहित्यकारों की पुस्तकें इनके यहाँ से प्रकाशित हुई। निहालचन्दजी ने स्वयं जादू का महल, प्रेम का फल, आनन्द भवन आदि कई पुस्तकें स्वयं लिखकर प्रकाशित कीं। बाद में निहालचन्दजी ने अपने फर्म का नाम बदल कर हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय कर दिया जो आज हिन्दी प्रचारक संस्थान के नाम से बराबर हिन्दी साहित्य की सेवा करता आ रहा है।

श्री रामलाल बर्मन एवं निहालचन्द वर्मा के साथ ही साथ हरिदास वैद्य का नाम भी उल्लेखनीय है। इन्होंने नरसिंह प्रेस खोलकर अपना प्रकाशन व्यवसाय प्रारम्भ किया। इनके यहाँ से कई उच्चकोटि के प्रकाशन हुए, जिनमें चिकित्सा चन्द्रोदय १०-भाग नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ था। चन्द्रशेखर पाठकजी स्वयं एक अच्छे लेखक थे और वे पाठक एण्ड कम्पनी के नाम से प्रकाशन करते थे। इनके यहाँ से मौलिक एवं अनूदित करीब ७० पुस्तकें प्रकाशित हुई थीं। स्व० महादेवप्रसाद सेठ 'मतवाला' नामक साप्ताहिक पत्र के प्रकाशन के साथ ही साथ पुस्तक प्रकाशन का व्यवसाय भी करते थे। इनका मतवाला प्रेस-मंडल शंकर घोष लेन में था। इनके यहाँ कविवर निराला, उग्र, मुंशी नवजादिकलाल श्रीवास्तव आदि साहित्यकार रहकर साहित्य सृजन करते थे। मतवाला मण्डल से उग्रजी की चाकलेट, बुधुआ की बेटी आदि कई पुस्तकें प्रकाशित हुई थीं। इनको लेकर विशाल भारत के तत्कालीन सम्पादक बनारसीदास चतुर्वेदी ने घासलेटी साहित्य के विरुद्ध आन्दोलन प्रारम्भ किया। गाँधीजी के असहयोग आन्दोलन के समय महावीरप्रसाद पोद्दार के उद्योग से हिन्दी पुस्तक एजेन्सी की स्थापना हुई। यहाँ से रामदास गौड़, प्रेमचन्द,

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी आदि कई प्रमुख लेखकों की पुस्तकें प्रकाशित हुई। बाद में हिन्दी पुस्तक एजेन्सी को बाबू बैजनाथ केड़िया ने खरीद लिया। केड़ियाजी के हाथ में आने पर हिन्दी पुस्तक एजेन्सी की बड़ी उन्नति हुई। स्व० प्रेमचन्द, जी० पी० श्रीवास्तव, बंकिम बाबू आदि की कई उत्तम पुस्तकें यहाँ से प्रकाशित हुई, जो मुद्रण, कागज, गेटअप आदि की दृष्टि से उच्चकोटि की थीं। उस समय शम्भुप्रसाद वर्मा हिन्दी पुस्तक एजेन्सी से पृथक होकर कलकत्ता पुस्तक भण्डार के नाम से अपना पृथक पुस्तक व्यवसाय करने लगे थे। पं० देवनारायण द्विवेदी 'भारती पुस्तक एजेन्सी' के नाम से प्रकाशन का व्यवसाय नारायणप्रसाद बाबू लेन में करते थे। द्विवेदीजी स्वयं सुलेखक थे। इनके द्वारा लिखित पुस्तक 'पंजाब का हत्याकाण्ड' की हिन्दी संसार में बड़ी धूम हुई। इसकी २२ हजार प्रतियाँ हाथोंहाथ बिक गयी। इस पुस्तक की लोकप्रियता को देखकर बाद में कई अन्य प्रकाशकों ने पंजाब हत्याकाण्ड पर पुस्तकें प्रकाशित कीं। इसके बाद द्विवेदीजी कलकत्ता छोड़कर चले गये। वे काशी में ज्ञानमण्डल प्रकाशन देखने लगे। पं० शिवशंकर मिश्र ने कामविज्ञान तथा जननेन्द्रिय विज्ञान आदि कई उच्चकोटि की पुस्तकें प्रकाशित कीं। उस समय हिन्दी संसार ने इन पुस्तकों का अत्यधिक स्वागत किया।

'विश्वमित्र' के संस्थापक बाबू मूलचन्द अग्रवाल के सहयोग से पं० उमादत्त शर्मा ने पुस्तक प्रकाशन के लिये पापुलर ट्रेडिंग कम्पनी की स्थापना की। यहाँ से करीब ६०-७० धार्मिक, पौराणिक एवं साहित्यिक पुस्तकें प्रकाशित की गयीं। इनकी बिक्री भी अच्छी संख्या में हुई। दुलीचन्द परिवार एवं काशीनाथ जैन, जैन-साहित्य का प्रकाशन करते थे। दुलीचन्द परिवार द्वारा स्थापित जवाहर प्रेस से आज भी जैन-साहित्य का प्रकाशन होता है। श्रीराम बेरी एडवोकेट, एस० आर० बेरी एण्ड कम्पनी के नाम से पुस्तक प्रकाशन व्यवसाय करते थे। जल चिकित्सा आदि पर दर्जनों पुस्तकों का इन्होंने प्रकाशन किया। श्रीनिवास लोहिया एवं जयगोपाल लोहिया वेंकटेश्वर पुस्तक एजेन्सी के नाम से पुस्तक प्रकाशन का व्यवसाय करते थे। विश्वम्भरनाथ खत्री के प्रकाशनों में हिन्दी लोकोक्ति कोश का नाम विशेष उल्लेखनीय है। लोकोक्तियों का यह प्रथम कोश था। शिवपूजन सहाय की पहली पुस्तक 'महिला मण्डल' भारतीय प्रकाशन माला कलकत्ता से प्रकाशित हुई। हिन्दी विश्व कोश के प्रकाशक नगेन्द्रनाथ बसु को हिन्दी संसार कभी नहीं भूल सकता। अहिन्दी भाषाभाषी होते हुए भी उस युग में इन्होंने हिन्दी विश्वकोश का प्रकाशन करके हिन्दी की महान सेवा की। हिन्दी संसार इनका चिरऋणी रहेगा। रामकुमार भुवालका एवं गंगाप्रसाद भौतिका भी कुछ दिनों तक प्रकाशन व्यवसाय में थे। भूतनाथ आयल के मालिक चौधरी साहब ने सेठ गोविन्ददास का एक हजार पृष्ठों का 'इन्दुमती' उपन्यास छापकर एक मानक स्थापित किया। बाबू मूलचन्दजी अग्रवाल के भाई रामदयाल अग्रवाल सरस्वती पुस्तक एजेन्सी के नाम से पुस्तक व्यवसाय करते थे। राष्ट्रकवि माधव शुक्ल के कनिष्ट भ्राता गिरिधर शुक्ल आदर्श हिन्दी पुस्तकालय के नाम से प्रकाशन व्यवसाय करते थे। बाद में वह इस संस्था को प्रयाग ले गये।

पं० रामनारायण द्विवेदी ने जन साहित्य का प्रकाशन प्रारम्भ किया। द्विवेदीजी बड़े

मिलनसार व्यक्ति थे। इस क्षेत्र में उन्हें बड़ी सफलता प्राप्त हुई। जन साहित्य की हजार से ऊपर पुस्तकें इनके यहाँ से प्रकाशित हुई।

बिहार

हिन्दी प्रकाशन जगत में बंगाल राज्य के कलकत्ता के बाद बिहार का नाम आता है। तीसरे दशक में पटना के खड्ग विलास प्रेस द्वारा भारतेन्दु के नाटकों का प्रकाशन हुआ। इस संस्था द्वारा प्रकाशित मुद्राराक्षस तथा सत्य हरिश्चन्द्र की दस-दस हजार प्रतियाँ बिकीं। ग्रन्थमाला कार्यालय के माध्यम से रामवृक्ष बेनीपुरी द्वारा लिखे 'लालचीन' के प्रकाशन को जनता ने सराहा। इसके अतिरिक्त बेनीपुरीजी के लेखों का एक संग्रह गेहूँ और गुलाब भी यहाँ से प्रकाशित हुआ। ग्रन्थमाला कार्यालय से हजारीप्रसाद द्विवेदी की 'सम्बन्ध और संस्कृति' शान्तिप्रिय द्विवेदी की 'जीवन यात्रा' तथा भगवतशरण उपाध्याय, प्रफुल्लचन्द्र ओझा मुक्त आदि की भी कृतियाँ प्रकाशित हुईं। पटना के पुस्तक भण्डार से आचार्य रामलोचन शरण ने सर्वप्रथम प्रसादजी की प्रारम्भिक कृतियाँ प्रकाशित कीं एवं अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध के चुभते—चौपदे, प्रिय-प्रवास आदि अनेक कृतियाँ इनके यहाँ से प्रकाशित हुईं। इन्हीं के यहाँ से प्रकाशित रामवृक्ष बेनीपुरी लिखित बिलाई मौसी, भारत के पहलवान, हिरामन तोता बाल साहित्य पुस्तकें लोकप्रिय हुई। जनार्दन झा 'द्विज', विनोदशंकर व्यास आदि की पुस्तकों का प्रकाशन भी पुस्तक भण्डार से हुआ। राजा राधिकारमण सिंह ने अपनी सभी औपन्यासिक कृतियाँ अपने ही प्रकाशन संस्थान अशोक प्रेस से प्रकाशित की। इनमें राम-रहीम बहुत प्रसिद्ध हुआ। अजन्ता प्रेस से दिनकरजी की कृतियाँ और फणीश्वर नाथ 'रेणु' की कृतियाँ भी छपीं। ज्ञानपीठ प्रा० लि० ने लक्ष्मीनारायण सुधांशु की काव्य में अभिव्यंजनावाद और हिमांशु श्रीवास्तव का 'लोहे के पंख' प्रकाशित कर बहुत प्रसिद्धि पायी। पटना की नावेल्टी एण्ड कम्पनी के तारा बाबू ने आलोचना साहित्य पर बिहार से सर्वप्रथम प्रकाशन किया। बिहार में और भी अनेक प्रकाशन गृह थे, जिनमें अनूपलाल मण्डल की प्रकाशन संस्था भी उल्लेख्य है। मण्डल जी ने अपने उपन्यास स्वयं प्रकाशित किये। उनका 'मीमांसा' उपन्यास बिक्री की दृष्टि से सफल रहा। पटना में बाबू कामतासिंह 'काम' का पारिजात प्रकाशन भी छिटपुट प्रकाशन करता था। १९२५ के आसपास बिहार के एक प्रकाशक द्वारा प्रकाशित 'उद्भ्रान्त' प्रेम पत्नी वियोग पर लिखा सर्वश्रेष्ठ गद्यकाव्य माना गया।

उत्तर प्रदेश

उत्तर प्रदेश हिन्दी का हृदय-राज्य माना जाता है। हिन्दी प्रकाशन के क्षेत्र में उत्तर प्रदेश ने स्वतंत्रतापूर्व जो अविस्मरणीय कीर्तिमान स्थापित किया, उसके परिप्रेक्ष्य में विचार कर निश्चय ही कहा जा सकता है कि प्रदेश के प्रकाशन-व्यवसाय से आज भी हम गतिशीलता की अपेक्षा रखते हैं। बीसवीं शताब्दी के पाँचवें दशक तक उत्तर प्रदेश में जो उल्लेखनीय कार्य हुआ, वह आधुनिक हिन्दी प्रकाशन की दिशा कहा जा सकता है। साहित्य के क्षेत्र में प्रत्येक विधा पर उत्तर प्रदेश से प्रकाशन की शुरुआत हुई, चाहे वह साहित्य हो, तकनीकी हो अथवा विज्ञान।

इलाहाबाद

इलाहाबाद को सन् १९५० तक के हिन्दी प्रकाशनों की राजधानी मान लियाा जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। यहाँ का इंडियन प्रेस अल्पमोली सरस्वती सीरीज, बाल साहित्य तथा विश्वविद्यालयों की पाठ्यपुस्तकों के अतिरिक्त गोपालशरण सिंह, महावीर प्रसाद द्विवेदी, पं० सोहन लाल द्विवेदी, पदुमलाल पन्नालाल बख्शी आदि ख्यातनामा लेखकों की कृतियों के प्रकाशन के लिये प्रसिद्ध था। डा० श्यामसुन्दरदास के साहित्यालोचन को प्रकाशित करने का गौरव इसी संस्था को प्राप्त है। पाठ्य-पुस्तकें तो इस संस्था की एकाधिपत्य व्यापार मानी जाती थीं। यहीं से प्रसिद्ध सरस्वती मासिक पत्रिका प्रकाशित हुई। रामनारायण लाल अपने समय के बहुत अच्छे प्रकाशकों में थे। इनका पापुलर अँग्रेजी-हिन्दी कोश तथा चतुर्वेदी द्वारिकाप्रसादजी और रसालजी का हिन्दी कोश भारत में अद्वितीय थे। इस संस्था ने मध्यकालीन कवियों की अनेक कृतियाँ प्रकाशित कीं। इलाहाबाद में ही भगवानदास केला ने भारतीय प्रकाशन नाम से एक संस्था स्थापित की। उसके द्वारा अर्थशास्त्र, इतिहास, नागरिकशास्त्र आदि पर मानक ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ। केलाजी का यह कार्य समय को देखते हुए समाजसेवा सरीखा था, क्योंकि आज की तरह उस समय न तो विश्वविद्यालय थे और न ही पाठ्य-पुस्तकें बिकती थीं। इन्हीं दिनों इलाहाबाद विश्वविद्यालय की विज्ञान परिषद ने हिन्दी में विज्ञान विषयक पुस्तकें छापीं। साहित्य भवन लि० ने पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र जैसे नाटककार की कृतियाँ हिन्दी में प्रकाशित कर बहुत बड़ा कार्य किया। साथ ही इस संस्था ने क्षति उठाकर भी देश के मूर्धन्य साहित्यकारों की कृतियाँ प्रकाशित करने का क्रम जारी रखा। भारती भण्डार प्रारम्भ में काशी के रायकृष्णदासजी की संपत्ति थी। बाद में लीडर प्रेस, इलाहाबाद वालों ने खरीद लिया। इस संस्था ने प्रसाद, निराला, महादेवी वर्मा, पन्त, नरेन्द्र शर्मा, इलाचन्द्र जोशी, उपेन्द्र नाथ अश्क, भगवतीचरण वर्मा जैसे प्रथम श्रेणी के साहित्यकारों की कृतियाँ प्रकाशित कर सारे देश में हलचल मचा दी थी। कोई भी ऐसा उच्चशिक्षा प्राप्त पाठक अथवा विद्यार्थी नहीं था जिसने भारती भण्डार की पुस्तकें न पढ़ी हों। १९१० के लगभग इलाहाबाद के वेलवेडियर प्रेस ने ह्वेनसांग तथा फाह्यान के यात्रा विवरण छापकर हिन्दी प्रकाशन को ऐतिहासिक ग्रन्थ दिये, जो आज भी हमारे पुस्तकालयों की शोभा हैं। इसी प्रेस ने पं० रामगुलाम द्विवेदी कृत 'कवित्त रामायण' १९२४ ई० में प्रकाशित की। इन्हीं दिनों पं० रामनरेश त्रिपाठी ने हिन्दी मन्दिर की स्थापना की। १९२५ में उनकी कविता 'कौमुदी' का प्रकाशन हुआ जो छह खण्डों में छपा। बारह भागों में छपा 'बाल कथा कहानी' भी बच्चों में बड़ा लोकप्रिय हुआ। हिन्दी मन्दिर के अनुकरण में शिशु कार्यालय के सत्यवान जी ने बाल साहित्य की अनेक रोचक एवं मनोरंजक कृतियाँ प्रकाशित कीं। चौथे दशक में रामनाथ सुमन ने साधना सदन की स्थापना कर अपनी लिखी पुस्तकें स्वयं छापीं। इनमें 'आनन्द निकेतन' का बहुत स्वागत हुआ। यशोदा देवी नामक एक वैद्य महिला ने नारी जीवन और नारी चिकित्सा पर बहुत ही महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित किये

थे। देश के विभाजन के बाद लाहौर से इन्द्रचन्द्र नारंग हिन्दी भवन को इलाहाबाद लाये। हिन्दुस्तानी अकादमी और हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने साहित्यिक तथा उच्चस्तरीय पाठ्य-पुस्तकें प्रकाशित की हैं। इलाहाबाद के सेन्ट्रल बुक डिपो के स्वामी किशोरीलाल भार्गव ने कवि हरिवंशराय बच्चन की मधुशाला, मधुबाला आदि कृतियाँ सर्वप्रथम प्रकाशित कीं। उन्होंने सुमित्रानन्दन पंत तथा इलाचन्द्र जोशी की प्रारम्भिक रचनायें भी छापीं।

दारागंज इलाहाबाद को साहित्यिक प्रकाशनों का क्रान्तिकारी मुहल्ला कहा जाता था। छात्र हितकारी पुस्तकालय के पं० गणेश पाण्डेय और केदारनाथ गुप्त उन भविष्यद्रष्टा प्रकाशकों में थे, जिन्होंने चरित्रोपयोगी और स्वास्थ्यसम्बन्धी पुस्तकों का प्रकाशन कर एक अद्भुत कार्य किया। पं० कृष्णकान्त मालवीय ने स्वयं अपनी प्रसिद्ध कृति सुहागरात प्रकाशित की। पं० केशव कुमार ठाकुर ने यहीं पर कमलिनी कार्यालय की स्थापना की और अपनी तथा अपनी पत्नी ज्योतिर्मयी ठाकुर की रचनाएँ प्रकाशित कीं। दारागंज के ही पं० जगपति चतुर्वेदी के आदर्श प्रकाशन को विज्ञान की पुस्तकों के लिए याद किया जाता था। भगवानदास अवस्थी का 'ज्ञान लोक' जहाँ हल्के-फुल्के साहित्य के लिए प्रसिद्ध था, वहीं पं० प्रतापनारायण चतुर्वेदी ने मूर्धन्य मध्यकालीन कवियों—रसखान, बिहारी, मतिराम आदि की सीरीज प्रकाशित करने के कारण सम्मानित हो चुके थे। उमाशंकर सिंह ने कला मन्दिर के नाम से दारागंज में एक प्रकाशन संस्था स्थापित की थी। निराला जी का 'चाबुक' इन्होंने छापा था। मित्र प्रकाशन इलाहाबाद ने १९७६ में जगदीश 'जगेश' के उपन्यास सत्यकथा तथा यौवन की चाँदी की साढ़े तीन रुपये मूल्य पर ७० हजार प्रतियाँ बेचीं। मातृभाषा प्रकाशन मन्दिर के नाम से हर्षवर्द्धन शुक्ल ने उर्दू शायरी का सेट प्रकाशित किया। दारागंज के पं० लक्ष्मीधर वाजपेयी स्वलिखित धर्म शिक्षा प्रकाशित करते थे, जो लाखों की संख्या में बिकती थी। जहाँ इंडियन प्रेस अपनी वैभवशाली परम्परा के कारण प्रकाशन जगत में अपना शानी नहीं रखता था, वहीं इलाहाबाद से रामरिख सहगल ने 'चाँद' कार्यालय से जी० पी० श्रीवास्तव, धनीराम प्रेम, चंडी प्रसाद हृदयेश आदि की कृतियाँ प्रकाशित कर बहुत बड़ी ख्याति अर्जित की। सहगल ने चाँद जैसी मासिक पत्रिका और 'भविष्य' जैसा साप्ताहिक-पत्र इसी नगर से निकाला था। चाँद के मारवाड़ी अंक तथा फाँसी अंक की बड़ी चर्चा हुई थी। सहगल साहब अपने समय के युगान्तरकारी प्रकाशक माने जाते थे। १९३५ के लगभग किताब महल के व्यवस्थापक श्रीनिवास अग्रवाल ने अमरनारायण अग्रवाल की कृति समाजवाद की रूपरेखा प्रकाशित कर अपनी संस्था का शुभारम्भ किया। बाद में संस्था ने राहुल जी की पुस्तकों का पूरा सेट प्रकाशित किया। इसी संस्था ने रांगेय राघव जैसी प्रतिभा को हिन्दी में लाने का श्रेय प्राप्त किया। लहर प्रकाशन से प्रगतिशील साहित्यकार ओंकार शरद ने भी अनेक प्रकाशन किये। राजकुमार जौहरी ने न्यू लिट्रेचर संस्था के माध्यम से ओंकार शरद का साहित्यकारों का अलबम तथा उल्कापात प्रकाशित किया। यहीं से पं० श्रीराम वाजपेयी का स्काउटिंग का साहित्य प्रकाशित हुआ। महादेवीजी द्वारा स्थापित साहित्यकार संसद ने भी प्रकाशन की

एक योजना बनाई थी। निराला की 'अपरा' इसका महत्त्वपूर्ण प्रकाशन है। इलाहाबाद में इन दिनों लोकभारती, नीलाभ प्रकाशन, स्मृति प्रकाशन तथा अनामिका प्रकाशन आदि साहित्यिक प्रकाशन के कार्य में लगे हुए हैं। सरस्वती प्रेस और हंस प्रकाशन ने मुशी प्रेमचन्द की कृतियाँ प्रकाशित की हैं। सरस्वती प्रेस को अज्ञेय की प्रतिष्ठित कृति 'शेखर एक जीवनी' प्रकाशित करने का श्रेय भी है। प्रारम्भ में सरस्वती प्रेस वाराणसी में था। बच्चन जी की रचनाएँ लीडर प्रेस के अतिरिक्त सेन्ट्रल बुक डिपो से भी छपी थीं। कहानी और उपन्यास विधा पर माया सीरीज की पुस्तकें जनप्रिय हुईं। यह केवल आठ आने में मिलती थी। श्रमजीवी लेखकों में भैरव प्रसाद गुप्त का धारा प्रकाशन था। मिर्जापुर से सीताराम द्विवेदी 'समन्वयी' लम्बे समय तक 'दीनबन्धु' नामक लोकप्रिय पत्रिका का प्रकाशन करते थे। प्रथम दौर में आनंद कादम्बिनी के प्रकाशक प्रेमनारायण चौधरी प्रेमधन एवं अंगार के प्रकाशक सम्पादक विजयानन्द मिश्र विधायक थे। मार्कन्डेय के नया साहित्य प्रकाशन ने उनकी कृतियों के अतिरिक्त अन्य साहित्यिक कृतियों का भी प्रकाशन किया। १९२० में पं० गिरिधर शुक्ल ने आदर्श हिन्दी पुस्तकालय से 'विधवा की आत्मकथा' 'अबला की आत्मकथा' आदि सामाजिक उपन्यास प्रकाशित किये। बाद में शुक्ल जी ने टाड कृत 'राजस्थान का इतिहास' के हिन्दी संस्करण के साथ-साथ भारतीय इतिहास की अनेक पुस्तकें प्रकाशित कीं। पं० प्रभात शास्त्री के कौशाम्बी प्रकाशन ने पं० लक्ष्मी नारायण मिश्र के कुछ नाटक तथा अन्य महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित किये।

हिन्दी की दो महान आत्माओं की कृतियों का प्रकाशन झाँसी जिले में हुआ। प्रसिद्ध उप्रन्यासकार बाबू वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यास और नाटक मयूर प्रकाशन झाँसी से प्रकाशित हुए हैं। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त तथा कविवर सियारामशरण गुप्त के प्रकाशनों के लिए साहित्य सदन चिरगाँव झाँसी का नाम सामने आ जाता है। हंस प्रकाशन ने अमृतराय लिखित प्रेमचन्द जी की जीवनी 'कलम का सिपाही' छापकर प्रसिद्धि प्राप्त की। अमृतराय का पूरा साहित्य तथा सुभद्राकुमारी चौहान की सभी कृतियाँ हंस प्रकाशन से छपी हैं।

लखनऊ

लखनऊ के दुलारेलाल भार्गव ने मिश्रबंधु गंगा पुस्तकमाला के माध्यम से निराला, भगवती चरण वर्मा, महावीर प्रसाद द्विवेदी, वृन्दावनलाल वर्मा, चतुरसेन शास्त्री आदि महारथियों की कृतियाँ प्रकाशित की थीं। दुलारेलाल जी ने हिन्दी के प्राचीन कवियों की कृतियाँ भी समीक्षात्मक रूप से बृहदाकार छापी थीं। सुधा और माधुरी जैसी प्रसिद्ध साहित्यिक पत्रिकाओं के भी वे प्रकाशक थे। हिन्दी प्रकाशन के इतिहास में वह बराबर स्मरण किये जायेंगे। देश के विभाजन के बाद प्रसिद्ध क्रान्तिकारी यशपाल लखनऊ आ गये और उनकी सहधर्मिणी श्रीमती प्रकाशवती पाल ने विप्लव कार्यालय की स्थापना करके यशपाल की पुस्तकें प्रकाशित कीं। लखनऊ से राष्ट्रीय प्रकाशन मन्दिर के द्वारा उमाशंकर दीक्षित, नवयुग ग्रन्थागार से पं० रामेश्वर तिवारी तथा हिन्दी प्रचारक मण्डल से

रामदास ने भी अनेक उपयोगी प्रकाशन किये। साहित्यसेवी पं० नन्दकिशोर अवस्थी ने कुरान का हिन्दी संस्करण छापा। अवस्थी जी ने भुवनवाणी ट्रस्ट के नाम से भारतीय भाषाओं के प्रसिद्ध ग्रन्थों के हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किये थे। हिन्दी साहित्य संसार के तेजनारायण टण्डन परीक्षोपयोगी समीक्षात्मक पुस्तकें तथा हिन्दी सेवी पुस्तकों का प्रकाशन कर प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके हैं। लखनऊ की हिन्दी समिति ने बहुत ही प्रशंसनीय कार्य किये हैं। देश की सरकारी संस्थाओं में यदि कोई सफल कही जा सकती है तो हिन्दी समिति उसका अच्छा उदाहरण है। लखनऊ से ही विश्वभारती ने सचित्र विश्व हिन्दीकोश का प्रकाशन पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी के तत्वावधान में किया। सभी भारतीय भाषाओं में सिर्फ बंगला को छोड़कर यह बहुत बड़ा साहसिक कार्य माना गया। इसी संस्था ने पं० द्वारिकाप्रसाद मिश्र का कृष्णायन महाकाव्य छापा। लखनऊ के अवध पब्लिशिंग हाउस ने भी अनेक साहित्यिक प्रकाशन किये। इसके संस्थापक भृगुराज भार्गव थे। हिन्दुस्तानी बुक डिपो लखनऊ ने हरिऔधजी की अनेक कृतियाँ प्रकाशित कर ख्याति अर्जित की। रामतीर्थ प्रकाशन को स्वामी रामतीर्थ द्वारा लिखे गये ग्रन्थों के प्रकाशन के कारण जाना जाता है। हिन्दी ग्रन्थ अकादमी लखनऊ तथा उत्तर प्रदेश सूचना विभाग ने भी अनेक महत्त्वपूर्ण प्रकाशन किये हैं। लखनऊ में मुंशी नवलकिशोर ने नवलकिशोर प्रेस की स्थापना १२५ वर्ष पूर्व की थी। हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में इस संस्था द्वारा प्रकाशित शिवसिंह सरोज और हफीजुल्ला खाँ का हजारा साहित्य को बहुत बड़ी देन है। इसके अतिरिक्त इस संस्था ने सुखसागर, प्रेमसागर, शिवपुराण, वाल्मीकि रामायण आदि बड़े ग्रन्थ प्रकाशित किये जो लाखों की संख्या में बिके। इस संस्था द्वारा प्रकाशित मक्खन लाल का सुखसागर हर घर में पाया जाता है। नवलकिशोर प्रेस ने उर्दू में कुरान आदि ग्रन्थ प्रकाशित कर देश के मुस्लिम और उर्दूभाषी जनता की सेवा की। सरस्वती पुस्तक मन्दिर आर्यनगर, कानपुर से अमृतलाल नागर का पहला उपन्यास प्रकाशित हुआ। इसी संस्थान ने अलेक्जेन्डर ड्यूमा के थ्री मास्केटियर का हिन्दी अनुवाद तीन तिलंगे नाम से प्रकाशित किया था। लखनऊ के पास ही उन्नाव में चौधरी साहब ने चौथे शतक में युग मन्दिर की स्थापना की थी, जिसके माध्यम से निराला जी का बिल्लेसुर बकरिहा, तथा अन्य कृतियाँ प्रकाशित हुई थीं। लखनऊ की ज्ञान भारती संस्था ने बाल पाकेट बुक्स के रूप में उपयोगी बाल साहित्य प्रकाशित किया है।

पश्चिमी उत्तर प्रदेश

पश्चिमी उत्तर प्रदेश में सबसे पुराने प्रकाशकों में बम्बई भूषण प्रेस मथुरा के बालमुकुन्द भरतिया वैद्यक विषय की पुस्तकों के प्रकाशन के लिए बहुत प्रसिद्ध थे। बम्बई भूषण प्रेस की स्थापना १९१० के लगभग हुई थी। तिब्बे अकबर, जर्राही प्रकाश, शालिहोत्र चिकित्सा आदि वैद्यक की पुस्तकें छापकर इस संस्था ने बहुत बड़ा काम किया था। उन दिनों छबीलेलाल गोस्वामी ने अपने पिता किशोरीलाल गोस्वामी के उपन्यास भी मथुरा से प्रकाशित किये। मथुरा के श्यामकाशी प्रेस ने प्रथम बार १९१५ में दीवानरूप किशोर से अनुवाद कराकर सहस्र रजनी चरित्र छापा। नागर समुच्चय काव्य ग्रन्थ भी

यहाँ से छपा। श्यामकाशी प्रेस तथा बाबू शिवचरणलाल का हिन्दी पुस्तकालय लोक साहित्य के प्रकाशन के लिये याद किया जायेगा। राजस्थानी ख्याल इन संस्थाओं के बहुत बिकनेवाले प्रकाशन थे। प्रसिद्ध कथावाचक बिन्दुजी ने अपनी भजनावली मोहन मोहिनी के नाम से मथुरा से छापी थी। हाथरस के पं० नत्थाराम गौड़ नौटंकी लेखन और प्रकाशन के सिरताज थे। उनका सुल्ताना डाकू गाँव-गाँव में अभिनीत हुआ था। लैला मजनूँ, शीरी फरहाद की कथाओं को नौटंकी में लिपिबद्ध करके और स्वयं अभिनीत करके उन्हें इतना जनप्रिय बना दिया कि ये पुस्तकें आज भी बहुत बिकती हैं। वैसे बाबू हरिदास वैद्य ने अपना कार्य कलकत्ता से आरम्भ किया, परन्तु बाद में अपने घर मथुरा आ गये। बाबू हरिदास वैद्य का भर्तृहरि शतक अपने अनूठे भाष्य के कारण घर-घर में रखा जाता था। उनके स्वास्थ्य रक्षा की सर्वसाधारण में अच्छी माँग थी। हाथरस का संगीत कार्यालय स्वतंत्रता के बाद संगीत साहित्य का बहुत ही अच्छा फर्म है। इनके प्रकाशनों की तुलना कलकत्ता के मुंशी भृगुनाथलाल के प्रकाशनों से की जा सकती है। १९२० में मुंशी भृगुनाथ लाल ने हिन्दी में सर्वप्रथम सुरमंजरी, ताल मंजरी, हारमोनियम मंजरी, गीत मंजरी आदि संगीत की पुस्तकें प्रकाशित कीं। जहाँ प्रभुदयाल मीतल की साहित्य संस्था ने ब्रजभाषा साहित्य के शोधग्रन्थों को मथुरा से प्रकाशित कर ब्रज की गरिमा बढ़ाई है, वहीं अखण्ड ज्योति संस्थान ने मथुरा को केन्द्र बनाकर सम्पूर्ण गायत्री साहित्य छापा।

आगरा नगर की भी साहित्यिक प्रकाशन के क्षेत्र में अच्छी-खासी भूमिका है। साहित्य रत्न भण्डार के महेन्द्रजी साहित्यिक प्रकाशनों की अगुआई करने के कारण भुलाये नहीं जा सकते। उनके अतिरिक्त विनोद पुस्तक मन्दिर, श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी, शिवलाल अग्रवाल, गयाप्रसाद एण्ड संस, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल आदि मान्य प्रकाशक हैं। मूलतः आगरा के प्रकाशक पाठ्य-पुस्तकों की बदौलत अपनी संस्था चलाते हैं, परन्तु साहित्य के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में इनके प्रकाशन हिन्दी की वृद्धि में सहायक हुए हैं।

मेरठ का बहुत बड़ा चमत्कार मटरूमल अत्तार का आल्हा है। मांडोगढ़ की लड़ाई, आल्हा का विवाह, ऊदल का विवाह आदि बृहद् ग्रन्थ आल्हा के तर्ज उर्दू के चित्रावत शैली में छपे हैं। इनका साहित्यिक मूल्य इतना अवश्य है कि इनके पाठक कालक्रम में हिन्दी की अन्य पुस्तकों को भी पढ़ने में रुचि लेते हैं।

मेरठ आज विश्वविद्यालय स्तर के प्रकाशनों के लिये हिन्दी में सबसे आगे है। परन्तु मेरठ के पुराने प्रकाशकों में रघुवीरशरण मित्र को छोड़कर और किसी का स्मरण नहीं किया जाता। मेरठ से ही परमात्मा शरण जी ने साहित्यिक प्रकाशनों से ख्याति अर्जित की। मेरठ में पीताम्बर रस्तोगी की रस्तोगी एण्ड कम्पनी विश्वविद्यालय साहित्य के क्षेत्र में बहुत अच्छा कार्य कर रही है। मीनाक्षी प्रकाशन द्वारा भी इधर कोशग्रंथ प्रकाशित किये हैं।

देहरादून का साहित्य सदन और प्रारम्भ में मसूरी स्थित डाक्टर सत्यकेतु विद्यालंकार का सरस्वती सदन साहित्यिक प्रकाशनों में दिलचस्पी लेता था।

कानपुर में स्व० गणेश शंकर विद्यार्थी की स्मृति को प्रताप कार्यालय के रूप में भुलाया नहीं जा सकता। प्रताप कार्यालय ने स्वराज्य चित्रावली, डाक्टर संपूर्णानन्द के सम्राट अशोक तथा सम्राट हर्षवर्द्धन आदि कृतियों का प्रकाशन किया था। साथ ही स्वतंत्रता आन्दोलन सम्बन्धी अनेक पैम्फ्लेट भी छापे थे। इन पैम्फलेटों ने गाँधी जी के असहयोग आन्दोलन को सजीव कर दिया था। गाँधी जी का पुण्य सन्देश इन्हीं के कारण सारे देश में फैल गया। कानपुर के ही नारायणप्रसाद अरोड़ा ने एक प्रकाशन संस्था नारायण प्रकाशन के नाम से स्थापित कर राष्ट्रीय और वैदिक साहित्य प्रकाशित किया था। कानपुर का साहित्य निकेतन साहित्यिक पुस्तकों के लिये तथा श्रीकृष्ण पुस्तकालय श्रीकृष्ण पहलवान की नौटंकी छापने के लिए मशहूर है। कानपुर के सरस्वती पुस्तकालय के माध्यम से तोरन देवीलली के काव्य संग्रह प्रकाशित हुए।

बरेली के पं० राधेश्याम कथावाचक की राधेश्याम रामायण उन्हीं के प्रेस से २६ भागों में छपी। राधेश्याम रामायण की प्रसिद्धि का श्रेय स्वयं राधेश्याम कथावाचक को था। ये नगर-नगर, गाँव-गाँव में घूमकर अपनी कथाओं का सस्वर पाठ और राम का गुणगान करते थे। राधेश्याम कथावाचक के नाटक नारायण प्रसाद बेताब की टक्कर में टिक नहीं सके। विद्वत् मण्डली का कहना था कि बेताब राधेश्याम से आगे थे। बेताब उर्दू मिश्रित चटपटी भाषा के कारण पाठकों को सहज ही आकृष्ट कर लेते थे। आजकल बरेली का वेद संस्थान वेदों, उपनिषदों तथा पुराणों का हिन्दी भाष्य प्रकाशित कर अच्छा कार्य कर रहा है।

गोरखपुर का गीता प्रेस उत्तर प्रदेश के प्रकाशकों में अखिल भारतीय स्तर का एक संस्थान है। इस संस्था ने धार्मिक पुस्तकें—जैसे पुराण, उपनिषद, गीता, रामायण तथा महापुरुषों के जीवनवृत्त आदि के बहुत ही सस्ते संस्करण प्रकाशित कर घर-घर हिन्दी प्रकाशनों को पहुँचाया। हिन्दी की यह एक ऐसी प्रकाशन संस्था है जो शुरू से आज तक अपनी गरिमा को बनाये हुए है।

शाहजहाँपुर जनपद के एक जागरूक कस्बा तिलहर के लाला चिम्मनलाल वैश्य ने लगभग ६० ग्रन्थों को रचकर हिन्दी की सेवा की। वैश्य जी ने कासगंज में भी कुछ दिन निवास करके यहाँ आर्य समाज को जागृत किया।

इनके रचे हुए जीवन चरित्रों में दशरथ, राम, लक्ष्मण, भरत, युधिष्ठिर, अर्जुन, भीमसेन, आचार्य विदुर, दुर्योधन, धृतराष्ट्र, गुरुदत्त, पूरन भक्त और महारानी मदालसा प्रसिद्ध हैं। इनका सरस्वतीचन्द्र जीवन ग्रन्थ सबसे प्रसिद्ध और प्रशंसनीय है।

इनकी नारायणी शिक्षा के चौदह से अधिक संस्करण हुए। १६०० पृष्ठों की इस पुस्तक में ३० अध्याय थे, जिसमें स्त्रियों को घर-गृहस्थी के सभी उपयोगी बातें समझाई गयी थीं। वैश्य जी की पुत्री प्रियम्वदा देवी भी अच्छी लेखिका थीं। इनके तीन ग्रन्थ—आनन्दमयी रात्रि का स्वप्न, धर्मात्मा चाची, अभागा भतीजा एवं कलियुगी परिवार प्रकाशित होकर विद्वानों द्वारा प्रशंसित हुए। इनमें पहली पुस्तक शिक्षापूर्ण उपन्यास है

जिसमें मूर्ख पत्नियों के बहकाने से भाइयों का अलग होना, चरित्रहीन होकर कष्ट भोगना और ससुराल में अपमान सहना, अंत में मेल-मिलाप से लाभ आदि अनेक घटनाएँ लिखी गई हैं। दूसरी पुस्तक में मरणोन्मुखी चाची के मुख से कथारूप में कई गृहस्थोपयोगी उपदेश दिये गये हैं। तीसरी पुस्तक में स्त्री शिक्षा के सम्बन्ध में अनेक विचार स्वप्न के रूप में प्रकट किये गये हैं। चारो पुस्तकें नारी जागृति के लिए रची गई थीं।

चिम्मनलाल जी ने आर्य समाज के माध्यम से हिन्दी का भण्डार भरा। महापुरुषों का जीवन परिचय और स्त्रियों के सुधार के लिए उपदेशात्मक पुस्तकें लिखकर हिन्दी की सेवा की। पुस्तकों का लेखन और प्रकाशन उनका मिशन था, व्यवसाय नहीं।

दयानन्द सरस्वती के जीवन चरित्र की रचना में लेखक को सबसे बड़ा सहारा लेखरामजी आर्य की 'मुसाफिर' की अप्रकाशित कृति से प्राप्त हुई। यह कृति उर्दू की थी, जिसका अनुवाद करने में बिसौली के बाबू तोताराम मुख्तार का विशेष सहयोग रहा।

वाराणसी

वाराणसी संस्कृत और हिन्दी का प्राचीन प्रकाशन केन्द्र है। संस्कृत के प्रसिद्ध प्रकाशक चौखम्भा संस्कृत सीरीज, मास्टर खेलाड़ीलाल, मोतीलाल बनारसीदास ने संस्कृत के हिन्दी भाष्य, वेद-पुराण, कोश ग्रन्थों से लेकर कर्मकाण्ड तक की पुस्तकें प्रकाशित की हैं। वैसे भारतधर्म महामण्डल द्वारा भी १९२० के लगभग कुछ संस्कृत ग्रन्थों के हिन्दी भाष्य प्रकाशित हुए थे। हिन्दी प्रकाशन की परम्परा में नागरी प्रचारिणी सभा ने विश्वविद्यालयों के लिये स्तरीय प्रकाशन किये हैं। साथ ही सभा ने रामचरित मानस, हिन्दी शब्दसागर, हिन्दी विश्वकोश, कामताप्रसाद गुरु का व्याकरण, पं० रामचन्द्र शुक्ल का हिन्दी साहित्य का इतिहास आदि अनेक ग्रन्थ प्रकाशित कर हिन्दी के गौरव को बढ़ाया है। १९३१ में सयाजी गायकवाड़ ने शासन कल्पतरु के नाम से अन्तर्भाषाई कोश प्रकाशित करवाया। बाबू शिवप्रसाद गुप्त द्वारा स्थापित ज्ञानमण्डल और काशी विद्यापीठ ने अनेक सन्दर्भ ग्रन्थ प्रकाशित किये हैं। ज्ञानमण्डल की योजना आज भी हिन्दी कोशों के प्रकाशन के क्रम में जारी है; परन्तु विद्यापीठ का प्रकाशन विभाग बन्द हो गया। बेढब जी द्वारा संचालित प्रसाद परिषद तथा परिमल प्रकाशन ने डा० बलदेव उपाध्याय की साहित्यिक कला-कृतियों को प्रकाशित किया था। बाबू श्यामसुन्दरदास, रामचन्द्र शुक्ल, प्रसाद, प्रेमचन्द, देवकीनन्दन खत्री, गोपालराम गहमरी, विनोदशंकर व्यास, बेढब बनारसी, रामचन्द्र वर्मा जैसे अनेक मनीषी लेखकों की बनारस कार्यस्थली रही है। वियोगी हरि की विनय पत्रिका की टीका साहित्य सेवा सदन ने छापी तथा जगन्नाथदास रत्नाकर का बिहारी रत्नाकर ग्रन्थागार शिवाला ने प्रकाशित किया था। इनमें से शुक्ल जी को छोड़कर सभी प्रकाशक थे। हितचिन्तक प्रेस के कृष्ण बलवन्त पावगी ने गहमरीजी का मायावी उपन्यास छापा था। काशी में १९०५ में स्थापित बाबू निहालचन्द वर्मा के हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय ने वर्माजी लिखित जादू का महल, सोने का महल, मोती महल, प्रेम का फल आदि ऐयारी तिलस्मी उपन्यास प्रकाशित किये। इस संस्था ने नेहरू कमीशन की रिपोर्ट,

पंजाब का भीषण हत्याकाण्ड, मिस मेयो की 'मदर इंडिया' का जवाब फादर इंडिया तथा महाकवि निराला की प्रारम्भिक रचनाएँ प्रकाशित की हैं। लहरी बुक डिपो ने बाबू देवकीनन्दन खत्री तथा दुर्गाप्रसाद खत्री के अनेक ग्रन्थ प्रकाशित किये। इनका चन्द्रकान्ता तो भारत-विख्यात उपन्यास है, साथ ही भूतनाथ, रक्त मण्डल, सफेद शैतान आदि अपने समय की जानी-मानी कृतियाँ हैं। इन्हीं प्रकाशन संस्थाओं के समकालीन विश्वेश्वर प्रसाद वर्मा ने १९२५ के आसपास रेलवे सीरीज का प्रकाशन शुरू किया। उनके सुपुत्र बाबू बनारसीप्रसाद वर्मा ने रेलवे सीरीज के रूप में जासूसी उपन्यास छापे। लाला भगवानदीन ने अपनी पुस्तकें साहित्य भूषण कार्यालय के नाम से स्वयं प्रकाशित कीं। १९३० के लगभग गोपालचन्द्र वेदान्त शास्त्री ने स्वयंभाँति नामक पुस्तकालय प्रारम्भ किया और इसके माध्यम से हिन्दी-बंगला शिक्षक एवं बंगला-हिन्दी शिक्षक छापा। उनके बाद श्रीदेवाचार्य इस संस्था का काम देखते थे। उनकी प्रसिद्ध कृति वीर पंचरत्न आर० एल० बर्मन कलकत्ता से प्रकाशित हुई थी। बजरंगबली गुप्ता का साहित्य सेवक कार्यालय लाला भगवानदीन की कृतियों के लिए तथा बाबू सूर्यबली सिंह का काशी पुस्तक भण्डार अरविन्द साहित्य के लिए विख्यात है। बीसवीं सदी के चौथे दशक में पं० विनोदशंकर व्यास का पुस्तक मन्दिर तथा बलदेव मित्र मण्डल, भार्गव पुस्तकालय, नन्दकिशोर एण्ड ब्रदर्स, भारतीय साहित्य मण्डल, एस० एस० मेहता एण्ड कं० आदि संस्थाओं ने अच्छे साहित्यिक प्रकाशन किये। वैसे साहित्यिक प्रकाशनों की नींव १९०० ई० में ही हरिकृष्ण जौहर, गहमरीजी, किशोरीलाल गोस्वामी और भारतजीवन प्रेस के बाबू रामकृष्ण वर्मा ने रक्खी थी। परन्तु बाद में मुंशी प्रेमचन्द की संस्था हंस कार्यालय और रायकृष्णदासजी के भारती भण्डार ने हिन्दी प्रकाशन में बहुत बड़ा योगदान किया। इसी शृंखला में उपन्यास बहार आफिस को आगाहश्र काश्मीरी के नाटकों और सामाजिक प्रहसनों के प्रकाशन के लिए स्मरण किया जायेगा। पं० सीताराम चतुर्वेदी ने विक्रम परिषद की स्थापना १९४० में की और इस संस्था से कालिदास ग्रन्थावली प्रकाशित की। चतुर्वेदीजी ने अपने लिखे नाटक भी इसी संस्था से प्रकाशित किये। पं० कान्तानाथ पाण्डेय 'चोंच' की चूनाघाटी, पानी पांड़े, मौसी माई, एक लोटा पानी, घर का भूत जैसी हास्य कृतियाँ चौधरी एण्ड संस ने छापीं। पाण्डेय जी का बाद में चोंच उपनाम 'हंस' हो गया। बाबू बैजनाथ केड़िया द्वारा संचालित कलकत्ता की हिन्दी पुस्तक एजेंसी का कुछ कार्य क्षेत्र वाराणसी भी रहा। पंचांग तथा ज्योतिष विषयक कई प्रकाशन भदैनी के विद्वान पं० नागेश उपाध्याय ने किये। मिर्जापुर से बटुकनाथ अग्रवाल क्रान्तिकारी प्रकाशन के नाम से भारतीय स्वाधीनता संग्राम के शहीदों की जीवनियाँ प्रकाशित करते थे।

वाराणसी जिले में रामनगर से अबू मोहम्मद इमामुद्दीन गहमरी ने इस्लामी साहित्य सदन के नाम से इस्लामी साहित्य के अनेक ग्रन्थ प्रकाशित किये। नागरी प्रचारिणी सभा काशी के प्रथम सभापति बा० श्यामसुन्दर दास ने हिन्दी के ऐतिहासिक ग्रन्थों का शोध कराकर अनेक विलुप्त सामग्रियों—जैसे बिहारी सतसई, औरंगजेब के पश्चात् मुगल

साम्राज्य की स्थिति आदि का प्रकाशन कराया। परन्तु इसमें सबसे स्मरणीय कृति सन् १९०१ में प्रकाशित भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी की प्रथम जीवनी थी, जिसने भारतेन्दु की प्रतिभा-किरण से संसार को परिचित कराया।

आज हिन्दी के अनेक प्रकाशक यथा—विद्यामन्दिर, विश्वविद्यालय प्रकाशन, तारा प्रकाशन, हिन्दी साहित्य कुटीर, भारती विद्या प्रकाशन, श्रीनाथ ब्रदर्स, कल्याणदास ब्रदर्स, नन्दकिशोर एण्ड संस, चिनगारी प्रकाशन, बोध प्रकाशन तथा आनंद प्रकाशन आदि हिन्दी प्रकाशन में रत हैं। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय भी विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के सहयोग से अनेक बहुमूल्य प्रकाशन कर रहा है। सन् १९३० में घनश्यामदास बिड़ला द्वारा प्रदत्त पचास हजार की राशि से बिड़ला हिन्दी प्रकाशन मंडल काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में स्थापित हुआ था। वाणी वितान से चन्द्रशेखर मिश्र ने अपने पिता आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र की रचनाएँ प्रकाशित की हैं। साहित्यरत्न माला कार्यालय ने १९२३ में बाबू श्यामसुन्दर दास का साहित्यालोचन प्रकाशित किया। गंगाशरण ग्रैंड संस से उमेश भार्गव उपयोगी प्रकाशन करते हैं।

काशी में लोक साहित्य प्रकाशन की जो परम्परा बाबू बैजनाथ प्रसाद, कैलाशनाथ भार्गव भार्गव प्रेस, स्टार ऑफ इण्डिया प्रेस, गुल्लूप्रसाद केदारनाथ, कलकत्ता पुस्तक एजेन्सी के देवीचन्द बेरी ने प्रारम्भ की थी उसे आज भी ठाकुरप्रसाद बुकसेलर की फर्म ने कायम रखा है। काशी के ही चौधरी एण्ड संस ने कुशवाहा कान्त जैसे यथार्थवादी लेखक को प्रस्तुत करने का साहस किया।

उत्तरप्रदेश में पाकेट बुक्स का प्रकाशन भी इलाहाबाद, वाराणसी, आगरा, मथुरा और मेरठ से हो रहा है। मुख्यत: इनमें बाल पाकेट बुक्स, जासूसी पाकेट बुक्स और रोमांटिक पाकेट बुक्स की पुस्तकें हैं। ऐसे प्रकाशकों की संख्या लगभग २० है, परन्तु साहित्य की दृष्टि से इनके प्रकाशन महत्वहीन हैं।

मध्यप्रदेश

मध्यप्रदेश हिन्दी की गरिमा भूमि मानी जाती है। प्रकाशन की दृष्टि से चन्द्रराज भण्डारी और सुखसम्पतराय भण्डारी ने उल्लेखनीय कार्य किया। कई खण्डों में प्रकाशित वनौषधि विज्ञान और राजपूत जाति का इतिहास भण्डारी बन्धुओं की प्रसिद्धि का कारण है। इनका प्रकाशन गृह इन्दौर में अवस्थित था। ये लोग स्वयं लिखते थे और उसे प्रकाशित करते थे और उस पूरे संस्करण को पुस्तकालयों, राजा महाराजाओं, पाठ्य-पुस्तक प्रेमियों में बेच डालते थे। भण्डारी बन्धुओं ने अपने प्रकाशनों के स्थायी ग्राहक बनाये थे। वे २२०० पुस्तकों का संस्करण प्रकाशित करते थे जिसे आसानी से बिना किसी पुस्तक व्यवसायी की सहायता से लगभग दो वर्ष में बेच लेते थे। मध्यप्रदेश का दूसरा उल्लेखनीय प्रकाशन संस्थान स्व० पं० माखनलाल चतुर्वेदी का खण्डवा स्थित कर्मवीर प्रेस था। जहाँ से दद्दा के नाम से चतुर्वेदीजी अपनी कृतियाँ प्रकाशित करते थे।

आज म० प्र० में प्रकाशन के केन्द्र ग्वालियर, इन्दौर और जबलपुर हो गये हैं। गणना के लिए बहुत से प्रकाशन संस्थान हैं परन्तु एक नाम बहुत ही उल्लेखनीय है, वह है लोक चेतना प्रकाशन, जिसके स्वामी कविवर स्व० नर्मदाप्रसाद खरे थे। खरे जी ने अपने काव्य संग्रहों का प्रकाशन तो किया ही था, साथ ही उन्होंने मध्यप्रदेश के ख्यातनाम कवियों व साहित्यकारों की कृतियाँ भी छापी थीं। एम० एल० साजेतिया इन्दौर के एक अच्छे प्रकाशक थे। उन्होंने सामाजिक चेतना के उपन्यास छापे। मध्य भारत हिन्दी साहित्य समिति की प्रकाशन गतिविधि राज्य के कुछ इने-गिने साहित्यकारों तक सीमित थी, जबकि खण्डवा के सिद्धनाथ माधव आगरकर के स्वराज्य प्रेस ने राष्ट्रीय चेतना के अनेक प्रकाशन किये थे।

राजस्थान

स्वतंत्रता के बाद विशेषकर आठवें दशक से मौजूदा नवें दशक तक राजस्थान में हिन्दी प्रकाशन में उल्लेखनीय प्रगति हुई है। दर्जनों प्रकाशन संस्थाएँ उभरी हैं। परन्तु राजस्थान के प्रकाशकों में अग्रणी तथा स्वतंत्रता संग्रामी स्व० जीतमल लूणिया का उल्लेख महत्व रखता है। स्वतंत्रता आन्दोलन के दिनों में गाँधीजी के साहित्य का लूणियाजी हिन्दी साहित्य भण्डार के नाम से अजमेर से प्रकाशन करते थे। गाँधीजी द्वारा लिखित 'असहयोग दर्शन' तथा 'हिन्दुस्तान का राष्ट्रीय झण्डा' ये दोनों उनके प्रकाशन अँग्रेज सरकार द्वारा जब्त कर लिये गये थे। लूणियाजी ने चन्द्रराज भण्डारी का नाट्य कला दर्शन छापा। लूणियाजी सस्ता साहित्य मंडल के संस्थापकों में थे। कांग्रेस के अधिवेशनों में दुकान लगाकर पुस्तकें बेचते थे।

दिल्ली

स्वतंत्रता के बाद दिल्ली भारत का सबसे बड़ा पुस्तक प्रकाशन केन्द्र हो गया है। दिल्ली और उसके आसपास लगभग एक हजार से ज्यादा प्रकाशक तथा पुस्तक वितरक स्थापित हो चुके हैं। देश में पुस्तक प्रकाशन का लगभग आधा उत्पादन दिल्ली में होता है। यही स्थिति हिन्दी प्रकाशन जगत् के लिए भी लागू होती है। वर्तमान के विशेष विवरण में न जाकर हम हिन्दी प्रकाशन में दिल्ली की पुरानी गतिविधियों का ही यहाँ उल्लेख कर रहे हैं।

दिल्ली में साहित्य के प्रकाशन को आधुनिकता का श्रेय ऋषभचरण जैन को है। उन्होंने जैनेन्द्र की सुनीता, प्रफुल्लचन्द्र ओझा 'मुक्त' की जेल यात्रा, चतुरसेन शास्त्री का अन्तस्तल और इस्लाम का विषवृक्ष जैसे उत्कृष्ट प्रकाशनों को चौथे दशक में प्रकाशित करके, हिन्दी प्रकाशन को आधुनिकता दी। ऋषभचरण ने अपनी जो कृतियाँ सज-धज के साथ प्रकाशित की थीं उनमें वेश्यापुत्र, कनोजिया समाज में भीषण अत्याचार, दिल्ली का व्यभिचार, मास्टर साहब आदि थी। इन प्रकाशनों द्वारा देश में व्याप्त सामाजिक कुरीतियों पर सीधा हमला किया गया था। ऋषभचरण के साथ-साथ हरिभाऊ उपाध्याय, सस्ता साहित्य मण्डल से युगधर्म पुस्तक लेकर हिन्दी प्रकाशन क्षेत्र में अवतरित हुए और इस

पुस्तक ने हिन्दी जगत में एक क्रान्ति कर दी। गाँधीजी का अनासक्तियोग और उनकी आत्मकथा मण्डल के महत्वपूर्ण प्रकाशन हैं। बाद में नेहरूजी की मेरी कहानी, पिता के पत्र पुत्री के नाम, विश्व इतिहास की झलक आदि ने हिन्दी प्रकाशन जगत का गौरव बढ़ाया। पाकेट बुक्स आन्दोलन को सार्थकता देने के लिये हिन्द पाकेट बुक्स का सर्वदा स्मरण किया जायेगा।

श्री जवाहर चौधरी ने राजेन्द्र यादव के साथ अपना ३०२ गज प्लाट बेचकर अक्षर प्रकाशन प्रारम्भ किया। यह हिन्दी प्रकाशन का दूसरा छोर था। इसके बाद चौधरी ने तीन वर्ष बाद शब्दकार संस्था की स्थापना की।

पंजाब

पंजाब में हिन्दी प्रकाशन का काम आर्य समाज के प्रभाव और राष्ट्रीय आन्दोलन से प्रेरित था। नारायणदत्त सहगल एण्ड संस, लाहौर, ने सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी रजनी पामदत्त की पुस्तक 'नया भारत' छापकर एक अद्‌भुत जागृति का काम किया था। संस्थान ने कुछ पुस्तकें उर्दू में भी छापी थीं। इस संस्थान ने हिन्दी के लगभग २५-३० प्रकाशन किये थे। मेसर्स राजपाल एण्ड संस के व्यवस्थापक महाशय राजपाल ने आर्य समाजी पुस्तकें प्रकाशित की थीं, जिनमें शब्दशास्त्र, भक्ति दर्पण और हारमोनियम पुष्पांजलि बहुत प्रचलित थे। महाशय राजपाल ने पैगम्बर साहब की जीवनी भी छापी थी जो विवाद का विषय बनी। इसके अतिरिक्त इस संस्था ने आर्य समाज से सम्बन्धित लगभग ३०-४० पुस्तकें छापीं। हिन्दी भवन, लाहौर, का जन्म मूलत: हिन्दी परीक्षाओं की पुस्तकों के प्रकाशनार्थ हुआ था। इन्द्रचंद्र नारंग इसके स्वामी थे। इनके साथ इनके छोटे भाई धर्मचन्द नारंग कार्य करते थे। कहानी, कविता, निबन्ध, नाटक, हिन्दी साहित्य का इतिहास आदि उनके सभी प्रकाशन पाठ्य-पुस्तक या सहायक पुस्तक के रूप में चलते थे। शायद ही कोई ऐसा विश्वविद्यालय रहा हो जहाँ इनके द्वारा प्रकाशित हरिकृष्ण प्रेमी का नाटक न पढ़ाया जाता रहा हो। प्रेमीजी का रक्षाबन्धन प्राय: सभी विश्वविद्यालयों में स्वीकृत था। डॉ० इन्द्रनाथ मदान की प्रारम्भिक कृतियाँ भी हिन्दी भवन से छपीं।

पंजाब में एक और युगान्तरकारी प्रकाशक पैदा हुए। वह थे, लाजपतराय साहनी। इनकी संस्था का नाम लाजपतराय एण्ड संस था। उर्दू में मुंशी प्रेमचन्द का पूरा सेट इन्होंने छापा था। उर्दू में स्वामी विवेकानन्द की कृतियाँ इन्होंने प्रकाशित की थीं, और हिन्दी में भी इनके बहुत प्रकाशन थे। पंजाब के जलियाँवाला कांड पर आधारित हिन्दी में छपे, किशनचन्द जेबा के जख्मी पंजाब नामक नाटक से इन्हें बहुत प्रसिद्धि मिली। रानी दुर्गावती, हारमोनियम पुष्पांजलि तथा राष्ट्रीय आन्दोलन पर छोटे-छोटे ट्रैक्ट भी इन्होंने हिन्दी में छापे। लाला लाजपतराय, सैफुद्दीन किचलू, हकीम अजमल खाँ आदि के व्याख्यान ट्रैक्ट के रूप में छपे थे। ये ट्रैक्ट बहुत बिकते थे। १९३६ के आसपास लाहौर में एक और प्रकाशन संस्था का उद्भव हुआ। इस संस्था का नाम था नवयुग प्रकाशन। यहाँ से उपेन्द्रनाथ अश्क का कहानी संग्रह 'पिंजरे की उड़ान' और डॉ० कंचनलता

सब्बरवाल की कृति मूक प्रश्न छपा। इस संस्था ने बहुत सज-धज के साथ लगभग २०-२५ साहित्यिक कृतियाँ छापीं। अश्क जी की प्रारम्भिक रचनायें इसी संस्था से छपीं। सन्तराम बी० ए० की कुछ कृतियाँ भी इसी संस्थान ने छापी। शिवव्रतलाल बर्मन का उपन्यास शाही भिखारी और शाही लकड़हारा लाजपतराय एण्ड संस से प्रकाशित हुआ। मुंशी शिवव्रत लाल जौनपुर के रहनेवाले थे। इन्होंने उपनिषदों का हिन्दी रूपान्तर भी किया था।

जे० एस० संतसिंह मूलत: उर्दू के प्रकाशक थे। उन्होंने इस्लाम धर्म की कुछ पुस्तकें हिन्दी में प्रकाशित कीं। यथा नूरनामा, जंगनामा, मौलूद सईदी आदि। इसके अतिरिक्त लाहौर आर्य प्रतिनिधि सभा, सत्यार्थ प्रकाश तथा स्वामी श्रद्धानन्द के प्रवचनों का संग्रह छापती थी। कलकत्ता की हिन्दी पुस्तक एजेन्सी की एक शाखा उन दिनों गनपत रोड लाहौर में स्थित थी। पंजाब में भी थोड़ा प्रकाशन इन्होंने किया था। उन प्रकाशनों में सुभाषचन्द्र बोस का 'तरुण का स्वप्न' प्रसिद्ध था। बैजनाथ केड़िया तथा सरलादेवी चौधरानी, जो उस समय बहुत प्रसिद्ध राष्ट्रनेत्री थीं—के भाषणों का संकलन भी छापा था। केड़ियाजी ने हिन्दी भवन की तरह, हिन्दी की कुछ पाठ्य-पुस्तकें भी छापी थीं, जिनका सम्पादन सुप्रसिद्ध लेखक रामदास गौड़ ने किया था।

महाराष्ट्र

महाराष्ट्र में कल्यान, पूना और बम्बई तीन ऐसे नगर हैं जहाँ से हिन्दी के उल्लेखनीय प्रकाशन हुए। पूना से तिलक के गीता रहस्य का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हुआ था जो लाखों की संख्या में बिका। तिलक महाराज का गीता भाष्य असहयोग आन्दोलन के जमाने में घर-घर में पाया जाता था। पूना से एक प्रकाशन संस्था ने दो खण्डों में हिन्दी में चन्द्रकान्ता वेदान्त लगभग एक हजार पृष्ठों में प्रकाशित किया था। इस पुस्तक के क्रम में कलकत्ता के प्रकाशकों ने प्रेमकान्त, सूर्यकान्त और दर्शन परिचय नामक ग्रन्थ प्रकाशित किये।

महाराष्ट्र का उल्लेख करते समय बम्बई के हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर के स्वामी स्व० नाथूराम प्रेमी का उल्लेख करना परमावश्यक है। उन्होंने अनुवादों के प्रकाशन में इतना बड़ा काम किया, जिनके समकक्ष आज भी कोई प्रकाशक नहीं है। शरद ग्रन्थावली प्रकाशित कर उन्होंने धूम मचा दी। बाद में कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी के उपन्यास छापे। हजारीप्रसाद द्विवेदी तथा रामचन्द्र वर्मा आदि हिन्दी के प्रख्यात लेखकों के ग्रन्थों का प्रकाशन करने का गौरव भी प्रेमीजी को है।

बंगला के सुप्रसिद्ध नाटककार द्विजेन्द्रलाल राय को भारत प्रसिद्ध करने का भी श्रेय प्रेमी जी को है। द्विजेन्द्र बाबू के मेवाड़ पतन नाटक का जब प्रेमीजी ने प्रकाशन किया, तो इस नाटक का भारत के प्रत्येक नगर में मंचन हुआ। प्रेमीजी ने हिन्दी की अनेकानेक विधाओं पर प्रकाशन किये।

बम्बई के अन्य दिग्गज प्रकाशकों में खेमराज तथा श्रीकृष्णदास निणर्य सागर प्रेस, श्रीधर शिवलाल, हरप्रसाद भागीरथ आदि का उल्लेख इसी लेख में अन्यत्र किया जा रहा है।

दक्षिण भारत

भारत जैसे विशाल देश की राजभाषा हिन्दी के प्रकाशन में दक्षिण के प्रदेश अपनी निजी समृद्धि, भाषिक संस्कृति के बावजूद उत्तर भारत की तुलना में आगे नहीं कहे जा सकते। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद और खासकर देशवन्द्य महात्मा गाँधी के प्रयत्नों से स्थापित दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा का महत्व किसी भी प्रकार कम नहीं आँका जा सकता। इसके प्रयत्न से दक्षिण के लगभग सभी सांस्कृतिक महत्व के केन्द्रों में हिन्दी प्रचार के संस्थान आज कार्य कर रहे हैं। सन् १९६७ में डॉ० मौटूरि सत्यनारायण आदि प्रसिद्ध हिन्दी सेवकों के प्रयत्न से मद्रास में स्थापित हिन्दी विकास समिति ने विश्वज्ञान संहिता नाम से कई खण्डों में विश्वकोश का प्रकाशन किया, जो कई मानों में एक नितान्त नवीन प्रणाली प्रस्तुत करता है। यह तेलगू भाषा में १६ खण्डों में प्रकाशित है। उत्तरप्रदेश और उड़ीसा के पूर्व राज्यपाल बी० सत्यनारायण रेड्डी ने १९३६ में आन्ध्रप्रदेश से हिन्दी में मुकुल पत्रिका छापी थी। इस पत्रिका के प्रकाशन गृह से छिट-पुट हिन्दी पुस्तकें भी प्रकाशित हुईं।

भारत एक महादेश है। भारतीय सभ्यता का आदियुग धार्मिक साहित्य से ही प्रारम्भ होता है। वेद, वेदांग, उपनिषद्, गृह्यसूत्र, दर्शन, पुराणादि संस्कृत और जैन, बौद्ध आदि धर्मों के पाली, प्राकृत के निगमागम ग्रन्थ आदिकाल से ही श्रुति और स्मृति की परम्परा में चले आ रहे हैं। लोकभाषा हिन्दी के विकास के साथ स्वाभाविक था कि इनका प्रकाशन हिन्दी में हो। इनका अपना स्वतंत्र महत्व है और इसीलिये इसे हम स्वतंत्र रूप से व्याख्यायिन कर रहे हैं।

अध्यात्म की भूख और हिन्दी प्रकाशन

हमारे देश में दूसरे दशक से पाँचवें दशक तक अध्यात्म की भूख हिन्दीभाषी जनमानस में व्याप्त थी। परिणामस्वरूप सच्चरित्र साहित्य इस अवधि में हिन्दी में खूब छपा। पुष्कर से ब्रह्मानन्द आश्रम ने ब्रह्मानन्द भजनमाला की लाखों प्रतियाँ छापकर बेचीं। प्रतिवर्ष इस पुस्तक की लगभग २-३ लाख प्रतियाँ बिक जाती थीं। अजमेर का वेद संस्थान वेदों का भाष्य छापता था। जहाँ नागपुर से रामकृष्ण मिशन परमाराध्य रामकृष्ण परमहंस की कृतियाँ प्रकाशित करता था, वहीं पांडिचेरी से अरविन्दाश्रम ने महर्षि अरविन्द का साहित्य प्रकाशित किया।

कलकत्ता के सेठ मनसुखलाल मोर ने अपने विवाह के अवसर पर यज्ञ का अनुष्ठान किया और इस अवसर पर १८ पुराण छपवाकर ब्राह्मणों में निःशुल्क बाँटे।

कलकत्ता में हिन्दी पुस्तक एजेन्सी, आर० डी० बाहिती एण्ड कं०, निहालचन्द एण्ड कं०, पाठक एण्ड कं०, एस० आर० बेरी एण्ड कं०, आर० एल० वर्मन एण्ड कं०, गोविन्द भवन, अद्वैताश्रम आदि ने वेदान्त, दर्शन, पुराण तथा संस्कृत के आचार्यों की जीवनी आदि अध्यात्म साहित्य की सैकड़ों पुस्तकें प्रकाशित कीं।

उत्तरप्रदेश भी इस होड़ में पीछे नहीं था। मथुरा की शिक्षा भारती, श्यामकाशी प्रेस, हिन्दी पुस्तकालय तथा गायत्री संस्थान ने रामायण, महाभारत, सुखसागर, भक्तमाला, शिवपुराण, गायत्री मंत्र आदि धार्मिक ग्रन्थ प्रकाशित कर उन्हें घर-घर पहुँचाया। गीता प्रेस गोरखपुर का तो कहना ही क्या? मुंशी नवलकिशोर प्रेस लखनऊ धार्मिक प्रकाशनों में किसी से पीछे नहीं रहा। वाराणसी की संस्था चौखम्भा संस्कृत सीरीज, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, ठाकुर प्रसाद बुकसेलर, बाबू बैजनाथ प्रसाद बुकसेलर, प्रहलाददास, केदारनाथ गुल्लूप्रसाद, पंडित पुस्तकालय, मास्टर खेलाड़ीलाल एण्ड संस आदि ने संस्कृत तथा संस्कृत से अनूदित कर्मकाण्ड रामायण, महाभारत, पुराण आदि बहुत बड़ी संख्या में प्रकाशित किये। बम्बई की खेमराज श्रीकृष्णदास की प्रसिद्ध संस्था जिसने १९वीं सदी के बाद के दशक से लेकर बीसवीं सदी के पाँचवें दशक तक इतना बड़ा धार्मिक पुस्तकों का भण्डार छापा जितना सभी प्रकाशक मिलकर नहीं छाप सके। वेद, पुराण, दर्शन, वेदान्त, कर्मकाण्ड, आयुर्वेद शायद ही कोई सत्साहित्य का अंग बचा हो, जो खेमराज श्रीकृष्णदास ने न छापा हो। खेमराज श्रीकृष्णदास के पदचिन्हों का अनुसरण बम्बई के ही निर्णय सागर प्रेस, श्रीधर शिवलाल, हरिप्रसाद भगीरथ ने भी किया। इन संस्थाओं ने भी बड़े-बड़े महान् धार्मिक ग्रन्थ छापे। खेमराज श्रीज्वालाप्रसाद की रामायण टीका की विशद चर्चा थी। स्वामी अखंडानन्द के विपुल ट्रस्ट से बहुत ही अच्छे नये चिन्तन मननवाले धार्मिक ग्रन्थ प्रकाशित हुए। इसी के समकक्ष इलाहाबाद के प्रभुदत्त ब्रह्मचारी ने भगवती दुर्गा पर अनेक ग्रन्थ प्रकाशित किये। आज कलकत्ता में एक नई संस्था का उदय हुआ है, वह है बिड़ला अकादमी ऑफ आर्ट्स एण्ड कल्चर। इसके द्वारा रामकिंकर जी का मानस मन्थन और उन्हीं के द्वारा भाष्य किया हुआ रामचरित मानस का दिव्यतम संस्करण निकला है। पूना से भगवान् रजनीश की आध्यात्मिक कृतियाँ घर-घर में चाव से पढ़ी जाती हैं। अध्यात्म का प्रभाव जैसा कि पाँचवें दशक में था, आज उसकी तुलना में कुछ ज्यादा है। हमारे देश की संस्कृति ऐसे ही साहित्य में संरक्षित है, यही हमारी धरोहर और विरासत है। इसे कायम रखना चाहिए।

इस तरह हम देखते हैं कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश में हिन्दी के प्रकाशन व्यवसाय ने काफी प्रगति की है। उसने साहित्य, संस्कृति, दर्शन, धर्म, समाजशास्त्र, राजनीति, अर्थनीति, विधि, विज्ञान आदि जीवन के सभी क्षेत्रों में प्रकाशनों के द्वारा महत्वपूर्ण योगदान किया है और भविष्य में हिन्दी के प्रसार के साथ उत्पन्न चुनौतियों का सामना करने की उसमें पर्याप्त क्षमता है। उसने अपने प्रकाशन स्तर को काफी ऊँचा उठाया है और वह आज विश्व के प्रकाशन प्रतिमानों का सामना कर रही है।

अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ ने अबतक हिन्दी प्रकाशन के उन्नयन के लिये सूची सेवा, विचार गोष्ठियाँ तथा वर्कशाप का आयोजन, यूनेस्को के सहयोग से ग्रामों में पुस्तकों के प्रचार, प्रकाशकों की मानसिकता को उठाने, विदेशों में हिन्दी संस्थाओं से सम्पर्क, हिन्दी नाट्य साहित्य को हिन्दी रंग-मंच द्वारा प्रचारित करने, हिन्दी वर्तनी में एकरूपता लाने, पुस्तकों के मुद्रण, प्रकाशन स्तर को उठाने, पुस्तकों को टेण्डर प्रथा से बचाने और कागज के मूल्यों की बढ़ोत्तरी को रोकने के लिये व्यावसायिक सुरक्षा का आन्दोलन करने जैसे प्रमुख कार्यों को किया है।

अन्तर्भाषायी सम्पर्क के लिये संघ ने बंगाल, महाराष्ट्र और कर्नाटक में अपने अधिवेशन किये और असम में १९६५ में एक महत्वपूर्ण विचारगोष्ठी का आयोजन किया। हिन्दी पुस्तकों को सर्वसुलभ करने की दृष्टि से हिन्दी बुक काउन्सिल का निर्माण संघ की छत्रछाया में हुआ। हिन्दी जगत को यह सब कुछ हिन्दी प्रकाशकों का योगदान ही कहा जायेगा।

इस विवेचन को तबतक पूरा नहीं कहा जा सकता, जबतक कि हम इसकी कुछ समस्याओं का भी उल्लेख न कर दें। हिन्दी के औसत पाठक की क्रयशक्ति बड़ी सीमित है। कागज के दाम में निरन्तर वृद्धि, डाक महसूल को बराबर बढ़ाये जाने और सरकार द्वारा टेण्डर पद्धति से किताबें खरीदने की नीति से प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप में हिन्दी पुस्तकों की कीमतें बहुत बढ़ गई हैं, जिससे सामान्य पाठक उन्हें खरीदने में अपने आप को असमर्थ पा रहा है। आए दिन प्रकाशकों की संख्या में वृद्धि और सरकारी खरीद को हथियाने की चेष्टा में अस्वस्थ प्रतिद्वन्दिता के कारण एक ओर तो पुस्तकों के मूल्य में अनाप-शनाप वृद्धि और दूसरी ओर स्तर में गिरावट सुधीजनों के लिये चिन्ता का कारण बन गई है। इसके लिये प्रकाशक संघ को अधिक संगठित, सिद्धान्तयुक्त और अनुशासित होकर सरकार के साथ मिल बैठकर सर्वलोक हित का समाधान ढूँढ़ना होगा। इसी से देश का और हिन्दी का भविष्य सुरक्षित रह सकता है।

संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि भारत जैसे महान् देश में विगत दो शताब्दियों के हिन्दी प्रकाशन के इतिहास का यह अध्ययन तिथिक्रम के अनुसार नहीं, बल्कि प्रादेशिक दृष्टि से प्रस्तुत किया गया है। यह सिर्फ एक विहंगावलोकन मात्र है। इसके माध्यम से इस सन्दर्भ में सोचने समझने की दिशा जरूर मिलेगी।

❀

प्रकाशक-विक्रेता संगठनों का इतिहास और उनकी भूमिका

पाठ्य-सामग्री के क्षेत्र में व्यावसायिक संघों के विकास तथा उन्नयन में पुस्तक-विक्रेता संघ का योग तथा भूमिका अन्य व्यावसायिक संघों की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण है। यह आवश्यक है कि पुस्तक, पुस्तक-विक्रेता और उनके संघों की भूमिका पर कुछ विचार कर लिया जाय।

'पुस्तक' वह वस्तु है, जिसमें किसी विषय-विशेष पर कुछ सूचना या ज्ञान निहित होता है। १९५० ई० में आयोजित यूनेस्को की कान्फ्रेन्स के आँकड़ों और विषय की दृष्टि से पुस्तक की परिभाषा करते हुए कहा गया कि—'ऐसी मुद्रित चीज, जो समाचार न हो और जिससे साहित्य का बोध हो, कवर सहित ४९ से अधिक पृष्ठों की हो, पुस्तक कही जाएगी।' पुस्तक-विक्रेता वह है, जो व्यक्तिगत रूप से या सामूहिक रूप से किसी व्यापारिक पुस्तक-विक्रय संस्था का स्वत्वाधिकारी, भागीदार और जिसका अपना व्यवसाय करने का स्थान हो, चाहे वह खुदरा बिक्री करता हो या थोक। पुस्तक-विक्रेता की सामाजिक परिभाषा है—'ऐसा व्यक्ति जो पुस्तक-व्यवसाय को कोरा व्यवसाय नहीं समझता, बल्कि समाज-सेवा की भावना से व्यवसाय के साथ-साथ ज्ञान का प्रचार करता है।'

आज के विश्व में पुस्तक-विक्रेताओं का दायित्व सामाजिक और शैक्षिक दृष्टि से किसी शिक्षक अथवा लेखक से कम नहीं है, बशर्ते वह अपने कर्तव्यों और दायित्वों के प्रति जागरूक हो। एक पुस्तक-विक्रेता के लिए यह आवश्यक है कि वह व्यवसाय की तकनीकों, आर्थिक-व्यवस्थाओं और नियमों-उपनियमों से परिचित हो। पुस्तक-विक्रेता का सबसे महत्वपूर्ण काम है कि वह सदा-सर्वदा पुस्तकों को यथास्थान से उपलब्ध करके उचित मूल्य पर पाठकों अथवा शिक्षा-संस्थाओं को बेचे। उसका कर्तव्य है कि वह अपने ग्राहकों को देश-विदेश की प्रकाशन-संस्थाओं में उपलब्ध पुस्तकें सप्लाई करे अथवा ग्राहक द्वारा वांछित पुस्तकें क्यों नहीं मिलती हैं, इसकी समय से सूचना दे। नैतिक दृष्टि से पुस्तक-विक्रेता का यह दायित्व होता है कि वह ग्राहकों की अभिरुचि दृष्टिगत रख तदनुकूल स्वस्थ साहित्य उपलब्ध करके दे और ऐसी पुस्तक हरगिज न बेचे जो समाज की विचारधारा को दूषित करती हैं अथवा जिन्हें देश की सरकार ने वर्जित किया है। आज के स्पेसट्रैवेल के युग में जिस गति से ज्ञान-विज्ञान की सीमा बढ़ रही है, उसे देखते हुए आज का समाज पुस्तक-विक्रेता से अपेक्षा रखता है कि वह ज्ञान-विज्ञान का

प्रचार करनेवाली पुस्तकें भी अपने स्टाक में पर्याप्त संख्या में रखे और उन लोगों तक पहुँचाए जो उसे खरीद कर पढ़ने के इच्छुक हैं। उसे यह समझना चाहिए कि साहित्य के प्रचार में उसका सबसे बड़ा योग है। उपरोक्त परिस्थितियों में पुस्तक-विक्रेता की भूमिका निःसन्देह राष्ट्र निर्माण में पूर्वापेक्षया बहुत ही महत्वपूर्ण हो गयी है।

पुस्तक-विक्रय का इतिहास और विक्रेताओं की समस्याएँ

पाण्डुलिपियों के रूप में ग्रन्थ हमारे यहाँ प्राचीन काल से ही उपलब्ध थे। १५७६ ई० में क्रिश्चियन धर्म में दीक्षित एक ब्राह्मण ने, जो कि 'पीरोलुइस' के नाम से जाना जाता था, गोवा में एक प्रेस की स्थापना की। उसने तमिल भाषा में 'बाइबिल' तथा अन्य धार्मिक पुस्तकें छाप कर बेचना प्रारम्भ किया। १८५० ई० तक देश में स्थापित ईसाई मिशनरियों के प्रेस देवनागरी, कन्नड़ तथा तमिल लिपियों में पुस्तकें प्रकाशित कर जनता के लिए विक्रयार्थ सुलभ कर रहे थे। इन ईसाई मिशनरी पुस्तक-प्रकाशक प्रेसों में सबसे प्रमुख था विलियम केरी द्वारा स्थापित उत्तर भारत में बंगाल के हुगली जिले के सिरामपुर में स्थित 'बैपटिस्ट मिशन प्रेस'। १८०१ ई० में इसी प्रेस से बंगला अक्षरों में न्यू टेस्टामेण्ट तथा काशीराम दास रचित 'महाभारत' का प्रकाशन हुआ, जो कि जनता में हाथों-हाथ बिक गया। उन दिनों कलकत्ता में देवनागरी तथा बंगला भाषा के प्रकाशक एवं पुस्तक-विक्रेता के रूप में 'बाबूराम ब्राह्मण' नाम के एक ऐसे व्यक्ति का उल्लेख आता है, जो अपने को सरस्वती का पुत्र कहते थे। उन्होंने बंगला भाषा के अतिक्ति १० पुस्तकें देवनागरी अक्षरों में भी छापी थीं। 'बाबूराम' के बाद उत्तर भारत में पुस्तक-विक्रेता के रूप में सबसे पुराना नाम कलकत्ता के 'थैकर स्पिंक' फर्म का लिया जाता है। उन्नीसवीं सदी में छापे की पुस्तकों के अलावा मुनीमी तरीकों से कैथी भाषा में छपी धार्मिक पुस्तकें भी काफी बिकती थीं। इन पुस्तकों का विक्रय केन्द्र कलकत्ते का जान बाजार (वर्तमान सुरेन्द्रनाथ बनर्जी रोड) तथा बिहार के दरभंगा व सीतामढ़ी जिले थे।

१९वीं सदी से हमारे देश में पुस्तक-विक्रय का कार्य आरम्भ हो चुका था। कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, त्रावणकोर, क्वीलन, दिल्ली और लखनऊ उस सदी के प्रमुख पुस्तक-विक्रय केन्द्र थे, परन्तु ये केन्द्र बहुत अधिक गतिशील नहीं थे। २०वीं सदी के आरम्भ होते ही पुस्तक-विक्रय-कार्य को कुछ गति मिली। जैसे-जैसे शिक्षा का प्रसार बढ़ता गया, पुस्तक-व्यवसाय भी आगे बढ़ा। देश की स्वाधीनता के पूर्व तक तो यह स्थिति थी कि पुस्तक-विक्रेता आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न न होते हुए भी पर्याप्त मात्रा में स्टाक रखने की चेष्टा करते थे। परन्तु स्वाधीनता के बाद शिक्षा तथा प्रकाशन के विकास-क्रम में तेजी से बढ़ोत्तरी आई, उससे एक पुस्तक-विक्रेता के लिए अब यह संभव नहीं रह गया कि वह अपने को आर्थिक दृष्टि से इतना सम्पन्न कर पाए कि सभी तरह की पुस्तकों का स्टाक खरीदकर रख सके। साथ ही आज ऐसी स्थिति आ गयी है कि जागरूक पाठक पुस्तक-विक्रेता से यह भी अपेक्षा रखता है कि वह जो पुस्तक चाहे, उसे वह प्राप्त हो या उसके बारे में पुस्तक-विक्रेता उसको जानकारी दे। ऐसी स्थिति में पुस्तक-विक्रेता की दुकान पुस्तक बेचने के साथ-साथ पुस्तक सूचना-केन्द्र भी है। विदेशी पुस्तकों के प्रति भी हमारे देश में जिज्ञासा

इधर बहुत बढ़ी है। साथ ही हमारे देश में विभिन्न विषयों के प्रकाशनों की संख्या उत्तरोत्तर इतनी बढ़ रही है कि एक सामान्य पुस्तक-विक्रेता इच्छा रखते हुए भी ग्राहक की सभी जिज्ञासाओं की पूर्ति नहीं कर सकता। निश्चय ही वह देश-विदेश के अनेक प्रकाशकों के सूचीपत्र, पुस्तकों की जानकारी करानेवाली पत्र-पत्रिकाएँ एकत्र कर सकता है। परन्तु प्रकाशनों की बढ़ती संख्या और पुस्तकों के विषय में सूचना का क्षेत्र इतना वृहद् और व्यापक हो गया है कि उसे जुटाना सामान्य विक्रेता के बूते की बात नहीं है।

एक पुस्तक-विक्रेता के लिए यह भी आवश्यक है कि वह अपनी आर्थिक और शारीरिक सीमाओं के भीतर अपनी दुकान या व्यावसायिक भवन में एक अच्छा 'शो-रूम' स्थापित करे, जिसमें नित्य नयी आनेवाली पुस्तकों से सम्बन्धित प्रचार सामग्री प्रदर्शित की जा सके। इससे सामान्य जनता का ध्यान पुस्तकों की ओर आकर्षित होगा। पुस्तक-विक्रेता का एक विशेष कार्य यह भी है कि नित्य नयी प्रकाशित होनेवाली पुस्तकों का समुचित प्रचार करे, परन्तु प्रचार की व्यापक सीमा के इस युग में एक सामान्य-विक्रेता उतना प्रचार नहीं कर पाता जितना कि अपेक्षित है। कौन ग्राहक कैसी पुस्तकें पढ़ता है, किस पुस्तकालय में पाठकों की रुचि के अनुसार किन विषयों की पुस्तकें खरीदी जाती हैं, निकट के विद्यालय में किस तरह का साहित्य लाइब्रेरी के लिए खरीदा जाता है आदि ऐसे प्रश्न हैं जिन्हें पुस्तक-विक्रेता को जानना जरूरी है। इन्हीं तथ्यों के आधार पर वह अपनी खरीद-फरोक्त के आँकड़े बना सकता है। ऐसे कार्य को 'मार्केट रिसर्च' कहते हैं। परन्तु प्रश्न यह है कि क्या 'मार्केट रिसर्च' कर लेना एक सामान्य-विक्रेता के लिए संभव है? निश्चय ही अधिकांश पुस्तक-विक्रेताओं के लिए यह संभव नहीं होगा। पुन: आर्थिक दृष्टि से पुस्तक-व्यवसाय अधिक लाभप्रद न होने कारण आज शिक्षितवर्ग के लोग बहुत ही कम संख्या में इस क्षेत्र में आ रहे हैं। शिक्षा तथा प्रकाशन के उत्तरोत्तर विकास के अनुपात में पुस्तक-व्यवसाय के क्षेत्र में व्यवसाय की तकनीक से विज्ञ, अनुभवी और शिक्षित पुस्तक-विक्रेता नहीं बढ़े। नि:सन्देह यह चिन्तनीय है कि आज के प्रगतिशील युग में भी ९० प्रतिशत पुस्तक-विक्रेता हमारे देश में ऐसे हैं जो जनता को पुस्तकों के विषय में सही-सही सूचनाएँ भी नहीं दे पाते। जब ऐसी समस्याएँ सामने आती हैं, तो उनका समाधान भी खोजना पड़ता है। आज सर्वोदय के युग में जब हमारा सामाजिक तथा व्यावसायिक परिवेश विशद हो गया है, तब हम सहकारिता और पारस्परिक सहयोग से समस्याओं का वास्तविक समाधान खोज सकते हैं। पुस्तक-विक्रेता भी अपना दृढ़ संगठन बनाकर आसानी से अपनी समस्याओं का हल खोज सकते हैं। इसके पूर्व कि संस्थाओं के गठन और कार्यपद्धति पर हम विचार करें, हमें उत्तर भारत के पुस्तक-प्रकाशकों तथा विक्रेता संगठनों का कुछ इतिहास और कार्य-पद्धति जान लेना आवश्यक है।

पहला संगठन बंगाल में

वैसे तो काशी में सन् १९३९ ई० के अक्टूबर माह में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर एक अखिल भारतीय पुस्तक-व्यवसायी सम्मेलन किया

गया था और एक अखिल भारतीय संस्था की नींव डालने की भी चेष्टा हुई थी, परन्तु यह प्रयत्न कार्यकारी न हो सका। अत: मानना चाहिए कि भारत में पुस्तक-विक्रेताओं के संगठन का सबसे पहले बंगाल में जन्म हुआ। कलकत्ता में बंगला पुस्तकों के प्रकाशकों और पुस्तक-विक्रेताओं की एक संस्था १९३५ में बनी। इसी के साथ वहाँ हिन्दी के प्रकाशकों तथा पुस्तक-विक्रेताओं की भी एक संस्था स्थापित हुई। राष्ट्रीयता के युग में जन्मी यह संस्था व्यावसायिक होने के साथ ही कुछ-कुछ सामाजिक भी थी। संस्था के उद्देश्य में राष्ट्रीय पुस्तकों का प्रकाशन तथा विक्रय भी था। इस संस्था ने दुकानों के खोलने तथा बन्द होने का समय निर्धारित किया और लेखकों के सम्मान में गोष्ठियों का आयोजन किया। संस्था के तत्वावधान में यदा-कदा सामाजिक समारोह भी होते थे, जिसमें सदस्य-संस्थाओं के मालिक और कर्मचारी भाग लेते थे। आचरण संहिता के नाम पर इस संस्था ने एक नियम यह बना रखा था कि संस्था का कोई भी सदस्य ग्राहकों को किसी भी तरह का उपहार न दे। संस्था का कार्यालय संघ के मंत्री महोदय की दुकान पर ही था। छोटी-सी एक नियमावली भी थी, जो छपी हुई नहीं थी। उन दिनों वार्षिक रिपोर्ट छापने की पद्धति नहीं थी, केवल कार्यवाही रजिस्टर पर लिख ली जाती थी और वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर उसे पढ़ दिया जाता था। संस्था के कार्य-क्षेत्र में पुस्तकों के प्रचार की कोई योजना नहीं थी और न ही इस पर कोई विचार होता था कि पुस्तकों के प्रकाशन का स्तर कैसा हो। यह संस्था अपने क्षेत्र से बाहर सूर्यग्रहण-चन्द्रग्रहण आदि अवसरों पर सेवा-समिति का कार्य भी करती थी। इस संस्था की कोई नाट्य-समिति तो नहीं थी, किन्तु एक बार गाँधी जी के स्वराज्य फण्ड में चन्दा देने के लिए इसने एक नाटक अभिनीत किया था। कलकत्ता के प्राय: सभी पुस्तक-विक्रेता तथा प्रकाशक इसके सदस्य थे और स्वेच्छा से यदा-कदा चन्दा भी देते थे, परन्तु कोई वार्षिक चन्दा सदस्यता-शुल्क के रूप में निश्चित नहीं था। संस्था के कार्यकर्त्ता उत्साही तो जरूरत से ज्यादा थे, परन्तु उनकी कार्यपद्धति सुनियोजित नहीं थी। यह है कहानी एक ऐसी संस्था की जो पुस्तक-विक्रेता और प्रकाशकों की संस्था थी। यह संस्था आज भी कलकत्ते में चली आ रही है। इसकी समकालीन बंगला साहित्य बेचनेवाले पुस्तक-विक्रेताओं व प्रकाशकों की संस्था की तुलना में हिन्दीवाली इस पुरानी संस्था के ढाँचे में अभी तक कोई अभूतपूर्व प्रगति नहीं हुई है, हालांकि पूर्वापेक्षया इसके वर्तमान सदस्य आधुनिक-युग की आवश्यकताओं से उद्भूत सभी समस्याओं पर विचार करने लगे हैं। हाँ, विशेष बात यह है कि इस संस्था ने पाठ्य-पुस्तकों की बिक्री के क्षेत्र में गन्दी व्यापारिक प्रतिस्पर्धा को रोकने में आशातीत सफलता प्राप्त की है। इस संस्था ने हिन्दी-पुस्तकों की प्रदर्शनियों का भी आयोजन किया है। पहले इसका क्षेत्र केवल कलकत्ता ही था, परन्तु अब समूचा पश्चिम बंगाल हो गया है।

इसी के समकालीन बंगला प्रकाशकों की संस्था 'बुक सेलर्स एण्ड पब्लिशर्स एसोशियेशन ऑफ बंगाल' ने अपने कार्यक्षेत्र में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की है। इस संस्था का स्थायी कार्यालय भी है, जिसमें वैतनिक कार्यकर्त्ता हैं। वार्षिक रिपोर्ट प्रकाशित होती है। 'ग्रन्थ जगत्' नामक एक पत्रिका का प्रकाशन भी होता था। बोर्ड ऑफ सेकेण्डरी

एजूकेशन और यूनिवर्सिटियों की पाठ्य-पुस्तकों से संबंधित सूचनाएँ सदस्यों में प्रचारित की जाती हैं। इस संस्था का अपना एक निजी पुस्तकालय भी है, जिसमें सभी क्षेत्रीय भाषाओं की पुस्तकें संकलित हैं। साल में दो-एक सामाजिक-समारोह भी होते हैं, परन्तु इस संस्था ने मार्केट रिसर्च-जैसे महत्वपूर्ण विषय पर अभी तक कोई कार्य नहीं किया है। संस्था का प्रदेश की सरकार से अच्छा संबंध है। साहित्यिक तथा पाठ्य-पुस्तकों के प्रकाशन के क्षेत्र में अपने सदस्यों के हित के संरक्षण में यह संस्था सफल कही जा सकती है।

अन्य संगठन

बिहार में प्रांतीय स्तर पर पटना में 'बिहार पुस्तक व्यवसायी संघ है। यह कुछ वर्षों से कार्य कर रहा है। निस्सन्देह इसका संगठन उत्साहवर्द्धक है। यह संस्था भी पाठ्य-पुस्तकों के क्षेत्र में कमीशन-नियमन में सफल हुई है। नियमावली, वार्षिक रिपोर्ट, सदस्य-सूची भी इस संस्था ने प्रकाशित की है। वैसे विक्रय के क्षेत्र में इस संस्था का भी मार्केट रिसर्च संबंधी कोई कार्य अभी तक देखने में नहीं आया। उत्तरप्रदेश में प्रान्तीय स्तर पर पुस्तक-व्यवसायियों की दो संस्थाएं रहीं, जिनके सदस्य केवल प्रकाशक रहे लेकिन ये दोनों ही संस्थाएँ आजकल मृतप्राय हैं! दिल्ली स्टेट बुक सेलर्स एण्ड पब्लिशर्स ऐसोशियेशन, जिसकी सदस्य संख्या दो सौ के लगभग है, उत्तर भारत के पुस्तक व्यावसायियों में प्रमुख हैं। उतना ही प्रमुख और सक्रिय राजस्थान पुस्तक व्यवसायी संघ है, जिसकी पहल पर हिन्दी क्षेत्र का प्रथम राष्ट्रीय पुस्तक मेला, १९८१ में जयपुर में आयोजित हुआ, जो राष्ट्रीय मेलों के क्रम में दसवाँ था। दक्षिण भारत में १९५३ से एक संगठन कार्यरत है—द बुकसेलर्स एण्ड पब्लिशर्स एसोसियेशन ऑफ साउथ इण्डिया। गुजरात में अहमदाबाद पब्लिशर्स एण्ड बुकसेलर्स एसोसियेशन, द फेडरेशन ऑफ बुकसेलर्स एण्ड पब्लिशर्स एसोसियेशन और गुजरात स्टेट इंग्लिस लेंगुएज बुकसेलर्स एसोसियेशन नाम के तीन संगठन परस्पर सहयोग भावना से कार्यरत हैं। महाराष्ट्र में भी एकाधिक संगठन हैं। बाम्बे पब्लिशर्स एण्ड बुकसेलर्स एसोसियेशन, महाराष्ट्र स्कूल-बुक पब्लिशर्स एसोसियेशन तथा पूना बुकसेलर्स एसोसियेशन के समन्वित सहयोग से चल रहा है। आंध्र-प्रदेश, कर्नाटक और केरल में भी ऐसे ही राज्यव्यापी संगठन हैं और संक्षेप में राज्य संगठनों का जाल देश भर में फैला हुआ है। निश्चय ही स्थानीय संघों की स्थापना इस बात की सूचक है कि पुस्तक-विक्रेता अपने दायित्व के प्रति जागरूक हैं। ये संस्थाएँ फेडरेशन ऑफ इंडियन पब्लिशर्स जैसी सुदृढ़ केन्द्रीय संस्था द्वारा निर्देश पाकर उचित रीति से कार्य सम्पादन कर रही हैं।

हिन्दी प्रकाशक संघ

१९५४ में पं० वाचस्पति पाठक की प्रेरणा से 'अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ' की दिल्ली में स्थापना हुई। कहना न होगा कि इस संस्था ने व्यापक दृष्टिकोण अपनाया और व्यावसायिक क्षेत्र में कई उपयोगी कार्य किये, जिनमें हिन्दी में साहित्यिक पुस्तकों के प्रकाशन को प्रोत्साहन, नेट बुक समझौता, राष्ट्रीय पुस्तक-समारोह, विचार-

गोष्ठियों का आयोजन, टेण्डर प्रथा के विरुद्ध आन्दोलन, पुस्तकों तथा बुक जैकेटों की प्रदर्शनियों का आयोजन, सेल्स-टैक्स और राष्ट्रीयकरण के विरुद्ध आन्दोलन, पुस्तकों के प्रकाशन में एकरूपता लाने के लिए अक्षर तथा वर्तनी समिति का निर्माण, पुस्तकों पर रेलभाड़ा कम करवाना आदि प्रशंसनीय कार्य किये हैं। संस्था का निजी पत्र 'हिन्दी प्रकाशक' के नाम से प्रकाशित होता है। संस्था ने अपने वार्षिक अधिवेशनों पर 'स्मारिकाएँ' प्रकाशित की हैं। विचार-गोष्ठियों में पढ़े गए भाषणों की एक पुस्तक भी संस्था की ओर से प्रकाशित हुई है, जो बहुत ही उपयोगी है। संस्था ने हिन्दी प्रकाशनों की एक सूची भी प्रकाशित की थी, परन्तु वह कार्य नियमित रूप से नहीं चला। वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर वार्षिक रिपोर्ट भी प्रकाशित होती है। संस्था का विधान भी छपा हुआ है। अपनी महत्वपूर्ण उपलब्धियों के कारण संस्था का राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में काफी सम्मान है। परन्तु इतनी सफलताओं के बावजूद संस्था की असफलता का सबसे बड़ा कारण यह है कि अभी तक संस्था का कोई निजी कार्यालय नहीं है। 'मार्केट रिसर्च' की दिशा में भी अभी तक संस्था ने कोई उल्लेखनीय कार्य नहीं किया है। यह संस्था नेट बुक एग्रीमेण्ट के समय में प्रकाशकों तथा पुस्तक-विक्रेताओं की संयुक्त संस्था बन गयी थी, परन्तु संस्था का वर्तमान विधान प्रकाशकों के बराबर पुस्तक-विक्रेताओं को स्थान नहीं देता।

उत्तर भारत में जालन्धर, दिल्ली, शिमला आदि स्थानों में पुस्तक-विक्रेताओं की संस्थाएँ हैं। इन संस्थाओं का कार्य-क्षेत्र पाठ्य-पुस्तकों के विक्रेताओं के हित-संरक्षण तक ही सीमित है। 'फेडरेशन ऑफ पब्लिशर्स एण्ड बुकसेलर्स एसोसियेशन इन इण्डिया' नाम की संस्था ने भारत के सभी प्रकाशकों तथा पुस्तक-विक्रेताओं की प्रतिनिधि संस्था बनने का प्रयत्न किया है। आज देश भर के प्रकाशकों और पुस्तक-विक्रेताओं की वह संयुक्त प्रतिनिधि संस्था भी है। संस्था के पदाअधिकारी प्रकाशकों के हित-संरक्षण में केन्द्रीय सरकार से लिखा-पढ़ी भी किया करते हैं।

हमारे देश में पुस्तक-विक्रेताओं तथा प्रकाशकों की जो संस्थाएँ चल रही हैं, उनमें कतिपय इने-गिने लोग ही उत्साहपूर्वक कार्य करते हैं। मौजूदा समय में अधिकांश संस्थाओं की सदस्य संख्या सन्तोषप्रद नहीं है, जो सदस्य बनते भी हैं तो बहुत आग्रह के बाद। परिणामत: संस्थाओं के पास कार्य करने के लिए अर्थ और कार्यकर्त्ता दोनों का अभाव है। इस परिस्थिति का मुकाबला पढ़े-लिखे अनुभवी प्रकाशकों तथा विक्रेताओं को ही करना होगा। उन लोगों को संस्था की उपयोगिता समझाकर शनैः शनैः संस्था का कार्यक्षेत्र विस्तृत करना चाहिए।

सुदृढ़ता न आने के कुछ और कारण भी रहे हैं। भारतीय पुस्तक-व्यवसाय में सबसे बड़ा कारण है पारस्परिक अविश्वास। बातचीत से और स्थान-स्थान पर पुस्तक-व्यवसायियों की सभा बुलाकर लोगों को संस्था में भाग लेने के लिए प्रेरित किया जा सकता है। पिछले कुछ वर्षों से पुस्तक-प्रकाशन और विक्रय के क्षेत्र में सरकार का भी हस्तक्षेप हो रहा है। पहले तो यह कार्य पाठ्य-पुस्तकों के प्रकाशन तक ही सीमित था,

परन्तु अब तो प्रदेश की सरकारें साहित्यिक प्रकाशन भी कर रही हैं और सरकारी अनुदान-प्राप्त संस्थाओं को उन्हें खरीदने के लिए बाध्य भी किया जाता है। पहले से ही पाठ्य-पुस्तकों को छोड़कर साहित्यिक पुस्तकों के व्यापार में अधिक लाभ नहीं है। ऐसी स्थिति में पुस्तक-विक्रेताओं के एक सुदृढ़ राष्ट्रीय संगठन द्वारा ही हम अपनी कठिनाइयों से उबर सकते हैं। ऐसे राष्ट्रीय संगठन में पुस्तक-प्रकाशक तथा विक्रेता दोनों को ही समान अधिकार मिलना चाहिए।

वर्तमान स्थिति में संस्था का निम्नलिखित बीस सूत्रीय कार्यक्रम होना चाहिए—

१. स्थायी कार्यालय की स्थापना।

२. पुस्तक-विक्रय-निर्देशिका (बुक सेलिंग गाइड) अपने सदस्यों के लिए प्रकाशित करना।

३. संस्था की ओर से शो-रूम तथा दुकानों की सजावट के लिए पोस्टर बुक-टोकन आदि छापना तथा पुस्तकों की सजावट के लिए बुक रैक तैयार कराना। इसका व्यय सदस्यों से उनकी माँग के अनुपात में लिया जाय।

४. नियोजित विक्रय केन्द्रों पर विचार-गोष्ठियों का आयोजन करना। पुस्तक-विक्रय की तकनीकों की जानकारी के लिए समय-समय पर रिफ्रेशर कोर्स की व्यवस्था करना।

५. मार्केट रिसर्च करवाना और उसकी रिपोर्ट समय-समय पर सदस्यों को उपलब्ध कराना। इस कार्य में केन्द्रीय सरकार तथा यूनेस्को से सहायता भी मिल सकती है।

६. पुस्तक-विक्रेताओं की सूचना-तालिका का प्रकाशन करना। इसमें सभी विक्रेताओं का नाम विवरण हो, चाहे वे सदस्य हों या नहीं।

७. देश में प्रकाशित होनेवाली पुस्तकों की सूचना सदस्य-विक्रेताओं को पहुँचाना।

८. हायर सेकेण्डरी बोर्डों, विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों तथा साहित्यिक पुस्तकों की खरीददारी की सूचनाएँ एकत्र कर सदस्यों तक पहुँचाना।

९. देश के समस्त पुस्तकालयों की एक सूची तैयार करवाकर और उसे पुस्तकाकार छपवाना। इस सूची में समय-समय पर संशोधन भी अपेक्षित होगा।

१०. समय-समय पर पुस्तक-प्रदर्शनी, पुस्तक-सप्ताह, पुस्तक समारोह आदि का आयोजन करना। इसमें प्रकाशकों का भरपूर सहयोग होना चाहिए।

११. पुस्तक-विक्रय सम्बन्धी साहित्य की एक लाइब्रेरी केन्द्रीय कार्यालय में स्थापित करना।

१२. केन्द्रीय कार्यालय में एक शो-रूम स्थापित करना, जिसमें प्रकाशकों की नयी पुस्तकों का प्रदर्शन किया जाय।

१३. संस्था का एक सूचना-केन्द्र होना चाहिए जिससे सदस्यों को सभी तरह की प्रकाशकीय, सरकारी तथा अन्य प्रकार की व्यावसायिक सूचनाएँ मिल सकें।

१४. संस्था की ओर से एक मासिक मुख-पत्र प्रकाशित करना, जिसमें व्यवसाय संबंधी सूचनाएँ हों।

१५. देश के प्रत्येक जिले में विक्रेताओं के संगठन स्थापित करने की [illegible] करना।

१६. सरकारी क्षेत्र में पुस्तक-विक्रेताओं का हित-संरक्षण करना तथा टेण्डरसिस्टम, सेल्स टैक्स हटवाना तथा पुस्तकों पर पोस्टेज व्यय कम करवाना।

१७. वर्ष की विभिन्न विषयों की श्रेष्ठ पुस्तकों का विवरण देते हुए एक प्रकाशन-वार्षिकी प्रकाशित करना।

१८. विदेश के प्रकाशकों तथा पुस्तक-विक्रेता संगठनों से सम्पर्क रखना।

१९. देश-विदेश की उन साहित्यिक संस्थाओं से सम्पर्क रखना, जो पुस्तकें प्रकाशित करती हों या खरीदती हों।

२०. एक आचरण-संहिता तैयार करना जिसमें निम्नलिखित बातों का समावेश हो—(अ) ऐसे पुस्तक-विक्रेताओं की सूची संस्था प्रचारित करे, जो माल मँगाकर वी० पी० नहीं छुड़ाते तथा समय पर हुण्डी एवं उधार का भुगतान नहीं करते। (आ) जो पुस्तकें विदेशों से मँगायी जायें उनका भारतीय सिक्के में मूल्य निर्धारित होना चाहिए। (इ) संस्था को प्रकाशकों तथा पुस्तकालयाध्यक्षों के सहयोग से एक 'गुड ऑफिस कमेटी' [illegible] जिससे ग्राहकों तथा पुस्तकालयों के लिए कमीशन की दरें निश्चित कर दी जायँ ताकि किसी भी ग्राहक अथवा पुस्तकालय को यह शिकायत न रहे कि उसे उचित मूल्य पर पुस्तकें नहीं मिलीं। (ई) बुकसैलर्स को प्रकाशक जो कमीशन दें, उसका मानक (स्टैण्डर्ड) प्रकाशकों के सहयोग से स्थापित कर लेना चाहिए। प्रकाशकों की पुस्तकें विभिन्न वर्गों में विभाजित हों, यथा पाठ्य-पुस्तक, सहायक पुस्तक, सन्दर्भ ग्रन्थ, बाल साहित्य, [illegible] पुस्तक, साहित्यिक पुस्तक, तकनीकी तथा विज्ञान की पुस्तकें आदि। (उ) प्रकाशकों से एक समझौता होना चाहिए, जिससे वे सदस्यों की अनबिकी पुस्तकों को वापस ले लें और इसके बदले में उन्हें अपने प्रकाशन की दूसरी पुस्तकें दे दें, बशर्ते पुस्तकें साफ-सुथरी हालत में वापस की जायँ। (ऊ) [illegible] समझौते के आधार पर देश के पुस्तकालयों को अखिल भारतीय संस्था से [illegible] पुस्तक-विक्रेताओं का एक समझौता होना चाहिए कि [illegible] पुस्तकालयों को [illegible] होगी। (ए) कमीशन [illegible] अखिल भारतीय संस्था के सदस्य होंगे। (ऐ) [illegible] सदस्यों के लिए यह आवश्यक होगा कि वे एक-दूसरे के साथ [illegible] में [illegible] न हों। (ओ) [illegible]

किसी सदस्य के विषय में किसी ग्राहक की शिकायत संस्था को मिले, तो उस सम्बन्ध में संस्था को समुचित कार्यवाही करनी चाहिए। (ओ) ऐसे सदस्यों को, जो कि संघ की आचरण-संहिता को न मानते हों, को बराबर चेतावनी दी जानी चाहिए। यदि वे अपने आचरण में सुधार न करें तो उन्हें संस्था से बहिष्कृत कर देना चाहिए तथा संस्था के अन्य सदस्यों को उनके साथ व्यापार बन्द कर देना चाहिए। (औ) यदि संस्था के सदस्यों में कोई परस्पर मतभेद हो, तो उसका निपटारा पहले परस्पर बात-चीत द्वारा करना चाहिए और बाद में पंच-निर्णय द्वारा। (क) नकली पाठ्य-पुस्तकें तथा जनजीवन को दूषित करनेवाला साहित्य किसी भी सदस्य को नहीं बेचना चाहिए।

प्रकाशक-विक्रेता संबंध

वर्तमान परिस्थितियों में हमारे देश में यह सम्भव नहीं है कि पुस्तक-विक्रेताओं और प्रकाशकों के अलग-अलग संघ बनें। ऐसी स्थिति में प्रकाशकों तथा पुस्तक-विक्रेताओं की सारे देश में एक केन्द्रीय संस्था बने तो ज्यादा हितकर होगा। अब हमें प्रकाशन-व्यवसाय से सम्पृक्त अनेक वर्गों और पुस्तक-विक्रेता के बीच के पारस्परिक संबंधों पर कुछ विचार करना चाहेंगे।

सबसे पहले प्रकाशक और पुस्तक-विक्रेता को लें ; प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता का बहुत ही नजदीकी संबंध है। इन दोनों का पारस्परिक सहयोग पुस्तक-व्यवसाय के लिए नितान्त आवश्यक है। पुस्तक-विक्रेताओं तथा प्रकाशकों के मधुर सम्बन्ध से ही साहित्य का प्रचार-प्रसार संभव है। प्रकाशकों और विक्रेताओं में प्राय: कमीशन को लेकर विवाद खड़ा होता है। इस संबंध में पुस्तकों के स्तर पर कमीशन की दरें स्थिर होनी चाहिए। पाठ्य-पुस्तकों के क्षेत्र में प्रकाशकों एवं विक्रेताओं में मतभेद विशेष रूप से देखने में आता है। कितने ही ऐसे प्रकाशक हैं, जिनकी पुस्तक-विक्रय की अपनी दुकानें भी हैं। उन्हें चाहिए कि जैसे ही पुस्तकें प्रकाशित हों, अपनी दुकान के साथ-साथ अन्य पुस्तक-विक्रेताओं को भी वे यथासमय पुस्तकें दे दिया करें। प्रकाशकों को सभी पुस्तक-विक्रेताओं को समान रूप से देखना चाहिए। जो पुस्तक-विक्रेता उनकी पुस्तकों का प्रचार करें, उन्हें अतिरिक्त कमीशन मिलना चाहिए। परन्तु यह उचित नहीं है कि वे एक जगह के एक पुस्तक-विक्रेता को पुस्तकें दें, दूसरे को न दें। पुस्तक-विक्रेताओं का यह कर्त्तव्य है कि वे प्रकाशकों से उलझें नहीं। कभी-कभी ऐसा होता है कि पुस्तक के प्रकाशन में किन्हीं कारणों से देर हो जाती है, तो पुस्तक-विक्रेता यह समझते हैं कि प्रकाशक उन्हें समय पर जानबूझकर माल सप्लाई नहीं कर रहा है। पाठ्य-पुस्तकों के प्रकाशक कभी-कभी पुस्तक-विक्रेताओं के साथ अन्याय करते देखे जाते हैं। पुस्तक-विक्रेताओं के सिर पर पाठ्य-पुस्तकों के साथ-साथ सहायक पुस्तकें भी मढ़ी जाती हैं और कभी-कभी तो सहायक पुस्तकों के अलावा पुस्तक-व्यवसाय के बाहर की चीजें भी पाठ्य-पुस्तकों के साथ खरीदने के लिए विवश किया जाता है।

वास्तव में जो पुस्तक-विक्रेता साहित्यिक प्रकाशनों का स्टाक कर सकें, उन्हें इसके लिए प्रकाशकों को विशेष सुविधायें देनी चाहिए। प्रकाशकों को चाहिए कि वे स्वयं पुस्तक-विक्रेता न बनें और अपनी पुस्तकें पुस्तक-विक्रेताओं द्वारा ही बिकवाएँ। यदि ऐसा हो जाय तो सम्भव है कि प्रकाशकों व पुस्तक-विक्रेताओं के संबंध मधुर हो जाँय। पुस्तकों की बिक्री बढ़ाने के लिए प्रकाशकों तथा पुस्तक-विक्रेताओं को संयुक्त रूप से प्रचार करना चाहिए। इस संबंध में पुस्तक-प्रदर्शनियों का आयोजन, पुस्तक-समारोह, पुस्तक-सप्ताह, पुस्तक व्यवसाय के अनुभवी व्यक्तियों द्वारा वार्ता आदि का प्रबन्ध होना चाहिए। 'गुड ऑफिस कमेटी' पुस्तक-विक्रेताओं और प्रकाशकों के संबंधों को बहुत ही सुदृढ़ कर सकती है। प्रकाशकों को पुस्तकालयों में सीधे पुस्तकें भेजने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित नहीं करना चाहिए। ऐसा करने से उन्हें पुस्तक-विक्रेताओं का सहयोग प्राप्त होगा।

विक्रेता, लेखक और पुस्तकालय

पुस्तक-विक्रेताओं का लेखकों से अभी तक हमारे देश में सीधा संबंध नहीं है। सारे देश में खोजने पर दस-पाँच ऐसे पुस्तक-विक्रेता मिलेंगे, जो अपने व्यवसाय में लेखकों से संबंध रखते हैं। पुस्तक-विक्रेताओं को चाहिए कि वे लेखक की नयी कृति प्रकाशित होने पर उसे अपनी दुकानों में आमंत्रित करें और ग्राहकों के बीच विज्ञापित करें कि अमुक लेखक अपनी कृति हस्ताक्षरित करके अमुक दिन ग्राहकों को देंगे। इससे पुस्तकों की बिक्री बढ़ाने में सहायता मिलेगी। पुस्तक-विक्रेताओं को पुस्तकों की बिक्री बढ़ाने के लिए पुस्तक-सप्ताह आयोजित करते समय लेखकों को आमंत्रित करना चाहिए और उनसे अनुरोध करना चाहिए कि वे पुस्तकों के महत्व पर बोलें। इस अवसर पर ऐसे ग्राहकों को पुरस्कार आदि देकर प्रोत्साहित करना चाहिए, जिन्होंने उस पुस्तक-सप्ताह के अन्तर्गत उनकी दुकान से अधिक से अधिक पुस्तकें खरीदी हों। पुस्तक-विक्रेताओं को बच्चों की पुस्तकों की प्रदर्शनी आयोजित करते समय एक समारोह करना चाहिए, जिसमें एकत्रित बाल-पाठकों को, बाल-साहित्य के लेखक अपनी कृतियों के अंश स्वयं पढ़कर सुनाएँ। इससे बच्चों में पढ़ने की रुचि जागृत होगी और बड़े होने पर ये बालक सुरुचि-सम्पन्न पाठक होंगे।

पुस्तक-विक्रेता और पुस्तकालयाध्यक्ष दोनों के सहयोग से पाठक को अपनी रुचि की पुस्तकें प्राप्त हो सकती हैं। पुस्तक-विक्रेता नयी प्रकाशित होनेवाली पुस्तकों की सूचना पुस्तकालयाध्यक्ष को देता है और पुस्तकालयाध्यक्ष यह निर्णय करता है कि अमुक विषय की पुस्तकों की माँग उसके पाठकों द्वारा है या नहीं। पुस्तकालयाध्यक्ष अपने पाठकों की रुचि के विषयों के क्रमानुसार आँकड़े तैयार करता है और पुस्तक-विक्रेता उसी से पुस्तकालय की आवश्यकता का अनुभव करके पुस्तकें उपलब्ध कराता है। पुस्तकालयाध्यक्षों को पुस्तकें प्रकाशकों से सीधे न खरीदकर पुस्तक-विक्रेताओं से

खरीदनी चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से पुस्तक-विक्रेता को प्रोत्साहन मिलेगा। यदि पुस्तकालयाध्यक्ष पुस्तकें सीधे प्रकाशकों से खरीदना शुरु करेंगे तो स्थानीय पुस्तक-विक्रेता पुस्तकों का स्टाक नहीं रखेंगे। इससे सामान्य बाजार में पुस्तकें सुलभ न हो सकेंगी। पुस्तकालयाध्यक्ष यदि चाहें तो पुस्तकों की बिक्री बढ़ाने में पुस्तक-विक्रेताओं को योग दे सकते हैं। वे पुस्तक-विक्रेताओं के साथ सहयोग करके प्रदर्शनियों का आयोजन कर सकते हैं। साक्षरता के प्रचार में पुस्तकालयाध्यक्ष तथा पुस्तक-विक्रेताओं की संस्थाएँ यदि परस्पर सहयोग करें, तो देश में साक्षरता का विकास तेजी से हो सकता है। हमारे देश में फिलहाल पुस्तकालयाध्यक्षों तथा पुस्तक-विक्रेताओं के संस्थानों में सहयोग का क्षेत्र स्थापित ही नहीं हुआ है। पुस्तकालयाध्यक्ष, प्रकाशकों तथा पुस्तक-विक्रेताओं को 'पुस्तक-सूची-प्रणयन' के काम में भी ट्रेनिंग दे सकते हैं। इससे पुस्तक-विक्रेता और प्रकाशक पुस्तक-सूची का वैज्ञानिक रीति से संपादन और प्रकाशन कर सकते हैं। पुस्तक-विक्रेताओं को पुस्तकालयाध्यक्षों को यदा-कदा अपनी दुकान पर आमंत्रित करना चाहिए। इससे उन्हें पुस्तकों के चयन में सुविधा होगी। केवल सूचीपत्रों के भेजने से ही पुस्तक-विक्रेताओं को लाभ नहीं हो सकता।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पाठ्य-सामग्री के क्षेत्र में पुस्तक-विक्रेता संघ की एक विशिष्ट भूमिका है। प्रकाशन-व्यवसाय की तमाम सफलताओं के लिए वे अपने संघ द्वारा महत्त्वपूर्ण अवदान कर सकते हैं।

❀

विचार

- ✍ हिन्दी प्रकाशकों की भूमिका
- ✍ हिन्दी पुस्तकों के लेखन, प्रकाशन और वितरण की समस्या
- ✍ हिन्दी प्रकाशन के नये आयाम
- ✍ हिन्दी पुस्तकों का निर्यात : सुललित मुद्रित पुस्तकों की विदेशों में माँग
- ✍ उच्च शिक्षा के लिये हिन्दी प्रकाशन
- ✍ हिन्दी प्रकाशन ने अपनी धरती की उपेक्षा की
- ✍ हिन्दी प्रकाशन समस्याएँ और संभावनाएँ
- ✍ हिन्दी का रथ मन्द क्यों?
- ✍ राष्ट्रीय हित में हिन्दी का योग
- ✍ हिन्दी पुस्तक प्रदर्शनियों का इतिहास
- ✍ भारतीय भाषा मण्डप : राष्ट्रवाणी का संगम स्थल
- ✍ विश्व पुस्तक मेलों में हिन्दी मण्डप
- ✍ देश की भाषाओं का अनादर
- ✍ हिन्दी प्रकाशनों पर बंगला साहित्य का प्रभाव
- ✍ बंगीय हिन्दी प्रकाशन अथ से इति तक
- ✍ मानस चतु:शती एवं हिन्दी प्रकाशकों का दायित्व
- ✍ मानस और रामकथा साहित्य के प्रकाशन
- ✍ राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की शताब्दी
- ✍ कैसे थे वे दिन, वे लोग और कैसी थी उनकी हिन्दी के प्रति आस्था
- ✍ सस्ता साहित्य मण्डल का राष्ट्र-निर्माण में योग
- ✍ कॉपीराइट और पेपरबैक समस्याएँ
- ✍ कॉपीराइट का कानून

*

हिन्दी प्रकाशकों की भूमिका

इसके पूर्व कि मैं कुछ कहूँ, मैं अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ और महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा के प्रति कृतज्ञता प्रगट करना चाहता हूँ, जिन्होंने मुझे संघ के अध्यक्ष-पद से अपना विचार प्रगट करने का सुअवसर दिया। पूना नगर में संघ का यह अधिवेशन अपने आप में एक बहुत ही महत्वपूर्ण घटना है। हिन्दीतर प्रदेश में होनेवाला यह दूसरा अधिवेशन अवश्य है, परन्तु इस अधिवेशन की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसका संयोजन महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा ने किया है, जिसकी स्थापना हिन्दी-प्रेमी महाराष्ट्रवासियों ने की है।

पूना का अपना ऐतिहासिक महत्व है। हिन्दी को अपने राज्य में प्रतिष्ठापित करनेवाले धर्मरक्षक शिवाजी महाराज आज भी सारे भारत में एक महान् वीर योद्धा के रूप में तो देखे ही जाते हैं, साथ ही कवि भूषण को अपना राज-कवि बनाने के कारण हिन्दी-जगत् उनको सदा स्मरण रखता है। संत तुकाराम, संत एकनाथ, संत ज्ञानेश्वर आदि महापुरुषों ने अपनी रचनाओं-द्वारा भक्ति-मार्ग की जो धारा प्रवाहित की, उससे हिन्दी का उद्यान हरा-भरा हुआ। महामान्य लोकमान्य-तिलक, गोखले, वीर सावरकर आदि विभूतियाँ आपकी इस नगरी से सम्बन्धित हैं, जिन्हें हिन्दी का महान् समर्थक कहा जा सकता है। प्रकाशक संघ के माध्यम से, आपकी इस नगरी में देश के समस्त प्रकाशकों का हिन्दी प्रकाशन के सम्वर्धन के लिए एकत्र होना, हमारी सांस्कृतिक एकता का प्रतीक है।

हिन्दी प्रकाशकों की भूमिका और हिन्दी प्रकाशन

आज के हिन्दी प्रकाशक की भूमिका सांस्कृतिक, शैक्षिक और राष्ट्रीय—तीनों ही दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। जहाँ राष्ट्रभाषा हिन्दी ने राष्ट्रीय आन्दोलन को एक सूत्र में पिरोया, वहीं हिन्दी प्रकाशकों ने राष्ट्रीय कृतियों को प्रकाशित कर आजादी के आन्दोलन में महत्वपूर्ण सहयोग दिया। इसलिये आज संविधान-द्वारा हिन्दी को राष्ट्रभाषा का पद प्राप्त होने पर हिन्दी प्रकाशकों का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वे उस गौरव की रक्षा करें, जो राष्ट्रभाषा के प्रकाशक के नाते उन्हें प्राप्त है। आज के हिन्दी-प्रकाशकों को व्यवसाय से परे भी कुछ करने की आवश्यकता है।

पुस्तकें प्रकाशित करना और बेचना यदि प्रकाशक का कार्य है, तो उसी के समानान्तर देश के सांस्कृतिक और सामाजिक विकास के लिए सत्साहित्यिक प्रकाशन की ओर सजग रहना भी उसका कर्त्तव्य है। प्रकाशन-व्यवसाय के स्पष्टतः दो पक्ष हैं—पहला व्यावसायिक पक्ष तथा दूसरा कीर्ति पक्ष। आज के सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनीतिक परिवेश में हिन्दी प्रकाशक अपने कर्त्तव्य-निर्वाह में कहाँ तक सफल रहे, इस पर हमें

व्यावसायिक दृष्टिकोष के साथ-साथ सामाजिक दायित्व को ध्यान में रख कर भी विचार करना होगा।

हिन्दी-प्रकाशन के सम्बन्ध में बहुत-सी भ्रान्त धारणाएँ लोगों के मन में हैं। सोचा जाता है कि हिन्दी के राष्ट्रभाषा हो जाने के कारण हिन्दी-प्रकाशन-व्यवसाय पहले की अपेक्षा सबल हो गया है। आम धारणा है कि हिन्दी में छपनेवाली किसी भी नयी पुस्तक के दस-बीस हजार पाठक होते ही हैं, परन्तु स्थिति ठीक इसके विपरीत है। पुस्तकें बिकती नहीं हैं, बल्कि बेची जाती हैं। पाठ्य-पुस्तकों की बात छोड़ दें, क्योंकि अभिभावक अपने बच्चों के लिए पुस्तकें खरीदते ही हैं। पाठ्य-पुस्तकों को साहित्य नहीं कहा जा सकता। आज यह विचारणीय प्रश्न है कि साहित्य किस हद तक पढ़ा जा रहा है? उसके पाठकों की क्या संख्या है? स्वाध्याय की प्रवृत्ति पाठकों में है या नहीं? किस तरह का साहित्य छप रहा है? क्या इस साहित्य से स्वाध्याय को प्रोत्साहन मिल रहा है, यदि नहीं तो इसमें किसका दोष है—आज की राजनीतिक परिस्थिति अथवा हमारे लेखकों की रचनाओं के प्रति आसक्ति अथवा प्रकाशकों के प्रचार-प्रसार आदि की भूमिका का? ये तीन मूलभूत प्रश्न ही हमारी इस समस्या का रूप स्पष्ट कर सकते हैं।

वाचनाभिरुचि का प्रश्न

कहा जाता है कि पुस्तकें नहीं बिक रही हैं। पाठकों में सुरुचि का अभाव है और इसके कारण हमारी आर्थिक स्थिति खराब है। कुछ लोग कहते हैं कि आर्थिक प्रश्न उतना महत्व नहीं रखता। हिन्दी में बहुत अच्छा साहित्य ही नहीं आ रहा है। फलतः पाठकों में सुरुचि जग नहीं पा रही है। वास्तव में प्रमुख बात यह है कि चूँकि अच्छा साहित्य नहीं छप रहा है इसलिए स्वाध्याय में लोगों की रुचि नहीं है। १९६५-६६ के नेशनल लाइब्रेरी के आँकड़े बताते हैं कि १,०५,१०० हिन्दीभाषी जनता पर इस वर्ष केवल एक हिन्दी पुस्तक प्रकाशित हुई, जो प्रगति-सूचक नहीं है। यह भी कहा जाता है कि इस देश का प्रकाशन-व्यवसाय सशक्त नहीं है। उसमें इतना जीवट नहीं है कि वह अच्छे रचनाकार की कृति को पाठकों तक पहुँचा सके और उनका ध्यान उसकी कृति की ओर आकृष्ट करा सके।

कुछ अपवादों को छोड़कर सामान्य प्रकाशक किस पथ पर चल रहे हैं इसका विवेचन आवश्यक है। पढ़ने की रुचि जगाने में प्रकाशक कहाँ तक सफल हैं? उनकी कार्य-पद्धति देखने से इसका पता चल सकता है। इस क्षेत्र में पूर्वपेक्षा बहुत से पढ़े-लिखे लोग अब आ गये हैं, परन्तु प्रकाशन कला और उसकी आवश्यकता से अभी वे अनभिज्ञ हैं। आमतौर पर जो भी पुस्तकें प्रकाशित हो रही हैं उनमें से अधिकतर का मुद्रण तथा गेट-अप ऐसा नहीं होता जिसे देख कर पाठक उसे एक बार पढ़ने के लिए उत्सुक हो जाय। लेकिन पुस्तकें अच्छी छपें भी कैसे? अधिकतर प्रकाशक रचनाकारों, लेखकों, प्रेसों, प्रूफरीडरों आदि को उचित पारिश्रमिक देने में कंजूसी करते हैं। उनका ध्येय होता है—कम-से-कम लागत पर पुस्तकें तैयार करना, चाहे वे अच्छी हों या बुरी। वे युग के अनुकूल पुस्तकों का प्रचार नहीं कर पाते, इसका कारण है व्यावसायिक

आवश्यकता की पूर्ति के प्रति निष्ठा और ज्ञान का अभाव। अच्छी-अच्छी कृतियाँ भी उचित प्रचार के अभाव में गोदामों में पड़ी रह जाती हैं। बाजार तैयार करने के लिए जिन आवश्यकताओं की पूर्ति आवश्यक है, वह प्राय: उपेक्षित पड़ी हैं।

प्रकाशक के लिए तो परमावश्यक है कि वह अपने पाठक की रुचि जाने और उनसे सम्पर्क स्थापित करने का मार्ग खोजे, चाहे वह स्थान भारत की काशी नगरी या अमेरिका का बोस्टन शहर ही क्यों न हो! पुस्तक-व्यवसाय की दृष्टि से नितान्त आवश्यक है कि समय पर ग्राहकों को इस बात की सूचना दी जाय कि अमुक विषय पर अमुक पुस्तक प्रकाशित हो गयी है। सूचना पहुँचाने का माध्यम चाहे जो भी हो, वह क्रमबद्ध, आग्रहमूलक और आकर्षक होना चाहिए। समाचार-पत्रों से सौहार्द्रपूर्ण सम्बन्ध बनाए रखकर इस दिशा में काफी आगे बढ़ा जा सकता है; क्योंकि सूचनाओं के प्रसारण में समाचार-पत्र मुख्य भूमिका अदा करते हैं। अधिकतर प्रकाशक सामाजिक दायित्व की परवाह नहीं करते, उनके दिमाग में केवल पुस्तकें बेचने की बात रहती है। इसी चक्कर में वे अश्लील पुस्तकें भी प्रकाशित कर डालते हैं, क्योंकि उन्हें तत्काल लाभ दिखाई देता है। परन्तु वे एक बात भूल जाते हैं कि किस तरह के प्रकाशनों से कालान्तर में उनकी हानि कम होगी और साथ-साथ प्रकाशन-जगत् पर कलंक भी नहीं लगेगा। स्वाध्याय और सुरुचि को कभी भी अश्लील पुस्तकों से नहीं जगाया जा सकता। अश्लीलता एक ऐसा तत्व है जिसे हम शराब की संज्ञा दे सकते हैं। जब तक नशा है, तब तक तो ऐसा साहित्य अच्छा लगता है, लेकिन जब पाठकों को वास्तविकता का बोध होता है तो उसे उस लेखक और प्रकाशक से घृणा हो जाती है जो इस तरह की गन्दी पुस्तकें लिखते और छापते हैं।

बहुत-से नये प्रकाशक रातों-रात बादशाह बनने की कल्पना कर बैठते हैं। फलत: वे अनीति का आश्रय लेते हैं। वे अपने अन्तर में, सहज ही न तोड़े जा सकनेवाले दुष्चक्र को उत्पन्न कर सकनेवाली विकृतियाँ छिपाये रहते हैं, जिसका प्रतिकूल प्रभाव प्रकाशन-जगत् पर पड़ता है। संघठित प्रयास, अनुशासन, प्रतिनिधि प्रकाशन संस्थान-द्वारा निर्धारित आचरण-संहिता के पालन और समस्याओं पर यथासमय विचार-विमर्श द्वारा इन विकृतियों और बुराइयों से बचा जा सकता है जो सब-कुछ करने के लिए प्रकाशक को प्रेरित करती हैं। भला बताइए, प्रकाशकों के इन आत्महन्ता कार्यकलापों से पठनाभिरुचि कैसे बढ़ेगी, स्वाध्याय कैसे बढ़ेगा!

अपने संगठन के प्रति प्रकाशक उदासीन हैं। परस्पर एक-दूसरे का सम्मान करना भी हमने नहीं सीखा है। आज के युग में संगठन के माध्यम से बहुत-सी समस्याएँ हल की जा सकती हैं। इसका बोध तो उन्हें हुआ है, परन्तु बोध की मात्रा में कमी है।

पाठ्य-पुस्तकों के प्रकाशक

पाठ्य-पुस्तकों के अधिकतर प्रकाशक प्रकाशन-व्यवसाय के क्षेत्र में अनेक ऐसी समस्याएँ उत्पन्न कर रहे हैं, जिनके कारण अहितकर अवांछनीय प्रतिस्पर्द्धा को बढ़ावा मिलता है। पुस्तकें स्वीकृत करनेवाली कमेटी के सदस्यों के साथ उनकी दुरभिसंधि के

कारण एक पुस्तक के तीन-तीन कल्पित लेखकों के नाम से छद्म पुस्तकों का प्रकाशन—अनुचित मूल्य-वृद्धि, पुस्तकों पर स्वीकृति प्राप्त करने के बाद उनका भ्रष्ट प्रकाशन आदि कुछ ऐसी बातें हैं, जो चोरी के धन्धे और गुण-ह्रास को प्रोत्साहन दे रही हैं। व्यावसायिक प्रतिबन्धों का कारगर तरीका ही इस अभिशाप से प्रकाशन-जगत् को मुक्त कर सकता है।

प्रकाशकों की कठिनाइयाँ

सुमुद्रण के लिए अच्छी मशीनों का अभाव है। जो मुद्रक अच्छी छपाई करते हैं, वे सरकारी तथा अन्य औद्योगिक प्रतिष्ठानों के कार्यों में इतना अधिक व्यस्त रहते हैं कि उन्हें पुस्तकों की छपाई की परवाह नहीं रहती। आर्थिक दृष्टि से उन्हें पुस्तकों की छपाई के मुकाबले ऑफसेट रंगीन छपाई के कार्य में अधिक लाभ होता है। सरकारी डाक की दरें भी पुस्तकों के बिकने में बाधक हैं। कोई ऐसी व्यवस्था अभी तक लागू नहीं थी, जिसके द्वारा इस व्यवसाय को सरकार द्वारा आर्थिक संरक्षण मिले, हालाँकि इस दिशा में संघ के माध्यम से कुछ प्रगति हुई है। सरकार ने अब इस व्यवसाय को उद्योग मान लिया है और औद्योगिक वित्त निगम प्रकाशकों की सहायता कर सकता है। प्रकाशकों की एक शिकायत बहुत ही युक्तियुक्त है—अच्छे प्रकाशनों की निकासी के लिए सरकारी लाल फीताशाही का व्यूह पार करना प्राय: सम्भव नहीं होता। उनकी सहायता प्रकाशक संगठन कर सकता है, परन्तु यह तभी सम्भव हो सकता है, जब संघ के पदाधिकारी अपने कर्त्तव्य के पालन द्वारा संघटन के अधिक से अधिक सदस्यों को सन्तुष्ट कर सकें। समय-समय पर यह शिकायत सुनने को मिली है कि संघ के संचालकों की कथनी और करनी में अन्तर रहता है। ऐसी शिकायत को अवसर न देने की यथासाध्य चेष्टा की जानी चाहिए।

राजनीति का प्रभाव और अनुदानों का दुरुपयोग

राजनीति का चक्र भी स्वाध्याय और पठनाभिरुचि पर प्रभाव डालता है। सरकार विद्यालयों तथा पुस्तकालयों के लिए अनुदान देती है और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग कॉलेजों और विश्वविद्यालयों के लिए अनुदान देता है। परन्तु जिस तरह कुम्हार का साँचा खराब हो जाय तो उसमें गढ़ी जानेवाली हर चीज खराब होगी, उसी तरह हमारे राजनीतिक साँचे में ढलकर निकलनेवाली हर चीज त्रुटिपूर्ण हो जाती है। पुस्तकालयाध्यक्ष हों या प्रधानाध्यापक, पुस्तक-चयन-समिति के सदस्य हों या शिक्षा-विभाग के अधिकारी; सभी किसी-न-किसी रूप में इस साँचे से प्रभावित हैं। इसी कारण अधिकतर अच्छी पुस्तकें पुस्तकालयों तक नहीं पहुँच पातीं।

देखने में आया है कि अनुदान की रकम से, अधिक कमीशनवाली रद्दी पुस्तकें खरीद ली जाती हैं। कहीं-कहीं ऐसा भी देखने में आता है कि पुस्तकें खरीदी ही नहीं जातीं और नकली बिल सबमिट हो जाते हैं, जिन्हें सरकारी लेखा-जोखा के समय दिखा दिया जाता है। ग्रामों में प्राइमरी कक्षा तक पुस्तकालयों के खोले जाने की व्यवस्था की गई है, परन्तु अध्यापक बच्चों को पुस्तकें पढ़ने के लिए नहीं देते। यह दुराग्रह और

अव्यवस्था प्रकाशन-क्षेत्र को रोगग्रस्त बना रहा है। खरीद और विक्री की एजेन्सियों में किसी तरह का समन्वय इससे मुक्ति का उपाय हो सकता है।

सरकारी अनुदान-द्वारा पुस्तकों की खरीद करनेवाली चयन-समितियों में भाई-भतीजावाद का प्रायः बोलबाला है। इसलिये अच्छी पुस्तकों का चयन कम हो पाता है। सरकारी खरीद की लालच में रातों-रात कल्पित प्रकाशक पैदा हो जाते हैं। आप किसी अफसर के रिश्तेदार हैं तो बस एक फर्जी नाम रख कर कम्पनी खोल लीजिए, सिफारिश के जोर पर आपकी पुस्तकें मनमाने मूल्य पर बिक जायेगी।

सरकार की ओर से राज्य तथा केन्द्र-स्तर पर प्रकाशन विभाग खोला गया है। कुछ ने बहुत ही स्तुत्य कार्य भी किए हैं। उनके चमत्कारी प्रकाशन भी सामने आये है। अनेक पुस्तकें प्रकाशन की सूझ-बूझ की परिचायक हैं। परन्तु प्रकाशक संघ और पुस्तक-विक्रेताओं के सहयोग के बिना ये प्रकाशन गोदामों में सड़ जाते हैं, पाठकों तक पहुँच नहीं पाते। खराबी मूल में ही है। सरकार रुपए लगा सकती है, लेकिन व्यवसायी का रूप धारण किए बगैर व्यवसाय नहीं चला सकती।

पाठ्य-पुस्तकों का राष्ट्रीयकरण

राजनीतिक चक्र का प्रभाव पाठ्य-पुस्तकों का राष्ट्रीयकरण भी है। यदि कुछ प्रकाशक अच्छी पाठ्य-पुस्तकें प्रकाशित नहीं कर सके तो उसका बहाना लेकर राष्ट्रीयकरण करना और अच्छे प्रकाशनों को समाप्त करना अनुचित नहीं तो और क्या है? अधिकांश राज्य सरकारें राष्ट्रीयकरण के कार्य में असफल रही हैं। कहीं-कहीं तो उनका कार्य सामान्य प्रकाशकों से भी बदतर है। राष्ट्रीयकरण से विचार-स्वातंत्र्य तो खतम किया गया ही है, इसके अलावा इस व्यवसाय में लगे लाखों आदमियों की रोटी-रोजी भी छीन ली गयी।

सरकार को पाठ्य-पुस्तकों का राष्ट्रीयकरण रोकना चाहिए, जिस तरह से हर जनतान्त्रिक देश में पाठ्यक्रम का निर्धारण दल विशेष की सरकार और उसकी मशीनरी द्वारा न होकर स्वतन्त्र शिक्षाविदों की समिति-द्वारा होता है, उसी तरह हमारे देश में भी पुस्तकों के लेखन-प्रकाशन को भी उन्मुक्त रखना चाहिए।

टेण्डर-प्रणाली

टेण्डर प्रणाली बन्द करने के लिए बहुत लिखा-पढ़ी की गयी। यों हमारे महामान्य नेता नेहरूजी इस बात के विरुद्ध थे कि पुस्तकों की टेण्डर-प्रणाली जारी रहे। इसके लिए कुछ मन्त्रालयों में आपस में पत्राचार भी हुआ, किन्तु यह दूषित प्रणाली आज भी जारी है। यदि इसको खत्म न किया गया तो साहित्य की जगह इस देश में कूड़ा ही बिकेगा और इस प्रणाली के शाप से पठनाभिरुचि को क्षति पहुँचेगी।

साहित्य-स्त्रष्टा और साहित्य

अन्तिम प्रश्न है यह है कि क्या सशक्त साहित्य का सृजन हो रहा है? कहा जा सकता है कि सरस्वती के उपासक-वर्ग ने सदैव अपनी भूमिका का उचित रूप से निर्वाह

किया है। प्राचीन-काल से लेकर आज तक का इतिहास इस बात का साक्षी है कि लेखक आर्थिक दृष्टि से समृद्ध न रहते हुए भी सरस्वती की अर्चना बराबर करता रहा है। पहले से अन्तर सिर्फ यही है कि सामन्त युग में किसी रचना पर प्रसन्न होकर राजे-महाराजे धन दिया करते थे और आज के युग में प्रकाशक के माध्यम से उसे अर्थलाभ होता है। सरकारें भी कृतियों को पुरस्कृत कर लेखकों को प्रोत्साहित करती हैं। हिन्दी लेखकों ने सभी दिशाओं में अभूतपूर्व कार्य किया है।

हिन्दी की रचनाओं के विषय में कुछ भ्रम फैलाया जा रहा है। उदाहरण के तौर पर कहा जाता है कि हिन्दी में प्रेमचन्द के बाद कोई सफल उपन्यासकार नहीं हुआ, यह उचित नहीं है। साहित्य का मूल्यांकन समय और परिस्थितियों से आज प्रभावित हो गया है। इसके अतिरिक्त आलोचना प्रतिभाओं के उन्नयन-मार्ग को अवरुद्ध करती है। कलम के धनी नये लेखक आज भी हमारे बीच हैं। प्रकाशकों को इन्हें परखना चाहिए, क्योंकि इन्हीं की कलम से पाठकों को नये युग का बोध होगा। नये लेखक नये-नये प्रयोग करते रहते हैं और उन्हें प्रकाश में लाने का कार्य प्रकाशकों को ही करना होगा। हाँ, ऐसे लेखकों की उपेक्षा भी अवश्य होनी चाहिए, जो समाज के वातावरण को दूषित करने की चेष्टा करते हैं और युवकों को गुमराह करनेवाला साहित्य लिखते हैं। ऐसे व्यक्तियों की निन्दा की जानी चाहिए जो अपने लेखन से वर्ग-भेद की सृष्टि करते हैं, देश की भावनात्मक एकता को ठेस पहुँचाते हैं और राष्ट्रीयता के प्रति जहर उगलते हैं। वस्तुतः इस तरह के लेखकों को रचनाकार कहा ही नहीं जा सकता।

रिक्तता और विदेशी प्रकाशक

यह समीक्षा इस निष्कर्ष पर पहुँचती है कि प्रकाशन-क्षेत्र में रिक्तता है। सम्भवतः इसी ने हमारे देश में बड़ी-बड़ी विदेशी प्रकाशन संस्थाओं को पैर पसारने का अवसर दिया है। यह स्थिति आर्थिक अभिसंधि के रूप में देखी जानी चाहिए, जो एक ओर एकाधिकार शोषणात्मक व्यवस्था की जड़ें गहरी करेगी। तो दूसरी ओर भारतीय समाज और जीवन के मूल्यों की आधार-शिला पर साहित्य के प्रणयन का प्रवाह अवरुद्ध करेगी। यह स्थिति भारतीय प्रकाशन व्यवसाय को जहाँ पंगु बनायेगी वही परमुखापेक्षी तत्वों के दलाल इस क्षेत्र में प्रतिगामिता को प्रश्रय देगें। राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक और व्यावसायिक दृष्टियों से प्रकाशन क्षेत्र में विदेशी प्रतिष्ठानों का प्रवेश एक चुनौती है, जिसका सामना समुचित रूप से करने के लिए कटिबद्ध हुए बगैर हम अपने प्रकाशन-क्षेत्र के अभ्युदय की कल्पना नहीं कर सकते।

हिन्दी पुस्तक-विक्रय-केन्द्र

नयी हिन्दी पुस्तकों को देश में उपलब्ध कराने के लिए प्रकाशक संघ ने देश के प्रमुख नगरों में हिन्दी पुस्तक-विक्रय-केन्द्रों की स्थापना करने की योजना इधर बनायी है। इसके द्वारा हिन्दी में प्रकाशित नयी पुस्तकों की प्रदर्शनियाँ इन केन्द्रों पर प्रतिमास हुआ करेंगी और पाठक सहज ही मनपसन्द पुस्तकें वहाँ से खरीद सकेंगे। इन्हीं केन्द्रों के द्वारा पठनाभिरुचि का सर्वेक्षण भी किया जायगा।

ग्राम-पुस्तक-प्रसार-अभियान

यूनेस्को के सहयोग से ग्रामों में पुस्तक-प्रसार-अभियान संघ ने प्रारम्भ किया है। इस कार्यक्रम के दो भाग हैं। पहला कार्यक्रम है ग्राम पुस्तकालयों की व्यवस्था तथा उसके स्थापना की रूपरेखा बनाना और ग्राम पुस्तकालयों के लिए पुस्तक-सूची तैयार करना। यह कार्यक्रम पूरा हो चुका है। दूसरा कार्यक्रम भी शुरू हो रहा है, वह है ग्रामों में पठनाभिरुचि जगाने के लिए तीस पुस्तक बिक्री केन्द्रों की स्थापना करना। प्रकाशकों को तथा इस व्यवसाय से सम्बन्धित अन्य संस्थाओं को इस कार्यक्रम में सहयोग देना चाहिए। यदि यह कार्यक्रम सफल हुआ, तो पुस्तकों की बिक्री का नया क्षेत्र बनेगा।

प्रकाशक क्या करें?

पाठ्य-पुस्तकों के प्रकाशक अपनी आय का कुछ अंश सत्साहित्य के प्रकाशन में लगायें। उन्हें विश्वविद्यालय-स्तर की हिन्दी की तकनीकी तथा विज्ञान की पुस्तकों के प्रकाशन में विशेष रूप से दिलचस्पी लेनी चाहिए। पुस्तक-विक्रय को प्रोत्साहन देने के लिए प्रकाशकों को निश्चय कर लेना चाहिए कि जहाँ पुस्तक-विक्रेता हैं वहाँ वे उन्हीं के माध्यम से ग्राहकों तथा पुस्तकालयों को पुस्तकें बेचेंगे। जहाँ अच्छे पुस्तक-विक्रेता न हों वहाँ पाठ्य-पुस्तक विक्रेताओं को इस कार्य के लिये प्रोत्साहित किया जाना चाहिए कि वे साहित्यिक पुस्तकों की विक्री में दिलचस्पी लें। कमीशन तथा प्रचार साहित्य की सम्पूर्ण सुविधा प्रकाशक इन विक्रेताओं को दें। यदि साहित्यिक पुस्तक-विक्रय लाभप्रद हुआ तो इन विक्रेताओं के माध्यम से पाठकों में सहज ही साहित्य का प्रचार हो सकता है। संघ को कमीशन की दरों के लिए नेट-बुक समझौते को लागू करने का प्रयत्न भी करना चाहिए। क्षेत्रीय तथा विदेशी भाषाओं के अनुवाद भी हिन्दी में उपलब्ध होने चाहिए। इसमें सन्देह नहीं कि हिन्दी में अनुवादों के प्रकाशन में उल्लेखनीय प्रगति हुई है। परन्तु अन्य भाषाओं में प्रकाशित होनेवाली नित्य नयी कृतियों का हिन्दी अनुवाद साथ-साथ उपलब्ध होना राष्ट्रभाषा के गौरव के अनुकूल होगा।

सरकारी सहयोग

पुस्तकों के सुमुद्रण के लिए हिन्दी के प्रकाशकों के पास आधुनिक छपाई मशीनों का अभाव है। बम्बई, कलकत्ता, मद्रास आदि बड़े शहरों में छपाई मशीनों के बेशुमार लाइसेन्स दिए जा चुके हैं। व्यापार मंत्रालय को हिन्दी प्रकाशकों को भी आधुनिक छपाई मशीनों के आयात के लिए संघ के माध्यम से कुछ लाइसेन्स प्रतिवर्ष देना चाहिए।

डाक की दरें पुस्तकों के लिए कम होनी चाहिए। इससे पाठक मनोवांछित पुस्तकें डाक द्वारा मँगा सकेंगे। समाचार-पत्रों के लिए जो डाक दरें हैं, वही यदि पुस्तकों के लिए भी लागू कर दी जायें तो इस दिशा में काफी सुधार हो सकता है। एक सुझाव यह है कि जैसे कुछ देशों में पुस्तकों के पैकेटों पर रजिस्ट्रेशन चार्ज नहीं लिया जाता, परन्तु उन्हें रजिस्टर्ड पोस्ट मानकर भेजा जाता है। यही प्रथा भारत में भी लागू होनी चाहिए।

जिस तरह रेलवे-स्टेशनों पर पुस्तकों की दूकानें हैं, उसी प्रकार बड़े-बड़े डाक-घरों में भी पुस्तकों की एक आलमारीनुमा दुकान संघ के माध्यम से सरकार द्वारा खोल

दिया जाय तो पुस्तकों के प्रचार को बहुत बड़ा प्रोत्साहन मिलेगा। इस तरह के डाकघर स्टालों में चुनी हुई पुस्तकें रखी जा सकती हैं। इनका चुनाव एक समिति-द्वारा होना चाहिए जिसमें प्रकाशकों और लेखकों के प्रतिनिधि हों। रेलवे बुक स्टालों पर हिन्दी पुस्तकों की सबसे अधिक बिक्री है परन्तु खेद का विषय है कि रेल मंत्रालय ने संघ के प्रतिनिधि को किसी भी पुस्तक-चयन-समिति में नहीं रखा है। इस ओर अविलम्ब ध्यान दिया जाना चाहिए।

पुस्तकों से सम्बन्धित जहाँ विशेषरूप से हिन्दी का प्रश्न आता है, ऐसी सभी समितियों एवं सरकारी संस्थाओं में अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ को प्रतिनिधित्व मिलना चाहिए। शिक्षा मंत्रालय 'राष्ट्रीय पुस्तक विकास बोर्ड' का गठन करने जा रहा है। संघ को इसमें उचित स्थान मिले इस बात की ओर हम केन्द्रीय शिक्षामंत्री का ध्यान आकृष्ट करते हैं।

शिक्षा-विभाग तथा विश्वविद्यालयों को पुस्तक चयन में संघ को प्रमुखता देनी चाहिए और पुस्तकों से सम्बन्धित सूचनाएँ संघ को भी उनके पास भेजनी चाहिए। इससे शिक्षा के क्षेत्र में दोनों पक्षों का परस्पर हित होगा।

अन्तर्राष्ट्रीय कॉपी-राइट के सन्दर्भ में 'बर्न-कन्वेशन' का प्रश्न हमारे सामने है। पिछले दिनों दिल्ली में पूर्व एशियायी देशों की एक विचारगोष्ठी हुई थी। उसमें यह माँग की गयी थी कि जून में स्टाकहोम में होनेवाली अन्तर्राष्ट्रीय कॉपीराइट कान्फ्रेन्स में विशेष संरक्षण की माँग की जाय, जिससे विकासशील देशों को सुविधाएँ मिल सकें।

विगत वर्ष टोकियो में एशिया के प्रकाशक प्रतिनिधियों की एक बैठक यूनेस्को की ओर से बुलायी गयी थी। उसमें भारत की ओर से यह सुझाव रखा गया था कि भारत में प्रकाशन-व्यवसाय के प्रशिक्षण के लिए यूनस्को द्वारा एक संस्थान की स्थापना की जाय। हमारी सरकार को भी इस दिशा में प्रयत्नशील होना चाहिए।

अन्त में प्रकाशकों से मैं अपील करता हूँ कि वे स्वदेशी की भावना को अपने हृदय में स्थान दें। अपने को राष्ट्रीय वातावरण के अनुकूल बनाएँ और पाठकों से सीधा सम्पर्क स्थापित करने का माध्यम खोजें। सरकारी अनुदानों पर आश्रित होना उचित नहीं है। वास्तव में नए पाठकों की खोज होनी चाहिए। संघ को सबल बनाना चाहिए और उसी के माध्यम से पठनाभिरुचि और स्वाध्याय को जागृत करने का आन्दोलन जोरों से किया जा सकता है।

महती कृपा और सद्भावना के लिए आप सबके प्रति मैं आभार प्रकट करता हूँ और आशा करता हूँ कि सामूहिक रूप से विचार-विनिमय का हमारा प्रयास उत्तरोत्तर गतिशील और सशक्त होगा।

विशेष—अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ के पूना अधिवेशन के अध्यक्ष पद से श्री कृष्णचन्द्र बेरी द्वारा दिया गया महत्त्वपूर्ण भाषण।

हिन्दी पुस्तकों के लेखन, प्रकाशन और वितरण की समस्या

प्रस्ताव एवं सुझाव

१. हम नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया को हिन्दी पुस्तकों के लेखन, प्रकाशन और वितरण की समस्याओं पर आयोजित इस विचार-गोष्ठी तथा राष्ट्रीय हिन्दी पुस्तक प्रदर्शनी के लिए धन्यवाद देना अपना परम कर्त्तव्य समझते हैं, जिसके कारण हिन्दी प्रकाशन को नई दिशा एवं नए सुझाव प्राप्त हुए हैं।

२. यदि नेशनल बुक ट्रस्ट समय-समय पर हिन्दी पुस्तक प्रकाशन और वितरण के लिए कम से कम वर्ष में एक बार ऐसी ही गोष्ठी का आयोजन करे तो इस सम्बन्ध में अधिक सफलताएँ प्राप्त हो सकती हैं। आगामी गोष्ठी के लिए दो नए विषय यह विचार-गोष्ठी प्रस्तुत करती है:

(अ) हिन्दी पुस्तकों की समीक्षा एवं परिचय।

(आ) विश्वविद्यालय स्तर की हिन्दी पाठ्य-पुस्तकों का प्रकाशन।

३. विचार-गोष्ठी नेशनल बुक ट्रस्ट का ध्यान पुस्तकों की वितरण-व्यवस्था, उनकी खरीद और चयन में जो बाधाएँ इस समय उपस्थित हो रही हैं, उनकी तरफ आकर्षित करती हैं। नेशनल बुक ट्रस्ट हिन्दी प्रकाशक संघ, केन्द्रीय सरकार तथा अन्य सम्बन्धित अधिकारियों के सहयोग से इस प्रकार का सतत प्रयास करे कि हिन्दी पुस्तकों का वितरण उत्तम ढंग से हो।

४. विचार-गोष्ठी नेशनल बुक ट्रस्ट का ध्यान इस ओर आकर्षित करती है कि वह केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय एवं विभिन्न राज्यों के शिक्षा मंत्रालयों से सम्बन्ध स्थापित करके प्रयास करे कि पाठ्य-पुस्तकों का राष्ट्रीयकरण न हो।

५. विचार-गोष्ठी नेशनल बुक ट्रस्ट का ध्यान इस ओर आकर्षित करती है कि वह विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग तथा हिन्दी प्रकाशक संघ के द्वारा ऐसे सफल प्रयास करे कि विश्वविद्यालय स्तर की हिन्दी पुस्तकें शीघ्रातिशीघ्र प्रकाशित हों और हिन्दी के माध्यम से शिक्षा के प्रसार में जो कठिनाइयाँ हैं वे दूर हों।

६. विचार-गोष्ठी नेशनल बुक ट्रस्ट का ध्यान इस ओर आकर्षित करती है कि अखिल भारतीय सम्पादक सम्मेलन से इस प्रकार के सहयोग की माँग करे कि साप्ताहिक एवं मासिक पत्रों में पुस्तक समीक्षा को अधिकाधिक स्थान दिया जाय तथा पुस्तकों के विज्ञापन भी उसमें हों।

७. विचार-गोष्ठी नेशनल बुक ट्रस्ट से अनुरोध करती है कि इस व्यापार एवं उद्योग मंत्रालय से प्रकाशन व्यवसाय को उद्योग के रूप में मान्यता प्राप्त कराने का प्रयास करे।

८. विचार-गोष्ठी अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ का ध्यान इस ओर दिलाना चाहती है कि वह प्रकाशित साहित्य का व्यापक रूप में परिचयात्मक ग्रन्थ प्रकाशित करे और उसमें अधिकाधिक पुस्तकों का परिचय देने का प्रयास किया जाय।

९. विचार-गोष्ठी अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ का ध्यान इस ओर आकर्षित करती है कि वह नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय दिल्ली, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान आगरा, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना आदि एवं हिन्दीतर भाषा-भाषी क्षेत्रों की प्रतिनिधि हिन्दी संस्थाओं में एकरूपता लाने के लिए एक निश्चित वर्तनी का मानक बनाने का प्रयास करे जो सभी क्षेत्रों में मान्य हो।

१०. विचार-गोष्ठी अखिल भारतीय पुस्तकालय संघ का ध्यान इस ओर आकर्षित करती है कि वह प्रत्येक जिले में जिला पुस्तकालय संगठन को प्राथमिकता प्रदान कराये जिससे पुस्तकालय आन्दोलन को गति मिले और ज्ञान-विज्ञान का प्रसार हो।

११. विचार-गोष्ठी पुस्तकालय संघ एवं सेन्ट्रल रेफरेन्स लाइब्रेरी कलकत्ता का ध्यान इस ओर आकर्षित करती है कि रेफरेन्स लाइब्रेरी कलकत्ता को भेजी जानी-वाली पुस्तकें निःशुल्क डाक द्वारा (फ्री पोस्ट) भेजने की सुविधा हो और उनकी राष्ट्रीय ग्रन्थ सूची विलम्ब से प्रकाशित न हो।

१२. विचार-गोष्ठी अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ को सुझाव देती है कि सत्साहित्य के प्रकाशन और उसके प्रसार के लिए लेखकों तथा प्रकाशकों से सहयोग प्राप्त करने की दिशा में सामूहिक प्रयास करे। इस प्रकार प्रकाशकों और लेखकों की कठिनाइयाँ दूर की जा सकती हैं।

१३. विचार-गोष्ठी टेण्डर प्रणाली के द्वारा पुस्तकें खरीदने का घोर विरोध करती है और आशा करती है कि हिन्दी प्रकाशक संघ एवं पुस्तकालय संघ इस दिशा में परस्पर सहयोग करके टेण्डर की इस कुप्रथा को समाप्त कराने का प्रयास करेंगे।

१४. विचार-गोष्ठी पुस्तक प्रसार में डाक दर कम करने के लिए लेखकों, प्रकाशकों एवं पुस्तकालय संघों को सुझाव देती है कि उनका एक प्रतिनिधि मण्डल सम्बन्धित अधिकारियों से इस विषय में उचित माँग करे।

१५. विचार-गोष्ठी अखिल भारतीय पुस्तक समारोह एवं अन्य समारोहों के आयोजन में हिन्दी में रुचि रखनेवाली संस्थाओं के सहयोग के लिये सिफारिश करती है।

१६. विचार-गोष्ठी हिन्दी में पाठकों की रुचि के सम्बन्ध में व्यापक सर्वेक्षण कराने की सिफारिश करती है।

१७. विचार-गोष्ठी केन्द्र एवं हिन्दी भाषाभाषी राज्य सरकारों के शिक्षा-विभागों को सुझाव देती है कि वह अपने राज्य के दस-दस स्नातक एवं स्नातकोत्तर स्तर के विद्यार्थियों को दो या तीन वर्ष के लिए दक्षिण भारत की भाषाओं को सीखने तथा उनके साहित्य एवं संस्कृति से परिचय प्राप्त करने के लिए भेजें, जो वहाँ की संस्कृति एवं सभ्यता का अध्ययन करके भारतीय एकता में सहायक हों।

१८. विचार-गोष्ठी में अस्थायी समिति के गठन में सभी सदस्य होंगे और वे इसका संयोजन करेंगे। समिति गोष्ठी में भाग लेनेवाले प्रतिनिधियों की कार्य विधि की सूचना मँगाती रहे।

विचार-गोष्ठी की संक्षिप्त रिपोर्ट

'हिन्दी पुस्तकों के लेखन, प्रकाशन और वितरण की समस्याएँ' —इस विषय पर नेशनल बुक ट्रस्ट ने एक विचार-गोष्ठी का आयोजन किया जिसकी बैठकें लखनऊ के सूचना-भवन में बृहस्पतिवार २४ फरवरी से शनिवार २६ फरवरी, १९६६ तक हुई। गोष्ठी में हिन्दी लेखकों, प्रकाशकों, पुस्तक विक्रेताओं, मुद्रण-संस्थाओं तथा पुस्तकालयों के लगभग ३० प्रतिनिधियों ने सक्रिय भाग लिया। गोष्ठी के लिए जो प्रमुख सन्देश प्राप्त हुए उनमें एम० सी० छागला, शिक्षा मंत्री, भारत-सरकार तथा सेठ गोविन्ददास, संसद-सदस्य के नाम उल्लेखनीय हैं।

गोष्ठी का उद्घाटन करते हुए नेशनल बुक ट्रस्ट के अध्यक्ष डॉ० बालकृष्ण केसकर ने आशा प्रकट की कि गोष्ठी में व्यावहारिक पक्ष पर ध्यान दिया जायेगा ताकि विचारों को रचनात्मक रूप दिया जा सके। उन्होंने जनता के बीच हिन्दी पठन-पाठन की रुचि को और जागृत करने की आवश्यकता बताई, जिससे समाज के बीच से ही राष्ट्र-भाषा का पुष्ट और प्रगतिशील स्वरूप सहज रूप में प्रकट हो सके। नेशनल बुक ट्रस्ट के उद्देश्यों के सम्बन्ध में चर्चा करते हुए उन्होंने बताया कि ट्रस्ट का उद्देश्य किसी एक भाषा का प्रचार करना नहीं है, इसलिए यह अपेक्षा करना कि ट्रस्ट केवल हिन्दी का प्रचार करे, ठीक नहीं होगा। ट्रस्ट का उद्देश्य सभी भारतीय भाषाओं में सत्साहित्य का प्रचार करना है और हिन्दी में जैसे पुस्तक प्रदर्शनियों तथा विचार-गोष्ठियों का आयोजन किया गया है, उसी प्रकार आगे चलकर सभी भाषाओं में इस प्रकार का आयोजन ट्रस्ट करेगा।

गोष्ठी के संयोजक ने गोष्ठी के विचारणीय विषयों का परिचय देते हुए इस बात पर जोर दिया कि प्रत्येक बात के लिए सरकार का मुखापेक्षी होना ठीक नहीं। जो कुछ इस दिशा में प्रशासन की ओर से किया जाता है, उसकी आलोचना करना व्यर्थ है। जरूरत इस बात की है कि पुस्तक व्यवसाय में लगे सभी लोगों को अपने सामान्य हित के लिए स्वयं प्रयत्नशील होना चाहिए।

गोष्ठी की पहली बैठक का निदेशन भगवतीचरण वर्मा ने किया। 'हिन्दी लेखकों की समस्याएँ और उनका उत्तरदायित्व' —इस विषय पर अपना प्रबन्ध पढ़ते हुए उन्होंने इस बात पर बल दिया कि लेखकों, प्रकाशकों, वितरकों और पाठकों की समस्याएँ परस्पर सम्बद्ध हैं और उनका हल ढूँढने के लिए उन पर समग्र रूप से विचार करना

चाहिए, न कि अलग-अलग। लेखकों की समस्याओं पर विचार करते हुए अमृतलाल नागर ने प्रकाशकों द्वारा लेखकों के शोषण का प्रश्न भी उठाया, किन्तु अन्य वक्ताओं ने परस्पर आक्षेप के स्थान पर सहयोग की आवश्यकता पर अधिक जोर दिया।

दूसरी बैठक ओमप्रकाश की अनुपस्थिति में कृष्णचन्द्र बेरी के निदेशन में हुई। श्री ओमप्रकाश का 'हिन्दी प्रकाशन और प्रकाशक' विषय पर प्रेषित प्रबन्ध पढ़ा गया। अपने प्रबन्ध में ओमप्रकाश ने प्रकाशन क्षेत्र में सरकार के पदार्पण तथा अन्य प्रकाशकों के विषय में जो टीका-टिप्पणी की थी, उसे सभी वक्ताओं ने उचित नहीं ठहराया।

उनके प्रबन्ध में से जिस एक बात का समर्थन गोष्ठी में किया गया वह था टेण्डर प्रथा से पुस्तकें न खरीदी जाने की बात। एक अन्य महत्वपूर्ण प्रबन्ध जो इस गोष्ठी में पढ़ा गया वह था 'महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' के प्रतिनिधि चन्द्रशेखर शास्त्री का, जिसका विषय था—'अहिन्दी प्रदेश के हिन्दी प्रचार में हिन्दी प्रकाशकों का उत्तरदायित्व'। इसमें हिन्दीतर क्षेत्रों में हिन्दी प्रकाशकों तथा अन्य संस्थाओं द्वारा अधिकाधिक कार्य करने पर जोर दिया गया।

इस बैठक में डॉ० ओमप्रकाश शर्मा ने केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, वैज्ञानिक व तकनीकी शब्दावली आयोग की विभिन्न योजनाओं का परिचय दिया। लखनऊ विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष डॉ० दीनदयाल गुप्त ने हिन्दी में उच्च-स्तर की पाठ्य-पुस्तकों के निर्माण में लेखकों तथा प्रकाशकों के सहयोग और प्रयत्न की आवश्यकता पर बल दिया।

अखिल भारतीय हिन्दी पुस्तकालय संघ के अध्यक्ष प्रभुनारायण गौड़ ने एक ऐसी संस्था के निर्माण की आवश्यकता पर बल दिया जो सरकारी तथा गैर-सरकारी संस्थाओं, लेखकों, प्रकाशकों तथा वितरकों की नीति में समन्वय स्थापित कर सके।

तीसरी बैठक का निर्देशन हिन्द पॉकेट बुक्स के व्यवस्थापक दीनानाथ मल्होत्रा ने किया। अपने प्रबन्ध में उन्होंने हिन्दी पुस्तकों के प्रचार और वितरण की विभिन्न समस्याओं पर प्रकाश डाला और आशा व्यक्त की कि यदि सुचारु रूप से कार्य हो तो हिन्दी पुस्तकों के संस्करण भी एक लाख से ऊपर निकाले जा सकते हैं। इस सम्बन्ध में उन्होंने अपील की कि नेशनल बुक ट्रस्ट प्रकाशन क्षेत्र के बजाय पुस्तक वितरण के क्षेत्र में अधिक क्रियाशील हो, जिस प्रकार इग्लैण्ड में नेशनल बुक लीग कार्य कर रही है।

गोष्ठी की चौथी बैठक अखिल भारतीय पुस्तकालय संघ के अध्यक्ष प्रभुनारायण गौड़ के निदेशन में हुई। हिन्दी पुस्तकें और पाठकों की रुचि पर प्रबन्ध पढ़ते हुए गौड़ जी ने इस विषय पर व्यापक सर्वेक्षण केवल उन्हीं पाठकों का नहीं किया जो पुस्तकालयों में पढ़ने आते हैं, बल्कि उन कारणों का भी पता लगाने का प्रयास किया जो लोग हिन्दी पुस्तकें किसी कारण नहीं पढ़ते।

अन्तिम गोष्ठी में विभिन्न बैठकों के निष्कर्ष स्वरूप जो प्रस्ताव व सुझाव प्राप्त हुए उन पर चर्चा हुई।

गोष्ठी के प्रस्तावों और सुझावों को कार्यान्वित करने के लिए एक अस्थाई समिति बनाई गई, जिसमें संयोजक तथा चारों बैठकों के निदेशकों को सदस्य के रूप में रखा गया।

हिन्दी प्रकाशन के नये आयाम

विचार व्यक्तित्व का प्रतिफलन है और साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब। गतिशील समाज के विचारों की अभिव्यक्ति का आधुनिक माध्यम प्रकाशन विधि है। जहाँ पहले हिन्दी प्रकाशन में संस्कृत की उत्कृष्ट रचनाओं के हिन्दी रूपान्तरण में, काल्पनिक इतिहास, अर्द्ध-ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर ऐयारी, तिलस्मी, सामाजिक उपन्यास, विदेशी भाषाओं एवं क्षेत्रीय भाषाओं के अनुवादों की अपनी एक सीमा थी, वहीं आज प्रकाशन के क्षेत्र में विकासमान हिन्दी प्रकाशन का एक विशिष्ट स्थान बन चुका है। वह नये आयामों से सज्जित हो रहा है।

तृतीय विश्व पुस्तक मेले[१] में हिन्दी मण्डप की स्थापना एक कठिन और उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य-प्रक्रिया रही है। मंडप कार्यक्रम में प्रकाशकों, लेखकों, पत्रकारों, शिक्षाविदों और अधिकारियों का संयुक्त रूप से सहयोग हिन्दी प्रकाशन के उज्ज्वल भविष्य का परिचायक रहा। मण्डप उन आलोचनाओं का विनम्र उत्तर था, जिनके द्वारा प्रचारित किया जाता रहा है कि हिन्दी एक बोली मात्र है। साहित्यिक प्रकाशन की दृष्टि से यह हीन और वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दों की शक्ति के वहन में एकदम असमर्थ हैं। राजनीतिक मंच से एक विशिष्ट पत्रकार ने अभी कुछ दिन पहले कहा था कि हिन्दी में 'मास सरकुलेशन' वाली मात्र दो पुस्तकें हैं—एक 'रामचरितमानस' और दूसरा 'हिन्दी टाइमटेबुल'। ऐसे आलोचक हिन्दी मण्डप में अद्यतन प्रकाशनों का एकत्र संग्रह देखकर अपना भ्रम दूर कर सकते थे। यहीं सच्चाई की समीक्षा हो सकती थी कि हिन्दी वस्तुतः क्या है और कतिपय वर्षों में उसने कितनी और कैसी प्रगति की है ?

हिन्दी परिदृश्य का सिंहावलोकन

राष्ट्रभाषा के उत्तरदायित्व के निर्वाह में हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाएँ सक्षम हैं—किन्तु देश में सबसे अधिक लोगों द्वारा बोली और समझी जाने के कारण हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा हो सकती है, यह निर्विवाद है। हिन्दी की विकास की दिशा को प्रतिबिम्बित करने वाले विपुल प्रकाशन आज इस बात के प्रमाण हैं कि हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा और राजभाषा तो क्या, विश्व भाषा के गौरवपूर्ण पद की अधिकारिणी होने में समर्थ हो चुकी है। हमारे प्रधानमंत्री मोरारजी भाई[२] का कहना है कि किसी भी देश की अपनी राष्ट्रभाषा परमावश्यक है, यह हिन्दी की तरफदारी नहीं है, वरन् देश-हित में व्यक्त एक अनिवार्य उद्बोधन है।

---

१. तृतीय विश्व पुस्तक मेले (१९७८) में हिन्दी मण्डप के आयोजन के उपलक्ष्य में पठित प्रबंध।

२. तत्कालीन प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई थे। उन्हीं के प्रधानमंत्रित्व काल में १९७८ में तृतीय विश्व पुस्तक मेला आयोजित हुआ था।

यहाँ हिन्दी के परिदृश्य का थोड़ा सिंहावलोकन अप्रासंगिक नहीं होगा। रंगमंच, समसामयिक साहित्य की हिन्दी में अच्छी परख है। १९४७ के पूर्व हिन्दी साहित्य में प्रहसन, देश-भक्ति, धार्मिक भावनाओं और सांस्कृतिक मान्यताओं को स्वर देनेवाले नाटकों पर अधिक बल दिया जाता था। आदर्शोन्मुख यथार्थ से समन्वित ऐसे नाटक भी विशेष रूप से पसन्द किये जाते थे, जिनमें मुख्यतः मदिरापान, वेश्यागमन आदि के विरोध में कथानक होते थे। नाटकों के क्षेत्र में हमारे पुराने लेखकों ने भाषागत नये प्रयोग किये थे। आगाहश्र कश्मीरी ने नागरी लिपि और उर्दूभाषा में 'ख्वाबेहस्ती' 'रुस्तम सोहराब' और हिन्दी में 'भीष्म प्रतिज्ञा' लिखी थी। आगाहश्र की 'तुर्की हूर' के मुकाबले में उर्दू भाषा में पं० राधेश्याम कथावाचक ने 'मशरिक की हूर' नाटक लिखा था और उनका 'वीर अभिमन्यु' नाटक आज भी बेजोड़ है। द्विजेन्द्रलाल राय के बंगला नाटकों का रूपनारायण पाण्डेय द्वारा अनुवाद लोकप्रिय था। १८६० में छपे ऐतिहासिक 'नील दर्पण' नाटक का हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित हुआ। इस क्षेत्र में भारतेन्दु, प्रसाद और लक्ष्मीनारायण मिश्र की कृतियाँ हमारी साहित्यिक निधि हैं। जगदीशचन्द्र माथुर का 'कोणार्क' और लक्ष्मीनारायण लाल का 'कर्फ्यू' नाटक नये प्रयोग हैं। मोहन राकेश ने स्वच्छन्दतावादी नाटकों को मोड़ देने के साथ ही आज के जीवन से नाटक को जोड़ने का प्रयास किया। एकांकी के क्षेत्र में हिन्दी ने नेतृत्व किया है। ज्ञानदेव अग्निहोत्री का 'शुतुर्मुग' एकांकी उल्लेख्य है। बादल सरकार की बंगला से अनूदित नाट्यकृतियों की भी अच्छी खासी चर्चा है। रंगमंच कला पर बलवन्त गार्गी और राजकुमार द्वारा लिखित-पुस्तकों ने नाटक के तकनीकी पक्ष को पुष्ट किया है। वैसे इस विषय पर १९२५ में ही चन्द्रराज भण्डारी ने हिन्दी में 'नाट्य कला दर्शन' लिखा था।

हिन्दी कविता में नये प्रयोग

प्रारम्भ में काव्य के क्षेत्र में स्वतन्त्रता आन्दोलन सम्बन्धी तथा सामयिक चेतना वाली रचनाओं के अतिरिक्त 'शेर-ओ-शायरी' तथा मध्यकालीन कवियों की रचनाओं की जहाँ प्रधानता थी, वहीं आधुनिक युग के कवियों में मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पन्त, निराला, महादेवी वर्मा, माखनलाल चतुर्वेदी, सोहनलाल द्विवेदी, बच्चन, दिनकर, नरेन्द्र शर्मा, सुभद्राकुमारी चौहान, नीरज, श्यामनारायण पाण्डेय आदि घर-घर में छा गये हैं। फिर भी हिन्दीभाषी लोकमानस में हिन्दी के कवि वह स्थान नहीं बना सके, जो स्थान रविबाबू और नजरुल इस्लाम ने बंगाली जनमानस में बनाया। इसका मुख्य कारण है कि इन दोनों कवियों की रचनाएँ संगीत के सुर-ताल में बँधकर प्रचार माध्यमों के द्वारा घर-घर पहुँचाई गईं। ऐसा ही कुछ प्रयास यदि प्रसाद, निराला, पन्त और महादेवी वर्मा के काव्य के प्रति होता तो कोई कारण नहीं कि इनकी कविताएँ और अधिक लोकप्रिय न होतीं। बच्चन की 'मधुशाला' का 'मन्ना डे' द्वारा रिकार्ड किया जाना इस दिशा में पहला कदम है और इसी कारण मधुशाला की नये सिरे से माँग बढ़ गयी है। सूर, तुलसी, मीरा और कबीर की कृतियाँ पहले से ही समादृत हैं, परन्तु आकाशवाणी तथा रिकार्डों के माध्यम से ये विशेष रूप से जनप्रिय हुई हैं।

यह सत्य है कि आधुनिक हिन्दी कविता में विविध प्रयोग चल रहे हैं जिनमें कविता संगीत की लयवत्ता छोड़कर भावों की लयात्मकता की ओर बढ़ी है। इस क्षेत्र में अज्ञेय, मुक्तिबोध, धर्मवीर भारती, गिरजाकुमार माथुर, धूमिल, ठाकुर प्रसाद सिंह, केदारनाथ सिंह, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना आदि ने अच्छे प्रयोग किये हैं।

वैज्ञानिक बाल साहित्य का प्रभाव

पहले पढ़ाई जानेवाली पाठ्य-पुस्तकें ही बाल साहित्य मानी जाती थीं और बाल-साहित्य नगण्य-सा था। कथा सरितसागर, पंचतंत्र की कहानियाँ ही बाल साहित्य के नाम पर हिन्दी में आरम्भ में आईं। इनमें बालमन में मानवीय मूल्यों के विकास के प्रति आग्रह अधिक था, किन्तु वैज्ञानिक उपलब्धियों की जानकारी देने का हिन्दी के इस आरम्भिक बाल-साहित्य में अधिक प्रयत्न नहीं था। कुछ महापुरुषों की जीवनी की सिरीज अवश्य प्रकाशित हुई थी। इस क्षेत्र में हिन्दी के कुछ प्रकाशकों तथा चिल्ड्रेन बुक ट्रस्ट ने निश्चय ही उल्लेखनीय कार्य किया है, परन्तु जहाँ करोड़ों की संख्या में बच्चे पढ़-लिख रहे हों, वहाँ साहसिक, ऐतिहासिक, वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक, सुमुद्रित कम मूल्य के बाल-साहित्य का अभी बहुत अभाव है। आज का बाल-पाठक अच्छे कागज, सुमुद्रण और नयनाभिराम गेट-अप के प्रति जागरूक है। बाल-साहित्य के नाम पर बाल पाकेट बुक्स में कुछ अवांछित साहित्य आ गया है। इस प्रवृत्ति की निन्दा करते हुए बाल-साहित्य के एक प्रमुख प्रकाशक ने चिन्ता व्यक्त की है। इसलिये बाल-साहित्य के प्रकाशन में सतर्कता की आवश्यकता है अन्यथा अभिभावकों का विश्वास ऐसी पुस्तकों से उठ जायेगा।

बालक कल के साहित्य सर्जक, पाठक और समाज के नियन्ता हैं। वर्तमान की महत्ता को स्वर देनेवाले और भविष्य के उज्ज्वल सपनों को साकार बनानेवाले बाल-साहित्य के सृजन की दिशा में यदि प्रकाशक कुछ साहसपूर्ण कदम उठा सकें तो पूरे प्रकाशन व्यवसाय का भविष्य उज्ज्वल हो सकता है। विदेशी अनुदान से प्रकाशित और विज्ञापन कम्पनियों द्वारा प्रचारित बाल-साहित्य हिन्दी प्रकाशकों के समक्ष एक चुनौती है। बच्चों की कामिक सिरीज की भी आज माँग है, परन्तु लगता है कि यह काम केवल अखबारवालों के ही हिस्से में आ गया है।

संस्मरण और जीवनी साहित्य

संस्मरण के क्षेत्र में राहुल का अपना स्थान तो है ही, परन्तु रायकृष्णदास जी द्वारा भारतेन्दु और प्रसाद पर लिखे संस्मरण बड़े आदर से पढ़े जा रहे हैं। गाँधी जी और बाद में नेहरू जी की आत्मकथाओं के हिन्दी रूपान्तर और राजेन्द्र बाबू की आत्मकथा ने आत्मकथा साहित्य की दृष्टि से हिन्दी को समृद्ध किया है। इस क्षेत्र में स्वामी श्रद्धानन्द की 'कल्याणमार्ग का पथिक' भी उल्लेख्य है। इसी क्रम में 'बच्चन' और 'उग्र' की आत्मकथाएँ भी हिन्दी में आईं। गाँधी जी का तो पूरा वाङ्मय हिन्दी में १०० खण्डों में प्रकाशित हुआ है।

हिन्दी में आधुनिक जीवनी साहित्य बहुत लिखा गया है। विष्णु प्रभाकर का शरद् पर लिखा 'अवारा मसीहा', अमृतराय का प्रेमचन्द पर 'कलम का सिपाही', शान्ति जोशी

का 'सुमित्रानंदन पन्त', रामविलास शर्मा का 'निराला की साहित्य साधना', महावीर प्रसाद द्विवेदी तथा अन्यों द्वारा लिखी शोधपूर्ण जीवनियाँ इस दिशा में महत्त्वपूर्ण उपलब्धि हैं।

इस क्षेत्र में अपनी औपन्यासिक कला का सफल प्रदर्शन करते हुए रांगेय राघव ने कबीर, तुलसी, भारतेन्दु आदि की रोचक जीवन कथायें हिन्दी साहित्य को प्रदान की हैं।

निबन्ध एवं सर्वहारा साहित्य

स्वतन्त्रतापूर्व निबन्ध॰ साहित्य में जहाँ भारतेन्दु, प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, महावीरप्रसाद द्विवेदी, सरदार पूर्ण सिंह, पं० माधवप्रसाद मिश्र, बालमुकुन्द गुप्त, रामचन्द्र शुक्ल, डा० श्यामसुन्दरदास, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी आदि ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी, वहीं आज हजारीप्रसाद द्विवेदी, डा० नगेन्द्र, नन्ददुलारे वाजपेयी, गुलाबराय, नलिन विलोचन शर्मा, भगवतशरण उपाध्याय, विद्यानिवास मिश्र, कुबेरनाथ राय, नामवर सिंह, विवेकी राय, विष्णुकान्त शास्त्री तथा विश्वनाथ प्रसाद प्रभृति निबन्धकार अपना विशेष स्थान बना चुके हैं। आलोचना और शोध के क्षेत्र में हिन्दी प्रकाशनों ने अब नये आयाम उद्घाटित किए हैं।

सर्वहारा वर्ग की समस्याओं पर निराला, यशपाल, गजानन माधव मुक्तिबोध, नागार्जुन, अमरकान्त आदि ने काफी अच्छा लिखा है। जाति-पाँति तोड़ो विषयक और समाज सुधारसम्बन्धी अन्य साहित्य की भी हमारे यहाँ कमी नहीं है। जाति-पाँति तोड़ो आन्दोलन के समर्थक सन्तराम बी० ए० की 'मेरे जीवन के अनुभव' इस आन्दोलन के समर्थन में अच्छी पुस्तक है।

नारी मुक्ति आन्दोलन पर प्रमिला कपूर और आशारानी बोहरा द्वारा कई कृतियाँ लिखी जा चुकी हैं। हिन्दी की महिला साहित्यकारों में शिवानी, मन्नू भण्डारी, दीप्ति खंडेलवाल, मेहरुन्निसा परवेज, मंजुल भगत, ममता कालिया, सूर्यबाला, प्रतिमा वर्मा आदि ने अपना स्थान बना लिया है। बाल-साहित्य के क्षेत्र में शकुन्तला सिरोठिया, संतोष साहनी और सरोजिनी प्रीतम उल्लेख्य हैं।

आलोचना और सन्दर्भ साहित्य

हिन्दी का आलोचना साहित्य भी बहुत समृद्ध हो गया है। सैद्धान्तिक तथा व्यावसायिक दोनों प्रकार की समीक्षाओं का बहुत अधिक विकास हुआ है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नन्ददुलारे वाजपेयी, डा० नगेन्द्र, आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, नलिन विलोचन शर्मा, डा० नामवर सिंह, डा० त्रिभुवन सिंह, डा० विश्वनाथ प्रसाद आदि की कृतियाँ इस क्षेत्र में उल्लेखनीय हैं। हिन्दी के शोध-क्षेत्र में तो बहुत अधिक विकास हुआ है।

सन्दर्भ ग्रन्थों के क्षेत्र में डा० गोपाल राय और यशपाल महाजन ने हिन्दी उपन्यास कोश, हिन्दी आलोचना कोश और हिन्दी ग्रन्थ कोश जैसी कृतियों को स्वयं सम्पादित तथा प्रकाशित कर प्रकाशन क्षेत्र में अच्छा काम किया है। १८७७ से १९७७ तक हिन्दी उपन्यास साहित्य पर नेशनल लाइब्रेरी के कुछ कार्यकर्ता एक सन्दर्भ ग्रन्थ तैयार कर रहे

हैं जो कि एक अद्भुत कार्य है। सन्दर्भ ग्रन्थों के क्षेत्र में 'नागरी प्रचारिणी सभा' द्वारा प्रकाशित विश्वकोश नगेन्द्रनाथ बसु के विश्वकोश के बाद छपे। विश्वकोशों में ज्ञान मण्डल द्वारा प्रकाशित 'हिन्दी साहित्य कोश' तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा प्रकाशित हिन्दी कोश उल्लेख्य हैं। कामता प्रसाद गुरु के बाद नई मान्यताओं से युक्त हिन्दी व्याकरण के क्षेत्र में किशोरीदास वाजपेयी तथा बदरीनाथ कपूर की व्याकरण की पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं।

तीर्थ परिचय और पर्यटन साहित्य

तीर्थों और धर्म स्थानों पर कुछ पुस्तकें छपी हैं—(भ्रमणसंगी आदि)। अभी और पुस्तकों की आवश्यकता है। हमारे देवी देवताओं, पर्व त्यौहारों पर भी हिन्दी में बहुत कम साहित्य उपलब्ध है। पश्चिम बंगाल सरकार ने गंगासागर तीर्थ पर बहुत ही अच्छी पुस्तक हिन्दी में प्रकाशित की है। सभी भारतीय तीर्थों और मेलों की सिरीज प्रकाशित होने के बाद इसका अनुकरण किया जा सकता है।

पर्यटकों के लिए हिन्दी में साहित्य बहुत कम हैं। देश के एक भाग से दूसरे भाग को देखने समझने के लिए हमारी नयी पीढ़ी में पर्याप्त उत्साह है। इस दिशा में प्रकाशन किये जायें तो अच्छा लाभ हो सकता है। आज अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध व्यापक हो रहे हैं। पड़ोसी देशों तथा विश्व के प्रमुख दर्शनीय स्थलों के सम्बन्ध में जानकारी देनेवाली पुस्तकों का प्रशस्त क्षेत्र हमारे सामने है। इस दिशामें कुछ प्रयत्न भी हुए हैं, परन्तु अभी भी कार्य करने की काफी गुंजाइश है।

अनूदित साहित्य

हिन्दी प्रकाशनों में अनूदित साहित्य की दृष्टि से बंगला और गुजराती का बहुत ज्यादा प्रभाव है। बंगला के शरद्, रवीन्द्र तो प्रारम्भ से ही हिन्दी में थे, इधर विमल मित्र, समरेश बसु, आशापूर्णा देवी, ताराशंकर बन्द्योपाध्याय, सत्यजित राय, माणिक बन्द्योपाध्याय, शंकर, बुद्धदेव बसु आदि भी हिन्दी में अनूदित होकर प्रकाशित हुए हैं। गुजराती के 'धूमकेतु' और के० एम० मुंशी के ऐतिहासिक उपन्यासों का हिन्दी-पाठकों ने अभूतपूर्व स्वागत किया है। पंजाबी के नानक सिंह, हरनामदास सहराई तथा मराठी के खांडेकर की कृतियाँ भी अनूदित हुई हैं। भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा पुरस्कृत अन्य भारतीय भाषाओं की कृतियाँ भी हिन्दी में बराबर अनूदित होकर प्रकाशित होती हैं। अहिन्दी क्षेत्र के हिन्दी लेखकों में रांगेय राघव, प्रभाकर माचवे आरिगपूडि, दुर्गाप्रसाद श्रेष्ठ की कृतियाँ अच्छी संख्या में प्रकाशित हुई हैं। विदेशों में रहनेवाले अनेक साहित्यकारों की कृतियाँ भारत तथा विदेशों से प्रकाशित हुई हैं। महाकाश यान द्वारा देशी-विदेशी खेलकूद, यात्रा तथा अणु ऊर्जा जैसे विषयों पर भी हिन्दी में अनेक प्रकाशन हुए हैं।

पहले स्वास्थ्य और चिकित्सा पर हरिदास वैद्य की स्वास्थ्य रक्षा और ७ खण्डों में चिकित्सा चन्द्रोदय की धूम थी। आज स्वास्थ्य सम्बन्धी साहित्य आरोग्य मन्दिर गोरखपुर से निकल रहा है जो काफी लोकप्रिय है।

प्रसिद्ध लेखकों की अप्रकाशित रचनाओं और पत्रव्यवहारों का प्रकाशन भी एक

नई उपलब्धि है। इस सम्बन्ध में आचार्य शुक्ल के निबन्ध, प्रसाद जी का 'अभिषेक' नाम से प्रकाशित निबन्ध संग्रह आदि उल्लेख्य हैं। प्रेमचन्द, निराला, बनारसीदास चतुर्वेदी, बच्चन के नाम पन्त के पत्रों आदि का प्रकाशन पत्र-साहित्य की उपलब्धि है।

प्रारंभ में धार्मिक प्रकाशनों के क्षेत्र में जहाँ बम्बई के खेमराज श्रीकृष्णदास, निर्णय सागर प्रेस, श्रीधर शिवलाल आदि प्रकाशन संस्थाओं ने पुराण, उपनिषद आदि के मूल संस्कृत के साथ हिन्दी भाष्य भी छापे वहाँ तिलकगीता तथा चन्द्रकान्त वेदान्त के हिन्दी संस्करण के अलावा, आज गीता प्रेस गोरखपुर, रजनीश फाउण्डेशन पूना, अरविन्दाश्रम पाण्डिचेरी, रामकृष्ण मिशन प्रकाशन नागपुर, तुलसी मानस प्रकाशन बम्बई आदि प्रकाशन संस्थायें धार्मिक क्षेत्र में बहुत अच्छे प्रकाशन कर रही हैं।

संगीत के क्षेत्र में संगीत कार्यालय हाथरस, भातखंडे संगीत महाविद्यालय लखनऊ आदि हिन्दी जगत में इसतरह की माँग को पूरा कर रहे हैं।

हिन्दी में लोक-साहित्य का आधुनिकीकरण तेजी से परिलक्षित हो रहा है। इस दिशा में राष्ट्रीय स्तर के वैज्ञानिक प्रकाशनों की आवश्यकता है। डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, डॉ. सत्येन्द्र, डॉ. बासुदेवशरण अग्रवाल, डॉ. रामनारायण उपाध्याय उल्लेख्य हैं। स्त्री-पुरुष में समानता, मानवतावाद, समाजवाद और युगबोध सम्बन्धी विषयों के प्रति लिखने-पढ़ने के झुकाव के साथ-साथ इन विषयों पर कुछ अच्छी पुस्तकें आयी हैं।

प्रकाशन मैन्युअल

भारतीय मानक संस्थान ने भी हिन्दी में मानक सम्बन्धी अनेक पुस्तकें प्रकाशित की हैं। प्रकाशन स्तर को अच्छा बनाने की दिशा में प्रकाशक इन मानकों से लाभ उठा सकते हैं। प्रकाशन व्यवसाय अब एक वैज्ञानिक प्रक्रिया बन चुका है, परन्तु व्यवसाय की उन्नति के लिए निदेशात्मक साहित्य का हिन्दी में अभी भी अभाव है। हिन्दी में एक बुक मैन्युअल प्रकाशित हो, इसके लिए हिन्दी प्रकाशक संघ को प्रयत्नशील होना चाहिए। यों तो इसके लिए सरकारी योजनायें भी बनीं, उपसमितियों की बैठकें भी हुईं, परन्तु उसका कोई प्रतिफल सामने नहीं आया। हिन्दी प्रकाशन के विकासात्मक प्रतिमान के लिए मैन्युअल का अपरिहार्य महत्त्व है।

कुछ समय से हिन्दी में अभिनन्दन ग्रन्थों के प्रकाशन की बाढ़-सी आ गयी है। इसपर करारा व्यंग्य किया है हास्यरस के सफल लेखक पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी ने अपना अभिनन्दन ग्रन्थ स्वयं लिखकर। इन अभिनन्दन ग्रन्थों में कुछ ऐतिहासिक महत्त्व के भी हैं।

भाषा नीति का परिणाम

विश्वविद्यालय स्तर के साहित्य में मानविकी विषयों पर बहुत बड़ी संख्या में पुस्तकें सुलभ हैं। विज्ञान और तकनीकी विषयों पर भी काम हुआ है, परन्तु अभी तक इन विषयों को सभी विश्वविद्यालयों द्वारा हिन्दी माध्यम से न पढ़ाये जाने के कारण विज्ञान आदि पर पुस्तकों की साधारण कमी है। मिलिटरी साइन्स जैसे विषय पर भी हिन्दी में

अनेक उत्तम ग्रन्थ आ गये हैं। विश्वविद्यालयों की भाषा नीति में जैसे-जैसे सुधार होगा, वैसे-वैसे हिन्दी तथा भारतीय भाषाएँ अपनी वर्तमान प्रकाशन गति द्वारा माँग पूरी करने में समर्थ होंगी। इस क्षेत्र में सामान्य प्रकाशकों के साथ-साथ हिन्दी ग्रन्थ अकादमियों ने स्तुत्य कार्य किया है।

केन्द्रीय सचिवालय हिन्दी परिषद् ने हिन्दी प्रकाशन के क्षेत्र में सरकारी कार्यालयों की कार्यविधियाँ प्रकाशित की हैं जो अपने आप में बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। कृषि के क्षेत्र में नैनीताल के पन्तनगर स्थित कृषि विश्वविद्यालय ने हिन्दी में प्रचुर प्रकाशन किये हैं। देश में २३ कृषि विश्वविद्यालय खुल गये हैं और इनमें से अधिकांश हिन्दी या किसी अन्य भारतीय भाषाओं के माध्यम से पढ़ा रहे हैं, यह शुभ लक्षण है। कृषि मंत्रालय की अनुसंधान परिषद् ने खेती के सम्बन्ध में बहुत-सी कृतियाँ प्रकाशित की हैं। परन्तु जानकारी के अभाव में सर्वसाधारण इससे अधिक लाभ नहीं उठा पाये।

बैंकों और अस्पतालों में भी हिन्दी के प्रयोग का एक दौर आया है। मेडिकल साइन्स तथा व्यावसायिक सिद्धान्तों पर अभी भी हिन्दी को बहुत कुछ करना है।

सर्वोच्च संस्था का दुराग्रह

कहा जाता है कि विदेशी भाषाओं में वैज्ञानिक और तकनीकी साहित्य की प्रचुरता है, परन्तु हमारे लिए उसकी यह उपादेयता हो सकती है कि हम उससे कुछ सीखें। भारतीय भाषाओं और हिन्दी में प्रकाशित विज्ञान और तकनीकी साहित्य ही हमारे लिए सूर्य रश्मि की शक्ति और आभा देनेवाले उपादान के रूप में उद्भूत होगा। स्वभाषा में यदि विज्ञान, तकनीक तथा मेडिकल साइन्स के विषयों की पढ़ाई अनिवार्यतः शुरु हो जाय तो हम स्वावलम्बी होने की दिशा में भी बढ़ेंगे।

प्रायः सभी सरकारी संस्थाएँ अँग्रेजी के साथ-साथ हिन्दी में भी अपने प्रकाशन कर रही हैं। परन्तु देश की सर्वोच्च अध्ययन संस्था इण्डियन इन्स्टीट्यूट ऑफ एडवांस्ड स्टडीज शिमला ने मनस्थ कर लिया है कि उसके प्रकाशन केवल अँग्रेजी में ही होंगे। उनकी यह नीति न केवल हिन्दी के लिए दुर्भाग्यपूर्ण है, अपितु राष्ट्रीय हित के भी विपरीत है। समय की माँग है कि इन्स्टीट्यूट हिन्दी में प्रकाशन न करने का दुराग्रह त्यागे और हिन्दी में प्रकाशन कर राष्ट्र की सार्वजनिक माँग में समुचित योगदान दे।

हिन्दी प्रकाशन ने आवरण, मुद्रण और पुस्तकों की भीतरी छपाई के उत्कृष्ट मानदण्ड स्थापित किए हैं। अच्छी न छपी पुस्तकों में उच्च कोटि की कथावस्तु और विषयवस्तु के होते हुए भी पाठक उसे स्वीकार करने को तैयार नहीं होते।

पठनरुचि का परिमार्जन

हिन्दी प्रकाशन की प्रगति इसी से स्पष्ट है कि इसके अनेक रचनाकारों की कृतियाँ पाकेट बुक्स के संस्करणों में लाखों की संख्या में छपती-बिकती हैं। परन्तु देखना यह है कि यह चेतनामूलक सत्साहित्य है या कुरुचिपूर्ण रुझान को दीप्त करनेवाली विकृत अभिव्यक्ति। वास्तविकता तो यह है कि सुसंस्कृत अभिरुचि के अभाव में साहित्यिक

कृतियाँ हिन्दी के सामान्य पाठक ग्रहण नहीं कर पाते। आवश्यकता इस बात की है कि लेखक पाठकों की अभिरुचि को परिमार्जित करने के साथ ही भावी पीढ़ी को संजीवनी शक्ति देनेवाले चेतनामूलक साहित्य के सृजन की दिशा में अपनी शक्ति और साधन को लगाने का साहस तथा संकल्प लें।

आदर्श चरित्र और उदात्त भावों से प्रेरित कथा-साहित्य के स्थान पर आज मांसल सौन्दर्यजन्य प्रेम का चित्रण करनेवाले स्तरहीन उपन्यास तथा सत्यकथाओं के रूप में सामाजिक विकृति को उभारनेवाली पत्रिकाएँ जन-जीवन में घर कर रही हैं। आचार, संयम और साधना से युक्त साहित्य के प्रकाशन से ही ऐसे दुष्प्रवृत्तियों वाले सस्ते क़िस्म के साहित्य का विरोध संभव है।

साहित्य में चरित्र का प्रश्न पठनरुचि के परिमार्जन से सम्बद्ध है। कहते हैं कि प्रेमचन्द के बाद सामाजिक जीवन में आदर्श की प्रेरणा देनेवाले चारित्रिक उपन्यास नहीं के बराबर लिखे गये। भगवतीचरण वर्मा की चित्रलेखा को ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में लिखा चारित्रिक उपन्यास कहा जा सकता है। वैसे उपन्यास के क्षेत्र में अच्छे नये प्रयोग हुए हैं। इनमें हजारीप्रसाद द्विवेदी की 'बाणभट्ट की आत्मकथा', यशपाल की 'दिव्या', श्रीलाल शुक्ल का 'राग दरबारी', फणीश्वरनाथ रेणु का 'मैला आँचल', रामदरश मिश्र का 'जल टूटता हुआ', धर्मवीर भारती का 'गुनाहों का देवता', मनु शर्मा की 'द्रोण की आत्मकथा' अपने ढंग के नये प्रयोग हैं। इस प्रकार के नये प्रयोग सामाजिक परिवेश और जन-जीवन को रूपायित करनेवाली अनेक सशक्त कथाकृतियों में हुए हैं जिनके रचनाकार, यथा मोहन राकेश, अमृतलाल नागर, कमलेश्वर, राजेन्द्र अवस्थी, कृष्णासोबती, हिमांशु जोशी, हिमांशु श्रीवास्तव, भीष्म साहनी, नरेन्द्र कोहली आदि से स्मरण किये जायेंगे। किन्तु ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक उपन्यासों का लेखन अब कम हो रहा है। आज के रचनाकार और प्रकाशक इस पर ध्यान दें। सत्साहित्य प्रकाशन का मुखापेक्षी है और सत्साहित्य से ही समाज के सांस्कृतिक जीवन का स्वर अभिव्यक्त होता है।

चरित्रबल और सत्साहित्य

अपने को अत्याधुनिक कहनेवाले लोग भी सम्प्रति चरित्रबल पर जोर देते हैं। एक पाश्चात्य देश की महिलाओं ने जब एक बुक स्टाल पर 'सेक्स स्कैंडल' की श्रीमती कीलर पर छपी पुस्तक देखी तो उन्होंने पुस्तक की उस दुकान का बहिष्कार किया। फिर क्या था, बहिष्कार की एक लहर-सी उठ खड़ी हुई और सभी दुकानदारों ने कीलर पर छपे साहित्य को महिलाओं के आन्दोलन के कारण हटा दिया।

जाज, पॉप तथा बीटल्स के संगीत ने हमारे युवकों को अँग्रेजियत की ओर आकर्षित किया है। सितार की जगह गिटार ने ले ली। दिखावे में हिन्दी की जगह अँग्रेजी पढ़ने का फैशन चला। फलतः पढ़ने-लिखनेवाले लोगों की मनोवृत्ति बदली। उनके तौर-तरीके और फैशन की ललक उन्हें विपरीत दिशा में ले गयी। वे हिन्दी में पढ़ना-लिखना फैशन के विपरीत मानते हैं। इसके ठीक समानान्तर एक नई मानसिकता की अभिनव रसधार भी उमड़ पड़ी है। कृष्णभक्ति आन्दोलन ने कृष्ण दर्शन की ओर विदेशियों को

आकर्षित किया। उन्होंने कृष्णदर्शन के अध्ययन हेतु संस्कृत और हिन्दी भाषा को सीखने पढ़ने की दिशा में अच्छी रुचि दिखाई है। स्वामी दयानन्द के सत्यार्थ प्रकाश और गाँधी जी के अनासक्तियोग से आकर्षित हो, भारत से सांस्कृतिक सम्बन्ध रखने के लिए प्रवासी भारतीयों ने हिन्दी पढ़ी।

आध्यात्मिक भावना और पूजापाठ के प्रति नई पीढ़ी में उदासीनता है। जहाँ ऐसा हुआ है, उन क्षेत्रों में सत्साहित्य के पाठकों का अभाव और सुरुचिपूर्ण साहित्य के प्रकाशन भी कम हो गये हैं। वैज्ञानिक प्रगति की दिशा में अग्रसर होते हुए भी बंगाल के युवक-युवतियों में अभी भी आध्यात्मिक भूख और पूजापाठ की भावना शेष है। यही कारण है कि सत्साहित्य की ओर बंगाली युवक-युवतियों की रुचि अभी भी है।

लेखक-प्रकाशक सम्बन्ध

पुस्तकों के प्रति पठनरुचि पैदा करना समाज तथा शिक्षाविदों का काम है। लेखकों और प्रकाशकों का भी इस दिशा में कुछ कर्त्तव्य है, यह हमें नहीं भूलना चाहिए। कहावत है 'जो बोओगे वह पाओगे'। जिस स्तर और रुचि के प्रकाशन जनता के बीच पहुँचेंगे, उसी वृत्ति, रुचि और स्तर के पाठक समाज में उत्पन्न होंगे। प्रकाशक संभवतः यह भूल जाते हैं कि पाठकों की अभिरुचि का निर्माण प्रकाशक करता है। आवश्यकता है आत्मविश्वास के साथ सत्साहित्य के प्रकाशन की दिशा में आगे बढ़ने की। इससे स्थायी पाठकों की संख्या में निरन्तर वृद्धि होगी। पाठकों के प्रश्न पर एक विरोधाभास देखने में आया है। उत्तर भारत की अधिकांश महिलाओं में यदि एक ओर मेरी तेरी बातें करने की आदत है तो दूसरी ओर बंगाली महिलाओं में परिमार्जित पठनरुचि की प्रवृत्ति पाई जाती है। ऐसा क्यों है, यह एक विचारणीय प्रश्न है।

लेखकों और प्रकाशकों के सम्बन्ध में कुछ बातें अब स्पष्ट हो जानी चाहिए। प्रकाशकों को उदारतापूर्वक इस सत्य को स्वीकार करना होगा कि जो कुछ भी प्रकाशित होता और बिकता है वह लेखक है। इसलिये लेखकों की उचित माँगों को परस्पर विचार-विनिमय द्वारा स्वीकार करना होगा। 'लिटरेरी एजेन्सीज' की स्थापना हो ताकि लेखकों और प्रकाशकों के बीच एक सेतु का निर्माण हो। लेखकों को उचित मानदेय देकर विभिन्न इच्छित विषयों पर ग्रन्थ लिखवाए जाँय और इसके लिए सामग्री, सुविधाएँ और वातावरण उपलब्ध कराये जाँय। सरकार के सहयोग से प्रकाशक संघ यह व्यवस्था कर सकता है।

गोर्की ने अपने साहित्य द्वारा जनमानस को प्रभावित किया और उसका दूरगामी प्रभाव यह हुआ कि सोवियत रूस की जनवादी सरकार ने समाजवादी नीति निर्धारित की। गोर्की साहित्य की ग्रन्थावलियाँ भी खूब बिकीं। इसी तरह हिन्दी के युगद्रष्टा कथाकार मुं० प्रेमचन्द ने अपने कथा-साहित्य से महात्मा गाँधी के आन्दोलन को प्रभावित किया, परन्तु जहाँ रूस में गोर्की का भव्य स्मारक बनाया गाया और उनकी कृतियों की ग्रन्थावलियाँ छपीं, वहाँ मुं० प्रेमचन्द की स्मृति में हिन्दी जगत अभी वैसा कुछ नहीं कर सका। उत्तर

प्रदेश सरकार के हिन्दी संस्थान द्वारा प्रेमचंद पुरस्कार की स्थापना इस दिशा में उल्लेखनीय है।

पुस्तकालयों से अपराध नियन्त्रण

कहा जाता है कि देश में अपराध वृत्ति बढ़ रही है। हमारी मान्यता है कि यदि पुस्तकालय आन्दोलन तेजी से चलाया जाय और गाँव-गाँव में सत्साहित्य से पूर्ण पुस्तकालय खोले जाँय तो अपराध वृत्ति में निस्सन्देह कमी आयेगी। पुस्तकालयों की बढ़ोत्तरी से साक्षरता अभियान को भी गति मिलेगी।

साहित्य का प्रकाशन व्यापार के साथ समाजसेवा भी है। आचार्य विनोबा भावे तो इस प्रकार की समाजसेवा को बहुत ही महत्व देते थे। सर्वोदय साहित्य प्रकाशन संस्था उनके इन्हीं विचारों का प्रतिफलन है।

शतियाँ और डाक टिकट

सूर, तुलसी, भारतेन्दु, श्यामसुन्दरदास, कामताप्रसाद गुरु प्रभृति साहित्यकारों की विभिन्न समय पर शतियाँ मनाई गईं, परन्तु इन अवसरों पर उनकी कृतियों के गौरवपूर्ण समग्र तथा कम मूल्य के सुमुद्रित संस्करण दिखाई नहीं देते। फलतः इन अवसरों का मूल उद्देश्य तिरोहित-सा हो जाता है। यह तभी पूरा हो सकता है जब शतियों के साथ-साथ कृतिकारों की कृतियों के सुमुद्रित अल्पमोली संस्करण भी प्रकाशित हों और उनकी रचनाओं का नये सिरे से मूल्यांकन हो। शरद् शती के अवसर पर बंगला में शरद ग्रन्थावली का एक लाख सेट बिका। क्या यह स्थिति हिन्दी साहित्यकारों के सम्बन्ध में हिन्दी प्रकाशन जगत ला सकता है?

हिन्दी और उर्दू का विवाद अकारण उठाया जाता है। हिन्दी के प्रकाशकों को इस मसले को समन्वयात्मक ढंग से निपटाने का गौरव प्राप्त है। हफीजुल्ला खाँ का हजारा, सहस्र रजनी चरित्र जैसे उर्दू के ग्रन्थों के सुप्रसिद्ध प्रकाशक मुंशी नवल किशोर ने आज से १०० वर्ष पूर्व हिन्दी में प्रकाशित किया था।

हिन्दी प्रकाशनों को सामान्य जनता के बीच सुगमतापूर्वक पहुँचाने के लिए पुराने मूर्धन्य प्रकाशकों के पोस्टेज स्टैम्प भी निकलने चाहिए। यों सरकार ने इस दिशा में कुछ प्रेरणाप्रद शुभारम्भ किया है और इसके अन्तर्गत नवलकिशेर प्रेस के स्व० मुंशी नवल किशोर तथा लहरी प्रेस के स्व० बाबू देवकीनंदन खत्री के पोस्टेज स्टैम्प निकाले गये हैं। इस क्रम में हिन्दी प्रकाशन के कुछ अन्य महत्वपूर्ण स्तम्भों और महानुभावों के पोस्टल स्टैम्प निकलने चाहिए। इनमें से उल्लेखनीय हैं—नगेन्द्रनाथ बसु, रामचन्द्र वर्मा, चिन्तामणि घोष, राजा रामदीन सिंह, निहालचन्द वर्मा, नाथूराम प्रेमी, गोपालराम गहमरी, महाशय राजपाल आदि।

संसद में हिन्दी का प्रयोग होने के साथ हाईकोर्ट के कितने ही फैसले भी हिन्दी में आने लगे हैं। हिन्दी में विधि विषयक पुस्तकों की माँग बढ़ी है। पहले जमाने में 'ताजीरात-ए-हिन्द' नामक कानून की पुस्तक बहुत बड़ी संख्या में बिकती थी। विधि और

न्याय के क्षेत्र में इलाहाबाद तथा विधि मंत्रालय के विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा अब तक अच्छी-खासी संख्या में पुस्तकें हिन्दी में प्रकाशित हो चुकी हैं। १९३१ में जब शारदा बिल हिन्दी में प्रकाशित हुआ तो वह एक आश्चर्यजनक घटना मानी गयी थी। कलकत्ता के कोठारी नामक वकील ने जब इन्कमटैक्स पर हिन्दी में पुस्तक निकाली तो जनता ने उसका खूब स्वागत किया।

हिन्दी की पुस्तकों की समीक्षा को अँग्रेजी के अखबार अपने आलोचना स्तम्भ में स्थान नहीं देते। अँग्रेजी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के पत्रों में भी हिन्दी की चुनी हुई पुस्तकों की आलोचना छपे- इस सम्बन्ध में प्रकाशक संघ को सचेष्ट होना चाहिए। जहाँ हम यह अपेक्षा रखते हैं कि समाचारपत्र हमारे प्रकाशनों की चर्चा करें तथा लोग पुस्तकों की प्रदर्शनी देखने आयें, वहीं हमारा यह कर्त्तव्य भी है कि हम सामाजिक मूल्यों के अनुरूप प्रकाशन करें। इस सन्दर्भ में यहाँ उल्लेख करना समीचीन होगा कि सन् १९३० में हिन्दी पत्रकारिता पर पं० विष्णुदत्त शुक्ल रचित 'पत्रकार कला' नामक पुस्तक छपी। आज इस विषय पर प्रचुर साहित्य उपलब्ध है। जिन लेखकों ने मुख्य रूप से इस दिशा में कार्य किया है उनमें उल्लेखनीय हैं—पं० अम्बिका प्रसाद वाजपेयी, कृष्णबिहारी मिश्र, हेरम्ब मिश्र, राजेन्द्र, प्रेमनाथ चतुर्वेदी, के० पी० नारायण, प्रेमचन्द गोस्वामी, प्रफुल्लचन्द्र ओझा 'मुक्त', लक्ष्मीशंकर व्यास, मुकुटबिहारीलाल वर्मा आदि। इनके अलावा लक्ष्मणनारायण गर्दे, आचार्य शिवपूजन सहाय और पं० बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्रकारिता सम्बन्धी संस्मरण और निबन्ध पत्रकारिता के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण सामग्री हैं। डा० वेदप्रताप वैदिक, डा० रत्नाकर पाण्डेय एवं श्री रामव्यास पाण्डेय ने हिंन्दी पत्रकारिता की १५०वीं वर्षगाँठ के अवसर पर पत्रकारिता के आकलन सम्बन्धी कृतियाँ सम्पादित और प्रकाशित कीं, जो सन्दर्भ ग्रन्थ के रूप में मान्यता पा चुकी हैं।

पहले समाचारपत्रों में पुस्तक आलोचना को अधिक स्थान नहीं मिलता था। इसका प्रारम्भ सरस्वती, नागरी प्रचारिणी पत्रिका तथा कलकत्ता से निकलनेवाली विशाल भारत पत्रिका से हुआ था। आजादी के बाद क्रमागत रूप से हमारी सभी पत्रिकाओं में आलोचना का स्तम्भ बन गया है। इससे हिन्दी प्रकाशन जगत को बल मिला है।

पुस्तक उत्पादन दर का मूल्यांकन

२५ वर्ष पूर्व जहाँ ५,३०,००,००० व्यक्ति शिक्षित थे, वहाँ आज इस संख्या में १५,८०,००,००० व्यक्ति और बढ़ गये हैं। इस तरह आज यह कुल संख्या लगभग २० करोड़ १० लाख है। सन् २००० तक शत-प्रतिशत साक्षरता की हमारी योजना है। ऐसी स्थिति में जब ९० करोड़ के लगभग पढ़े-लिखे नागरिक हो जाएँगे तो सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि कितनी पुस्तकों की आवश्यकता होगी। इन आँकड़ों को दृष्टि में रखकर प्रकाशकों को प्रतिवर्ष पुस्तकों की उत्पादन दर का मूल्यांकन करना चाहिए और तदनुरूप प्रकाशन योजना निर्धारित की जानी चाहिए। तात्कालिक समस्या यह है कि देश के १५ से ३५ वर्ष की आयु के २५ करोड़ निरक्षरों को साक्षर बनाया जाय। इसके लिए प्रचुर मात्रा में पुस्तकों की आवश्यकता होगी।

आगामी दशकों में कैसी कृतियों की माँग होगी, इसके प्रति हमें अभी से सोचना होगा। हिन्दी के प्रकाशकों में जब तक योजनागत चेतना जागृत नहीं होगी तब तक वे अपने बाजार को व्यापक बनाने में सफल नहीं हो सकेंगे। विभिन्न परिस्थितियों को दृष्टिगत रख हमें प्रकाशन योजना बनानी होगी अन्यथा आर्थिक क्षति की संभावना है। प्रकाशन व्यवसाय के लिए यह उक्ति पहले से ही प्रसिद्ध है कि प्रकाशक नोट को कागज बनाते हैं और इसके बाद उनके द्वारा तैयार किये गये काले कागज को फिर से करेंसी नोट बना पाना कठिन हो जाता है।

बिक्री के लिये पाठकों से जुड़ें

हम अपने प्रकाशनों की बिक्री के लिए सरकारी अनुदान के मुखापेक्षी रहते हैं और फलतः जब किसी कारणवश सरकारी अनुदान कम हो जाता है तो सारा व्यवसाय डगमगा जाता है। इससे बचने का एकमात्र उपाय है सीधे जनता से सम्पर्क। पाठकों की कमी नहीं है, कमी है अपेक्षित सामग्रियों और पूर्ण पुस्तकों के माध्यम से जनता के बीच पहुँचने की दृढ़ इच्छा-शक्ति तथा संकल्प की।

बिक्री की दृष्टि से हमारा बाजार फिलहाल एक छोटे कमरे की तरह है। साहित्य प्रकाशन का वृहद् परिवेश इस छोटे कमरे में घुटन महसूस कर रहा है। प्रकाशकों को प्रचार के नये माध्यम अपनाकर बाजार विस्तृत करना होगा। हमारी पुस्तकों की वितरण प्रणाली में खामियाँ हैं। किन्हीं कारणों से हिन्दी में पुस्तक विक्रेता पनप नहीं पाये हैं। विश्व पुस्तक मेले में स्थापित हिन्दी मण्डप का प्रदर्शन यह सिद्ध करेगा कि यदि बड़े-बड़े शहरों में हिन्दी के विक्रय केन्द्र खोले जाँय तथा वहाँ सभी पुस्तकें सुलभ हों तो पुस्तकों की खपत बढ़ेगी।

पुस्तक व्यवसाय की मौसमी कहानी भी है। सरकारी खरीद के लालच में अनेक मौसमी प्रकाशक पैदा हो जाते हैं। कुछ पुस्तकें प्रकाशित कर उन्हें सरकारी विभागों में बेचना ही ऐसे तथाकथित प्रकाशकों का काम होता है। इस सम्बन्ध में भी कुछ निदान की आवश्यकता है।

हिन्दी प्रकाशन का इतिहास

मृत लेखकों के नाम से और कल्पित लेखकों के नाम से भी कुछ प्रकाशन बाजार में आ रहे हैं। यह प्रवृत्ति अच्छी नहीं है। कुछ लेखकों और प्रकाशकों के प्रयास से ऐसी कृतियाँ भी छपी हैं जिनमें नये अवतारों का उल्लेख है। रूढ़िवादिता या अन्धपरंपरा को प्रश्रय देनेवाली प्रकाशन प्रवृत्ति रुकनी चाहिए।

हिन्दी के प्रकाशन का इतिहास लिखने का कार्य आरम्भ हो चुका है। इतिहास प्रामाणिक तभी होगा जब हिन्दी के अधिकाधिक प्रकाशक तथा साहित्यकार इसमें अपना योग दें। सरकार द्वारा पुस्तक व्यवसाय को इण्डस्ट्री मानने की घोषणा हो चुकी थी, परन्तु उसे अमल में नहीं लाया गया। कम से कम लघु उद्योगों को दी जानेवाली सुविधायें इस व्यवसाय को अवश्य मिलनी चाहिये। यदि पुस्तक व्यवसाय पनपा तो इससे लाखों नये लोग जीविका पा सकेंगे।

लघु उद्योगों को ग्रामों तक ले जाने की बात उठी है। अतः विभिन्न रोजगारों से सम्बन्धित कैरियर गाइड बुक्स जैसी पुस्तकमाला प्रकाशित होनी चाहिए। ऐसी पुस्तकें एक रुपये से अधिक मूल्य की न हों, जिससे गरीब से गरीब ग्रामीण भी खरीदने में समर्थ हों। यदि सामान्य प्रकाशक इसे न कर सकें तो सरकारी ग्रन्थ अकादमियों को इस काम को अपने हाथ में लेना चाहिए। पुस्तकों के मूल्य के सन्दर्भ में सरकार से निवेदन है कि वह पुस्तकों की पोस्टेज दरों में विशेष रियायत दे और कागज की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई कीमतों पर नियंत्रण करे। हिन्दी प्रकाशक संघ को कम से कम एक ऐसी गोष्ठी आयोजित करनी चाहिए जहाँ भारतीय भाषाओं के प्रकाशक और हिन्दी के प्रकाशक आपस में मिलें और आदान-प्रदान की प्रकाशन योजना तैयार करें। इस तरह से हिन्दी में भारतीय भाषाओं की श्रेष्ठ पुस्तकें अनूदित हो सकेंगी और हिन्दी के लेखकों की अच्छी कृतियाँ अन्य भारतीय भाषाओं में प्रकाश में आयेंगी।

मुद्रण और ले-आउट में सुधार

हिन्दी प्रकाशनों की बाइण्डिग, प्रूफरीडिंग से सम्बन्धित कुछ शिकायतें पाठकों की हैं। शिक्षित प्रूफ रीडरों की नियुक्ति से यह शिकायत दूर हो सकती है। हिन्दी पुस्तकों के दाम भी अधिक हैं, ऐसी आवाज उठ रही है। यह प्रश्न आज प्रमुख रूप से प्रकाशकों के समक्ष है। उत्तर में कुछ लोग अँग्रेजी पुस्तकों का उदाहरण देते हैं। अँग्रेजी की बजाय क्यों न हम बंगला पुस्तकों से हिन्दी पुस्तकों के मूल्यों की तुलना करें, जिनकी कीमतें अपेक्षाकृत बहुत ही कम हैं।

पाठ्यपुस्तकों से सम्बन्धित साहित्य के मुद्रण और 'ले-आउट' में अभिनव प्रयोग हुए हैं। स्थानीय प्रकाशकों ने पब्लिक स्कूलों में विदेशी कम्पनियों का स्थान ले लिया है। विगत दशक में भारतीय प्रकाशकों ने, जिनमें हिन्दी के प्रकाशक भी हैं, बहुत ही मनोरम प्रकाशन किए हैं।

कुछ राज्यों द्वारा पुस्तकों के राष्ट्रीयकरण को लेकर पत्र-पत्रिकाओं में बड़ी चर्चा है। हमारे प्रधानमंत्री माननीय मोरारजी भाई राष्ट्रीयकरण की इस पद्धति को अराष्ट्रीयकरण की संज्ञा देते हैं। उनके इस व्यंग्य में यथार्थ है। केन्द्रीय शिक्षा मंत्री भी राष्ट्रीयकरण के पक्ष में नहीं हैं। ऐसी स्थिति में इस विषय पर राज्यों द्वारा पुनर्विवेचन की आवश्यकता है।

संक्षेप में हिन्दी प्रकाशन जगत के विभिन्न विधाओं में बढ़ते हुए चरणों का विवरण उपस्थित है। जो समस्याएँ आज हमारे सामने हैं उनकी भी सही समीक्षा करने की चेष्टा की गयी है। आशा की जाती है कि हिन्दी प्रकाशन हिन्दी प्रेमियों के पारस्परिक सहयोग से उत्तरोत्तर प्रगति करता रहेगा।

विशेष– यह महत्त्वपूर्ण प्रबन्ध लेखक द्वारा तृतीय विश्व पुस्तक मेले के हिन्दी मण्डप में आयोजित एक गोष्ठी में पढ़ा गया था।

❀

हिन्दी पुस्तकों का निर्यात : सुललित मुद्रित पुस्तकों की विदेशों में माँग

लाखों की संख्या में हिन्दीभाषी भारतीय विश्व के एक कोने से दूसरे कोने तक बसे हुए हैं। फिजी, मॉरिशस, गायना, ट्रिनिडाड, आदि ऐसे देश हैं जहाँ भारतीय वंशजों की बहुत बड़ी संख्या निवास कर रही है। अतः विश्व पुस्तक मेले के अवसर पर राष्ट्रभाषा 'हिन्दी की पुस्तकों का निर्यात' जैसे महत्त्वपूर्ण विषय पर सोच और विचार आवश्यक तो है ही, इसे समीचीन भी माना जायेगा। एक दूसरी दृष्टि से भी इस विषय की गंभीरता को देखा जा सकता है कि यदि हिन्दी पुस्तकों के निर्यात की उचित रूप से व्यवस्था की जाय तो हमारे देश को विदेशी मुद्रा-अर्जन का एक नया स्रोत भी मिल सकता है।

हिन्दी के पठन-पाठन की सुविधा ब्रिटेन, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, रूस, फ्रांस, जर्मनी, बेल्जियम, डेनमार्क, स्विट्जरलैण्ड, हंगरी, रूमानिया, चेकोस्लोवाकिया, स्वीडेन, नार्वे, फिनलैण्ड, गायना, ट्रिनिडाड, केनिया, मॉरिशस, लंका, सिक्किम, नेपाल, फिजी, सिंगापुर, थाइलैण्ड, चीन और जापान में उपलब्ध हैं। पहले हिन्दी के प्रचार-प्रसार का कार्य विदेश में इण्डियन कौंसिल फॉर कल्चरल रिलेशन्स के माध्यम से होता था, लेकिन बाद में केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय ने यह कार्य स्वयं अपने हाथों में ले लिया। भारतीय वंशजों के अतिरिक्त विदेशियों में भी हिन्दी के पठन-पाठन के प्रति रुचि जगी है। भारतीय विद्वान विश्वविद्यालय स्तर की हिन्दी पढ़ाने के लिए विदेशों में भेजे जा रहे हैं।

प्रकाशनों को वैज्ञानिक आधार दें

विदेशों में फिलहाल हिन्दी की पाठ्य पुस्तकों तथा जनरल साहित्य की काफी संख्या में खपत हो रही है, परन्तु विश्वसनीय आँकड़ों के अभाव में यह बता पाना कठिन है कि कुल निर्यात कितने रूपयों का हो रहा है। अनुमानतः कहा जा सकता है कि वह लाखों रुपयों में है। समुचित प्रचार और माँग के अनुसार, साहित्य उपलब्ध हो तो बाजार उत्तरोत्तर बढ़ सकता है। विदेशों के पाठक ललित साहित्य के अतिरिक्त योग, भारतीय कला, हिन्दू धर्मशास्त्र, हिन्दू त्यौहार, रीति-रिवाज, गीता, उपनिषद्, बौद्ध दर्शन, जैन दर्शन, मन्दिरों की स्थापत्य कला, भारतीय संगीत, रामायण, महाभारत, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, रमण महर्षि, योगिराज श्री अरविन्द की कृतियों और संस्कृत के ख्यातिप्राप्त ग्रन्थों के हिन्दी अनुवादों में खास रुचि रखते हैं। हिन्दी में प्रकाशित पाकेट बुक्स और बाल-साहित्य की भी विदेशों में माँग हो रही है। इस बाजार को बढ़ाने के लिए प्रकाशकों द्वारा सामूहिक रूप से विशेष प्रयत्न करने की आवश्यकता है।

पश्चिमी देशों, जापान और अमेरिका में प्रकाशन व्यवसाय जिस गति से उन्नति कर

रहा है उसका वैज्ञानिक आधार है। अच्छी छपाई, अच्छी बँधाई, सामयिक प्रकाशन और समुचित प्रचार उनकी सफलता का रहस्य है। हिन्दी प्रकाशन भी तभी गति से आगे बढ़ेगा जब हम सही दिशा में आगे बढ़ेंगे। निस्सन्देह पिछले दो दशकों में हिन्दी के प्रकाशन सभी दृष्टि से उत्तम बने हैं, लेकिन भारतीय प्रकाशक (विशेषतः हिन्दी के प्रकाशक) अभी तक उस स्तर तक नहीं पहुँच पाये हैं जिसे सामान्य रूप से मानक कहा जा सके। समय की तेज गति के अनुसार वे चल नहीं पा रहे हैं। आज के युग के हिन्दी प्रकाशकों को सामाजिक जागरण के प्रति जागरूक रहना होगा, तभी वे पाठकों की रुचि के अनुकूल साहित्य प्रकाशित कर सकेंगे। नेशनल लाइब्रेरी से प्राप्त आँकड़ों के अनुसार १९६८-६९ में ४०५३, १९६९-७० में २८६४ और १९७०-७१ में २६४२ हिन्दी पुस्तकें प्रकाशित हुईं। ये आँकड़े प्रगति की जगह हमारी कमियों की ओर इशारा करते हैं। हमें अपने आप में इस दिशा में सुधार करना चाहिए।

प्रकाशनों की गुणवत्ता सुधारें

हम जो पुस्तकें प्रकाशित करें उनमें व्यवहृत होनेवाले टाइप सुन्दर और विषय के अनुकूल होने चाहिए। प्रकाशित पुस्तकों में व्यवहृत होनेवाले टाइपों का चयन पुस्तक का ले-आउट बनाने के साथ ही स्थिर कर लेना चाहिए। जहाँ तक संभव हो पुस्तकों[१] का मुद्रण मोनो और लाइनो टाइप में किया जाय। अधिकांश हिन्दी प्रकाशनों में पुस्तकों की प्रूफ रीडिंग और सम्पादन बहुत उत्तम नहीं है। हिन्दी की पुस्तकों में मात्राओं के टाइप न टूटें, इस पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। इस दृष्टि से ऑफसेट एवं लेटरप्रेस की नई मशीनों का उपयोग किए बिना समस्या हल नहीं हो सकती। जहाँ तक ले-आउट और डिजाइनों का प्रश्न है, उन्हें उत्तम कोटि का नहीं कहा जा सकता। जाहिर है, रद्दी मेकिंग के कारण चित्र भोंड़े छपते हैं। प्रकाशन व्यवसाय को डिजाइनिंग के मामले में बहुत सतर्क रहने की जरूरत है, क्योंकि आज के युग में इसका बहुत महत्त्व है। इसमें सन्देह नहीं कि हिन्दी प्रकाशन व्यवसाय ने इस दिशा में पहल की है, परन्तु आज भी बच्चों की ऐसी पुस्तकें दिखाई देती हैं, जिनको देखने मात्र से बालक भयभीत हो सकते हैं। रंग और डिजाइन दो ऐसी चीजें हैं जो नये पाठकों को आकृष्ट कर सकती हैं। बाल-साहित्य में चिल्ड्रेन बुक ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित साहित्य विदेशों में समादृत हुआ है और अनुकरणीय भी है। पुस्तकों की बँधाई हमारे उत्पादन की एक कमजोर कड़ी है। पश्चिमी देशों की तुलना में हमारी जिल्दसाजी इतनी अनाकर्षक है कि बहुत से भारतीय प्रकाशन तो विदेशों में बिना जिल्दसाजी के ही भेजे जाते हैं और वहीं बाँधकर बिकते हैं। निस्सन्देह यह चिन्तनीय स्थिति है। हमारी पुस्तकों के डस्टकवर और जैकेटों को और अधिक आकर्षक बनाने का प्रयत्न किया जाना चाहिए। विदेशी बाजार प्राप्त करने के लिए इन तमाम तथ्यों और आवश्यकताओं पर ध्यान देना होगा। पुस्तकें राष्ट्र की निधि के रूप में सामने आती हैं और वे समाज की प्रतिबिम्ब कही जाती हैं। यदि उनके उत्पादन में सतर्कता बरती जाय तो समाज आगे बढ़ता है और राष्ट्रीय चरित्र भी उजागर होता है।

---

१. अब डी० टी० पी० कम्पोजिंग विकसित हो चुकी है।

विदेशी संस्थाओं से सम्पर्क

हिन्दी पुस्तकों का निर्यात बढ़ाने के लिए हमें केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय के हिन्दी डायरेक्टरेट की पूरी सहायता लेनी चाहिए। उसके माध्यम से हमें विदेशों में जहाँ-जहाँ हिन्दी पढ़ाई जाती है, वहाँ की हिन्दी लाइब्रेरियों के पते आसानी से मिल सकते हैं। उसे प्राप्त कर के निर्यात बढ़ाने में मदद मिलेगी। विदेशों में जहाँ हिन्दीभाषी काफी संख्या में हैं वहाँ के प्रमुख अखबारों में विज्ञापन भी किया जाना चाहिए। हिन्दी की ऐसी पत्रिकाओं में भी विज्ञापन दिया जाना चाहिए जो विदेशों में जाती हैं। रामकृष्ण मिशन, थियोसोफिकल सोसायटी, श्री अरविन्दाश्रम, गीता प्रेस, अमेरिका की सेल्फ रिअलाइजेशन सोसाइटी, भारतीय विद्या भवन आदि ऐसी संस्थाएँ हैं जो हिन्दी के प्रकाशकों को मार्केट की खोज में सहायता कर सकती हैं। विदेशों में हमारे शंकराचार्यों की, विशेषतः ईस्ट अफ्रीका में, अनेक संस्थाएँ हैं। संस्कृत साहित्य का हिन्दी अनुवाद और राष्ट्रीय गीतों के संकलन की भी काफी संख्या में माँग है। इसी प्रकार हमारे देश के हिन्दी पत्रों के अनेक संवाददाता विदेशों से फीचर आदि लिखकर भेजते हैं, इनका सहयोग भी पाठकों की खोज में सहायक हो सकता है। जिन देशों से हिन्दी के कार्यक्रम रेडियो द्वारा प्रसारित होते हैं, वह भी ऐसा सूत्र है जिससे उस देश के हिन्दी पाठकों की खोज की जा सकती है। हिन्दी फिल्मों का भी विदेशों में बहुत बड़ा मार्केट बन रहा है। जो फिल्में विदेशों में प्रदर्शित हों, उसके प्रदर्शन के साथ उनके कथानकों से सम्बन्धित उपन्यासों के संस्करण समय से उन देशों में पहुँच जायँ तो बिक्री बढ़ाने में काफी सहायता मिल सकती है।

विदेशों में विशेषतः मॉरिशस, फिजी और ट्रिनिडाड में ऐसी हिन्दी संस्थाएँ हैं जो अपनी परीक्षाएँ चलाती हैं। इनकी अमूमन शिकायत रहती है कि हिन्दी के प्रकाशक उचित रीति से पत्रों का उत्तर नहीं देते और स्थानीय माँग के अनुसार पुस्तकें प्रकाशित नहीं करते। हिन्दी में छपा कोश, हिन्दी फ्रेन्च डिक्शनरी, हिन्दी अँग्रेजी डिक्शनरी की माँग बहुत है। रामायण के आफसेट पर छपे संतुलित संस्करण बहुत बिक सकते हैं। इस सन्दर्भ में ईरान में छपे उमर खैयाम की रूबाइयों के संस्करणों को आदर्श माना जा सकता है। उमर खैयाम की रूबाइयों के ईरान में ऐसे संस्करण छपे हैं, जिनमें मूल परशियन के साथ फ्रेंच, जर्मन, अँग्रेजी, स्पैनिश आदि भाषाओं में अनुवाद साथ-साथ मुद्रित हैं। आफसेट में छपे ये संस्करण इतने मनमोहक हैं कि विदेशों के मार्केट में इन्हें देखते ही ग्राहक खरीद लेता है। यही बात रामायण जैसे ग्रन्थ के लिए लागू की जा सकती है।

हिन्दी के लिए भी प्रयत्न जरूरी

विदेशों में हिन्दी पुस्तक विक्रय के लिए हमें आसानी से पुस्तक विक्रेता भी मिल सकते हैं। अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ के मंत्री विगत वर्षों में जब ब्रिटेन गये तो वहाँ कई पुस्तक विक्रेताओं को हिन्दी पुस्तक विक्रय के क्षेत्र में आने के लिए प्रोत्साहित किया। आज वे ही पुस्तक विक्रेता हिन्दी की पुस्तकों की अच्छी खपत कर रहे हैं। फिजी, मॉरिशस, गायना, ट्रिनिडाड में पहले से ही हिन्दी पुस्तक विक्रेता मौजूद हैं। आवश्यकता

सिर्फ इस बात की है कि नई पुस्तकों की सूचना उन्हें यथासमय मिलती रहे। सद्य प्रकाशित पुस्तकों के नमूने मिलते रहें।

इसी सन्दर्भ में एक विशेष सुझाव यह है कि नेशनल बुक ट्रस्ट विदेशों में (अमेरिका आदि में) जिस तरह अँग्रेजी के पुस्तकों की पुस्तक प्रदर्शनियाँ आयोजित करता है, वैसे ही उसे अपना कार्यक्षेत्र विदेशों के हिन्दीभाषी बहुल स्थानों में भी बढ़ाना चाहिए। हमारा शिक्षा मंत्रालय अँग्रेजी पुस्तकों की बिक्री के लिए जिस तरह प्रतिनिधि मण्डल भेजता है, उसी तरह उसके द्वारा हिन्दी पुस्तकों का बाजार खोजने के लिए अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ के सहयोग से प्रतिनिधि मण्डल भेजना चाहिए। अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ ने इस सम्बन्ध में केन्द्रीय सरकार के शिक्षा मंत्रालय से पत्राचार भी किया है। विदेशों में हमारे जो दूतावास हैं उन्हें हिन्दी पुस्तकों से सम्बन्धित सूचनाएँ अपने पास रखनी चाहिए और जब भी हिन्दी पुस्तकों के सम्बन्ध में कोई पूछताछ हो उसका उत्तर देने के लिए उन्हें सक्षम रहना चाहिए। यह खेद और लज्जास्पद स्थिति है कि देश की आजादी के पचास साल बाद भी आज इस बात की समुचित व्यवस्था नहीं हो सकी है। अँग्रेजी के प्रकाशनों के सम्बन्ध में तो दूतावास उत्तर दे देता है, लेकिन हिन्दी प्रकाशनों के सम्बन्ध में उनकी उदासीनता अभी भी बरकरार है। क्या समझदार पाठक और बुद्धिजीवी स्वतंत्र देश द्वारा राष्ट्रभाषा के प्रति बरती जा रही इस उपेक्षा एवं उदासीनता की नीति को अकर्मण्यता तथा दिमागी गुलामी के रूप में नहीं देखता?

जापान का प्रकाशक संघ 'बुक्स ऑफ जापान' नाम से एक मनमोहक सूची प्रतिवर्ष प्रंकाशित करता है। इसमें जापान से प्रकाशित अँग्रेजी के प्रतिनिधि प्रकाशनों की सूची रहती है। इसी पद्धति का अनुकरण अखिल-भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ को हिन्दी पुस्तकों की विदेशों में जानेवाली सूची के लिए करना चाहिए।

१९७२ में नई दिल्ली में आयोजित पहले विश्वपुस्तक मेले के अवसर पर पढ़ा गया प्रबन्ध।

❀

उच्च शिक्षा के लिए हिन्दी प्रकाशन

कालेज शिक्षा के लिए हिन्दी पुस्तकों का प्रकाशन हिन्दी के राजभाषा हो जाने के बाद देश की महत्वपूर्ण शिक्षा समस्याओं में से एक है। आज जबकि शिक्षा मंत्रालय ने स्पष्ट रूप से यह घोषित कर दिया है कि विश्वविद्यालयों में भी शिक्षा का माध्यम क्षेत्रीय भाषायें हों, तब हिन्दी का महत्व और भी बढ़ गया है। हिन्दी भारत की जनभाषा है और यह सर्वमान्य सिद्धान्त है कि जनभाषा में दी हुई शिक्षा छात्रों को सहज ही ग्राह्य होती है। शिक्षा की सार्थकता भी तभी मानी जाती है जब विद्यार्थी जनभाषा के माध्यम से पढ़-लिखकर अपने विषय के विशेषज्ञ बन सकें। इन सिद्धान्तों को दृष्टिगत रख हमें उपयुक्त विषय पर दो पहलुओं से विचार करना है: १. अब तक इस दिशा में हमनें क्या किया और हमें क्या सफलता मिली तथा २. इस बात का लेखा-जोखा करना कि हमारे मार्ग में क्या-क्या बाधायें हैं और अपने उद्देश्य में पूर्णत: सफल होने के लिए हम क्या करें।

उपरोक्त दोनों पहलुओं को स्पष्ट करने के लिए इस क्षेत्र से संबंधित निम्नलिखित छ: विषयों पर विचार करना होगा:

१. विश्वविद्यालयों का पाठ्यक्रम और हिन्दी की पुस्तकों की माँग,

२. कालेज की पुस्तकों का हिन्दी में लेखन,

३. प्राध्यापकों की हिन्दी प्रकाशनों में रुचि,

४. प्रकाशकों का कर्त्तव्य,

५. सरकार और सरकारी एजेन्सियाँ,

६. हिन्दी पुस्तकें और पुस्तकालय सेवा।

विश्वविद्यालयों का पाठ्यक्रम और हिन्दी की पुस्तकों की माँग

जब माँग होती है तो उत्पादन भी होता है। स्वातंत्रोत्तर काल में हिन्दी जब विधान द्वारा राजभाषा स्वीकृत हुई, तो निश्चय किया गया कि ऐसे प्रयत्न किए जायें जिससे हिन्दी धीरे-धीरे उच्च शिक्षा का माध्यम बने।

१९५२ में सरकार द्वारा नियुक्त आचार्य नरेन्द्रदेव कमेटी ने यह निर्णय लिया कि क्रमश: हिन्दी के माध्यम से उच्च शिक्षा छात्रों को दी जाय। इस निर्णय का स्वागत तो चतुर्दिक किया गया, परन्तु अनेक विश्वविद्यालयों में पढ़ाई का माध्यम हिन्दी को घोषित करने के बाद भी पढ़ाई प्राय: अंग्रेजी में ही होती रही। कुछ प्राध्यापक हिन्दी में पढ़ाना भी चाहते थे, परन्तु अधिकांश हिन्दी में पढ़ाने से हिचकते थे। उनका तर्क था कि विश्वविद्यालयों का जो वर्तमान पाठ्यक्रम है वह अंग्रेजी पुस्तकों के आधार पर बना हुआ है, अत: सहसा हिन्दी में पढ़ाना युक्तिसंगत न होगा। यहाँ यह तथ्य भुला दिया गया कि

पुस्तकों पर आधारित पाठ्यक्रम विदेशी शिक्षा-पद्धति पर आधारित है। इसे भी भुला दिया गया कि विदेशी लेखकों द्वारा लिखी पुस्तकें हमारे समाज और संस्कृति से मेल नहीं खातीं। फलत: कहीं हिन्दी और कहीं अंग्रेजी में पढ़ाई चली। कई बार यह भी घोषित किया गया कि धीरे-धीरे अंग्रेजी का स्थान हिन्दी ग्रहण करेगी, परन्तु हिन्दी को लाने का यह प्रयत्न आज तक सफल नहीं हुआ। १९५२ से ६५ तक राजनीतिक विवादों के कारण भारत सरकार, अनेक विश्वविद्यालय, युनिवर्सिटी ग्रान्ट्स कमीशन और कतिपय शिक्षाविदों के असहयोग के कारण हिन्दी उच्च शिक्षा के लिए पूर्णत: माध्यम न बन सकी। आज भी स्थिति यह है कि यदि पाठ्यक्रम में एक ही लेखक की एक पुस्तक हिन्दी और अंग्रेजी में साथ-साथ है, तो छात्रों को पुस्तक के अंग्रेजी संस्करण के माध्यम से पढ़ाया जाता है जिससे उन्हें विषय को भलीभाँति समझने में कठिनाई होती है। इसके ठीक विपरीत यदि विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में यह चीज स्पष्ट रूप से निर्देषित हो जाय कि हिन्दी क्षेत्रों में शिक्षा का माध्यम हिन्दी ही रहेगी, तो प्राध्यापक हिन्दी में पढ़ायेंगे और छात्र हिन्दी में पढ़ेंगे भी। बिहार, मध्यप्रदेश, राजस्थान, उत्तरप्रदेश, दिल्ली, गुजरात, महाराष्ट्र, हरियाना तथा हिमांचल प्रदेश सौभाग्य से ऐसे प्रदेश हैं जो हिन्दी माध्यम को उच्च शिक्षा के लिए अपनाना चाहते हैं, परन्तु इन प्रदेशों में भी दो तीन विश्वविद्यालयों के कारण कालेजों में हिन्दी माध्यम से शिक्षा देने का प्रशन उलझा पड़ा है। काशी हिन्दी का महान् केन्द्र है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय ने ही कालेज की शिक्षा में हिन्दी को पूर्णत: स्वीकार नहीं किया था। आज छात्रों के आन्दोलन तथा राज्य के शिक्षा मंत्री के कारण काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थिति बेहतर है। अभी तक जो प्रश्नपत्र वहाँ छपते थे, वह अंग्रेजी में ही थे। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में इतना अवश्य था कि मानविकी विषय के उत्तर हिन्दी में लिखे जा सकते थे, परन्तु विज्ञान और गणित विषय अंग्रेजी में ही रहे। कहा जाता है कि विज्ञान के प्राध्यापकों ने अंग्रेजी में ही अध्ययन और अध्यापन किया है, अत: हिन्दी में पढ़ाने में उन्हें असुविधा होगी। परन्तु वस्तुस्थिति यह है कि ये प्राध्यापक अंग्रेजी में भी ठीक से नहीं पढ़ा पाते। हिन्दी में पढ़ाने की चेष्टा ये इसलिए नहीं करते कि विश्वविद्यालय के अधिकारी विज्ञान की पढ़ाई हिन्दी में हो, यह चाहते ही नहीं। आवश्यकता इस बात की है कि यह स्पष्ट घोषित किया जाय कि प्रत्येक विषय हिन्दी में पढ़ाया जायेगा। यहाँ हम आचार्य नरेन्द्रदेव कमेटी के सुझाव की ओर ध्यान आकृष्ट करेंगे, जिसमें कहा गया था—कि विज्ञान के विद्यार्थियों को साथ-ही-साथ थोड़ा-थोड़ा मानविकी विषयों का ज्ञान भी कराया जाय। साथ ही यदि हिन्दी को पढ़ाई का माध्यम बनाना है, तो जनरल हिन्दी का पेपर भी रखा जाय। अहिन्दी भाषी प्रदेश के छात्रों के लिए जनरल हिन्दी का पाठ्यक्रम यदि कुछ कठिन हो, तो हिन्दी का पाठ्यक्रम सरल बनाया जा सकता है। परिणाम यह होगा कि विज्ञान के पढ़नेवाले हिन्दीभाषा से भी परिचित होते चलेंगे और इस तरह हिन्दी में पढ़ना-पढ़ाना भी आसान हो जायेगा। तमाम व्यवधानों के बावजूद आज हिन्दी के माध्यम से पढ़ाई का आग्रह बढ़ता जा रहा है। ऐसा प्रतीत हो रहा है कि कालान्तर में सभी विषयों में उच्च शिक्षा देने के लिए क्रमश: हिन्दी की पुस्तकों की मांग विश्वविद्यालयों में बढ़ेगी।

कालेज की पुस्तकों का हिन्दी में लेखन

विश्वविद्यालय स्तर की पुस्तकों का लेखन असामान्य कार्य है। इसमें हाई स्कूल या इण्टर की पुस्तकों के लेखन के स्तर से विषय को अधिक प्रामाणिकता से प्रस्तुत करना ही (विज्ञ) लेखक की कुशलता समझा जाता है। आज जो कुछ भी लिखा जा रहा है वह या तो बहुत ही अच्छा है, या बहुत ही निम्नकोटि का। अर्थ के इस युग में अच्छे लेखन तभी हिन्दी में आयेंगे जब ख्याति के साथ-साथ लेखक को आर्थिक लाभ भी हो। इस वातावरण को तैयार करने का पूरा दायित्व शिक्षाविद और विश्वविद्यालय के अधिकारियों पर है। वैसे आज हिन्दी में काफी पुस्तकें लिखी जा रही है, मानविकी विषयों पर तो बहुत-सी पुस्तकें लिखी गयी हैं। विश्वविद्यालय स्तर के सभी विषयों की हिन्दी पुस्तकों की संख्या अनुमानतः दस हजार होगी।

समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, इतिहास, भूगोल, मानवशास्त्र आदि विषयों पर हिन्दी में अनेक पुस्तकें आ गयी हैं। इस क्षेत्र में अभी भी नये प्रयत्न हो रहे हैं। इसे हिन्दी लेखन क्षेत्र में शुभ माना जाना चाहिए।

किन्तु जिस गति से हिन्दी माध्यम से पढ़नेवालों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ रही है, अच्छी पुस्तकें उस तेजी से नहीं आ रही हैं। कुछ विद्वान हिन्दी में न लिखने के दो तीन कारण बताते हैं—

(अ) हिन्दी में लिखने से वह सम्मान नहीं मिलता जो कि अंग्रेजी में उसी विषय पर लिखने पर मिलता है।

(ब) पाठ्य पुस्तकों के लिखने के बजाय वे शोध संबंधी कार्य करना अधिक पसन्द करते हैं।

(स) पुस्तकें लिखने के बजाय परीक्षा की कापियों को देखने अथवा प्रश्नपत्र बनाने में उन्हें ज्यादा लाभ होता है।

इन बातों का यह परिणाम हो रहा है कि पुस्तकों की पूर्ति अधिकांश ऐसे पेशेवर लेखक कर रहे हैं जो उच्च शिक्षा के अनुभव से विहीन हैं। इन पेशेवर लेखकों ने एक-एक पुस्तक की छः छः पुस्तकें बना दी हैं। सस्ती किस्म की प्रश्नोत्तरियों की बाजर में बाढ़-सी आ गयी है। ऐसी पुस्तकों के द्वारा हिन्दी में शिक्षा दिये जाने के कारण, हिन्दी के मार्ग में बहुत बड़ी बाधा है। यह भी शंका उत्पन्न हो रही है कि यदि ऐसी पुस्तकों से शिक्षा दी जाती रही तो शिक्षा का स्तर गिरेगा और हिन्दी का भी इससे हित नहीं होगा। इस समस्या का एक ही समाधान है कि विद्वान लेखकों का समादर हो और उन्हें प्रोत्साहित किया जाय ताकि वे हिन्दी में अच्छी पुस्तकें लिखें। यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि हिन्दी के विद्वान साहित्येतर विषय के लेखकों का सम्मान नहीं करते। साहित्य की सीमा अपार है, उसे संकुचित करना उचित नहीं। हिन्दी में उच्च शिक्षा की प्रामाणिक पुस्तकें प्रस्तुत कराने का दायित्व हिन्दी के साहित्यकारों पर भी है। यदि वे साहित्येतर विषयों के लेखकों का समादर करें तो इस क्षेत्र में काम करनेवाले लेखकों की कमी कभी नहीं रहेगी।

हिन्दी में विज्ञान के विषय में पुस्तकों की कुछ कमी है। इस दिशा में कुछ अधिक प्रयास की आवश्यकता है। हिन्दी में विज्ञान, गणित की पुस्तकें अभी तक अधिक नहीं निकल सकीं, इसके लिए हमारे लेखक दोषी नहीं हैं और न ही लेखकों की कमी है। परेशानी यह है कि विज्ञान के विषय विश्वविद्यालयों और कालेजों में हिन्दी के माध्यम से नहीं पढ़ाये जाते। कहा जाता है कि हिन्दी माध्यम से इन विषयों की पढ़ाने से स्टैंडर्ड गिर जायगा। समझ में नहीं आता कि जब रूस में रसियन, पोलैंड में पोलिश, दक्षिणी अमेरिका में स्पेनिश भाषा में विज्ञान पढ़ाया जा सकता है, तब क्या कारण है कि हम अपने देश की भाषा में विज्ञान के छात्रों को नहीं पढ़ा सकते। रूस ने विज्ञान के क्षेत्र में जो प्रगति की है वह विश्व के किसी अंग्रेजी में शिक्षित राष्ट्र के मुकाबले अधिक है। यह तथ्य इस बात को प्रमाणित करता है कि मातृभाषा में ज्ञान प्राप्त होने से पठन-पाठन में और अधिक सुगमता होगी।

कहा जाता है कि विज्ञान की पुस्तकें लिखने के लिए जो शब्दावलियाँ तैयार हुई हैं उनमें कुछ त्रुटियाँ हैं। शुरु-शुरु में हुए काम में कुछ न कुछ त्रुटियाँ होती ही हैं। यदि शब्दावलियों में कुछ त्रुटि दिखाई देती हो, तो लेखकों को यह भी छूट रहनी चाहिए कि वे अपने शब्द भी गढ़ सकें। विदेशों में एक ही विषय की पुस्तकों में अलग-अलग लेखकों ने अलग-अलग शब्दों के प्रयोग किए हैं। यदि हिन्दी-लेखन को इस क्षेत्र में स्वस्थ बनाना है तो शब्द भण्डार बढ़ाने की लेखकों को छूट होनी चाहिए। भारत सरकार की शब्दावलियों के अनुकरण के साथ-साथ लेखक अपने शब्द भी प्रस्तुत करें तो यह प्रयास लाभकर होगा।

उच्च शिक्षा के लिए यदि हमें अन्य भाषाओं के प्रामाणिक प्रकाशनों का हिन्दी में अनुवाद करना पड़े तो हमें उनको स्वीकार करना चाहिए। परन्तु अनुवाद के संबंध में हमें सतर्कता बरतने की जरूरत है। अनुवाद करते समय यह ध्यान में रखना होगा कि हमारी संस्कृति और समाज के अनुरूप उन पुस्तकों में व्यवहृत सिद्धान्त कहाँ तक ठीक बैठते हैं। उदाहरण के लिए यदि आप अमेरिकी समाजशास्त्र का हिन्दी में अविकल अनुवाद करना चाहते हैं, तो यह उपयुक्त नहीं। आज का भारतीय समाज मुख्यतः ग्रामीण जीवन पर आधारित है। अमेरिकी समाज हमारे व्यावहारिक समाज से भिन्न है। हर देश के सिद्धान्त, स्थान और काल के व्यावहारिक निर्णयों के आधार पर बनते हैं। ऐसी स्थिति में अनुवाद के मामले में हमें सहज होकर उन बातों को ही अपनाना है, जो हमारे लिए उपयोगी हों। विज्ञान के क्षेत्र में अनुवाद का बहुत ज्यादा उपयोग है।

हमें विज्ञान पढ़ने के लिए उन अन्तर्राष्ट्रीय शब्दों को अपनी भाषा में निःसंकोच अपनाना चाहिए जो बहुत प्रचलित हैं। भाषा के मामले में जापानी भाषा का उदाहरण अनुकरणीय है। जापानी भाषा में चीनी के अलावा फ्रेंच, इटालियन, जर्मन और अंग्रेजी भाषा के शब्द अपना लिए गये हैं। इस प्रकार जापानी जनता ने अपनी भाषा को इतना सरल कर लिया है कि वहाँ के छात्रों को विज्ञान आदि के विषयों को जापानी में पढ़ने में कोई असुविधा नहीं होती। विज्ञान विषय का दूसरी भाषा से हिन्दी में अनुवाद करनेवाले

हमारे देश में कम हैं। परिणामत: कभी-कभी अनुवाद त्रुटिपूर्ण रह जाते हैं। साथ ही अनुभव की कमी के कारण अनुवादक भारतीय सन्दर्भों का विवरण साथ-साथ नहीं दे पाते! परिणामत: कभी-कभी यह होता है कि प्रामाणिकता के लिए मूल पुस्तक देखनी पड़ती है। अनुवाद के मामले में भावानुवाद की बात भी कही जाती है। हर जगह भावानुवाद जरूरी नहीं है, परन्तु इसका निश्चय तो होना ही चाहिए कि मूल पुस्तक की भाषा के मुकाबले अनूदित पुस्तक की भाषा समर्थ, भावमयी और प्राँजल हो।

उच्च शिक्षा के लिए विज्ञान और गणित की पुस्तकें हिन्दी में छापने का प्रयास काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के डा० ब्रजमोहन के निर्देशन में हिन्दी प्रकाशक मंडल वाराणसी से १९४५ में हुआ। स्वतंत्रता पूर्व लखनऊ से विश्व भारती का प्रकाशन भी एक साहसपूर्ण कदम था। डा० ब्रजमोहन कृत गणितीय कोश १९४० से ही तैयार हो रहा था, परन्तु उसका प्रकाशन १९५६ में हुआ।

प्राध्यापकों की हिन्दी प्रकाशनों में रुचि

कालेज की पुस्तकों का हिन्दी में प्रकाशन हो, इसके लिए प्राध्यापकों की सहायता और रुचि अपेक्षित है। यदि प्राध्यापक हिन्दी में पढ़ाना शुरु कर दें तो उनके सामने जो व्यावहारिक कठिनाइयाँ आयेंगी, उनसे लेखकों को अनुभव प्राप्त होगा। साथ ही छात्र भी बड़ी आसानी से विषय समझने लगेंगे। संभव है कि कोई तकनीकी प्रयोग भाषा का न हो, परन्तु कालान्तर में भाषा का एक स्वरूप बन जायेगा, जिससे कठिनाइयाँ तथा हिचकिचाहट कम हो जाएगी, जिसे प्राध्यापक प्रारम्भ में अनुभव करते हैं।

एक तथ्य इसी प्रसंग में और है। विभिन्न कालेजों के प्राध्यापक अपने कालेज में अपनी ही लिखी पुस्तकें चलाते हैं, चाहे पुस्तकें स्तर की हों या न हों। यदि बड़े-बड़े कालेजों में अपनी-अपनी लिखी पुस्तकें चलाने की पद्धति चल पड़ी, तो हो सकता है कि अनुभवी लेखक, जिनका पुस्तकों की बिक्री में प्रभाव न हो, पुस्तकें न लिखें। प्राध्यापक पुस्तकों का चयन करते समय यदि प्रभाव के चक्कर में न पड़ें और विद्वान लेखकों की पुस्तकों का ही व्यवहार करें तो इससे अनुभवी लेखकों को प्रोत्साहन मिलेगा।

प्रकाशकों का कर्त्तव्य

उच्च शिक्षा की पुस्तकें हिन्दी में प्रकाशित करने के लिए हिन्दी प्रकाशकों की अपनी निश्चित भूमिका है। उन्हें हिन्दी की उच्च शिक्षा की पुस्तकें यथासम्भव प्रयत्न कर प्रकाशित करना अपना कर्त्तव्य समझना चाहिए। इस विषय में कुछ बिन्दुओं पर सतर्कता बरतनी होगी:

१. विज्ञ और अनुभवी लेखकों की ही पुस्तकें प्रकाशित की जाएँ,
२. प्रत्येक विषय की पुस्तकें लिखी जाने के बाद सम्पादित अवश्य करायी जाय ताकि उनमें भूलें न रहें,
३. पुस्तकों का मूल्य यथासम्भव कम रखा जाय,

४. प्रकाशक विषयविशेष के प्रकाशन में अपने को स्पेशलाइज करें,

५. मुद्रण सावधानी से किया जाए,

६. तात्कालिक लाभ के लिए ऐसी पुस्तकें न प्रकाशित की जाएँ जो शिक्षा का स्तर गिराती हों तथा

७. प्रचार एवं सूची-सेवा अपनायी जाय।

उपरोक्त सात सूत्रों को दृष्टिगत रख उच्च शिक्षा की पुस्तकों के प्रकाशन किए जाएँ तो प्रकाशकों का हिन्दी के प्रति कर्त्तव्य पालन समझा जाएगा। ऐसी पुस्तकों की पाण्डुलिपियों का सम्पादन बहुत ही कुशल व्यक्ति के द्वारा कराना चाहिए। बिना सम्पादन के कालेज की पुस्तकों की पाण्डुलिपियाँ प्रेस में देने की कल्पना करना व्यापारिक दुस्साहस तो है ही, साथ ही उस उद्देश्य के साथ विश्वासघात है जो ऐसे प्रकाशनों के उद्देश्य में निहित है। कुशल सम्पादक की कलम लेखक की रचना में जीवन डाल सकती है, परन्तु यह परखने की आवश्यकता है कि सम्पादक लेखक से ज्यादा अनुभवी है या नहीं। मूल्य के प्रश्न पर हमारे देश में बहुत टिप्पणियाँ की जाती हैं। हिन्दी में पुस्तकों के छपने का अर्थ यही मान लिया जाता है कि पुस्तकों का मूल्य कम होना चाहिए। हम इस सिद्धान्त के समर्थक हैं कि पुस्तकों का मूल्य कम रखा जाय, परन्तु साथ ही आलोचकों को यह भी देखना होगा कि पुस्तक कितनी बिक सकती है और उसकी लागत कितनी है। उचित मूल्य होते हुए भी मूल्य में और कमी की माँग करने से भय है कि लेखक और प्रकाशक इसे अपने क्षेत्र में हस्तक्षेप समझें। हमारे देश में लो-प्राइज्ड टेक्स्ट बुक—जापान, अमेरिका, ग्रेट ब्रिटेन से आ रही हैं। अनेक विदेशी संस्थान विश्वविद्यालय स्तर के प्रकाशन हमारे देश में कर रहे हैं। उनके मुकाबले हिन्दी पुस्तकों के दाम बहुत ही कम हैं। फिर भी हिन्दी पुस्तकों के मूल्य पर एतराज होता है जबकि उसकी तुलना में विदेशों से आयी हुई तथाकथित लो-प्राइज्ड बुक्स महँगी होती हैं। इन तथ्यों के बावजूद भी हिन्दी के प्रकाशकों को यथाशक्ति हिन्दी पुस्तकों के मूल्य कम रखना चाहिए। इससे विद्यार्थी सहज ही इन्हें क्रय कर सकेंगे। किसी एक विषय का स्पेशलाइजेशन करने की बात बहुत ही अच्छी है। यदि किसी प्रकाशक के पास इतिहास का पूरा सेट मिले, दूसरे के पास इंजीनियरिंग की पुस्तकों का सेट, तीसरे के पास भूगोल का सेट, तो परिणाम यह होगा कि इससे प्रत्येक प्रकाशक लाभान्वित होगा, साथ ही साथ आज की परिस्थिति में पुस्तकों की चाह करनेवाले कालेजों के प्राध्यापकों और विद्यार्थियों को भी पुस्तकों को खोजने में सुविधा होगी। वे विषय विशेष की पुस्तकें अमुक विषय के प्रकाशकों से आसानी से प्राप्त कर लेंगे। ऐसे स्पेशलाइजेशन से एक लाभ यह भी होगा कि लेखकों को यह भी पता चल सकेगा कि कौन-सा प्रकाशक अमुक विषय की पुस्तकें प्रकाशित करता है, जिससे वह आसानी से अपनी पाण्डुलिपियों को प्रकाशक विशेष के पास दे सकेगा।

मुद्रण के संबंध में बहुत ही सावधानी-बरतने की जरूरत है। हिन्दी में टाइप और मात्रा टूटने का मर्ज बहुत ही पुराना है। उच्च शिक्षा की पुस्तकों में टाइप टूटना, प्रूफरीडिंग की भूलें, किसी भी हालत में सह्य नहीं है। अभी हमारे देश में लेटर प्रेस

प्रिंटिंग का प्रचलन है, परन्तु अब समय आ गया है कि हम उच्च शिक्षा की पुस्तकें आफसेट प्रोसेस से प्रकाशित करें, ताकि मात्रा टूटने और रद्दी छपाई का प्रश्न हल हो सके। प्रूफरीडिंग के संबंध में इतनी सावधानी अवश्य बरतनी चाहिए कि जब तक प्रूफ में एक भी भूल रहे, तब तक छपाई के लिये प्रिन्ट आर्डर न दिया जाय।

प्रकाशकों को ऐसे नोट्स छापना बन्द कर देना चाहिए, जिन्हें पढ़कर लड़के मौलिक पुस्तकें छोड़ देते हैं और परीक्षा देने के ख्याल से केवल उन नोट्स को ही पढ़ते हैं। यदि ऐसे नोट्स पर रोक नहीं लगायी गयी तो शिक्षा की स्थिति बदतर हो जायेगी।

उच्च शिक्षा की पुस्तकें हिन्दी में काफी निकली हैं, परन्तु अर्थाभाव के कारण संबंधित प्रकाशक इन पुस्तकों का समुचित प्रचार नहीं कर पाते। हमें कोई न कोई ऐसा माध्यम खोज निकालना है, जिससे हिन्दी में प्रकाशित होनेवाली उच्च शिक्षा की पुस्तकों का विवरण संस्थाओं और व्यक्तियों तक पहुँचाया जा सके। बहुत-सी पुस्तकों की सूचियाँ सरकार ने छापी हैं, परन्तु वे सरकारी गोदामों में सड़ रही हैं। प्रकाशन का प्रचार तो प्रकाशकों को करना ही चाहिए। इस तरह की पुस्तकों की विवरण पत्रिका प्रतिमाह प्रकाशित कर पाठकों में वितरित करें तो यह मंगलसूचक होगा। हिन्दी सेवा की दृष्टि से इसे श्लाघनीय भी कहा जाएगा।

सरकार और सरकारी एजेंसियाँ

सरकार और सरकारी एजेन्सियों के संबंध में भी दो शब्द कहना है। आज जो स्थिति है उसमें हिन्दी में उच्च शिक्षा प्राप्त करना स्वयं में एक अयोग्यता समझी जाती है। अंग्रेजी में दक्ष होना ही विद्वत्ता की कसौटी है। हिन्दी में यदि अनुभव और विचारों का सागर भी उड़ेल दिया जाय तो उसका कोई मूल्य नहीं है। अंग्रेजी में धारा प्रवाह व्यर्थ की बातें बोल जाइये तो आपकी प्रतिष्ठा होगी। प्रसन्नता की बात है कि हिन्दी के प्रति हमारी सरकार का ध्यान आकृष्ट हुआ है। यूनियन पब्लिक सर्विस कमीशन में हिन्दी में उत्तर लिखने की छूट दे दी गयी है। विश्वविद्यालयों के ऐसे छात्रों का समादर होना चाहिए जो हिन्दी में पढ़कर अपने कार्य क्षेत्र में आये हैं। यदि कोई व्यक्ति अपने विषय को अपनी मातृभाषा में अच्छी तरह व्यक्त कर सकता हो तो उसे अंग्रेजी न जानने के कारण नाकाबिल करार देना न्याय नहीं कहा जायेगा। यह स्पष्ट होना चाहिए कि हिन्दी के अतिरिक्त जो क्षेत्रीय भाषाएँ हों उनमें भी उच्च शिक्षा का साहित्य निकाला जाय। प्रत्येक छात्र को जो हिन्दी के माध्यम से पढ़ना नहीं चाहते हैं, अपनी क्षेत्रीय भाषा में अध्ययन का अधिकार हो। सरकार और सरकारी एजेंसियों को नौकरियों के मामले में योग्यता का मापदण्ड अंग्रेजी को न मानकर, क्षेत्र की भाषा में योग्यता को मानना चाहिए।

हिन्दी पुस्तकें और पुस्तकालय सेवा

प्रायः देखा जाता है कि उच्च शिक्षा पर प्रकाशित हिन्दी पुस्तकें कालेज के पुस्तकालयों में नहीं मिलतीं। संबंधित विषयों के प्राध्यापक या तो सूचना के अभाव में

लाइब्रेरियन को संबंधित पुस्तकों की सूची नहीं दे पाते अथवा वे हिन्दी की पुस्तकों को महत्वहीन समझ अंग्रेजी की पुस्तकें ही खरीदने पर जोर देते हैं। कहीं-कहीं हिन्दी की पुस्तकें चुनने का भार हिन्दी के अध्यापकों पर सौंपा जाता है जो कि विषय में दिलचस्पी न होने के कारण पुस्तकों के बारे में प्राय: अनभिज्ञ रहते हैं। साहित्येतर पुस्तकों की सूची बनाने में उन्हें असुविधा होती है। कहीं-कहीं लाइब्रेरियन महोदय हिन्दी पुस्तकों की खरीद में दिलचस्पी ही नहीं लेते। उनकी शिकायत रहती है कि उन्हें हिन्दी पुस्तकों की सूचियाँ तथा प्रकाशन संबंधी सूचनाएँ नहीं मिलतीं। उनकी ओर से यह भी शिकायत रहती है कि आर्डर देने पर भी पुस्तक-विक्रेता हिन्दी की पुस्तकें सप्लाईं नहीं करते। अत: हिन्दी के प्राध्यापकों, पुस्तक-विक्रेताओं और प्रकाशकों पर एक विशेष दायित्व आ जाता है कि वे हिन्दी में सूची-सेवा का एक जबरदस्त आन्दोलन प्रारम्भ करें। साथ ही हम साहित्येतर विषय के प्राध्यापकों और लाइब्रेरियनों से अपील करें कि वे हिन्दी की पुस्तकें खरीदने और खरीदवाने में सहायक हों।

अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ के १९६५ में आयोजित जयपुर अधिवेशन की विचार गोष्ठी में पढ़ा गया प्रबन्ध।

❀

हिन्दी प्रकाशन ने अपनी धरती की उपेक्षा की

हिन्दी प्रकाशन के दो सौ वर्ष पुराने इस बरगद को देखता हूँ, तो सोचता हूँ कि इसकी जड़ें और भी गहरी होनी चाहिए थीं। इसकी छाया और भी विशाल होती, जिससे विचारों की शीतलता मिलती। पर हमारी आस्था और विश्वास को उस समय अचानक धक्का लगा, जब हमें इसकी जड़ें उखड़ी दिखाई दीं। हिन्दी प्रकाशन अपने पाठकों को छोड़ता चला जा रहा है। पाठक हमारी जड़ हैं। हम उन्हीं पर पनपते हैं। उन्हीं से रस (धन) लेकर हम उन्हीं के लिए विचारों का भोजन देते हैं। हमारा पन्ना-पन्ना इन्हीं जड़ों से जुड़ा है। पाठक, लेखक, प्रकाशक और पुस्तक विक्रेता देश की वैचारिक क्रांति के एक अंग हैं। इसमें किसी से किसी अंग के गायब हो जाने, किसी अंग के टूट जाने पर फिर किसी प्रकार की वैचारिक-क्रांति की परिकल्पना नहीं की जा सकती।

आज स्थिति विषम है। आज यह भी नहीं हो रहा है, बल्कि पूरा वट ही अपनी जड़ छोड़ चुका है। जिन जड़ों पर वह खड़ा था, अब वे ही सूख चली हैं। पाठकों से अब उसका संबंध छूट चुका है और तमाशा यह है कि इसकी उसे परवाह भी नहीं, क्योंकि उसने अपनी शाखाएँ दूसरे वृक्षों के सहारे पर डाल रखी हैं और उन्हीं से रस चूस कर अपनी अस्मिता बनाने की कुचेष्टा यह वृक्ष कर रहा है।

आज हिन्दी प्रकाशन का अक्षयवट आकाश-बेलि हो गया है। आकाश बेलि यानी बिना जड़ का पौधा, जिसकी जड़ें नहीं होती हैं, जो दूसरे वृक्षों के तनों में अपनी जड़ें डाल कर उसका रस चूसता है। धरती से जिसका संबंध नहीं, लगाव नहीं, उसकी वृत्ति कोरी आकाशीय है; जो पिछले दो दशकों तक आत्मजीवी था, आज परजीवी हो गया। अपना जीवन-रस आज वह स्वयं नहीं बनाता, दूसरों से लेता है।

आज के हिन्दी प्रकाशक पाठकों के लिए नहीं छापते। उसे चिन्ता भी नहीं है कि पाठक हमसे चाहता क्या है? उसकी हमसे अपेक्षाएँ क्या हैं? एक अजीब-सी स्थिति बन गई है, न प्रकाशक पाठकों की अपेक्षाओं की ओर देखता है और न वे हमारी। ऐसी स्थिति में हमारे अस्तित्व का आधार केवल हमारी मुखापेक्षिता रह गई है। हम उनके जायज नाजायज सहयोग पर आश्रित हो गए हैं।

जायज सहयोग वह है जो सबसीडी के रूप में हिन्दी के कुछ चक्री एवं कुचक्री प्रकाशकों और लेखकों को प्राप्त होती है। ऐसी सबसीडी केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय और शिक्षा मंत्रालय की कृपा के परिणाम होते हैं। लेखक और प्रकाशक अपनी रचनाओं की गुणवत्ता की ओर ध्यान न देकर इन विभागों की सबसीडी की ओर विशेष ध्यान देते हैं और उनका कृपाकांक्षी होना अपना कर्त्तव्य समझते हैं।

यद्यपि इन सरकारी संस्थाओं ने भी बड़े नाटक फैला रखे हैं। तथापि यहाँ भी समीक्षा समितियाँ हैं जिनमें सबसीडी दी जानवाली रचनाओं की समीक्षा होती है। सब बाकायदे नियम से होता है, पर रेवड़ियाँ आपस में बाँट कर खा ली जाती है। इस सबसीडी देने के पीछे उद्देश्य कितना पवित्र था? ऐसे ग्रंथ जिनके प्रकाशन में प्रकाशकों को कोई व्यापारिक लाभ नहीं है और जिनका प्रकाशन हिन्दी संसार के लिए आवश्यक है, उनका प्रकाशन इन सबसीडी योजनाओं के अन्तर्गत होता तो पाठकों को कितना लाभ होता, पर उद्देश्य की इस पवित्रता को भ्रष्टाचार चबा गया।

जब यह योजना नहीं थी तब वास्तविकता ठीक इसके विपरीत थी, उस समय जितने महत्वपूर्ण ग्रंथ निकले, उतने आज नहीं। कबीर, सूर, तुलसी को प्रकाशित होने के लिए किस सबसीडी की आवश्यकता हुई? भारतेन्दु, प्रसाद, प्रेमचंद, देवकीनंदन खत्री को प्रकाशित करने के लिए किसी सबसीडी की आवश्यकता नहीं पड़ी। हाँ, इन कवियों और लेखकों के विषय में भारी भरकम समीक्षा ग्रंथ सबसीडी की बैसाखियों के सहारे अवश्य प्रकाशित होते हैं। बैसाखियों की अपनी एक विशेषता होती है। उनका सहारा तब लिया जाता है जब अपना सामर्थ्य एवं क्षमता क्षीण हो जाती है या होजाने की आशंका होती है। 'कम से कम करो और अधिक से अधिक कमाओ' वाली हमारी प्रवृत्ति ने हमें धनलोलुप बनाने के साथ-साथ कोढ़ी भी बना दिया और बैसाखियों के आश्रित कर दिया। हम जनता के पास न जा कर सीधे सरकार के पास जाते हैं। आज हिन्दी प्रकाशक जनपथ न पकड़ कर राजपथ पकड़ता है, क्योंकि वह सीधा है, आसान है और वैभव की ओर जाता है, उसमें जोखिम नहीं है। परदे के पीछे कमीशन दीजिए और टेबुल के नीचे से सरकारी आर्डर प्राप्त कर लीजिए।

परिणाम यह है कि अधिकांश प्रकाशक जनता के लिए नहीं छापते। वे सरकारी आर्डरों के लिए छापते हैं और उस मायाचक्र की तीली बनते हैं, जिसकी धुरी में भ्रष्टाचार है। जिसके तहत दस रुपए लागत की पुस्तक सौ रुपये में बेची जाती है और पचास रुपये प्रति पुस्तक कमीशन देकर भी चालीस प्रतिशत कमाया जा सकता है।

'ब्लैक बोर्ड आपरेशन' में सभी राज्यों में राजकीय खरीद हुई। पूरे देश में करोड़ों की हिन्दी की पुस्तकें राजकीय स्तर पर खरीदी गयीं। पर योजनाबद्ध रूप से ऐसा षड़यंत्र रचा गया कि जिससे स्तरीय और आवश्यक पुस्तकें पराजित हो गईं और कमीशन विजयी हुआ। हमारे वरेण्य मित्र श्री यशपाल जैन कहते हैं कि बिहार में ब्लैक बोर्ड आपरेशन की खरीद में सस्ता साहित्य मंडल की केवल दो पुस्तकों का नाम आया यानी भ्रष्टाचार-महाजाल को वे भी पार न कर पायीं।

सरकारी प्रकाशनों के संदर्भ में तो यह स्थिति और भी भयानक हो गयी। सवाल है कि सरकारी संस्थायें कहाँ से पैसा लाकर अफसरों को कमीशन दें? उनके द्वारा पैसे का काला धंधा कैसे चले! परिणामत: साहित्य अकादेमी, सरकारी हिन्दी समितियों, हिन्दी संस्थानों तथा हिन्दी अकादमियों के प्रकाशन अपने कोठार में ही सड़ते हैं। यद्यपि उनके प्रकाशन अच्छे हैं, सस्ते हैं और महत्वपूर्ण हैं। पर ले जायें तो कहाँ ले जाएँ? खरीददार

गायब हैं। सुना है ऐसी स्थिति में साहित्य अकादमी को अपनी पुस्तकें बेचने के लिए प्रदर्शनियाँ लगानी पड़ीं और ७५ प्रतिशत कमीशन पर उन्हें बेचना पड़ा।

यह स्थिति क्यों आयी? क्योंकि हिन्दी प्रकाशकों ने पाठकों से सीधा संवाद छोड़ कर सरकारी 'गुफ़्तगू' आरम्भ कर दी, जिससे पाठक उपेक्षित होता गया। उसकी तलाश की आवश्यकता नहीं समझी गई, क्योंकि व्यापारिक दृष्टिकोण से यह दूर का सौदा था और जोखिम भरा रास्ता था। इसमें एक हाथ दे और दूसरे हाथ ले की संभावना नहीं थी।

पाठकों की खोज के लिए पुस्तक-मेलों और प्रदर्शनियों की योजना बनाई जाती है। राष्ट्रीय पुस्तक मेले लगाये जाते हैं। पुस्तकें जनता के बीच जाती हैं। जनता पुस्तकों तक आती है। प्रकाशकों और पाठकों में परिसंवाद स्थिर होता है। पाठक-प्रकाशकों के प्रयत्न और प्रकाशक पाठकों की आवश्यकता से परिचित होता है। जनता की पठन रुचि को नया आयाम मिलता है। प्रकाशन आन्दोलन को नव क्रान्ति एवं नवलय प्राप्त होता है।

पिछले तीन दशकों से हमारे चिन्तन और मानवीय मूल्यों में भी परिवर्तन आया। विज्ञान और तकनीकी के विकास ने जीवन के पुराने मूल्यों को झकझोर दिया। पहले जहाँ हर समझदार के बिस्तर पर चादर की तरह पुस्तक अनिवार्य थी, वहाँ अब ट्रांजिस्टर, टेपरिकार्डर और टी०वी० ने पुस्तकों का स्थान ले लिया। फिर पुस्तकों की जो भी संभावना बची भी थी, उसे ड्राइंग रूम स्तर की पत्रिकाओं ने ले लिया। पुस्तकें बेचारी ड्राइंग रूम की आलमारियों में बन्द हो गईं।

ऐसी स्थिति में हमें हिन्दी प्रकाशन के लिए नया आंदोलन खड़ा करना होगा। ऐसा आंदोलन जो पाठकों की तलाश करे, जो सरकारी भ्रष्टाचार का विनाश करे तथा हिन्दी प्रकाशकों को सरकार का मुखापेक्षी होने से बचाये। इसके लिए मीडिया को भी जगाना होगा। मीडिया यों तो हमारे पक्ष में है, पर हम उसका सहयोग प्राप्त करने की सही चेष्टा नहीं करते। चिन्तनीय है कि हम क्या करें?

हमें १४ सितम्बर 'हिन्दी दिवस' के दिन पूरे देश के बड़े-बड़े शहरों से लेकर कस्बों तक में पुस्तकों की प्रदर्शनियों और बाल-मेलों को लगाना चाहिए। देश-विदेश के बड़े रचनाकारों की शताब्दियों के अवसर पर उनकी ग्रंथावलियाँ सस्ते दामों में छापना चाहिए। भारतेन्दु, बंकिम, शरत्, वृन्दावनलाल वर्मा, देवकीनंदन खत्री, कबीर, रामेश्वर शुक्ल अंचल तथा प्रतापचन्द्र चन्दर आदि की ग्रंथावलियाँ निहायत कम मूल्यों में छपी हैं और वे काफी बिकीं। दिल्ली में प्रकाशित बहुमेली ग्रंथावलियों की तुलना में बिक्री की दृष्टि से ये कम नहीं रहीं, जबकि सरकारी खरीद की परवाह नहीं की गयी।

इससे जाहिर है कि पाठक हैं, केवल उनकी तलाश नहीं हुई और उनकी अपेक्षाओं की ओर ध्यान नहीं दिया गया। हिन्दी ने पाठकों की धरती छोड़ दी है। हम आकाशीय हो गये हैं।

हिन्दी प्रकाशन समस्याएँ और संभावनाएँ

आजादी के पूर्व हिन्दी की पुस्तकों को खरीदना और पढ़ना आजादी की लड़ाई का एक अंग और देशभक्ति का प्रतीक माना जाता था। कांग्रेस अधिवेशन, हिन्दी साहित्य सम्मेलन और आर्य समाज के अधिवेशनों में पुस्तकों की प्रदर्शनियाँ लगती थीं, जिसमें हिन्दी की पुस्तकें हाथों-हाथ बिक जाती थीं।

बापू प्रतिदिन अपनी प्रार्थना सभाओं और कांग्रेस अधिवेशनों में हिन्दी में भाषण करते थे। उनका हिन्दी में बोलना और भाषण देना हिन्दी को प्रोत्साहित करता था। प्रकारान्तर से उनकी यह प्रवृत्ति हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने के लिए पूर्व पीठिका तैयार कर रही थी।

इन समाजसेवियों ने एक ओर हिन्दी को जनमानस में बैठाया तो दूसरी ओर हिन्दी प्रकाशन को भी दिशा दी। राष्ट्रीय और नैतिकता से प्रेरित पुस्तकें हिन्दी में प्रकाशित होने लगीं। साहित्य जनता के लिए लिखा जाने लगा। प्रकाशकीय दृष्टि भी जनता तक पहुँचने लगी। उस समय शासन से खरीद की न तो सम्भावना थीं और न प्रकाशक ऐसी आशा ही करता था।

वैसी स्थिति आज नहीं है। हिन्दी प्रकाशन को अनेक प्रोत्साहन मिल रहे हैं यथा पुरस्कारों की बाढ़, सभी मंत्रालयों द्वारा पुस्तकों की खरीद, समस्याओं को सुलझाने के लिए विचार-गोष्ठियों के आयोजन, पुस्तक मूल्य रखने की स्वतंत्रता, रिसर्च की सुविधा, मुद्रण की उत्कृष्टता, पाठकों की संख्या में वृद्धि आदि ऐसी अनुकूल स्थितियाँ हैं जो पहले नहीं थी। परन्तु इनका हम कितना लाभ उठा रहे हैं? इन सुविधाओं को भोगते हुए हमारा हिन्दी प्रकाशन किस सीमा तक आगे बढ़ा है? हम जनता से कितना जुड़ते या उन्हें कितना छोड़ते जा रहे हैं।

इस सभी सुविधाओं के होते हुए भी हमारी समस्याओं में बढ़ोत्तरी ही हुई है। पुस्तकों के एक स्थान पर सुलभ न होने की कठिनाइयाँ, सूची सेवा का अभाव, पुस्तकों के बढ़ते हुए मूल्य, पुस्तकालय आंदोलन में त्रुटियाँ और खरीद में अनियमितताएँ, जनता का प्रकाशन जगत से दूर हटते जाना, प्रकाशकों द्वारा पुस्तकों का अधिक मूल्य रखकर तथा अरुचिकर पुस्तकें छापकर पठन-रुचि को नष्ट करने का निरन्तर प्रयास करना, हिन्दी सेवी जन प्रतिनिधियों से सम्पर्क न रख पाना ऐसी समस्याएँ हैं जो आज प्रकाशन की अस्मिता को ही नष्ट कर रही हैं, जिन पर नियंत्रण करना आवश्यक है।

वर्तमान में परिस्थिति पहले की अपेक्षा बदली है। हम शिक्षा की ओर बड़ी तेजी से बढ़ रहे हैं। सरकार का लक्ष्य है प्रति एक हजार की आबादी पर एक प्राइमरी स्कूल खोलना और उसके साथ बच्चों के लिए एक छोटी लाइब्रेरी बनाना, इन सभी लाइब्रेरियों के लिए पुस्तकें चाहिए। आँकड़ों के माध्यम से एक दूसरी तस्वीर सामने आती है। देश में एक लाख की आबादी से ऊपरवाले ३२१९ नगर हैं। इन सभी नगरों में हिन्दी की एक-एक पुस्तक भी हम बेच सकें तो कम-से-कम बिकनेवाली पुस्तक की भी तीन हजार प्रतियों का संस्करण बिकना ही चाहिए।

आजादी के पूर्व देश में मात्र ३० करोड़ लोग शिक्षित थे। सन् ८१ में यह संख्या ४३ करोड़ ७० लाख हो गयी। इस मंथर गति से चलने पर भी सन् २००० तक ५० करोड़ लोग शिक्षित हो जायेंगे। प्लानिंग के इस युग में हमें अभी से आनेवाले बालकों के लिए योजनाएँ बनानी होंगी। करोड़ों की संख्या में बढ़नेवाले शिक्षितों के लिए पुस्तकें तैयार करनी होंगी।

एक स्थिति और है। हमारे देश में २/३ आबादी ४० वर्ष उम्र के लोगों की है। इस उम्र के लोग अच्छे पाठक हैं, परन्तु स्थिति यह है कि इस वर्ग में पॉकेट बुकों और पत्र-पत्रिकाओं की माँग अधिक है। सुरुचिपूर्ण पुस्तकों से यह वर्ग दूर हटता जा रहा है। दूसरी ओर आज राजधानी दिल्ली साहित्य-रचना और प्रकाशन पर हावी है और राजधानी पर विदेशी साहित्य हावी है। आसान कमाई के लालच में प्रकाशकों ने परम्परागत सत्साहित्य छापने की पद्धति छोड़ दी है और रुचि बिगाड़नेवाले प्रकाशनों की ओर ज्यादा ध्यान दिया है। इससे उनकी कमाई तो बढ़ी है, पर इसका परिणाम भयंकर हो रहा है।

नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, साहित्य अकादमी, विभिन्न राज्यों में खुली हिन्दी तथा भाषायी अकादमियों, स्वयंसेवी संस्थाओं, सरकारी मंत्रालयों द्वारा प्रकाशित पुस्तकें, विधायिकाओं द्वारा छपी पुस्तकें, विश्वविद्यालयों के प्रकाशन, धार्मिक संस्थाओं की कृतियाँ गोदामों में सड़ रही हैं। सबसे बड़ी समस्या है प्रकाशकों, पुस्तक-विक्रेताओं और विभिन्न प्रकार की प्रकाशन संस्थाओं में विक्रय संबंधी व्यवस्था करानेवाली कड़ी का अभाव।

सरकारी खरीद के लिए छपनेवाला साहित्य पंचतंत्र का वह बाघ है जो सोने का कड़ा दिखाकर सत्साहित्य के बेचारे ब्राह्मण को निगल जा रहा है।

जहाँ एक ओर अधिकांश प्रकाशक सरकारी खरीद पर आश्रित दिखाई दे रहे हैं, वहीं दूसरी ओर हिन्दी में कुछ अच्छे बुक क्लब भी चल रहे हैं। इन क्लबों के कुछ सुप्रसिद्ध लेखकों की कृतियाँ, कम मूल्य और अच्छी विषय वस्तु होने के कारण चार-चार संस्करण तक प्रकाशित हो चुकी हैं। यह इस बात का प्रमाण है कि जनता में पढ़ने की रुचि है, बशर्ते उचित मूल्य की अच्छी पुस्तकें सुलभ हों।

कम्पलसरी बुक रजिस्ट्रेशन ऐक्ट वाली नेशनल लाइब्रेरियों के आँकड़ों को देखने से पता चलता है कि देश में जहाँ अन्य भाषाओं के प्रकाशनों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ रही है वहीं हिन्दी प्रकाशनों में आबादी के अनुपात से क्रमश: गिरावट आई है।

स्थिति इतनी बिगड़ गयी है कि अब हमें अपनी समस्याएँ कम्प्यूटर में भरनी होंगी और उसी के माध्यम से इन समस्याओं का समाधान खोजना होगा। हमें गंभीरता से विचारना होगा कि हम केवल सरकारी बिक्री पर आश्रित रहें अथवा अन्य ऐसे माध्यमों को भी अपनाएँ, जिससे सामान्य जनता तक पुस्तकें पहुँच सकें। सामान्य जनता में पहुँच के लिए हमें समाचार पत्रों का सहयोग, जनप्रतिनिधियों से सम्पर्क तथा वितरण-प्रणाली में सुधार के माध्यम खोजने होंगे।

हिन्दी प्रकाशन जगत में फैली अनैतिकता के कारण साहित्य लेखन और प्रकाशन का समुचित रूप से विकास नहीं हो पा रहा है। लोग कहने लगे हैं कि हिन्दी राष्ट्रभाषा तो बन गयी है, परन्तु जनभाषा नहीं बन पायी है। इस कथन से सहमत न होते हुए भी इसके पीछे छिपी उस भावना से तो सहमत होना ही होगा जो हिन्दी में सत्साहित्य के प्रकाशन में निरंतर गिरावट की ओर संकेत करती है।

विगत १० वर्षों में अधिकांश हिन्दी पुस्तकों के दाम, अधिक नहीं तो कम-से-कम दस गुने हो गये हैं। इसका परिणाम यह हो रहा है कि नया लेखन, प्रकाशन के अभाव में निरुत्साहित होकर ठप्प होता जा रहा है और पाठक उदासीन हो गये हैं।

इस स्थिति में हमारे उपराष्ट्रपति भी चिन्तित हैं, वे भी चाहते हैं कि पुस्तकों का मूल्य कम हो। मुद्रण और प्रकाशन की उत्कृष्टता के २५वें पुरस्कार समारोह में बोलते हुए उन्होंने पुस्तकों में भी विज्ञापन छापने का सुझाव दिया था, जिससे कम मूल्य की पुस्तकें सर्वसाधारण को सुलभ कराई जा सकें।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, युनेस्को तथा केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय ने हिन्दी पुस्तकों के प्रकाशन की अनेकानेक योजनाओं में सहायता दी है परन्तु इन योजनाओं के अंतर्गत प्रकाशित पुस्तकों के मूल्य भी अपेक्षाकृत ज्यादा ही रखे जाते हैं।

इस प्रकार हिन्दी में सत्साहित्य महँगा और अपसाहित्य सस्ते मूल्य पर बिक रहा है। इससे हमारी वैचारिक और सामाजिक मानसिकता को गंभीर क्षति पहुँची है।

दूसरी ओर बंगला भाषा के मौसमी प्रकाशन, साक्षरता प्रकाशन, देव साहित्य कुटीर तथा आनंद बाजार पत्रिका प्रकाशन की पुस्तकें देखनें पर ऐसा प्रतीत होता है कि वस्तुत: ये साधारण पाठकों की क्रय सीमा के अंतर्गत हैं। इन प्रकाशनों को देखने पर आश्चर्य होता है कि हिन्दी के प्रकाशक क्यों इतने अधिक मूल्य रखते हैं। यों तो पोस्टेज की दरें और कागज की मँहगाई भी पुस्तकों की कीमतों की बढ़ोत्तरी के लिए जिम्मेदार है और इस पर गंभीर विचार करने की जरूरत सभी समझदार लोग स्वीकार करते हैं। कागज की मँहगाई के कारण धार्मिक ग्रंथों का विलोप-सा होता जा रहा है।

पुस्तकों की बढ़ती हुई कीमतों के कारण फुटपाथ विक्रेता भी कम हो गये हैं और परम्परागत मेलों में पुस्तकों का मिलना दुर्लभ हो गया है। मुद्रण की नई आफसेट प्रणाली और एक्साइज ड्यूटी से मुक्त मिलों का कम मूल्यवाला कागज खरीदकर इस कार्य को पुन: प्रारंभ किया जा सकता है।

हमारी लाइब्रेरियाँ अब म्यूजियम बनती जा रही हैं, जहाँ केवल वही पुस्तकें पायी जाती हैं जो सरकार द्वारा सुलभ करायी जाती हैं या जिनकी खरीद-फरोख्त परोक्ष लेन-

देन के आधार पर होती है। आज पुस्तक विक्रय के सरकारी तथा गैर सरकारी क्षेत्र में बढ़ती हुई अनैतिकता का हम विरोध नहीं कर पा रहे हैं और रीडिंग कल्चर की बात करते हैं। इस संबंध में सर्वप्रथम बच्चों की पठन रुचि के अनुकूल सुंदर, सचित्र और सुरुचिपूर्ण पुस्तकें उचित मूल्य पर सुलभ करायी जाएँ और उन्हें विक्रेताओं, अखबार के स्टालों, मेलों आदि के जरिए बेचा जाए तो मूल उद्देश्य की पूर्ति की जा सकती है।

हमें नेशनल बुक ट्रस्ट द्वारा प्रारम्भ किए गए राष्ट्रीय बाल पुस्तक मेलों के कार्यक्रम का पूरा-पूरा लाभ उठाना चाहिए। हम प्रयत्न भी करते हैं, पर इन मेलों में अंग्रेजी के प्रकाशकों का वर्चस्व हिन्दी के प्रकाशकों को पीछे ढकेल देता है। नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया को चाहिये कि प्रकाशन का काम कम करके सूची सेवा, पोस्टर, प्रचार अभियान, सभी प्रकार के प्रकाशन संस्थाओं के प्रकाशन की बिक्री के लिए डिपो खोले और प्रदर्शनियाँ तथा विचार-गोष्ठियाँ अधिक करे। इससे देश की प्रकाशन-व्यवस्था के प्रचार-प्रसार को अधिक बल मिलेगा।

आरम्भ में हिन्दी प्रकाशक संघ ने पुस्तक-विक्रेताओं का निबंधन किया था और नेटबुक समझौते के अंतर्गत पुस्तकों पर दिए जाने वाले कमीशन का नियम बनाया था, फलतः पुस्तकों के मूल्य उचित स्तर पर स्थिर थे। आज की तरह सरकारी बिक्री को ध्यान में रखते हुए अनाप-शनाप मूल्य नहीं रखे जाते थे। यदि हमें अपने प्रकाशन व्यवसाय और लेखन को प्रोत्साहित करना है तो वितरण-व्यवस्था के लिए विक्रेताओं का निबंधन और नेटबुक समझौते को पुनः जारी करना चाहिए।

आज विभिन्न भाषाओं में पुस्तक विक्रय के नये-नये प्रयोग हो रहे हैं। हमें उन सबका अध्ययन करना चाहिए, साथ ही कोई नई तकनीकी मिलें तो उन्हें अपनाना चाहिए। इस संदर्भ में कुछ तथ्य विचारणीय हैं। पुस्तक विक्रय का प्रत्येक अभिनव प्रयोग अनुकरणीय है। प्रसाद प्रकाशन पूना ने मराठी के पाठकों से १५०० रुपये पाँच वर्ष के लिए जमा कराये और उन्हें १८ पुराण तथा चार वेद बिना मूल्य दिए। बाद में पाठकों को सारे रुपये वापस कर दिए। इस लेन-देन में संस्था को बैंक ब्याज से सात लाख रुपयों की आय हुई। बम्बई की केशव भिखाजी धवले फर्म ने साने गुरु के उपन्यासों का सेट २० रुपये में पाठकों को भेंट किया और उसकी पचास हजार प्रतियाँ बिकीं। बंगाल में १८ प्रकाशकों ने रामकृष्णचरितामृत, जिसमें दस प्वाइंट फोटो कम्पोजिंग के लगभग १००० पृष्ठ हैं, के विभिन्न संपादित संस्करण प्रकाशित किए। २० रुपये से २५ रुपये मूल्य रखकर इन पुस्तकों की आठ लाख प्रतियाँ बेची गयीं।

बंगाल के प्रकाशक पुस्तक मूल्य कम से कम रखते हैं और प्रसिद्ध पत्रिकाओं में विज्ञापन कर उनकी अधिकाधिक प्रतियाँ बेचते हैं। इस सिलसिले में कम से कम ५० प्रकाशन संस्थान के नाम गिनाए जा सकते हैं। पूरी बंकिम ग्रंथावली को ६० रुपये में मौसमी प्रकाशन ने और आनंद बाजार पत्रिका ने इस मँहगे युग में भी १०० रुपये में प्रकाशित किया है। लाखों लोग यूनाइटेड बैंक आफ इंडिया में रुपया जमा कर इसके ग्राहक बने। स्मरणीय है शरद समिति भी कुछ वर्ष पूर्व १०० रुपये में शरद ग्रंथावली छापकर उसकी लाखों प्रतियाँ दो संस्करणों में बेच चुकी है।

बंगला के क्रांतिकारी कवि नजरुल इस्लाम की 'अग्निवीणा' १० रुपये में बिकती है जो डिमाई साइज में २५० पृष्ठ की है। वहीं निराला जी की उससे आधे पृष्ठों वाली पुस्तक ५० रुपये में बिकती है। नजरुल के इस काव्य संग्रह के २८ संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। यह जनसाधारण में बिकती है। यह पाठ्यपुस्तक भी नहीं है। कलकत्ता के पुस्तक मेलों में बंगला प्रकाशकों के स्टालों के आगे एक-एक फर्लांग लम्बी लाइन लगी रहती है और उनके सामने हिन्दी के स्टाल सूने, बौने और फीके लगते हैं।

केन्द्रीय सचिवालय हिन्दी परिषद् के अंतर्गत चलनेवाली संस्थाएँ अपने वार्षिक समारोह के साथ पुस्तक प्रदर्शनियों का अयोजन करना चाहती हैं। प्रदर्शनियों के प्रति हिन्दी जगत् का रुझान भी बढ़ रहा है। उन्हें प्रकाशक संघ सहयोग दे और इन प्रदर्शनियों के आयोजनों से पूरा लाभ उठाएँ तो हिन्दी पुस्तकों की माँग बढ़ सकती है। चित्रकूट तथा रायबरेली के रामायण मेलों तथा ददरी, सोनपुर, देवाशरीफ़, गढ़मुक्तेश्वर और पुष्कर जैसे परम्परागत मेलों को पुस्तक मेलों से जोड़ना चाहिए। इससे साहित्यिक प्रकाशनों की खपत को प्रोत्साहन मिलेगा। कुम्भ मेलों का उपयोग भी हिन्दी पुस्तकों के प्रचार के लिए 'हिन्दी मंडप' लगाकर किया जा सकता है।

हम अपने साहित्यकारों को समाज की शक्ति मानते हैं। किन्तु प्राय: आयोजकों की स्वप्रचार की भावना ऐसे आयोजनों के मूल उद्देश्य पर हावी हो जाती है और हम साहित्यकार की कृतियों से जनसाधारण को परिचित तक नहीं करा पाते, न उनके साहित्य की प्रदर्शनी लगाते हैं और न कम मूल्य में उनके ग्रंथों को उपलब्ध कराने की व्यवस्था ही करते हैं।

आज की नई शिक्षा-नीति का सपना साकार करने के लिए भी नवीन पुस्तकों की जरूरत है। पिछड़े वर्ग के लिए उनके वातावरण के अनुरूप सस्ती और प्रेरक पुस्तकें चाहिए। आज हमारे समाज को ऐसा साहित्य चाहिए जो भावी पीढ़ी में ध्वस्त होते नैतिक मूल्यों की पुन: स्थापना करे।

नई शिक्षा-नीति संबंधी 'शिक्षा में चुनौती' नामक जो दस्तावेज शिक्षा मंत्रालय ने प्रकाशित किया, उससे स्पष्ट था कि महिलाओं की शिक्षा की ओर सरकार का ध्यान अधिक है और यह उचित भी है। महिलाओं के लिए प्रौढ़ शिक्षा से लेकर हाई स्कूल तक संदर्भ पुस्तकों की कमी है। यदि अच्छी पुस्तकें प्रकाशित की जाएँ तो बचत की अच्छी संभावनाएँ हैं। इसी प्रकार विभिन्न छोटे-बड़े रोजगार सिखानेवाला कामकाजी साहित्य भी छोटी-छोटी पुस्तकों के रूप में उपलब्ध कराया जाए तो बिक्री का अच्छा क्षेत्र मिल सकता है।

कहावत है कि अपूर्णता के बिना पूर्णता नहीं आती। हिन्दी में अनुवाद के संबंध में यही बात है। १५० वर्ष पूर्व यही स्थिति अंग्रेजी में थी जो आज हिन्दी में है। जब अंग्रेजी में विश्व साहित्य की उच्चस्तरीय रचनाओं के अनुवाद हाथों-हाथ सुलभ हो सकते हैं तो यह स्थिति हिन्दी में क्यों नहीं आ सकती? बिना अनुवाद के किसी भी भाषा के साहित्य को समग्रता प्राप्त नहीं होती। १७८० तक ग्रेट ब्रिटेन में अभिजात-वर्ग की भाषा

फ्रेंच थी और अंग्रेजी जनसामान्य की। जब विश्व प्रसिद्ध कृतियों का अनुवाद अंग्रेजी में आरंभ हुआ तभी से अंग्रेजी साहित्य पूरे विश्व में छा गया।

हिन्दी के पाठक खोजते हैं कि उन्हें जार्ज वाशिंगटन की आत्मकथा हिन्दी में सुलभ हो, अलवर्ट स्वाइत्जर की आत्मकथा पढ़ने को मिले, पर हिन्दी के प्रकाशक पाठकों की इस सुरुचिपूर्ण आकांक्षा की पूर्ति करने के लिए तैयार नहीं दिखते। १५० वर्ष पूर्व हिन्दी में वाशिंगटन की आत्मकथा (आत्मोद्धार) के नाम से छपी थी और आज से ७५ वर्ष पूर्व इलाहाबाद के बेलवेडियर प्रेस ने कुछ ऐतिहासिक कृतियाँ छापी थी। इनमें ह्वेनसांग की 'भारत यात्रा' और 'इब्नबतूता का भारत' हजारों की संख्या में बिकी थी। आज ऐसे उदाहरण दुर्लभ हो चुके हैं।

यदि विदेशी और भारतीय भाषाओं की श्रेष्ठ रचनाएँ अनूदित होकर कम मूल्य में सुलभ हों तो निश्चय ही अंग्रेजी पुस्तक पढ़ने के बढ़ते हुए मोह से छुटकारा पाया जा सकता है।

हमें हिन्दी प्रकाशन को धरती से जोड़ना पड़ेगा, समाज की आकांक्षा से जोड़ना पड़ेगा। हमें आनेवाली पीढ़ी के लिए २१वीं शताब्दी के अनुरूप अध्ययन सामग्री जुटानी पड़ेगी। स्थिति यह है कि देश की तीन चौथाई जनता ने आजादी की लड़ाई नहीं देखी है। आजादी की लड़ाई से संबंधित पुराने और नये साहित्य को सजा-संवारकर कम मूल्य में प्रकाशित किया जाय। राष्ट्रीय एकता और अखंडता पर जितनी नारेबाजी होती है, क्या उतना प्रकाशन हिन्दी में राष्ट्रीय अखंडता पर हो रहा है? यह नहीं कहा जा सकता कि हमारी नयी पीढ़ी में राष्ट्रीय भावना का अभाव है। प्रश्न है कि उनके लिए हम क्या कर रहे हैं? हम अतीत की ओर देखते हैं तो ज्ञात होता है कि हमने जब भी राष्ट्रीय साहित्य के प्रकाशन का प्रयत्न किया है, पाठकों ने उत्साह से उसका स्वागत किया है। मुझे स्मरण है कि बापू के भाषाणों का संग्रह 'हिन्दुस्तान का राष्ट्रीय झंडा'—एक दिन में दस हजार तक बिका था। बाल विवाह को नियंत्रित करने के लिए पार्लियामेन्ट में उपस्थित—'शारदा बिल' संबंधी पुस्तक हिन्दी में प्रकाशित हुई थी, जिसकी २० हजार प्रतियाँ एक मास में बिक गयी थीं। कलकत्ता की आर० एल० बर्मन कम्पनी ने सैकड़ों ऐतिहासिक तथा पौराणिक उपन्यास छापे थे। इन पुस्तकों से जनता की पठनरुचि परिष्कृत हुई थी। इनकी बिक्री भी कम नहीं थी। प्रकाशन की इस अनुकरणीय प्रवृति को आज क्या हो गया है? हमें इस दिशा में गंभीरता से सोचना होगा।

उपहार में देने की परम्परा हिन्दी के पुस्तकों की अधिक नहीं हो पायी। इस कमी के जिम्मेदार कुछ हद तक हम प्रकाशक भी हैं। क्या हमने उपहार देने योग्य सजा सँवारा प्रकाशन किया जैसा बंगला और गुजराती के प्रकाशक करते हैं? जब हमने उपहार देने योग्य सामग्री ही नहीं बनायी, तब हम समाज से क्या आशा करें?

यही स्थिति संदर्भ ग्रंथों की है। उड़िया, मराठी और तमिल में जितने सुसम्पादित और आकर्षक रूप में विश्वकोश प्रकाशित हो रहे हैं, वह दर्शनीय और अनुकरणीय है। हिन्दी में नागरी प्रचारिणी सभा ने एक विश्वकोश प्रकाशित किया था, लेकिन उसका नया संस्करण अभी तक नहीं किया जा सका। ज्ञातव्य है कि नगेन्द्रनाथ बसु ने सन् १९२० में

ही बंगला भाषा का विश्वकोश प्रकाशित किया था और १९२५ में उसका हिन्दी संस्करण भी प्रकाशित हुआ। उस समय हिन्दी में विश्वकोश के ग्राहक थे और आज भी हैं। हमें सोचना चाहिए कि इस रुचि-विकार में हमारा योगदान कितना है। क्या हम महाराष्ट्र में पवई स्थित संदर्भ ग्रंथ निर्माण संस्था द्वारा प्रस्तुत पौराणिक कोश जैसा उपयोगी कार्य नहीं कर सकते?

हिन्दी में आजतक मनोरमा इयर बुक छोड़कर कोई भी वार्षिकी (इयर बुक) नहीं प्रकाशित होती। फलत: हिन्दी के पाठक अच्छी सामग्री की खोज में अंग्रेजी की वार्षिकी भी (इयर बुक) खरीदते हैं। हिन्दुस्तान समाचार 'संवाद एजेन्सी' ने इस दिशा में एक प्रशंसनीय प्रयास किया था, परन्तु वह भी प्रोत्साहन के अभाव में अधिक सफल नहीं हुआ। जीवन के हर क्षेत्र के अनुकूल साहित्य रचना और प्रकाशन के क्षेत्र में सरकार की मुखापेक्षिता हमारी सबसे बड़ी कमजोरी है। हमारा पाठकों से सीधा रिश्ता ही टूट गया है। किन्तु अब यह स्पष्ट हो चुका है कि जब तक हम पाठकों से नहीं जुड़ेंगे, तब तक हमारा उद्धार नहीं होगा। जापान में प्रकाशित पुस्तक की ९० प्रतिशत प्रतियाँ सामान्य पाठक खरीदते हैं और १० प्रतिशत लाइब्रेरियों में जाती हैं, जबकि हिन्दी पुस्तकें ९० प्रतिशत सरकारी खरीद के लिए छपती हैं और शायद ही १० प्रतिशत बाजार में बिक पाती है। रूस में महाभारत के अनुवाद की पाँच लाख प्रतियाँ सात माह में बिक गयीं। हमारी सनातन संस्कृति की अप्रतिम धरोहर की हिन्दी में छपी पचीस हजार प्रतियाँ भी साल भर में नहीं बिक पातीं।

अंतत: सुधी पाठकों से आग्रह है कि हिन्दी प्रकाशन की वर्तमान शोचनीय अवस्था पर गंभीरता से विचार कर अपने विचार बनायें। हिन्दी प्रकाशन व्यवसाय की वर्तमान चिन्तनीय स्थिति से उबारने के लिए सबसे पहले विविध विषयों की सुंदर और सुरुचिपूर्ण पुस्तकें कम-से-कम मूल्य में प्रस्तुत करना अनिवार्य है। इस संदर्भ में बुक क्लबों के माध्यम से घरेलू लाइब्रेरी योजना का राष्ट्रव्यापी अभियान चलाया जाना चाहिए। हिन्दी पुस्तकों का व्यापक प्रचार प्रसार करने के लिए आकाशवाणी, दूरदर्शन और पत्र-पत्रिकाओं का समुचित उपयोग करना और इन प्रचार माध्यमों से रचनात्मक सम्पर्क बनाए रखना भी आवश्यक है। साथ ही पुस्तकालयों के लिए मिलनेवाले सरकारी अनुदान का सदुपयोग हो, इसकी समुचित व्यवस्था आवश्यक है।

आशा है सबका सम्मिलित सत्प्रयास राष्ट्रभाषा हिन्दी के लेखन तथा प्रकाशन जगत को नई दिशा दे सकेगा।

हिन्दी का रथ मन्द क्यों ?

कृष्ण अर्जुन के सारथी थे और अर्जुन योद्धा थे। युद्ध करना उनका धर्म था और कुरुक्षेत्र में रथ चलाना कृष्ण का धर्म। उन्होंने युद्ध न करने की भी कसम खाई थी, फिर भी महाभारत की लड़ाई जीती गई, क्योंकि अर्जुन जैसा योद्धा कृष्ण के साथ था और कृष्ण जैसा सारथी अर्जुन के साथ। इसलिए कहीं भी रथ की गति मन्द नहीं पड़ी। पर आज हिन्दी के रथ की गति मन्द हो गयी है। न अर्जुन जैसे योद्धा (लेखक) रहे और न कृष्ण (प्रकाशक) जैसा सारथी। आज न प्रसाद हैं, न निराला हैं, न पंत हैं न प्रेमचन्द हैं और न रामचन्द्र शुक्ल। इसका अर्थ कदापि नहीं है कि हिन्दी में रचनाकार नहीं हैं और न रचना हो रही है। इसके विपरीत रचना और रचनाकारों की बाढ़-सी आ गई है। पर इस बाढ़ में कितना स्थायी रह जायेगा और कितना बह जायेगा, इसका निश्चय तो काल देवता करेंगे, किन्तु इतना सभी कहते हैं कि जो कुछ लिखा जा रहा है, उसमें से बहुत कम जनजीवन को छूता है या जनाकांक्षा के अनुकूल होता है। बहुत से विषय तो ऐसे हैं, जिनपर अच्छी पुस्तकें ही नहीं हैं।

दूसरी ओर हिन्दी के प्रकाशकों की स्थिति इससे भी खराब है। हिन्दी प्रकाशन दिशाहीनता के साथ-साथ लोभ का शिकार हो गया है। पुस्तकें जनता के लिए नहीं, वरन् सरकारी खरीद के लिए छापी जा रही हैं। प्रकाशक के आर्थिक लोभ ने व्यापार में भ्रष्टाचार की दुर्गन्ध फैला दी है। टेबुल के पीछे से दिये जानेवाले कमीशन को ध्यान में रखकर पुस्तकें प्रकाशित की जाती हैं, परिणाम यह होता है कि दस रुपये लागत की पुस्तक का दाम सौ रुपये रखा जाता है। पुस्तकें सामान्य पाठक के जेब के बाहर हो जाती हैं। इस सन्दर्भ में एक किसान की यह बात नहीं भूलती कि एक पुस्तक का दाम १५० रुपये कैसे दूँ जबकि एक मन गेहूँ ३२० में बेचता हूँ।

आज स्थिति यह भी नहीं है कि पुस्तकें साधारण पाठकों से दूर हटती हुई लाइब्रेरियों में बंद हो रही हैं। दशा वहाँ भी दयनीय है। वाशिंगटन की लाइब्रेरी ऑफ कांग्रेस में ५ करोड़ ९० लाख पुस्तकें हैं, जब कि हमारी नेशनल लाइब्रेरी में केवल सात लाख।

फिर पुस्तकों की थोक खरीद के माध्यम से जो काली कमाई हो रही है, उससे अधिकारी मालामाल हो रहे हैं। ऐसे अधिकारियों की गुप्त जाँच होनी चाहिए। कहा जाता है कि एक हिन्दी प्रदेश के पुस्तकालय निदेशक के पास एक करोड़ से भी ज्यादा की सम्पत्ति है। दिल्ली में भी एक हिन्दी अधिकारी ने साठ लाख का मकान बनवाया है। आखिर इतना पैसा आया कहाँ से! क्या लेखकों के खून पसीने पर यह डाका नहीं है।

आज यदि प्रेमचन्द भी होते तो जनता में न बिकते, क्योंकि उनकी पुस्तकों के दाम भी लागत से दस गुने अधिक रखे जाते हैं। वे अपने समय में इसलिए बिके कि उनकी पुस्तकों के मूल्य बहुत कम थे। वे सीधे पाठकों के हाथों में पहुँचे और प्रेमचन्द, प्रेमचन्द हो गये।

दूसरी ओर हमारी जरूरत का साहित्य भी हिन्दी में नहीं आ रहा है। आज कम्प्यूटर साइंस पर हिन्दी में बहुत पुस्तकें नहीं हैं। अंग्रेजी में उनकी बाढ़-सी आ गयी है। इनमें देशी भी हैं और विदेशी भी, सभी अंग्रेजी में। आखिर हिन्दी समसामयिक विषयों के साहित्य में इतनी पिछड़ी क्यों है? देश में प्रतिवर्ष ७५ करोड़ रुपये की पुस्तकें विदेशों में निर्यात की जाती हैं, देखना चाहिए कि इसमें हिन्दी की पुस्तकों का अनुपात क्या है?

एक विचारणीय विषय और। इधर अनेक हिन्दी के विद्वानों की शतियाँ मनायी गयीं। सरकारी पक्ष ने गम्भीर अनुदान देकर या बहुत हुआ तो उनका डाक टिकट निकालकर अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझ ली। अनुदान से अनेक संगोष्ठियों का आयोजन हुआ तथा कथित विद्वानों ने विचार-विमर्श के माध्यम से आपसी मेल-जोल बढ़ाये। रेल और हवाई जहाज के भत्ते बनाये। आत्म-स्तुति और परनिन्दा में समय गँवाया, पर जिस महापुरुष के नाम पर यह सब कुछ हुआ, उसकी रचनाओं की न तो प्रदर्शिनी लगी और न उन रचनाओं का अल्पमोली संस्करण ही छापा गया। शती की खबर अखबारों की सुर्खियों में आयी और खत्म हुई। हिन्दी का रथ बैलगाड़ी की ही गति पकड़े रहा।

ऐसी स्थिति में क्या हम हाथ पर हाथ धरे बैठे हुए अपने को कोसते रहें? नहीं, इससे तो काम नहीं चलेगा। हमें कुछ करना पड़ेगा। देश में चार हजार सरकारी प्रतिष्ठानों में हिन्दी अधिकारियों की फ़ौज जुटी हुई है। ये लोग हिन्दी के लिए वेतन लेते हैं, हिन्दी के प्रति निष्ठा की कसमें खाते हैं। इनका उपयोग हिन्दी प्रकाशन के संवर्धन के लिये किया जा सकता है।

हमें पाठकों के लिए सर्वेक्षण कराना चाहिये। कभी-कभी चौंकानेवाले तथ्य हमारे सामने आते हैं। अभी तक विश्वास था कि बंगाल में जनसंख्या के अनुपात की दृष्टि से सबसे अधिक पाठक हैं, पर डेली टेलीग्राफ के एक सर्वेक्षण से पता चला कि बिहार में पाठकों की संख्या सबसे अधिक है। हमें सोचना चाहिए कि बिहार की जनता के अनुरूप हम क्या साहित्य उपलब्ध करा पाते हैं? बीसवीं शती जाते-जाते हमारी आबादी एक अरब हो जायेगी। साक्षरता आन्दोलन यदि सफल हुआ, तो सभी साक्षर होंगे। इतने लोगों के लिए क्या हम आवश्यकतानुसार पुस्तकें उपलब्ध करा पायेंगे?

एक दूसरा आश्चर्यजनक तथ्य बंगला भाषा के माध्यम से और आया है। प्रवासी भारतीयों के लिए प्रवासी आनन्द बाजार पत्रिका छपती है, जिसमें आधे से अधिक सामग्री सांस्कृतिक एवं साहित्यिक होती है। पत्रिका बाइबल पेपर पर इतनी आकर्षक छपती है कि उसे देखते ही पाठक मोहित हो जाता है। कहते हैं कि इस समय विदेशों में जानेवाली

इस पत्रिका की संख्या ४० हजार है। यदि विदेशों में बंगला भाषी क्रेता ४० हजार हैं तो हिन्दी भाषी कितने होंगे? हम उन हिन्दी भाषियों के लिए क्या कर रहे हैं?

हमें पाठकों के साथ-साथ अच्छे लेखकों की भी तलाश करनी चाहिये। अल्पमोली पुस्तकें निकालनी चाहिये। ऐसा नहीं है कि आज प्रेमचन्द नहीं हैं। अनेक प्रेमचन्द अवसर न मिलने के अभाव में खिलने के पूर्व ही मुरझा जा रहे हैं। १४ सितम्बर हम हिन्दी दिवस के रूप में मनाते हैं। यह दिन एक उत्सव की तरह मनाया जाना चाहिये। हम स्थान-स्थान पर हिन्दी की पुस्तकों की प्रदर्शिनियाँ लगायें, प्रकाशक-पाठक परिसंवाद आयोजित करें, हिन्दी की प्रगति से लोगों को अवगत करायें और देखें कि हिन्दी के रथ को गति देने के लिए हमें और क्या करना है।

राष्ट्रीय हित में हिन्दी का योग

हिन्दी हमारे देश की राष्ट्रभाषा है। राष्ट्रीय हित में हिन्दी का कितना महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है, यह सर्वविदित है। किसी भी देश की संस्कृति और साहित्य के विकास के लिए उसकी राष्ट्रभाषा का सम्पन्न होना उतना ही आवश्यक है, जितना कि शरीर के लिए भोजन। हिन्दी का विकास राष्ट्रभाषा के रूप में वैसे तो मध्ययुग में ही हो चुका था, परन्तु देश के राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ-साथ हिन्दी भी हमारे राष्ट्रीय उत्कर्ष और राष्ट्र-निर्माण का एक अंग बनती गई।

राष्ट्रपिता की प्रेरणा

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने देश के राष्ट्रीय आन्दोलन का नेतृत्व संभालते ही यह अनुभव किया कि यदि हिन्दी को जनता की भाषा बना दिया जाय तो राष्ट्रीय आन्दोलन को बल मिलेगा। फलतः उन्होंने १९१९ के प्रथम सत्याग्रह में अपना व्याख्यान और सत्याग्रह सम्बन्धी नीति की घोषणा हिन्दी में ही की। हिन्दी लेखकों और प्रकाशकों ने समय की माँग को समझा और उसके प्रकाशन का कार्य आरम्भ हुआ। वह ऐसा युग था जिसमें राष्ट्रीयता की बात करनेवाला व्यक्ति अपराधी समझा जाता था। ऐसे समय में हिन्दी में राष्ट्रीय प्रकाशन की नींव, बम्बई के हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर के संस्थापक स्वर्गीय नाथूराम प्रेमी ने, 'स्वतंत्रता' नामक पुस्तक प्रकाशित करके डाली। पुस्तक वैसे तो अँग्रेजी की 'लिबर्टी' नामक पुस्तक का अनुवाद थी, परन्तु देशप्रेम की भावना से परिपूर्ण थी। इस पुस्तक के अनुवादक स्वर्गीय आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी थे।

१९१२ ई० में दिल्ली दरबार हुआ और 'बंगभंग' की घोषणा रद्द की गई। इसकी प्रेरणा से भारत जीवन प्रेस, वाराणसी के व्यवस्थापक स्वर्गीय रामकृष्ण वर्मा ने गंगाप्रसाद गुप्त से 'स्वदेशी आन्दोलन' पर दो पुस्तकें लिखवाईं और प्रकाशित कीं। १९११ में बंकिम बाबू के 'आनन्द मठ' का हिन्दी में अनुवाद हुआ। इस पुस्तक ने देश में राष्ट्रीयता के प्रसार में बड़ी सहायता की। कुछ दिनों बाद राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत भारती' निकली, जो भारत के घर-घर में गूँज उठी। प्रसिद्ध क्रान्तिकारी पंडित सुन्दरलाल जी ने १९१९-२० में 'विश्वमित्र साप्ताहिक' नामक एक साप्ताहिक पत्र प्रयाग से प्रकाशित किया, जो क्रान्तिकारियों का समर्थक था। १९२० के बाद तो हिन्दी में अनेक प्रकाशक राष्ट्रीय प्रकाशन करने लगे। कानपुर से स्व० गणेश शंकर विद्यार्थी लिखित पुस्तकें प्रकाश पुस्तकालय ने प्रकाशित कीं और उनके सभी प्रकाशन जनता में समादृत हुए। अजमेर से हिन्दी साहित्य मन्दिर के जीतमलजी लूणिया ने गाँधी जी लिखित 'हिन्दुस्तान का राष्ट्रीय झण्डा', 'असहयोग दर्शन' आदि पुस्तकें प्रकाशित कीं, जो निकलते ही हाथों-हाथ बिक

गई। राष्ट्रीय आन्दोलन के सिलसिले में स्वर्गीय बाबू शिवप्रसाद गुप्त १९१६ में गोरी सरकार द्वारा बर्मा में पकड़े गये। उन्होंने प्रत्यक्ष रूप से गोरों द्वारा लोगों को अत्याचार सहते हुए देखा था। काशी के दुर्गाप्रसादजी खत्री को 'रक्तमण्डल' लिखने के लिए उन्होंने ही प्रेरणा दी थी। श्री खत्री ने १९२१ में इस क्रान्तिकारी उपन्यास को लिखना शुरू किया था और १९२६ में इसका प्रकाशन हुआ। छपने के दो वर्ष बाद ही यह उपन्यास जब्त कर लिया गया।

धड़ल्ले से राष्ट्रीय प्रकाशन

१९२० तक कलकत्ता राष्ट्रीय प्रकाशनों का प्रमुख केन्द्र बन गया था। वहीं से भारतीय पुस्तक एजेंसी के नाम से पण्डित देवनारायण द्विवेदी ने सखाराम गणेश देउस्कर की 'देश की बातें' का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किया। पण्डित देउस्कर मराठी भाषी थे, वह पुस्तक उन्होंने मूलतः बंगला में लिखी थी। पण्डित द्विवेदी ने ही माता सेवक पाठक लिखित राज्य सम्बन्धी सिद्धान्त का भी प्रकाशन किया था। आर० एल० बर्मन कम्पनी के संस्थापक रामलाल बर्मन ने 'हिन्दू पंच' का 'बलिदान' अंक प्रकाशित करके एक अभूतपूर्व चेतना देश में उत्पन्न की। यह पहला प्रकाशन था, जिसमें देश के समस्त क्रान्तिकारियों का विवरण दिया गया था। इसी शृंखला में इलाहाबाद से चाँद प्रेस के संस्थापक स्वर्गीय रामरिख सहगल ने 'चाँद' का 'फाँसी' अंक निकाला। सहगल ने सुन्दरलालजी की कृति 'भारत में अंग्रेजी राज्य' को दो खण्डों में प्रकाशित किया, जो कि छपते ही जब्त कर लिया गया। निहालचन्द एण्ड कम्पनी के संस्थापक निहालचन्द वर्मा ने मिस मेयो की 'मदर इण्डिया' का जवाब, सी० एस० रंगा अय्यर कृत 'फादर इण्डिया' का हिन्दी में प्रकाशन किया। नेहरू कमेटी की रिपोर्ट को 'पंजाब का हत्याकाण्ड' नाम से प्रकाशित किया। इस पुस्तक में जलियाँवाला बाग के शहीदों का विवरण था। विश्वमित्र कार्यालय ने भी उन दिनों राष्ट्रीय चेतना को जगानेवाले अनेक प्रकाशन किये। कविवर माधव शुक्ल की 'राष्ट्रीय झंकार' तथा मारवाड़ी समाचार के सम्पादक पद्मराज जैन के छोटे-छोटे राष्ट्रीय ट्रेक्ट भी उन दिनों काफी प्रसिद्ध थे। लाहौर के एन० डी० सहगल ने रजनी पामदत्त का 'वर्तमान भारत' प्रकाशित कर राष्ट्रीय प्रकाशनों की श्रीवृद्धि की। बाद में सस्ता साहित्य मण्डल भी इस क्षेत्र में आया। हरिभाऊ उपाध्याय की 'युगधर्म' नामक पुस्तक सस्ता साहित्य मण्डल का ऐसा प्रकाशन था जिसने पाठकों को राष्ट्रीय दृष्टि से सोचने की एक नवीन दिशा दी। कलकत्ता का 'भारतमित्र' अखबार, जिसके सम्पादक आचार्य अम्बिका प्रसाद बाजपेयी थे, ने हिन्दी में कुछ राष्ट्रीय प्रकाशन भी किये थे। हिन्दी पुस्तक एजेन्सी ने सुभाषचन्द्र बोस की कृति 'तरुण का स्वप्न' प्रकाशित किया। १९३७ के बाद तो देश में इतनी जागृति आ गई थी कि हिन्दी प्रकाशक धड़ल्ले से राष्ट्रीय साहित्य छापने लगे थे। अब महात्मा गाँधी, जवाहरलाल नेहरू, राजेन्द्र प्रसाद की आत्मकथाएँ प्रत्येक घर में पढ़ी जाने लगी थीं। यह है राष्ट्रीयता के युग में हिन्दी के प्रकाशकों की संक्षिप्त कहानी।

राष्ट्र निर्माण के प्रकाशन

देश स्वतन्त्र हुआ और संविधान के द्वारा हिन्दी राष्ट्रभाषा स्वीकृत हुई। स्वाभाविक है कि हिन्दी में अब ऐसे प्रकाशन आयें जो राष्ट्र-निर्माण के लिए आवश्यक हैं। किसी भी राष्ट्र का निर्माण राष्ट्रभाषा के सम्पन्न साहित्य से ही सम्भव है। अनुवाद विज्ञान एक ऐसी तकनीक है जो विश्वविद्यालय स्तर की पाठ्यपुस्तकों, साहित्य, सर्वोदय-साहित्य, नव-साक्षर साहित्य, बाल साहित्य आदि विषयों के माध्यम से राष्ट्रीय जीवन को सम्पन्न करने के लिए आवश्यक हैं। हिन्दी में इस दिशा में क्या काम हुआ है, यह आपके समक्ष है।

अनुवादों की ही बात लीजिए। हिन्दी में १९०५ से अनुवादों का प्रकाशन शुरू हो गया था। प्राचीन सभ्यता का इतिहास, बंकिम बाबू के उपन्यास, बंगला के जासूसी उपन्यास, दारोगा दफ्तर सीरीज आदि, १९०५ में ही हिन्दी में अनूदित हो गये थे। १९१० में रमेशचन्द दत्त का 'संसार' तथा 'बंग विजेता', निरुपमा देवी का 'अन्नपूर्णा का मन्दिर' प्रकाशित हुआ। 'बंगवासी' साप्ताहिक के सम्पादक अमृतलाल चक्रवर्ती की पुस्तक 'बसंतलता' १९१२ में हिन्दी में रूपान्तरित हुई। १९१२ में ही डी० एल० राय के नाटकों का अनुवाद हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय से हिन्दी में प्रकाशित हुआ। तत्पश्चात् बंगला के शरत् बाबू, रवीन्द्र बाबू, मराठी के हरिनारायण आप्टे और गुजराती के श्री के० एम० मुंशी की कृतियों का हिन्दी में धड़ल्ले से अनुवाद हुआ। आज तो हिन्दी में प्रादेशिक भाषाओं के अनुवादों का बाहुल्य है।

हिन्दी में अधिकांश अनुवाद बंगला, गुजराती और मराठी से हो रहे हैं। तमिल, पंजाबी, उड़िया, असमिया आदि प्रादेशिक भाषाओं के अनुवाद भी आये हैं। दक्षिण की भाषाओं के हिन्दी अनुवादकों की अभी कमी है। इस कमी को दूर करने के लिए हिन्दी के लेखक और प्रकाशक प्रयत्नशील हैं।

विश्वविद्यालय प्रकाशन

विश्वविद्यालय स्तर की पुस्तकें भी हिन्दी में बहुत तेजी से प्रकाशित हो रही हैं। मानविकी विषयों के विद्यार्थियों के लिए तो उच्चस्तर की पुस्तकों की पूर्ति प्रायः अब हो गई है, यथा अर्थशास्त्र, शिक्षाशास्त्र, भूगोल, इतिहास, राजनीति, समाजशास्त्र, ललित कला इत्यादि। विज्ञान, गणित और तकनीकी पुस्तकों की दिशा में हिन्दी में तेजी से प्रकाशन हो रहे हैं। प्रकाशकों के अतिरिक्त भारत सरकार के शिक्षा मन्त्रालय का विज्ञान और तकनीकी शबदावली का आयोग ४२ विश्वविद्यालयों में हिन्दी की पुस्तकें सुयोग्य अध्यापकों से तैयार करवा रहा है। विज्ञान, तकनीक और गणित विषय में अब तक उपरोक्त आयोग के पास काफी पुस्तकें प्रकाशनार्थ तैयार हैं तथा कुछ पुस्तकें प्रकाशकों के सहयोग से प्रकाशित भी करवाई गयी हैं। उत्तर प्रदेश की हिन्दी समिति ने विज्ञान सम्बन्धी २०-२५ अच्छे प्रकाशन किये हैं। जैसे-जैसे विश्वविद्यालय विज्ञान तथा गणित के विषय हिन्दी में पढ़ायेंगे, वैसे-वैसे हिन्दी में इन विषयों की आपूर्ति होती जायगी। समय आ गया है जब राष्ट्रभाषा में उपरोक्त विषयों को पढ़ाया जाय। हिन्दी साहित्य में आज सब

कुछ है, शोध-ग्रन्थ, सन्दर्भ-ग्रन्थ, कथा-साहित्य, नाटक, काव्य आदि। जहाँ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, महावीरप्रसाद द्विवेदी, रामचन्द्र शुक्ल, डा० श्यामसुन्दर दास, जयशंकर प्रसाद, प्रेमचन्द, मैथिलीशरण गुप्त, कविवर निराला, सुभद्राकुमारी चौहान, राहुल सांकृत्यायन आदि जैसे कवि, आलोचक, विचारक और उपन्यासकार हैं, वहीं हिन्दी को पंत, महादेवी, माखनलाल चतुर्वेदी, डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी आदि की परम्परा पर भी गर्व है। हिन्दी में उपलब्ध उच्चकोटि की २०,००० पुस्तकों का एक वृहद् पुस्तकालय अच्छी तरह से बन सकता है।

नवसाक्षर एवं बाल साहित्य

स्वतन्त्रता के बाद यह भावना बलवती हुई कि देश के अनपढ़ व्यक्तियों के लिए नवसाक्षर साहित्य तैयार किया जाय और इस दिशा में जो कार्य हिन्दी में हुआ है वह अनुकरणीय है। नवसाक्षरों के लिए हिन्दी में लगभग दो हजार प्रकाशन हुए हैं। नवसाक्षरों के लिए पुस्तकें लिखते समय हिन्दी के लेखकों ने यह ध्यान रखा कि पुस्तकें जहाँ सांस्कृतिक चेतना से ओतप्रोत हों, वहीं भारतीय वातावरण के अनुकूल भी हों और साथ ही पुस्तकें पढ़कर नवसाक्षर नयी रोशनी की दुनिया में आ सकें।

बच्चे हमारे भावी नागरिक और अच्छे पाठक हैं। हिन्दी में बाल साहित्य बड़े सुरुचिपूर्ण ढंग से प्रकाशकों ने प्रकाशित किया है। बाल साहित्य की पुस्तकें वैसे तो प्रारम्भ में इण्डियन प्रेस इलाहाबाद, पुस्तक भण्डार पटना, मिश्रबन्धु कार्यालय जबलपुर द्वारा सिर्फ प्रकाशित होती थीं, परन्तु अब तो मुख्यतः दिल्ली, वाराणसी, लखनऊ, इलाहाबाद, कलकत्ता आदि शहरों से भी अच्छा बाल साहित्य प्रकाशित हो रहा है। शिक्षा मन्त्रालय प्रतिवर्ष बाल-साहित्य की जो प्रतियोगिता करता है, उसमें हिन्दी की सबसे अधिक पुस्तकें पुरस्कृत होती हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थों की विपुलता

सन्दर्भ ग्रन्थ और व्याकरण किसी भाषा के बलिष्ठ अंग माने जाते हैं। व्याकरण सम्बन्धी कुछ कठिनाइयाँ हिन्दी पाठकों के सामने थीं, परन्तु जब से नागरी प्रचारिणी सभा काशी से पण्डित किशोरीदास वाजपेयी द्वारा रचित 'हिन्दी शब्दानुशासन' का प्रकाशन किया गया, व्याकरण सम्बन्धी कोई भी कठिनाई अब हिन्दी में नहीं है। सन्दर्भ ग्रन्थों की दिशा में आज अन्तर्भारतीय भाषाओं के द्विभाषिक कोश, विश्वकोश, छोटे से छोटे और बड़े से बड़े कोश हिन्दी में उपलब्ध हैं। अँग्रेजी हिन्दी कोश और हिन्दी अँग्रेजी कोश भी कई तरह के निकले हैं। सभी विषयों पर पारिभाषिक शब्दकोश शिक्षा मंत्रालय ने प्रकाशित किये हैं। इतना सब कुछ होते हुए भी अभी इस दिशा में नित्य नूतन चेष्टाएँ हो रही हैं और हिन्दी का शब्दभण्डार बढ़ता जा रहा है। डा० रघुवीर के कोश के प्रकाशन के समय कुछ भ्रान्तियाँ लोगों ने फैलाई कि हिन्दी में जो शब्द गढ़े गये हैं, वे बहुत ही कर्णकटु हैं, परन्तु अब यह भ्रम भी दूर हो गया है। डा० रघुवीर का प्रारम्भिक कार्य था और प्रारम्भ में जो प्रयोग होते हैं, व्यवहार में आने के बाद उनमें परिवर्तन होना

स्वाभाविक है। वैसे हम डा० रघुवीर के आभारी हैं कि उन्होंने इस दिशा में अगुआई की। हिन्दी के कोशकार किसी भी प्रादेशिक भाषा और विदेशी भाषा से वे सभी शब्द अपनाने के पक्ष में हैं, जो हिन्दी में प्रचलित हैं।

आचार्य विनोबा भावे ने सर्वोदय के लिए राष्ट्रभाषा हिन्दी को ही माध्यम बनाया और आज पूरा सर्वोदय साहित्य हिन्दी में उपलब्ध है। वाराणसी में राजघाट स्थित 'सर्व सेवा संघ' सर्वोदय साहित्य के प्रकाशन की कार्यस्थली है। समस्त देश के सभी भाषा के विचारकों का सर्वोदय सम्बन्धी साहित्य यहाँ से ही प्रकाशित होता है।

हिन्दी का सम्वर्द्धन और श्रीवृद्धि

काशी नागरी प्रचारिणी सभा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, साहित्य अकादमी, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, हिन्दी समिति, उ० प्र०, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नेशनल बुक ट्रस्ट आदि सार्वजनिक, सरकारी, अर्द्धसरकारी संस्थाएँ हिन्दी के सम्वर्द्धन के लिए नाना प्रकार के आधुनिकतम प्रकाशन कर हिन्दी की श्रीवृद्धि कर रहे हैं।

हिन्दी को समृद्ध बनाने में हिन्दीतर प्रदेश के हिन्दी लेखक तथा विदेशों के हिन्दी प्रध्यापकों का भी महत्त्वपूर्ण योगदान है। ग्रियर्सन, डा० केलक, एडगिन ग्रीव्स, पिंकौट आदि हिन्दी के पुराने सेवक थे तथा नये सेवकों में चेकोस्लोवाकिया के डा० स्मेकल, रूस के दीमशित्स, चर्निशोव, वारान्निकोव, बरखुरदारोव, बालिन आदि ऐसे लेखक हैं जिन्होंने हिन्दी में अनेक पुस्तकों की रचना की है। दक्षिण के आरिगपूडि, बालसौरि रेड्डी, हिरण्यंमय, शंकर राजू नायडू आदि हिन्दी के लेखक हैं।

सरकार में हिन्दी

प्रसन्नता का विषय है कि हमारी सरकार दिनोत्तर हिन्दी का प्रयोग अपने दैनन्दिन कार्यों में बढ़ाती जा रही है। आज सेना में पूर्णतः हिन्दी का प्रयोग होता है। छोटी-सी-छोटी सनदों से लेकर भारत रत्न, पद्म विभूषण आदि पदवीदान भी हिन्दी में होता है। हिन्दी गजट भी केन्द्र तथा राज्य सरकारें प्रकाशित कर रही हैं।

हिन्दी के प्रकाशकों की एकमात्र प्रतिनिधि संस्था अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ की स्थापना १९५४ में हुई थी। इस संस्था ने अपने जीवन-काल में अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य किये हैं। पुस्तक-विक्रेताओं के प्रशिक्षण कोर्सों का आयोजन, विभिन्न अवसरों पर हिन्दी पुस्तक प्रदर्शनियों का आयोजन, हिन्दी पुस्तकों की सूचना देनेवाला संघ का मुख्य पत्र 'हिन्दी प्रकाशक' का प्रकाशन, प्रकाशन-जगत के विभिन्न विषयों पर विचार गोष्ठियों का आयोजन, बाल पुस्तक मेला तथा राष्ट्रीय पुस्तक समारोहों की प्रतिवर्ष व्यवस्था संघ के प्रमुख उल्लेखनीय कार्य हैं। पूर्व प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू का हिन्दी प्रकाशक संघ को आशीर्वाद प्राप्त था। हिन्दी प्रकाशक संघ यूनेस्को की ओर से कई विचारगोष्ठियाँ आयोजित कर चुका है। अन्तर्राष्ट्रीय प्रकाशक संघ से भी ९ वर्षों तक संघ संबद्ध रहा।

उज्ज्वल भविष्य

हिन्दी का भविष्य उज्ज्वल है। हिन्दी के प्रकाशक राष्ट्रीय हित को दृष्टि में रखकर इस बात के लिए प्रयत्नशील हैं कि वे हिन्दी वाङ्मय को समृद्ध बनायें, जिससे हिन्दी अपना स्थान सारे देश में ग्रहण कर सके।

यह हुई इतिहास और हिन्दी पुस्तकों के प्रकाशकों की चेष्टा की बात। किन्तु यह भी अनुभव किया जाना चाहिए कि भाषा के माध्यम से राष्ट्रीय हित सम्पादन के लिए इतना ही पर्याप्त नहीं है।

अब तक जितना भी प्रयास हुआ है, वह या तो राष्ट्रीय आन्दोलनप्रसूत देशप्रेम की भावना का परिणाम है अथवा विकासशील अर्थ-व्यवस्था के फलस्वरूप व्यावसायिक जगत् में उत्पन्न होनेवाली प्रेरणा का। इनमें कोई भी कारण वैज्ञानिक आधार प्रस्तुत नहीं करता है। फलतः प्रयास और फल-प्राप्ति में समान अनुपात का अभाव बना रहता है।

लगता है हिन्दी भाषा की राष्ट्रीय महत्ता के संदर्भ में यह अभाव तब तक खटकनेवाला बना रहेगा, जब तक प्रकाशकीय स्तर पर सामूहिक रूप में हिन्दी प्रकाशकों के राष्ट्रीय सर्वेक्षण एवं अनुसंधान के सुगठित केन्द्रों की स्थापना नहीं हो जाती। इसका कारण यह है कि प्रकाशन व्यवसाय दृष्टिगत मूल्यों से प्रभावित होता है, अतः वह चेतना एवं आवश्यकता के गतिक्रम का अनुगामी बना रहता है। राष्ट्रीय सर्वेक्षण और रुचि-अनुसंधान से चेतना के भावी स्वरूप का पता लगाया जा सकता है। ऐसा ज्ञान राष्ट्रीय हित में हिन्दी के तद्नुरूप योगदान के लिए अनिवार्य है। निःसन्देह इससे समानुपात का वह अभाव भी दूर हो जायगा जिसका उल्लेख पहले किया गया है। यह एक प्रश्न पर्याप्त गम्भीर और विचारणीय है।

हिन्दी पुस्तक प्रदर्शनियों का इतिहास

स्वतंत्रता पूर्व के हिन्दी साहित्य का प्रकाशन स्तर स्वातन्त्र्योत्तर प्रकाशित हिन्दी साहित्य की तुलना में बहुत ही निम्न था। उन दिनों न तो अधिक प्रकाशक थे और न समाचारपत्रों के माध्यम से पुस्तकों का प्रचार करने की प्रथा थी। यही कारण था कि १९४७ के पूर्व हिन्दी की पुस्तकों की प्रदर्शनियाँ नहीं के बराबर आयोजित हुईं।

संवत १८९० से १९१८ ई० तक

संवत् १८९० में गोस्वामी तुलसीदास की ३००वीं जन्मशती नागरी प्रचारिणी सभा ने आयेजित की। उक्त अवसर पर एक पुस्तक प्रदर्शनी का आयोजन किया गया था और दो रुपये मूल्य की तुलसी ग्रन्थावली प्रकाशित की गयी थी। १९१० में इलाहाबाद में एक बहुत बड़ी पुस्तक प्रदर्शनी लगी थी, जिसमें अंग्रेजी के साथ-साथ हिन्दी की पुस्तकें भी प्रदर्शित की गयी थीं। १९१० ई० में पं० मदनमोहन मालवीय के सभापतित्व में वाराणसी में आयोजित हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रथम अधिवेश के अवसर पर पुस्तक प्रदर्शनी की चर्चा चली थी, परन्तु यह विचार भागलपुर में ६ दिसम्बर १९१३ को अनुष्ठित सम्मेलन के चतुर्थ अधिवेशन में कार्यान्वित हुआ। उपर्युक्त अधिवेशन के सभापति लाला मुंशीराम ने प्रदर्शनी का उद्घाटन किया था। इसके बाद नवम्बर १९१६ ई० में जबलपुर में आयोजित सम्मेलन के सप्तम अधिवेशन और २९ मार्च, १९१८ को आयोजित इन्दौर के अष्टम अधिवेशन में भी पुस्तक प्रदर्शनियाँ लगीं। इन्दौर की प्रदर्शनी का उद्घाटन राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने किया था। इस अवसर पर कबीर मठ के जगद्गुरु शंकराचार्य तथा माता कस्तूरबा भी उपस्थित थीं। प्रदर्शनी विभाग के अध्यक्ष डा० सम्पूर्णानन्दजी थे। इन्दौर की प्रदर्शनी नगर के सुन्दर भवन 'एडवर्ड' हाल में की गयी थी। उसकी सजावट के विषय में इन्दौर के 'मल्लारिमार्तण्ड विजय' ने अपने ३० मार्च के अंक में लिखा था—"यह प्रदर्शनी एडवर्ड हॉल में है। इसमें भिन्न-भिन्न प्रेसों की प्रायः ५००० पुस्तकें एकत्रित हुई हैं। इनमें बहुत-सी हस्तलिखित प्राचीन प्रतियाँ भी हैं। इनके अतिरिक्त बहुत-से ताम्रपत्र, शिलालेख, भाषा वर्ण सम्बन्धी चित्र, मानचित्र तथा गणमान्य नेताओं के चित्र भी हैं। मंच पर सामने लोकमान्य तिलक, महात्मा गांधी तथा भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रजी के चित्र सुन्दरता से सजाये हुए रखे हैं। पास ही हस्तलिखित प्राचीन प्रतियाँ हैं। यहाँ शो-केस में बहुमूल्य प्राचीन ताम्रपत्र, शिलालेख इत्यादि रखे गये हैं। इसके बीच रेकों में भिन्न-भिन्न विषयों की पुस्तकें हैं। सामने चार कतारों में टेबुलों पर प्राचीन, आधुनिक, मासिक, पाक्षिक तथा दैनिक पत्र-पत्रिकायें रखी हैं। हर पुस्तक में एक-एक विवरणपत्र है और अधिक सूचना के लिए पास ही स्वयंसेवक हैं। टेबुलों के बीच में एक-एक सुन्दर गमला रखा गया है, जिससे दृश्य की शोभा और अधिक बढ़ गयी है।"

कांग्रेस व आर्यसमाज के अधिवेशनों पर

कांग्रेस के अधिवेशनों पर भी हिन्दी पुस्तकों की दुकानें सजधज के साथ लगती थीं और प्रदर्शनियों का रूप धारण कर लेती थीं। कानपुर में सरोजिनी नायडू के सभापतित्व में कांग्रेस का जो अधिवेशन हुआ था उस अवसर पर हिन्दी की पुस्तकों की प्रदर्शनी लगाने के लिए राष्ट्रीय साहित्य छापनेवाले हिन्दी प्रकाशकों को आमंत्रित किया गया था। इसके अतिरिक्त कांग्रेस के कलकत्ता, लखनऊ, वाराणसी आदि अधिवेशनों के अवसर पर भी हिन्दी पुस्तकों के प्रकाशक अपनी-अपनी प्रकाशित और प्रचारित पुस्तकों की दुकानें लगाते थे। दक्षिण में 'कांकिनाडा' में आयोजित कांग्रेस अधिवेशन के अवसर पर हिन्दी पुस्तकों की दुकानों की सजावट और हिन्दी में प्रकाशित बहुमूल्य राष्ट्रीय साहित्य ने हिन्दी को उन दिनों भी दक्षिण में बहुत ही जनप्रिय बना दिया था। उन दिनों विशेष अवसरों पर लगी ऐसी दुकानों को ही हिन्दी पुस्तकों की प्रदर्शनी की संज्ञा दी जाती थी। हिन्दी पुस्तकों के प्रचार का ठीक ऐसा ही क्रम आर्य समाज के वार्षिकोत्सवों पर होता था। वास्तविकता तो यह है कि इन अधिवेशनों में प्रचार यह किया जाता था कि 'आइये और पुस्तकों की प्रदर्शनी देखिये।'

ब्रह्मसमाजी राजा राममोहनराय और आर्यसमाज के दयानन्द सरस्वती दो ऐसे महापुरुष हुए, जिन्हें भारतीय भाषाओं की पुस्तकों की प्रदर्शनियों के आन्दोलन का जनक कहा जाये तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। जहाँ बंगला में राजा राममोहनराय ने अपने मत के प्रचार के लिए जनसाधारण में शिक्षा-प्रसार की भावना जगाकर समाज को जागरूक करने की प्रेरणा दी, वहीं स्वामी दयानन्द सरस्वती ने हिन्दी में 'सत्यार्थ प्रकाश' लिखकर आर्य समाज के विभिन्न अधिवेशनों के अवसर पर पुस्तकों की प्रदर्शनियों और उनके प्रचार द्वारा हिन्दी को प्रतिष्ठित किया। वह एक ऐसा युग था, जब आर्य समाज के जलसों में हिन्दी की पुस्तकों की सजी दुकानों से 'सत्यार्थ प्रकाश' के अतिरिक्त 'हारमोनियम पुष्पांजलि' नामक भजनों की पुस्तक भी प्रत्येक परिवार खरीदता था।

प्रकाशक संघ की पहल

हिन्दी पुस्तक प्रदर्शनियों का सुव्यवस्थित रूप में देश में आयोजन करने का श्रेय मुख्यत: अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ को है। सन् १९५४ में अपनी स्थापना के बाद से ही संघ के पदाधिकारियों ने यह अनुभव किया कि प्रचार के अन्य साधनों के उपयोग के अतिरिक्त पुस्तक-आन्दोलन को स्थायित्व प्रदान करने के लिए देश के विभिन्न भागों में पुस्तक प्रदर्शनियों का आयोजन करना चाहिये। संघ ने प्रदर्शनियों को जन-सम्पर्क का माध्यम चुना और अपने वार्षिक अधिवेशनों के अवसर पर प्रदर्शनियों के आयोजन का समारम्भ किया। इस क्रम की पहली प्रदर्शनी ८ अप्रैल, १९५५ को वाराणसी के टाउनहाल में आयोजित की गयी। इसके बाद संघ के द्वितीय अधिवेशन के अवसर पर दिल्ली में संघ ने पुस्तकों के जैकेटों की एक अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी लगाई, जिसका उद्घाटन तत्कालीन उपशिक्षा मंत्री कालूलाल श्रीमाली ने किया। इसी वर्ष हिन्दी पुस्तक

मेले का उद्घाटन ३० सितम्बर को डा० सुनीतिकुमार चटर्जी ने किया। इस पुस्तक मेले में लगभग दस हजार पुस्तकें लगी थीं और कलकत्ता की हिन्दीभाषी जनता ने हजारों की संख्या में इसे देखा। १९५८ में प्रकाशक संघ के वाराणसी अधिवेशन के अवसर पर नागरी प्रचारिणी सभा में लगी पुस्तक प्रदर्शनी का उद्घाटन करते हुए भिक्षु जगदीश कश्यप ने आशा व्यक्त की थी कि हिन्दी प्रकाशन शीघ्र ही विश्व की अन्य समृद्ध भाषाओं के समकक्ष स्थान प्राप्त कर लेगा। तदन्तर १९५९ में आगरा अधिवेशन के अवसर पर आगरा विश्वविद्यालय के उपकुलपति कालिकाप्रसाद भटनागर, जनवरी १९६० में प्रकाशक संघ के कलकत्ता अधिवेशन के अवसर पर विश्वमित्र सम्पादक कृष्णचन्द्र अग्रवाल ने पुस्तक प्रदर्शनियों का उद्घाटन किया। संघ के अप्रैल १९६१ में पटना में आयोजित छठे वार्षिक अधिवेशन पर एक बहुत ही भव्य हिन्दी पुस्तक प्रदर्शनी लगी, जिसका उद्घाटन बिहार के तत्कालीन राज्यपाल डा० जाकिर हुसैन ने किया। इसके बाद १९६२ में संघ का अधिवेशन लखनऊ में हुआ और उस अवसर पर लगी प्रदर्शनी का उद्घाटन उत्तर प्रदेश के शिक्षामंत्री आचार्य युगलकिशोर ने किया। १९६२ में चीन के भारत पर आक्रमण के कारण देश में संकट काल की स्थिति घोषित की गयी जिससे प्रकाशक संघ के १९६३ और १९६४ के अधिवेशन बहुत सादगी के साथ सम्पन्न हुए। १९६५ में जयपुर में प्रकाशक संघ का जो अधिवेशन हुआ, उस अवसर पर विधायक निवास तथा महाराजा कालेज में अखिल भारतीय हिन्दी पुस्तक प्रदर्शनी लगाई गई, जिसका उद्घाटन राजस्थान के शिक्षा मंत्री नाथूराम मिरधा ने किया। नेशनल बुक ट्रस्ट (इण्डिया) ने २४ फरवरी १९६६ में लखनऊ में प्रथम राष्ट्रीय हिन्दी पुस्तक प्रदर्शनी आयोजित की, जिसका उद्घाटन उत्तर प्रदेश की मुख्यमंत्री श्रीमती सुचेता कृपलानी ने किया।

परम्परा बन गई

आज हिन्दी पुस्तक प्रदर्शनियों का प्रचलन देश में व्यापक रूप से हो गया है। विश्वविद्यालय, प्रकाशक, साहित्यिक संस्थायें आदि अब अपने वार्षिक अधिवेशनों अथवा विशेष अवसरों पर पुस्तक प्रदर्शनी का आयोजन करने लगे हैं। अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ ने प्रथम राष्ट्रीय पुस्तक समारोह १९६१ में आयोजित कर देश में एक नई परम्परा का निर्माण किया, जिसका निर्वाह नेशनल बुक ट्रस्ट, फेडरेशन ऑफ पब्लिशर्स एण्ड बुकसेलर्स एसोसिएशन ऑफ इंडिया, फेडरेशन ऑफ इण्डियन पब्लिशर्स और अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ के सहयोग से क्षेत्रीय पुस्तक प्रदर्शनियों, पुस्तक समारोहों, राष्ट्रीय और विश्व पुस्तक मेलों को, आयोजित करके कर रहा है।

५ से २० नवम्बर, १९६६ को भारत का पहला राष्ट्रीय पुस्तक मेला बम्बई में तथा १८ मार्च से ४ अप्रैल, १९७२ तक नई दिल्ली में पहला विश्व पुस्तक मेला आयोजित हुआ। १९८१ तक देश भर में दस राष्ट्रीय पुस्तक मेले आयोजित हो चुके हैं। १९८२ का विश्व पुस्तक मेला पाँचवा विश्व मेला था। अब प्रति वर्ष राष्ट्रीय स्तर का पुस्तक मेला और प्रति दूसरे वर्ष विश्वस्तर का पुस्तक मेला लगना नियमित परम्परा बन चुकी है।

❀

भारतीय भाषा मंडप : राष्ट्रवाणी का संगम स्थल

आज पठनरुचि का तेजी से ह्रास हो रहा है, इसलिये पुस्तकों का अस्तित्व खतरे में पड़ गया है। आधुनिक प्रचार साधनों के अध्येताओं का आँकड़ों पर आधारित यह निष्कर्ष जहाँ एक ओर भीषण अंधकार की ओर संकेत करता है, वहीं दूसरी ओर पुस्तक आन्दोलन के प्रेरक तत्व के रूप में भी हमें क्रियाशील करता है। प्रकाशकों की तीन प्रमुख संस्थायें—अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ, फेडरेशन ऑफ इंडियन पब्लिशर्स एण्ड बुकसेलर्स इन इंडिया तथा फेडरेशन ऑफ इंडियन पब्लिशर्स, इस आन्दोलन को सतत् गतिशील कर सम्भावित अंधकार को प्रकाश में बदलने का निरन्तर प्रयत्न कर रही हैं। पुस्तक प्रदर्शनियों का कार्यक्रम इसी आन्दोलन का एक प्रभावशाली मुद्दा है। स्वतंत्रता के बाद देश में अब तक सौ, सवा प्रदर्शनियाँ और अगणित पुस्तक मेले आयोजित हो चुके हैं।

भारतीय पुस्तक उद्योग में इस प्रकार के राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय पुस्तक मेले एक महत्वपूर्ण घटना का रूप ले चुके हैं। इनमें अद्यतन प्रकाशित पुस्तकें तो देखने को मिलती ही हैं, साथ ही राष्ट्रीय मनीषा के विकास यात्रा से भी हम परिचित होते हैं। लेखकों, अनुवादकों, प्रकाशकों, पुस्तक-विक्रेताओं, पुस्तकालयाध्यक्षों तथा सजग पाठकों के ये संगम स्थल गोष्ठियों के माध्यम से पुस्तक-जगत की वैचारिक क्रान्ति के मूल उत्सव हो जाते हैं। इस सन्दर्भ में अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ की भूमिका ऐतिहासिक रही है। १७ अप्रैल १९६१ में संघ के छठे अधिवेशन के अवसर पर एक बृहद् पुस्तक प्रदर्शनी पटना में आयोजित हुई जिसे देख डॉ० जाकिर हुसैन ने कहा था—अब यह कहा जा सकता है कि हिन्दी विश्वभाषा होकर रहेगी।

मेले ही मेले

नेशनल बुक ट्रस्ट द्वारा पुस्तक मेलों का कार्यक्रम डॉ० बी० वी० केसकर के ट्रस्ट के चेयरमैन बनने के बाद प्रारम्भ हुआ। फिर क्या था? देश के सभी अंचलों में पुस्तक मेलों की शुरुआत हुई। सर्वपल्ली राधाकृष्णन, एम० सी० छागला जैसे महानुभावों का सहयोग मिला और पहला राष्ट्रीय पुस्तक मेला बम्बई के चर्च गेट क्रॉस मैदान में ५ से १४ नवम्बर १९६६ को आयोजित हुआ। 'पुस्तकें शिक्षाजगत की संदेशवाहक' तथा 'राष्ट्रीय हित में पुस्तकों के योग' पर दो विचार गोष्ठियाँ हुईं। इनमें हिन्दी की गोष्ठी का

उद्घाटन प्रख्यात कथाकार अमृतलाल नागर ने किया। इन्हीं दिनों सारे देश में सप्ताह व्यापी राष्ट्रीय पुस्तक समारोह मनाया गया। वाराणसी, दिल्ली, लखनऊ, प्रयाग, जबलपुर, जयपुर, जोधपुर आदि प्रमुख स्थानों में प्रदर्शनियाँ हुईं। पुस्तक उत्पादन तथा पठन-पाठन के अनुकूल वातावरण का आरम्भ हुआ। अब तक भारत के विभिन्न महानगरों में नेशनल बुक ट्रस्ट के सौजन्य से तीस राष्ट्रीय पुस्तक मेले आयोजित हो चुके हैं।

विश्व पुस्तक मेले

इन राष्ट्रीय स्तर के मेलों ने विश्व स्तर के मेलों को भी प्रेरित किया और १९७२ में प्रथम विश्व पुस्तक मेले का शुभारम्भ नेशनल बुक ट्रस्ट ने १८ मई १९७२ को फिरोजशाह कोटला ग्राउन्ड, दिल्ली में किया, जिसका उद्घाटन तत्कालीन राष्ट्रपति वी० वी० गिरि ने किया।

प्रथम विश्व पुस्तक मेले की सफलता से देश-विदेश के प्रकाशकों ने अनुभव किया कि ऐसे मेलों को एशियाई प्रकाशन-जगत की नियमित घटना बनना चाहिये, क्योंकि इससे दक्षिण और दक्षिण पूर्व एशियाई क्षेत्रों को लेकर विश्व प्रकाशकों के प्रदर्शन का भारत एक आदर्श प्रभावकारी मंच बन सकता है।

फलत: दूसरा विश्व पुस्तक मेला फरवरी १९७६ में तथा तीसरा फरवरी १९७८ में दिल्ली के प्रगति मैदान में सम्पन्न हुआ। चौथा, विश्व पुस्तक मेला २९ फरवरी से ९ मार्च १९८० को दिल्ली के प्रगति मैदान में लगा, किन्तु यह पिछले मेलों से आकार प्रकार में बहुत बड़ा था। जहाँ आरम्भ में इन मेलों में १०-१२ देश भाग लेते थे, अब ४० से भी अधिक देश भाग लेते हैं। जहाँ प्रथम विश्व पुस्तक मेले में १५२ प्रकाशकों ने भाग लिया था वहीं यह संख्या लगभग ५०० तक बढ़ी। जहाँ प्रथम विश्व पुस्तक मेला ६७९० स्क्वायर मीटर में लगा था, वहीं चतुर्थ विश्व पुस्तक मेला चौगुनी जगह पर हुआ।

अब भारतीय भाषा मंडप

तृतीय विश्व पुस्तक मेले में हिन्दी मंडप की योजना अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ की ओर से की गयी थी। अंग्रेजी बहुल इस पुस्तक मेले में पहली बार हिन्दी अपना स्थान बना पायी थी, किन्तु अन्य भारतीय भाषाओं के पुस्तकों की दुकानें अंग्रेजी के पुस्तकों के दुकानों के साथ ही दिखाई पड़ती थीं। यह बात हर भारतीय को खटकती थी। हमारी राष्ट्रीयता चोट खाती थी, जब हम अपने ही देश की भाषा को अंग्रेजी के बगल में सिमटा हुआ देखते थे। परिणामत: संघ ने भारतीय भाषा मंडप का स्वप्न देखा। स्वप्न को साकार करने के लिए संकल्प की आवश्यकता पड़ती है। संघ ने संकल्प लिया। इस सन्दर्भ में उसने विभिन्न भाषा के विद्वानों और प्रकाशकों की तीन सफल गोष्ठियाँ कीं। पहली गोष्ठी तृतीय विश्व पुस्तक मेले में ही १९७८ में हुई। दूसरी गोष्ठी १९७९ मार्च में कलकत्ता में तीसरी ७ अक्टूबर को बम्बई में की गयी। चौथी गोष्ठी ६-७ और ८ मार्च १९८० को चतुर्थ विश्व पुस्तक मेले के अवसर पर सम्पन्न की गयी। फलस्वरूप सपना

साकार हुआ। मेले के हृदयांचल, हाल ऑफ नेशन्स में भारतीय भाषा मंडप लगा। सम्पूर्ण राष्ट्र की वाणी समवेत हुई। उत्तर दक्षिण एक होगा। पूरब पश्चिम के क्षितिज मिलेंगे। इस संगम स्थल से ही साहित्य के आदान-प्रदान का यज्ञ आरम्भ हो जायेगा। भारतीय भाषाओं की साहित्य-सरिता दूसरे स्थलों पर प्रवाहित होने का मार्ग ढूँढ़ेगी। पाठकों ने भी एक ही स्थल पर बंगला, तेलुगू, मराठी, गुजराती, उड़िया, असमिया आदि भारतीय भाषाओं के प्रतिनिधि साहित्य का दर्शन किया। यहीं बाल वर्ष में प्रकाशित बाल-साहित्य का प्रदर्शन बच्चों के लिए आकर्षण का केन्द्र बना।

संस्कृत लगभग सभी भारतीय भाषाओं के मूल में है और उर्दू हिन्दी की सहधर्मिणी। पहली बार इस मंडप में उर्दू और संस्कृत भाषायें एक साथ बैठीं।

भारतीय भाषा आन्दोलन

भारतीय भाषाओं में विशेष रूप से चेतना जगी। १९७७ में मारिशस में क्रमशः प्रथम तथा द्वितीय विश्व हिन्दी सम्मेलन सम्पन्न हुए। इसी क्रम में हैदराबाद में विश्व तेलुगू सम्मेलन, चंडीगढ़ में विश्व पंजाबी सम्मेलन तथा मद्रास में विश्व तमिल सम्मेलन भी आयोजित हुए। इन भाषाओं की जागृति जहाँ हमारे लिए प्रसन्नता की बात है, वहीं इनकी पृथकता हमारे लिए चिन्ता का विषय भी है। इनकी वाणियाँ पृथक्-पृथक् रहकर घोष ही रहेंगी पर सामूहिक होकर उद्घोष बन जायेंगी। भारतीय भाषा मंडप के हमारे स्वप्न में भारतीय भाषाओं के बढ़ रहे अलगाव को समेटना और सभी को एक मंच पर लाना है, जिससे प्रत्येक भारतीय भाषा का आन्दोलन मिलकर एक महान् आन्दोलन हो जाय। हर भाषा अपना अलग अस्तित्व रखते हुए स्वयं को एक महानद की धारा मात्र समझने का प्रयास स्वयं करे। बिना दबाव के तथा बिना आग्रह या दुराग्रह के सभी भाषायें अपना विकास करें, पर एक दूसरे का हाथ पकड़ते हुए, एक दूसरे की सहगामिनी बनकर।

उल्लेख्य है कि १९७६ में नेशनल बुक ट्रस्ट ने भारतीय भाषाओं के आन्दोलन को बढ़ावा देने के लिए हिन्दी, बंगला, गुजराती के आगामी दशक के प्रकाशनों पर विचारार्थ गोष्ठियाँ आयोजित की थीं। इनमें प्रकाशकों और लेखकों ने इस तथ्य पर प्रकाश डाला था कि भारतीय भाषाओं के प्रकाशनों के समुन्नत होने से ही देश में शिक्षा का समुचित प्रसार होगा। इन गोष्ठियों में सभी एक मत थे कि कोई भी विदेशी भाषा हमारे देश को सही बनने नहीं दे सकती।

मेले के प्रमुख कार्यक्रम

१. नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया तथा यूनेस्को के सहयोग से एक अन्तर्राष्ट्रीय विचारगोष्ठी विकासशील देशों के ग्रामीण क्षेत्रों के लिए 'प्रकाशन' विषय पर १-२-३ तथा ४ मार्च १९८० को सम्पन्न हुई।

२. ६-७ तथा ८ मार्च १९८० को भारतीय भाषाओं में आदान-प्रदान विषय पर

त्रिदिवसीय राष्ट्रीय विचारगोष्ठी का आयोजन अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ की ओर से किया गया।

३. एक राष्ट्रीय पुस्तक प्रदर्शनी का आयोजन हाल ऑफ नेशन्स के ऊपर कक्ष में किया गया, जिसमें देश में प्रकाशित होनेवाली अंग्रेजी और हिन्दी की पुस्तकों के अतिरिक्त सभी भारतीय भाषाओं के १९७८-१९७९ के प्रकाशन थे। प्रदर्शनी में बाल साहित्य और प्रौढ़ साहित्य के विशेष कक्ष रहे। अन्धों के लिए ब्रेललिपि में छपे साहित्य का पृथक कक्ष रहा।

४. फेडरेशन ऑफ इंडियन पब्लिशर्स तथा फेडरेशन ऑफ इंडियन पब्लिशर्स एण्ड बुकसेलर्स एसोसिएशन द्वारा पुस्तक-जगत की अद्यतन समस्याओं पर विचार गोष्ठियाँ तथा स्वागत समारोह हुए।

इन कार्यक्रमों के अतिरिक्त जन-मानस के उमड़ते हुए कुम्भ द्वारा राष्ट्रवाणी को सफल और सार्थक अर्घ्य दिया जिससे देश की वाग्मिता मुखर हुई।

विश्व पुस्तक मेलों में हिन्दी मण्डप

११ फरवरी से २० फरवरी, १९७८ तक नई दिल्ली में आयोजित 'तृतीय विश्व पुस्तक मेले के अन्तर्गत' अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ के तत्वावधान में हिन्दी प्रकाशकों द्वारा 'हिन्दी मंडप' की स्थापना एक महत्वपूर्ण एवं स्तुत्य प्रयास है। कहना न होगा कि हिन्दी प्रकाशन-जगत की यह एक महती उपलब्धि है, क्योंकि हिन्दी के सामान्य प्रकाशकों के अतिरिक्त हिन्दी में प्रकाशन करनेवाली सार्वजनिक, धार्मिक, स्वशासी, सरकारी एवं अर्द्ध-सरकारी प्रमुख प्रकाशन संस्थाओं ने (पाठकों के हित में) हिन्दी मंडप को विचारविनिमय का माध्यम बनाया। मंडप की दूसरी महत्वपूर्ण देन है—देश के साहित्यकारों, शिक्षाविदों, पत्रकारों, पाठकों, प्रकाशकों, पुस्तक-विक्रेताओं एवं पुस्तकालयाध्यक्षों आदि का (लाखों की संख्या में) एक मंच पर उपस्थित होना।

१९७२ तथा १९७६ में दिल्ली में आयोजित दो विश्व पुस्तक मेलों को देखनेवालों को ऐसा प्रतीत हुआ कि मानो, भारत की प्रधान लोकभाषा, राष्ट्र और राजकीय भाषा अँग्रेजी ही है। इन दोनों मेलों में हिन्दी तथा भारतीय भाषाओं के पाठक एवं प्रकाशक बहुत ही कम संख्या में सम्मिलित हुए और जो लोग इसमें गये भी वे अँग्रेजीवालों की भीड़ में खो गये। अत: 'अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ' ने तृतीय विश्व पुस्तक मेले में हिन्दी तथा भारतीय भाषाओं के विकसित और समुन्नत स्वरूप को उपस्थित करने हेतु 'हिन्दी मंडप' के निर्माण का पुनीत संकल्प लिया। अन्तर्राष्ट्रीय महत्व का यह राष्ट्रीय अनुष्ठान एक ऐसा महाकुंभ था जिसमें प्रकाशक संघों, केन्द्र तथा हिन्दीभाषी राज्यों की सरकारों एवं अन्यान्य सार्वजनिक संस्थाओं के सहयोग की त्रिवेणी प्रवाहित हुई।

मेले में हिन्दी मंडप का पृथक अस्तित्व प्रतीत हो इसके लिए 'नेशनल बुक ट्रस्ट-इण्डिया' की ओर से विशेष व्यवस्था की गयी। मंडप का रंग आदि अपने आप में पृथक् और निराला था, जिसने हिन्दी प्रेमीजनों को आकर्षित किया। लगभग ५ लाख दर्शकों ने इस मंडप को देखा। मंडप का यह स्वरूप अद्‌भुत था। जहाँ एक ओर आगत पाठक और हिन्दी प्रेमीजन को विश्वविद्यालय स्तर के प्रकाशनों से लेकर मान्टेसरी कक्षाओं तक की सुमुद्रित पाठ्य-पुस्तकें मंडप में मिलीं, वहीं दूसरी ओर संस्कृत भाषा में वेद, पुराण उपनिषद्, गीता, रामायण आदि के साथ ही विवेकानन्द, दयानन्द, स्वामी रामतीर्थ, अरविन्द तथा रजनीश जैसे चिन्तकों द्वारा रचित भारतीय संस्कृति, धर्म और दर्शन को स्वर देनेवाले ग्रंथ भी उन्हें देखने को मिले। हिन्दी में बाल-साहित्य के प्रकाशनों ने भी कितनी प्रगति की है—मंडप अपने आप में इस तथ्य का भी साक्षी था। इस क्रम में विदेशों से आनेवाले प्रतिनिधियों को भी राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रकाशनों से परिचित होने का सुअवसर मिला और इस प्रकार हिन्दी प्रकाशन के निर्यात की संभावना बनी।

भारत धार्मिक आस्था और सांस्कृतिक अवदान की पुण्यभूमि रहा है। यहाँ की ८० प्रतिशत धर्मप्राण जनता गाँवों में बसती है। अतएव ग्रामीण सभ्यता की आड़ में पले सांस्कृतिक अवधारणाओं और धार्मिक औदात्य से समन्वित साहित्य के साथ ही ग्रामोत्थान से सम्बन्धित प्रकाशनों की प्रदर्शनी भी मंडप की अपनी एक विशेषता थी। सम्प्रति समस्या है कि हम आगामी २००० ई० तक ग्राम्य बहुल देश की विराट जनसंख्या को शिक्षित बनाने के पूर्व शिक्षा के घोषित कार्यक्रम को कैसे पूरा करें। वर्तमान काल में देश के १५ से ३५ वर्ष की आयुवाले ४० करोड़ निरक्षर लोगों को कैसे साक्षर बनायें। इस कार्य की पूर्ति के लिए अनेक दूरगामी प्रकाशन-योजनायें बनेंगी। प्रौढ़ शिक्षा के सम्बन्ध में हिन्दी प्रकाशन जगत पहले से ही जागरूक है। शिक्षा मंत्रालय के साक्षरता आन्दोलन में हिन्दी के प्रकाशकों ने अपनी भूमिका किस तरह निभायी है—हिन्दी मंडप इसका साक्षी बना।

'मंडप' हिन्दी प्रकाशकों के आत्मविश्वास की अभिव्यक्ति रहा। मंडप में हिन्दी प्रकाशन-जगत को सभी वर्गों का मिल-बैठकर विभिन्न क्षेत्रों की प्रगति का अवलोकन मूल्यांकन, प्रकाशन तकनीक की विज्ञता को बढ़ावा देना उपयोगी रहा। मंडप ने उन यौन-मुखर मिथ्या धारणाओं और कुचक्रों को छिन्न-भिन्न कर दिया, जिसके आधार पर दो प्रतिशत लोगों द्वारा अपनाई जानेवाली भाषा—अँग्रेजी के समर्थन में प्राय: यह कहा जाता है कि अँग्रेजी से ही इस देश की नैया पार लगेगी, क्योंकि हिन्दी में अभी प्रकाशनों का अभाव है तथा अन्य भारतीय भाषाएँ अपंग हैं।

'मंडप' में कथा-साहित्य, आलोचना आदि पर रचित ग्रन्थों के साथ ही दुर्लभ पाण्डुलिपियों की भव्य प्रदर्शनी भी पाठकों को देखने को मिली। इसके अतिरिक्त हिन्दी प्रेमी जन इस बात से भी अभिभूत हुए कि आज की आधुनिक समस्याओं पर हिन्दी में सर्वाधिक प्रकाशन हुए हैं। एक तरफ जहाँ राजनीतिक आन्दोलनों से प्रभावित जनचेतना के प्रकाशन हिन्दी में हुए, वहीं दूसरी तरफ सामाजिक उद्वेलन से उद्भूत नारी-मुक्ति-आन्दोलन का साहित्य भी प्रचुर मात्रा में प्रकाशित हुआ।

इसी अवसर पर अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ ने 'हिन्दी प्रकाशन के नये आयाम' विषय पर त्रिदिवसीय गोष्ठी का स्थानीय शकुन्तला थियेटर में आयोजन किया। गोष्ठी का उद्घाटन उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री रामनरेश यादव और समापन राजस्थान के मुख्यमंत्री भैरो सिंह शेखावत ने किया। गोष्ठी में देश के मूर्धन्य प्रकाशक, लेखक, पत्रकार, शिक्षाविद्, पाठक और पुस्तक-विक्रेता, हिन्दी से सम्बन्धित उक्त सभी वर्गों के विचारक इस अवसर पर एकत्र हुए। स्वतन्त्रता पूर्व और स्वातन्त्र्योत्तर काल में हुए हिन्दी के प्रकाशनों की प्रगति की तुलनात्मक समीक्षा हुई। चर्चा का मुख्य विषय था-आनेवाली नयी पीढ़ी के लिए समयबद्ध योजनानुसार किस तरह का साहित्य प्रकाशित किया जाय। भारतीय संस्कृति की पृष्ठभूमि में धर्म और दर्शन के प्रकाशनों का हिन्दी में बाहुल्य कैसे हो और साथ ही प्रकाशन सम्बन्धी ऐसी विशाल उत्पादन वाली योजनाओं को कारगर करने की पद्धति निर्धारित करना, जिससे सन् २००० तक देश पूर्णतया साक्षर हो जाय, ताकि शिक्षित होने पर आनेवाले जनमानस में पुस्तकों की भूख बढ़े।

गोष्ठी में विशद रूप से एक और तात्कालिक आलोच्य विषय था कि अन्तर्राष्ट्रीय बालवर्ष के अवसर पर, हिन्दी प्रकाशक बाल-साहित्य की दिशा में किस तरह से प्रगति करें। उत्कृष्ट कोटि के बाल-साहित्य के लिए मुद्रण के अच्छे साधन चाहिए। अच्छे किस्म का कागज तथा कलात्मक सज्जा तथा चित्रों के चयन की चर्चा हुई।

हिन्दी-मंडप हिन्दी प्रकाशन की प्रगति का एक प्रतीकात्मक आन्दोलन है जो प्रकाशक संघ के रजत-जयन्ती वर्ष में प्रारम्भ हुआ। हमारे लक्ष्यप्राप्ति की यह इति नहीं है, बल्कि आरम्भ है। साधनों के मंजिल पर चलते हुए हमें हिन्दी के लिए अभी बहुत कुछ करना है। दृढ़तापूर्वक कहा जायगा कि मंडप हिन्दी का एक तीर्थ सिद्ध हुआ और इस तीर्थ के संगम में सभी हिन्दी प्रकाशकों ने देश और जनहित को समृद्ध करने का व्रत लिया।

हिन्दी मंडप की विशेष बातें

१. 'एशियन रायटर्स' का एक वर्कशाप १६, १७ तथा १८ फरवरी को मेले के समय नई दिल्ली में आयोजित हुआ।

२. अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ का एक कार्यालय मेले में खुला, जहाँ से हिन्दी मंडप के सम्बन्ध में सभी तरह की जानकारी प्राप्त की जा सकती थी।

३. मेले में दिन में १० बजे से रात ८ बजे तक 'बैंक ऑफ कनारा' की दो शाखाओं की सेवा प्रकाशकों को उपलब्ध हुई।

४. एक विशेष गोष्ठी में क्षेत्रीय भाषाओं के प्रकाशकों का सम्मान किया गया और उसमें परस्पर सहमति के आधार पर चुनी हुई कृतियों के कापीराइट के आदान-प्रदान पर वार्ता हुई।

५. हिन्दी मंडप तथा राष्ट्रीय पुस्तक प्रदर्शनी में कुल मिलाकर लगभग २०० हिन्दी प्रकाशकों ने भाग लिया। इसमें पाठकों को अनुमानतः सत्रह हजार हिन्दी के चुने हुए प्रकाशन देखने को मिलें। पुस्तकालयाध्यक्षों के लिए पुस्तकों के चयन का यह स्वर्णिम अवसर था।

६. बृहदाकार हिन्दी मंडप को देखने के लिए अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ ने 'हिन्दी मंडप निदेशिका' प्रकाशित की।

७. राजस्थान, उत्तरप्रदेश और हिमांचल प्रदेश के मंत्रियों ने 'मंडप' में भाग लेनेवाले हिन्दी के साहित्यकारों, शिक्षाविदों, पत्रकारों तथा प्रकाशकों से अपने-अपने राज्यों द्वारा हुए हिन्दी के विकास से सम्बन्धित विषयों पर चर्चा की।

९. इन्हीं दिनों १७-१८ तथा १९ फरवरी को बम्बई की 'हिन्दी लेखक सम्मेलन' नामक संस्था द्वारा लेखक सम्मेलन का आयोजन हुआ जिसमें लगभग हिन्दी के १०० लेखकों ने भाग लिया।

तृतीय विश्व पुस्तक मेले में हिन्दी-मण्डप

सोनपुर और ददरी के मेलों की जैसी चहल-पहल, कलकत्ता और बम्बई की दीपावली जैसी रंगीनियों और वाराणसी की शहनाई की सुमधुर धुन के बीच अजीब शमा थी, तृतीय विश्व पुस्तक मेले की। जिसमें उतावले दर्शक होते थे मात्र पुस्तक प्रेमी।

विश्व पुस्तक मेलों का आयोजन हमारे देश के लिए शिक्षा प्रसार के क्षेत्र में एक सफल प्रयत्न है। ये मेले जहाँ एक ओर विश्वबन्धुत्व के प्रतीक हैं, वहीं इनके द्वारा विश्व शिक्षा के मंच पर ज्ञान का आदान-प्रदान होता है। ऐसे मेले पुस्तक-जगत से सम्बन्धित सभी वर्गों के मिलन स्थल होते हैं और यहाँ प्रकाशन तकनीक की समुन्नत जानकारी मिलती है। यहीं देश-विदेश के प्रकाशक पुस्तकों के आयात-निर्यात के सौदे करते हैं और अनुवादों के कापीराइट खरीदे-बेचे जाते हैं। तृतीय विश्व पुस्तक मेले में रूस और अमेरिका आदि से अन्य भाषाओं की पुस्तकों के अनुवादों के साथ-साथ हिन्दी की कृतियों की भी कापीराइट की माँग हुई।

इस मेले में प्रदर्शनार्थ केवल इङ्गलैण्ड से प्रति सप्ताह ८ टन किताबें रियायती भाड़े पर एयर इंडिया तथा ब्रिटिश एयरवेज के विमानों द्वारा ढोई गईं। मेले में प्रदर्शित सबसे कीमती पुस्तक थी सोलहवीं शताब्दी में प्रकाशित 'मार्टिन लूथर किंग ग्रन्थावली'। गटेनबर्ग, जर्मनी में छपी इस पुस्तक का मूल्य बीस हजार रुपये है।

केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय तथा नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया द्वारा आयोजित तृतीय विश्व पुस्तक मेले में ४१४ भारतीय प्रकाशकों के अतिरिक्त पैंतीस देशों के दो सौ प्रकाशकों ने भाग लिया। इसके आयोजन में यूनेस्को, विश्व श्रम संघटन, विश्व स्वास्थ्य संघटन आदि ने भी योग दिया। मेले में एक साथ चुनी हुई दो लाख पुस्तकें दर्शकों को देखने को मिली। हिन्दी-मण्डप तथा इन्द्रधनुष में प्रदर्शित राष्ट्रीय प्रदर्शनी में हिन्दी पुस्तकों की संख्या लगभग पचास हजार थी।

हिन्दी-मण्डप दस हजार स्क्वायर फीट क्षेत्रफल में फैला था। इसका अपना स्वतंत्र अस्तित्व था। दर्शकों के लिए अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ ने हिन्दी-मण्डप की एक निदेशिका प्रकाशित की थी।

नेशनल बुक ट्रस्ट के अध्यक्ष ए० एल० डायस के अनुसार पिछले १९७६ के मेले की तुलना में इस बार करीब दुगुने स्थान में यह पुस्तक मेला लगाया गया था और मेले का बजट २५ लाख रुपये था जबकि विगत मेले का सिर्फ १३ लाख था। इस अवसर पर डाक विभाग द्वारा विशेष पोस्टेज स्टाम्प निकाला गया।

हिन्दी-मण्डप में ९५ हिन्दी प्रकाशकों ने भाग लिया। द्वितीय विश्व पुस्तक मेले में भाग लेनेवाले हिन्दी प्रकाशकों का प्रतिशत सिर्फ ५ था, वहीं इस मेले में हिन्दी-मण्डप के कारण बढ़कर २५ प्रतिशत हो गया। इसमें हिन्दीभाषी प्रदेशों की सरकारों का सराहनीय योगदान रहा।

नेशनल बुक ट्रस्ट ने हिन्दी-मण्डप बनाने में जो श्रम और रुचि दिखाई वहीं उसको सजाने के लिए उतनी तत्परता नहीं दिखाई, जितनी कि अंग्रेजी-मण्डप को सजाने

में। अंग्रेजी-मण्डप लाल मखमली कारपेटों और विशाल नीले पर्दों से सजाया गया था। बहुत आग्रह करने पर हिन्दी-मण्डप के लिए हरे रंग की पट्टियाँ आईं।

पुस्तकों की भूख हमारे बीच कितनी अधिक है इसके कुछ अजीब तरह के नमूने भी देखने को मिले। हिन्दी-मण्डप में एक महिला को देखा गया जो बच्चों की गाड़ी में पुस्तकें खरीदकर रही थी। एक महिला पाठक ने विवाह पूर्व अपने होनेवाले पति से हिन्दी में प्राप्त प्रेमपत्रों की भाषा को इतना सरस पाया कि उन्होंने उत्तर देने के लिए हिन्दी सीखी और उस समय हिन्दी में प्रकाशित लवलेटर्स नामक पुस्तक खरीदी। एक ऐसे पाठक से परिचय हुआ जिनका कहना था कि प्रतिदिन ८ घण्टे इस मेले तथा हिन्दी-मण्डप को देख रहा हूँ किन्तु मेरे जिज्ञासा की पूर्ति दस दिनों में नहीं हो सकेगी। इस पाठक का मत था कि मेला कम से कम एक माह का होना चाहिए। दस दिन बहुत ही कम है।

मेले के अन्तिम दिनों में तो विश्व पुस्तक मेला पिकनिक स्थल जैसा बन गया था। कान्वेन्ट में अंग्रेजी माध्यम से पढ़नेवाले छात्र-छात्राएँ दो-दो की टोलियों में गिलहरियों की तरह चुलबुली हरकतें करती हुई झुण्ड की झुण्ड हिन्दी-मण्डप की ओर बढ़ती हुई देखी गयी।

१९६६ में नेशनल बुक ट्रस्ट ने बम्बई से राष्ट्रीय पुस्तक प्रदर्शनियों का कार्यक्रम प्रारम्भ किया। तत्कालीन अध्यक्ष डा० केसकर के भारतीय भाषाओं के प्रति प्रेम के होते हुए भी ट्रस्ट के एक निदेशक हिन्दी के विरुद्ध षड़यंत्र करने में लगे रहे। अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ बिना किसी अनुदान और ट्रस्ट के उपेक्षा भाव के होते हुए भी इन मेलों में गोष्ठियों तथा अन्य कार्यक्रमों द्वारा हिन्दी को जीवित रखने के लिए जनमत तैयार कर रहा था। अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ के सुझाव पर सैंमुएल इसराइल के निदेशक बनते ही मेलों के पोस्टर हिन्दी में भी छपने लगे। अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ को सलाहकार समिति में स्थान दिया गया।

इसके अतिरिक्त मेले में प्रायः प्रतिदिन ही विभिन्न संगठनों द्वारा गोष्ठियाँ, परिसंवाद और सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित किए गये। फेडरेशन आफ इण्डियन पब्लिशर्स ने चीनी और रूसी प्रकाशकों के साथ संगोष्ठियाँ कीं। मास्टर प्रिन्टर्स फेडरेशन ने मुद्रण के ऊपर एक संगोष्ठी आयोजित की हैं। ऑथर्स गिल्ड तथा भारतीय लेखक संघ का अष्टम राष्ट्रीय सम्मेलन १३ और १४ फरवरी को हुआ, जिसमें कवि-सम्मेलन भी सम्मिलित है। इसके अतिरिक्त फेडरेशन आफ पब्लिशर्स एण्ड बुकसेलर्स एसोशिएशन, भारतीय शासकीय लाइब्रेरी एसोशिएशन, इण्डियन एसोशिएशन आफ एकेडेमिक लाइब्रेरीज, इण्डियन लाइब्रेरी एसोशिएशन आदि ने भिन्न-भिन्न दिनों में अपनी संगोष्ठियाँ आयोजित कीं। अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ ने ९ और १० फरवरी, १९८२ को 'हिन्दी साहित्य के प्रचार-प्रसार और वितरण' विषय पर एक परिसंवाद आयोजित किया। जिसमें गत चतुर्थ मेले के अवसर पर ६-७-८ मार्च, १९८० को आयोजित विचार-गोष्ठियों की संस्तुतियों के कार्यान्वयन पर विचार हुआ।

संक्षेप में यह मेला एक बहुत बड़ा अवसर था, न केवल पुस्तक प्रेमियों के लिए बल्कि देश की भावी पीढ़ी शिक्षकों, साहित्य प्रेमियों, व्यवसाइयों, उद्यमियों और उन लाखों-करोड़ों लोगों के लिए जो देश की भावनात्मक एकता के लिए नए-नए क्षितिजों की खोज में लगे हैं। साहित्य ही किसी देश का वह तंत्र है जिसका एक तार छू देने से ही सम्पूर्ण जीवन झंकृत हो उठता है। ऐसे मेलों का आयोजन ही देश की भिन्न-भिन्न भाषाओं के तारों को एक समस्वर बना सकता है। इस पंचम विश्व पुस्तक मेले का नारा था : ''भारत के लिए भारतीय भाषाएँ और उनका साहित्य।''

चतुर्थ पुस्तक मेले में भारतीय भाषा मंडप

विश्व पुस्तक मेले का आयोजन एक ऐसा अवसर है, जब विभिन्न भाषाओं की महत्वपूर्ण कृतियों को जानने-समझने पाने का अवसर मिलता है। भौगोलिक दूरी के बावजूद साहित्य के जरिये एक हिस्से के लोग दूसरे हिस्से के लोगों से अपने को जुड़ा महसूस करते हैं।

पुस्तक आंदोलन के इस अभिनव कार्यक्रम में देश के प्रकाशक संघों का अभूतपूर्व योग है। अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ, फेडरेशन ऑफ इंडियन पब्लिशर्स ऐण्ड बुकसेलर्स इन इंडिया तथा फेडरेशन ऑफ इंडियन पब्लिशर्स देश की तीन प्रमुख प्रकाशन संस्थाएँ हैं।

प्रदर्शनियों के माध्यम से हिन्दी और भारतीय भाषाओं की प्रगति पर दृष्टि रखना तथा उन्हें जीवंत रखना अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ का मुख्य उद्देश्य रहा है। पुस्तक मेलों का आयोजन इसी कार्यक्रम का अंग है। पुस्तक मेलों का आयोजन इसी कार्यक्रम का प्रमुख अंग है। मेले के दिनों में पुस्तक-जगत की विभिन्न समस्याओं पर विचार गोष्ठियों तथा कार्यशालाओं (वर्कशॉप) का आयोजन भी होता है, जिनमें लेखकों, अनुवादकों, प्रकाशकों, पुस्तक विक्रेताओं, पुस्तकालयाध्यक्षों और पाठकों के प्रतिनिधि भाग लेते हैं।

देश में इस तरह के पुस्तक आन्दोलन का सूत्रपात करने का श्रेय अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ को है। १७ अप्रैल १९६१ को पटना में हुए प्रकाशक संघ के छठें अधिवेशन के अवसर पर एक वृहद् पुस्तक प्रदर्शनी लगी, जिसका उद्‌घाटन तत्कालीन केन्द्रीय शिक्षामंत्री हुमायूँ कबीर ने किया। बिहार के तत्कालीन राज्यपाल एवं प्रसिद्ध शिक्षाविद डॉ० जाकिर हुसेन ने प्रदर्शनी के अवलोकन के पश्चात कहा कि अब यह कहा जा सकता है कि हिन्दी विश्वभाषा हो कर रहेगी। इसी ऐतिहासिक अधिवेशन में एक प्रस्ताव पारित किया गया, जिसमें राष्ट्रीय पुस्तक समारोह मनाने का निश्चय हुआ। तदनुसार १९६१ में १४ नवम्बर से २१ नवम्बर तक अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ द्वारा आयोजित देश के प्रथम राष्ट्रीय पुस्तक समारोह का वाराणसी में आयोजन हुआ—जिसका उद्‌घाटन हिन्दी की प्रसिद्ध कवियित्री श्रीमती महादेवी वर्मा ने किया। ७ दिन के इस कार्यक्रम में डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल, डॉ० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा, साप्ताहिक हिन्दुस्तान के

तत्कालीन संपादक बांकेबिहारी भटनागर, रामचन्द्र वर्मा आदि ने भाग लिया। बम्बई में इस समारोह का शुभारंभ पूर्व केन्द्रिय मंत्री मुहम्मद करीम छागला ने किया। बम्बई के पुस्तक जगत की समस्या पर पाठकों की सात विचार गोष्ठीयाँ हुईं। इसके बाद केरल में इस अयोजन का शुभारम्भ सी० के० मणि ने किया और आंध्र में वी० के० वेंकटराव के सभापतित्व में यह कार्यक्रम संपन्न हुआ।

नेशनल बुक ट्रस्ट द्वारा पुस्तक मेलों का विधिवत कार्यक्रम डॉ० केसकर के ट्रस्ट का चेयरमैन बनने के बाद प्रारंभ हुआ। प्रारम्भ में ट्रस्ट द्वारा जम्मू-कश्मीर, पंजाब, उड़ीसा, हिमाचलप्रदेश, उत्तरप्रदेश (वाराणसी तथा लखनऊ) राजस्थान, मध्यप्रदेश, मैसूर, महाराष्ट्र आदि राज्यों में पुस्तक प्रदर्शनियाँ लगायी गयीं।

नेशनल बुक ट्रस्ट ने देश में प्रथम राष्ट्रीय पुस्तक मेला बम्बई के क्रॉस मैदान, चर्चगेट में ५ से १४ नवम्बर, १९६६ तक आयोजित किया। वहाँ पुस्तकों के संबंध में दो विचार गोष्ठियाँ हुईं—एक ट्रस्ट द्वारा आयोजित तथा दूसरी अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ द्वारा। इन गोष्ठियों का विषय था—'पुस्तकें शिक्षा-जगत की संदेशवाहक' तथा 'राष्ट्रीय हित में पुस्तकों का योग'। नेशनल बुक ट्रस्ट द्वारा अब तक ९ राष्ट्रीय पुस्तक मेले लगाये जा चुके थे।

ये राष्ट्रीय पुस्तक मेले, लाखों पुस्तक-प्रेमी पाठकों के मिलन स्थल बन गये हैं। इन्हें राष्ट्रीय एकता का प्रतीक कहा जाता है। जहाँ एक ओर देश की भावनात्मक एकता इन मेलों में दृष्टिगोचर होती है, वहीं देश के विभिन्न भागों से आये प्रकाशकों, लेखकों, पाठकों का यह मेला संगम स्थल प्रतीत होता है।

पाँच गुना बड़ा मंडप

क्षेत्रीय प्रतिनिधियों और राष्ट्रीय मेलों की सफलता से प्रेरित होकर जनता की माँग पर नेशनल बुक ट्रस्ट ने १९७२ में प्रथम विश्व पुस्तक मेले का शुभारम्भ किया। यह मेला दिल्ली के फिरोजशाह कोटला ग्राउंड में १८ मई १९७२ को लगाया गया।

प्रथम विश्व पुस्तक मेले की सफलता से देश-विदेश के सभी प्रतिनिधियों ने यह निर्णय लिया कि ऐसे मेले को एशियाई प्रकाशन-जगत की नियमित घटना बनाना चाहिए, क्योंकि इससे भारत, दक्षिण और दक्षिण-पूर्व एशियाई क्षेत्रों को लेकर विश्व प्रकाशनों के प्रदर्शन का भारत एक आदर्श प्रभावकारी मंच बन सकता है।

फलतः दूसरा विश्व पुस्तक मेला दिल्ली के प्रगति मैदान में १६ फरवरी '७६ को आयोजित हुआ। इस मेले में भारत सहित १९ देशों के १८६ प्रकाशकों ने भाग लिया। इसी क्रम में तृतीय विश्व पुस्तक मेला ११ फरवरी से २० फरवरी १९७८ को दिल्ली के प्रगति मैदान में तत्कालीन उपराष्ट्रपति श्री बी० डी० जत्ती द्वारा उद्घाटित हुआ। इसमें ऑथर्स गिल्ड ऑफ इंडिया तथा भारतीय लेखक सम्मेलन बम्बई, ने लेखकों के दो सम्मेलन आयोजित किये। प्रथम का सभापतित्व सुप्रसिद्ध साहित्यकार जैनेन्द्र तथा दूसरी का डॉ धर्मवीर भारती ने किया।

प्रसन्नता की बात है कि जहाँ प्रथम विश्व पुस्तक मेले में मात्र १५२ प्रकाशकों ने भाग लिया, वहीं चतुर्थ विश्व पुस्तक मेले में ४०० प्रकाशन संस्थाओं ने हिस्सा लिया। मेले में विदेशी प्रकाशकों, सरकारी प्रकाशनगृहों, विश्वविद्यालयों, धार्मिक संस्थाओं, भारतीय भाषाओं तथा भारत में अंग्रेजी का प्रकाशन करनेवाले प्रकाशकों के पृथक मंडप लगाये गये थे।

अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ ने यह अनुभव किया कि हिन्दी तथा भारतीय भाषाएँ इन मेलों से लाभान्वित नहीं हो रही हैं और अंग्रेजी देश में छा रही है। अत: १९७८ में संघ की ओर से तृतीय विश्व पुस्तक मेले के अवसर पर हिन्दी मंडप लगाया गया, जिसका बहुत स्वागत हुआ। माँग हुई कि संघ हिन्दी के साथ-साथ भारतीय भाषा आंदोलन को बल दे। भारतीय भाषाओं के संवर्द्धन से हिन्दी अपना उचित स्थान स्वयं ही पा लेगी। फलत: १९८० के चतुर्थ विश्व पुस्तक मेले में अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ का भारतीय भाषा मंडप हमारे सामने आया, जहाँ भारतीय साहित्य की विविधता पाठकों को देखने के लिए मिली और भारत दर्शन का अनुभव लाभ भी हुआ। १९७८ के हिन्दी मंडप से पाँच गुना बड़ा मंडप प्रगति मैदान के हॉल ऑफ नेशंस में लगाया गया था। यह मंडप मेले का हृदयस्थल कहा गया और उसी मंडप के अन्तर्गत भव्य हिन्दी मंडप भी था। हिन्दी मंडप में पहली बार पाठकों को अंतर्राष्ट्रीय बाल वर्ष के अवसर पर प्रकाशित बाल-साहित्य, धार्मिक-संस्थाओं के प्रकाशन, संदर्भ ग्रंथों का बृहद् संग्रह तथा पुरस्कार एक साथ एक जगह देखने को मिले।

मंडप भारतीय दर्शन का अद्भुत सुयोग सिद्ध हुआ। पुस्तक-प्रेमी जनता ने मंडप में आकर जब बंगला, तेलुगू, मराठी, गुजराती, हिन्दी, उड़िया, असमिया के मंडपों में अपनी-अपनी भाषा के प्रतिनिधि साहित्य का एक ही जगह दर्शन किया, तो उसे ऐसा महसूस हुआ कि सारा देश मंडप में पुस्तक के रूप में सिमट कर आ गया है।

भारतीय भाषा मंडप में पहली बार संस्कृत और उर्दू के पृथक्-पृथक् मंडप एक ही कतार में लगाए गए थे।

पंचम विश्व-पुस्तक मेले में भारतीय भाषाओं के अधिष्ठान

देश के पुस्तक-प्रेमियों के लिए यह सन्तोष का विषय है कि अब भारत में भी अन्य विकसित देशों की तरह विश्व-पुस्तक-मेलों की परम्परा स्थापित हो गई है। पहला विश्व पुस्तक मेला दस वर्ष पूर्व १९७२ में आयोजित हुआ था। दूसरा विश्व-मेला उसके चार वर्ष बाद सन् १९७६ में तदन्तर तीसरा तथा चौथा विश्व-मेला दो वर्ष के अन्तर पर सन् १९७८ एवं १९८० में हुआ। विगत चौथे विश्व-पुस्तक-मेले का २९ फरवरी, १९८० को उद्घाटन करते हुए भारत के राष्ट्रपति नीलम संजीव रेड्डी ने आशा व्यक्त की थी कि विश्व-पुस्तक मेले देश-विदेश में पुस्तकों के माध्यम से हमारी संस्कृति का प्रसार करने में सक्षम होंगे और सामान्य पाठकों की ज्ञान-पिपासा की तुष्टि करेंगे। उनकी यह आशा थी कि पुस्तक मेलों का यह क्रम उत्तरोत्तर विकास करेगा। उनकी आशा के अनुकूल पंचम

विश्व-पुस्तक मेला ५ फरवरी से १५ फरवरी तक राजधानी के विशाल प्रगति-मैदान में आयोजित हुआ। आठवें दशक का यह मेला बृहत्तम आयोजन प्रमाणित हुआ। मेले का औपचारिक उद्‌घाटन माननीया प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने ४ फरवरी, १९८२ को प्रगति मैदान के खुले रंगमंच पर हर्षध्वनि के बीच किया।

इन मेलों की उत्तरोत्तर लोकप्रियता का यह प्रमाण है कि जहाँ सन् १९७२ के पहले विश्व-मेले में कुल दस-बारह देशों ने ही भाग लिया था, वहाँ १९८० के चौथे विश्व मेले में लगभग ५० विदेशी प्रकाशकों ने प्रतिनिधित्व किया। प्रथम विश्व मेले में कुल १५२ प्रकाशकों ने भाग लिया था। दूसरे और तीसरे विश्व मेले में यह संख्या २०० से बढ़कर चौथे मेले तक तीन सौ पचास से अधिक पहुँच गई। पंचम विश्व-मेले में ६० विदेशी और सवा चार सौ के लगभग स्थानीय प्रकाशकों ने सक्रिय भाग लिया। इसके अतिरिक्त २२ विकासशील देशों का एक शिष्टमंडल भी मेले में भाग लेने आया। सामान्य दर्शकों, पाठकों और पुस्तक-प्रेमियों के अतिरिक्त कई शिक्षाशास्त्री, विचारक, पुस्तकालयाध्यक्ष, लेखक, पत्रकार, पुस्तक-विक्रेता, मुद्रक आदि इस अवसर पर प्रतिनिधि के रूप में उपस्थित थे। इस बार मेले का आयोजन बीस हजार वर्ग-मीटर के क्षेत्रफल में किया गया, जो चतुर्थ विश्व-मेले के क्षेत्रफल से दो हजार वर्ग-मीटर अधिक और सन् १९७२ के प्रथम विश्व मेले की तुलना में लगभग चौगुना था। विगत मेले में दो लाख दर्शकों ने मेले का परिदर्शन किया था, जबकि इस बार पाँच लाख दर्शकों द्वारा इसे देखा गया। मेले की कलात्मक संरचना, नयन-रंजक साज-सज्जा आदि के लिए सुप्रसिद्ध वास्तुकार एम० राणा एवं शम्भू चौधरी का सहयोग प्राप्त था।

पंचम विश्व पुस्तक मेला वस्तुत: भारतीय भाषाओं के अधिष्ठापन का पावन-पर्व बना। मेले में भाग लेने वाले साढ़े चार सौ भारतीय प्रकाशकों में भारत की सभी भाषाओं के प्रतिनिधि थे, इस तरह यह मेला सहज ही भारतीय भाषाओं का मिलन-तीर्थ प्रमाणित हुआ। विगत वर्षों में देश के शिक्षा स्तर के परिमाण में प्रकाशकों की संख्या बढ़ी है। इसलिए प्रकाशनों की भी संख्या बढ़ी। प्रकाशन के स्तर में कल्पनाशील और गुणात्मक परिवर्तन आया। देश में पारस्परिक आदान-प्रदान तथा भावात्मक एकता के फलस्वरूप विधाओं और विषयों में भी वृद्धि हुई। ग्रामीण जनता के लिए नव साक्षरों, वयस्कों, प्रौढ़ों, महिलाओं तथा शिशुओं आदि के लिए तो साहित्य प्रकाशित हुआ ही, विज्ञान-विधि-प्रविधि-औषधि आदि विशिष्ट शास्त्रीय विषयों के अतिरिक्त क्रीड़ा, फिल्म, रंगभूमि, धर्म, दर्शन, विभिन्न उद्योग आदि विशिष्ट क्षेत्रों के लिए भी प्रभूत साहित्य प्रकाशित हुआ। देश की विशालता को देखते हुए ये प्रयत्न अभी बड़े अपर्याप्त हैं, किन्तु ये मेले यह भी बतलाते हैं कि हम इस दिशा में कितनी तेजी से बढ़ रहे हैं। हमारा लक्ष्य है कि इस शताब्दी के अन्त तक भारत में शत प्रतिशत साक्षरता हो जाए। जरा कल्पना कीजिए, तब तक इस देश में पठितों की जो संख्या उपलब्ध होगी, उसके लिए किस परिमाण में और कैसा साहित्य प्रस्तुत किया जाएगा? ये पुस्तक-मेले अपनी विविधता से सहज ही देश की विविध बहुरंगी संस्कृति और बहुमुखी प्रतिभा का परिचय प्रस्तुत करते हैं।

यद्यपि प्रथम दो मेलों में अधिक मुखर अँग्रेजी-भाषा के प्रकाशक ही थे, जिनसे भारतीय भाषा के पाठकों और प्रकाशकों का निराश होना स्वाभाविक था, किन्तु बाद में दो मेलों में अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ तथा नेशनल बुक ट्रस्ट ऑफ इण्डिया के सम्मिलित प्रयत्न से एक बड़े पैमाने पर हिन्दी मण्डप का आयोजन किया गया, जिसमें हिन्दी के अतिरिक्त अन्य भारतीय भाषाओं के प्रकाशकों ने भी बड़े उत्साह से भाग लिया। पाठकों और दर्शकों ने इनकी बड़ी सराहना की और बड़े गर्व से उन्होंने देखा कि अपने देश का प्रकाशन व्यवसाय भी गुणात्मक, संख्यात्मक, कलात्मक और विषयात्मक दृष्टि से विदेशी साहित्य-प्रकाशनों से कम नहीं है। १९८० में यह मण्डप मेले के केन्द्र स्थल हॉल आफ नेशन्स में लगाया गया, जिसमें हिन्दी तथा अन्य भारतीय-भाषाओं के लगभग दो सौ प्रकाशकों ने भाग लिया। यों तो मण्डप में सभी प्रकाशकों के श्रेष्ठ प्रकाशन उपलब्ध थे, किन्तु सन् १९८०-८१ के उत्कृष्ट प्रकाशनों को विशेषरूप से प्रदर्शित किया गया था। भारत एक बहुभाषी देश है, इसकी विभिन्न भाषाएँ बहुरंगी परिवेश हैं। इस बहुरूपी परिवेश के नीचे उसकी नित्य-नवीन चिरंतन आत्मा तो एक है, जो इसके अनेक साहित्यिक स्वरों में सदा उच्चरित-गुंजरित है।

पुस्तक मेलों का आयोजन महानगरों तथा शहरों से भी आगे बढ़कर ग्रामांचलों और विकास-खण्डों तक पहुँचना चाहिए। अवश्य ही ये स्थानीय मेले उस अंचल विशेष के स्तर, रुचि तथा इतिहास, भूगोल व सांस्कृतिक आवश्यकताओं के अनुकूल साहित्य को प्रस्तुत करने पर बल देंगे। यह एक विचारणीय तथ्य है कि हमारे ग्राम भी अब शिक्षित और पठित होने लगे हैं, जिनके ज्ञान की क्षुधा को संतृप्त करने का दायित्व प्रकाशकों पर है, किन्तु अब भी लगभग ६४ प्रतिशत ग्रामीण जनता अनपढ़ है। उनमें शिक्षा के प्रति लगन और उत्साह बढ़ाने का दायित्व भी इन मेलों और प्रदर्शनियों को लेना होगा। वस्तुतः इसे एक बहु-उद्देशीय साक्षरता-अभियान का अंग बन जाना चाहिए। छोटे-छोटे कस्बों और पढ़े-लिखे समुदाय में बुक-क्लब जैसे संगठन स्थापित किये जा सकते हैं। गाँधीजी के रचनात्मक कार्यक्रम से सम्बन्धित खादी ग्रामोद्योग का जाल देशभर में फैला हुआ है। देश के लाखों गाँवों से इनका सम्बन्ध है। सत्साहित्य का ठेठ गाँवों तक प्रचार करने के लिए इन ग्राम केन्द्रों का उपयोग कैसे किया जाए इस पर विचार होना चाहिए।

इन मेलों से न केवल भारत में बल्कि विदेशों में भी भारतीय प्रकाशन और संस्कृति का प्रचार-प्रसार होता है, ये मेले विदेशी मुद्रा अर्जन करने में भी बड़े सहायक प्रमाणित हुए हैं। हम अपनी पुस्तकें विदेशों में निर्यात कर लगभग बीस करोड़ रुपये की विदेशी मुद्रा प्रतिवर्ष अर्जित कर रहे हैं।

१९८० के बाद विदेश में नेशनल बुक ट्रस्ट आफ इण्डिया तथा अन्य भारतीय प्रकाशकों ने मिलकर भारत के बाहर लंदन, फ्रांकफुर्ट, लाइपजिग, मारीशस तथा चीन आदि देशों में लगभग २५ पुस्तक मेले आयोजित किये। १९८१ में चीन की राजधानी बेजिंग (पेकिंग) में दिल्ली की एक प्रकाशन संस्था द्वारा भारतीय पुस्तकों की प्रदर्शनी आयोजित की गई थी, जिसमें भारत के सौ से अधिक प्रकाशकों की बारह सौ पुस्तकों

का प्रदर्शन किया गया था। चीन में भारतीय पुस्तकों की यह प्रथम प्रदर्शनी थी, जिसे चीन के तीन सौ से अधिक विशिष्ट व्यक्तियों, वैज्ञानिकों, साहित्यकारों और विद्वानों के अतिरिक्त दस हजार से अधिक चीनी लोगों ने देखा।

भारत में वैसे ही सामान्यत: पढ़ने के प्रति बहुत गहरी रुचि नहीं है—गरीबी भी इसका एक प्रमुख कारण है—अब यदि पुस्तकों के विक्रय में ह्रास हुआ तो देश की मनीषा कुंठित रह जाएगी और देश की प्रगति के सभी मार्ग अवरुद्ध हो जायेंगे। इसी को ध्यान में रखकर नेशनल-बुक-ट्रस्ट ने १९८० के मेले में 'कम मूल्य की सभी के लिए पुस्तकें' (LOW COST BOOKS FOR ALL) विषय पर एक अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया, जो ५ फरवरी से ७ फरवरी, १९८२ तक यूनेस्को की सहायता से हुई। इस संगोष्ठी में ३० विदेशी प्रतिनिधियों के अतिरिक्त देश के विभिन्न भागों के सौ से अधिक प्रतिनिधियों ने भाग लिया।

तृतीय विश्व पुस्तक मेले की तैयारी के अवसर पर ट्रस्ट के तत्कालीन अध्यक्ष डा० देवेन्द्रनाथ मिश्र ने हिन्दी-मण्डप की स्थापना को उचित माना। प्रचारार्थ पोस्टर तथा प्रचार कार्य हिन्दी में शुरु हुआ। समापन समारोह हिन्दी में सम्पन्न हुआ, परन्तु अभी भी स्मारिका, मेला गाइड तथा मेला डायरेक्टरी केवल अंग्रेजी में ही छापना, बैजों में केवल अंग्रेजी का प्रयोग, हिन्दी में होर्डिंग न बनाना, अंग्रेजी में मेले का टिकट छापना, कार्यक्रम केवल अंग्रेजी में प्रचारित करना और पेशाबखाने को छोड़ मेले में कही भी हिन्दी में कुछ न लिखना राजभाषा तथा सरकार की भाषानीति के प्रति ट्रस्ट की भूल रही। इस सन्दर्भ में यह कहना भी समीचीन होगा कि भारत में होनेवाली अन्तर्राष्ट्रीय गोष्ठियों में हिन्दी में प्रबन्ध भी लिखवाये जाँय। हिन्दी में व्याख्यानों के अनुवाद की व्यवस्था हो।

भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री मोरारजी भाई ने अपने हिन्दी-प्रेम का परिचय हिन्दी-मण्डप में पधार कर दिया और वे लगभग एक घण्टे तक वहाँ रहे। हिन्दी प्रकाशन की गतिविधियों को देखकर उन्होंने कहा कि हिन्दी वस्तुतः देश की राजभाषा है, इसमें अब दो मत नहीं हो सकता।

मेले के सन्दर्भ में आकाशवाणी की सेवायें स्तुत्य थीं। आकाशवाणी के हिन्दी प्रदेशों के केन्द्रों ने वार्तायें प्रसारित कीं। दिल्ली आकाशवाणी से राष्ट्रीय चर्चा के अन्तर्गत 'हिन्दी प्रकाशन का भविष्य' विषय पर एक राष्ट्रीय परिचर्चा प्रसारित की गई। इसमें हिन्दी पुस्तकों के लेखन, प्रकाशन, वितरण तथा मूल्य के मुद्दे पर स्पष्ट बातें कही गईं। बिक्री के लिए सरकारी खरीद पर निर्भर न रहने और पुस्तकों के कम मूल्य रखने पर बल दिया गया। दूरदर्शन और फिल्म डिवीजन ने भी हिन्दी-मण्डप को महत्त्व दिया।

१४ फरवरी को अ०भा० हिन्दी प्रकाशक संघ ने देश के लगभग ५०० चुने हुए पुस्तकालयाध्यक्षों के सम्मान में एक प्रीतिगोष्ठी का आयोजन किया, जिसमें अनौपचारिक रूप से पुस्तकालय आन्दोलन के सम्बन्ध में बातचीत हुई। इस अवसर पर अनेक विधानमंडलों के पुस्तकालयाध्यक्ष भी उपस्थित थे।

इन्हीं दिनों आथर्स गिल्ड ऑफ इंडिया के त्रिदिवसीय अधिवेशन में सारे देश के विभिन्न भाषाभाषी लेखकों ने भाग लिया। १७-१८ तथा १९ ता० को हिन्दी लेखक

सम्मेलन भी हुआ जिसके अध्यक्ष धर्मयुग के सम्पादक डा० धर्मवीर भारती थे। आथर्स गिल्ड ऑफ इंडिया के सदस्यों तथा हिन्दी लेखकों के सम्मान में अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ के संयोजकत्व में हिमाचल प्रदेश के मुख्यमंत्री शान्ताकुमार ने १५ फरवरी को एक स्वागत गोष्ठी का आयोजन किया।

इन गोष्ठियों में सबसे आकर्षक थी लेखक-पाठक परिचर्चा गोष्ठी। इसमें अपने सम्मानित लेखकों को पाठकों ने निकट से देखा तथा लेखक भी पाठकों की प्रतिक्रिया से अवगत हुए।

हिन्दी-मण्डप में प्रतिदिन किसी न किसी हिन्दीभाषी राज्य का दिवस मनाया गया। हिन्दी दिवस के मुख्य अतिथि थे जैनेन्द्र कुमार। उत्तर प्रदेश दिवस पर अतिथि थी महादेवी वर्मा, मध्य प्रदेश दिवस पर अतिथि थे वहाँ के नागरिक उड्डयनमंत्री पुरुषोत्तम कौशिक तथा लारंगराय साई, हिमांचल प्रदेश दिवस के मुख्य अतिथि थे शिक्षामंत्री दौलतराम चौहान, बिहार दिवस के मुख्य अतिथि बिहार के शिक्षामंत्री ठाकुरप्रसाद सिंह, दक्षिण भारत दिवस के मुख्य अतिथि आन्ध्र विश्वविद्यालय के डा० सत्यनारायण, पूर्व भारत दिवस के मुख्य अतिथि डा० बालकृष्ण विट्ठल केसकर तथा राजस्थान दिवस के मुख्य अतिथि थे वहाँ के उद्योगमंत्री सूर्यनारायण चौधरी। इन अवसरों पर राज्यों की साहित्यिक गतिविधियों पर चर्चा हुई। उत्तर प्रदेश की साहित्यिक गतिविधियों पर डा० त्रिभुवन सिंह, मध्य प्रदेश पर डा० लक्ष्मीनारायण दुबे, पूर्व भारत पर प्रो० रघुनन्दन मिश्र एवं चन्द्रदेव सिंह, पंजाब पर डा० धर्मपाल मैनी तथा हिमांचल प्रदेश पर मनोहरलाल ने प्रबन्ध प्रस्तुत किये।

हिन्दी के लेखकों ने मण्डप में स्वयं उपस्थित होकर अपनी कृतियाँ पाठकों को हस्ताक्षरित कर ग्राहकों को दी। पुस्तक आन्दोलन को बढ़ावा देने का यह एक अभिनव प्रयास था। इन लेखकों में प्रमुख थे—महादेवी वर्मा, जैनेन्द्र, बच्चन, अज्ञेय, भवानीप्रसाद मिश्र, अमृत राय, राजेन्द्र अवस्थी आदि।

अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ द्वारा १२-१३ तथा १४ फरवरी को आयोजित हिन्दी प्रकाशन के नये आयाम विषयक राष्ट्रीय गोष्ठी में लेखकों को प्रोत्साहित करने की घोषणा, प्रचलित अश्लील साहित्य का विरोध, वर्तमान मूल्यनीति का विरोध, ग्रामों में पुस्तकालयों की स्थापना तथा उनकी डायरेक्टरी प्रकाशित करने आदि पर बल दिया गया।

इसके अतिरिक्त साहित्यकारों की शतियों के अवसर पर कम मूल्य की ग्रन्थावलियाँ प्रकाशित करने, पुस्तकों की राष्ट्रीयकरण नीति का विरोध, लेखक-प्रकाशक सम्बन्ध मधुर रखने, पुस्तक व्यवसाय के लिए फाइनेंस कारपोरेशन की माँग, हिन्दी के प्रमुख सम्मानित प्रकाशकों पर पोस्टेज स्टैम्प निकालने की माँग के साथ-साथ हिन्दी प्रकाशन का इतिहास प्रकाशित करने का निश्चय किया गया। गोष्ठी में हिन्दी के प्रख्यात लेखकों, प्रकाशकों, पत्रकारों ने भाग लिया। इस गोष्ठी का उद्घाटन उत्तर प्रदेश के तत्कालीन मुख्यमंत्री रामनरेश यादव ने किया और अध्यक्षता सदानन्द भटकल ने। समापन समारोह में विशिष्ट वक्ता थे नेशनल बुक ट्रस्ट के अध्यक्ष ए० एल० डायस तथा राजस्थान के उद्योगमंत्री सूर्यनारायण चौधरी।

मेले के दिनों में १८ फरवरी को लेखकों, प्रकाशकों, मुद्रकों और पत्रकारों ने कागज के कृत्रिम अभाव के विरुद्ध एक संयुक्त मोर्चा बनाया। मुल्कराज आनन्द के सभापतित्व में कागज की स्थिति पर एक गोष्ठी हुई। विषय प्रवर्तन इंडियन बुक इंडस्ट्री के सम्पादक ओ० पी० घई ने किया।

१९ फरवरी को अ०भा० हिन्दी प्रकाशक संघ द्वारा आयोजित 'आदान-प्रदान गोष्ठी' में सबसे बड़ी बात यह उभरी कि देश की विभिन्न भाषाओं के जाने-माने लेखकों की कृतियों के अनुवाद को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। यह तय हुआ कि अनुवाद की पहल हिन्दी वाले पहले बंगाल और महाराष्ट्र से प्रारम्भ करें। इस गोष्ठी की अध्यक्षता डा० रघुनाथ सिंह ने की। प्रमुख वक्ताओं में थे—डा० केसकर, अमृतराय, परितोष गार्गी, सुधाकर पाण्डेय, डा० देवेन्द्रनाथ मिश्र, उत्तर प्रदेश के तत्कालीन शिक्षामंत्री कालीचरण एवं तत्कालीन सूचनामंत्री अवधेश प्रसाद, बिहार के शिक्षामंत्री ठाकुरप्रसाद सिंह, इंडियन पब्लिशर एण्ड बुक्सेलर के सम्पादक सदानन्द भटकल आदि। ट्रस्ट की ओर से मोहिनी राव, एम० एल० मुंशी तथा सैयद असद अली आदि वहाँ थे।

तत्कालीन केन्द्रीय शिक्षा राज्यमंत्री श्रीमती रेनुका देवी बरकतकी ने विश्व पुस्तक मेले के अन्तर्गत आयोजित एक गोष्ठी में प्रकाशकों से उच्चस्तरीय पाठ्य-पुस्तकों के प्रकाशन के लिए समीचीन निर्णय लेने का परामर्श दिया। इस सम्बन्ध में उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग द्वारा भारतीय भाषाओं में अच्छी पुस्तकें प्रकाशित करने के लिए योजना बनाने का सुझाव दिया।

मेले की एक और विशिष्टता थी नई प्रकाशित पुस्तकों का उद्घाटन। तत्कालीन केन्द्रीय शिक्षामंत्री प्रतापचन्द्र चन्दर की कृति 'माई फेयर लेडी' का विमोचन भारतीय प्रकाशक महासंघ के अध्यक्ष दीनानाथ मल्होत्रा ने किया। बाल साहित्य प्रकाशन दिल्ली की स्मारिका का उन्मोचन हिन्दी-मण्डप में प्रो० शेर सिंह ने किया। इंडिया बुक हाउस की अमरकथा सिरीज का उद्घाटन तत्कालीन रक्षामंत्री जगजीवन राम द्वारा हुआ।

नेशनल बुक ट्रस्ट के अध्यक्ष ए० एल० डायस ने विश्व पुस्तक मेले में भाग लेने वाले स्टालों को साज-सज्जा के लिए पुरस्कार वितरण किये। जर्मन जनवादी गणतंत्र को सर्वश्रेष्ठ साज-सज्जा के लिए पुरस्कार दिया गया, जबकि प्रकाशन बोर्ड असम को डबल स्टाल पर सुन्दर साज-सज्जा का पुरस्कार मिला। उड़ीसा पैवेलियन को साधारण स्टाल की सुन्दर साज-सज्जा के लिए और अभिनव प्रकाशन नई दिल्ली को साधारण स्टैंड की सुन्दर साज-सज्जा के लिए पुरस्कार दिया गया।

हिन्दी-मण्डप में भाग लेने वालों के लिए चार पुरस्कार घोषित हुए। मेले में उत्कृष्ट सजावट के लिए राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली, उत्कृष्ट प्रकाशन के लिए राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली, उत्कृष्ट बाल साहित्य के प्रकाशन पर शकुन प्रकाशन दिल्ली को पुरस्कृत किया गया। उत्कृष्ट स्टाल के लिए निहालचन्द बेरी पुरस्कार राजस्थान के स्टाल को मिला। उत्कृष्ट समायोजन के लिए संघ के अध्यक्ष झुन्नीलाल जसोरिया, प्रधानमंत्री दयानन्द वर्मा और तकनीकी निदेशक रघुवीरशरण बंसल समादृत किये गये।

❀

देश की भाषाओं का अनादर

नेशनल बुक ट्रस्ट ने दिल्ली में अंतर्राष्ट्रिय पुस्तक मेले का आयोजन करके वैसे तो एक सराहनीय कार्य किया है, लेकिन अच्छा यह होता कि मेले के आयोजक भारतीय भाषाओं के महत्व को समझते। जो लोग अपने ही देश में अपनी ही भाषाओं का निरादर करते हैं, वे साहित्य और संस्कृति की प्रगति में सहायक नहीं बन सकते। यह ठीक है कि भारत में भाषा का मुद्दा राजनीति का विषय बन चुका है और राजनीति के कारण ही भारतीय भाषाओं की दुर्दशा हो रही है। यही नहीं इस राजनीति ने ही भारतीय भाषाओं को अँग्रेजी की दासता स्वीकार करने के लिए मजबूर कर दिया, लेकिन सवाल यह है कि क्या नेशनल बुक ट्रस्ट भी देश की राजनीति का एक हिस्सा बन गया है? यदि ऐसे संस्थान जिनपर साहित्य के निर्माण, संरक्षण और विकास का दायित्व है, वे ही अपने देश की भाषाओं की उपेक्षा करके एक प्रकार से उनका उपहास उड़ायेंगे, उनका प्रयोग नहीं करेंगे और उन्हें सम्मान नहीं देंगे, तो इसे राष्ट्र का दुर्भाग्य ही कहा जायेगा। एक ओर तो इस बात की माँग है और चेष्टा भी होती है कि राष्ट्रसंघ में हिन्दी को एक अंतर्राष्ट्रीय भाषा के रूप में प्रयोग में लाया जाए और दूसरी ओर हमारे देश में ही हिन्दी की सभी स्तरों पर घोर उपेक्षा होती है। दुर्भाग्य यह है कि भारत सरकार की सहमति और सहायता से आयोजित होनेवाले विश्व हिन्दी सम्मेलन में भी अनेक बार इस आशय के प्रस्ताव पारित हो चुके हैं कि हिन्दी का अंतर्राष्ट्रीयकरण होना चाहिए। भारतीय संसद व मानव संसाधन मंत्रालय भी अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हिन्दी को सम्मान दिलाने के लिए अनेक बार अपनी प्रतिबद्धता व्यक्त कर चुका है; फिर भी स्थिति में कोई अन्तर नहीं दिखाई दे रहा है। लगता यहं है कि ये सारे प्रस्ताव तथा प्रतिबद्धताएँ मात्र मौखिक हैं और इस दिशा में कोई भी तंत्र कोई ठोस कार्यवाही नहीं करना चाहता। यदि ऐसा नहीं है तो नेशनल बुक ट्रस्ट ने मानव संसाधन मंत्रालय के अधीन होते हुए भी भारतीय भाषाओं के प्रति ऐसा उपेक्षापूर्ण रवैया क्यों अपनाया? अब मानव संसाधन मंत्रालय के अधिकारी ही भारतीय भाषाओं का अपमान करते हैं, अपने दुराग्रह के द्वारा अंग्रेजी को देश पर थोपना चाहते हैं तो क्या कहा जाय?

वैसे यह अच्छा ही हुआ कि पाकिस्तान से आये हुए मशहूर शायर डा० अहमद फरास ने समारोह का उद्घाटन करते समय यह स्पष्ट कर दिया कि वे अंग्रेजी बोलने के पक्षधर नहीं हैं और उन्हें अंग्रेजी का प्रयोग आयोजकों के आग्रह पर करना पड़ रहा है, लेकिन उनके इस कथन से तो भारत सरकार की और किरकिरी हो गयी। भारत सरकार के जिस अधिकारी ने डा० अहमद फरास को अंग्रेजी बोलने के लिए मजबूर किया, वह राष्ट्र का शत्रु है, सेवक नहीं। ऐसा व्यक्ति राष्ट्र के साहित्य और संस्कृति के विकास में कदापि सहायक नहीं हो सकता। ऐसे देशद्रोही अधिकारी भारत के लिए कलंक हैं। सच

बात तो यह है कि ऐसे व्यक्ति को कड़े से कड़े दण्ड का पात्र होना चाहिए, लेकिन भारतीय संस्कृति का उपहास उड़ानेवालों को दण्ड देने की कोई कानूनी व्यवस्था देश के पास नहीं है। देश की भ्रष्ट निकम्मी अंग्रेजियत परस्त नौकरशाही जैसा चाहती है, वैसा कर गुजरती है। अजीब बात है कि एक ओर तो मेले के आयोजक और नेशनल बुक ट्रस्ट के अध्यक्ष यह कहते हैं कि 'राष्ट्र' के मार्ग में जो बाधाएँ हैं, वे साहित्य के माध्यम से तोड़ी जा सकती हैं और उन्हें हल किया जा सकता है, लेकिन दूसरी ओर वे साहित्य के माध्यम से एक ऐसी भाषा को राष्ट्र के समक्ष परोसना चाहते हैं, जिसे देश की ९५ प्रतिशत जनता समझती ही नहीं है और जो भारत की भाषा भी नहीं है। अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में यदि ऐसी भाषा को चुना जाएगा, जिसे राष्ट्र समझता ही न हो अथवा जिसे चन्द लोग ही समझते हों, तो ऐसी अभिव्यक्ति से न तो राष्ट्र की चेतना जाग्रत हो सकती है और न किसी राष्ट्र की समस्या का समाधान ही खोजा जा सकता है।

उचित यह होगा कि मानव संसाधन मंत्रालय और विशेष रूप से नेशनल बुक ट्रस्ट भारतीय भाषाओं के प्रति अपने दायित्व को समझे। अंग्रेजी के प्रयोग को वरीयता देकर न तो भारतीय संस्कृति और भारतीय साहित्य की रक्षा की जा सकती है और न उसका सम्वर्धन ही किया जा सकता है। दिल्ली में अंतर्राष्ट्रीय पुस्तक मेला अभी भी चल रहा है। अच्छा यह होगा कि इस मेले के अवसर पर उन समस्याओं की चर्चा की जाए, जो भारत के प्रकाशकों और विशेष रूप से भाषाई प्रकाशकों के समक्ष मुँह बाये खड़ी हैं। पुस्तकें खरीदने के प्रति जैसा रुझान देश में होना चाहिए वैसा दिखाई नहीं देता। भारतीय भाषाओं की स्थिति तो और भी गई गुजरी है। इसके जो भी मूल कारण हों, उनकी समीक्षा होनी चाहिए। भारत की जनता पुस्तकों के प्रति क्यों आकर्षित नहीं हो रही है, इसका कारण साहित्य के सृजन की कमी है अथवा कमी कहीं और है? सामान्य पाठकों को देश में पुस्तकें उपलब्ध क्यों नहीं हो पा रही हैं? ऐसा क्या किया जाए, जिससे देश की जनता में पुस्तकों के प्रति रुझान बढ़े? पुस्तकों से ज्ञान का सम्वर्धन होता है और उस अज्ञान का निवारण भी, जिससे औसत व्यक्ति ग्रस्त रहता है। श्रेष्ठकोटि का साहित्य ही अंधविश्वास की समस्या का निराकरण कर सकता है, पर यह साहित्य प्रकाशित कैसे हो और पाठकों तक कैसे पहुँचे, इस विषय पर चर्चा-परिचर्चा होनी चाहिए।

---

१. १९७४ में द्वितीय विश्व पुस्तक मेले में प्रचारित अ०भा० हिन्दी प्रकाशक संघ का प्रबन्ध।

हिन्दी प्रकाशनों पर बंगला साहित्य का प्रभाव

किसी भी भाषा की समृद्धि और उसके प्रकाशनों का परिचय इसी तथ्य से मिलता है कि उस भाषा में अपना साहित्य क्या है और अनुवादों की उसके ऊपर क्या छाप है। हिन्दी के राष्ट्रभाषा होने का एक कारण विभिन्न भारतीय भाषाओं तथा विदेशी भाषाओं से सर्वाधिक अनुवादों का प्रकाशन भी है। हिन्दी प्रकाशनों पर बंगला साहित्य की विशद छाप रही है। इसका श्रेय ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, भूदेव मुखोपाध्याय, केशवचन्द्र सेन, शारदाचरण मित्र, रामकाली चौधरी, नलिनीमोहन सान्याल प्रभृति बंगमनीषियों को है, जिन्होंने हिन्दी में लिखना-पढ़ना प्रारम्भ किया, जबकि बंगाली होने के नाते बंगला साहित्य की विशद छाप उनपर है। प्रकाशन के क्षेत्र में इसका श्रेय रामलाल वर्मा और हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर प्रा० लि० बम्बई के नाथूराम प्रेमी को है। प्रारम्भ में हिन्दी प्रकाशन दो खेमों में बटा था—एक था कलकत्ता का प्रकाशन क्षेत्र और दूसरा वाराणसी, इलाहाबाद, कानपुर, लाहौर और बम्बई का प्रकाशन क्षेत्र। प्रारंभ में शक्ति प्रेस कलकत्ता से, १८६८ में हरिश्चन्द्र पत्रिका छपी, जिसके सम्पादक थे—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, नवीनचन्द्र राय तथा उमाचरण दत्त। इसी क्रम में १९०५ में बंकिम बाबू के उपन्यासों का हिन्दी में अनुवाद हुआ और जासूसी उपन्यास विधावली दारोगा का दफ़्तर सीरीज़ आर० एल० बर्मन कम्पनी कलकत्ता से निकला। रमेशचन्द्र का प्राचीन सभ्यता का इतिहास भी बंगला से अनूदित होकर १९०५ में ही प्रकाशित हुआ। १९१० में रमेशचन्द्र दत्त के दो उपन्यास 'संसार' और 'बंग विजेता'—हिन्दी में तहलका मचानेवाले सिद्ध हुए। १९१२ में अमृतलाल चक्रवर्ती के सम्पादन में बंगवासी हिन्दी साप्ताहिक प्रकाशित हुआ। १९१२ में हिन्दी पाठकों को निरुपमा देवी रचित 'अन्नपूर्णा का मन्दिर' पढ़ने को मिला। कलकत्ता के प्रकाशकों के प्रकाशन सारे देश में छाये हुए थे। उसका प्रमुख कारण था मुद्रण के क्षेत्र में बंगाल की बेजोड़ साजसज्जा, डिजाइनिंग और सम्पादन।

बसुमती की ग्रन्थावलियों, शरत् और बंकिम की कृतियों का अनुवाद, रामकृष्ण परमहंस, योगिराज अरविन्द और विवेकानन्द का साहित्य, सती सीरीज, पांचकौड़ी दे-के जासूसी उपन्यास तथा बंगला में छपी ऐतिहासिक कृतियाँ हिन्दी की प्रकाशन संस्थाओं द्वारा प्रकाशित होकर इतने प्रसिद्ध हुए कि हिन्दी में पाठकों का एक नया वर्ग उभड़ा। शरत्चन्द्र चटर्जी के पूरे ग्रन्थों के अल्पमोली संस्करण बम्बई के हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर ने प्रकाशित किये। शरत् बाबू के देवदास उपन्यास की तो धूम मच गई। यदि विभिन्न प्रकाशकों के संस्करणों का लेखा-जोखा तैयार किया जाय तो कहा जा सकता है कि

देवदास का हिन्दी संस्करण बंगला संस्करण से कहीं अधिक बिका। शरत् बाबू का पथ के दावेदार और परिणीता के भी कई संस्करण हिन्दी में प्रकाशित हुए। हिन्दी में उन दिनों ऐयारी के उपन्यासों की धूम थी। देवकीनन्दन खत्री आदि के उपन्यास बहुत जोरों से बिकते थे। इस परम्परा के बीच सामाजिक मान्यताओं को स्थापित करनेवाला शरत् साहित्य इतना अधिक बिका कि लोग ऐयारी और तिलिस्मी उपन्यासों को भूल गये। बंकिमबाबू के कपालकुण्डला, आनन्द मठ, दुर्गेशनन्दिनी, आदि का हिन्दी के पाठकों पर विशद प्रभाव पड़ा। पाठक खोजते रहते थे कि कब शरद् और बंकिम बाबू के उपन्यास बाजार में आयें और वे उन्हें खरीद कर पढ़ें।

शरत् और बंकिम के बाद अन्य भाषाओं की पुस्तकों के अनुवाद हिन्दी में अवतरित हुए। गीतांजलि की प्रसिद्धि और नोबुल पुरस्कार के बाद उसके हिन्दी संस्करणों का स्वागत हुआ। चोखेरबाली के आँख की किरकिरी के नाम से हिन्दी अनुवाद को पाठकों ने मुक्तकंठ से सराही। इसके बाद रविबाबू के उपन्यास हिन्दी पाठकों में छा गये। डी० एल० राय के नाटक भी हिन्दी जगत में बहुत प्रसिद्ध हुए और उनका अभिनय भी हुआ। 'मेवाड़ पतन' का देश की लगभग ३०-४० हिन्दी नाट्य संस्थाओं ने मंचन किया। डी० एल० राय के चन्द्रगुप्त, सिंह विजय, शाहजहाँ, महाराणा प्रताप, नूरजहाँ आदि अनेक नाटक हिन्दी में आये। इनकी लोकप्रियता का कारण इन नाटकों में हिन्दी गीतों का होना था। गिरीश घोष के नाटकों का भी हिन्दी में अनुवाद हुआ। आज बादल सरकार के प्राय: सभी नाटकों का हिन्दी में अनुवाद हो चुका है।

बंगला के जन-जीवन एवं जन-क्रान्ति का प्रभाव स्वयं भारतेन्दु जी के मानस पर पड़ा था। गोरी जनता के अत्याचारों के विरोध में बंगला का प्रसिद्ध नाटक नील दर्पण लिखा गया था। निश्चय ही नील देवी के निर्माण के समय भारतेन्दु के मन में नील दर्पण की कल्पना थी। बंगाल की जन-क्रान्ति एवं चेतना ने भी हिन्दी साहित्यकारों को प्रभावित किया।

बंगला साहित्य को हिन्दी में प्रसिद्ध करने का श्रेय कुछ-कुछ न्यू थियेटर्स को भी है। उनके द्वारा फिल्मायी तथा देवकी बोस द्वारा निर्देशित देवदास उपन्यास पर आधारित 'देवदास फिल्म' जिसमें सहगल और जमुना ने अभिनय किया था, देवदास के हिन्दी अनुवाद की बिक्री में बहुत उपयोगी सिद्ध हुई। रविबाबू की कहानी काबुली वाला फिल्म आने के बाद हिन्दी में उनकी पुस्तकें खूब बिकीं। चण्डीदास फिल्म के बनने से कवि चण्डीदास के सम्बन्ध में हिन्दी के पाठकों को बड़ी जिज्ञासा हुई और उसके बाद चण्डीदास फिल्म के हिन्दी गीतों का संस्करण प्रकाशित हुआ। इधर प्रसिद्ध फिल्म निर्देशक सत्यजित राय ने पाथेर पांचाली को फिल्माकर हिन्दी में प्रकाशित इस पुस्तक की ओर हिन्दी के पाठकों का ध्यान आकर्षित किया, जिसके फलस्वरूप हिन्दी में इसके अनुवाद की बिक्री बढ़ी।

१९२५ में नगेन्द्रनाथ बसु ने बंगला के साथ ही साथ हिन्दी विश्वकोष के कई खण्ड प्रकाशित किये। साहित्य पर राजा राममोहनराय तथा रमाबाई के सुधारवादी

आन्दोलन का प्रभाव पड़ा था। वारांगनाओं के जीवन पर कई उपन्यास बंगला में निकले। उन्हीं उपन्यासों से प्रभावित होकर स्व० चन्द्रशेखर पाठक ने ६ खण्डों में इस समस्या पर वारांगना रहस्य लिखा और स्वयं प्रकाशित किया। आतंकवादी आन्दोलन अंग्रेजों को देश से बाहर निकालने के लिए चल पड़ा था। बंगला में इस अवसर पर बसुमति, बंगवासी आदि पत्रिकाओं के क्रान्ति विशेषांक निकलते थे। उन्हीं की प्रेरणा लेकर कलकत्ता से प्रकाशित होनेवाले हिन्दू पंच ने १९२९ में बलिदान अंक और चाँद ने अपनी पत्रिका का फाँसी अंक प्रकाशित किया। बंगला में गाँधी जी के असहयोग आन्दोलन के संबंध में अनेक ट्रैक्ट निकले जिनका अनुकरण कलकत्ते के हिन्दी के प्रकाशकों ने भी किया। बंगला की ही पुस्तक 'देशेर कथा' का हिन्दी संस्करण 'देश की बात' को पं० देवनारायण द्विवेदी ने अनुवाद करके स्वयं प्रकाशित किया। नेताजी सुभाष बोस के व्याख्यानों 'तरुणेर स्वप्न' का हिन्दी अनुवाद 'तरुण का स्वप्न' नाम से प्रकाशित हुआ।

बीसवीं शती के प्रारम्भ में बंगाल के क्षितिज पर रामानन्द चटर्जी जैसे महान् पत्रकार का उदय हुआ। वे प्रसिद्ध अंग्रेज़ी मासिक 'मार्डन रिव्यू' के सम्पादक थे और हिन्दी के प्रसिद्ध मासिक 'विशाल भारत' के प्रकाशक भी। इसका सम्पादन पं० बनारसीदास चतुर्वेदी करते थे। १९३० में कलकत्ता में हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन जगन्नाथ दास रत्नाकर के सभापतित्व में आयोजित हुआ, जिसमें सुनीतिकुमार चटर्जी से लेकर कविगुरु रवीन्द्रनाथ तक का सहयोग रहा। १९३६ में जापान के कवि नोगुचि तथा अन्य अन्तर्राष्ट्रीय कवि कलकत्ता आये थे और सीनेट हाल में विराट कवि सम्मेलन का आयोजन किया गया था। कवि सम्मेलन अधिवेशन की सबसे बड़ी छटा थी—हिन्दी और बंगला का अभूतपूर्व मिलन। राष्ट्रकवि दिनकर ने इसी में 'हिमालय' शीर्षक कविता से 'मेरे नगपति मेरे विशाल' का पाठ किया था, जिसकी भूरि-भूरि प्रशंसा कविगुरु ने की थी। स्व० ललिता प्रसाद सुकुल ने इसी कवि सम्मेलन के अवसर पर सौहार्द्र सुमन नाम से एक काव्य संग्रह प्रकाशित किया था, जिसमें बंगला और हिन्दी के परस्पर सहयोग का चित्रण था।

मेलों में बिकनेवाली हिन्दी की कीर्तन-भजन आदि की पुस्तकें यदि बंगला में समादृत हुई, तो चैतन्य महाप्रभु के कीर्तन हरे कृष्ण हरे राम नाम से हिन्दी में छपने और प्रकाशित होने के बाद, उसकी लाखों प्रतियाँ सामान्य जनता में बिकीं। महाकवि निराला की प्रारम्भिक कर्मभूमि कलकत्ता ही थी। उनके गीतों में बंगला साहित्य का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। निराला जी ने रवीन्द्र कविता कानन नाम से पुस्तक लिखी, जिसका प्रकाशन निहालचन्द कम्पनी ने किया था। माइकेल मधुसूदन के मेघनाथ वध का हिन्दी काव्य में रूपान्तर राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त ने किया था। आधुनिक हिन्दी प्रकाशन के जनक बर्मन एण्ड कम्पनी के श्री रामलाल बर्मन पुस्तकों का जिस तरह से अलंकरण करते थे उसका सम्पूर्ण श्रेय डी० बनर्जी, टी० के० मित्र और बी० के० मित्रा आदि बंगाली चित्रकारों को था।

आज हिन्दी में माणिक बन्दोपाध्याय, ताराशंकर बन्दोपाध्याय, शंकर, विमल मित्र सुनील गंगोपाध्याय, विमलकर, मैत्रेयी देवी, समरेश बसु, आशापूर्णा देवी, वनफूल, प्रबोध

सान्याल, जरासंध, बुद्धदेव वसु आदि छाये हुए हैं। हिन्दी में इनके उपन्यास बंगला उपन्यासों के संस्करणों से अधिक बिकते हैं और हिन्दी के पाठकों में सम्मानित भी हैं। बंगला साहित्य से अनुवाद करनेवाले अनेक हिन्दीभाषी साहित्यकार हैं, जिनमें डॉ० प्रतिभा अग्रवाल, विमल मिश्र, हंसकुमार तिवारी, पृथ्वीनाथ शास्त्री, डॉ० कृष्णबिहारी मिश्र, छेदीलाल गुप्त आदि अपना स्थान रखते हैं। पुराने जमाने के सर्वश्री कार्तिक चन्द्र मुखोपाध्याय, गिरीशचन्द्र जोशी, धन्यकुमार जैन, रूपनारायण पाण्डेय, रामचन्द्र वर्मा आदि प्रमुख अनुवादक थे।

दिल्ली में तृतीय विश्व पुस्तक मेले के अवसर पर अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ द्वारा आयोजित आदान-प्रदान गोष्ठी ने निर्णय लिया कि विदेशी भाषाओं के बजाय हिन्दी को भारतीय भाषाओं के साहित्यों के अनुवादों से समृद्ध किया जाना चाहिए। ऐसी गोष्ठियाँ पुस्तक मेलों के अवसर पर इसलिए आयोजित की जाती हैं कि नये पुराने लेखकों को प्रोत्साहन मिले। सत्साहित्य प्रकाशित करनेवाले प्रकाशकों को लोग जानें, पाठक चुने हुए प्रकाशनों से परिचित हों। साहित्य में क्या लिखा जा रहा है, उससे पाठकों तथा लेखकों को परिचित कराया जाय तथा पुस्तक मेलों को लेखकों विक्रेताओं, पाठकों और पुस्तकालयाध्यक्षों का संगम स्थल बनाया जाय।

इस गोष्ठी में विचार हुआ कि क्या बंगाली पाठक हिन्दी साहित्य के विषय में कुछ जानते हैं या जानना चाहते हैं, इस सम्बन्ध में हिन्दी प्रकाशक और लेखक संघ की ओर से क्या कुछ प्रयत्न हुए हैं? क्या अब तक हिन्दी में जो अनुवाद हुए हैं, वे लोकप्रिय हैं? अनुवादकों को क्या उचित पारिश्रमिक दिया जाता है और क्या अनुवादक लेखक की कृति को सजीव रूप में अपने अनुवादों द्वारा प्रस्तुत करने में सफल है? क्या इस तरह से एक से दूसरी भाषा के परस्पर अनुवादों द्वारा देश में भावात्मक एकता के आन्दोलन को बल मिलता?

---

१. १९७८ में तृतीय विश्व पुस्तक मेले की विचार गोष्ठी में पढ़ा गया प्रबन्ध।

बंगीय हिन्दी प्रकाशन अथ से इति तक

हिन्दी प्रकाशन व्यवसाय में आज जो स्थान दिल्ली का है, आज से लगभग सत्तर वर्ष पूर्व वही स्थान कलकत्ता का था। हिन्दी प्रकाशन क्षेत्र के अग्रदूत इस महानगर को ही हिन्दी की पहली पुस्तक 'मिस्कीं का मरसिया' और हिन्दी का पहला दैनिक समाचार पत्र 'मारवाड़ी ब्राह्मण' प्रकाशित करने का श्रेय है। इस महानगर ने उस युग में हिन्दी प्रकाशन व्यवसाय का पथ-प्रदर्शन किया, जिस युग में इस व्यवसाय के लिये कोई आशाजनक भविष्य नहीं दिखता था।

उस युग में इस महानगर ने हिन्दी प्रकाशन व्यवसाय को 'प्रोफेशन' से अधिक मिशन के रूप में लिया। प्रकाशन को जीविका का साधन नहीं, बल्कि मातृभाषा की सेवा माना गया तथा उस समय के प्रकाशकों द्वारा इसे एक तपस्या के रूप में अनेक बाधाओं का सामना करते हुए जारी रखा गया। उस समय न तो आज जैसी स्तरीय पुस्तकों का हिन्दी में लेखन होता था और न हिन्दी के आज जैसे पाठक थे। हिन्दी में प्रकाशन करना जोखिम का एक काम था।

इस जोखिम के युग में कलकत्ता के हिन्दी प्रकाशकों ने बड़े महत्त्व के कार्य किये। इस सन्दर्भ में रामलाल बर्मन, निहालचन्द वर्मा, हरिदास वैद्य, रिखबदास बाहिती, चन्द्रशेखर पाठक, पद्मराज जैन, राधामोहन गोकुलजी, महावीरप्रसाद पोद्दार, बैजनाथ केड़िया, मूलचन्द अग्रवाल, रामदयाल अग्रवाल, उमादत्त शर्मा, शम्भूप्रसाद वर्मा, देवनारायण द्विवेदी, शिवशंकर मिश्र, विश्वम्भरनाथ खत्री, गोविन्दनारायण मिश्र, रामनारायण त्रिवेदी, श्रीराम बेरी, दुलीचन्द परवार, दयाराम बेरी, काशीनाथ जैन, जयगोपाल लोहिया, गुलाबरत्न वाजपेयी, अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी, रामकुमार भुवालका, गंगाप्रसाद भोतिका, महादेव प्रसाद सेठ आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

स्वर्गीय रामलाल बर्मन ने हिन्दी पुस्तक प्रकाशन के लिए आर० एल० बर्मन कम्पनी की स्थापना की। इस कार्य में इनके सहायक थे निहालचन्द वर्मा। दोनों महानुभाव साझे में पुस्तक-प्रकाशन का व्यवसाय करते थे। रामलालजी बर्मन बड़े प्रतिभाशाली, व्यापार कुशल और सूझ-बूझ वाले व्यक्ति थे, साथ ही वे अच्छे लेखक भी थे। काशी से वे 'उपन्यास सागर' नामक एक पत्रिका भी प्रकाशित करते थे। यह पत्रिका रामघाट के हितचिन्तक प्रेस में छपती थी। इसमें ऐय्यारी एवं तिलस्मी उपन्यास धारावाहिक रूप में प्रकाशित होते थे। रामलाल बर्मन हिन्दी पुस्तक व्यवसाय में एक क्रान्तिदर्शी व्यक्ति थे। वास्तव में आधुनिक हिन्दी के निर्माण में जो स्थान भारतेन्दु बाबू का है वही स्थान हिन्दी प्रकाशन क्षेत्र में रामलाल बर्मन का माना जाता था।

सान्याल, जरासंध, बुद्धदेव वसु आदि छाये हुए हैं। हिन्दी में इनके उपन्यास बंगला उपन्यासों के संस्करणों से अधिक बिकते हैं और हिन्दी के पाठकों में सम्मानित भी हैं। बंगला साहित्य से अनुवाद करनेवाले अनेक हिन्दीभाषी साहित्यकार हैं, जिनमें डॉ० प्रतिभा अग्रवाल, विमल मिश्र, हंसकुमार तिवारी, पृथ्वीनाथ शास्त्री, डॉ० कृष्णबिहारी मिश्र, छेदीलाल गुप्त आदि अपना स्थान रखते हैं। पुराने जमाने के सर्वश्री कार्तिक चन्द्र मुखोपाध्याय, गिरीशचन्द्र जोशी, धन्यकुमार जैन, रूपनारायण पाण्डेय, रामचन्द्र वर्मा आदि प्रमुख अनुवादक थे।

दिल्ली में तृतीय विश्व पुस्तक मेले के अवसर पर अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ द्वारा आयोजित आदान-प्रदान गोष्ठी ने निर्णय लिया कि विदेशी भाषाओं के बजाय हिन्दी को भारतीय भाषाओं के साहित्यों के अनुवादों से समृद्ध किया जाना चाहिए। ऐसी गोष्ठियाँ पुस्तक मेलों के अवसर पर इसलिए आयोजित की जाती हैं कि नये पुराने लेखकों को प्रोत्साहन मिले। सत्साहित्य प्रकाशित करनेवाले प्रकाशकों को लोग जानें, पाठक चुने हुए प्रकाशनों से परिचित हों। साहित्य में क्या लिखा जा रहा है, उससे पाठकों तथा लेखकों को परिचित कराया जाय तथा पुस्तक मेलों को लेखकों विक्रेताओं, पाठकों और पुस्तकालयाध्यक्षों का संगम स्थल बनाया जाय।

इस गोष्ठी में विचार हुआ कि क्या बंगाली पाठक हिन्दी साहित्य के विषय में कुछ जानते हैं या जानना चाहते हैं, इस सम्बन्ध में हिन्दी प्रकाशक और लेखक संघ की ओर से क्या कुछ प्रयत्न हुए हैं? क्या अब तक हिन्दी में जो अनुवाद हुए हैं, वे लोकप्रिय हैं? अनुवादकों को क्या उचित पारिश्रमिक दिया जाता है और क्या अनुवादक लेखक की कृति को सजीव रूप में अपने अनुवादों द्वारा प्रस्तुत करने में सफल है? क्या इस तरह से एक से दूसरी भाषा के परस्पर अनुवादों द्वारा देश में भावात्मक एकता के आन्दोलन को बल मिलता?

---

१. १९७८ में तृतीय विश्व पुस्तक मेले की विचार गोष्ठी में पढ़ा गया प्रबन्ध।

बंगीय हिन्दी प्रकाशन अथ से इति तक

हिन्दी प्रकाशन व्यवसाय में आज जो स्थान दिल्ली का है, आज से लगभग सत्तर वर्ष पूर्व वही स्थान कलकत्ता का था। हिन्दी प्रकाशन क्षेत्र के अग्रदूत इस महानगर को ही हिन्दी की पहली पुस्तक 'मिस्कीं का मरसिया' और हिन्दी का पहला दैनिक समाचार पत्र 'मारवाड़ी ब्राह्मण' प्रकाशित करने का श्रेय है। इस महानगर ने उस युग में हिन्दी प्रकाशन व्यवसाय का पथ-प्रदर्शन किया, जिस युग में इस व्यवसाय के लिये कोई आशाजनक भविष्य नहीं दिखता था।

उस युग में इस महानगर ने हिन्दी प्रकाशन व्यवसाय को 'प्रोफेशन' से अधिक मिशन के रूप में लिया। प्रकाशन को जीविका का साधन नहीं, बल्कि मातृभाषा की सेवा माना गया तथा उस समय के प्रकाशकों द्वारा इसे एक तपस्या के रूप में अनेक बाधाओं का सामना करते हुए जारी रखा गया। उस समय न तो आज जैसी स्तरीय पुस्तकों का हिन्दी में लेखन होता था और न हिन्दी के आज जैसे पाठक थे। हिन्दी में प्रकाशन करना जोखिम का एक काम था।

इस जोखिम के युग में कलकत्ता के हिन्दी प्रकाशकों ने बड़े महत्त्व के कार्य किये। इस सन्दर्भ में रामलाल बर्मन, निहालचन्द वर्मा, हरिदास वैद्य, रिखबदास बाहिती, चन्द्रशेखर पाठक, पद्मराज जैन, राधामोहन गोकुलजी, महावीरप्रसाद पोद्दार, बैजनाथ केड़िया, मूलचन्द अग्रवाल, रामदयाल अग्रवाल, उमादत्त शर्मा, शम्भूप्रसाद वर्मा, देवनारायण द्विवेदी, शिवशंकर मिश्र, विश्वम्भरनाथ खत्री, गोविन्दनारायण मिश्र, रामनारायण त्रिवेदी, श्रीराम बेरी, दुलीचन्द परवार, दयाराम बेरी, काशीनाथ जैन, जयगोपाल लोहिया, गुलाबरत्न वाजपेयी, अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी, रामकुमार भुवालका, गंगाप्रसाद भोतिका, महादेव प्रसाद सेठ आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

स्वर्गीय रामलाल बर्मन ने हिन्दी पुस्तक प्रकाशन के लिए आर० एल० बर्मन कम्पनी की स्थापना की। इस कार्य में इनके सहायक थे निहालचन्द वर्मा। दोनों महानुभाव साझे में पुस्तक-प्रकाशन का व्यवसाय करते थे। रामलालजी बर्मन बड़े प्रतिभाशाली, व्यापार कुशल और सूझ-बूझ वाले व्यक्ति थे, साथ ही वे अच्छे लेखक भी थे। काशी से वे 'उपन्यास सागर' नामक एक पत्रिका भी प्रकाशित करते थे। यह पत्रिका रामघाट के हितचिन्तक प्रेस में छपती थी। इसमें ऐय्यारी एवं तिलस्मी उपन्यास धारावाहिक रूप में प्रकाशित होते थे। रामलाल बर्मन हिन्दी पुस्तक व्यवसाय में एक क्रान्तिदर्शी व्यक्ति थे। वास्तव में आधुनिक हिन्दी के निर्माण में जो स्थान भारतेन्दु बाबू का है वही स्थान हिन्दी प्रकाशन क्षेत्र में रामलाल बर्मन का माना जाता था।

सान्याल, जरासंध, बुद्धदेव वसु आदि छाये हुए हैं। हिन्दी में इनके उपन्यास बंगला उपन्यासों के संस्करणों से अधिक बिकते हैं और हिन्दी के पाठकों में सम्मानित भी हैं। बंगला साहित्य से अनुवाद करनेवाले अनेक हिन्दीभाषी साहित्यकार हैं, जिनमें डॉ० प्रतिभा अग्रवाल, विमल मिश्र, हंसकुमार तिवारी, पृथ्वीनाथ शास्त्री, डॉ० कृष्णबिहारी मिश्र, छेदीलाल गुप्त आदि अपना स्थान रखते हैं। पुराने जमाने के सर्वश्री कार्तिक चन्द्र मुखोपाध्याय, गिरीशचन्द्र जोशी, धन्यकुमार जैन, रूपनारायण पाण्डेय, रामचन्द्र वर्मा आदि प्रमुख अनुवादक थे।

दिल्ली में तृतीय विश्व पुस्तक मेले के अवसर पर अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ द्वारा आयोजित आदान-प्रदान गोष्ठी ने निर्णय लिया कि विदेशी भाषाओं के बजाय हिन्दी को भारतीय भाषाओं के साहित्यों के अनुवादों से समृद्ध किया जाना चाहिए। ऐसी गोष्ठियाँ पुस्तक मेलों के अवसर पर इसलिए आयोजित की जाती हैं कि नये पुराने लेखकों को प्रोत्साहन मिले। सत्साहित्य प्रकाशित करनेवाले प्रकाशकों को लोग जानें, पाठक चुने हुए प्रकाशनों से परिचित हों। साहित्य में क्या लिखा जा रहा है, उससे पाठकों तथा लेखकों को परिचित कराया जाय तथा पुस्तक मेलों को लेखकों विक्रेताओं, पाठकों और पुस्तकालयाध्यक्षों का संगम स्थल बनाया जाय।

इस गोष्ठी में विचार हुआ कि क्या बंगाली पाठक हिन्दी साहित्य के विषय में कुछ जानते हैं या जानना चाहते हैं, इस सम्बन्ध में हिन्दी प्रकाशक और लेखक संघ की ओर से क्या कुछ प्रयत्न हुए हैं? क्या अब तक हिन्दी में जो अनुवाद हुए हैं, वे लोकप्रिय हैं? अनुवादकों को क्या उचित पारिश्रमिक दिया जाता है और क्या अनुवादक लेखक की कृति को सजीव रूप में अपने अनुवादों द्वारा प्रस्तुत करने में सफल है? क्या इस तरह से एक से दूसरी भाषा के परस्पर अनुवादों द्वारा देश में भावात्मक एकता के आन्दोलन को बल मिलता?

---

१. १९७८ में तृतीय विश्व पुस्तक मेले की विचार गोष्ठी में पढ़ा गया प्रबन्ध।

बंगीय हिन्दी प्रकाशन अथ से इति तक

हिन्दी प्रकाशन व्यवसाय में आज जो स्थान दिल्ली का है, आज से लगभग सत्तर वर्ष पूर्व वही स्थान कलकत्ता का था। हिन्दी प्रकाशन क्षेत्र के अग्रदूत इस महानगर को ही हिन्दी की पहली पुस्तक 'मिस्कीं का मरसिया' और हिन्दी का पहला दैनिक समाचार पत्र 'मारवाड़ी ब्राह्मण' प्रकाशित करने का श्रेय है। इस महानगर ने उस युग में हिन्दी प्रकाशन व्यवसाय का पथ-प्रदर्शन किया, जिस युग में इस व्यवसाय के लिये कोई आशाजनक भविष्य नहीं दिखता था।

उस युग में इस महानगर ने हिन्दी प्रकाशन व्यवसाय को 'प्रोफेशन' से अधिक मिशन के रूप में लिया। प्रकाशन को जीविका का साधन नहीं, बल्कि मातृभाषा की सेवा माना गया तथा उस समय के प्रकाशकों द्वारा इसे एक तपस्या के रूप में अनेक बाधाओं का सामना करते हुए जारी रखा गया। उस समय न तो आज जैसी स्तरीय पुस्तकों का हिन्दी में लेखन होता था और न हिन्दी के आज जैसे पाठक थे। हिन्दी में प्रकाशन करना जोखिम का एक काम था।

इस जोखिम के युग में कलकत्ता के हिन्दी प्रकाशकों ने बड़े महत्त्व के कार्य किये। इस सन्दर्भ में रामलाल बर्मन, निहालचन्द वर्मा, हरिदास वैद्य, रिखबदास बाहिती, चन्द्रशेखर पाठक, पद्मराज जैन, राधामोहन गोकुलजी, महावीरप्रसाद पोद्दार, बैजनाथ केड़िया, मूलचन्द अग्रवाल, रामदयाल अग्रवाल, उमादत्त शर्मा, शम्भूप्रसाद वर्मा, देवनारायण द्विवेदी, शिवशंकर मिश्र, विश्वम्भरनाथ खत्री, गोविन्दनारायण मिश्र, रामनारायण त्रिवेदी, श्रीराम बेरी, दुलीचन्द परवार, दयाराम बेरी, काशीनाथ जैन, जयगोपाल लोहिया, गुलाबरत्न वाजपेयी, अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी, रामकुमार भुवालका, गंगाप्रसाद भोतिका, महादेव प्रसाद सेठ आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

स्वर्गीय रामलाल बर्मन ने हिन्दी पुस्तक प्रकाशन के लिए आर० एल० बर्मन कम्पनी की स्थापना की। इस कार्य में इनके सहायक थे निहालचन्द वर्मा। दोनों महानुभाव साझे में पुस्तक-प्रकाशन का व्यवसाय करते थे। रामलालजी बर्मन बड़े प्रतिभाशाली, व्यापार कुशल और सूझ-बूझ वाले व्यक्ति थे, साथ ही वे अच्छे लेखक भी थे। काशी से वे 'उपन्यास सागर' नामक एक पत्रिका भी प्रकाशित करते थे। यह पत्रिका रामघाट के हितचिन्तक प्रेस में छपती थी। इसमें ऐय्यारी एवं तिलस्मी उपन्यास धारावाहिक रूप में प्रकाशित होते थे। रामलाल बर्मन हिन्दी पुस्तक व्यवसाय में एक क्रान्तिदर्शी व्यक्ति थे। वास्तव में आधुनिक हिन्दी के निर्माण में जो स्थान भारतेन्दु बाबू का है वही स्थान हिन्दी प्रकाशन क्षेत्र में रामलाल बर्मन का माना जाता था।

उन्होंने हिन्दी की लगभग ३५० पुस्तकें प्रकाशित की हैं। उन पुस्तकों का प्रकाशन स्तर उस समय की दृष्टि से बहुत ऊँचा था। बर्मनजी मुद्रण, आवरण, गेटअप, चित्र, कागज आदि पर बड़ा ध्यान देते थे। यही कारण था कि आर० एल० बर्मन कम्पनी द्वारा प्रकाशित पुस्तकों की हिन्दी संसार में बड़ी ख्याति थी। उस समय डी० एन० बनर्जी, टी० के० मित्र, बी० के० मित्र आदि कलकत्ता में पुस्तकों की कवर-डिजाइन बनानेवाले चोटी के आर्टिस्ट थे। बर्मन जी उन्हीं से अपनी पुस्तकों की डिजाइनें बनवाते थे।

बाद में रामलाल जी बर्मन ने 'हिन्दू पंच' नामक एक सप्ताहिक पत्र का प्रकाशन भी आरंभ किया। इसके सम्पादक ईश्वरी प्रसादजी शर्मा थे। यह राष्ट्रीय पत्रिका थी। पराधीन भारत का विद्रोही स्वर इसमें अभिव्यंजित होता था। परिणामत: इस पत्रिका को अनेक बार ब्रिटिश नौकरशाही का कोपभाजन बनना पड़ा, किन्तु पत्रिका ने अपनी निजी नीति का परित्याग नहीं किया। पत्रिका जनप्रिय तो बहुत थी, पर सरकारी प्रहार को सहते-सहते उसकी जीवनी शक्ति समाप्त हो गई और उसका प्रकाशन बन्द हो गया।

रामलालजी के स्वर्गवास के बाद आर० एल० बर्मन कम्पनी भी समाप्त हो गई। निहालचन्दजी वर्मा ने अपना प्रकाशन व्यवसाय निहालचन्द एण्ड कम्पनी के नाम से आरम्भ किया। इस प्रकाशन संस्थान को कविवर निराला, चन्द्रशेखर पाठक आदि कई साहित्यकारों का सक्रिय सहयोग प्राप्त हुआ। स्वयं निहालचन्दजी ने उत्कृष्ट ऐय्यारी एवं तिलस्मी उपन्यासों की रचना की थी यथा जादू का महल, प्रेम का फल, मोती महल और उन्हें प्रकाशित किया। बाद में निहालचन्द एण्ड कम्पनी का नाम बदलकर हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय हो गया। इस नाम से भी इस प्रकाशन संस्थान ने ऐतिहासिक प्रगति की। कालान्तर में इस संस्थान के जीवन में एक और बदलाव आया और वह हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय से हिन्दी प्रचारक संस्थान हो गया।

प्रकाशन व्यवसाय में कलकत्ता की दूसरी विभूति थे हरिदास वैद्य। उन्होंने नरसिंह प्रेस खोलकर प्रकाशन आरम्भ किया था। कई उच्च कोटि के प्रकाशन किये थे, जिनमें चिकित्सा चन्द्रोदय नामक ग्रन्थ विशेष उल्लेखनीय है। यह ग्रन्थ सात खण्डों में प्रकाशित हुआ था। प्रख्यात उपन्यासकार पं० चन्द्रशेखर पाठक ने भी इसी महानगर में पाठक एण्ड कम्पनी के नाम से प्रकाशन-व्यवसाय आरम्भ किया था। पाठक जी स्वयं अच्छे लेखक थे और उन्हें अच्छे लेखकों का सहयोग भी प्राप्त था। उन्होंने मौलिक और अनूदित करीब ७० ग्रन्थ प्रकाशित किये थे। स्वर्गीय महादेव प्रसाद सेठ 'मतवाला' नामक साप्ताहिक पत्र निकालते थे। साथ ही साथ पुस्तक प्रकाशन का भी व्यवसाय करते थे। इनका 'मतवाला मण्डल' शंकर घोष लेन में था। मण्डल को हिन्दी के प्रख्यात साहित्यकारों का योगदान प्राप्त था। कविवर निराला, पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र, मुंशी नवजादिकलाल श्रीवास्तव आदि साहित्यकार सेठ जी की छत्रछाया में साहित्य सर्जन करते थे। इसी 'मतवाला' मण्डल से उग्रजी की 'चाकलेट', 'बुधुआ की बेटी' आदि कई पुस्तकें प्रकाशित हुई थीं; जिनको लेकर विशाल भारत के तत्कालीन सम्पादक पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ने घासलेटी साहित्य कह कह आन्दोलन आरम्भ किया था।

इस नगर में ही रिखबदास जी बाहिती ने आर०. डी० बाहिती एण्ड कम्पनी के

नाम से प्रकाशन व्यवसाय आरम्भ किया था। इस कम्पनी ने भी हिन्दी की कई महत्वपूर्ण पुस्तकों का प्रकाशन किया।

असहयोग आन्दोलन के समय महावीरप्रसाद पोद्दार के प्रयत्न से हिन्दी पुस्तक एजेंसी की स्थापना हुई। यहाँ से उस समय के हिन्दी के मूर्धन्य साहित्यकारों की पुस्तकों का प्रकाशन आरम्भ हुआ। इनमें रामदास गौड़, प्रेमचन्द, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। बाद में हिन्दी पुस्तक एजेंसी को बाबू बैजनाथ केड़िया ने खरीद लिया। केडिया जी के हाथ में आकर यह संस्थान दिन-दूना रात-चौगुना पनपा। प्रेमचन्द, जी० पी० श्रीवास्तव, बंकिमबाबू आदि की पुस्तकें यहाँ से प्रकाशित हुई। इस समय शम्भूप्रसादजी वर्मा हिन्दी पुस्तक एजेंसी के प्रबन्धक थे। वे मुद्रण, कागज, गेटअप आदि पर बड़ा ध्यान देते थे। कुछ दिनों बाद वर्मा एजेंसी से अलग होकर 'कलकत्ता पुस्तक भण्डार' के नाम से अपना पृथक व्यवसाय करने लगे। बाबू बैजनाथ केड़िया के स्वर्गवास के बाद उनके सुपुत्र कृष्ण गोपालजी केडिया ने हिन्दी पुस्तक एजेंसी का काम आगे बढ़ाया।

'भारती पुस्तक एजेंसी' के नाम से एक प्रकाशन संस्था नारायण प्रसाद बाबू लेन में स्थापित हुई थी। इसके संस्थापक थे देवनारायणजी द्विवेदी। वे स्वयं सुलेखक थे और उस समय इनकी कलम में बड़ा दम था। इनकी लिखी 'पंजाब का हत्याकांड' नामक पुस्तक की हिन्दी संसार में बड़ी धूम थी। उसकी २२ हजार प्रतियाँ हाथों हाथ बिक गयी। बाद में तो कई प्रकाशकों ने पंजाब हत्याकांड पर अलग-अलग पुस्तकें प्रकाशित कीं, पर इन पुस्तकों को द्विवेदी जी की पुस्तक जैसी ख्याति नहीं मिली। कुछ दिनों बाद द्विवेदी जी कलकत्ता छोड़कर वाराणसी चले आये और ज्ञानमण्डल के प्रकाशन व्यवसाय को देखने लगे।

कलकत्ता की एक विभूति पं० शिवशंकर मिश्र भी थे, जिन्होंने काम विज्ञान, रति विज्ञान, जननेन्द्रिय विज्ञान आदि कई उच्च कोटि की पुस्तकें प्रकाशित कीं। हिन्दी संसार ने इन प्रकाशनों का स्वागत किया।

'पापुलर ट्रेडिंग कम्पनी' की स्थापना पं० उमादत्त शर्मा ने की। इस सद्कार्य में 'विश्वमित्र' के संस्थापक स्वर्गीय बाबू मूलचन्द जी अग्रवाल का उन्हें सक्रिय सहयोग प्राप्त हुआ। इस संस्थान से करीब साठ-सत्तर अच्छे प्रकाशन हुए थे, जिनमें धार्मिक, पौराणिक एवं साहित्यक सभी प्रकार की पुस्तकें थीं।

इसी नगर में जवाहर प्रेस से जैन साहित्य का प्रकाशन हुआ। दुलीचन्द परवार द्वारा यह प्रेस स्थापित किया गया था। जैन साहित्य का प्रकाशन काशीनाथ जैन भी करते थे। श्रीराम बेरी एडवोकेट का भी अपना प्रकाशन था। वे एस० आर० बेरी एण्ड कम्पनी के नाम से पुस्तक प्रकाशन का व्यवसाय करते थे। 'जल चिकित्सा' आदि कई महत्वपूर्ण पुस्तकें उन्होंने छापी थीं। श्रीनिवास लोहिया एवं ज़यगोपाल लोहिया 'वेंकटेश्वर पुस्तक एजेंसी' के नाम से पुस्तक प्रकाशन करते थे। इसके बाद इनके पुत्र स्व० रामप्रसाद लोहिया 'बम्बई पुस्तक भंडार' के नाम से यह व्यवसाय चलाने लगे। विश्वंभरनाथ खत्री ने भी इस नगर से कुछ प्रकाशन किये थे उनमें लोकोक्ति कोश विशेष महत्व का था। यह हिन्दी का प्रथम लोकोक्ति कोश था।

प्रथम हिन्दी विश्वकोश के प्रकाशक नगेन्द्रनाथ बसु को हिन्दी संसार कभी नहीं भुला सकता। अहिन्दी-भाषी होते हुए भी उन्होंने उस युग में विश्वकोश का प्रकाशन हिन्दी में किया था। यह सेवा के साथ ही साथ व्यावसायिक दृष्टि से बड़े साहस का कार्य था। रामकुमार भुवालका एवं गंगाप्रसाद भोतिका भी कुछ दिनों तक पुस्तक प्रकाशन करते रहे। रामदयालजी अग्रवाल भी सरस्वती पुस्तक एजेंसी के नाम से प्रकाशन व्यवसाय करते थे। ये बाबू मूलचन्दजी अग्रवाल के छोटे भाई थे। इनके अतिरिक्त राष्ट्रकवि माधव शुक्ल के कनिष्ठ भ्राता गिरधर शुक्ल ने आदर्श हिन्दी पुस्तकालय नाम से प्रकाशन व्यवसाय आरम्भ किया था। कालान्तर में उन्होंने अपने प्रकाशन संस्थान को यहाँ से हटा दिया और उसे प्रयाग ले गये। श्री अयोध्या सिंह ने विशाल भारत बुक डिपो की स्थापना की और भगवतीचरण वर्मा, श्रीराम शर्मा की कृतियाँ छापीं।

इसी नगर में जन-साहित्य का प्रकाशन पं० रामनारायण त्रिवेदी ने आरम्भ किया था। त्रिवेदीजी के मिलनसार, मितव्ययी एवं परिश्रमी व्यक्तित्व ने इस व्यवसाय को गति एवं नयी दिशा प्रदान की। अपनी दक्षता एवं व्यवहार कुशलता से इन्होंने पुस्तकों का प्रकाशन किया। बाद में इनके सुपुत्र लोकनाथ जी इस व्यवसाय का संचालन करते रहे।

अब कलकत्ता हिन्दी के साहित्यिक प्रकाशन का केन्द्र नहीं रहा। यहाँ अधिकांश हिन्दी प्रकाशक पाठ्य पुस्तकों का ही प्रकाशन करते हैं।

बंगीय हिन्दी प्रकाशन : अद्य से इति तक

डी० पी० चटर्जी पश्चिमी बंगाल में टूरिस्टों के लिए मानचित्र छापने के लिए विख्यात थे। फेडरेशन आफ मास्टर प्रिन्टर्स के आप अध्यक्ष भी थे। चटर्जी साहब एक मुद्रक के साथ-साथ अच्छे लेखक भी हैं। भारत के क्षितिज पटल पर गोसेन आर्ट प्रेस को प्रसिद्ध करने वाले एन० के० गोसेन अब नहीं रहे। पुरस्कार प्रतियोगिता के लिए इनके मुद्रण संस्थान का आज भी सर्वोपरि स्थान है। सुप्रसिद्ध क्रिकेटर सौरभ गांगुली एन० के० गोसेन के नाती हैं और इस मुद्रण संस्थान के सम्बन्धित भी है। श्री बी० डी० सेन बंगाल के सुप्रसिद्ध मुद्रकों में हैं। वे फेडरेशन आफ मास्टर्स प्रिन्टर्स के अध्यक्ष पद को भी सुशोभित कर चुके हैं।

मानस चतुःशती एवं हिन्दी प्रकाशकों का दायित्व

आज जब कि देश के एक वर्ग ने पुराने मूल्यों और साहित्यिक, सांस्कृतिक उपलब्धियों को नकारने की नकाब अपने चेहरे पर ओढ़ ली है, ऐसे में नेशनल बुक ट्रस्ट द्वारा कलकत्ते में आयोजित पाँचवें पुस्तक मेले के अवसर पर, अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ द्वारा २८ जनवरी, १९७३ को सूचना केन्द्र में आयोजित मानस गोष्ठी का महत्त्व काफी बढ़ गया है । हिन्दी के सुपरिचित साहित्यकार, नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग के प्रधानमंत्री तथा संसद सदस्य, सुधाकर पाण्डेय की अध्यक्षता में सम्पन्न इस गोष्ठी में हिन्दी के कुछ वरेण्य विद्वानों ने भाग लिया।

अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ की ओर से गोष्ठी में 'मानस और रामकथा साहित्य का प्रकाशन' पर एक खोजपूर्ण प्रबन्ध पढ़ा गया। मानस की महत्ता का उल्लेख करते हुए कहा गया कि—तुलसी और मानस भारतीय संस्कृति के दो स्तम्भ हैं।

इस अवसर पर कलकत्ता विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के प्राध्यापक विष्णुकान्त शास्त्री ने 'मानस अनुशीलन साहित्य' पर अपना निबन्ध प्रस्तुत किया। अपने निबन्ध में उन्होंने जिन अलग-अलग दिशाओं में अब तक मानस का मनन और अनुशीलन किया गया है उसका उल्लेख किया। उन्होंने बताया कि किसी देश में किसी कृति का इतना बहुकोणीय अध्ययन नहीं किया गया है जितना कि रामचरित मानस का भारत में किया गया है। कलकत्ता नेशनल लाइब्रेरी के कृष्णाचार्य ने अपने निबन्ध 'रामचरित मानस का अनुवाद कार्य' में खोजपूर्ण सूचनाएँ दीं। गोष्ठी में अपना विचार व्यक्त करते हुए मानस साहित्य के मर्मज्ञ सीताराम सेक्सरिया ने अनुरोध किया कि मानस का एक प्रामाणिक पाठवाला सस्ता संस्करण प्रकाशित किया जाना अत्यन्त आवश्यक है। संघ के महामंत्री दयानन्द वर्मा ने कहा कि मानस का भारतीय जीवन साहित्य पर काफी प्रभाव पड़ा है और कृष्णायन तथा लोकायन तक में हमें यह देखने को मिलता है।

अपने अध्यक्षीय भाषण में पं० सुधाकर पाण्डेय ने प्रारम्भ में नेशनल बुक ट्रस्ट की नौकरशाही प्रवृत्ति और अंग्रेजी परस्त नीति की चुटकी ली। उनका विचार था कि यदि नेशनल बुक ट्रस्ट भारतीय भाषाओं तथा हिन्दी प्रकाशनों के लिए ज्यादा कार्य करे तो यह एक अच्छी बात होगी।

उन्होंने आगे कहा कि प्रकाशकों पर तुलसीदास का काफी ऋण है और मानस चतुःशती समारोह के अवसर पर तुलसी साहित्य के प्रकाशन के लिये उन्हें आगे आना चाहिये। इस दिशा में सरकार की कमजोरियों की तरफ भी उन्होंने इशारा किया।

मानस की महत्ता के सन्दर्भ में उन्होंने कहा कि मानस न केवल गंगा, यमुना और हिमालय की तरह इस देश के लिए महत्त्वपूर्ण है, वरन् कुछ अर्थों में यह उनसे भी अधिक महत्वपूर्ण है। गंगा यमुना के सूखने से हम ज्यादा घाटे में नहीं रह सकते, लेकिन यदि तुलसी का मानस सूख गया तो देश खतरे में पड़ सकता है। मानस केवल साहित्य नहीं सृष्टि भी है।

अन्त में उन्होंने हिन्दी प्रकाशक संघ को आश्वासन दिया कि मानस साहित्य के प्रकाशन में केन्द्रीय मानस चतु:शती समिति का पूरा सहयोग प्रकाशक संघ को मिलेगा।

गोष्ठी के संचालक तथा कलकत्ता विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष प्रो० कल्याणमल लोढ़ा ने अपना विचार प्रस्तुत करते हुए भारतीय संस्कृति तथा मानस के अटूट सम्बन्धों पर बल दिया।

गोष्ठी में उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी लखनऊ के नर्मदेश्वर चतुर्वेदी का निबन्ध 'हिन्दी में मानस साहित्य की भूमिका' विलम्ब से प्राप्त होने के कारण पढ़ा न जा सका, किन्तु निश्चय किया गया कि उसे भी संघ द्वारा प्रचारित और प्रसारित किया जाय। इसके अतिरिक्त गोष्ठी में श्यामलाल गुप्त एम० पी०, नेशनल बुक ट्रस्ट के निदेशक कर्तार सिंह दुग्गल, श्रीमती मोहिनी राव, भूतपूर्व संसद सदस्य रामकुमार भुवालका आदि की उपस्थिति विशेष उल्लेखनीय रही।

अन्त में पश्चिम बंग राष्ट्रभाषा पुस्तक व्यवसायी सभा के अध्यक्ष रामगोविन्द सिंह तथा मंत्री श्यामसुन्दर शर्मा ने आगत विद्वानों तथा अतिथियों को सहयोग के लिए धन्यवाद दिया। अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ के मंत्री विजय प्रकाश बेरी ने अभ्यागतों का स्वागत किया।

कवि-सम्मेलन

इस अवसर पर प्रख्यात कवि तथा साहित्यकार डॉ० शम्भुनाथ सिंह की अध्यक्षता में एक सरस कवि सम्मेलन सम्पन्न हुआ, जिसमें वाराणसी के डॉ० बुद्धिनाथ मिश्र तथा मुरादाबाद के माहेश्वर तिवारी ने अपने मधुर गीत सुनाये। नजीर बनारसी की राष्ट्रीय एवं लालधर त्रिपाठी की भावभीनी रचनाओं ने गोष्ठी में समा बाँध दी। अध्यक्ष डॉ० शम्भुनाथ सिंह ने कई मनोहारी गीत सुनाये। कवि-सम्मेलन का कुशल संचालन कलकत्ता के चन्द्रदेव सिंह ने किया।

मानस गोष्ठी की संस्तुतियाँ

१. गोष्ठी राजा राममोहन राय लाइब्रेरी फाउन्डेशन को सुझव देती है कि वह मानस तथा राम-कथा सम्बन्धी साहित्य विशेष रूप से खरीदे।

२. नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी इस बात के लिए कदम उठाये कि प्रचलित मानस की टीकाएँ अशुद्ध तथा भ्रामक रूप में बाजार में प्रसारित न की जाँय।

३. केन्द्र तथा राज्य सरकारों द्वारा मानस एवं राम-कथा सम्बन्धी साहित्य कें

प्रकाशन में सहयोग और सहायता दी जाय। यह कार्य नेशनल बुक ट्रस्ट के माध्यम से हो और ट्रस्ट अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ के सहयोग से इस कार्य को सम्पन्न करे।

४. मानस के सस्ते और सुरुचिपूर्ण संस्करण बढ़िया 'न्यूज प्रिन्ट' पर छापकर सर्व-सुलभ कराये जाँय। इसके लिए केन्द्र एवं राज्य सरकारें प्रकाशकों को आर्थिक सहायता दें तथा न्यूज प्रिन्ट सुलभ करायें।

५. भारत में सन् १९७४ में प्रस्तावित विश्व पुस्तक मेले के अवसर पर देश-विदेश के विद्वानों के सहयोग से एक अन्तर्राष्ट्रीय गोष्ठी मानस तथा राम-कथा पर आयोजित की जाय। यह कार्य अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ के सहयोग से नेशनल बुक ट्रस्ट द्वारा सम्पन्न हो।

६. अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ 'मानस सन्दर्भ ग्रन्थ सूची' प्रकाशित करे। इसके लिए केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय से अनुदान प्राप्त किया जाय।

७. गोष्ठी नेशनल बुक ट्रस्ट को इस आयोजन में सहयोग देने के लिए धन्यवाद देती है।

८. मानस और रामकथा साहित्य की पठनाभिरुचि का सर्वेक्षण कराया जाय और इस कार्य में यूनेस्को से सहायता ली जाय

❀

मानस और रामकथा साहित्य के प्रकाशन

रामकथा या मानस दोनों में, जिस किसी की भी चर्चा होती है, गोस्वामी तुलसीदास का चित्र हमारे सामने बरबस आ जाता है। जनमानस को मुखरित करनेवाला मानस साहित्य भारत के घर घर में हमारी सांस्कृतिक धरोहर के रूप में पवित्रता पूर्वक स्थापित है। शिशु के धरती पर आगमन, विवाहादि कार्यक्रमों से लेकर मरणकाल तक मानस का पाठ हमारे समाज के जीवन का एक अंग बन गया है। विद्वानों से लेकर अनपढ़ तक रामचरितमानस के गूढ़ रहस्यों को समझने का प्रयास करते हैं। वस्तुतः स्थिति यह है कि मानस में जो जितना डूबता है, उसे उतना ही अधिक ज्ञान प्राप्त होता है। रामचरित मानस का इस वैज्ञानिक मुद्रण-प्रकाशन के युग के पूर्व भी विशद प्रचार था। कंठाग्र कर रामायणी जनता में इसका पारायण करते थे, परन्तु उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भ से मुद्रण प्रकाशन की सुविधा होने के कारण रामायण के अनेक संस्करण हुए और आज भारत के घर-घर में वृहद भाषा टीका वाली रामायण से लेकर रामायण के गुटके तक विद्यमान है। शायद ही कोई ऐसा हिन्दू हो जिसके घर में गोस्वामीजी की रामायण न हो। रामायण के विभिन्न संस्करण पिछली शताब्दी से ही परिलक्षित होने लगे थे। तुलसी रामायण का प्रथम मुद्रित संस्करण मिसनरी प्रेस, श्रीरामपुर जिला हुगली, पश्चिम बंगाल से प्रकाशित हुआ। इसके बाद आधिकारिक भाषा टीका संस्करण विद्यावारिधि ज्वालाप्रसाद मिश्र ने कल्याण, बम्बई स्थित वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस में छापा। इसके पूर्व मूल रामायण के संस्करण अयोध्या के छोटेलाल बुकसेलर, बनारस के भार्गव पुस्तकालय से काशी प्रसाद भार्गव, लखनऊ के मुंशी नवलकिशोर प्रेस आदि ने प्रकाशित किये थे। बीसवीं शती के दूसरे दशक तक रामायण की अनेक टीकायें बाजार में उपलब्ध हो गयी थी, उनमें बनारस के बैजनाथप्रसाद बुकसेलर द्वारा प्रकाशित वृहद, मध्यम, गुटका भाषा टीका संस्करण और भार्गव पुस्तकालय, काशी द्वारा प्रकाशित उपरोक्त तीनों तरह के संस्करण काफी लोकप्रिय हुए तथा लाखों की संख्या में बिके। बम्बई के निर्णयसागर प्रेस और हरिप्रसाद भगीरथ प्रकाशन ने भी रामायण के भाषा टीका संस्करण इन्हीं दिनों प्रकाशित किये थे। बिहार के सोनपुर तथा उत्तर प्रदेश के ददरी और गढ़मुक्तेश्वर के मेले, जो पशु आदि की बिक्री के लिये प्रसिद्ध थे, इस बात की भी प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके थे कि इन मेलों में रामायण की पुस्तकों की दुकानें भी आती हैं। मेलों में आनेवाला शायद ही ऐसा कोई व्यक्ति होता था जो रामायण और हनुमान चालीसा न खरीदता हो।

बीसवीं सदी के तीसरे दशक में तो रामायण के प्रकाशकों की भीड़-सी आ गयी। प्रयाग की हिन्दुस्तानी अकादमी, वाराणसी के प्रहलाद दास बुकसेलर, अग्रवाल प्रेस, स्टार ऑफ इण्डिया प्रेस, सीताराम प्रेस, पंडित पुस्तकालय से रामायण के मूल पाठ तथा भाषाटीका संस्करण बाजार में बहुत अधिक संख्या में आ गये थे। इनमें से कई भाषा टीका संस्करणों में एक अद्भुत बात यह थी कि विद्यावारिधि ज्वालाप्रसाद मिश्र की प्रसिद्धि के कारण इन टीकाओं पर भी टीकाकार के स्थान पर ज्वालाप्रसाद का नाम लिखा रहता था, उसपर चाहे वह ज्वालाप्रसाद शुक्ल का नाम हो, या पाण्डे का या केवल ज्वाला प्रसाद का। इन्हीं दिनों गीता प्रेस गोरखपुर के भी रामायण के मूल तथा भाषा टीका संस्करण बाजार में मिलने लग गये थे। परन्तु गीता प्रेस के भाषा टीका संस्करण इसलिये लोकप्रिय नहीं हुए कि उनमें क्षेपक कथायें यथा नारान्तक वध, सुलोचना कथा, अहिरावण कथा आदि नहीं रहती थीं। साथ ही लव-कुश काण्ड भी नहीं रहता था। कहते हैं कि क्षेपक कथायें और लव-कुश काण्ड गोस्वामी जी की रचना नहीं है और बाद में उनके भक्तों ने इसे रामचरितमानस का अंग बना दिया। परन्तु इस बात का निर्णय करना विद्वत् समाज का कार्य है।

कालक्रम में रामचरितमानस के प्रकाशन के क्षेत्र में कलकत्ता से पापुलर ट्रेडिंग कम्पनी, रामनारायण त्रिवेदी तथा हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, बनारस से ठाकुर प्रसाद बुकसेलर, पटना के लहरिया सराय से पुस्तक भण्डार, मथुरा से हिन्दी पुस्तकालय, श्यामकाशी प्रेस तथा बम्बई भूषण प्रेस, दिल्ली से देहाती पुस्तक भण्डार तथा अग्रवाल बुक डिपो आदि प्रकाशक आये। प्राय: सभी ने रामायण के भाषा-टीका संस्करण प्रकाशित किये। इन संस्करणों में पापुलर ट्रेडिंग कम्पनी कलकत्ता का भाषा-टीका का संस्करण, जिसके प्रकाशक स्व० बाबू मूलचंदजी अग्रवाल थे, बहुत ही शुद्ध और सुमुद्रित था। इसके टीकाकार थे पं० बाबूराम मिश्र। पापुलर ट्रेडिंग कम्पनी से सुमुद्रित तथा शुद्ध संस्करण का श्रेय बहुत कुछ पं० उमादत्तजी शर्मा को दिया जा सकता है, जो कि उपरोक्त प्रकाशन संस्था के भागीदार थे। हिन्दी में इसके पूर्व इतना अच्छा रामायण का संस्करण केवल बम्बई के निर्णय सागर प्रेस ने प्रकाशित किया था।

आज तो रामायणों के अनेक संस्करण प्रकाशित हो रहे हैं। मथुरा से शिक्षा भारती तथा वाराणसी से पं० सीताराम चतुर्वेदी द्वारा सम्पादित संस्करण और गीताप्रेस का भाषा-टीका संस्करण काफी लोकप्रिय है। पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित रामचरितमानस के काशीराज संस्करण का भी अपना एक वैशिष्ट्य है। काशीराज महाराज विभूति नारायण सिंह की यह इच्छा कि यह संस्करण घर-घर में रहे फलीभूत नहीं हुई। इसका एकमात्र कारण यह है कि इसका सम्पादन सर्वसाधारण को दृष्टिगत रख नहीं किया गया, अपितु यह शोध विद्यार्थियों के लिये ही उपयोगी है। सर्वसाधारण तो सीधी सादी छपी रामायण में रुचि रखता है, उसे पाठ-भेदों में कोई दिलचस्पी नहीं है।

रामायण की टीकाओं के संबंध में कुछ कहना आप्रसंगिक न होगा। पहले की छपी अधिकांश रामायणों में वास्तविक टीकाकार का नाम ही नहीं है, वरन् उसकी जगह नकली ज्वाला प्रसाद विद्यमान हैं। उन दिनों के टीकाकारों को प्रकाशकों द्वारा सिर्फ फर्मे के हिसाब से बहुत ही अल्प पारिश्रमिक दिया जाता था, फलत: बाजार में प्रकाशित

बहुत-सी टीकायें दोषपूर्ण हैं। इनके टीकाकार बाजार में प्राप्त रामायण की टीकाओं को सामने रख कर टीका लिख देते थे और जैसे-तैसे पुस्तक प्रकाशित हो जाती थी। प्रामाणिकता का इनमें सर्वथा अभाव था। ऐसी टीकाओं को यदि बाजारू टीका भी कहा जाय तो अत्युक्ति नहीं होगी। जहाँ तक पाठ का संबंध है प्रचलित रामायणों के संस्करणों में विद्यावारिधि ज्वाला प्रसाद मिश्र, डा० माता प्रसाद गुप्त, सीताराम चतुर्वेदी, काशीनरेश संस्करण तथा गीताप्रेस द्वारा प्रकाशित रामायणों में पाठान्तर होते हुए भी पाँचों का पाठ शुद्ध माना जाता है। सीताराम प्रेस बनारस से प्रकाशित श्री बजरंगबली गुप्त द्वारा सम्पादित रामचरितमानस का पाठ भी शुद्ध माना गया है।

बाजार में उपलब्ध तथा प्रचलित अनेक टीकाओं और रामायणों में प्रूफ रीडिंग की भूलें पाई जाती हैं। कहीं-कहीं छपाई में मात्राओं के टूट जाने से अर्थ का अनर्थ हो गया है। पाठ भेद की दृष्टि से भी इन संस्करणों में त्रुटियाँ हैं। वस्तुस्थिति यह है कि इस क्षेत्र के प्रकाशकों को रामायण जैसे पवित्र ग्रन्थ की पवित्रता का बोध तो है, परन्तु एक दूसरे से कम मूल्य पर अपने संस्करण बेचने के होड़ में वे सम्पादन तथा प्रूफ रीडिंग को महत्व नहीं देते। छपाई भी ऐसे प्रेसों में कराई जाती है जहाँ का मुद्रण उच्च स्तर का नहीं होता। आवश्यकता इस बात की है कि प्रकाशक अपने उत्तरदायित्व को समझें। प्रत्येक संस्करण को मुद्रित होने के पूर्व किसी अधिकारी विद्वान से सम्पादित करायें और प्रूफ रीडिंग की समुचित व्यवस्था करें। छपाई, सम्पादन, मुद्रण के अतिरिक्त रामायण में जो कागज प्रयुक्त हो वह भी उत्तम कोटि का होना चाहिये। प्राय: देखा जाता है कि मूल्य कम रखने की दृष्टि से प्रकाशक घटिया किस्म के न्यूज प्रिन्ट का व्यवहार करते हैं। सरकार को चाहिये कि वह रामायण के संस्करणों के लिये उत्कृष्ट कोटि का न्यूज प्रिन्ट प्रकाशकों को उपयुक्त दामों पर उसी तरह दे, जिस तरह समाचार पत्रों को देती है।

रामायण के विभिन्न कांडों के पृथक संस्करण भी लोकप्रिय हैं। वैसे तो गीताप्रेस ने सभी कांड पृथक-पृथक प्रकाशित किये हैं, परन्तु लगभग ५० प्रकाशकों ने सुन्दर कांड, जो कि बहुत ही लोकप्रिय है, गुटका रूप में प्रकाशित किया है। सुन्दर कांड का पाठ घर-घर में प्रचलित है और वर्ष में इसकी लगभग दो-तीन लाख प्रतियाँ विभिन्न प्रकाशकों द्वारा प्रकाशित की जाती हैं। गुटका रूप में किष्किन्धा कांड भी छपा है। सुन्दरकांड की तुलना में यह बहुत बिकता है। सुन्दरकांड के भाषाटीका के संस्करण भी प्रकाशित हुए हैं। स्वतंत्रता के पूर्व सुन्दरकांड, बालकांड तथा अयोध्या कांड विद्यालयों के पाठ्यक्रम में पढ़ाये जाते थे, परन्तु आजकल आधुनिकता और धर्मनिरपेक्ष राज्य की भावना के कारण रामचरितमानस की पढ़ाई नहीं होती। हम विश्वास करते हैं कि मानस चतु:शती के अवसर पर विभिन्न राज्यों के शिक्षा विभाग पाठ्यक्रमों को निर्धारण करते समय रामायण के विद्यार्थीपयोगी अंश पाठ्यक्रम में निर्धारित करेंगे।

रामायण के विभिन्न कांडों की तरह ही तुलसीदासजी की हनुमानचालीसा अति लोकप्रिय है। कहते हैं इसके पाठमात्र से ही भय दूर भाग जाता है। साल में इसकी भी लगभग दस लाख प्रतियाँ बिकती हैं। गोस्वामीजी की विनय-पत्रिका एक पठनीय कृति है। इसकी दो टीकायें बहुत ही मान्य हैं—एक है वियोगीहरि की और दूसरी पं० देवनारायण

द्विवेदी की। कवितावली और गीतावली तुलसीदासजी की अन्य ऐसी कृतियाँ हैं, जिनका भक्त पाठकों में समादर है। इनकी भी विभिन्न टीकायें प्रकाशित हैं। लाला भगवानदीन की कवितावली की टीका श्रेष्ठ मानी जाती है। कवितावली और गीतावली के सचित्र सुमुद्रित संस्करण प्रकाशित किये जाने चाहिये।

मानस चतु:शती के अवसर पर रामायण की चुनी चौपाइयों के बुकलेट भी प्रकाशित हुए हैं। १६-१६ पृष्ठों के ये बुकलेट बालकों, स्त्रियों तथा न्यायविदों के लिये काशी से हिन्दी प्रचारक संस्थान ने मानस की सुन्दर चौपाइयों के नाम से प्रकाशित किया है। चतु:शती के क्रम में विभिन्न विद्वानों के मानस सम्बन्धित लेखों का एक संकलन चित्रकूटधाम मानस समिति ने 'तुलसी परिशीलन' के नाम से प्रकाशित किया है, जिसके सम्पादक हैं उत्तर प्रदेश के प्रसिद्ध पत्रकार बाबूलाल गर्ग।

मानस के साथ ही साथ बाल्मीकि रामायण के हिन्दी भाषानुवाद भी भक्तजन पढ़ते हैं। ये भाषानुवाद वाराणसी से ठाकुर प्रसाद बुक्सेलर, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय तथा पं० पुस्तकालय, लखनऊ से राजा रामकुमार प्रेस तथा दिल्ली से बाल संस्करण के रूप में राजपाल एण्ड सन्स ने भी प्रकाशित किये हैं।

मानस का जनता में अत्यधिक प्रचार तथा समादर होने के कारण रामकथा का व्यापक प्रभाव साहित्य पर भी पड़ा है। कथावाचक शिरोमणि बरेली के राधेश्यामजी कथावाचक ने राधेश्याम रामायण लिखी। वे स्वयं जगह-जगह घूम कर इसको अपने लय में पढ़ते थे। कालक्रम में राधेश्याम रामायण बहुत ही प्रसिद्ध और लोकप्रिय हुई। उसकी लोकप्रियता इसी से विदित होती है कि उसी लय और तर्ज पर अनेक रामायणें निकलीं जिनके लेखक तो भिन्न थे, परन्तु पुस्तक का नाम राधेश्याम रामायण ही रखा गया। राधेश्याम रामायण २६ खण्डों में है जिसमें लक्ष्मण परशुराम संवाद, अंगद रावण संवाद तथा मेघनाथ बध बहुत ही प्रसिद्ध हैं। राधेश्याम रामायण लय पर लिखनेवाले कवियों में पं० रामलगन पाण्डेय और सुदर्शन त्रिवेदी की कृतियाँ भी समादृत हुईं।

रामकथा की प्रसिद्धि का यह प्रभाव पड़ा कि स्त्रियों के लिये सरल भाषा में रामायण के पात्रों से सम्बन्धित अनेक स्त्रियों की जीवनियाँ प्रकाशित हुई, यथा महासती अनुसूया, सती सीता, सती सुलोचना, सती अहिल्या आदि । बच्चों के लिये बाल रामायण के अनेक संस्करण क्रमश: कलकत्ता के हिन्दी पुस्तक एजेन्सी, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, पापुलर ट्रेडिंग कम्पनी और आर० एल० बर्मन एण्ड कम्पनी ने प्रकाशित किये। युवकोपयोगी आख्यान भी प्रकाशित हुए, यथा महावीर हनुमान, परशुराम, रावण राज्य, श्रवण कुमार, रामचरित्र आदि। बाल रामायण के संस्करण तो पाठ्य ग्रन्थ के रूप में विद्यार्थियों के लिये स्वीकृत किये जाते थे, परन्तु अब यह बात नहीं है।

रामकथा का प्रचार करने में भोजपुरी के लेखकों ने बहुत ही महत्वपूर्ण योग दिया। पंवारों के रूप में श्रवणकथा, सीता माई की कथा, बजरंगबली की कथा आदि प्रकाशित हुईं। महादेव सिंह, जो कि नाचाप आरा के रहनेवाले थे, ये पँवारे लिखते थे। स्वामी ब्रह्मानन्द ने भी रामायण के कथानकों पर अनेक भजन लिखे हैं। हाथरस के नत्थाराम शर्मा गौड़ तथा कानपुर के श्री कृष्ण पहलवान ने रामायण की कथा पर अनेक

नौटंकियाँ लिखी हैं। नत्थाराम की सती सुलोचना और कृष्ण पहलवान का श्रवणचरित्र नौटंकी बहुत ही लोकप्रिय हैं।

उत्तर प्रदेश में चित्रकूट, अयोध्या और काशी में रामलीलाओं का प्रचलन है। इन लीलाओं से व्यास रामायण की चौपाइयाँ पढ़कर राम लीला कराते हैं। इन लीलाओं का प्रभाव यह पड़ा कि रामलीला नाटक के कई संस्करण काशी के फर्म बाबू बैजनाथ प्रसाद बुकसेलर ने प्रकाशित किये। नारायण प्रसाद बेताब का रामायण नाटक, आगाहश्र काश्मीरी का सीता नाटक और काशी के उपन्यास बहार आफिस के बाबू शिवरामदास का रामायण नाटक भी स्वतंत्रता पूर्व ख्याति प्राप्त कर चुके थे। इनका मंचीकरण तथा फिल्मीकरण दोनों ही हुआ। नाटकों के रिकार्ड भी बने। जहाँ तक रिकार्डों का प्रश्न है रामायण की चौपाइयों और राधेश्याम रामायण के रिकार्ड भी हजारों की संख्या में बिके।

रामायण के कथानक पर हास्य में कुटिलेश लिखित गड़बड़ रामायण १९३९ में प्रकाशित हुई। इसका काशी के विद्वानों ने जोरदार विरोध किया। इसमें रामायण के चौपाइयों की पैरोडी थी। बाद में पुस्तक का प्रकाशन जनता के विरोध के कारण बन्द कर दिया गया। हिन्दी के सुप्रसिद्ध विद्वान भदन्त आनन्द कौशल्यायन ने बाल्मीकि रामायण के आधार पर राम की आत्मकथा नागपुर से प्रकाशित कराई। परन्तु उसकी भाषा और परिमार्जित की जा सकती थी। बाल्मीकि का अनुवाद होते हुए भी उसका प्रस्तुतिकरण भगवतभक्तों को पसन्द नहीं आयेगा। आचार्य तुलसी की रामायण संबंधी एक पुस्तक भी जनता में घोर विवाद का कारण बनी।

रामायण के व्यास रामायण के तत्वसार पर प्रवचन करते हैं। इनके प्रवचन अब पुस्तकाकार भी आ रहे हैं। रामकिंकर जी का मानस चिन्तन दो खंडों में प्रकाशित हो चुका है। इसी तरह से विन्दुजी की व्याख्या भी प्रकाशित होती तो जनता के लिये उपयोगी होती।

बरवै रामायण, अध्यात्म रामायण, योगवाशिष्ट कथा आदि ऐसे ग्रन्थ हैं जो रामकथा के सन्दर्भ में पढ़े जाते हैं। हिन्दी में श्री रघुनाथ सिंह लिखित योगवाशिष्ट कथा काफी समादृत हुई है।

१९३०-३१ में कलकत्ता की निहालचंद एण्ड कम्पनी ने रामायण कैलेंडर निकाला था। मानस के प्रचार के लिये यह एक उपयोगी माध्यम सिद्ध हुआ।

विदेशों में रामचरितमानस का प्रचार भारतीय संस्कृति के प्रसार के लिये अत्यन्त आवश्यक है। बड़ौदा के स्वामी कृष्णानन्द जी महाराज विदेशों में दो लाख प्रतियाँ नि:शुल्क बाँटने का संकल्प ले चुके हैं और उनका संकल्प बहुत सीमा तक पूरा भी हुआ है। विदेशों में वितरित होनेवाले ये संस्करण यदि आफसेट प्रणाली से रंगीन चित्रों सहित प्रकाशित हों तो अधिक उत्तम होगा।

अभी हाल ही में दृश्य तथा ध्वनि के माध्यम से दिल्ली की रवीन्द्र रंगशाला में रामचरितमानस का प्रदर्शन रामायण के प्रचार में सहायक हुआ है। मानस देश-विदेश में और अधिक मुखारंत हो, इसके लिये और अधिक प्रयत्न की आवश्यकता है।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की शताब्दी

हमारी समारोहवादी मानसिकता बड़े ललक के साथ साहित्यकारों और महापुरुषों की जयन्ती मनाती है। हमने राजनेताओं के अलावा महावीरप्रसाद द्विवेदी, श्यामसुन्दर दास, चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी', रामचन्द्र शुक्ल, प्रेमचन्द आदि की जयन्तियों के भव्य आयोजन किए। भारतेन्दु की सपादशती, सूर की ५००वीं शती और तुलसी की ४००वीं शती मनाई। इन सबमें क्या हुआ? समारोह हुए, सेमिनार हुए, इन महान् रचनाकारों के नाम पर कुछ स्वनामधन्य लोगों ने अपनी छबि पर पानी चढ़ाया, कुछ के बैंक बैलेन्स बढ़े, पर क्या ये साहित्यकार जनता के बीच पहुँच सके? मंचों पर लगी इनकी तस्वीरें क्या जनमानस के हृदय में टँक सकीं? बाढ़ की तरह उत्सव आया और चला गया। क्या दूसरी भाषाओं के साहित्यकारों की शतियाँ भी ऐसे ही मनाई जाती हैं? क्या उनके यहाँ भी एक समारोह करके कर्त्तव्य की इतिश्री कर दी जाती है?

शेक्सपियर की शती मनाई गई। भव्य आयोजन की भव्यता के साथ-साथ उनकी अल्पमोली ग्रंथावली भी निकाली गई। शेक्सपियर के सभी नाटकों का संग्रह केवल आठ पौण्ड में उपलब्ध कराया गया। यही बंगला में हुआ। शरत शती के मौके पर शरत समिति की ओर से सौ रुपए में शरत् ग्रंथावली प्रकाशित हुई। माँग इतनी बढ़ी कि बाद में वह नब्बे रुपए में सुलभ हो गई। रवीन्द्र शती मनाई गई। १७ खण्डों में रवीन्द्र रचनावली रेक्सीन की जिल्द में सिर्फ ६०० रुपए में सुलभ कराई गई। कवि गुरु रवीन्द्र के बाल साहित्य का समूचा संकलन 'केशोवाक' के नाम से मात्र चालीस रुपए में उपलब्ध कराया गया। क्या हमने भी ऐसा किया, इन शतियों को मनाने में प्रकाशकों की भूमिका क्या रही? हम क्यों नहीं अपने चिरस्मरणीय साहित्यकारों की अल्पमोली ग्रन्थावलियाँ छाप सके? समारोह तो अपने चाकचिक्य के साथ खत्म हो गए और उन्हें खत्म होना ही था। पर उनकी स्मृति शेष के लिए हमने क्या किया? अगर हमने उनके ग्रंथों के कम दाम के संस्करण निकाले होते तो उन साहित्यकारों की स्मृति बहुत दिनों तक जनमानस को प्रेरित करती। दुर्भाग्य है कि सरकार ने भी इसपर ध्यान नहीं दिया। हिन्दी के नाम पर चरने-खानेवाली संस्थाएँ अनुदान भुनाने में लगी रहीं।

हिन्दी प्रकाशन व्यवसाय ही लगता है पटरी से उतर गया। अब वह जनता के लिए नहीं, सरकारी खरीद के लिए छापता है। हम जनता से दूर होते जा रहे हैं। हिन्दी प्रकाशकों ने पाठक खो दिए। कुछ अच्छे काम करने के बावजूद प्रकाशक संघ कतिपय

सदस्यों के गलत आचरण के कारण अपने उद्देश्य को प्राप्त नहीं कर सका। उन्हें यह नहीं दिखाई देता कि रामकृष्ण परमहंस शती पर डेढ़-डेढ़ हजार पेज के 'रामकृष्ण समग्र' केवल बीस रुपए में कैसे प्रकाशित किये गये। हिन्दी का प्रकाशक कागज की महँगाई और छपाई पर बढ़े खर्च की बहुत दुहाई देता है, पर वह यह नहीं देखता कि दो हजार पेज की डबल डिमाई साइज की विवेकानन्द ग्रंथावली चित्रों के अलबम सहित आखिर साठ रुपए में बंगलावाले कैसे दे रहे हैं?

एक बात और विचारणीय है। चैतन्य महाप्रभु की ५००वीं शती के मौके पर नवद्वीप में एक पुस्तक मेले का आयोजन हुआ। इस छोटी-सी जगह पर पहुँचने के लिए स्पेशल ट्रेनें चलाई गईं। पाँच लाख से अधिक लोग वहाँ पहुँचे। चालीस लाख से अधिक रुपए के उनके चित्र और ग्रंथ बिके। क्या इस प्रकार हिन्दी के भक्त कवियों को हम जनता से जोड़ पाए? सूर की ५००वीं जयन्ती पर तथा तुलसी की ४००वीं जयन्ती पर क्या रुनकता, राजापुर एवं चित्रकूट के लिए स्पेशल ट्रेनें चलीं? हिन्दी जनमानस में यह ललक क्यों नहीं पैदा हुई? हम कहाँ चूकते चले जा रहे हैं? सही बात तो यह है कि हम इन साहित्यकारों को जनता से जोड़ ही नहीं पा रहे हैं। इनके माध्यम से सिर्फ हम अपने पद-प्रतिष्ठा की बढ़ोत्तरी कर रहे हैं।

क्या मैथिलीशरण गुप्त के सन्दर्भ में भी हमने यही किया? चिरगाँव झाँसी में उत्तरप्रदेश सरकार का एक आयोजन हुआ। सुना है आसपास के गाँवों की अच्छी साझेदारी रही, पर जैसा समारोह होना चाहिए था वैसा नहीं हुआ?

मैथिलीशरण गुप्त की दूसरे साहित्यकारों जैसी स्थिति नहीं है। वे सही माने में जनता के कवि हैं। उनकी रचनाएँ प्राइमरी से लेकर स्नातकोत्तर कक्षाओं तक पढ़ाई जाती हैं। छात्रों के जीवन में गुप्तजी नव जागरण के प्रतीक बन चुके थे। एक ओर गुप्तजी की 'भारत भारती', 'साकेत', 'यशोधरा' और 'जयद्रथ वध' की पंक्तियाँ गुनगुनाते हुए विद्यार्थी रास्ते पर चलते थे—दूसरी ओर स्वर्गीय माधव शुक्ल की 'मेरी माता के सिर पर ताज रहे, यह हिन्द मेरा आजाद रहे' गाते हुए देखे जाते थे। इक़बाल का 'सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा' जनमानस में घुल-मिल रहा था। वह उस समय एक शंखनाद था। साहित्यकार रचना करते हुए राष्ट्रीय संघर्ष में भी सबसे आगे था और उसके पीछे था आजादी के दीवानों का जुलूस। इन साहित्यकारों ने वह माहौल बनाया और वह मौसम तैयार किया, जिसमें राष्ट्रीय आन्दोलन अंकुरित, पल्लवित, पुष्पित एवं फलित हुआ।

मैथिलीशरण गुप्त, दिनकर और निराला जनमानस से जुड़े कवि हैं। वे हिन्दी भाषियों के चहेते हैं। संचार माध्यमों ने भी इनका प्रचार-प्रसार किया है। यदि कहीं खालीपन दिखाई देता है तो प्रकाशकीय सन्दर्भ में। क्या बंगला के महान् रचनाकारों की ग्रन्थवालियों की तरह हम गुप्त की भी एक अल्पमोली ग्रन्थावली निकाल पायेंगे? क्या हम उन्हें समारोहवादी मंचों के चाकचिक्य से निकालकर घर-घर पहुँचा पायेंगे? इस सन्दर्भ में गुप्तजी के कापीराइट होल्डरों की ओर से भी कठिनाइयाँ हो सकती हैं, हालांकि

ऐसी सम्भावना बहुत कम दिखाई देती है। विश्वास है कि यदि गुप्तजी की रचनाओं के अल्पमोली संस्करण निकालने की बात आएगी तो उनके कापीराइट होल्डर जरूर सहयोग करेंगे। सवाल यह है कि प्रकाशक पहल करें।

ये कवि जनता में अपनी रचनाओं की समर्थता के कारण तो लोकप्रिय थे हीं, साथ ही इसलिए भी लोकप्रिय थे कि इनकी प्रकाशित रचनायें जनता की जेब के पहुँच में थीं। निराला जी की 'अनामिका' का प्रथम संकरण चार आने का था। 'भारत भारती' के प्रथम संस्करण का मूल्य आठ आना था, आज उसका दाम २५ रुपए है। दिनकर का कुरुक्षेत्र एक रुपए में सुलभ था। ये सारी किताबें तब जनता के लिए छपती थीं, तब जाकर गुप्तजी की आकांक्षा पूरी हुई। भारत में उनकी भारती गूँजी। जब महँगी पुस्तकें होंगी तो कौन खरीदेगा, इन कवियों को कौन पढ़ेगा?

ध्यान रहे कि गुप्तजी हिन्दी के प्रकाशक भी थे और वे एक सजग प्रकाशक रहे। उन्होंने भरसक कोशिश की कि उनके प्रकाशनों का दाम अधिक न हो। वे अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ के स्थापनाकाल १९५४ से ही उसके सदस्य थे। उन्हें यह देखकर बहुत दुःख था कि पुस्तकों का सरकारी संस्थाएँ टेण्डर माँगती हैं। इसके खिलाफ उन्होंने एक प्रतिनिधि मण्डल का भी नेतृत्व किया और प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू से मिले। नेहरूजी से उन्होंने कहा कि इस सारस्वत सन्दर्भ में टेण्डर नहीं माँगना चाहिए। प्रधानमंत्री ने प्रतिनिधिमण्डल की बातें मानीं और पुस्तकों पर टेण्डर का आमंत्रण तत्काल बंद हो गया। इस प्रतिनिधिमण्डल में हिन्दी के प्रकाशक और विद्वान् बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'; बनारसी दास चतुर्वेदी, रामधारी सिंह 'दिनकर', भगवतीचरण वर्मा, रामचन्द्र टण्डन, वाचस्पति पाठक, ओम प्रकाश आदि जैसे लोग थे। नेहरूजी ने तत्काल आदेश दिया कि पुस्तकें उसपर छपे हुए मूल्य के दस प्रतिशत कमीशन पर खरीदी जाएँ।

गुप्तजी का रचनाकार सामाजिक सन्दर्भ में हमेशा सजग रहा। उनके काव्य ने समाज को वह चेतना दी, जो प्रेमचन्द के कथा साहित्य ने एवं पराड़करजी की पत्रकारिता ने समाज को दी । ऐसे सजग साहित्यकार की शताब्दी में सिर्फ समारोह करके, सेमिनारों में लोगों को भाषण दिलाकर हम अपने कर्त्तव्य का पालन कर पाये?

कविवर रवीन्द्रनाथ टैगोर की शती पर उनके गीतों के कैसेट की एच.एम.वी. द्वारा मंजूषा बनाई गई। क्या मैथिलीशरण गुप्त के गीतों की कैसेट मंजूषा हम नहीं बनवा सकते? प्रेमचन्द की जन्मशती के मौके पर कई विश्वविद्यालयों में उनके नाम की चेअर स्थापित की गई। क्या हम मैथिलीशरण गुप्त के नाम पर किसी विश्वविद्यालय में चेअर स्थापित नहीं करा सकते? राष्ट्रीय पुस्तक मेलों में नेशनल बुक ट्रस्ट ध्यान दे तो राष्ट्रकवि का कक्ष अलग से लग सकता है।

विश्वभारती शान्ति निकेतन ने कविगुरु का एक स्मृति फलक तैयार किया और उसे सजावट की वस्तु की तरह जनता में लाखों की संख्या में बेचा। क्या इस तरह का स्मृति फलक गुप्तजी का नहीं बनाया जा सकता?

सबसे महत्वपूर्ण बात है कि हम गुप्तजी का साहित्य कम से कम दाम में पाठकों को उपलब्ध कराएँ। छपाई की तकनीक में इधर क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं, जिससे छपाई सुन्दर भी हो गई है और अधिक प्रतियाँ छापने पर खर्च भी बहुत कम पड़ता है

समारोहवादी मानसिकता तो आतिशबाजी की तरह फुर्र से उजाला बिखेर कर दो चार दिनों में समाप्त हो गयी। इस अवसर पर राष्ट्रकवि की अल्पमोली पुस्तकें तथा ग्रंथावलियाँ नहीं निकाली गईं और इसके माध्यम से उन्हें घर-घर नहीं पहुँचाया गया, तो क्या हम सही माने में अपने कर्त्तव्य का निर्वाह कर पाएँगे? ऐसा तो नहीं कि शताब्दी वर्ष के बाद राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अगले शताब्दी वर्ष तक के लिए भुला दिए जाएँ!

कैसे थे वे दिन, वे लोग और कैसी थी उनकी हिन्दा के प्रति आस्था

बात सन् १९३७ के अप्रैल माह की है। कलकत्ता के चाँदपाल घाट से हमारा जहाज रंगून के लिए छूटा। उन दिनों मैकिनन मैकेंजी कम्पनी का जहाज चला करता था। उस समय एक यात्री का कलकत्ता से रंगून तक का किराया (२ रात ३ दिन का) मात्र १४ रुपया था। मैं छात्र था। मन में सम्पूर्ण बर्मा घूमने की उमंग थी, साथ ही हिन्दी की पुस्तकों को बेचना भी प्रमुख लक्ष्य था। संयोगवश उन दिनों नवगठित भारतीय समाजवादी पार्टी अस्तित्व में आयी थी। मैं बंगाल में छात्र संघ का संयुक्त मंत्री था। हौसले बुलन्द थे। दिमाग में फितूर था कि बर्मा में समाजवाद का प्रचार किया जायेगा। ओ० पी० बहल साथ में थे। बाद में वे दिल्ली के बहुत अच्छे नेता हुए। इसी प्रवासकाल में एक यहूदी लड़का भी हम लोगों का दोस्त बना। सबके अलग-अलग मकसद थे। उन दिनों बर्मा भारत का ही अंग था। पासपोर्ट, बीसा का कोई सवाल नहीं था। रास्ते भर हम लोगों ने अपने-अपने व्यापार के मनसूबे बनाये, साथ ही राजनीतिक कार्यक्रम भी बना। दो रात की कठिन तपस्या थी। अन्तत: हम रंगून पहुँचे।

कलकत्ता के भगवानदास बागला फर्म से टिकने के स्थान के लिए पत्र ले गये थे। बागलजी का बर्मा में बड़ा प्रभुत्व था। मोलमीन और रंगून दो ऐसे गढ़ थे जहाँ बागलाजी की तूती बोलती थी। रंगून पहुँचने पर बारिश हो रही थी। मैं मर्चेन्ट स्ट्रीट में रुका था। प्रारंभ में रंगून के संबंध में संक्षिप्त धारणा थी। मेरे लिए रंगून मात्र मरचेन्ट स्ट्रीट, मुगल स्ट्रीट, कालीबाड़ी, इतना ही बड़ा था। इस संक्षिप्त रंगून से मेरी आकांक्षायें पूरी नहीं हो रही थीं। छोटी-मोटी जगहों पर थोड़ी-बहुत पुस्तकें बिक जाती थीं। बरसात से हम अलग परेशान थे। तीन दिनों के बाद बरसात बन्द हुई और संकल्प लिया कि जहाँ भी चलेगें, पैदल चलेंगे। साथ में एक यहूदी लड़का भी था। मैं उन दिनों खादी का कुर्ता, नेहरू जैकेट और सिर पर गाँधी टोपी लगाता था। संयोग से बिगान्डेट पहुँचने के पहले ही बार स्ट्रीट के पास कांग्रेस के मंत्री रमेश मेहता से मुलाकात हो गई। मैंने अपना परिचय दिया। उन्हें प्रसन्नता हुई कि बंगाल का एक युवा नेता बर्मा आया है। कहा, आज आर्यसमाज में प्रताप जयन्ती है। आप लोगों को वहीं चलना चाहिये। मन ही मन बड़ा प्रसन्न हुआ कि चलो इस आमन्त्रण द्वारा लोगों से संपर्क का अवसर तो मिलेगा।

आर्यसमाज के गेट पर रामनिवासजी की पुस्तकों की दुकान थी। वे गाँधीवादी थे। बड़े आदरमान से मेहताजी हमें साथ लेकर गये और मंच पर हम लोगों को बैठाया। आयोजन का सभापतित्व रंगून के मद्रासी मेयर कर रहे थे। व्याख्यानों का क्रम शुरु हुआ।

मेहताजी, कवि रसराज जी, बैरिस्टर अर्जुन सिंह आदि का भाषण हुआ। अन्त में मेरा परिचय कराते हुए मेहताजी बोले कि भारत के युवा समाजवादी आपके बीच बोलेंगे। मैंने राणाप्रताप को समाजवादी घोषित करते हुए सिद्ध करने की चेष्टा की कि प्रताप समाजवादी थे। मेरे भाषण से लोग प्रभावित हुए और चारों ओर से निमन्त्रण मिलने लगे। सीरियम के गंगा सिंह और जयमाल के बाबू जयदेव सिंह भी आये थे। उन स्थानों पर मुझे हिन्दी भाषियों के बीच भाषण देने का निमन्त्रण दिया गया। स्मरणीय है कि सीरियम और जयमाल दोनों रंगून की ब्रह्मपुत्र नदी के उस पार बी.ओ.सी. के बड़े केन्द्र थे। वहाँ दोनों स्थानों पर भाषण के बाद कवि सम्मेलन प्रारंभ हुआ। हमें एक अभूतपूर्व कवि सम्मेलन देखने को मिला। दो लड़के खड़े हुए। हाथ जोड़कर प्रार्थना की—'हे प्रभो आनंददाता ज्ञान हमको दीजिये', इसके बाद दो और लड़के खड़े हुए। उन्होंने स्तोत्रमाला के स्तोत्र पढ़े। फिर एक कवि उठे, उन्होने 'झण्डा ऊँचा रहे हमारा' गीत गाया। मैं अवाक् हो देख रहा था कि यह कैसा कवि सम्मेलन है? क्या रंगून में कवि नहीं हैं? कुछ देर बाद घोषणा हुई कि बर्मा के राष्ट्रीय कवि रसराजजी काव्यपाठ करेंगे। उनसे भी निराशा हुई। खड़े होकर विचित्र मुद्रा में उन्होंने कहा कि मैंने भाँग पी ली है, गला सूख गया है, काव्यपाठ नहीं कर सकूँगा। इतना कहकर वे बैठ गये। अन्त में रामायण पाठ कराया गया। धनुषभंग प्रसंग के बाद कथित कवि सम्मेलन समाप्त हुआ।

वहाँ सार्वजनिक अवसरों पर आने-जाने का अर्थ यह हुआ कि रंगून और आसपास के अनेक क्षेत्रों से निमन्त्रण आने लगे। इनसीन से श्रीमती सेठी और उनके पति इंजीनियर सेठी साहब का आग्रह भरा निमन्त्रण मिला। मैं उनके घर गया। वहाँ हिन्दी प्रेमी लोग जमा हुए थे। हर व्याख्यान के साथ मेरी यह शर्त रहती थी कि २५ रुपये की किताबें खरीदी जायें। सौभाग्य की बात थी कि उन दिनों हिन्दी पुस्तकें खरीदना राष्ट्रीयता की बात समझी जाती थी। रंगून से मचीना (चीन के बार्डर पर स्थित नगर) तक हम बहुधा हिन्दी प्रचार के लिए जाया करते थे। उस समय की स्थिति यह थी कि सामान्य भारतीय से लेकर प्रत्येक मजदूर अपनी सामर्थ्य के अनुसार पुस्तकें अवश्य खरीदता था। माण्डले में डी.ए.वी. कालेज के सेक्रेटरी विद्यार्थीजी से मेरी भेंट हुई। उनका पूर्व आमन्त्रण था कि माण्डले आऊँ। वहाँ भी भाषणों के माध्यम से लोगों से परिचय हुआ। माण्डले की यात्रा के बीच चौतगा और जियावाड़ी दोनों जगह से हिन्दी साहित्य सम्मेलन में भाग लेने के लिए निमन्त्रण मिला। उन दिनों बर्मा में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष पं० हरबदन शर्मा थे। जियावाड़ी और चौतगा, डुमराँव महाराज की जमींदारी के छोटे कसबे थे। मुझमें बड़ा उत्साह था कि बर्मा में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के मंच से बोलने का अवसर मिलेगा। बर्मा के हिन्दी-जगत के शीर्ष नेताओं से भेंट होगी। अन्ततोगत्वा चौतगा पहुँच गया। सम्मेलन में मैंने कलकत्ता की हिन्दी-जगत की गतिविधि के संबंध में वहाँ के श्रोताओं को बताया। कलकत्ता उन दिनों देश का हिन्दी साहित्य का बहुत बड़ा केन्द्र माना जाता था। बड़े-बड़े उद्भट साहित्यकार, पत्रकार उन दिनों कलकत्ते में विद्यमान थे। उदाहरणार्थ—स्व० अम्बिका प्रसाद वाजपेयी, मूलचन्द अग्रवाल, सकल नारायण शर्मा, गांगेयनरोत्तम शास्त्री, ललिताप्रसाद सुकुल, राजनारायण चतुर्वेदी-'आजाद'

आदि कलकत्ते की विभूतियाँ थीं। मैंने बताया कि किस तरह देश के राष्ट्रीय आन्दोलन से हिन्दी जुड़ी हुई है। सम्मेलन में कुछ प्रस्ताव पेश किये गये। पं० हरबदन शर्मा का निमंत्रण था कि आप हर वर्ष हमारे सम्मेलनों में सम्मिलित हुआ करें। उनके निमन्त्रण को मैंने स्वीकार तो किया, परन्तु अगले वर्ष सन् १९३८ में जब मैं बर्मा गया और जितने दिन रहा उन दिनों हिन्दी साहित्य सम्मेलन के दूसरे अधिवेशन की कोई संभावना प्रतीत नहीं हुई। इसके बाद बर्मा गया ही नहीं।

आज भी वे यादें ताजी हैं। स्मृतियाँ दिमाग में कौंधती हैं। ऐसे हिन्दी सेवी थे जो बिना माइक के भी भाषण दिया करते थे। बिना खरीदे उन्हें मालायें मिल जाया करती थीं। कैसे थे वे दिन और कैसे थे वे हिन्दी प्रेमी लोग?

सस्ता साहित्य मंडल का राष्ट्र-निर्माण में योग

'जीवन साहित्य' विशेषांक के लिए कुछ लिखने का आग्रह भाई यशपालजी ने किया, जिसे टालना कठिन था। मेरे जीवन के निर्माण में जिसके साहित्य का मुझ पर विशेष प्रभाव पड़ा था, उसके लिए ज्यादा नहीं तो दो शब्द लिखना मेरा कर्तव्य भी था।

मुझे भली-भाँति याद है कि जब मैं कलकत्ता में मैट्रिक की अन्तिम कक्षाओं में पढ़ता था, उस समय मेरे किराये वाले घर के पास ही एक छोटा-सा पुस्तकालय भी था, जिसमें 'त्यागभूमि' पत्रिका आती थी। उसके एक अंक में मैंने साधु टी० एल० वास्वानी का गीता पर लेख पढ़ा। उसमें उन्होंने लिखा था कि गीता के अन्दर जो युद्ध की बात आई है, वह किसी भौतिक युद्ध की नहीं, बल्कि हमारे अन्तर में ही चलनेवाले दैवी तथा आसुरी शक्तियों के युद्ध का द्योतक है। यह बात तुरन्त मेरे अन्दर घर कर गई और आज ४७ साल से भी ऊपर हुआ होगा, वह लेख मुझे भूला नहीं है। बाद में गाँधीजी के 'अनासक्ति योग' की प्रस्तावना पढ़कर इस सम्बन्ध में पक्की धारणा बनी, लेकिन सर्वप्रथम तो साधु वास्वानी का लेख पढ़कर ही उस नये गूढ़ार्थ ने मेरा ध्यान खींचा था। ऐसे उपकारक लेख को, जो मुझे मेरे शुरुआती उम्र में पढ़ने को मुझे मिला था, आज फिर से उसका साहित्य पढ़ने की इच्छा हो जाती है।

दूसरा जो लाभ उसी जमाने में मुझे पढ़ने को मिला, वे थे 'सस्ता साहित्य मण्डल' द्वारा गाँधीजी की आत्मकथा का हिन्दी संस्करण। उन दिनों मैं मैट्रिक में पढ़ता था। मेरे एक सहपाठी ने कहीं रेलवे प्रवास में बापू की आत्मकथा देखी। उसे लगा कि शायद मैंने वह पढ़ी हो। लेकिन मुझे तो इसका पता तक नहीं था। मैं तुरन्त एक प्रमुख हिन्दी पुस्तक विक्रेता (नाम याद नहीं आ रहा है) के पास जाकर आत्मकथा खरीद लाया। बड़े चाव से और ध्यानपूर्वक उसे पढ़ा। फिर दूसरे भाग की प्रतीक्षा में बार-बार पूछताछ करता रहा। किताबों के दाम भी 'मंडल' ने अपने नाम के अनुरूप काफी सस्ते रखे थे। बाद में बापू का गीतानुवाद 'अनासक्तियोग', जिसे मैंने पहले ही गुजराती में पढ़ डाला था, उसका 'मंडल' ने हिन्दी संस्करण प्रस्तुत किया। फिर 'मंडल-प्रभात' तथा आश्रम जीवन जैसी छोटी, लेकिन अत्यन्त महत्व की पुस्तिकाएँ भी हाथ लगीं।

१९४० में विनोबाजी को बापू ने प्रथम सत्याग्रही के तौर पर चुना, लेकिन विनोबाजी कौन हैं, उनके विचार क्या हैं, इसका उस समय के हिन्दी जगत् को कुछ भी पता नहीं था। वे इतने प्रसिद्धि-पराङ्मुख हैं, मैं नहीं जानता था। मैं तब उन्हें मराठी मात्र ही जानता था। लेकिन जब 'मंडल' ने 'विनोबा के विचार' दो भागों में बिना देर लगाये प्रकाशित किये तो मेरे-जैसे लोगों को उनके बारे में विशेष ज्ञान हुआ। आगे चलकर उनके प्रसिद्ध गीता प्रवचनों का लाभ हिन्दी जनता को सर्वप्रथम देने का श्रेय भी 'मंडल' को ही है।

मंडल ने हिन्दी द्वारा राष्ट्र-निर्माण के कार्य में गाँधी-विचार को देश के समक्ष प्रस्तुत करने में जो कार्य किया, उसके लिए मैं 'मंडल' को सादर प्रणाम करता हूँ।

❀

कॉपीराइट और पेपर बैक समस्याएँ

विगत चार वर्षों से कॉपीराइट का विषय समाचार पत्रों की सुर्खियों में रहा है, क्योंकि साहित्यिक और कलात्मक कृतियों के संरक्षण के लिए विख्यात बर्न कन्वेंशन एवं युनिवर्सल कॉपीराइट कन्वेंशन में संशोधन किये जानेवाले थे। एतदर्थ, कई वर्षों तक अगणित सभाएँ भी आयोजित हुईं। अंतिम संशोधन २४ जुलाई, १९७१ को पेरिस में संपन्न किया गया।

मैं राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय कॉपीराइट की जटिल समस्याओं का सविस्तार वर्णन नहीं करूँगा, अपितु मैं अपने को सिर्फ पेपर बैक तक ही सीमित रखूँगा। पेपर बैक्स के सन्मुख पुनर्मुद्रण तथा अनुवाद दोनों की ही समस्याएँ हैं।

विकासशील देशों के प्रति संशोधित प्राविधानों के अनुरूप पुनर्मुद्रण के लिये अनिवार्य अधिपत्र किसी पुस्तक के प्रकाशन के सात वर्ष पश्चात स्वीकृत किया जा सकता है; लेकिन अनुवादों के संबंध में अँग्रेजी से अन्य भाषाओं में रूपान्तर के लिये तीन वर्ष तथा जर्मन, स्पेनिश, फ्रेन्च इत्यादि से किसी भी भारतीय प्रादेशिक भाषा में अनुवाद के लिये यह अवधि एक वर्ष की है।

मैं पुन: इस मत का प्रतिपादन करना उपयुक्त समझता हूँ कि विद्या-प्रसार के प्रस्फुटित होने और फल-स्वरूप साक्षरता का समावेश जन-जीवन में होने के कारण, न केवल उन्नत देशों में ही अपितु विकासशील देशों में भी, पेपरबैक में एक क्रान्ति का अभ्युदय हुआ है। सम्प्रति भारत में भी इसका प्रत्यक्ष प्रमाण दृष्टिगोचर हुआ है और प्रकाशन के क्षेत्र में मानो एक इतिहास की ही संरचना हुई है, जब एक हिन्दी पुस्तक की पाँच लाख प्रतियाँ सफलतापूर्वक प्रकाशित हुई थीं।

सातवें दशक में विद्या के त्वरित् एवं सतत् प्रसार के कारण पेपरबैक के क्षेत्र में एक विशाल विस्तार का उद्भव होना अवश्यम्भावी प्रतीत होता है। विकासोन्मुख दशक में आर्थिक स्तर में सुधार के कारण जन मानस में अधिक द्रव्य-अर्जन तथा ऐशो-आराम की चीजें होने की संभावनाएँ हैं और नि:संदेह इससे अधिक पुस्तकों की माँग भी परिणामत: बढ़ेगी।

मैं कॉपीराइट और पेपर बैक की जटिलताओं को दो भिन्न-भिन्न भागों में बाटूँगा यथा-राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय। जब मेरा अभिप्राय 'राष्ट्रीय' से होता है तो उसका संबंध एक पेपर बैक के प्रकाशकों के सन्मुख विद्यमान उन समस्याओं से होता है, जब वे कोई ऐसी पुस्तक को प्रकाशित करने की सोचते हैं जो भारत में 'हार्ड कंव्हर' (मोटी जिल्द) में, अँग्रेजी या किसी भी अन्य भाषा में पहिले ही प्रकाशित हो चुकी हो।

सम्प्रति भारत में पेपर बैक का प्रकाशन अँग्रेजी, हिन्दी, गुजराती, बंगाली, उर्दू

और तेलुगु में हो रहा है। अँग्रेजी में पेपर बैक का प्रकाशन उस पुस्तक के या तो 'हार्ड कव्हर' (मोटी जिल्द) के सफलता प्राप्त करने पर होता है अथवा कोई दु:साहसिक प्रकाशक किसी पुस्तक की पाण्डुलिपि का सीधे तौर पर प्रकाशन करवा देता है। यदा-कदा 'हार्ड कव्हर' संस्करण वाला प्रकाशक, यद्यपि वह पेपर बैक के संस्करण का प्रकाशक न भी हो, पेपर बैक संस्करण प्रकाशित करने का स्वयं बीड़ा उठा लेता है। ऐसा वह तभी करता है जब वह 'हार्ड कव्हर' संस्करण की तमाम प्रतियाँ बेच चुका होता है। वह साधारणतया इस धारणा को अन्तर्निहित किये हुए होता है कि पेपर बैक संस्करण उसके 'हार्ड कव्हर' संस्करण की पुस्तकों की बिक्री में अवरोध उत्पन्न कर सकता है। लेकिन विदेशों में गणनात्मक विवेचनों ने यह सिद्ध कर दिखाया है कि यह तर्क निर्मूल एवं निराधार है और पेपर बैक 'हार्ड कव्हर' संस्करण की बिक्री में सहायक ही होता है। कभी-कभी वह पेपर बैक संस्करण के प्रति यथोचित न्याय नहीं कर पाता, क्योंकि जो विकट परिस्थितियाँ इस प्रकार की किताबों की बिक्री करने में परिलक्षित होती हैं, वे 'हार्ड कव्हर' वाली पुस्तकों से सर्वथा भिन्न हैं।

पेपर बैक के प्रकाशन में विलम्ब होने से तथा 'हार्ड कव्हर' संस्करण के साथ ही साथ प्रकाशन न होने से, पाठकों की मानसिकता पर इसका काफी प्रभाव पड़ता है और दिनों दिन उनकी अभिरुचि क्षीण होती जाती है और कभी-कभी तो लुप्तप्राय: ही हो जाती है।

'अन्तर्राष्ट्रीय' संदर्भ में हमारा अभिप्राय अँग्रेजी भाषा की उन पुस्तकों से है जो इंग्लैण्ड, अमेरिका या कहीं अन्यत्र से प्रकाशित हुई हों। अमेरिका में प्रकाशित पुस्तकों के देश के बाहर के अधिकार अधिकतर इंग्लैण्ड के प्रकाशकों को बेचान किये होते हैं, जो भारतीय प्रकाशकों को प्रतिफल स्वरूप दे भी सकते हैं या नहीं भी दे सकते; संयोगवश यदि किसी असाधारण परिस्थिति में वे ऐसा करते भी हैं, तो मध्यस्थों के मुनाफे के कारण बहुत खर्चीले सिद्ध होते हैं।

पुनर्मुद्रण के लिये अनिवार्य अधिपत्र की सात वर्ष की अवधि अत्यधिक है। अमेरिका और इंग्लैण्ड ऐसे देश में एक अप्रतिम पुस्तक की धड़ल्ले की बिक्री का जीवन-काल एक वर्ष से अधिक नहीं है; ऐसी स्थिति में कौन प्रकाशक अमेरिका या इंग्लैण्ड में छपी एक बेजोड़ और सर्वाधिक बिक्रीवाली कृति को, अपने उद्गमित देश में प्रकाशन के सात वर्ष बाद प्रकाशित करना चाहेगा?

मेरे विचार से अन्य भारतीय भाषाओं में पेपर बैक के लिये, अन्य भाषाओं से हिन्दी अथवा अँग्रेजी रूपान्तर करने के अधिकार सर्वदा प्राप्त हैं। मेरे अनुमान से पेपर बैक में कई और अधिक पुस्तकें प्रकाशित करवायी जानीं चाहिये। उनका अँग्रेजीकरण बहुत महत्व रखता है, क्योंकि यही एक तरीका है जिससे भारत के अन्य प्रान्तों में बसे लोग तथा बाकी विश्व के लोगों के साथ मनन-चिन्तन, विचार और भावों का आदान-प्रदान हो सकता है।

अमेरिका या इंग्लैण्ड में पेपर बैक का मूल्य-निर्धारण वहाँ की आम जनता की धनोपार्जन क्षमता के आधार पर स्थिर किया जाता है और उनके बृहदाकार पेपर बैक

कॉपीराइट और पेपर बैक समस्याएँ

विगत चार वर्षों से कॉपीराइट का विषय समाचार पत्रों की सुर्खियों में रहा है, क्योंकि साहित्यिक और कलात्मक कृतियों के संरक्षण के लिए विख्यात बर्न कन्वेंशन एवं युनिवर्सल कॉपीराइट कन्वेंशन में संशोधन किये जानेवाले थे। एतदर्थ, कई वर्षों तक अगणित सभाएँ भी आयोजित हुईं। अंतिम संशोधन २४ जुलाई, १९७१ को पेरिस में संपन्न किया गया।

मैं राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय कॉपीराइट की जटिल समस्याओं का सविस्तार वर्णन नहीं करूँगा, अपितु मैं अपने को सिर्फ पेपर बैक तक ही सीमित रखूँगा। पेपर बैक्स के सन्मुख पुनर्मुद्रण तथा अनुवाद दोनों की ही समस्याएँ हैं।

विकासशील देशों के प्रति संशोधित प्राविधानों के अनुरूप पुनर्मुद्रण के लिये अनिवार्य अधिपत्र किसी पुस्तक के प्रकाशन के सात वर्ष पश्चात स्वीकृत किया जा सकता है; लेकिन अनुवादों के संबंध में अँग्रेजी से अन्य भाषाओं में रूपान्तर के लिये तीन वर्ष तथा जर्मन, स्पेनिश, फ्रेन्च इत्यादि से किसी भी भारतीय प्रादेशिक भाषा में अनुवाद के लिये यह अवधि एक वर्ष की है।

मैं पुनः इस मत का प्रतिपादन करना उपयुक्त समझता हूँ कि विद्या-प्रसार के प्रस्फुटित होने और फल-स्वरूप साक्षरता का समावेश जन-जीवन में होने के कारण, न केवल उन्नत देशों में ही अपितु विकासशील देशों में भी, पेपरबैक में एक क्रान्ति का अभ्युदय हुआ है। सम्प्रति भारत में भी इसका प्रत्यक्ष प्रमाण दृष्टिगोचर हुआ है और प्रकाशन के क्षेत्र में मानो एक इतिहास की ही संरचना हुई है, जब एक हिन्दी पुस्तक की पाँच लाख प्रतियाँ सफलतापूर्वक प्रकाशित हुई थीं।

सातवें दशक में विद्या के त्वरित् एवं सतत् प्रसार के कारण पेपरबैक के क्षेत्र में एक विशाल विस्तार का उद्भव होना अवश्यम्भावी प्रतीत होता है। विकासोन्मुख दशक में आर्थिक स्तर में सुधार के कारण जन मानस में अधिक द्रव्य-अर्जन तथा ऐशो-आराम की चीजें होने की संभावनाएँ हैं और निःसंदेह इससे अधिक पुस्तकों की माँग भी परिणामतः बढ़ेगी।

मैं कॉपीराइट और पेपर बैक की जटिलताओं को दो भिन्न-भिन्न भागों में बाटूँगा यथा-राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय। जब मेरा अभिप्राय 'राष्ट्रीय' से होता है तो उसका संबंध एक पेपर बैक के प्रकाशकों के सन्मुख विद्यमान उन समस्याओं से होता है, जब वे कोई ऐसी पुस्तक को प्रकाशित करने की सोचते हैं जो भारत में 'हार्ड कंव्हर' (मोटी जिल्द) में, अँग्रेजी या किसी भी अन्य भाषा में पहिले ही प्रकाशित हो चुकी हो।

सम्प्रति भारत में पेपर बैक का प्रकाशन अँग्रेजी, हिन्दी, गुजराती, बंगाली, उर्दू

और तेलुगु में हो रहा है। अँग्रेजी में पेपर बैक का प्रकाशन उस पुस्तक के या तो 'हार्ड कव्हर' (मोटी जिल्द) के सफलता प्राप्त करने पर होता है अथवा कोई दु:साहसिक प्रकाशक किसी पुस्तक की पाण्डुलिपि का सीधे तौर पर प्रकाशन करवा देता है। यदा-कदा 'हार्ड कव्हर' संस्करण वाला प्रकाशक, यद्यपि वह पेपर बैक के संस्करण का प्रकाशक न भी हो, पेपर बैक संस्करण प्रकाशित करने का स्वयं बीड़ा उठा लेता है। ऐसा वह तभी करता है जब वह 'हार्ड कव्हर' संस्करण की तमाम प्रतियाँ बेच चुका होता है। वह साधारणतया इस धारणा को अन्तर्निहित किये हुए होता है कि पेपर बैक संस्करण उसके 'हार्ड कव्हर' संस्करण की पुस्तकों की बिक्री में अवरोध उत्पन्न कर सकता है। लेकिन विदेशों में गणनात्मक विवेचनों ने यह सिद्ध कर दिखाया है कि यह तर्क निर्मूल एवं निराधार है और पेपर बैक 'हार्ड कव्हर' संस्करण की बिक्री में सहायक ही होता है। कभी-कभी वह पेपर बैक संस्करण के प्रति यथोचित न्याय नहीं कर पाता, क्योंकि जो विकट परिस्थितियाँ इस प्रकार की किताबों की बिक्री करने में परिलक्षित होती हैं, वे 'हार्ड कव्हर' वाली पुस्तकों से सर्वथा भिन्न हैं।

पेपर बैक के प्रकाशन में विलम्ब होने से तथा 'हार्ड कव्हर' संस्करण के साथ ही साथ प्रकाशन न होने से, पाठकों की मानसिकता पर इसका काफी प्रभाव पड़ता है और दिनों दिन उनकी अभिरुचि क्षीण होती जाती है और कभी-कभी तो लुप्तप्राय: ही हो जाती है।

'अन्तर्राष्ट्रीय' संदर्भ में हमारा अभिप्राय अँग्रेजी भाषा की उन पुस्तकों से है जो इंग्लैण्ड, अमेरिका या कहीं अन्यत्र से प्रकाशित हुई हों। अमेरिका में प्रकाशित पुस्तकों के देश के बाहर के अधिकार अधिकतर इंग्लैण्ड के प्रकाशकों को बेचान किये होते हैं, जो भारतीय प्रकाशकों को प्रतिफल स्वरूप दे भी सकते हैं या नहीं भी दे सकते; संयोगवश यदि किसी असाधारण परिस्थिति में वे ऐसा करते भी हैं, तो मध्यस्थों के मुनाफे के कारण बहुत खर्चीले सिद्ध होते हैं।

पुनर्मुद्रण के लिये अनिवार्य अधिपत्र की सात वर्ष की अवधि अत्यधिक है। अमेरिका और इंग्लैण्ड ऐसे देश में एक अप्रतिम पुस्तक की धड़ल्ले की बिक्री का जीवन-काल एक वर्ष से अधिक नहीं है; ऐसी स्थिति में कौन प्रकाशक अमेरिका या इंग्लैण्ड में छपी एक बेजोड़ और सर्वाधिक बिक्रीवाली कृति को, अपने उद्गमित देश में प्रकाशन के सात वर्ष बाद प्रकाशित करना चाहेगा?

मेरे विचार से अन्य भारतीय भाषाओं में पेपर बैक के लिये, अन्य भाषाओं से हिन्दी अथवा अँग्रेजी रूपान्तर करने के अधिकार सर्वदा प्राप्त हैं। मेरे अनुमान से पेपर बैक में कई और अधिक पुस्तकें प्रकाशित करवायी जानीं चाहिये। उनका अँग्रेजीकरण बहुत महत्व रखता है, क्योंकि यही एक तरीका है जिससे भारत के अन्य प्रान्तों में बसे लोग तथा बाकी विश्व के लोगों के साथ मनन-चिन्तन, विचार और भावों का आदान-प्रदान हो सकता है।

अमेरिका या इंग्लैण्ड में पेपर बैक का मूल्य-निर्धारण वहाँ की आम जनता की धनोपार्जन क्षमता के आधार पर स्थिर किया जाता है और उनके बृहदाकार पेपर बैक

संस्करण छापने पर भी वे हम लोगों के लिये काफी महँगे जान पड़ते हैं। यदि हम भारत में एक सामान्य २ से ३ हजार प्रतियों के संस्करण का पुनर्मुद्रण करते हैं तो न सिर्फ विदेशी संस्करण से मूल्य ही कम रहेगा बल्कि विदेशी मुद्रा की भी बचत होगी।

विलम्ब और निषेधक मूल्यों के अलावा, चोरी अथवा नकल की भी कुछ घटनाएँ हो सकती हैं, यदि उस पुस्तक को, उस देश में जहाँ उसकी माँग है, उचित समय के अन्दर पुनर्मुद्रण की आज्ञा न दी जाय।

मैं यह स्पष्ट करना चाहूँगा कि भारत सरकार और प्रकाशक संघ की संस्थाएँ, किसी भी प्रकार की नकल अथवा चोरी की घटना को हमारे देश में गंभीरता से लेती हैं। शीघ्र पुनर्मुद्रण की स्वीकृति से अन्यायी लोगों की इस धूर्त प्रवृत्ति पर अंकुश लगाया जा सकता है। विगत काल में कुछ ऐसी ही नकल या चोरी की घटनाएँ अमेरिका और इंग्लैण्ड की विख्यात-अप्रतिम पुस्तकों के संबंध में घटी हैं। इस समस्या के तह तक जाने पर मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि ऐसी घटनाएँ घटित होने से रोकी जा सकती हैं एवं उनका परिहार किया जा सकता है, यदि उन पुस्तकों के स्थानीय पुनर्मुद्रण की ठीक समय पर अनुमति दे दी जाय।

इसके अलावा, अधिकतर विकासशील देशों में विदेशी मुद्रा विनिमय की स्थिति अत्यन्त विकट है। हमारे ही देश में केवल १०% कथा-कहानी एवं साहित्यिक कृतियों का आयात स्वीकृत है और इस बात की भी कौन-सी ग्यैरेण्टी है कि यह प्रतिशत उन पुस्तकों के लिये कायम रहेगा जिनकी लोक-प्रियता एवं प्रचलन सम्भावित हो।

इन सभी तथ्यों को सारगर्भित करते हुए मेरी धारणा है कि बर्न और युनिवर्सल कॉपीराइट कन्वेन्शनों में हुए संशोधित प्राविधान, विकासशील देशों के जन-मानस को दृष्टिगोचर करते हुए, जिन्हें इसकी विशेष आवश्यकता है, अपने आप में सर्वथा अपर्याप्त हैं। पेपर बैक की शर्तों में कुछ लचीलापन आना चाहिये और कुछ ढील देनी चाहिये और 'अन्तर्राष्ट्रीय पुस्तक वर्ष' ही इसके लिए उचित समय है, जिससे हम लोगों को यह नारा मिला है—'सबों के लिये पुस्तकें'।

उपरोक्त सुझाव विवेचना के लिये प्रस्तुत हैं ताकि किसी एक निर्णीत मत पर पहुँचा जा सके।

ओ० पी० घई की सामग्री से साभार

कॉपीराइट का कानून

वैसे ही हम कोई पुस्तक खोलते हैं, 'कॉपीराइट सुरक्षित', 'विश्वव्यापी कॉपीराइट', 'सर्वाधिकार सुरक्षित', आदि वाक्यांश हमारी दृष्टि से आ टकराते हैं। इन शब्दों के द्वारा लेखक इस आशय की चेतावनी देना चाहता है कि कोई भी व्यक्ति उसकी पुस्तक का इस प्रकार उपयोग न करे, जो उसे हानिकर सिद्ध हो। यह स्वाभाविक ही है कि कोई भी लेखक यह नहीं पसन्द करता कि कोई अन्य व्यक्ति उसकी कृति की नकल करे या उसे दुबारा प्रकाशित करे, क्योंकि इससे लेखक के संस्करण की बिक्री मारी जाती है और फलत: उसे आर्थिक रूप में घाटा सहना पड़ता है। यह स्थिति उस समय तो और भी खराब हो जाती है, जब कोई स्वयं ही किसी दूसरे लेखक की पुस्तक अपने नाम से निकलवा देता है। तब तो लेखक को न केवल पुस्तक के मूल्य की हानि सहनी पड़ती है, वरन् उससे उस पुस्तक के लेखक होने का गौरव भी छिन जाता है। लेखक को ऐसी ही हानि उस स्थिति में भी सहनी पड़ती है, जब कोई उसकी पुस्तक की प्रमुख विशेषताओं का चालाकी से उपयोग करके उससे बिलकुल मिलती-जुलती दूसरी पुस्तक तैयार कर देता है। कॉपीराइट का कानून ही लेखक की इस प्रकार की हानियों से रक्षा करता है और उसे इस बात का आश्वासन देता है कि केवल वही अपने बौद्धिक श्रम के विविध पुरस्कारों का उपयोग कर सकेगा। कानून लेखक को प्रत्येक साहित्यिक कृति का कॉपीराइट प्रदान करता है, चाहे वह बृहत् ग्रन्थ के रूप में हो या कोई छोटा लेख हो।

कॉपीराइट अनेक विशिष्ट अधिकारों का संग्रह है। किसी कृति के कॉपीराइट के स्वामी की हैसियत से आप उसे किसी भी रूप में निकालने या दुबारा प्रस्तुत करने अथवा उसका अनुवाद प्रकाशित करने के एकमात्र अधिकारी हैं। यदि वह कृति व्याख्यान के रूप में है, तो उसे जनता के बीच भाषण देने का भी आपको ही अधिकार है और यदि वह कोई नाट्य-कृति है तो उसका अभिनय करने के भी आप ही एकमात्र अधिकारी हैं। आपकी कृति से ग्रामोफोन रिकार्ड या सिनेमाटोग्राफ-फिल्म तैयार करने का भी सम्पूर्ण अधिकार आपके ही हाथ में है। यदि कोई व्यक्ति बगैर आप की स्वीकृति के इन अधिकारों का उल्लंघन करता है, तो वह आपकी क्षति-पूर्ति के लिए उत्तरदायी ठहराया जा सकता है। आप उस पर कॉपीराइट भंग करने का अभियोग लगाकर फौजदारी अदालत में मुकदमा भी दायर कर सकते हैं। किन्तु यदि कोई व्यक्ति बगैर आपकी कृति की सहायता लिये हुए स्वतन्त्र रूप से काम करता है और संयोगवश समान निष्कर्षों पर ही पहुँचता है तो इसका यह अर्थ नहीं कि उसने आपके कॉपीराइट का उल्लंघन किया है। यह निश्चित करना कि कॉपीराइट भंग हुआ है या नहीं, इस बात पर निर्भर करता है कि क्या आपकी कृति से कुछ चुराया गया है।

एक लब्ध-प्रतिष्ठ न्यायाधीश के अनुसार कॉपीराइट इस कथन पर आधारित है कि

संस्करण छापने पर भी वे हम लोगों के लिये काफी महँगे जान पड़ते हैं। यदि हम भारत में एक सामान्य २ से ३ हजार प्रतियों के संस्करण का पुनर्मुद्रण करते हैं तो न सिर्फ विदेशी संस्करण से मूल्य ही कम रहेगा बल्कि विदेशी मुद्रा की भी बचत होगी।

विलम्ब और निषेधक मूल्यों के अलावा, चोरी अथवा नकल की भी कुछ घटनाएँ हो सकती हैं, यदि उस पुस्तक को, उस देश में जहाँ उसकी माँग है, उचित समय के अन्दर पुनर्मुद्रण की आज्ञा न दी जाय।

मैं यह स्पष्ट करना चाहूँगा कि भारत सरकार और प्रकाशक संघ की संस्थाएँ, किसी भी प्रकार की नकल अथवा चोरी की घटना को हमारे देश में गंभीरता से लेती हैं। शीघ्र पुनर्मुद्रण की स्वीकृति से अन्यायी लोगों की इस धूर्त प्रवृत्ति पर अंकुश लगाया जा सकता है। विगत काल में कुछ ऐसी ही नकल या चोरी की घटनाएँ अमेरिका और इंग्लैण्ड की विख्यात-अप्रतिम पुस्तकों के संबंध में घटी हैं। इस समस्या के तह तक जाने पर मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि ऐसी घटनाएँ घटित होने से रोकी जा सकती हैं एवं उनका परिहार किया जा सकता है, यदि उन पुस्तकों के स्थानीय पुनर्मुद्रण की ठीक समय पर अनुमति दे दी जाय।

इसके अलावा, अधिकतर विकासशील देशों में विदेशी मुद्रा विनिमय की स्थिति अत्यन्त विकट है। हमारे ही देश में केवल १०% कथा-कहानी एवं साहित्यिक कृतियों का आयात स्वीकृत है और इस बात की भी कौन-सी ग्यैरेण्टी है कि यह प्रतिशत उन पुस्तकों के लिये कायम रहेगा जिनकी लोक-प्रियता एवं प्रचलन सम्भावित हो।

इन सभी तथ्यों को सारगर्भित करते हुए मेरी धारणा है कि बर्न और युनिवर्सल कॉपीराइट कन्वेन्शनों में हुए संशोधित प्राविधान, विकासशील देशों के जन-मानस को दृष्टिगोचर करते हुए, जिन्हें इसकी विशेष आवश्यकता है, अपने आप में सर्वथा अपर्याप्त हैं। पेपर बैंक की शर्तों में कुछ लचीलापन आना चाहिये और कुछ ढील देनी चाहिये और 'अन्तर्राष्ट्रीय पुस्तक वर्ष' ही इसके लिए उचित समय है, जिससे हम लोगों को यह नारा मिला है—'सबों के लिये पुस्तकें'।

उपरोक्त सुझाव विवेचना के लिये प्रस्तुत हैं ताकि किसी एक निर्णीत मत पर पहुँचा जा सके।

ओ० पी० घई की सामग्री से साभार

कॉपीराइट का कानून

वैसे ही हम कोई पुस्तक खोलते हैं, 'कॉपीराइट सुरक्षित', 'विश्वव्यापी कॉपीराइट', 'सर्वाधिकार सुरक्षित', आदि वाक्यांश हमारी दृष्टि से आ टकराते हैं। इन शब्दों के द्वारा लेखक इस आशय की चेतावनी देना चाहता है कि कोई भी व्यक्ति उसकी पुस्तक का इस प्रकार उपयोग न करे, जो उसे हानिकर सिद्ध हो। यह स्वाभाविक ही है कि कोई भी लेखक यह नहीं पसन्द करता कि कोई अन्य व्यक्ति उसकी कृति की नकल करे या उसे दुबारा प्रकाशित करे, क्योंकि इससे लेखक के संस्करण की बिक्री मारी जाती है और फलत: उसे आर्थिक रूप में घाटा सहना पड़ता है। यह स्थिति उस समय तो और भी खराब हो जाती है, जब कोई स्वयं ही किसी दूसरे लेखक की पुस्तक अपने नाम से निकलवा देता है। तब तो लेखक को न केवल पुस्तक के मूल्य की हानि सहनी पड़ती है, वरन् उससे उस पुस्तक के लेखक होने का गौरव भी छिन जाता है। लेखक को ऐसी ही हानि उस स्थिति में भी सहनी पड़ती है, जब कोई उसकी पुस्तक की प्रमुख विशेषताओं का चालाकी से उपयोग करके उससे बिलकुल मिलती-जुलती दूसरी पुस्तक तैयार कर देता है। कॉपीराइट का कानून ही लेखक की इस प्रकार की हानियों से रक्षा करता है और उसे इस बात का आश्वासन देता है कि केवल वही अपने बौद्धिक श्रम के विविध पुरस्कारों का उपयोग कर सकेगा। कानून लेखक को प्रत्येक साहित्यिक कृति का कॉपीराइट प्रदान करता है, चाहे वह बृहत् ग्रन्थ के रूप में हो या कोई छोटा लेख हो।

कॉपीराइट अनेक विशिष्ट अधिकारों का संग्रह है। किसी कृति के कॉपीराइट के स्वामी की हैसियत से आप उसे किसी भी रूप में निकालने या दुबारा प्रस्तुत करने अथवा उसका अनुवाद प्रकाशित करने के एकमात्र अधिकारी हैं। यदि वह कृति व्याख्यान के रूप में है, तो उसे जनता के बीच भाषण देने का भी आपको ही अधिकार है और यदि वह कोई नाट्य-कृति है तो उसका अभिनय करने के भी आप ही एकमात्र अधिकारी हैं। आपकी कृति से ग्रामोफोन रिकार्ड या सिनेमाटोग्राफ-फिल्म तैयार करने का भी सम्पूर्ण अधिकार आपके ही हाथ में है। यदि कोई व्यक्ति बगैर आप की स्वीकृति के इन अधिकारों का उल्लंघन करता है, तो वह आपकी क्षति-पूर्ति के लिए उत्तरदायी ठहराया जा सकता है। आप उस पर कॉपीराइट भंग करने का अभियोग लगाकर फौजदारी अदालत में मुकदमा भी दायर कर सकते हैं। किन्तु यदि कोई व्यक्ति बगैर आपकी कृति की सहायता लिये हुए स्वतन्त्र रूप से काम करता है और संयोगवश समान निष्कर्षों पर ही पहुँचता है तो इसका यह अर्थ नहीं कि उसने आपके कॉपीराइट का उल्लंघन किया है। यह निश्चित करना कि कॉपीराइट भंग हुआ है या नहीं, इस बात पर निर्भर करता है कि क्या आपकी कृति से कुछ चुराया गया है।

एक लब्ध-प्रतिष्ठ न्यायाधीश के अनुसार कॉपीराइट इस कथन पर आधारित है कि

'हमें चोरी नहीं करनी चाहिए।' इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि आप अपनी जिस कृति का कॉपीराइट प्राप्त करना चाहते हैं वह दूसरे लेखकों की कृतियों से चुराई हुई नहीं होनी चाहिए। उसे मौलिक होना नितान्त आवश्यक है, किन्तु 'मौलिक' से यह तात्पर्य नहीं है कि वह विचारों और तथ्यों में भी मौलिक हो। इसका केवल इतना अर्थ है कि उस कृति के स्वरूप, उसकी अभिव्यक्ति और उसे प्रस्तुत करने की प्रणाली में मौलिकता हो। क्योंकि कॉपीराइट द्वारा विचारों की अभिव्यंजना-प्रणाली को संरक्षण प्रदान किया जाता है, न कि स्वयं विचारों को, अतएव आप किसी भी कृति से नया विचार उधार लेकर उसे पुन: अपनी शैली में व्यक्त कर सकते हैं। वैसे तो लेखक विचारों की चोरी की निन्दा करते हैं, किन्तु कॉपीराइट का नियम इस पर ध्यान नहीं देता। विचारों का संरक्षण विशिष्ट विधान के अन्तर्गत आता है।

साहित्यिक और कलात्मक कृतियों का संरक्षण

जिस समय आप कोई कृति प्रस्तुत अथवा प्रकाशित करते हैं, उसी समय आपको उसका कॉपीराइट प्राप्त हो जाता है। संयुक्त-राज्य अमरीका जैसे कुछ देशों में कॉपीराइट प्राप्त करने के पूर्व कुछ औपचारिकता का पालन करना पड़ता है। उदाहरण के लिए कॉपीराइट कार्यालय में कृति की कुछ निश्चित प्रतियाँ जमा करनी पड़ती हैं और उसके उपरान्त उसे दर्ज कराने, फीस अदा करने और कॉपीराइट का नोटिस निकलवाने की भी आवश्यकता पड़ती है। किन्तु भारतीय कानून में ऐसी कोई भी औपचारिकता निर्धारित नहीं है। कॉपीराइट के सन्दर्भ में साहित्यिक कृति का अत्यन्त व्यापक अर्थ लिया जाता है और उसके अन्तर्गत ऐसी चीजें भी आ जाती हैं जिनका वस्तुत: साहित्यिक महत्व भी नहीं है। यहाँ तक कि नक्शे, चार्ट्स, तालिकाएँ, टेलीफोन निर्देशिका, रेलवे टाइम टेबुल, रेडियो का कार्यक्रम, व्यापारियों की सूचियाँ, प्रेस के तार और परीक्षा के प्रश्न-पत्र भी कॉपीराइट के अन्तर्गत आ जाते हैं, किन्तु विज्ञापन के नारे, घुड़दौड़ के कार्ड, और सामान्य स्रोत से प्राप्त इसी प्रकार की वस्तुओं को कॉपीराइट का संरक्षण नहीं प्राप्त होता। कॉपीराइट की मोटी पहचान यह है कि क्या कृति को प्रस्तुत करने में लेखक को ऐसा परिश्रम करना पड़ा है, जिसमें उसने अपनी कुशलता और निर्णयात्मक प्रतिभा का उपयोग किया है। कृति को लिखित रूप में होना तो अनिवार्य ही है। मौखिक कृतियाँ कॉपीराइट की माँग नहीं कर सकतीं। अतएव तात्कालिक व्याख्यान, भाषण और उपदेशों को कॉपीराइट का संरक्षण नहीं प्राप्त होता, चाहे उनका जितना अधिक साहित्यिक मूल्य हो।

यद्यपि सबसे पहले साहित्यिक कृतियों को ही कॉपीराइट का संरक्षण प्रदान किया गया था, किन्तु धीरे-धीरे कॉपीराइट के क्षेत्र के अन्तर्गत अन्य प्रकार की कृतियाँ भी आती गईं और आज की स्थिति तो यह है कि उसके द्वारा अनेक प्रकार के विषयों को संरक्षण दिया जाता है, जिनमें कलात्मक, संगीतात्मक और नाटकीय कृतियाँ भी सम्मिलित हैं। इस प्रकार कॉपीराइट का क्षेत्र भी विस्तृत हो गया है। कॉपीराइट कृतियों को अधिक संख्या में तैयार करने पर रोक ही नहीं लगाता, वरन् उनका सार्वजनिक प्रदर्शन करने पर भी प्रतिबन्ध स्थापित करता है। जहाँ तक नाटकीय और संगीतात्मक कृतियों का सम्बन्ध है उनके प्रस्तुत या अधिनियम करने का अधिकार ही व्यावहारिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण

है, और वस्तुत: आवश्यकता भी यही होती है कि नाटकीय क्रियाओं और संगीतात्मक रागों को संरक्षण प्रदान किया जाय।

यद्यपि नृत्य और मूक-अभिनय को साहित्यिक कृतियों की संज्ञा नहीं दी जा सकती, किन्तु वे भी कॉपीराइट के अन्तर्गत आते हैं। इसके अतिरिक्त चित्रकारी, मूर्तिकला, नक्काशी, फोटोग्राफी और स्थापत्य कलाओं की कृतियों को भी संरक्षण प्रदान किया जाता है। इनकी प्रतिलिपि तैयार करने के लिए रचयिता से स्वीकृति लेनी आवश्यक होती है, यहाँ तक कि बगैर स्वीकृति के इन्हें विभिन्न माध्यमों में प्रस्तुत करना भी इन कृतियों के कॉपीराइट का उल्लंघन करना होगा। उदाहरण के लिए स्थापत्य कृतियों को या नक्काशी के काम को चित्रकारी या फोटोग्राफी में प्रस्तुत करने की आज्ञा नहीं है। इसी प्रकार फोटोग्राफी या चित्रकारी को स्थापत्य या नक्काशी की कृतियों के रूप में भी नहीं पेश किया जा सकता। यद्यपि कॉपीराइट के कानून का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है, किन्तु आधुनिक टेक्निकल प्रगति और विशेष रूप से ब्राडकास्टिंग, टेलीविजन, माइक्रो-फिल्म प्रोसेसेज् और फोटो-लिथोग्राफी ने नई स्थितियाँ पैदा कर दी हैं। खेलों को एक ही समय में सफलतापूर्वक टेलीविजन से प्रदर्शित करने या रेडियो से उन पर चलतू समीक्षा प्रसारित करने की सम्भावनाओं ने भी नई समस्याएँ उत्पन्न कर दी हैं।

सीमाएँ

यद्यपि कॉपीराइट का उद्देश्य यह होता है कि लेखक को अपनी साहित्यिक, नाटकीय, संगीतात्मक और कलात्मक कृतियों का सम्पूर्ण फल प्राप्त होने का आश्वासन दिया जा सके, किन्तु इसके साथ ही कॉपीराइट का कानून यह भी स्वीकार करता है कि यदि लेखक को कॉपीराइट के बहाने अनुसन्धान व पाण्डित्य के समस्त क्षेत्रों व मानव-ज्ञान की परिधि को सीमित करने का अधिकार प्राप्त हो जाता है, तो इससे सामाजिक आदान-प्रदान अवरुद्ध हो जायगा। यही नहीं, पूरे समाज की बौद्धिक प्रगति और भौतिक सम्पन्नता में भी बाधा पड़ेगी। अतएव सार्वजनिक हित को ध्यान में रखते हुए लेखक पर कुछ आवश्यक सीमाएँ लगाना अनिवार्य हो गया। उनमें सबसे महत्वपूर्ण सीमा यह है कि निजी अध्ययन खोज-कार्य व आलोचना के लिए किसी कृति का सम्यक् उपयोग करना अथवा दैनिक समाचार-पत्रों की समीक्षा करना कॉपीराइट के नियमों का उल्लंघन करना नहीं कहा जायगा।

अतएव सन्दर्भ, प्रामाणिक व्याख्या या मूल्यांकन के लिए किसी भी कृति से किसी भी सीमा तक अंश उतारे या उद्धृत किये जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त जब कोई मूर्त्ति अथवा स्थापत्य अथवा अन्य कलाकृति सार्वजनिक स्थान पर स्थायी रूप से स्थित होती है, तो उसे दुबारा तैयार करने, चित्र बनाने अथवा नक्काशी करने में किसी को कोई आपत्ति नहीं होती। किसी भी स्थापत्य कलाकृति का चित्र बनाने, नक्काशी करने या फोटो लेने की भी पूरी स्वतंत्रता है। किसी पुस्तक से समुचित अंश सार्वजनिक रूप से पढ़े या गाए जा सकते हैं। विभिन्न लेखकों की कृतियों से उपयुक्त अंश संकलित करके—इस सम्बन्ध में कुछ सीमाएँ निर्धारित हैं—स्कूलों के उपयोग के लिए उन्हें पुस्तक रूप में प्रकाशित किया जा सकता है। यदि कोई समाचार-पत्र किसी राजनीति विषयक सार्वजनिक

भाषण की रिपोर्ट प्रकाशित करता है, तो इसका यह अर्थ नहीं कि वह कॉपीराइट का उल्लंघन कर रहा है। समाचार पत्रों को किसी भी सार्वजनिक भाषण की रिपोर्ट प्रकाशित करने का अधिकार है, पर शर्त यह है कि भाषण देते समय लिखी या छपी हुई सूचना के द्वारा उसके प्रकाशन पर विशेष रूप से रोक न लगा दी जाय। किसी भी पुस्तक का सारांश या रूप-रेखा भी प्रकाशित की जा सकती है, किन्तु शर्त यह है कि ऐसा करने में उसके उद्धरण-मात्र ही नकल कर दिये जायँ।

किसी कृति को निजी या घरेलू स्थानों पर दुबारा प्रस्तुत करने की मनाही नहीं है, यहाँ तक कि आप उसे देखने के लिए अपने कुछ मित्रों को भी आमन्त्रित कर सकते हैं। यदि आपने किसी कृति को अधिकांश रूप में उद्धृत नहीं किया है तो उस स्थिति में आप कानून का उल्लंघन नहीं करते। इसमें सन्देह नहीं कि यह 'अधिकांश' निर्णय पर आधारित है और प्रत्येक स्थिति में पृथक्-पृथक् होता है। यदि कृति का महत्वपूर्ण अंश केवल थोड़े-से प्रयुक्त उद्धरणों में ही सन्निहित है, तो सम्भव है कि उनका प्रयोग-मात्र भी अनुचित और अवैध करार दिया जाय। यदि कॉपीराइट का उल्लंघन भूल से हो जाय, तो वह कानून की दृष्टि में क्षम्य है।

कॉपीराइट का स्वामित्व

कॉपीराइट के स्वामित्व का प्रश्न कभी-कभी कठिनाइयाँ उत्पन्न कर देता है। सामान्य नियम तो यही है कि किसी कृति का लेखक ही उसके कॉपीराइट का अधिकारी होता है, फिर भी कुछ परिस्थितियों में वह लेखक को नहीं प्राप्त होता। उदाहरण के लिए यदि कोई फोटोग्राफर या चित्रकार आपका फोटो या चित्र तैयार करे, तो उनका कॉपीराइट आपका है न कि फोटोग्राफर या चित्रकार का; हाँ, शर्त यह है कि आपने उसके लिए उचित कीमत अदा की हो। यदि आपकी इच्छा के विरुद्ध या आपकी स्वीकृति के बगैर वे आपका फोटो या चित्र का सार्वजनिक रूप से प्रदर्शन करते हैं, तो आपको उनके खिलाफ कार्यवाही करने का अधिकार है। यह नियम सभी कलात्मक कृतियों के सम्बन्ध में लागू होता है।

यदि आप किसी के यहाँ नौकरी कर रहे हैं और उसी दरम्यान में कोई कृति प्रस्तुत करते हैं, तो उस कृति का कॉपीराइट आपका न होकर आपके मालिक का होगा। दैनिक समाचार-पत्रों या साप्ताहिक, पाक्षिक व मासिक पत्रिकाओं जैसी संग्रहात्मक कृतियों—जिनकी सामग्री विशिष्ट कृतियों से संकलित की जाती है—का दोहरा कॉपीराइट होता है। एक कॉपीराइट सम्पूर्ण कृति का एक संग्रह के रूप में होता है और जो उसके सम्पादक को प्राप्त रहता है; दूसरा कृति में संग्रहीत प्रत्येक रचना से लेखक का अपना व्यक्तिगत होता है। हाँ, यदि कोई लेखक उन समाचार-पत्रों या पत्रिकाओं के मालिक या प्रकाशक से कॉन्ट्रैक्ट कर लेता है, तो उसकी रचना का कॉपीराइट लेखक का न रहकर मालिक या प्रकाशक का हो जाता है। ऐसी स्थिति में लेखक को यदि कोई अधिकार रहता है, तो केवल इतना कि वह अपनी रचना को उस पत्र-विशेष के अतिरिक्त अन्य पत्रों में छपने पर प्रतिबन्ध लगाए। जो कृतियाँ सरकार स्वयं तैयार कराती है या अपने निर्देशन व नियन्त्रण में प्रकाशित कराती है, उनका कॉपीराइट सरकार को ही प्राप्त होता

है। वहाँ यह प्रश्न उठाना बिलकुल व्यर्थ है कि लेखक कॉन्ट्रैक्ट के अन्तर्गत सरकारी नौकरी में था।

कॉपीराइट की अवधि क्या होनी चाहिए, किसी समय यह एक विवाद का विषय था। कुछ लोगों की राय थी कि कॉपीराइट भी सम्पत्ति-सम्बन्धी अधिकार के समान ही स्थायी होना चाहिए, जबकि दूसरे लोग उसे केवल अल्पकाल के लिए रखने के समर्थक थे। अब यद्यपि यह सिद्धान्त स्वीकार कर लिया गया है कि कॉपीराइट का अधिकारी काफी लम्बे अरसे तक संरक्षण का उपभोग करेगा, किन्तु फिर भी उसकी अवधि के सम्बन्ध में दो विभिन्न रीतियाँ प्रचलित हैं। अमरीकी पद्धति के अनुसार कॉपीराइट का अस्तित्व एक निश्चित समय के लिए रहता है, जबकि यूरोपीय प्रणाली के अन्तर्गत वह लेखक के जीवन-काल और उसकी मृत्यु के ५० वर्ष उपरान्त तक बना रहता है। हमारे यहाँ भी यही पद्धति प्रचलित है। उक्त यूरोपीय पद्धति इस सिद्धान्त पर स्पष्ट रूप से आधारित है कि लेखक मृत्यु पर्यन्त कॉपीराइट का उपभोग करे, किन्तु यदि दैवयोग से कृति प्रकाशित होते ही उसकी मृत्यु हो जाय, तो उस स्थिति में कॉपीराइट कुछ और समय तक बना रहना चाहिए। हाँ, कुछ विशेष परिस्थितियों में उसके लिए अल्पकालीन अवधि भी निर्धारित की गई है। उदाहरण के लिए सरकारी प्रकाशन, यान्त्रिक-विधियों और फोटोग्राफ्स को केवल ५० वर्ष के लिए संरक्षण प्रदान किया जाता है।

कॉपीराइट के उल्लंघन को ज्ञात करने की कठिनाइयाँ

कॉपीराइट का उल्लंघन हुआ है, यह पता लगाना प्रायः कठिन होता है; किन्तु कभी-कभी अपराधी पर जुर्म साबित करना तो और भी कठिन होता है। उदाहरण के लिए नाटकीय या संगीतात्मक कृतियाँ ऐसी ही कठिनाइयाँ उत्पन्न करती हैं। यदि उन्हें देश के एक कोने में प्रस्तुत किया जाता है, तो दूसरे कोने में रहनेवाले कॉपीराइट के मालिक को उसकी खबर भी नहीं लगती और यदि खबर मिल भी जाय, तो उसके लिए अपना अधिकार सिद्ध करना आसान काम नहीं होता। सामूहिक संस्थाओं के द्वारा यह समस्या कुछ हद तक हल की जा रही है, जिनका एकमात्र कर्तव्य यह है कि वे अपने सदस्यों और संरक्षकों के अधिकारों को चालू रखें और जब उनकी कृतियों का सार्वजनिक प्रदर्शन किया जाय, तो उनका शुल्क और रायल्टी जमा करें। फिर भी इस बात की आवश्यकता है कि कोई ऐसी विधि निकाली जाय, जिससे कॉपीराइट का उल्लंघन करनेवाले के विरुद्ध अविलम्ब रूप में संक्षिप्त कार्यवाही की जा सके।

यदि कॉपीराइट का संरक्षण देश की सीमाओं तक ही सीमित है, तो उससे उद्देश्य की पूर्ति नहीं होती, क्योंकि सम्भव है कि विदेश में आपकी कृति से कोई कुछ चुरा ले, तो आपको उन सुविधाओं से वंचित होना पड़ेगा, जो हमारे देश के कानून द्वारा उपलब्ध होती हैं। अतएव विभिन्न देशों में पारस्परिक सन्धि और समझौतों के द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय कॉपीराइट सम्बन्ध स्थापित किये जाते हैं, जिसके फलस्वरूप एक राष्ट्र दूसरे सदस्य राष्ट्रों के कॉपीराइट को सम्मान की दृष्टि से देखता है। सबसे प्राचीन बहुमुखी समझौता बर्न कन्वेंशन था, जिस पर लगभग ६० वर्ष पूर्व हस्ताक्षर किये गए थे। इसे लगभग ४० देशों ने स्वीकार कर लिया है। हाँ, अमरीका के अनेक राज्य इस कन्वेंशन से बाहर ही रहे,

क्योंकि उनकी कॉपीराइट पद्धति अनेक बातों में दूसरे देशों से भिन्न है। किन्तु उन्होंने दूसरी पद्धति अपना ली है। जब तक दोनों प्रणालियों में समन्वय नहीं हो जाता, अन्तर्राष्ट्रीय कॉपीराइट की स्थिति सन्तोषजनक नहीं होगी। यह अत्यन्त सन्तोष का विषय है कि हाल में एक अन्तर्राष्ट्रीय कॉपीराइट समझौता हुआ है, जो दोनों वर्गों के बीच की खाई को कम करने में प्रयत्नशील है।

किसी अन्य प्रकार की सम्पत्ति के समान ही कॉपीराइट भी परिवर्तनशील और पैतृक है। वह विभाजित भी हो सकता है और उसका स्वामी उसे सम्पूर्ण या आंशिक रूप में किसी दूसरे को सौंप सकता है। कॉपीराइट के स्वामी की मृत्यु हो जाने के उपरान्त उसका वास्तविक उत्तराधिकारी उक्त अधिकार प्राप्त करता है। कॉपीराइट के कानून की यह एक बड़ी कमजोरी है और इसीलिए कभी-कभी यह कहा जाता है कि इससे एकाधिकार का उदय होता है और सहज रूप से ज्ञान-प्रसार होने में भी बाधा पड़ती है। किन्तु यह धारणा गलत है कि कॉपीराइट से ज्ञान का एकाधिकार स्थापित होता है, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति को पूर्ण स्वतंत्रता रहती है कि वह किसी कृति में सन्निहित सूचनाओं का अधिकतम उपयोग करे। कॉपीराइट हमारे बौद्धिक व्यक्तित्व को संरक्षण प्रदान करता है। यदि हाथ या यन्त्रों से तैयार की गई भौतिक वस्तुएँ संरक्षणीय हैं, तो क्या यह न्यायसंगत है कि आपके बौद्धिक श्रम के प्रतिफल—'किसी महती आत्मा का अमूल्य जीवन-तत्व'—को वैसा ही संरक्षण प्रदान न किया जाय? यदि कॉपीराइट हटा लिया जाय, तो कृतियों की नकलबाजी और चोरी का बोलबाला हो जायगा और मौलिक लेखकों का प्रेरणा-स्रोत सूख जाने की आशंका उत्पन्न हो जायगी। इसका फल यह होगा कि कला और साहित्य की समृद्धि असम्भव हो जायगी, क्योंकि ऐसे बिरले ही निस्वार्थी हैं, 'जो प्रशंसा अथवा धन के मोह को छोड़कर किसी महान् कार्य को सम्पादित करने में तत्पर रहते हैं।'

बी० एन० लोकुर की सामग्री से साभार

सरोकार

- ✍ हिन्दी प्रकाशन की समस्याएँ
- ✍ भारत में पुस्तक-मुद्रण
- ✍ पुस्तक प्रसार आन्दोलन एवं जनसम्पर्क
- ✍ पुस्तकों की बढ़ती कीमतें और घटते पाठक
- ✍ भारतीय भाषायी संदर्भ में हिन्दी पुस्तकों का प्रसार
- ✍ पाठ्य-पुस्तकों का राष्ट्रीयकरण क्यों?
- ✍ पुस्तक विकास के भावी पाँच वर्ष
- ✍ आजादी की लड़ाई में प्रकाशकों का योगदान
- ✍ हिन्द पॉकेट बुक्स

*

हिन्दी प्रकाशन की समस्याएँ

हिन्दी प्रकाशन का आरम्भ २०० वर्ष पूर्व हुआ, किन्तु हिन्दी प्रकाशन ने आन्दोलन का रूप महज ५० वर्ष पहले ही लिया है। अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ आगामी वर्ष अपनी रजत जयन्ती मनाएगा। स्मरणीय है कि संघ हिन्दी के सभी वर्गों की प्रतिनिधि संस्था है, चाहे वह प्रकाशन गृह, निजी क्षेत्र, सरकारी क्षेत्र या सार्वजनिक क्षेत्र में हो।

हिन्दी देश की सम्पर्क भाषा है। स्वतन्त्रता पूर्व जहाँ हिन्दी के प्रकाशक मिशनरी भाव से कार्य करते थे, वहीं स्वातन्त्रोत्तर काल में हिन्दी प्रकाशन ने देश के एक प्रमुख व्यवसाय का रूप ग्रहण कर लिया। शिक्षा के क्षेत्र में लगभग तीन लाख से ऊपर हिन्दी के विद्यालय खुले और करोड़ों की संख्या में छात्र और पाठक पैदा हुए, परन्तु हिन्दी प्रकाशन पाठ्य-पुस्तकों को छोड़कर अन्य क्षेत्रों में व्यावसायिक रूप में पनप नहीं सका। फलत: जो समस्याएँ हमारे समक्ष हैं, उनके समाधान के लिए हम सचेष्ट हैं।

हिन्दी के प्रकाशकों को यह विदित है कि हिन्दी के राष्ट्रभाषा और सम्पर्क भाषा होने के कारण उनकी व्यवसाय से परे सामाजिक भूमिका भी है। यदि हिन्दी के प्रकाशकों ने अपनी भूमिका को उचित रीति से निभाया तो शिक्षा के प्रसार में उनका बहुत बड़ा योग होगा।

यदा-कदा प्रकाशकों, पाठकों और लेखकों से हिन्दी प्रकाशन के सम्बन्ध में बहुत-सी बातें सुनने को मिलती हैं। जहाँ तक अच्छे लेखन और विविध विषयों के हिन्दी में प्रकाशन का प्रश्न है, निश्चय ही कहा जा सकता है कि इस दिशा में पूर्वापेक्षा प्रगति हो रही है।

पाठकों की आम शिकायत है कि हिन्दी की पुस्तकें बहुत महँगी हैं। कम आमदनी वाले जनमानस के लिए हिन्दी का अच्छा साहित्य अपनी महँगाई के कारण क्रयसाध्य नहीं है। बंगला भाषा की पुस्तकों के दाम हिन्दी पुस्तकों की अपेक्षा बहुत ही कम हैं। विचारणीय है कि ऐसा क्यों है? पाठक हिन्दी पुस्तकों की बाइन्डिंग, छपाई और कागज की भी शिकायत करते हैं। देश में हिन्दी की दस दुकानें भी ऐसी नहीं हैं, जहाँ हिन्दी में प्रकाशित सभी पुस्तकें मिल जाएँ। पाठकों का यह भी उलहना है कि पुस्तक-विक्रेता और प्रकाशक पुस्तकों के सम्बन्ध में समुचित सूचनाएँ उपयुक्त समय पर नहीं दे पाते।

हिन्दी के प्रकाशक अधिक मूल्य रखने का कारण पुस्तकों की बिक्री की कमी बताते हैं। इसके अलावा वे अपनी पुस्तकों का मूल्य अंग्रेजी पुस्तकों की तुलना में कम बताते हैं। क्या यह कहना हमारे व्यापक हित में है? पुस्तकालय आन्दोलन की कमी,

पुस्तकालयों द्वारा पुस्तकों की खरीद में भ्रष्टाचार तथा अच्छी पुस्तकों का न खरीदा जाना दूसरी बाधा बताई जाती है। यह भी कहा जाता है कि जो पुस्तकें खरीदी भी जाती हैं उनमें शिक्षा विभाग के आदेश के कारण सरकारी और अर्द्धसरकारी प्रकाशन गृहों के प्रकाशन थोप दिए जाते हैं। दोषयुक्त सरकारी खरीद पर ही आज हिन्दी प्रकाशन पूरी तरह आश्रित हो गया है। यह स्थिति बहुत ही भयावह है।

पॉकेट बुक्स का प्रकाशन, बुक क्लबों का प्रारम्भ तथा हिन्दी-पत्र-पत्रिकाओं का अच्छी संख्या में बिकना इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि हिन्दी में पाठक हैं। हमें सरकारी अनुदान पर आश्रित रहने के चक्रव्यूह को भेदना होगा और सत्साहित्य पाठकों तक कैसे पहुँचें, इसकी व्यवस्था करनी होगी।

इस दिशा में सामूहिक रूप से सहकारिता के आधार पर काम करने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन क्यों नहीं दिया गया? क्या हमने कभी सोचा कि जहाँ ८० प्रतिशत ग्रामीण जनता है, वहाँ हम किस तरह का साहित्य कम मूल्य में प्रकाशित करें और उन तक पहुँचायें?

प्रचार माध्यमों में पुस्तक सूचियों का प्रकाशन, समाचार पत्रों में पुस्तकों की समालोचना, विज्ञापन और नेशनल बुक ट्रस्ट तथा प्रकाशक संघों द्वारा प्रदर्शनियों का आयोजन प्रमुख है।

स्मरणीय है कि नेशनल बुक ट्रस्ट की स्थापना हिन्दी तथा भारतीय भाषाओं की समृद्धि को दृष्टिगत रखकर हुई थी। प्रारम्भ में ट्रस्ट अपना लक्ष्य ठीक न रखते हुए अपने रास्ते से भटकता प्रतीत हुआ। भारतीय भाषाओं को प्रोत्साहित करने के बजाय नेशनल बुक ट्रस्ट, इंगलिश बुक ट्रस्ट बन गया। विश्व पुस्तक मेले तथा राष्ट्रीय पुस्तक मेले में हिन्दी तथा भारतीय भाषाओं के प्रकाशनों को प्रोत्साहित करने के स्थान पर अंग्रेजी को बढ़ावा दिया जाता रहा, उसके परिपत्र केवल अंग्रेजी में ही प्रचारित होते रहे हैं। हिन्दी का तो प्रयोग वहाँ नहीं के बराबर है। छोटा-सा इजरायल, जहाँ ५१ देशों के लोग आकर बसे हैं, अल्प काल में ही हिब्रू को अपनी राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार कर चुका है और हिब्रू में प्रकाशित साहित्य को ही वहाँ प्रोत्साहित किया जा रहा है। नेशनल बुक ट्रस्ट का अंग्रेजी से यह मोह कहाँ तक उचित है? इसका यह अर्थ नहीं कि हम अंग्रेजी का विरोध करते हैं। सम्पर्क भाषा हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं को यथोचित स्थान दिलाना चाहते हैं। ट्रस्ट अपने प्रकाशनों को भी सरकारी खरीद में अत्यधिक कमीशन पर प्रकाशकों की स्पर्धा में बेचता है। ट्रस्ट अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ के साथ सौतेले भाई जैसा व्यवहार करता रहा है। ट्रस्ट के अंग्रेजी परस्त अधिकारी अपनी भाषा नीति में ही उलझे रहते हैं। अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ द्वारा जो आयोजन हिन्दी में किए जाते हैं, दिखावे के रूप में वे उन्हें प्रोत्साहित तो करते हैं, परन्तु उनका असली स्वरूप उनके व्यवहार से स्पष्ट है। यदि ट्रस्ट का करोड़ों रुपये का बजट अंग्रेजी के प्रचार के लिए निर्धारित है, तो नेशनल बुक ट्रस्ट के नाम पर चलनेवाले इस इंगलिश बुक ट्रस्ट को बन्द

कर देना चाहिए। निहार रंजन रे कमेटी ने ट्रस्ट की पद्धति पर जो रिपोर्ट दी है वह पुरानी हो चुकी है। सारे प्रश्नों की पुन: समीक्षा होनी चाहिए।

कागज एक प्रमुख समस्या है। इसके मूल्य के माध्यम से पुस्तकों की कीमत कम हो सकती है। दिल्ली, प० बंगाल और बिहार सरकारें उन्मुक्त रूप से पाठ्य-पुस्तकों के अतिरिक्त साहित्यिक तथा धार्मिक प्रकाशनों के लिए सस्ते मूल्य पर कागज दे रही हैं। दुर्भाग्यवश हिन्दी का गढ़ होते हुए भी उत्तरप्रदेश की सरकार इस दिशा में उदासीन है। एक ही देश के विभिन्न राज्यों में कागज के वितरण को लेकर भिन्न तरह का आचरण उचित नहीं प्रतीत होता। केन्द्र सरकार को सत्साहित्य के लिए कम मूल्य के कागज का भण्डार उसी तरह से खोल देना चाहिए, जिस तरह पाठ्य-पुस्तकों के लिए है। इससे सत्साहित्य कम मूल्य में सुलभ होगा और पठनरुचि का विकास भी सम्भव हो सकता है।

पुस्तक व्यवसाय दो भागों में विभक्त है। इनमें ९० प्रतिशत पाठ्य-पुस्तकें तथा १० प्रतिशत धार्मिक एवं साहित्यिक पुस्तकें हैं। पाठ्य-पुस्तकों का सरकार द्वारा राष्ट्रीयकरण किया जा रहा है। पहले कहा गया कि सिर्फ प्राइमरी पुस्तकों का राष्ट्रीयकरण होगा। बाद में कई राज्य सरकारों ने हाई स्कूल और इण्टर तक की पुस्तकें राष्ट्रीयकृत कर दीं। देश में ही पश्चिम बंगाल सरकार ने केवल प्राइमरी कक्षा की पुस्तकों का राष्ट्रीयकरण किया है। बाकी सभी पुस्तकें प्रकाशकों के लिए छोड़ दी गयीं। इसके विपरीत उत्तरप्रदेश की सरकार सभी प्रकार की पुस्तकों का राष्ट्रीयकरण करने पर तुली रही। पाठ्य-पुस्तकों को कौन कहे, सहायक पुस्तकें भी सरकार छाप रही है। यह उचित नहीं है? देश में तीस हजार मुद्रण गृह, ५ हजार प्रकाशन संस्थाएँ और ५० हजार पुस्तक-विक्रेता पुस्तक व्यवसाय पर आधारित हैं। अनेक लेखक पाठ्य-पुस्तकों की बदौलत अपनी जीविका चलाते हैं। इसके अलावा डिजाइनर, प्रूफरीडर, सम्पादक आदि का वर्ग भी है। इस तरह कम से कम देश के २५ लाख लोग पुस्तक व्यवसाय में लगे हुए हैं। क्या राष्ट्रीयकरण से इन वर्गों के लोगों की बेकारी नहीं बढ़ाई गई? क्या राष्ट्रीयकरण के भीतर केवल राजनीति है अथवा समस्या को ठीक ढंग से न समझ पाने की सरकारी अक्षमता? क्या इससे उन्मुक्त तथा स्वतंत्र लेखन में बाधा नहीं पहुँची? अमेरिका, जापान और ब्रिटेन में पुस्तकों का राष्ट्रीयकरण तो नहीं हुआ, लेकिन क्या वे ज्ञान के क्षेत्र में समृद्ध देश नहीं हैं? इस पर गम्भीरतापूर्वक विचार होना चाहिए और इस समस्या का समाधान अवश्य किया जाना चाहिए ताकि गलत कदम को अभी भी सुधारा जा सके। इमरजेन्सी के दौरान पाठ्य-पुस्तकों के प्रकाशकों को बहुत अधिक परेशानी का सामना करना पड़ा। भविष्य में यह नहीं होना चाहिए।

प्रकाशकों की समस्याओं के समाधान के लिये प्रकाशक संघों की भूमिका बहुत ही महत्वपूर्ण है। देश में इस समय अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ के अतिरिक्त दो और अखिल भारतीय प्रकाशक संस्थाएँ हैं। तीनों का ऐक्य प्रकाशक जगत के हित की बातें सामूहिक रूप से सोच सकता है।

देश में पश्चिम बंगाल पुस्तक-विक्रेता-संघ एक ऐसी संस्था है, जिसकी कार्य-पद्धति वस्तुतः अनुकरणीय है। इस प्रकाशक संघ के साथ-साथ पश्चिम बंगाल सरकार भी

प्रशंसा की पात्र है। कागज का वितरण, सरकारी पुस्तकों का वितरण, पाठ्य-पुस्तकों के प्रकाशन के सम्बन्ध में नीति निर्धारण आदि को बंगीय प्रकाशक संघ और प० बंगाल सरकार एक साथ बैठकर आपस में विचार-विमर्श के बाद निश्चित करते हैं। शरत् शती के अवसर पर कलकत्ता में प० बंगाल सरकार द्वारा लगाए शरत् मेले में बंगीय प्रकाशक संघ का पुस्तक मेला एक अद्भुत उदाहरण है। इस अवसर पर जैसे शरत् साहित्य की खरीददारी की होड़ लग गयी। क्या इसका अनुकरण हमारे साहित्यकार बन्धु और प्रकाशक नहीं कर सकते? क्या उ० प्र०, बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान, हरियाना, दिल्ली, हिमांचल की सरकारें अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ के सहयोग से इस पद्धति का अनुगमन नहीं कर सकतीं?

हिन्दी में विश्वविद्यालय स्तर के सभी विषयों के प्रकाशन निजी तथा सरकारी संस्थाओं के माध्यम से हुए हैं। परन्तु इनकी उचित संख्या में खपत न होना एक समस्या है। क्या हिन्दीभाषी क्षेत्र में पड़नेवाले विश्वविद्यालय अभी भी अंग्रेजी के माध्यम से पढ़ाते रहेंगे? इस विषय पर गम्भीरतापूर्वक विचार अपेक्षित है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में इस सन्दर्भ में एक गोष्ठी हुई थी, किन्तु इसमें भी किसी ठोस परिणाम पर नहीं पहुँचा जा सका।

सामान्य प्रकाशक जो छापते हैं उसी की पुनरावृत्ति सरकारी, अर्द्धसरकारी, स्वशासित प्रकाशन संस्थाओं के द्वारा देखी जाती है। कोई ऐसा सूत्र खोजना होगा जिससे प्रकाशन योजनाओं में समन्वय हो।

प्रकाशन जगत् का कार्यक्षेत्र उत्तरोत्तर बढ़ रहा है। यह अब एक उद्योग है। ऐसी स्थिति में आवश्यक है कि बुक फाइनेन्स कारपोरेशन सरकार की ओर से स्थापित किया जाय, जो प्रकाशन गृहों को आर्थिक सहयोग दिया करें।

१९९३ से ट्रस्ट की नीति में व्यापक बदलाव आया है।

भारत में पुस्तक-मुद्रण

भारत में १६वीं शताब्दी में पुर्तगाली लोगों ने छपाई का काम आरम्भ किया था। उन दिनों मुद्रण के मुख्य—केन्द्र कलकत्ता, बम्बई और मद्रास थे, जो देश के प्रेसिडेन्सी शहर कहलाते थे। इन तीनों शहरों का महत्व इसीलिए था कि ब्रिटिश शासन-सत्ता का संचालन इन्हीं जगहों से होता था। भारत में पुस्तकों के मुद्रण का इतिहास वैसे तो १६वीं-१७वीं शताब्दी से ही आरम्भ होता है, परन्तु सुगठित रूप से प्रकाशन कार्य का प्रारम्भ फोर्ट विलियम कालेज के इतिहास-लेखक टामस रोयबक की १८२४ में प्रकाशित 'भारतीय लोकोक्तियों के संकलन' को प्रारंभिक माना जाता है। हिन्दी की पहली पुस्तक 'मिसकीं की मरसिया' १८०२ ई० में छपी, परन्तु उसे पुस्तक की संज्ञा न देकर पैम्पलेट कहा जाये तो अधिक उचित होगा। १८३४ ई० में थैकर एण्ड कम्पनी ने 'दृष्टान्त वाच्य संग्रह', जिसमें बंगला और संस्कृत के मुहावरों का संकलन था, अँगरेजी अनुवाद के साथ प्रकाशित किया। जहाँ तक इसके मुद्रण का प्रश्न है, यह पुस्तक उन दिनों आविष्कृत भोंड़े टाइप में छपी थी। मुद्रण की दृष्टि से इसका इतना महत्व तो अवश्य है कि यह पुस्तक ऐसी पुस्तकों से अच्छी मानी जायेगी जो किताबें लीथो-प्रणाली से छपी होती थीं। १८०२ से १८८० ई० तक छपी पुस्तकों में एक विशेषता अवश्य थी, जिसका अभाव आज इतनी वैज्ञानिक प्रगति के बावजूद खटक रहा है—वह है पुस्तकों के शुद्ध छपने की। उन दिनों पुस्तक-मुद्रण को एक महान् कार्य समझा जाता था और इस कार्य को कोरी व्यावसायिकता न समझकर समाज-सेवा माना जाता था।

मुद्रण के आठ अंग

पुस्तक-मुद्रण में जिन पक्षों पर विशेष ध्यान अपेक्षित होता है वे हैं—१. पाण्डुलिपि, २. ले-आउट और प्रेस-कापी, ३. कम्पोजिंग, ४. प्रूफरीडिंग, ५. मुद्रण, ६. कवर तथा भीतरी चित्र, ७. जिल्दसाजी, ८. कागज। इन आठों उपकरणों के संयोजन से ही पुस्तक के मुद्रण का महत्व कूता जा सकता है। यदि १८८९ ई० में छपी 'ज्ञान तरंग' नामक पुस्तक को देखा जाय, तो स्पष्ट हो जायेगा कि ले-आउट और प्रेस-कापी नाम की तो उस समय कोई चीज ही नहीं थी। कम्पोजिंग सामान्य-सी है। जैसा कागज है वैसा ही मुद्रण है। टाइप अपने समय के अनुसार ठीक ही हैं। प्रूफरीडिंग शुद्ध है, स्याही फैली हुई है। कवर उस जमाने का जैसा होना चाहिए, वैसा ही है। अध्याय के अन्त में अलंकारिक टेलपीस के स्थान पर बार्डर बीच में है और उसके अगल-बगल में डैस का चिन्ह। पुस्तक के कवर पर बार्डर अवश्य दिया गया है। मालूम होता है कि उस समय की सर्वोत्कृष्ट सजावट यही थी।

१९०१ से १९२० तक

मुद्रण-कला के क्रमिक विकास को समझने के लिए २०वीं शताब्दी—१९०१ से १९२० तक के प्रकाशनों देखना चाहिए। इस अवधि के प्रकाशनों को देखने पर पता चलता है कि उस समय मुद्रण के कार्य में कोई विशेषता नहीं है। पहले की अपेक्षा कवरों की सजावट कुछ अच्छी है। नये-नये फेस के टाइप प्रयुक्त हुए हैं। पुस्तकों की बाइन्डिग में तरक्की हुई है। पहले की तरह पुस्तकें बिना कटी हुई प्रस्तुत नहीं की गई हैं। पुस्तकों की भीतरी सजावट में बार्डरों का प्रयोग किया गया है। कुछ चित्र भी भीतर दिये गये हैं, जिनसे मालूम होता है कि चित्रों-द्वारा विषय को पुष्ट करने की प्रवृत्ति इस समय तक चल पड़ी थी। 'मुक्तिमार्ग' नामक पुस्तक को देखने से तो पता चलता है कि सन् १९१० के बाद आर्ट पेपर और ह्वाइट प्रिन्टिंग कागज अच्छा बनने लगा था। आर्ट-पेपर पर हाफटोन ब्लाक छापने की पद्धति आरम्भ हो गई थी। कम्पोजिंग के सम्बन्ध में भी इन बीस वर्षों में काफी तरक्की देखी जा सकती है। स्पेसिंग आदि का ध्यान भी पुस्तक के मुद्रण में है। कई तरह के टाइप एक पुस्तक में सेट करना प्रमाणित करता है कि पुस्तकों के मुद्रण में कम्पोजिंग को विशेष रूप से महत्व दिया जाने लगा था। इस समय की हिन्दी में छपी हुई पुस्तकों में हिन्दुस्तानी भाषा का प्रयोग हुआ है—यानी उर्दू-हिन्दी-मिश्रित। पुस्तकों के भीतर जहाँ अध्याय खतम हुआ है वहाँ पेज खाली छोड़ दिया गया है या टेलपीस दिये गये हैं। यह इस बात को साबित करता है कि बीसवीं शती के पहले दशक में अच्छी प्रिन्टिंग की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित हो चुका था। यह दृढ़ता से कहा जा सकता है कि बीसवीं शताब्दी का आरम्भ होते ही पुस्तक-मुद्रण में काफी तरक्की हो गई थी।

१९२१ से १९४० तक

सन् १९२१ से १९४० तक छपी कुछ पुस्तकों को देखने से मालूम होता है कि इस युग में पुस्तकों के मुद्रण में मुद्रक और प्रकाशक बड़े ही उत्साह से दिलचस्पी लेने लगे थे। मुद्रण में इस प्रगति का सबसे बड़ा कारण था कि जनता में अच्छी पुस्तकों को खरीदने का भाव पैदा हो चुका था। कोई भी सजी-धजी रंग-बिरंगी पुस्तक दिखाई देती थी, तो लोग उसे पढ़ने के लिए अवश्य खरीदते थे। इन पुस्तकों को देखने से विदित होता है कि पाण्डुलिपि की तैयारी कायदे के साथ की गई थी। पाण्डुलिपि की प्रेस-कापी और ले-आउट तैयार करने की पद्धति भी चल पड़ी थी। इसका प्रमाण है विभिन्न किताबों में विभिन्न तरह के टाइपों को सेट करने की प्रवृत्ति तथा बार्डर द्वारा अध्यायों को सजाने की विधि। उदाहरण के लिए, सन् १९२२ में छपे 'सत्यनारायण नाटक' नामक पुस्तक को देख सकते हैं। आप इसके पहले पृष्ठ पर देखेंगे कि कितने तरह के टाइपों से इसे सजाया गया है। निश्चय ही किसी व्यक्ति ने इसकी प्रेस-कापी अवश्य तैयार की थी और छपाई के सम्बन्ध में प्रेस को हिदायत भी दी थी, इसीलिए इतनी सजावट दिखाई देती है। कम्पोजिंग में स्पेसिंग दुरुस्त है, सेटिंग की गड़बड़ी कहीं-कहीं खटकती है। कोष्ठक में भी

वही टाइप लगे हैं; जो पुस्तक की मूल सामग्री में हैं। होना यह चाहिए कि कोष्ठक के टाइप मूल सामग्री के टाइप से भिन्न हों। सेटिंग के लिहाज से प्रगति के इस युग में प्रत्येक पुस्तक के अध्याय के अन्त में टेलपीस देने की प्रथा चल पड़ी थी। टेलपीस देते समय यह ध्यान नहीं रखा जाता था कि विषय को देखते हुए वह टेलपीस उपयुक्त है या नहीं। 'सत्यनारायण नाटक' धार्मिक कृति है और आश्चर्य है कि अर्धनग्न परी का चित्र टेलपीस की जगह दिया गया है। इसकी आलोचना इस समय तो हम कर सकते हैं, परन्तु उस युग को देखते हुए पुस्तक के मुद्रक की हमें भूरि-भूरि प्रशंसा करनी चाहिए। कुछ पुस्तकें १९२१ ई० की भी हैं, वे भी देखी जानी चाहिए—पहली पुस्तक है गाँधी-सिद्धान्त और दूसरा मोतीलाल नेहरू। इन दिनों राष्ट्रीय आन्दोलन पूरे देश में चल रहा था। पुस्तकों का मुद्रण कभी-कभी बहुत छिपकर जल्दी-जल्दी किया जाता था। स्वाभाविक है कि जो काम जल्दी-जल्दी किया जायेगा, उसमें कुछ त्रुटियाँ रह जायेंगी। ऐसी राष्ट्रीय पुस्तकों में कम्पोजिंग एवं सेटिंग अच्छी तरह नहीं हो सकीं, प्रूफ-रीडिंग भी अच्छा नहीं हुआ। मसलन, पं० मोतीलाल नेहरू पुस्तक के ११ वें पृष्ठ पर महामति मोतीलालजी नेहरू की जगह 'महामहिम मोतीलाल' छप गया है। कागज के कारण गाँधी-सिद्धान्त और मोतीलाल नेहरू की प्रिन्टिंग ठीक नहीं हुई है। गाँधी-सिद्धान्त की जिल्दसाजी, उस जमाने को देखते हुए, उत्कृष्ट कोटि की कही जा सकती है। १९२१ से १९३० के बीच छपी पुस्तकें, जैसा कि पहले बताया गया है, काफी अच्छी हैं। १९३० में पुस्तकों के मुद्रण में बहुत तरक्की हुई। उदाहरण के लिए—'जन्तु-जगत' नामक पुस्तक की पाण्डुलिपि उत्कृष्ट कोटि की थी। ले-आउट प्रेस-कापी बहुत अच्छी तथा कम्पोजिंग एवं सेटिंग सुन्दर है। हिन्दी के साथ-साथ अँग्रेजी के शब्द भी यथास्थान हैं। फुटनोट्स आपको कायदे के साथ छपे हुए मिलेंगे। प्रूफ-रीडिंग अच्छी है। कवर के जिल्द पर नाम का सुनहला ठप्पा लगा हुआ है। भीतर हाफटोन तिरंगे चित्र दिये गये हैं। इसप्रकार कहा जा सकता है कि १९३० में भारत में पुस्तकों की मुद्रण-कला काफी आगे बढ़ गई थी। सन् १९३१ से १९४० के बीच की कुछ पुस्तकें भी हमें देखनी चाहिए। १९३० तक जो प्रगति हुयी, उसके बाद वैसी प्रगति १९३१ से १९४० के बीच नहीं दिखाई देती, अगर कोई नयी प्रगति दिखाई देती है तो वह है नये-नये फेसों के टाइपों का ईजाद होना, पुस्तकों में तिरंगे हाफटोन चित्रों को छाप कर लगाया जाना, कवरों के लिए अँग्रेजी पुस्तकों के अनुसार डिजाइन को तैयार करना। बाइन्डिंग में जुजबन्दी सिलाई का अभाव इस युग में खटकनेवाली चीज है। अच्छी-से-अच्छी छपी पुस्तकों को स्टिच सिलाई द्वारा सीना और फिर उसे कील मारकर ऐसी सिलाई करना कि किताबें फट जायें और ज्यादा दिनों तक न चलें, कहाँ तक उचित है। आर्ट-पेपर पर छपे फोटो तितर-बितर हो जाते हैं। सोचिए, ऐसी स्थिति में अच्छी छपाई का क्या महत्व है। अस्तु, हमें उस समय की पुस्तक-मुद्रण-कला को देखते हुए कहना पड़ेगा कि कुछ तरक्की ही हुई थी। १९४१ से १९४९ तक का मुद्रण-इतिहास भी ध्यान देने योग्य है। सभी क्षेत्रों में मुद्रण ने प्रगति की। मुद्रकों का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ कि विभिन्न प्रकार की पुस्तकें छापने के लिए विभिन्न प्रकार के साइजों में छापी जाँय। मसलन, बाल-साहित्य के लिए फुलस्केप ८ पेजी साइज, कोषग्रन्थ छापने के लिए रायल ८ पेजी साइज, कवर पर लाइन व हाफटोन कम्बाइन्ड डिजाइनों का प्रचलन,

शुद्ध टाइप की हुई पाण्डुलिपि तैयार करने की विधि आदि-आदि। बाकी सब चीजें तो १९३० और १९४० की तरह ही दिखाई देती हैं।

अन्धाधुन्ध कलात्मक मुद्रण

स्वतन्त्रता के बाद पुस्तक-मुद्रण ने देश में बहुत प्रगति की। भारत के सभी भाषाओं में अच्छी संख्या में प्रकाशन हो रहे हैं।

परन्तु, मंजिल अभी बहुत दूर है। देश में इने-गिने ऐसे मुद्रणालय हैं, जो अच्छा मुद्रण कर रहे हैं। पुस्तकों के मुद्रण की इस समय दो श्रेणियाँ हैं—१. मास प्रोडक्शन करनेवाली संस्थाएँ, जो अन्धाधुन्ध पुस्तकें छापती हैं और जिनके लिए क्वालिटी प्रोडक्शन का कोई सवाल ही नहीं। ऐसे लोग मुद्रण-व्यवसाय को कला नहीं समझते और पैसे के नाम पर कला को बेच देते हैं। २. दूसरा वर्ग वह है, जो मुद्रण-कला को कला समझता है व अच्छी पुस्तकें छापना अपना उद्देश्य मानता है। अच्छा काम करनेवाले आर्थिक दृष्टि से भी लाभान्वित होंगे और कला की सेवा करनेवालों में उनकी गिनती होगी। अब पुस्तक-मुद्रण के विशिष्ट अंगों पर कुछ जानकारी यहाँ प्रस्तुत की जा रही है; इनमें पाण्डुलिपियों का संयोजन, सम्पादन तथा ले-आउट के सम्बन्ध में पहले ही कहा जा चुका है। यहाँ केवल उन्हीं अंगों को लिया गया है, जो पुस्तक-मुद्रण कार्य से सीधे सम्पृक्त हैं।

कम्पोजिंग

मुद्रण के क्षेत्र में कम्पोजिंग का कार्य बड़े महत्व का है। हैन्ड कम्पोज के साथ कम्प्यूटर द्वारा भी कम्पोजिंग का कार्य हो रहा है। इसमें सन्देह नहीं कि कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, दिल्ली आदि के कुछ प्रेसों में अच्छी कम्पोजिंग करनेवाले लोग मौजूद हैं परन्तु 'प्रेस के भूत' कहे जानेवाले लोगों की संख्या भी बहुत ज्यादा है। पुस्तक कम्पोजिंग में जिन बातों का विशेष ध्यान रखना आवश्यक होता है, वे हैं—टाइप के फेस का ध्यान रखना, पेज का माप नियत करना, उचित स्थान पर उचित ढंग से टाइप का प्रयोग करना और उन्हें सुरुचिपूर्ण ढंग से सेट करना। देखेंगे कि कभी-कभी बीच में गलत प्वाइन्ट के टाइप लगा दिये जाते हैं। उदाहरण के लिए किताब में शब्द है 'एण्ड'। 'ए' एक फोन्ट का और 'ण्ड' दूसरे फोन्ट का। यह इतना भद्दा लगता है, जैसे—कढ़ी में कोयला। स्पेलिंग की भूलें भी ये भूत लोग करते हैं। कहीं स्पेसिंग कम, कहीं ज्यादा। प्रेसों में लकड़ी का लेड लगाने की प्रथा थी, इसका दुष्परिणाम यह होता है कि लाइनें टेढ़ी हो जाती हैं। यदि शीशे का लेड लगाया जाय, तो यह त्रुटि नहीं होगी। लकड़ी के लेडों के कारण आगे और पीछे के पेजों पर लाइन व लाइन रजिस्ट्रेशन नहीं होता। पहले पेज पर लाइन कहीं पड़ती है, तो दूसरे पेज पर कहीं। कम्पोजिंग के 'एडजस्टमेण्ट' की त्रुटियों के कारण मशीन-मैन को फार्म कसने में दिक्कत होती है। कभी-कभी प्रेस के भूत कम्पोजिंग में अर्थ का अनर्थ कर देते हैं। एक दूसरे फर्मे में विषय की क्रमबद्धता को अपनी लापरवाही के कारण तोड़ देते हैं। एक पेज की एक लाइन स्टिक पर रख दी,

परन्तु उसे दूसरे पेज में आगे नहीं जोड़ा। यदि होशियार प्रूफरीडर रहा तो उसने पिछले छपे हुए फार्मे से क्रम मिलाकर ठीक कर लिया तब तो ठीक, अन्यथा कम्पोजीटर ने तो किताब का सत्यानाश ही कर दिया! मुझे ज्यामिति की एक पुस्तक की कम्पोजिंग नहीं भूलती। कुछ अनपढ़ कम्पोजीटर अँग्रेजी नहीं जानते थे। ज्यामिति की पुस्तक हिन्दी में ही छप रही थी, परन्तु फीगर ए, बी, सी, अक्षर अँग्रेजी के थे। चूँकि कम्पोजीटर महोदय अँग्रेजी नहीं जानते थे, अत: प्रूफ रीडर को अँग्रेजी 'ए' अक्षर के स्थान पर हिन्दी में 'ए' लिखना पड़ा। परिणाम यह हुआ कि अँग्रेजी में 'ए' छपने के बजाय हिन्दी में 'ए०' छप गया। अनपढ़ कम्पोजिटरों को ऐसे काम नहीं देना चाहिए, जो पढ़ाई से सम्बद्ध हों।

प्रूफ-रीडिंग

प्रूफ-रीडिंग पुस्तक-मुद्रण का एक महत्वपूर्ण अंग है। हमारे देश में हर व्यक्ति प्रूफरीडर बनने के लिए तैयार है। किन्तु प्रूफरीडर ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जो लेखक से अधिक विद्वान् हो। परन्तु हम अपनी आर्थिक कठिनाइयों के कारण न तो ऐसे प्रूफरीडरों को अच्छी तनखाह दे पाते हैं और न अच्छे पढ़े-लिखे विद्वान् लोग प्रूफ-रीडरी के पेशे को अपनाने के लिए तैयार होते हैं। परिणाम यह है कि पुस्तकों में भूलें रह जाती हैं। मिसाल के तौर पर कुछ उदाहरण हैं। पुस्तक में दाम छपना चाहिए था ढाई रुपया, जबकि पहले उसका दाम था सवा रुपया। प्रेस में कापी आई। सवा रुपया पहले से ही लिखा हुआ था और प्रकाशक ने सवा न काटकर उसके नीचे ढाई रुपया लिख दिया। उचित यह था कि सवा रुपये की जगह ढाई रुपया छपे, परन्तु प्रूफ-रीडर की कृपा से किताब का दाम छप गया सवा ढाई रुपया। प्राय: देखा जाता है कि पुस्तक के भीतर मूल्य कुछ छपा है और बाहर कुछ। जिम्मेदार प्रूफरीडर का काम है कि भीतर छपे हुए मूल्य का बाहर छपे हुए मूल्य से मिलान कर ले। एक और उदाहरण लीजिए—पाठ्य-पुस्तक में मैथिलीशरण गुप्त का नाम 'पाइका' में कम्पोज हो गया। प्रूफ-रीडर महोदय ने प्रूफ में इंगित किया कि मैथिलीशरण गुप्त ग्रेट कम्पोज हो। कम्पोजीटर महोदय ने मैथिलीशरण गुप्त के आगे ग्रेट जोड़ दिया। फाइनल प्रूफ देखनेवाले प्रूफ रीडर महोदय ने 'मैथिलीशरण गुप्त ग्रेट' पढ़ा और प्रूफ स्वीकृत कर दिया। टाइप १६ प्वाइंट ग्रेट का तो नहीं लगा, परन्तु मैथिलीशरण गुप्त के आगे 'ग्रेट' का टाइटिल जरूर बढ़ गया। प्रूफ-रीडिंग की दृष्टि से, कम-से-कम पाठ्य-पुस्तकों के प्रकाशन में बड़ी ही सतर्कता की आवश्यकता है। आजकल हिन्दी तथा अन्य क्षेत्रीय भाषाओं में जो पुस्तकें बच्चों के लिए छापी जा रही हैं, उनमें प्राय: कोष्ठ में अँगरेजी के शब्द दिये जा रहे हैं, इसलिए कि शिक्षक उन्हें समझें और बच्चों को समझायें कि यह शब्द अमुक का पर्यायवाचक है। यदि प्रूफ-रीडर महोदय ने अँगरेजी शब्द की प्रूफ-रीडिंग में तनिक भी लापरवाही की, तो समझ लीजिए कि अर्थ का अनर्थ हुआ। प्राय: देखने में आता है कि हमारे यहाँ छपी पाठ्य-पुस्तकों में कोष्ठ में दिये हुए अँगरेजी शब्द गलत होते हैं। पुस्तकों के मुद्रण में इस तरह की भूलें अक्षम्य हैं। विज्ञान की पुस्तकों की प्रूफ-रीडिंग बहुत महत्व रखती हैं। यदि

आपने डिग्री, इंच, फारेनहाइट आदि के निशान का ध्यान नहीं रखा तो फिर उसका कोई अर्थ ही नहीं रह गया। गणित की पुस्तकें भी प्रूफ-रीडिंग के लिहाज से बहुत महत्व की हैं। किसी अयोग्य प्रूफ-रीडर ने कोण के स्थान पर त्रिभुज का निशान पास कर दिया, तो अनर्थ समझिए। हिन्दी की प्रूफ-रीडिंग में व्याकरण का शुद्ध ज्ञान बहुत अधिक महत्व रखता है। यदि प्रूफ-रीडर चूका तो भाषा अशुद्ध हुई। कहने का तात्पर्य सिर्फ इतना है कि पुस्तक के मुद्रण में प्रूफ-रीडिंग नितान्त महत्व की चीज है। पता नहीं, हमारे देश में कितने रवीन्द्रनाथ और प्रेमचन्द पैदा हुए होते, यदि सही छपी हुई पाठ्य-पुस्तकें बालकों को उपलब्ध हुई होतीं। निस्सन्देह यह आपत्ति आज भी सही लगती है कि अशुद्ध मुद्रण प्रकाशन का कैंसर है!

मुद्रण

कम्पोजिंग के बाद पुस्तक-मुद्रण में छपाई का अपना महत्व है। अच्छी-से-अच्छी कम्पोजिंग हो तथा अच्छी-से-अच्छी सेटिंग हो, परन्तु मशीनमैन की लापरवाही से पुस्तक-मुद्रण नष्ट हो जाता है और मशीनमैन की कुशलता से छपाई में निखार आती है। छपाई के समय आवश्यकता है कि मशीनमैन को फर्मा अच्छी तरह रेडी कर लेना चाहिए। जो टाइप न उठते हों, उन्हें चिप्पी देकर उठाना चाहिए तथा लाइनों का रजिस्ट्रेशन करे। कोई गलत फोन्ट का टाइप हो, तो उसे बदलवा दें। स्याही पर ध्यान दें कि वह कहीं फैली तो नहीं है। टाइप तो नहीं टूट रहे हैं। फार्म के 'इम्प्रेशन' पर भी ध्यान देना आवश्यक है, ताकि टाइप कागज की दूसरी ओर न दिखाई देने लगे, आदि-आदि। कुछ ऐसे लापरवाह लोग भी हैं जो पुस्तकों के मुद्रण का सर्वनाश कर देते हैं। मसलन, हिन्दी की मात्राएँ बहुत अधिक टूटती हैं; और मात्राएँ टूट गई तो बला से टूट गयीं। कहीं चिप्पी लगाने के लिए ब्लाक निकाला गया, तो मशीनमैन ने उसे उलटा फिट कर दिया! पेज टेढ़ा छप रहा है तो भी उसे परवाह नहीं! स्याही कहीं फीकी पड़ रही है, तो कहीं गाढ़ी। वैसे ये सब दोष मशीनमैन और प्रिन्टिंग के होते हैं, लेकिन प्रकाशन-व्यवसाय से सम्बन्धित सभी लोगों को इन गल्तियों पर विशेष ध्यान रखना चाहिए।

जिल्दबन्धी

पुस्तक-मुद्रण का महत्व बहुत कुछ अच्छी जिल्दसाजी पर भी निर्भर करता है। किन्तु हिन्दी की पुस्तकों में प्रायः यह देखने में आता है कि जिल्दसाजी बहुत ही दोषपूर्ण और निम्नस्तरीय होती है, जबकि सुन्दर प्रकाशनों के प्रस्तुतिकरण का यह एक विशिष्ट माध्यम है। बाइन्डिग विभाग रजिस्ट्रेशन किये हुए फर्मे यदि गलती से पुस्तकों में बाँध देते हैं, तो वे लगे फर्मे भी पुस्तकों में बँध जाते हैं। रद्दी छपे फर्मे छाँटने के आलस्य से पुस्तक में बँध जाते हैं। कभी-कभी पुस्तक के कुछ पृष्ठ ही गायब दिखाई देते हैं। अक्सर तो ताजे छपे फर्मे बाँध दिये जाते हैं जिससे पुस्तक में लीपा-पोती हो जाती है। यदि बाइन्डिग-विभाग ध्यान दे तो सुन्दर पुस्तक-मुद्रण का महत्व बढ़ सकता है।

पुस्तक-मुद्रण और व्यवस्थापक

अन्त में हम एक विशेष बात कहना चाहेंगे कि योग्य कर्मचारियों के बीच योग्य मैनेजर का होना सोने में सुगन्ध जैसा है। योग्य कर्मचारियों के बीच व्यवस्थापक को बहुत ही कुशल और परिश्रमी होना चाहिए। प्रेस मैनेजर की उपमा मिलिट्री के उस सुप्रीम कमांडो की तरह है, जो कार्य लेने के लिए अशिक्षित कर्मचारियों के बीच अप्रिय रहता है। प्रेस के भूत जब गलती करते हैं तो योग्य व्यवस्थापक सचेष्ट रहते हुए उनकी गलतियों का निराकरण कर सकता है।

कहना न होगा कि विज्ञान ने पुस्तक-मुद्रण को नई दिशा दी है। आज हमारे देश में आफसेट द्वारा पुस्तकों का मुद्रण हो रहा है। 'ऑफसेट प्रोसेस' अब पुस्तक-मुद्रण में लोकप्रिय है। लाइनों और मोनो का युग पुराना पड़ चुका है। अन्धों के लिए ब्रेल-लिपि में पुस्तकें छपने लगी हैं। आने वाला युग नई आशा का द्योतक है। आशा है कि भारत का पुस्तक-मुद्रण-व्यवसाय विश्व में शीघ्र ही अपना उपयुक्त स्थान ग्रहण कर लेगा।

पुस्तक प्रसार आन्दोलन और जनसम्पर्क

गाँव की ओर बढ़िये

९ जून ७८ को राष्ट्रसंघ में बोलते हुए भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई ने कहा था कि मानव समाज को बमों की अपेक्षा किताब और रोटी की अधिक जरूरत है। उनका यह कथन पुस्तकों की महत्ता को स्वयं सिद्ध करता है।

छठीं पंचवर्षीय योजना में व्यय राशि का ४३.०५ प्रतिशत ग्राम विकास के निमित्त रखा गया था। विकास की यह नवीन प्रक्रिया पुस्तकों को नया दायित्व सौंपती है। बुनियादी और प्रौढ़ शिक्षा के लिए इस योजना का ६० प्रतिशत केन्द्र तथा ४० प्रतिशत राज्य सरकारों के जिम्मे था। योजना आयोग ने प्रौढ़ शिक्षा पर आरम्भ में दो सौ करोड़ खर्च किये, साथ ही संसद भी ग्रामीण शिक्षा प्रसार के लिए सक्रिय है। कदाचित् इसी का परिणाम है कि १९७१ में ग्रामीण क्षेत्र के जहाँ ११ प्रतिशत आई० ए० एस० थे वहीं १९७७ में बढ़कर ३५ प्रतिशत हो गए।

विश्व के ७२ करोड़ ३० लाख निरक्षरों में से ४२ करोड़ ४० लाख अकेले भारत में रहे। प्रौढ़ शिक्षा के कार्यक्रम में प्रशिक्षित किए जानेवाले देश के दस करोड़ निरक्षरों में साढ़े आठ करोड़ गाँवों और डेढ़ करोड़ शहरों में थे। इनमें चार करोड़ पुरुष तथा छः करोड़ महिलायें हैं। साक्षरता के साथ अपनी संस्कृति और संस्कार के प्रति भी इनकी जिज्ञासा बढ़ेगी, जिसकी पूर्त्ति हमारा धार्मिक और पौराणिक साहित्य ही कर सकता है। इस भावना को लेकर हमें अपने प्रचार-प्रसार के साथ गाँवों की ओर उन्मुख होना पड़ेगा। लोक-भाषा और लोक-संस्कृति के माध्यम से ही ग्रामों को शिक्षित किया जा सकता है। ग्रामीण क्षेत्र के लिए प्रकाशन करते समय उपरोक्त तथ्यों को मनस्थ रखना होगा। हमें मरुस्थल में शिक्षा की महानदी बहानी होगी।

१९६६-६७ में अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ ने यूनेस्को के सहयोग से इस दृष्टि से तीन कार्यक्रम प्रारम्भ किए थे, जिन्हें 'ग्राम पुस्तक प्रचार योजना' के नाम से अभिहित किया गया। कार्यक्रम में ग्रामीण पुस्तकालयों के लिए ग्रन्थसूची का प्रणयन तथा उनकी व्यवस्था पर भी विचार हुआ।

इन्हीं दिनों यूनेस्को ने २ अक्टूबर से केन्द्र सरकार, राज्य सरकारों तथा स्वयंसेवी संस्थाओं के सहयोग से प्रौढ़ शिक्षा का कार्यक्रम आरम्भ किया था। इस सन्दर्भ में हमारी ग्राम पुस्तक-प्रचार योजना महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

ग्रामों में पुस्तक-प्रचार के लिए प्राइमरी शिक्षकों, ग्रामों में स्थित डाकघरों के पोस्टमास्टरों, ग्राम पंचायतों के मुखियाओं, स्वास्थ्य केन्द्रों के व्यवस्थापकों और ग्राम सेवक-सेविकाओं का सहयोग प्राप्त किया जा सकता है। हमारा प्रयास ग्रामीण साहित्य

को अल्पमोली करने का हो। सरकारी संकल्प के अनुसार २००१ ई० तक सारा देश पढ़ा-लिखा हो जायेगा। जनमानस में पुस्तकों की भूख बढ़ेगी और इस परिप्रेक्ष्य में हम क्या कर सकेंगे, इसे हमें सोचना चाहिए।

साक्षरता का यह अभियान हिन्दी तथा भारतीय भाषाओं के माध्यम से ही चल सकता है। इसमें हिन्दी के प्रकाशकों की एक विशिष्ट भूमिका होगी, जो भारतीय भाषाओं के प्रकाशकों का मार्गदर्शन करेगी।

हिन्दी है, तो आप भी हैं; अन्यथा आपका कोई अस्तित्व नहीं है। देश के छः लाख गाँवों में अभी अठारह हजार गाँव ऐसे हैं जहाँ एक भी स्कूल नहीं है। उनमें पुस्तकालय, अस्पताल और विद्यालय खोलना मानवता की सबसे बड़ी सेवा है। इन ग्रामों की अभिव्यक्ति का माध्यम हिन्दी तथा भारतीय भाषाएँ ही हैं। वहाँ किसी विदेशी भाषा के लिए स्थान नहीं है।

ग्रामीणों में योग, स्वास्थ्य, महिलोपयोगी साहित्य—जिसमें सिलाई, कढ़ाई, बुनाई आदि रोजगार के अवसरों की जानकारी करानेवाले तकनीकी साहित्य को प्रकाशित करना चाहिए। ऐसा साहित्य ग्रामों में आर्थिक उन्नति के साथ ही सामाजिक बुराइयाँ भी दूर करेगा और शोषणरहित समाज के निर्माण को बल देगा।

सोनपुर, गढ़मुक्तेश्वर और ददरी जैसे मेलों में ग्रामीणों के लिए उपयोगी साहित्य का प्रचार भी हमारे कार्यक्रम का अंग होना चाहिए।

पुस्तक प्रसार आन्दोलन और जनसम्पर्क

हिन्दी पुस्तकों को सरकार द्वारा पुरस्कृत करने और उन्हें खरीदकर लाइब्रेरियों को देने की सरकारी योजना निश्चय ही सराहनीय है, परन्तु इसके भरोसे ही व्यवसाय को केन्द्रित करना बुद्धिमत्ता नहीं है। पुस्तकें जनमानस तक कैसे पहुँचें इसके लिए आन्दोलन किया जाना चाहिए।

जनसम्पर्क कार्यक्रम में पुस्तकालयाध्यक्षों और हिन्दी समाचारपत्रों के सम्पादकों का सहयोग लेना परमावश्यक है। साथ ही हमें ग्राम पंचायतों से लेकर संसद तक के अपने चुने हुए जन-प्रतिनिधियों से सम्पर्क स्थापित करना चाहिए। उन्हें हिन्दी जगत् में होनेवाले प्रकाशनों से अवगत कराते रहना चाहिए। अर्थाभाव के होते हुए भी जनमानस तक हम अपनी प्रबल इच्छाशक्ति और दृढ़ संकल्प से ही पहुँच सकते हैं।

यदि लीवर ब्रदर्स ग्रामों में साबुन की फैक्टरियाँ बनवाने की सोच सकता है तो क्या हम 'मास मीडिया' के द्वारा पुस्तकों की उपयोगिता गाँवों तक नहीं पहुँचा सकते? लेकिन इसके लिए एकजुट होने की आवश्यकता है।

हिन्दी यूनेस्को, राष्ट्रसंघ और विश्व स्वास्थ्य संगठन की भाषा बन रही है। हिन्दी तथा भारतीय भाषाओं में यूनियन पब्लिक सर्विस कमीशन, चिकित्सा विज्ञान और तकनीकी कक्षाओं की परीक्षाएँ होने लगी है। ऐसी स्थिति में हिन्दी को अन्य भारतीय भाषाओं को साथ लेकर इस तरह चलना होगा जिस तरह घर का बड़ा बूढ़ा अपने पूरे परिवार को साथ लेकर चलता है।

किसी भी संस्था और विशेषत: प्रकाशन जगत से सम्बन्धित संस्था के लिए बहुत ही आवश्यक है कि वह पाठकों को यह जानकारी दे कि हिन्दी में क्या प्रगति हुई और प्रतिवर्ष किन-किन विषयों पर कितनी पुस्तकें प्रकाशित हो रही हैं। हमें अपनी विकास दर स्थिर करनी होगी और अपनी निजी पंचवर्षीय योजनाएँ बनानी होंगी। इस सन्दर्भ में ज्ञातव्य है कि अब प्रतिवर्ष राष्ट्रीय पुस्तक मेले का आयोजन होता है और प्रति दो वर्ष बाद दिल्ली में विश्व पुस्तक मेले भी होते रहेंगे।

सहकारिता शरणं गच्छामि

सहकारिता के आधार पर विक्रय तथा प्रचार का मार्ग अपनाकर हिन्दी प्रकाशन-जगत प्रगति कर सकता है। हाल ही में एक सर्वेक्षण किया गया है, जिसके अनुसार यह विदित होता है कि हमारे देश के पुस्तकालयों में ९० प्रतिशत पुस्तकें अंग्रेजी की खरीदी गई और दस प्रतिशत हिन्दी अथवा भारतीय भाषाओं की। जाँच करने पर पता चला कि हिन्दी की पुस्तकें खरीदने के लिए पुस्तकालयाध्यक्ष उत्सुक रहते हैं, किन्तु उन्हें एक जगह हिन्दी का पूरा स्टाक और पुस्तकों की बृहद् सूची सुलभ नहीं है। यह क्रम हम नहीं बना सके हैं।

जर्मन कवि और उपन्यासकार 'ग्रस' की कृतियों का जर्मनी जैसे छोटे देश में भी प्रथम संस्करण एक लाख प्रतियों में प्रकाशित होता है। जबकि हमारे देश में वितरण के अभाव में साधारण प्रकाशकों को छोड़ साधन सम्पन्न साहित्य अकादमी, नेशनल बुक ट्रस्ट, ग्रन्थ अकादमियों, हिन्दी सेवी संस्थायें, विश्वविद्यालयों के प्रकाशन विभाग अपने प्रकाशनों तक की खपत नहीं कर पाते। इन्हें भी सहकारी वितरण तथा प्रचार के शरण में आना चाहिए।

आदान-प्रदान कार्यक्रम : प्रकाशन के नये आयाम

हमें ऐसी लाबी का मुकाबला भी करना है जो देश में हठवश हिन्दी तथा भारतीय भाषाओं के स्थान पर अंग्रेजी को बनाए रखना चाहती है। यह हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के प्रकाशन व्यवसाय के हित-संवर्द्धन के विरुद्ध है। तमिलनाडु में भी एक सर्वेक्षण द्वारा विदित हुआ है कि ६०-७० प्रतिशत शहरी जनता हिन्दी सीख रही है।

भारतीय भाषाओं और हिन्दी के प्रकाशकों को यदि अपना उचित स्थान लेना है तो भारतीय भाषाओं को आपसी आदान-प्रदान की ओर बढ़ना होगा। इसके लिए देश की विभिन्न भाषाओं में प्रकाशित उपयोगी कृतियों का अनुवाद हिन्दी में प्रकाशित करना हमारा लक्ष्य होना चाहिए।

देश में शिक्षा तथा विज्ञान के क्षेत्र में बहुत ही अच्छे अनुभवी लेखक उभर रहे हैं। इनकी प्रतिभा का उपयोग हमें मौलिक तथा अनूदित रूप में करना चाहिए।

हिन्दी में चिकित्सा विज्ञान तथा अभियांत्रिकी की पुस्तकों का अभाव माना जाता है। चिकित्सा विज्ञान की पुस्तकें एक वर्ष में प्रकाशित हो सकती हैं और इसके लिए स्वास्थ्य मंत्रालय को हम सूचना भी भेज चुके हैं।

आगामी वर्षों में स्थापित होनेवाले जिला उद्योग केन्द्र ऐसी आर्थिक सम्पन्नता ला देंगे कि हमें बच्चों की शिक्षा के लिए बहुत अधिक पुस्तकें उत्पादित करनी पड़ेंगी, किन्तु यह भी ध्यान में रखना होगा कि बालक के व्यक्तित्व निर्माण में स्कूली शिक्षा केवल १४ प्रतिशत भूमिका निभाती है और ८६ प्रतिशत ज्ञान उसे समाज से प्राप्त होता है। अतएव ८६ प्रतिशत उस साहित्य के प्रकाशन की आवश्यकता है जो विद्यालयी नहीं है। इस दिशा में आदान-प्रदान कार्यक्रम से अधिक लाभ होगा।

एक ओर निर्माण का गुरुतर भार है तो दूसरी ओर सरकारी अफसरों की उपेक्षा दृष्टि, जो हिन्दी तथा भारतीय भाषाओं के प्रकाशकों को अपने ही देश में दूसरे दर्जे का बनाती है। इसका परिणाम यह है कि सर्वे ऑफ इण्डियन बुक इण्डस्ट्रीज के १९७६ में छपे पुस्तक व्यवसाय के पिछले सर्वेक्षण में हिन्दी तथा भारतीय भाषाओं के प्रति घनघोर उपेक्षा की गयी है। उसमें तथ्यों को सही रूप में उपस्थित नहीं किया गया। शिक्षा मंत्रालय को भारतीय भाषाओं के पुस्तक व्यवसाय का पृथक सर्वेक्षण कराना चाहिए, जिससे हिन्दी तथा भारतीय भाषाओं के प्रकाशन व्यवसाय की वास्तविकता का पता चल सके।

संघे शक्ति कलौयुगे

धनाभाव, उपेक्षा, नाममात्र के सहयोग तथा पारस्परिक गलत स्पर्धा के बावजूद ४० वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुआ हमारा सफर आज जिस मंजिल पर पहुँच चुका है वह हमारी सफलता का प्रमाण है। साथ ही कतिपय क्षेत्रों में सरकारी उपेक्षा हमारी गाड़ी के आगे काठ के समान है।

संगठन के प्रश्न पर सिर्फ इतना ही कहना है कि जहाँ हमारा सुव्यवस्थित संगठन नहीं है, वहाँ राज्य स्तर पर तदर्थ कमेटियों का गठन किया जाना चाहिए। राज्य संगठन जिला स्तर पर कमेटियाँ गठित करें। इससे हमारी वितरण व्यवस्था सुदृढ़ होगी और साहित्य प्रचार के आन्दोलन को बल मिलेगा। यदि देश के सभी हिन्दी प्रकाशक केन्द्रीय संगठन के साथ सहयोग करें तो कोई कारण नहीं कि प्रकाशन-व्यवसाय समुन्नत न हो।

संगठन तभी सफल हो सकता है जब सभी वर्ग के प्रकाशकों का अनिवार्य रूप से पंजीकरण हो और हमारे राष्ट्रीय रजिस्टर में प्रत्येक हिन्दी प्रकाशक का नाम हो।

भविष्य हमारा है। हमारे दृढ़ कदम सफलता की ओर बढ़ रहे हैं। प्रकाशक संघ की उपलब्धियाँ उल्लेख्य हैं। विभिन्न प्रकार की सूचियों का प्रकाशन, विचारगोष्ठियों द्वारा विभिन्न समस्याओं पर विचार विनिमय और उनका निराकरण, पुस्तकों के निर्यात के क्षेत्र में क्रान्ति, सुरुचिकर उन्नत प्रकाशन द्वारा विभिन्न विषयों पर हिन्दी भाषा भण्डार की पूर्ति और राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय दोनों ही क्षेत्रों में ख्याति अर्जित करना यह सिद्ध करता है कि हम उत्तरोत्तर सही दिशा की ओर बढ़ रहे हैं।

अन्न-वस्त्र की तरह ही आनेवाले युग में पुस्तक भी एक अनिवार्य वस्तु होगी। ऐसी स्थिति में हमें माहौल का लाभ उठाकर संगठन को सुदृढ़ बनाने में रुचि लगानी चाहिए।

कागज की समस्या

आर्थिक समीक्षा करते समय यह देखा जाता है कि अनाजों के मूल्य के परिप्रेक्ष्य में अन्य चीजों का मूल्य कितना बढ़ा। कागज मिलों ने इस आर्थिक सिद्धान्त का भी उल्लंघन किया है, जबकि आँकड़े इस बात के गवाह हैं कि हम अपने देश में स्थापित मिलों की उत्पादन क्षमता से ही अपने कागज की माँग की पूर्ति कर सकते हैं। अब तो हम इतने सक्षम हो गए हैं कि विदेशों में भी कागज मिलों की स्थापना कर रहे हैं। ऐसी स्थिति में यदि सरकार कागज के मूल्यों पर नियन्त्रण रखने के लिए सचेष्ट न हो तो इस देश के बौद्धिक भविष्य का भगवान् ही भला करे।

कागज की स्थिति यह है कि मैपलीथो कागज नक्शों को छापने के लिए ही बनता है, परन्तु अब किताबों के लिए भी प्रकाशकों को विवश होकर मैपलीथो खरीदना पड़ता है जो कि ह्वाइट प्रिन्ट की तरह ही होता है। इस तरह के भ्रष्टाचार को रोका जाना चाहिए। इसके लिए संघ को सरकार से माँग करनी चाहिए कि—

१. उत्पादन कन्ट्रोल आर्डर १९७८ पर कठोरता से अमल हो।

२. मिल रेट अप्रैल १९७७ के स्तर पर कायम रहे।

३. यदि भाव बढ़ाना आवश्यक हो तो सरकार से परामर्श करके कम से कम बढ़ाया जाय और समाचार पत्रों में मूल्य प्रकाशित हों।

४. मिलों के बेसिक भाव समान रहें।

५. प्रिन्टिंग पेपर व क्रीमओव के भाव को समान किया जाय जिससे अनियमितता न हो सके।

६. 'नोमनक्लेचर' बदलकर दाम बढ़ाने की प्रवृत्ति अविलम्ब बन्द की जाय।

कागज व्यापारियों की यदि यही स्थिति रहे तो फेयर प्राइज प्रैक्टिस सोसाइटी को इस पर विचार करना चाहिए। शिक्षा के बढ़ते चरण को दृष्टिगत कर कागज के उत्पादन का वर्तमान विकास दर २.५ प्रतिशत की अपेक्षा ८.५ प्रतिशत निर्धारित किया जाना चाहिए।

संघ का गठन जहाँ आत्मनिरीक्षण और आत्मपरीक्षण का दायित्व हमें सौंपता है, वहीं भविष्य के लिए नवीन संकल्पों की ओर भी प्रेरित करता है और हमसे बड़ी आस्था तथा विश्वास के साथ कह रहा है कि अन्त्योदय की कल्पना क्या प्रकाशन जगत् में चरितार्थ नहीं हो सकती।

पुस्तकों की बढ़ती कीमतें और घटते पाठक

पुस्तकों के प्रचार-प्रसार और पाठकों की पठनाभिरुचि में निरन्तर वृद्धि के लिए विगत ५० वर्षों से प्रयास चल रहा है। इस दिशा में सरकारी, अर्धसरकारी पुस्तक जगत् से जुड़ी साहित्यिक संस्थाएं और प्रकाशक संघ संगठित रूप से वैज्ञानिक आधार पर काम कर रहे हैं। यूनेस्को की ओर से ग्राम पुस्तक प्रचार योजना, यूनीसेफ, प्रकाशक संघों, नेशनल बुक ट्रस्ट, साहित्य अकादमी आदि द्वारा देश विदेश में पुस्तक मेलों तथा विचार गोष्ठियों का आयोजन सत्प्रयत्न कहे जायेंगे।

पब्लिकेशन्स डिवीजन, विभिन्न अकादमियों, विश्वविद्यालयों के प्रकाशन गृह, नेशनल बुक ट्रस्ट, चिल्ड्रेन बुक ट्रस्ट, साहित्य अकादमी, एन. सी. ई. आर. टी. तथा हजारों की संख्या में विद्यमान प्रकाशकों ने साहित्य का सर्वतोन्मुखी विपुल भण्डार प्रकाशित कर दिया है। पुस्तकों के प्रचार प्रसार में पत्र-पत्रिकाओं, आकाशवाणी, दूरदर्शन, कम्प्यूटर आदि की भूमिका भी महत्वपूर्ण है। प्रकाशनों द्वारा बुक-क्लब आन्दोलन, लाइब्रेरी एसोसियेशन द्वारा पुस्तकालय आन्दोलन तथा सरकार के प्रायः सभी मंत्रालय, सामाजिक और शैक्षिक संस्थाओं द्वारा पुस्तकों को पुरस्कृत करने की विभिन्न योजनाएँ, पुस्तक जगत को प्रोत्साहित करने का महत्वपूर्ण कदम हैं। ज्ञान-विज्ञान की दृढ़व्रती प्रचार प्रसार योजना ने पढ़ने-लिखने की लालसा भी जगा दी है। नई शिक्षा नीति के अन्तर्गत आपरेशन ब्लैकबोर्ड, प्रौढ़ शिक्षा, अनौपचारिक शिक्षा, महिला समानता शिक्षा आदि योजनायें कार्यान्वित की जा रही हैं।

सरकार ने प्रकाशकों को कागज भी कम कीमतों पर उपलब्ध कराया। प्रकाशन व्यवसाय को इनकम टैक्स में २० वर्षों तक २० प्रतिशत की छूट भी दी। बहुत कुछ हुआ, परन्तु एक प्रश्न चिह्न हमें झकझोर रहा है कि इन प्रयत्नों के बावजूद दिन पर दिन पुस्तक पढ़ने की प्रवृत्ति (रीडिंग कल्चर) क्यों कम होती जा रही है। आइये हम खोज-बीन करें। मूल्य सूचकांक तथा मुद्रा स्फीति की समीक्षा करने पर पता चलता है कि सर्वाधिक मूल्यवृद्धि पुस्तकों में हुई है। आज कोयला ५ रुपये प्रति किलो और मिट्टी का तेल ५ रुपये प्रति लीटर है परन्तु विगत दो दशकों में २५ पैसे में बिकनेवाली किताब का दाम २० रुपया हो गया। आवश्यक वस्तुओं के मूल्यों का सूचकांक इस प्रकार से है:

सोना और पुस्तक दोनों ही इतने मँहगे हो गये हैं कि इन्हें खरीदने के लिए सामान्य जन-मन मसोस कर रह जाता है। प्रतिवर्ष अन्य चीजों की मुद्रा-स्फीति के

सूचकांक के अनुपात में पुस्तकों की मूल्य वृद्धि का सूचकांक चारगुना होता नजर आ रहा है।

प्रतीत होता है कि आम आदमी को अपनी संस्कृति, एक दूसरे की सभ्यता की समझ, ज्ञान के विस्तार, पूर्व पीढ़ी के अनुभवों एवं नई तकनीक से जुड़ने नहीं दिया जा रहा है। पुस्तकों के अभाव में ज्ञान के अवमूल्यन के आसार की भयावह शुरुआत हो गयी है। क्या हमें अपने इतिहास से काट देने की साजिश की जा रही है? क्या इस बढ़ते हुए कागजी-दामों के पीछे कोई बड़ी बदनीयती तो काम नहीं कर रही? क्या पुस्तकें केवल सरकारी खरीद के लिए ही रह जायेंगी? क्या सरस्वती हमेशा के लिए आलमारियों में बन्द हो जायेगी? लेकिन नहीं। हमें इस विकृति से मुक्त होना होगा।

दुखद है कि हमारे देश में जहाँ एक ओर पुस्तकों के अधिक से अधिक मूल्य रखने की होड़ लगी हुई है, वहीं दूसरी ओर भ्रष्टाचार का दैत्य सरकारी खरीद को अपने चंगुल में दबोचे है।

जिस देश में प्रति व्यक्ति की वार्षिक आय ३७५० रुपया हो तथा प्रतिव्यक्ति वार्षिक कर्ज का भुगतान २३५० रुपया हो उस देश में स्वयं हमारे प्रधानमंत्री के कथनानुसार ८४ प्रतिशत योजना राशि सामान्य जन तक नहीं पहुँचती। जहाँ शिक्षा क्षेत्र में भी अनैतिकता व्याप्त हो, वहाँ यदि पुस्तक जगत के समझदार लोग कोई रास्ता नहीं निकालेंगे तो निश्चित है कि आज के ५० करोड़ निरक्षर प्रतिवर्ष लगभग एक करोड़ और बढ़ते जायेंगे।

हर आदमी सोचता है कि सरकार यह करे, वह करे। सरकार के आगे माँगों के अम्बार लगा दिये जाते हैं। आखिर हम यह क्यों नहीं सोचते कि हम स्वयं सरकार हैं। हमें सरकार से माँग करने के बजाय जनता से माँग करनी चाहिए और जनता तक पहुँचने की चेष्टा करनी चाहिए। स्मरणीय है कि आजादी के पूर्व कुछ पुस्तकों के २५-२५ हजार तक के संस्करण बिक जाते थे, पर आज दो हजार का संस्करण भी बिक नहीं पाता। आज पढ़ाई का माहौल ही खत्म हो रहा है। जो लोग पुस्तकें खरीदते भी हैं, उनमें से ३० प्रतिशत ही ऐसे हैं जो पुस्तकें पढ़ते हैं।

ईमानदार प्रकाशक के लिए अनेकानेक समस्यायें हैं। विकृति के दलदल में वह जाना नहीं चाहता। परिस्थिति से संघर्ष करने के लिए पूँजी की आवश्यकता होती है। सरकार ने बुक डेवलपमेण्ट कौन्सिल बनाई, नई पुस्तक नीति की घोषणा की और प्रकाशकों को बैंक से ऋण देने का भी प्रस्ताव किया, परन्तु अभी तक यह कोरे कागज पर है।

१४ सितम्बर हिन्दी दिवस के रूप में हिन्दी की संस्थाएँ और प्रकाशक तो मनाते हैं, लेकिन पिछले वर्ष से सरकार ने भी इस ओर ध्यान दिया है। इस दिवस पर स्थानीय प्रकाशकों को अल्पमोली पुस्तकें छापना चाहिए। अपने उद्योग से पुस्तक मेले लगाने चाहिए। इस संदर्भ में स्थानीय प्रशासन से पानी, बिजली, अग्निशमन, स्थान आदि की माँग की जा सकती है। खुशी की बात है कि नेहरू शती के अवसर पर काशी में एक बृहद्

पुस्तक मेला पुस्तक जगत् से जुड़े लोगों द्वारा प्रशासन और नागरिकों के सहयोग से १४ सितम्बर से २४ सितम्बर तक आयोजित हुआ।

दुर्भाग्यवश समाज में ऐसे साहित्य की प्रधानता हो गयी है जिससे मानव में द्वेष और शत्रुता के विचार उत्पन्न हो रहे हैं। इसलिए ऐसे साहित्य की रचना की आवश्यकता है जिनसे मनुष्य के चित्त में शान्ति और आनन्द की अनुभूति हो और उसकी रुचि पठन पाठन की ओर बढ़े। अश्लील सत्यकथायें, हत्या कथायें, रोमांटिक यौन साहित्य पर प्रतिबन्ध लगाया जाय।

पुस्तक लेखक विगत ६७ वर्षों से प्रकाशन व्यवसाय से जुड़ा है। इसके उतार-चढ़ाव के भीतर से गुजरा है। इसके बदलते संदर्भों का साक्षी रहा है। आजादी के पूर्व हिन्दी पढ़ना और हिन्दी पुस्तकें खरीदना देश प्रेम था। हिन्दी प्रकाशन राष्ट्र सेवा थी। हम एक मिशन से जुड़े थे। कागज सुलभ था। मिशन की पवित्रता थी। हमारे कार्यों में भ्रष्टाचार की गंध तक नहीं थी। मूल्यों और कमीशन की ऐसी होड़ न थी और न ही परदे के पीछे का लेन-देन था। आज परिस्थितियाँ बदल गयी हैं। मिशन प्रोफेशन बन गया और प्रोफेशन की सारी दुर्गन्ध उसमें आ गयी है।

आजादी के पहले न तो पुस्तक-प्रकाशकों को किसी प्रकार का अनुदान मिलता था न हिन्दी लेखकों के लिए इतने पुरस्कार थे। फिर भी हिन्दी पुस्तकें सभी भारतीय भाषाओं से अधिक छपती थीं और पाँच हजार से पचीस हजार तक के संस्करण होते थे। किन्तु अब सारी परिस्थितियाँ बदल गयीं। हम अनुदान के लिये सरकार के मुखापेक्षी हो गये हैं। थोक-खरीद की आकांक्षा ने साधारण पाठक की बिक्री के प्रयत्नों से हमें दूर किया है। कमीशन की नाजायज स्पर्धा ने इस व्यवसाय की पवित्रता नष्ट कर दी है। हमें मूल्य हद से ज्यादा बढ़ाने पड़े हैं। पुस्तकें मँहगी होती गयीं। पाठक पीछे छूटता चला गया। उसकी उपेक्षा आज हो रही है।

हिन्दी पुस्तक व्यवसाय स्वतंत्रता के बाद एक ऐसे सन्दर्भ में चला आया जहाँ सब कुछ अर्थ से जुड़ा है। इधर कागज के दामों में भी बेतहाशा वृद्धि हो गयी है। १९३३ से १९३६ के बीच जो कागज आठ आने रीम था, आज वही पांच सौ रुपये रीम हो गया है। अनेक बार तो मूल्य के अतिरिक्त प्रीमियम की पूजा भी हमें चढ़ानी होती है। हमें हिन्दी पुस्तकों के बढ़ते हुए मूल्य की चिन्ता है। बंगला की पुस्तकों के दाम हिन्दी की पुस्तकों की अपेक्षा एक तिहाई या एक चौथाई होते हैं। वहाँ का प्रकाशन सीधे अपने पाठकों से जुड़ता है। उनकी खोज करता है। आनन्द बाजार पत्रिका जैसे दैनिक अखबार के रविवासरीय संस्करण पुस्तकों के विज्ञापनों से भरे रहते हैं। उन्होंने अपने यहाँ रीडिंग कल्चर का विकास किया और हमने इस कल्चर को विकसित ही नहीं होने दिया। बंगाल में बच्चे सालभर टिफिन का पैसा बचाकर रखते हैं और प्रतिवर्ष लगनेवाले पुस्तक मेलों से पुस्तकें खरीदते हैं। पुस्तक मेलों की बाढ़ आ गयी है। छोटे से छोटे जिले में मेला लगता है। घर-घर में एक छोटा पुस्तकालय रहता है। बंगाल के प्रकाशन सरकारी

अनुदानों पर आश्रित नहीं हैं। वे सीधे जनता के दरबार में जाते हैं और हम रोज सरकार के दरबारों का मुँह देखते हैं। पिछले कलकत्ता पुस्तक मेले में इतनी भीड़ हुई कि आवागमन से धूल उड़ने लगी। सरकार की अखबारों में आलोचना इसलिये की गयी कि मेले में पानी के छिड़काव की समुचित व्यवस्था नहीं थी।

कितना अजीब लगता है कि एक ओर इतनी भीड़ कि चलनेवालों की अधिकता से जमीन की धूल उड़े और दूसरी ओर पिछले विश्व पुस्तक मेलों में ग्राहकों की इतनी कमी कि विक्रेताओं के चेहरे पर धूल उड़े। आपको जानकर आश्चर्य होगा कि १९९४ के कलकत्ता पुस्तक मेले में ११ दिन की अवधि में चार करोड़ रुपये की पुस्तकें बिकी थीं। जबकि वस्त्रों की बिक्री इसकी एक चौथाई थी। अब सवाल यह है कि इसकी तुलना में हमारे यहाँ बिक्री कितनी है?

कलकत्ता मेले में बंगला के ऐसे प्रकाशक थे जिनके स्टालों पर पुस्तकें खरीदने-वालों की एक-एक फर्लांग लम्बी लाइन लगी रहती थी। इतनी सस्ती और इतनी अच्छी ग्रन्थावलियाँ उन्होंने छापी हैं कि उनके समक्ष हिन्दी की ग्रन्थावलियाँ महज पुस्तकालयों की आलमारियों में कैद हो जाने के लिये सिर्फ जन्मी जान पड़ती हैं। कितने हिन्दी के पाठक हैं, जिन्होंने अपने पैसे से ये ग्रन्थावलियाँ खरीदी हैं? बंगाल में तो बैंकों के माध्यम से बंगला ग्रन्थावालियाँ लाख-लाख की संख्या में बिकी हैं। शरत् ग्रन्थावली आज २००.०० में सुलभ हैं। बंगला पाठकों और ग्राहकों को पहले बैंक में प्रकाशक के खाते में मूल्य जमा करना पड़ता है फिर वह उस रसीद से पुस्तक प्राप्त करता है।

लगभग ऐसी ही स्थिति मराठी, गुजराती और मलयालम की भी है। क्षेत्रीय भाषाओं ने इतने अधिक पाठक पैदा कर लिये हैं कि आनुपातिक दृष्टि से हिन्दी पीछे हो गयी है। इन भाषाओं की तुलना में हिन्दी पुस्तकों की बिक्री बहुत कम है। एक बात यह भी है कि हिन्दी जगत् का बहुसंख्यक पाठक सामान्य आय का है। वह ऊँचे दाम की पुस्तकों को खरीदने में असमर्थ है। इसी को ध्यान में रखते हुए वाराणसी के एक प्रकाशक द्वारा कम मूल्य की समग्र प्रकाशन योजना को मूर्त रूप दिया गया है। आकाश छूते हुए मूल्य को धरती पर खड़ा किया गया है।

हमने पूरे भारतेन्दु साहित्य को, जिसमें भारतेन्दु की २१९ कृतियों, प्रबन्धों आदि का संकलन है, फोटो कम्पोजिंग के साथ-साथ आफसेट पद्धति से उत्कृष्ट छपाई, उत्तम कागज तथा दुर्लभ चित्रों के साथ मात्र ३०.०० रुपये में सुलभ कराया था। भारतेन्दु का स्वदेश बोध तथा स्वभाषा गौरव आज के भारत की एकता और अखण्डता की पुकार है। भारतेन्दु के साथ देवकीनन्दन खत्री समग्र ४० रुपये और बंकिम समग्र भी मात्र ३० रुपये में प्रकाशित किया गया। तीनों का मूल्य महज रु० १००.०० था। इस तरह यह पूरा सेट क्रयसाध्य है, लेकिन आज स्थिति इतनी बदतर है कि एक सौ रुपये में तीन ग्रन्थावलियाँ सुलभ कराने की सूचना विज्ञापित करने पर भी कोई विश्वास नहीं करता। साहित्य और समाज में सकारात्मक संबंध बनाने के लिये हमें विश्वास है कि लोग प्रचारक ग्रन्थावली परियोजना में सक्रिय हिस्सेदारी लेंगे।

इसी प्रकार से सस्ते दामों में वृन्दावनलाल वर्मा समग्र, रामेश्वर टांटिया समग्र, रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' समग्र, प्रतापचन्द्र चन्दर समग्र भी सुलभ हैं। युनेस्को के मानदण्ड के अनुसार एक हजार की आबादी पर समाचार पत्रों की एक सौ प्रतियाँ बिकनी चाहिए। यदि हम प्रति हजार पर ५ पुस्तकों का हिसाब रखें तो भी ८० करोड़ की आबादी वाले देश में ४५ लाख पुस्तकें रोज बिकनी चाहिए। इसमें जनसंख्या के हिसाब से हिन्दी का अनुपात २५ लाख से कम नहीं होगा। क्या हम हिन्दी की इतनी पुस्तकें प्रतिदिन बेच पाते हैं? साहित्यिक प्रकाशनों के दूषित अर्थतंत्र, सरकारी अनुदानों से चलनेवाले पुस्तकालय आन्दोलन, गोरख धन्धे और पर्दे के पीछे के लेन-देन से हिन्दी प्रकाशन जगत् में बेतहाशा मूल्य वृद्धि का जो संकट आज खड़ा हुआ है, उसके कारण सामान्य क्रय शक्ति का पाठक स्तरीय साहित्य खरीद कर पढ़ने की बात सोच भी नहीं सकता। ये ऐसी समस्यायें हैं जिनका समाधान हमें ढूंढ़ना होगा, क्योंकि पुस्तकें मात्र व्यवसाय की ही नहीं, जनहित की भी वस्तुएँ हैं। कम मूल्य की अच्छी पुस्तकों की जगह बुकस्टालों पर चटपटी किताबें बिकने लगी हैं। इससे राष्ट्र की चिन्तन धारा प्रभावित हो रही है। यदि देश का चिन्तन ही विकृत हो गया तो राष्ट्रीय अस्मिता का क्या होगा? हमें इस संदर्भ में सोचना होगा और हमने सोचा भी है। २५ वर्षों से या यों कहिये प्रकाशक संघ के स्थापना काल से ही हमारी सक्रियता इससे जुड़ी रही है।

प्रकाशक संघ की सारी उपलब्धियों के बावजूद अभी उसे बहुत कुछ करना शेष है, क्योंकि हम अपनी सुविज्ञ नई पीढ़ी से ही अपेक्षायें रखते हैं। हम पुराने लोग तो नदी तट के पेड़ हैं। हमें ले जाने के लिए एक लहर काफी है। नई पीढ़ी को व्यवसाय में आये भ्रष्टाचार से भी लड़ना है, पुस्तकों का मूल्य भी कम करना है। उन्हें सुविज्ञ पाठकों की तलाश करनी पड़ेगी। उनसे जुड़ना होगा। इसके लिये प्रचार के खर्चीले प्रयोगों द्वारा उन्हें जोखिम भी उठाना पड़ेगा। नाजायज कमाई की बढ़ती हुई प्रवृत्ति पर प्रहार करना होगा।

हिन्दी प्रकाशन व्यवसाय ही लगता है पटरी से उतर गया है। अब यह जनता के लिये नहीं वरन् सरकारी खरीद के लिये पुस्तकें छापता है।

हिन्दी के साहित्यकारों, शुभचिन्तकों, राजनीतिज्ञों तथा प्रकाशकों को इस दिशा में गंभीरता से सोचना होगा। सही रास्ता खोजना होगा, जिससे हम अपने आपको युग के नये फ्रेम में फिट कर सकें।

अन्य साहित्य के अतिरिक्त जब हम बच्चों की महँगी पुस्तकों को देखते हैं तो मन स्वयं पूछने लगता है कि जिस देश में ५० प्रतिशत से अधिक बच्चे कुपोषण के शिकार हों, ये महँगी पुस्तकें क्या उन नौनिहालों के हाथ तक पहुँच सकेंगी? बच्चे ही रीडिंग कल्चर की नींव हैं, हम उन्हें कमजोर कर देते हैं। कितना दुर्भाग्य है हमारा?

लेखक का सम्मान हमारे व्यवसाय का आधार है। उनका कृतित्व वह रत्न है जिसे तराश कर हम बाजार में रखते हैं। यदि रत्न ही नहीं रहेगा तो हम किसे तराशेंगे? इसलिये नयी पीढ़ी को चाहिए कि वह लेखकों और पाठकों से अच्छे सम्पर्क बनाये। ऐसा जन-दरबारों के आयोजनों से ही संभव होगा, जिसमें लेखक, प्रकाशक और पाठक

तीनों मिल-बैठकर पुस्तक-उत्पादन तथा लेखन की समस्याओं पर चर्चा करें। दूरदर्शन, आकाशवाणी, समाचार पत्रों आदि प्रचार माध्यमों का भी पूरा सहयोग लेना होगा।

प्रकाशन-सामग्री के लिए हमें अनुवाद पर अधिक ध्यान देना होगा। कोई भाषा और साहित्य अनुवाद के बिना समृद्ध नहीं हो सकती। आज से पचहत्तर वर्ष पहले इंगलैण्ड में फ्रेंच भाषा छायी हुई थी, पर अंग्रेजी ने अनुवाद का ऐसा सहारा लिया कि आज संसार में उसका साहित्य सबसे समृद्ध हो गया है। बहुत से लोग प्रश्न उठाते हैं कि हिन्दी में तो अन्य भारतीय भाषाओं का अनुवाद हो रहा है, पर इसकी तुलना में अन्य भारतीय भाषाओं में उस सीमा तक हिन्दी कृतियों का अनुवाद नहीं हो पा रहा है। इसलिए हिन्दी को भले ही भारतीय भाषाओं के मंच पर पहुँचने में देर लगे, लेकिन विश्वास है कि हिन्दी एक दिन पूरे भारतीय भाषाओं के मंच पर जरूर पहुँचेगी। अस्तु हमें यथाशीघ्र भारतीय भाषाओं और विदेश की समृद्ध भाषाओं की मौलिक कृतियों को हिन्दी के मंच पर अनुवाद के माध्यम से लाना चाहिए।

भारतीय भाषायी सन्दर्भ में हिन्दी पुस्तकों का प्रसार

हिन्दी पुस्तकें लोकप्रिय कैसे हों

हिन्दी जनसंख्या की दृष्टि से आज दुनिया की तीसरी भाषा है। मात्र भारत में इसके प्रयोक्ताओं की संख्या लगभग ५० करोड़ है। यह नेपाल, म्यामार, पाकिस्तान, बंगलादेश, मारिशस, त्रिनिदाद, फिजी आदि एशिया और अफ्रीका के अनेक भागों में व्यवहृत होती है। भारत में यह बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, हरियाणा, दिल्ली और हिमांचल प्रदेश की राजभाषा है। देश के सभी भागों में यह बोली समझी जाती है। भारत के प्राय: सभी राज्यों ने इसे राष्ट्रभाषा स्वीकार किया है। देश के सभी महानगरों के बहुत बड़े हिस्से द्वारा प्रयुक्त होती है। अनेक सार्वजनिक, सरकारी तथा अर्द्ध सरकारी संस्थाएँ हिन्दी की सृजनात्मक कृतियों को प्रतिवर्ष पुरस्कृत करती हैं जिससे उन कृतियों को जनता तक पहुँचाने में सहायता मिलती है। अनेक उन्नत देशों में हिन्दी के शिक्षण-प्रशिक्षण की व्यवस्था है। इतना विराट क्षेत्र पाकर भी हिन्दी पुस्तकों की लोक-प्रियता के समक्ष प्रश्न चिन्ह क्यों है?

इस प्रश्न के सन्दर्भ में अनेक समस्यायें और प्रतिप्रश्न खड़े होते हैं। हिन्दी प्रकाशनों के नाम पर जो लोकप्रिय साहित्य है, वह क्या हैं? फिल्मी साहित्य, अपराध साहित्य तथा अश्लील प्रकाशन, क्या ये हितकर है, शिव है? अनेक पेटेन्ट नामों से प्रकाशित हिन्दी का छद्मनामी लेखन हमारे सृजनात्मक साहित्य को आज किस सीमा तक प्रभावित कर रहा है? क्या इस छद्मनामी लेखन (पोस्ट राइटिंग) ने नई प्रतिभाओं का प्रवेश द्वार बन्द नहीं कर दिया है?

पुस्तक खरीदकर पढ़ने की प्रवृत्ति क्यों सूखती जा रही है? हिन्दी प्रकाशन सरकारी खरीद और पुस्तकालयों का मुहताज क्यों होता जा रहा है? 'सेल्स प्रमोशन' के नाम पर पुस्तकों की खरीद के लिए दी जानेवाली मोटी-मोटी रकमें इस सारस्वत व्यवसाय के लिए क्या कलंक नहीं हैं? क्या इस कुप्रवृत्ति का प्रभाव हिन्दी की पुस्तकों के बढ़ते मूल्यों पर नहीं पड़ता? आज हमारे देश में विकसित देशों की तुलना में कागज का मूल्य अधिक है। पुस्तक निर्माण का ६० से ७० प्रतिशत खर्च कागज पर पड़ता है। लेखकीय, पारिश्रमिक और अन्य व्यय के मद में धन का बहुत कम हिस्सा आता है। यहीं हिन्दी लेखकीय सन्दर्भ भी हमारी चिन्तन परिधि को स्पर्श करता है। क्या कारण है कि हिन्दी लेखकों की विश्व के अनेक भाषाओं के लेखकों की तुलना में आर्थिक स्थिति

बहुत खराब है। विशुद्ध लेखकीय कर्म से सम्मानपूर्वक जीवन-यापन करनेवाले आज हिन्दी में कितने लेखक हैं। थोक खरीद में परदे के पीछे चलनेवाली कुप्रथा प्रकाशकों के एक छोटे वर्ग को भले ही लाभान्वित करती हो, पर पुस्तक-व्यवसायियों की तो कमर तोड़ देती है। पुस्तक-व्यवसाय के क्षेत्र में 'बुकसेलर' की भूमिका नगण्य होती जा रही है। जहाँ बुकसेलर ही 'सेल्स प्रमोशन' का मूल माध्यम था, वहाँ आज उसका अस्तित्व खतरे में है। क्या पुस्तकों की लोकप्रियता के सम्बन्ध में यह स्थिति शुभ है—यदि नहीं तो 'बुकसेलर' के अस्तित्व की रक्षा कैसे हो? यह यथार्थ है कि हमारा देश गाँवों में निवास करता है, फिर उनके लिए हम क्या छापते हैं? क्या उन ग्रामों और उनकी आवश्यकताओं की उपेक्षा पर कोई साहित्य लोकप्रिय हो सकता है—ग्राम इकाइयों, ग्राम सभाओं और विकास-खण्डों के लिए कैसा साहित्य चाहिए? पुस्तकों की लोकप्रियता में इनकी क्या भूमिका हो सकती है।

हिन्दी तथा भारतीय भाषाओं की पुस्तकें यदि बिकती नहीं हैं तो इसका बहुत बड़ा कारण यह भी है कि खरीदनेवाले ज्यादातर अँग्रेजी-पुस्तकें खरीदते हैं और अपनी भाषा की पुस्तकें खरीदी नहीं जाती हैं। इस हालत में यह आवश्यक हो जाता है कि अँग्रेजी के उपन्यासों के आयात पर प्रतिबन्ध हो। उटपटाँग साहित्य जिसका किशोर-मन पर अस्वस्थ प्रभाव पड़ता है, भारत में नहीं मँगाया जाय।

यह भी एक बिडम्बना है कि भारत में बहुत कुछ प्रकाशन या तो अँग्रेजी का हिन्दी अनुवाद हैं या अँग्रेजी से प्रभावित हैं। उनमें भारतीयता उस तरह प्रतिबिम्बित नहीं होती जिस तरह होनी चाहिए। यह भी एक कारण हो सकता है कि बहु भाषा-भाषी भारतीय ग्राम समाज में भारतीय भाषा का साहित्य उतना लोकप्रिय नहीं हो पाता है।

हमारे यहाँ राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय महत्व के पुस्तक मेले बहुधा आयोजित हुआ करते हैं। विदेशों में होंनेवाले पुस्तक मेलों में भी हम भाग लेते हैं। पुस्तकों की लोकप्रियता के सन्दर्भ में इनकी किस सीमा तक भूमिका प्रभावी रही है। महानगरों में आयोजित होनेवाले इन पुस्तक मेलों की गन्ध भी क्या देश के सुदूरवर्ती गाँवों में पहुँचती है? क्या गाँवों में चलनेवाले धार्मिक, सांस्कृतिक तथा ग्राम विकास सम्बन्धी मेलों के माध्यम से पुस्तकों की लोकप्रियता नहीं बढ़ाई जा सकती?

सरकार ने करोड़ों रुपये विभिन्न ग्रंथ अकादमियों तथा अन्य संस्थाओं को अनुदान के रूप में दिये हैं। आशा की गयी थी कि इनके माध्यम से हिन्दी में अच्छे ग्रन्थ आयेंगे और हिन्दी पुस्तकों की लोकप्रियता बढ़ेगी, किन्तु विश्वविद्यालयों के वांछित सहयोग के अभाव में यह स्वप्न साकार न हो सका। इस सम्बन्ध में हम क्या कर सकते हैं यह विचार करना होगा।

समाचार-पत्रों में प्रकाशित होनेवाली पुस्तक समीक्षा का पुस्तक लोकप्रियता के आन्दोलन में महत्वपूर्ण योगदान रहा है, किन्तु बिडम्बना है कि पत्रों में पुस्तक समीक्षा के लिये कोई स्थान नहीं है। हिन्दी का एक महत्वपूर्ण साप्ताहिक तो यह घोषणा भी कर चुका है कि हम पुस्तक समीक्षायें नहीं छापते। कृपया प्रकाशक पुस्तकें भेजकर लेखक

की रॉयल्टी का नुकसान न करें। हिन्दी पुस्तकों की लोकप्रियता के लिए चलाये जा रहे आन्दोलनों के लिए पत्र-पत्रिकाओं का सहयोग कहाँ तक आवश्यक है, यह बताने की जरूरत नहीं।

केन्द्र एवं राज्य सरकारें भारतीय भाषाओं को आगे बढ़ाने के लिए कुछ पैसों का सहयोग उसी तरह देती हैं, जैसे व्यापारी धर्मखाता निकालता है। किन्तु धर्मदान के कारण भारतीय भाषाओं का विकास, न्यायपालिका, कार्यपालिका और विधायियों में अपेक्षित ढंग से नहीं हो रहा है। हमें अपनी भाषाओं को पुराना स्थान देना होगा। तहसीलों से लेकर उच्चतम न्यायालय के सारे काम भारतीय भाषाओं में हों। कार्यपालिका और विधायिका का क्षेत्र और विस्तृत है। सारे देश में छोटे-बड़े औद्योगिक प्रतिष्ठान हैं, दफ्तर हैं, इन सबके कार्य केवल भारतीय भाषाओं में हों। विश्वविद्यालयों में सभी प्रकार के शोध का माध्यम भारतीय भाषायें हों। बैंक, बीमा कम्पनियों, देशी-विदेशी एजेन्टों के सभी काम का माध्यम ये ही भाषायें हो। पुस्तकालयों में पुस्तकों की खरीद अनुदानित भाषाओं के माध्यम से हों। अँग्रेजी के विज्ञापन कम किए जाँय। देशी भाषाओं के प्रकाशनों को बढ़ाने के लिए विशेष एजेन्सियों की स्थापना की जाय।

ये कुछ ऐसे चिन्तन बिन्दु हैं जिन पर हमें विचार करना है। हिन्दी पुस्तकें लोकप्रिय कैसे हों, इस सन्दर्भ में इन दृष्टियों से विचार अपेक्षित हैं।

पाठ्य-पुस्तकों का राष्ट्रीयकरण क्यों ?

१९५७ में तत्कालीन शिक्षामंत्री मौलाना अबुल कलाम आजाद ने देश के सभी राज्यों के शिक्षा मंत्रियों का एक सम्मेलन बुलाया था, जिसमें पुस्तकों के राष्ट्रीयकरण पर विचार-विमर्श हुआ। विचार-विमर्श में प्रकाशकों के विरुद्ध अभियोग उपस्थित किए गए थे कि वे रद्दी क़ागज पर पुस्तकें छापते हैं, पुस्तकों की छपाई अच्छी नहीं होती, मूल्य अनाप-शनाप रखे जाते हैं, पुस्तकों की सामग्री का चयन मानक नहीं होता, पुस्तकों में अशुद्धियाँ भरी रहती हैं आदि आदि!

उक्त सम्मेलन के कुछ दिन पश्चात् जनवरी १९५८ में उत्तर प्रदेश के तत्कालीन शिक्षामंत्री पं० कमलापति त्रिपाठी ने कहा था—शिक्षा के साथ-साथ पाठ्य-पुस्तकों का क्षेत्र स्वतन्त्र होना चाहिए। पाठ्य-पुस्तकों के समाजीकरण का प्रश्न एक सैद्धान्तिक प्रश्न है। आज विश्व में ऐसे भी देश हैं जहाँ पाठ्य-पुस्तकों का समाजीकरण हुआ है। इन देशों में सरकार लेखकों और प्रकाशकों पर अपना अधिकार रखना उचित समझती है। पर यह प्रक्रिया स्वतन्त्र चिन्तन में बाधक होती है। हम सिद्धान्ततः स्वतन्त्र चिन्तन में बाधा डालने के विरुद्ध हैं।

उल्लेखनीय है कि गुजरात के शिक्षामंत्री ने भी इस योजना का विरोध किया था।

नीति में परिवर्तन

जो भी हो, सात वर्ष के पश्चात् केन्द्रीय सरकार को इस दिशा में अपनी नीति को बदलने की आवश्यकता प्रतीत हुई और शिक्षामंत्री मुहम्मद करीम छागला ने मुदालियार कमीशन के सुझावों के अनुसार नई नीति की घोषणा की। उक्त कमीशन का सुझाव था कि शिक्षा विभाग को कुछ ऐसी पुस्तकें प्रकाशित करनी चाहिए जो प्रकाशनों के उपमान स्वरूप प्रस्तुत की जा सकें तथा जिनका अनुकरण कर प्रकाशक अच्छी पुस्तकें प्रकाशित करने के लिए प्रेरित हों। फिर भी कमीशन ने यह स्पष्ट उल्लेख कर दिया था कि हम कभी भी पुस्तकों के चयन को सीमित नहीं करना चाहते और न ही निजी प्रकाशकों के पुस्तक प्रकाशन क्षेत्र को प्रतिबन्धित करना चाहेंगे।

उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा भी आचार्य नरेन्द्रदेव की अध्यक्षता में एक समिति गठित की गयी थी। उसमें कहा गया था कि "यह उचित नहीं है कि पूरे राज्य में एक ही पाठ्य-पुस्तक लागू हो। प्रतियोगिता के अभाव में सरकारी प्रकाशनों का स्तर गिरने लगेगा। स्कूली पुस्तकों का प्रकाशन पूर्णरूपेण निजी प्रकाशन संस्थाओं के हाथ में होना चाहिए।"

इसी प्रकार राधाकृष्णनन् समिति ने भी एक ही पुस्तक के प्रचलन का विरोध करते हुए कहा था—"किसी भी शिक्षाक्रम के लिए तैयारशुदा पुस्तकें नहीं होनी चाहिए।

एकमेव पुस्तक के निर्धारण का स्वाभाविक परिणाम यह होगा कि छात्र सच्चाई के साथ विषय में रुचि नहीं पैदा कर पाएँगे और अपने ज्ञान की वृद्धि नहीं कर सकेंगे।''

यूनेस्को भी चिंतित

यूनेस्को द्वारा आयोजित विशेषज्ञों की क्षेत्रीय बैठक की एक विचार-गोष्ठी द्वारा यह विचार व्यक्त किया गया था—यह चिन्ता का विषय है कि क्षेत्र की कुछ राष्ट्रीय सत्ताओं ने पाठ्य-पुस्तकों का प्रकाशन अपने हाथ में ले लिया है। पाठ्य-पुस्तकों का प्रकाशन प्रकाशकों के व्यापार का एक प्रधान अंग रहा है, जिसके कारण वे अन्य पुस्तकों के प्रकाशन का खतरा उठाते रहते हैं। इस क्षेत्र के स्वतन्त्र व्यवसाय में सर्वाधिक संभावनाओं, सर्वाधिक बचत तथा लेखकों की प्रेरणा का अधिकतम उपयोग करना चाहिये। साथ ही कलाकार, प्रोसेसर्स तथा मुद्रक आदि इस व्यवसाय के सभी तकनीकी उपांगों का मार्ग प्रशस्त करते है। पाठ्य-पुस्तकों के विषय में शासक वर्ग को अपना क्षेत्र प्रकाशन के न्यूनतम उपमान तथा पाठ्यसामग्री के स्तर के निर्धारण तक ही सीमित रखना चाहिए। देखना चाहिए कि प्रकाशक उनका पालन करते हैं कि नहीं।

इन सबके बावजूद पाठ्य-पुस्तकों का राष्ट्रीयकरण, जो एक तरह से सरकारीकरण है, किया गया और नतीजा सामने है।

एन. सी. ई. आर. टी.

१९६१ में अलग-अलग काम कर रही आठ शैक्षणिक संस्थाओं को एक सूत्र में बाँधकर, शिक्षा के क्षेत्र में कुछ प्रामाणिक उत्पादन हेतु 'राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण संस्था' की स्थापना की गयी। इस संस्था द्वारा विभिन्न कक्षाओं के लिए विभिन्न विषयों पर पाठ्य-पुस्तकें तैयार कर प्रकाशित की जाती हैं। लेकिन इनके द्वारा सम्पादित, प्रकाशित पुस्तकों में कितनी त्रुटियाँ होती हैं, यह किसी शिक्षाविद् या सामान्य पाठक से छिपी नहीं हैं। महाराष्ट्र सरकार ने चौथी और पाँचवीं कक्षा के लिए भूगोल की पाठ्य-पुस्तकें तैयार की थीं, परन्तु वे इतनी त्रुटिपूर्ण रहीं कि सरकार को सभी पुस्तकें वापस लेनी पड़ीं। पंजाब में कैरों सरकार के समय से कैरों की जीवनी पढ़ाई जाती थी। उनके जाते ही पाठ्य-पुस्तक में से वह अंश निकाल दिया गया। इसी प्रकार केरल में नम्बूदरीपाद सरकार के पतन के बाद नम्बूदरीपाद के जीवनी से सम्बन्धित पाठ को निकालना पड़ा। जम्मू-कश्मीर में पाठ्य-पुस्तक के एक अंश को लेकर जो विवाद खड़ा हुआ, वह सर्वविदित है। तो राष्ट्रीयकृत या सरकारी पुस्तकों के मानक मापदण्ड का आखिर क्या अर्थ हुआ।

राष्ट्रीयकरण का पक्ष

वस्तुतः राष्ट्रीयकरण का भ्रामक नामकरण ही सरकारी प्रक्रिया की अवांछनीयता को छिपाने का प्रयत्न मात्र है। जो कुछ हुआ है 'या हो रहा है' वह वास्तव में सरकारीकरण है। इसमें सरकारीकरण के सारे दोष विद्यमान हैं, परन्तु उस व्यवस्था में भी अच्छाइयाँ नहीं हैं जिसे राष्ट्रीयकरण के नाम पर लागू किया जा रहा है।

राष्ट्रीयकरण के पक्ष में तथा प्रकाशकों द्वारा प्रकाशित पाठ्य-पुस्तकों के विरुद्ध जो तर्क दिये जाते हैं, वे इस प्रकार हैं—

१. राष्ट्रीयकृत पुस्तकें अपेक्षाकृत सस्ती होती हैं।
२. प्रकाशकों द्वारा पुस्तकों के प्रकाशन में अनेक स्तरों पर भ्रष्टाचार की संभावना रहती है।
३. सम्पूर्ण राज्य के लिए एक ही पाठ्य-पुस्तक होने से प्रश्नपत्र बनाने में सुविधा रहती है और भिन्न प्रकाशकों की कई पुस्तकें होने पर असुविधा होती है।
४. राष्ट्रीयकृत पुस्तक होने से स्तर की एकरूपता रहती है। इसमें प्रमुख प्रश्न है मूल्य का।

मूल्य का प्रश्न

पुस्तकों के मूल्य को लेकर भी राष्ट्रीयकरण को युक्तिसंगत ठहराया गया है। जनहित की दृष्टि से पुस्तकों का मूल्य निश्चय ही कम होना चाहिए। परन्तु राष्ट्रीयकरण के बाद सरकारी पुस्तकें जिन कीमतों पर बाजार में आयीं और सरकार ने पुस्तकों के व्यापार में लाभ का जिस प्रकार से निश्चय किया, उससे उस उद्देश्य की पूर्ति नहीं हुई जो राष्ट्रीयकरण के नाम पर कही गयी थी। सदैव ऐसा होता आया है कि सरकार पाठ्य-पुस्तकों का मूल्य स्थिर कर देती है और प्रकाशक उसी मूल्य पर बेचते हैं। आज सरकार ने विभिन्न देशों से गिफ्ट के रूप में कागज तथा पुस्तक छापने के लिए प्रेस तथा मशीनें प्राप्त की हैं। कहा जाता है कि इससे पाठ्य-पुस्तक सस्ती हो जाएगी, परन्तु यह बात समझ में नहीं आती कि पाठ्य-पुस्तकों को सस्ता करने के लिए हम अपनी आर्थिक व्यवस्था को सुदृढ़ न कर, कब तक भिक्षा के कागज और मशीनों पर आश्रित रहेंगे ? बाजार में सरकार द्वारा स्वीकृत प्रकाशकों की पाठ्य-पुस्तकों के समकक्ष सरकारी प्रकाशनों को रखा जाय तो स्पष्ट प्रतीत होगा कि प्रकाशकों के प्रकाशन वर्तमान सरकारी व्यवस्था के अन्तर्गत प्रकाशित पुस्तकों से कहीं अच्छे हैं और उनका मूल्य सरकारी प्रकाशनों के मूल्य से अधिक न होकर उनसे कम हैं।

पुस्तकों के राष्ट्रीयकरण के सम्बन्ध में सरकारी "आफिशियल मशीनरी" के खर्च को भी कभी कम नहीं किया ज़ाता! यदि कहा जाय कि इस सरकारी धन्धे में लाखों रूपये अकारण व्यय हो जाते हैं तो अनुचित न होगा। प्रकाशकों का प्रतिष्ठापन अपने इसी काम के लिए होता है। उनके अपने अनुभव भी होते हैं। अपने अनुभवों के कारण उनका उत्पादन का खर्च कम पड़ता है। ठीक इसके विपरीत सरकारी कार्यालय करदाताओं की रकम का दुरुपयोग करते हैं और बहुत बड़ी राशि अकारण बह जाती है, जिसका सदुपयोग यदि सरकारें पुस्तकालय योजना में करें तो अधिक लाभकर होगा।

प्रकाशकीय भ्रष्टाचार का प्रश्न

दूसरा प्रश्न उठाया जाता है निजी प्रकाशकों द्वारा प्रकाशन व्यवस्था में अनेक स्तरों पर होनेवाले भ्रष्टाचार का। इस सन्दर्भ में कतिपय प्रकाशकों द्वारा प्रकाशित पुस्तकों की

छपाई-सफाई के स्तर का उपयोग राष्ट्रीयकरण के पक्ष के समर्थन में किया गया। यह बात बार-बार उठाई गई कि प्रकाशक पाठ्य-पुस्तकों में रद्दी कागज का व्यवहार करते हैं, रद्दी छपाई करते हैं, पुस्तकों में उचित स्थान पर चित्र नहीं देते और उनकी पुस्तकों की बँधाई आदि अच्छी नहीं होती। सरकारी दृष्टिकोण को सर्वथा समुचित मान लेना ठीक नहीं होगा। यह स्वीकार किया जाता है कि कतिपय प्रकाशकों (जो कि प्रकाशकीय मर्यादा नहीं समझते) ने लापरवाही से पुस्तकों का प्रकाशन गलत अवश्य किया, परन्तु यह तर्क उन सभी प्रकाशकों के लिए लागू नहीं होता जिनकी पुस्तकें आज के राजकीय प्रकाशनों के मुकाबले में कई गुना अच्छी हैं। सरकारी प्रकाशन व्यवस्था में प० बंगाल, महाराष्ट्र और उत्तर प्रदेश के सरकारी प्रकाशनों को छोड़कर पंजाब, बिहार, उड़ीसा, कर्नाटक, राजस्थान, आन्ध्र आदि राज्यों के जो प्रकाशन हुए हैं, वे बहुत निम्न स्तर के हैं। इनके विषय में यही कहा जा सकता है कि सामान्य प्रकाशक इन प्रकाशनों से अच्छे प्रकाशन प्रस्तुत कर सकता है। उदाहरण के लिये बिहार सरकार की पुस्तकों को लीजिए—भोंड़ी छपाई, टूटी मात्राएँ, रद्दी बँधाई इनकी विशेषताएँ हैं। आन्ध्र, उड़ीसा, राजस्थान और कर्नाटक के प्रकाशन भी प्रायः इसी श्रेणी के हैं। इसका कारण है इन प्रदेशों में उन्नत स्तर का मुद्रण कार्य नहीं हो पा रहा है। जल्दी-जल्दी में या तो सरकारी प्रेसों में पुस्तकें छपती हैं या ऐसे प्रेसों में दे दी जाती हैं, जो आधुनिक उपकरणों के अभाव में अच्छा मुद्रण नहीं कर पाते, परन्तु कम दिए टेण्डर के कारण छपाई का काम पा जाते हैं। यह मसला तभी हल हो सकता है जब सरकार करोड़ों की मशीनें मँगाये और सरकारी प्रेसों को सुदृढ़ करे। दूसरा पक्ष भी सामने है। प्रकाशकों के हाथ में जब यह कार्य रहा, तो इन प्रदेशों में अधिकांश पुस्तकें कलकत्ता बम्बई के सुप्रसिद्ध प्रेसों में मुद्रित होती थीं अथवा प्रकाशक, बड़े-बड़े शहरों से जहाँ अच्छी मुद्रण संस्थाएँ हैं, में अपनी पुस्तकें छपवाते थे। यदि पुस्तकों का राष्ट्रीयकरण न हो तो स्वाभाविक है कि प्रकाशक नई मशीनें स्वयं खरीदेंगे और जो कार्य सरकार के खजाने की रकम से हो रहा है उसे विभिन्न प्रकाशक दायित्व समझ कर करने लगेंगे। आज के युग का प्रकाशक छपाई सफाई के मामले में बहुत ही सचेष्ट है। इसका एक ज्वलन्त प्रमाण देखना चाहें, तो सरकारी पुस्तकों की तुलना साहित्यिक पुस्तकों से कीजिए। स्पष्ट हो जाएगा कि प्रकाशकों की प्रकाशन क्षमता कितनी आगे है। बहुत कम बिकने वाली साहित्यिक पुस्तकों को जब प्रकाशक इतना सुन्दर प्रकाशित कर सकते हैं तब कोई कारण नहीं कि अधिक बिकनेवाली स्कूली पुस्तकें प्रकाशक अच्छी प्रकाशित न करें। हिन्दी तथा बंगला पुस्तकों के कतिपय प्रकाशकों ने प्रकाशन का जो मानदण्ड स्थापित किया है, वह इस बात का प्रतीक है कि हमारे देश की प्रकाशन व्यवस्था आज विदेशों के समकक्ष होने जा रही है। सरकार के पास अभी ऐसी मशीनों का नितान्त अभाव है जो पुस्तकों की छपाई-सफाई और उसके उत्पादन को नई दिशा दे सके। इसके ठीक विपरीत आज का लिखा-पढ़ा अनुभवी प्रकाशक अच्छी पाठ्य-पुस्तकें प्रकाशित कर सकता है, जो कि छात्रों के लिए आकर्षक होने के साथ-साथ उनकी रुचि का परिष्कार भी करेंगी।

पाठ्य-पुस्तकों के आवरण के सम्बन्ध में भी आलोचनाएँ सामने आयी हैं, किन्तु राजकीय प्रकाशनों के आवरण ही अच्छे प्रकाशित हुए हों, यह भी तो देखने में नहीं आया। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि मुद्रण प्रतियोगिता में आज तक सरकारी पुस्तकों के कवरों के मुकाबले प्राइवेट प्रकाशकों के कवर ही पुरस्कृत हुए हैं।

निजी बनाम सार्वजनिक वितरण-व्यवस्था

पाठ्य-पुस्तकों का राष्ट्रीयकरण हो जाने के बाद इन पुस्तकों की वितरण व्यवस्था इतनी रद्दी हो जाती है कि सामान्य छात्रों को इनका मिलना ही कठिन हो जाता है। सरकारी पुस्तकें प्राप्त करने के लिए कतिपय प्रदेशों में पुस्तक विक्रेता परेशान हो जाते हैं, उन्हें महीनों पहले रूपये जमा कराने पड़ते हैं और तब भी पुस्तकें समय पर नहीं मिलतीं। कभी-कभी सरकारी प्रकाशन बाजार में बहुत विलम्ब से उपलब्ध होते हैं और समय पर पुस्तक विक्रेताओं को न मिलने के कारण छात्रों को पुस्तकें मिलने में बहुत ही असुविधा होती है। इसके ठीक विपरीत प्रकाशकों की वितरण व्यवस्था बहुत ही उत्तम होती है। आपस में स्पर्द्धा होने के कारण प्रत्येक प्रकाशक यह चाहता है कि उसकी पुस्तक बाजार में सुलभ हो और शीघ्र बिक जाय। वह अपने एजेण्टों को स्थान-स्थान पर नियुक्त करता है और उन एजेण्टों द्वारा पुस्तकों का वितरण करवाता है। प्रकाशक अपनी पुस्तकों के प्रचार के लिए विक्रेताओं को १५ से २५ प्रतिशत तक कमीशन भी देता है। अधिकांश राष्ट्रीयकृत प्रकाशन दस से पन्द्रह प्रतिशत कमीशन पर विक्रेताओं को उपलब्ध होते हैं, ऐसी स्थिति में विक्रेताओं को इस कारण क्षति तो होती ही है, साथ ही कभी-कभी छात्रों को ऐसी पुस्तकों का मूल्य भी अधिक देना पड़ता है। आमतौर पर विक्रेता १० या १२१/२ प्रतिशत पर खरीदता है, उन पर माल भाड़ा, पैकिंग खर्च आदि देने पर सवा छह से साढ़े सात प्रतिशत तक खर्च और पड़ जाता है, अतः मूल्य के साथ अन्य खर्चे किसी रूप में वह नहीं लेगा तो क्या करेगा।

एकाधिकार का यह व्यापार इस दुर्गुण को उत्पन्न करता है, जिसमें पुस्तकें बाजार में महँगी मिलती हैं। यदि यहाँ खुली स्पर्द्धा हो तो पुस्तकों के मूल्य बढ़ने का प्रश्न ही न उठे। वितरण-व्यवस्था के अभाव में सरकार द्वारा प्रकाशित पुस्तकें गोदामों में सड़ जाती हैं और उनकी जगह नकली पुस्तकें छपकर बाजार में बिक जाती हैं। पुस्तकों के इस जाली व्यवसाय की जितनी भी निन्दा की जाय थोड़ी है। परन्तु उसी के साथ सरकारी पुस्तकों के वितरण की त्रुटियों पर ध्यान देना होगा। यदि सरकारी वितरण-व्यवस्था सुदृढ़ हो तो कोई वजह नहीं कि नकली पुस्तकों को बाजार में स्थान मिले।

एकरूपता का प्रश्न

तीसरा प्रश्न है राज्य में एक ही तरह की पुस्तकों के होने से प्रश्नपत्र बनाने में सुविधा के बारे में। माना, प्रश्नपत्र बनाने में असुविधा केवल हिन्दी, अंग्रेजी आदि भाषा विषयों में ही होती है, जहाँ कई स्वीकृत पाठ्यपुस्तकों से सन्दर्भ प्रश्न देना आवश्यक हो जाता है। लेकिन प्रश्नपत्रों की जिस नई पद्धति को आज अपनाया जा रहा है, उससे यह

कठिनाई बहुत सीमा तक अपने आप कम हो जायेगी, क्योंकि उसमें सन्दर्भ प्रश्न पूछे ही नहीं जाते। शेष जो चीजे रह जायेंगी उसका निराकरण भी कठिन नहीं है। करना केवल इतना ही होगा कि भाषाओं का पाठ्यक्रम निर्धारित करते समय लेखों तथा उनके पाठों का भी निर्धारण एक समान सभी पाठ्य पुस्तकों में कर दिया जाय। इसके बाद प्रकाशकों को उनका क्रम निश्चित करने, भूमिका, सहायक सामग्री और प्रश्न आदि प्रस्तुत करने की स्वतन्त्रता दी जाये।

राष्ट्रीयकरण के पक्ष में एक तर्क यह भी दिया जाता है कि उसमें एकरूपता रहती है। सरकारी कर्मचारियों के एक स्थान से दूसरे स्थान में स्थानान्तरित होने पर उनके बच्चों को पढ़ाने में असुविधा नहीं होती। सवाल यह उठता है कि क्या राष्ट्रीयकृत पुस्तकें सरकारी कर्मचारियों के बच्चों के लिए ही तैयार की जाती हैं? राष्ट्रीयकरण शिक्षा में एकरूपता के सिद्धान्त को मानकर चलता है, जो भारत जैसे विशाल एवं विविधताओं से भरे देश के लिए उपयुक्त नहीं है। एक स्तर से लिखी गयी मात्र एक पुस्तक विविध क्षेत्रों एवं स्तरों के विद्यार्थियों के लिए उपयुक्त हो ही नहीं सकती। प्रकाशकों की पुस्तकें समान पाठ्यक्रम के अनुरूप स्तर की विविधता के अनुसार सभी क्षेत्रों की आवश्यकता की पूर्ति कर लेती है। कई पुस्तकें होने पर अध्यापकों को अपने विद्यार्थियों के स्तर तथा उनकी रुचि के अनुरूप पुस्तक चयन करने की सुविधा रहती है।

राष्ट्रीयकरण में भ्रष्टाचार

इनके अलावा निजी प्रकाशक एवं पुस्तक विक्रेता के रूप में राष्ट्रीयकृत पुस्तकों के सम्बन्ध में कुछ और भी बाते हैं, जिन्हें उल्लेख करना जरूरी है। राष्ट्रीयकृत पुस्तकों के मुद्रण तथा वितरण में विविध कारणों से विलम्ब होता है और वे विद्यार्थियों को समय से नहीं मिल पाती हैं। गत वर्षों में जब कभी सदन में अथवा समाचारपत्रों में पाठ्यपुस्तकों के अभाव की बात उठी है तो उसका सम्बन्ध राष्ट्रीयकृत पुस्तकों से ही रहा है। प्रकाशकों की पुस्तकों के सम्बन्ध में ऐसी शिकायत कभी नहीं हुई है।

राष्ट्रीयकरण की वर्तमान व्यवस्था से एक विशेष प्रकार के भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिलता है तथा आर्थिक व्यवस्था को क्षति पहुँचती है। इसके विपरीत प्रकाशक अपनी आय का समुचित भाग रचनात्मक साहित्य के प्रकाशन जैसे उत्पादक कार्यों में लगाता है जिससे रोजगार के नये अवसर उत्पन्न होते हैं।

सरकारी व्यवस्था में पुस्तकें शिक्षा के हित को ध्यान में न रखकर तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों के अनुसार, अर्थात् प्रचार का उद्देश्य सामने रखकर लिखाई जाती है, जबकि प्रकाशकों की पुस्तकें इस प्रकार के राजनीतिक प्रभावों से मुक्त रहती हैं।

सरकारी एकाधिकार खतरनाक

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि पाठ्यपुस्तकों का राजकीय एकाधिकार जनतन्त्र में एक बहुत खतरनाक पद्धति है। वास्तविक बात यह है कि केवल तानाशाह देशों में ही बच्चों पर विचारधारा थोपने का यह तरीका अपनाया जाता है। भारत जैसे लोकतंत्रिक देश में

इस पद्धति के पनपने से निश्चय ही बालकों की विवेकशक्ति को विकसित करने का मार्ग अवरुद्ध हो जायेगा, क्योंकि उनको उधार लेकर संगृहीत किये हुए विचारों पर निर्भर रहना सिखाया जायेगा।

अन्त में प्रसिद्ध शिक्षाविद् हाल क्वेस्ट की पुस्तक 'द टेक्स्ट बुक' से सरकारीकरण के विरुद्ध जो तर्क प्रस्तुत किये गये हैं उन्हें उद्धृत करते हुए प्रश्न पूछना चाहेंगे कि इन खामियों के बावजूद भी पाठ्य पुस्तकों का राष्ट्रीयकरण क्यों ?

१. यदि सभी खर्चों को शामिल किया जाय तो जनता को सरकारी पुस्तकों का कम मूल्य नहीं देना पड़ता।

२. सरकारी पुस्तकें छपाई आदि की दृष्टि से कभी भी अच्छे स्तर की नहीं होतीं।

३. उनका शैक्षिक स्तर नीचा होता है।

४. वे बहुधा देर से छपकर बाजार में आती हैं।

५. उनको बदल कर अच्छी पुस्तक को अपनाना कठिन होता है।

६. विद्यार्थियों को एक पुस्तक तक सीमित होकर पढ़ने की आदत पड़ जाती है और वे अन्य पूरक पुस्तकें नहीं पढ़ते।

७. सरकार का पुस्तक-व्यापार में हाथ डालना उचित नहीं है क्योंकि यह काम निःशंक रूप से निजी प्रकाशकों के हाथ में छोड़ा जा सकता है।

८. सरकारी व्यवस्था में शीघ्र ही गिरावट तथा भ्रष्टाचार आजाता है।

९. शिक्षा के हित पर राजनीतिक आवश्यकतायें हावी हो जाती हैं।

१०. अध्यापकों की शैक्षणिक प्रवृत्ति को आघात पहुँचता है।

११. लेखनकला तथा प्रकाशन व्यवसाय में प्रतियोगिता की प्रेरणा समाप्त हो जाती है।

१२. सरकार पुस्तकों की कीमत कम करने के फेर में उनकी अच्छाइयों की ओर ध्यान नहीं देती।

पुस्तक विकास के भावी पाँच वर्ष

किसी ने पुस्तक को विश्व की संज्ञा दी है। सचमुच यह एक प्रीतिकर संयोग है कि हमारे देश में पुस्तकरूपी विश्व की जानकारी प्राप्त करने के लिए आनेवाली पीढ़ी में जिज्ञासा पायी जा रही है। आँकड़े बोलते हैं कि आगामी दो वर्षों में हमारे यहाँ प्राइमरी से विश्वविद्यालय तक शिक्षा प्राप्त करनेवाले विद्यार्थियों की संख्या दस करोड़ से अधिक होगी और २५ करोड़ नए पाठक तैयार होंगे। तब इतने विराट् पाठक जगत् के लिए आवश्यकता पड़ेगी पुस्तकों के सृजन, प्रकाशन और उनके समुचित वितरण की। वास्तव में आगामी पाँच वर्ष इस बात के साक्षी होंगे कि क्या हमारे देश के लेखक, प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता देश के नव जागरण में साँस ले रही नयी पीढ़ी की शिक्षा की भूख को तुष्ट करने में समर्थ होंगे? ऐसे कई प्रश्नचिह्न आज के प्रत्येक सजग लेखक, प्रकाशक और पुस्तक-विक्रेता के मन-मस्तिष्क में कई कोणों से उभरते हैं और उभरने भी चाहिए। इन प्रश्नचिह्नों के जंगल से गुजरते हुए इन पंक्तियों के लेखक ने भी अनेक दृष्टियों से ऐसी समस्याओं पर सोचने की कोशिश की है। इसी चिन्तन-प्रक्रिया से उपजे कुछ विचार यहाँ प्रस्तुत हैं।

हिन्दी हमारे देश की राष्ट्र-भाषा है। राजनीतिक कुचक्रों के कारण हिन्दी का विरोध भले ही दो-एक राज्यों में हो रहा है, लेकिन जिस गति से सारे देश में केन्द्र तथा राज्य सरकारों के द्वारा हिन्दी के विकास के लिए प्रयत्न किये जा रहे हैं, उससे यहं आवश्यक हो गया है कि हम इस बात के लिए प्रयत्नशील हों कि हिन्दी में विविध विषयों की अच्छी से अच्छी पुस्तकें प्रकाशित हों, जो सभी वर्ग के पाठकों की जिज्ञासाओं, मनोकांक्षाओं और शिक्षा सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें।

इस सन्दर्भ में यह भी ध्यान देने की बात है कि आज पुस्तकों को पढ़ने की रुचि हमारे देश में कम है। बावजूद तमाम प्रयत्नों के अभी भी अच्छी पुस्तकों के पाठकों की संख्या लेखन-प्रकाशन व्यवसाय के लिए चिन्ता का कारण बनी हुई है। परन्तु समय के साथ-साथ रुचि जग रही है। पढ़ने-लिखने के अंकुर उग चुके हैं और अब आवश्यकता है उनको अच्छी तरह सींचने की। हमें इस मार्ग में आनेवाली बाधाओं को नष्ट करने की बात भी सोचनी है और साथ ही किन कारणों से लोग पुस्तकें खरीद नहीं पाते, इस पर भी विचार करना है। जहाँ तक पाठ्य-पुस्तकों का प्रश्न है, वे तो अनिवार्य रूप से बिकेंगी ही, परन्तु उच्चस्तरीय साहित्यिक प्रकाशनों के विक्रय एवं प्रचार-प्रसार के लिए अतिरिक्त प्रयत्न होना चाहिए।

इस सन्दर्भ में सोचने पर तीन तथ्य विशेष रूप से हमारे सामने आते हैं—पहला देश की आर्थिक स्थिति, दूसरा पठनाभिरुचि आन्दोलन और तीसरा सत्साहित्य का सृजन।

इस पद्धति के पनपने से निश्चय ही बालकों की विवेकशक्ति को विकसित करने का मार्ग अवरुद्ध हो जायेगा, क्योंकि उनको उधार लेकर संगृहीत किये हुए विचारों पर निर्भर रहना सिखाया जायेगा।

अन्त में प्रसिद्ध शिक्षाविद् हाल क्वेस्ट की पुस्तक 'द टेक्स्ट बुक' से सरकारीकरण के विरुद्ध जो तर्क प्रस्तुत किये गये हैं उन्हें उद्धृत करते हुए प्रश्न पूछना चाहेंगे कि इन खामियों के बावजूद भी पाठ्य पुस्तकों का राष्ट्रीयकरण क्यों ?

१. यदि सभी खर्चों को शामिल किया जाय तो जनता को सरकारी पुस्तकों का कम मूल्य नहीं देना पड़ता।
२. सरकारी पुस्तकें छपाई आदि की दृष्टि से कभी भी अच्छे स्तर की नहीं होतीं।
३. उनका शैक्षिक स्तर नीचा होता है।
४. वे बहुधा देर से छपकर बाजार में आती हैं।
५. उनको बदल कर अच्छी पुस्तक को अपनाना कठिन होता है।
६. विद्यार्थियों को एक पुस्तक तक सीमित होकर पढ़ने की आदत पड़ जाती है और वे अन्य पूरक पुस्तकें नहीं पढ़ते।
७. सरकार का पुस्तक-व्यापार में हाथ डालना उचित नहीं है क्योंकि यह काम निःशंक रूप से निजी प्रकाशकों के हाथ में छोड़ा जा सकता है।
८. सरकारी व्यवस्था में शीघ्र ही गिरावट तथा भ्रष्टाचार आजाता है।
९. शिक्षा के हित पर राजनीतिक आवश्यकतायें हावी हो जाती हैं।
१०. अध्यापकों की शैक्षणिक प्रवृत्ति को आघात पहुँचता है।
११. लेखनकला तथा प्रकाशन व्यवसाय में प्रतियोगिता की प्रेरणा समाप्त हो जाती है।
१२. सरकार पुस्तकों की कीमत कम करने के फेर में उनकी अच्छाइयों की ओर ध्यान नहीं देती।

पुस्तक विकास के भावी पाँच वर्ष

किसी ने पुस्तक को विश्व की संज्ञा दी है। सचमुच यह एक प्रीतिकर संयोग है कि हमारे देश में पुस्तकरूपी विश्व की जानकारी प्राप्त करने के लिए आनेवाली पीढ़ी में जिज्ञासा पायी जा रही है। आँकड़े बोलते हैं कि आगामी दो वर्षों में हमारे यहाँ प्राइमरी से विश्वविद्यालय तक शिक्षा प्राप्त करनेवाले विद्यार्थियों की संख्या दस करोड़ से अधिक होगी और २५ करोड़ नए पाठक तैयार होंगे। तब इतने विराट् पाठक जगत् के लिए आवश्यकता पड़ेगी पुस्तकों के सृजन, प्रकाशन और उनके समुचित वितरण की। वास्तव में आगामी पाँच वर्ष इस बात के साक्षी होंगे कि क्या हमारे देश के लेखक, प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता देश के नव जागरण में साँस ले रही नयी पीढ़ी की शिक्षा की भूख को तुष्ट करने में समर्थ होंगे? ऐसे कई प्रश्नचिह्न आज के प्रत्येक सजग लेखक, प्रकाशक और पुस्तक-विक्रेता के मन-मस्तिष्क में कई कोणों से उभरते हैं और उभरने भी चाहिए। इन प्रश्नचिह्नों के जंगल से गुजरते हुए इन पंक्तियों के लेखक ने भी अनेक दृष्टियों से ऐसी समस्याओं पर सोचने की कोशिश की है। इसी चिन्तन-प्रक्रिया से उपजे कुछ विचार यहाँ प्रस्तुत हैं।

हिन्दी हमारे देश की राष्ट्र-भाषा है। राजनीतिक कुचक्रों के कारण हिन्दी का विरोध भले ही दो-एक राज्यों में हो रहा है, लेकिन जिस गति से सारे देश में केन्द्र तथा राज्य सरकारों के द्वारा हिन्दी के विकास के लिए प्रयत्न किये जा रहे हैं, उससे यह आवश्यक हो गया है कि हम इस बात के लिए प्रयत्नशील हों कि हिन्दी में विविध विषयों की अच्छी से अच्छी पुस्तकें प्रकाशित हों, जो सभी वर्ग के पाठकों की जिज्ञासाओं, मनोकांक्षाओं और शिक्षा सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें।

इस सन्दर्भ में यह भी ध्यान देने की बात है कि आज पुस्तकों को पढ़ने की रुचि हमारे देश में कम है। बावजूद तमाम प्रयत्नों के अभी भी अच्छी पुस्तकों के पाठकों की संख्या लेखन-प्रकाशन व्यवसाय के लिए चिन्ता का कारण बनी हुई है। परन्तु समय के साथ-साथ रुचि जग रही है। पढ़ने-लिखने के अंकुर उग चुके हैं और अब आवश्यकता है उनको अच्छी तरह सींचने की। हमें इस मार्ग में आनेवाली बाधाओं को नष्ट करने की बात भी सोचनी है और साथ ही किन कारणों से लोग पुस्तकें खरीद नहीं पाते, इस पर भी विचार करना है। जहाँ तक पाठ्य-पुस्तकों का प्रश्न है, वे तो अनिवार्य रूप से बिकेंगी ही, परन्तु उच्चस्तरीय साहित्यिक प्रकाशनों के विक्रय एवं प्रचार-प्रसार के लिए अतिरिक्त प्रयत्न होना चाहिए।

इस सन्दर्भ में सोचने पर तीन तथ्य विशेष रूप से हमारे सामने आते हैं—पहला देश की आर्थिक स्थिति, दूसरा पठनाभिरुचि आन्दोलन और तीसरा सत्साहित्य का सृजन।

साहित्य, जिसको हम वास्तव में सर्वसाधारण के ज्ञान-बोध की कुँजी कहेंगे किस तरह घर-घर में पहुँचे—यह प्रश्न हमारे राष्ट्रीय जीवन के लिए विचारणीय है, इसीलिए हमें उतरोक्त तीनों तथ्यों पर गम्भीरतापूर्वक विचार करना होगा।

आर्थिक पहलू साहित्य के प्रचार एवं प्रसार के सन्दर्भ में सबसे बड़ी समस्या है। यह निर्विवाद है कि स्वतंत्रता के बाद अपनी आर्थिक समस्याओं को सुलझाने के लिए हमने आठ पंचवर्षीय योजनाएँ बनाईं। कृषि और उद्योग की बढ़ोत्तरी कर हम चेष्टा करते रहे हैं कि हमारे देश का आर्थिक सन्तुलन बने और हम विशेष रूप से दो क्षेत्रों—एक देश की सुरक्षा और दूसरे शिक्षा को व्यापक बनाने में अपना अर्थ व्यय करें। शिक्षा के क्षेत्र में, जब से देश स्वतन्त्र हुआ, बहुत बड़ी प्रगति हुई है। हजारों की संख्या में हाई स्कूल व हायर सेकेन्ड्री स्कूल खुले। तकनीकी और विज्ञान के प्राय: सभी अंगों के अध्ययन की व्यवस्था हुई और कई विषयों के तो स्वतन्त्र शिक्षा संस्थान भी स्थापित हुए। इतना ही नहीं साहित्य और ललित कलाओं के विभिन्न विषयों की अकादमियों की स्थापना हुई। पुरानी पाण्डुलिपियों तथा पुराने साहित्य की सुरक्षा के लिए 'आर्काइव्स' की स्थापना की गई और नए-नए वैज्ञानिक तरीकों से प्राचीन ग्रन्थों की सुरक्षा की व्यवस्था हुई। शिक्षा के क्षेत्र में 'ऑडियोविजुअल' और दूरवर्ती शिक्षा प्रणाली भी प्रारम्भ की गयी।

सारे देश में पुस्तकालयों का जाल बिछ गया। राज्य पुस्तकालयों, जिला पुस्तकालयों, नगर तथा ग्राम पुस्तकालयों, हर महत्वपूर्ण कार्यालयों के पुस्तकालयों, प्रत्येक शिक्षा-संस्थान के पुस्तकालयों और सार्वजनिक पुस्तकालयों को सरकार द्वारा दिए गए अनुदान पुस्तकालय आन्दोलन के बढ़ते चरण हैं। इस दिशा में आचार्य विनोबा भावे द्वारा गाँव-गाँव में घूम कर सर्वोदय साहित्य का प्रचार और सर्व-सेवा-संघ द्वारा सर्वोदय साहित्य का सुनियोजित प्रचार तथा पुस्तकालय खोलना हमारे देश में सर्वोदय-क्रान्ति का प्रतीक है। कहना न होगा कि यह जो कुछ हो रहा है उसमें अवश्य एक चमकती हुई रेखा हमारे शिक्षा-सौर-मण्डल के गगन से प्रतिबिम्बित हो रही है। ऐसा लग रहा है कि हमारे देश के साहित्य का भविष्य बहुत ही उज्ज्वल है।

आज एक बात स्पष्ट हो गई है कि हर घर में—चाहे वह निम्न वर्ग के एक गरीब का हो, चाहे मध्यमवर्ग के बाबू का या चाहे वह उच्चवर्ग के धनी-मानी का—सभी जगह अपनी सामर्थ्य के अनुसार पुस्तकें खरीदकर अथवा लाइब्रेरियों से लेकर पढ़ने का भाव जाग उठा है। किसी भी घर में आप जाइए, पुस्तकें आपको अवश्य मिलेंगी। तब प्रश्न उठता है—आर्थिक सन्तुलन का। इस स्थिति से आशंकित और भयभीत होना तथा पुस्तक-प्रचार का कार्य न करना प्रकाशकों के लिए निश्चय ही असाहसिक कदम माना जाएगा। वास्तव में आवश्यकता है अच्छे प्रकाशकों के सामने आने की, जो आधुनिकतम वैज्ञानिक प्रणाली को अपनायें, घरेलू लाइब्रेरी योजना चलायें, अच्छे-अच्छे फोल्डर छापें, पुस्तकों की प्रदर्शनियाँ लगायें तथा विषय-क्रम से आकर्षक सूचियों का प्रकाशन करें। जहाँ आज विश्व में विज्ञापन-प्रणाली में जे० वाल्टर और थाम्पसन की पद्धति अपनायी जा रही है, वहाँ बिना विज्ञापन के भारत में पुस्तकों को बेचना सम्भव नहीं है। देश की भावी पीढ़ी जिसकी रुचि अनिवार्यत: पठन-पाठन की ओर है, वह अब बहुत बड़े पाठक के

रूप में मिलेगी। आज हिन्दी में गिनती के अच्छे प्रकाशक हैं और ये मुट्ठी भर प्रकाशक उपरोक्त वर्ग की शिक्षा की भूख दूर कर सकते हैं। प्रकाशकों को देश के विद्वानों, लेखकों, चिन्तकों के सहयोग से बैज्ञानिक और आधुनिकतम प्रकाशन योजना बनानी होगी। उन्हें यह भी याद रखना होगा कि जो पाठक वर्ग हमारे सामने आ रहा है वह क्या पढ़ना चाहता है? उसकी रुचि का सर्वेक्षण करना होगा और तदनुकूल साहित्य प्रकाशित करना होगा।

यातायात, नई तकनीक यथा कम्प्यूटर, फोन आदि सुविधाओं के कारण आज विश्व बहुत ही छोटा हो गया है। अखबार निकलते हैं, उनमें देश-विदेश के समाचार होते हैं। फलतः हमारा पाठक वर्ग विश्व की जानकारी के लिए व्यग्र रहता है। उसे विश्व की प्रभूत जानकारी चाहिए। आज जितना साहित्य चाहिए उतना प्रकाशित करना बहुत परिश्रमसाध्य है। इस कार्य के लिए प्रकाशक अपनी निजी पंचवर्षीय योजनाएँ बनायें तो उत्तम होगा। नई-नई प्रतिभाएँ हमारे देश में जन्म ले रही हैं। रविबाबू, शेक्सपियर, शरत्चन्द्र, प्रेमचन्द, टाल्स्टाय और गाँधी जैसे महामानव इस धरा पर अभी भी हो सकते हैं। नित्य परिष्कृत विचारधाराएँ हमारे सामने आ रही हैं। ऐसे साहित्य को पोथियों के रूप में हमें जनता को अर्पित करना होगा।

हाल ही में केन्द्रीय मंत्रिमंडल ने यह घोषणा की कि विश्वविद्यालय स्तर तक शिक्षा का माध्यम क्षेत्रीय भाषाएँ होंगी। इस निर्णय का सारे देश में स्वागत हुआ है। देश के १०५ विश्वविद्यालयों में से ७० क्षेत्रीय भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाने के लिए सहमत हो गए हैं और १७ विश्वविद्यालय ऐसे हैं जो स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम भी क्षेत्रीय भाषाओं के माध्यम से पढ़ाने की व्यवस्था कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त यूनियन पब्लिक सर्विस कमीशन और राज्य पब्लिक सर्विस कमीशन भी अब क्षेत्रीय भाषाओं में ही परीक्षार्थियों को परीक्षा देने की सुविधा देने जा रहे हैं। स्पष्ट है कि इस घोषणा को मूर्त रूप देने के लिए हिन्दी के प्रकाशकों और लेखकों को निष्ठापूर्वक अपने दायित्व का निर्वाह करना होगा। पाँच वर्ष के भीतर प्रत्येक विषय पर पुस्तकें उपलब्ध करानी होंगी। देश की जितनी भाषाएँ हैं उनमें हिन्दी ही एक ऐसी भाषा है जिसमें विश्वविद्यालय स्तर की लगभग २५,००० पुस्तकें उपलब्ध हैं। इस दिशा में और काम हुआ होता, परन्तु ढुलमुल सरकारी नीति के परिणामस्वरूप अनेक विश्वविद्यालयों में दृढ़तापूर्वक हिन्दी तथा क्षेत्रीय भाषाओं में पढ़ाई न होने से लेखन और प्रकाशन की दिशा में वांछित प्रगति नहीं हुई। स्वाभाविक है कि जब इन्टरव्यू बोर्ड हिन्दी में प्रश्न पूछेंगे, आवेदन-पत्रों पर हिन्दी में संस्तुतियाँ प्रस्तुत की जाएँगी, विश्वविद्यालय के प्राध्यापक हिन्दी में ही पढ़ाने के लिए कृतसंकल्प हो जाएँगे, तब हिन्दी का भण्डार ज़रूर भरेगा। यहाँ यह भी आवश्यक है कि विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम का भारतीयकरण किया जाए, उन पर पड़े विदेशी पाठ्यक्रमों की छाप हटे।

मानवीय विषयों पर तो हिन्दी में बहुत कुछ है। रही विज्ञान और तकनीकी विषयों की बात, इस दिशा में विशेष उद्योग की आवश्यकता है। फिलहाल विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के तत्वावधान में अधिकांश विश्वविद्यालयों में हिन्दी में विज्ञान के विषयों पर

लेखन का कार्य हो रहा है। अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ के आगरा में होनेवाली कार्यकारिणी की बैठक के निर्णयानुसार सभी विश्वविद्यालयों के उपकुलपतियों को पत्र लिख कर यह आश्वासन दिया है कि आपके विश्वविद्यालय में जो भी पुस्तकें हिन्दी में लिखी जाएँगी उनका प्रकाशन संघ के माध्यम से करने की व्यवस्था तुरन्त की जाएगी। पत्र में इस बात की प्रतिश्रुति भी दी गई है कि समय के पूर्व पुस्तक प्रकाशित करने का दायित्व संघ का होगा। कुछ विश्वविद्यालयों के उत्तर भी प्राप्त हुए हैं कि वे संघ का सहयोग लेना चाहेंगे और उनके विश्वविद्यालयों में जो कार्य हिन्दी में हो रहा है उसे वे प्रकाशकों के माध्यम से कराना चाहते हैं।

व्यक्तिगत रूप से साहित्येतर विषय के प्राध्यापकों में उत्साह पाया जा रहा है कि हिन्दी में विश्वविद्यालय स्तर की पुस्तकों का लेखन उनके द्वारा तेजी से हो। परिणामत: इस दिशा में बहुत बड़ा कार्य सम्पन्न करने के लिए एक रूपरेखा प्रस्तुत हो रही है। हिन्दी प्रकाशक संघ ने जो रूप-रेखा बनाई है उसके अनुसार इस कार्य के लिए प्रमुख विषयों की ३० उपसमितियाँ बनाई जाएँ और उन प्रमुख ३० विषयों की पुस्तकों के प्रकाशन के सम्बन्ध में सुनियोजित रूप से प्रकाशक अपनी योजनाएँ बनाएँ।

विश्वविद्यालयों में स्नातक कक्षाओं के प्रथम वर्ष में हिन्दी अनिवार्य होगी, तदुपरान्त आगामी ५ वर्षों में स्नातकोत्तर कक्षाओं में भी हिन्दी तथा क्षेत्रीय भाषाएँ अपना स्थान ले लेंगी। अनुमान है कि प्रारम्भ में सभी विषयों में पाठ्य-पुस्तकें प्रस्तुत करने के लिए १००० प्रकाशकों की आवश्यकता होगी। हिन्दी के प्रकाशकों के लिए यह एक महान चुनौती है। यदि उन्होंने इस दिशा में अपनी सूझ-बूझ और व्यापारिक दृष्टिकोण से थोड़ा ऊपर उठकर कार्य किया तो नि:सन्देह हिन्दी पुस्तक-व्यवसाय के लिए आगामी ५ वर्ष एक प्रतिमान होगा।

कार्य कठिन है और समय के भीतर सम्पन्न करना है। इसलिए आवश्यक है कि प्रकाशक अपनी क्षमता के अनुसार विषय-विशेष के प्रकाशन के लिए अपने को तैयार करें। प्राणिशास्त्र की पुस्तकें छापनेवाले प्रकाशक को उस विषय की पुस्तकों के प्रकाशन में ही अपना ध्यान केन्द्रित करना चाहिए, भूगोल और इतिहासवाले अपने-अपने विषय पर ध्यान दें, इंजीनियरिंगवाले प्रकाशक भी अपने विषय के क्षेत्र में ही जुटें। कहने का आशय है कि प्रकाशकों के बीच प्रारम्भ में ही विषयों का विभाजन हो जाना आवश्यक है। विषयों के विभाजन का मापदण्ड करते समय ५ बातें सामने आएँगी—आर्थिक-क्षमता, मुद्रण-व्यवस्था, सम्बन्धित विषय की जानकारी, प्रकाशक का पुराना कीर्तिमान तथा वितरण की क्षमता। कहना न होगा कि इन कार्यों को व्यवस्थित रूप से सम्पन्न करने के लिए संघ को माध्यम बनाना अनिवार्य और लाभदायक होगा। संघ के विशेषज्ञों की कमेटी इस बात का निर्णय करेगी कि अमुक प्रकाशक अमुक विषय की पुस्तकें छापे। ऐसा करने का अर्थ किसी भी प्रकाशक पर यह बन्धन न होगा कि वह अन्य विषय का प्रकाशन न करे, वरन् यह उत्तरदायित्व उस पर सौंपा जाएगा कि संघ द्वारा निर्देशित विषय की पुस्तक वह अवश्य छापे। इस योजना का परिणाम यह होगा कि विषयविशेष में जब किसी विश्वविद्यालय, प्राध्यापक, छात्र तथा पाठक को पुस्तकें खोजनी होंगी तब उन्हें

आसानी से यह मालूम रहेगा कि अमुक विषय की पुस्तकें अमुक प्रकाशक द्वारा प्रकाशित होती हैं।

विश्वविद्यालय स्तर की पुस्तकें प्रकाशित करना साधारण बात नहीं है। विदेशों में जो बड़े-बड़े प्रकाशन संस्थानों में हर विषय के विशेषज्ञ नियुक्त रहते हैं, वे ही निर्णय करते हैं कि अमुक विषय पर किस तरह की पुस्तक पाठ्यक्रम के अनुसार तैयार करायी जाय। हमारे देश में ऐसे पुस्तक प्रतिष्ठान नहीं हैं जो परामर्श के लिए सम्बन्धित विषयों के विशेषज्ञों को नियुक्त करते हों। हमारे प्रकाशकों को इस भगीरथ कार्य को आगे बढ़ाने के लिए फिलहाल अपने संघ के माध्यम से ही कार्य करना श्रेयस्कर होगा। जो विषय संघ निर्धारित कर दे, उस विषय की पुस्तकें वे अवश्य छापें। इससे व्यक्तिगत रूप से जहाँ प्रकाशक अपने प्रकाशन को आगे बढ़ाने के लिए चेष्टा करेंगे, वहीं प्रारम्भ में संघ के माध्यम से पाण्डुलिपियाँ उपलब्ध करने में उन्हें सहायता मिलेगी।

पाठकों का जो वर्ग आज हमारे सामने आ रहा है और विभिन्न पुस्तकालयाध्यक्षों के अब तक के अनुभवों से जो स्पष्ट हुआ है, उसमें अधिकतर पढ़नेवाले ८ वर्ष से १४ वर्ष के बच्चे, १४ वर्ष से २५ वर्ष तक की युवतियाँ तथा इसके बाद ५० वर्ष से ऊपर के लोग हैं। इस तरह इन वर्गों को सदा पाठक बनाए रखने के लिए इस देश में बुक क्लबों की आवश्यकता है। इन बुक-क्लबों द्वारा पाठकों की रुचि का सर्वेक्षण होना चाहिए। ये क्लब देश के पुस्तकालयाध्यक्षों का सहयोग सर्वेक्षण के लिए ले सकते हैं। अब तक प्रकाशकों ने अपने पाठकों को खोजने के लिए सामान्य-सी इतनी चेष्टा भी नहीं की कि वे देश के प्रमुख पुस्तकालयाध्यक्षों से उन पाठकों के पते माँगते जो नियमित रूप से पुस्तकें पढ़ते हैं। इस दिशा में यदि कोई प्रयत्न किया जाए तो प्रत्येक परिवार में एक अच्छी लाइब्रेरी बन सकती है।

सत्य है कि हिन्दीतर प्रदेशों में भी हिन्दी के पाठक बड़ी संख्या में हैं। यदि हम इन प्रदेशों के पाठकों की रुचि का सर्वेक्षण करें और उनकी रुचि के अनुकूल प्रकाशन करें तो निस्सन्देह अच्छी संख्या में नये पाठक मिलेंगे। ऐसे प्रदेशों में प्रकाशकों को सेवा भावना से कार्य करना होगा। वहाँ के जन-मानस को हिन्दी के प्रति आकर्षित करने के लिए क्षेत्रीय भाषाओं के लेखकों की कृतियों का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित कराना चाहिए। उनका मूल्य भी कम हो, जिससे सर्वसाधारण में यह भाव जगे कि हिन्दी में बहुत बड़ा कार्य हो रहा है। प्रकारान्तर से हिन्दी के लेखकों और प्रकाशकों का यह कार्य सेवा माना जाएगा।

अच्छा मुद्रण और श्रेष्ठ प्रस्तुतिकरण भी पुस्तक-विकास के भावी कार्यक्रम से सम्बन्धित है। इसमें रंच-भर असत्य नहीं है कि हिन्दी पुस्तकों का मुद्रणस्तर तथा प्रस्तुतिकरण अभी उस स्तर का नहीं हो सका है, जिससे उसे विश्व के श्रेष्ठ प्रकाशनों के समकक्ष कहा जा सके। तथापि हिन्दी के प्रकाशकों ने पिछले दो दशकों में इस दिशा में बहुत काम किया है। कहा जाता है कि अच्छी मशीनों, अच्छे प्रेसों, अच्छे दफ्तरीखानों तथा अच्छे प्रूफरीडरों का अभाव है। परन्तु ये सब बातें एक समुन्नत राष्ट्र के लिए कायरता के द्योतक हैं। तथ्य हमारे संगठन की कमी को सामने लाता है। जापान का

प्रकाशक संघ अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ के साथ सन् १९५४ में स्थापित हुआ इस अल्प अवधि में ही वहाँ के प्रकाशकों ने अपनी समस्याएँ बहुत अंशों में हल कर ली हैं। सौ से ऊपर लोग जापान प्रकाशक संघ के कार्यालय में काम करते हैं, जबकि अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ का दफ्तर अभी भी एक छोटे से कमरे में पड़ा है। आवश्यकता है प्रशिक्षित कार्यकर्ताओं को तैयार करने, मुद्रण-सम्बन्धी विभिन्न विषयों का ज्ञान प्रकाशकों को देने और ऐसे विक्रेताओं को तैयार करने की जो पुस्तकों का महत्व सर्वसाधारण को समझा सकें।

हमारी लाइब्रेरियों में भी कुछ दुर्व्यवस्थायें आ गई हैं। विद्यालयों में पुस्तकें खरीदी नहीं जातीं जबकि बच्चों से लाइब्रेरी फीस ली जाती है। कई ऐसे सरकारी पुस्तकालय हैं जिनमें ताले बन्द रहते हैं। कई गाँवों में तो ऐसे भी पुस्तकालय हैं जहाँ पुस्तकें बक्सों में पड़ी-पड़ी दीमकों को भेंट चढ़ जाती हैं। इन सबके खिलाफ आवाज बुलन्द की जानी चाहिए, ताकि पुस्तकों के प्रचार-प्रसार के मार्ग में आनेवाली बाधाएँ दूर हो सकें। और जब ये तमाम बाधाएँ दूर होंगी तब हमारे देश का आगामी ५ वर्ष का इतिहास सुनहरे अक्षरों में लिखा जायेगा। घर-घर पुस्तकों की एक लाइब्रेरी होगी। ज्ञान-विज्ञान का आलोक हर परिवार के जीवन को मंगलमय बनाएगा। हमारे देश में शिक्षा की ज्योति आलोकित होगी और देश धन-धान्य से पूरित होगा।

आज़ादी की लड़ाई में प्रकाशकों का योगदान

राष्ट्र की मनीषा को मुद्रित रूप देना प्रकाशक का कर्त्तव्य है और समाज के प्रति उसका दायित्व भी है। इस दायित्व का निर्वाह जिस सीमा तक प्रकाशक ने किया है उस सीमा तक समाज को उसने जीवन्तता प्रदान की। इस दृष्टि से हिन्दी के प्रकाशकों ने राष्ट्रीय आन्दोलन के सन्दर्भ में अपने कर्त्तव्य एवं दायित्व का निर्वाह बड़ी जिम्मेदारी से किया। राष्ट्रीय आन्दोलन में हमारी राष्ट्रीय चेतना जहाँ नेताओं की वाणी से अनुप्राणित होती रही, वहीं प्रकाशक उनकी वाणी को मुद्रित रूप देकर उन्हें घर-घर पहुँचा रहा था। आग की उन लपटों को हम प्रकाशकों ने तेज हवा दी, जिसका परिणाम आज देश के सामने है। इस सन्दर्भ में गाँधीजी की भूमिका उल्लेखनीय है।

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने देश के राष्ट्रीय आन्दोलन का नेतृत्व सम्भालते ही यह अनुभव किया कि यदि हिन्दी को जनभाषा का रूप दे दिया जाये तो राष्ट्रीय आन्दोलन को बल मिलेगा। फलतः उन्होंने १९१९ के प्रथम सत्याग्रह में अपने व्याख्यान और सत्याग्रह संबंधी नीति की घोषणा हिन्दी में की। हिन्दी लेखकों और प्रकाशकों ने समय की माँग को समझा और उसी समय से हिन्दी में राष्ट्रीय जागृति का साहित्य लिखा जाने लगा और उसके प्रकाशन का कार्य आरम्भ हुआ। वह ऐसा युग था जिसमें राष्ट्रीयता की बात करनेवाला व्यक्ति अपराधी समझा जाता था। ऐसे समय में हिन्दी में राष्ट्रीय प्रकाशन की नींव बम्बई के हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर के संस्थापक श्री नाथूराम प्रेमी ने 'स्वतंत्रता' नामक पुस्तक प्रकाशित करके नींव डाली। यह पुस्तक वैसे तो अंग्रेजी की जॉन स्टुअर्ट मिल की 'लिबर्टी' नामक पुस्तक का अनुवाद थी, परन्तु देशप्रेमियों और आजादी के दीवानों के लिये बहुत प्रेरक बनी। इस पुस्तक के अनुवादक थे आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी।

१९०५ में बंगभंग की घोषणा हो गयी और १९११ में दिल्ली दरबार हुआ। फलतः एक आग-सी लग गयी। देश का हृदयांचल विदग्ध हो उठा। राष्ट्रीय आन्दोलन की इस नयी अँगड़ाई से हमारा साहित्य प्रभावित न होता, यह कैसे सम्भव था। इस समय भारतजीवन प्रेस वाराणसी के व्यवस्थापक रामकृष्ण वर्मा ने गंगा प्रसाद गुप्त से स्वदेशी आन्दोलन पर दो पुस्तकें लिखवायीं और प्रकाशित कीं। १९११ ई० में राष्ट्रकवि मैथिली-शरण गुप्त की 'भारत भारती' निकली, जिसकी गूँज भारत के कोने-कोने में फैल गयी। प्रसिद्ध क्रान्तिकारी पंडित सुन्दरलाल जी ने १९१९-२० में विश्वमित्र साप्ताहिक नामक एक पत्र प्रयाग से प्रकाशित किया जो क्रांतिकारियों का समर्थक था। १९२० के बाद तो

हिन्दी में अनेक प्रकाशक राष्ट्रीय प्रकाशन करने लगे। सुन्दरलालजी ने १९१० में बनारसीदास जी चतुर्वेदी तथा झाबरमल्ल शर्मा के सहयोग से अरविन्द के बन्देमातरम् सीरीज के लेखों को हिन्दी में छापा।

कानपुर से गणेशशंकर विद्यार्थी द्वारा लिखित पुस्तकें उन्हीं के प्रकाश पुस्तकालय से प्रकाशित हुईं और उनके सभी प्रकाशन जनता में समादृत हुए। कानपुर के क्रांतिकारी पं० गेंदालाल के साथ इलाहाबाद के श्री रामप्रसाद बिस्मिल प्रिंस ऑफ वेल्स के भारत आगमन पर जब आम माफी में मुक्त हुए तो 'अमेरिका को आजादी कैसे मिली' नामक पुस्तक 'माँ के गहने' २००/- में गिरवी रखकर छापी और उसे १९१८ के कांग्रेस के दिल्ली अधिवेशन पर बेच डाला। राष्ट्रीय आंदोलन के सिलसिले में ज्ञानमण्डल के संस्थापक बाबू शिवप्रसाद गुप्त १९१६ में गोरी सरकार द्वारा बर्मा में पकड़े गये थे, उन्होंने प्रत्यक्ष रूप से गोरों द्वारा लोगों को अत्याचार सहते हुए देखा था। काशी के दुर्गा प्रसाद खत्री को रक्त मण्डल लिखने के लिए उन्होंने ही प्रेरणा दी। खत्री जी द्वारा १९२१ में उसका प्रकाशन हुआ। छपने के दो वर्ष बाद ही यह उपन्यास जब्त कर लिया गया। साहित्य सेवक कार्यालय वाराणसी के बजरंगबली गुप्त ने मन्मथनाथ गुप्त की कई कृतियाँ प्रकाशित कीं। गुप्त जी ने कारावास का वरण भी किया। वाराणसी से बाबू रामचन्द्र वर्मा साहित्यरत्न माला कार्यालय के अन्तर्गत प्रकाशन तो करते ही थे, साथ ही बाबूराव विष्णु पराड़कर के साथ रणभेरी पत्रिका भी प्रकाशित कर घर-घर पहुँचाते थे। वर्मा जी एक क्रांतिकारी प्रकाशक थे।

अजमेर से हिन्दी साहित्य मंदिर के जीतमल लूणिया ने गाँधीजी लिखित हिन्दुस्तान का राष्ट्रीय झण्डा, असहयोग दर्शन आदि पुस्तकें प्रकाशित कीं जो निकलते ही हाथोंहाथ बिक गयीं।

१९२० तक कलकत्ता राष्ट्रीय प्रकाशनों का प्रमुख केन्द्र बन गया था। वहाँ से भारतीय पुस्तक एजेन्सी से पंडित देवनारायण द्विवेदी ने सखाराम गणेश देउस्कर की देश की बात का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किया। सखाराम गणेश देउस्कर मराठी भाषी थे। परन्तु पुस्तकें उन्होंने मूलत: बंगला में लिखी थीं। पं० द्विवेदी ने ही मातासेवक पाठक लिखित राज्य संबंधी सिद्धान्त का भी प्रकाशन किया था। आर० एल० बर्मन कम्पनी के संस्थापक रामलाल वर्मा ने हिन्दू पंच का बलिदान अंक प्रकाशित कर एक अद्भुत् चेतना देश में उत्पन्न की थी। यह पहला प्रकाशन था जिसमें देश के समस्त क्रांतिकारियों का विवरण दिया गया था। इसी की शृंखला में इलाहाबाद से चाँद प्रेस के संस्थापक रामरिख सहगल ने चाँद का फाँसी अंक निकाला। सहगल साहब ने ही सुन्दरलालजी की कृति 'भारत में अंग्रेजी राज्य' का दो खण्डों में प्रकाशन किया, जो जब्त कर लिया गया। निहालचन्द वर्मा ने मिसमियो की 'मदर इण्डिया' का जवाब सी० एस० रंगा अय्यर की कृति 'फादर इण्डिया' छापकर दिया। इसी के बाद नेहरू कमेटी की रिपोर्ट पंजाब का हत्याकाण्ड नाम से प्रकाशित हुई। इस पुस्तक में जालियाँवाला बाग के शहीदों का विवरण था। १ से ५ नवम्बर १९२६ के बीच इसी संस्था ने 'सेनापति' साप्ताहिक पत्रिका प्रकाशित कर आजादी का शंखनाद फूँका। इस पुस्तक के मुद्रक दयाराम बेरी को जेल

भेज दिया गया। पुस्तक का प्रकाशन निहालचन्द वर्मा ने किया। मूलचन्द अग्रवाल के 'विश्वमित्र दैनिक कार्यालय' से उन दिनों राष्ट्रीय चेतना को जगानेवाले अनेक प्रकाशन प्रस्तुत किये गये। उनमें अफगानिस्तान के अंग्रेज विरोधी बादशाह अमानुल्लाह खाँ की जीवनी भी थी। माधव शुक्ल के राष्ट्रीय गीतों का संग्रह राष्ट्रीय झंकार नाम से छपा। मारवाड़ी समाचार के संपादक पद्मराज जैन ने राष्ट्रीय विचारों की छोटी-छोटी पुस्तिकाएँ छापीं।

कलकत्ता के भारतमित्र अखबार ने, जिसके सम्पादक आचार्य अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी थे, का संपादकीय अग्रलेख गोरी सरकार के प्रति लगातार विषवमन करता रहा। बैजनाथ केड़िया ने भी कुछ महत्वपूर्ण प्रकाशन किये थे। उनकी हिन्दी पुस्तक एजेन्सी से प्रकाशित सुभाषचन्द्र बोस की कृति 'तरुण का स्वप्न' विशेष रूप से चर्चित हुई। केड़ियाजी स्वयं भी कई बार राष्ट्रीय आन्दोलन में जेल गये। उन्होंने रामदास गौड़ की हिन्दी की पोथी के पांच भाग प्रकाशित किये जो स्कूलों में सरकारी विरोध के बावजूद पढ़ाई जाती थी।

कलकत्ता में रहते हुए बाबू शिवपूजन सहाय ने भारतीय प्रकाशन मंडल संस्था की ओर से मुण्डमाल नामक स्वलिखित कृति प्रकाशित कर ख्याति अर्जित की। हिन्दू पंच, मतवाला और पं० बनारसी दास चतुर्वेदी द्वारा सम्पादित विशाल भारत में सहाय जी द्वारा लिखी राष्ट्रीय टिप्पणियाँ आग उगलती थीं।

सस्ता साहित्य मंडल की स्थापना राष्ट्रीयता से अनुप्रेरित थी। हरिभाऊ उपाध्याय की युगधर्म नामक पुस्तक मंडल का ऐसा प्रकाशन था जिसने पाठकों को राष्ट्रीय दृष्टि से सोचने की एक नवीन दृष्टि दी। अब तक देश में इतनी जागृति आ गयी थी कि हिन्दी प्रकाशक धड़ल्ले से राष्ट्रीय साहित्य छापने लगे थे। अब मण्डल से छपी महात्मा गाँधी, जवाहरलाल नेहरू, राजेन्द्र प्रसाद की आत्मकथाएँ प्रत्येक घर में पढ़ी जाने लगी थीं। अब तक हिन्दी प्रकाशनों पर राष्ट्रीयता पूरी तरह हाबी हो गयी थी।

लाहौर के एन० डी० सहगल ने रजनी पामदत्त का 'वर्तमान भारत' प्रकाशित कर राष्ट्रीय प्रकाशनों की श्रीवृद्धि की। लाहौर के ही लाजपतराय ऐण्ड सन्स ने भाई परमानन्द लिखित काले कारावास की कहानी प्रकाशित की, जिसमें अण्डमान द्वीप की सेलुलर जेल की यातना का रोमांचक वर्णन था। इस सन्दर्भ में आर्य समाज की भूमिका भी कम महत्वपूर्ण नहीं थी। उसके मंच राष्ट्रीयता के मंच बन चले थे। लाहौर के ही महाशय राजपाल ने अपने प्रकाशन राजपाल ऐण्ड सन्स के द्वारा हारमोनियम पुष्पांजलि नामक संग्रह में राष्ट्रीय गीतों को भी आदर दिया। देशभक्त मेजिनी की जीवनी भी यहाँ से छपी।

महान् क्रांतिकारी यशपाल ने लखनऊ में विप्लव कार्यालय की स्थापना की और 'झूठा सच' के नाम से अपनी क्रांतिकारी आत्मकथा लिखकर प्रकाशित की। राष्ट्रीय प्रकाशन मंदिर लखनऊ के उमाशंकर दीक्षित भी कई बार क्रांतिकारियों को शरण देने के कारण सरकार के कोपभाजन बने।

मिर्जापुर निवासी मतवाला के संस्थापक बाबू महादेवप्रसाद सेठ ने मिर्जापुर से २३ अगस्त १९२२ को मतवाला नामक पत्रिका का प्रकाशन नये मन्तव्यों के साथ नयी ऊर्जा से किया—

खींचो न कमानों को, न तलवार निकालो।
जब तोप मुकाबिल है, तो अखबार निकालो॥

१८५७ के सिपाही विद्रोह के पूर्व १८५१ में जन्मे मिर्जापुर के माधवप्रसाद धवन ने १८८८ में खिचड़ी समाचार पत्रिका निकाल कर अंग्रेजों को ललकारा। पत्रिका के मुख्यपृष्ठ पर छपा रहता था—

अन्याय भूख का हरन हार, दैन्याय स्वाद आनन्द डकार।
स्वातंत्र्य प्रजा को बल अधार, देवे यह खिचड़ी समाचार॥

कालाकाँकर के राजा रामपाल सिंह ने १८८६ में मालवीय जी के सम्पादकत्व में हिन्दुस्तान नाम से एक दैनिक पत्रिका का प्रकाशन किया जिसने राष्ट्रीयता का बिगुल बजाया।

इलाहाबाद के गाँधीवादी विचारक रामनाथ सुमन ने साहित्य सदन नामक संस्था स्थापित की। राष्ट्रीय नेताओं के संस्मरण छापे। इलाहाबाद के कतिपय प्रकाशकों का नाम उनके देश-प्रेम के लिए स्मरणीय रहेगा। मातृभाषा मंदिर के हर्षवर्धन शुक्ल, पं० लक्ष्मीधर वाजपेयी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन के संस्थापक, भारतरत्न पुरुषोत्तम दास टंडन, लाहौर से आये हिन्दी भवन के संस्थापक इन्द्रचन्द्र नारंग और जयचन्द्र विद्यालंकार ने भी कई बार जेल यात्रा की और हिन्दी प्रकाशनों को स्वतंत्रता की भावना से भरा। ज्ञानलोक प्रकाशन के भगवानदास अवस्थी भी कई बार जेल गये। यादों के धागों में पिरोये शहीदों के संस्मरण को उन्होंने अपने कई उपन्यासों का कथानक बनाया। इंडियन प्रेस ने राष्ट्रकवि सोहनलाल द्विवेदी का बापू पर बहुत आकर्षक ग्रंथ छापा।

रामवृक्ष बेनीपुरी बिहार के ही नहीं, देश के सर्वमान्य प्रकाशक-लेखक-समाजवादी नेता थे। उन्होंने कई बार जेल यात्रा की थी। उन्होंने प्रचुर बाल साहित्य लिखा। चौथे दशक में पं० रामदहिन मिश्र के ग्रन्थमाला कार्यालय से प्रकाशित माओत्सेतुंग के नये चीन पर लिखी उनकी पुस्तक लाल चीन ने राष्ट्रीय आन्दोलन से जुड़े छात्रों पर बहुत बड़ा प्रभाव डाला। बेनीपुरी प्रकाशन के नाम से उन्होंने स्वयं बहुत उपयोगी प्रकाशन किये। राजा राधिकारमणप्रसाद सिंह की पुस्तक गाँधी टोपी का भी समादर हुआ।

राम रहीम साम्प्रदायिक सद्भाव पर लिखी उनकी प्रभावशाली रचना इसी समय प्रकाशित हुई। अनूपलाल मण्डल ने अपनी कृतियों में सर्वहारा का चित्रण किया। स्वयं जेल यात्रा की और निजी प्रकाशन गृह खोला।

दिल्ली के ऋषभचरण जैन का स्मरण भी किया जायेगा। समाजवादी आंदोलन के प्रारम्भ होते ही उन्होंने रूस का प्रथम पंचवर्षीय आयोजन तथा लेनिन और गाँधी नामक पुस्तक छापी। उनके द्वारा प्रकाशित प्रफुल्लचन्द्र ओझा 'मुक्त' द्वारा लिखित जेल यात्रा का खूब स्वागत हुआ।

जापानी कवि योन नोगूची के सभापतित्व में १९३७ में कलकत्ता विश्वविद्यालय के सीनेट हाल में आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय कवि सम्मेलन में 'दिनकर' ने भारत भूमि की महिमा वर्णित करते हुए 'मेरे नगपति मेरे विशाल, पौरुष के पुंजीभूत ज्वाल' कविता पढ़ी, जिसे बाद में बड़े-बड़े क्रान्तिकारियों को गुनगुनाते हुए सुना गया। पटना के अजन्ता प्रेस के

व्यवस्थापक जयनाथ मिश्र तथा उनके सहयोगी तारानाथ झा राष्ट्रकवि दिनकर के प्रकाशक रहे।

इस युग में साहित्य का काम केवल मनबहलाव का सामान जुटाना, लोरियाँ गाकर सुलाना, आँसू बहाकर जी हलका करनेवाला ही नहीं था। इस युग के साहित्य में देश के लिए प्राणोत्सर्ग करने की भावना थी। मर मिटने का भाव था, राष्ट्र की दीन अवस्था के लिए आँसू थे। किसान और मजदूरों के लिए दर्द था। उस समय साहित्य केवल मनोरंजन और विलासिता की वस्तु नहीं था, उसमें उच्च चिन्तन, स्वाधीनता का भाव था; वह साहित्य जो हममें गति, संघर्ष और बेचैनी पैदा करता था, जो सोते को भी जगाता था। प्रेमचन्दजी के सोजे वतन का हिन्दी रूपान्तरण इसी स्वाधीनता भाव से प्रभावित था—

जमाना में लिखा, जमाने ने पढ़ा

जमाना में लिखा
जमाने ने पढ़ा
जमाना में लिखा
जमाने ने सुना
जमाने ने पढ़ा
न सुन सकी लेकिन
हुकूमते बरतानिया
जिसने सोजे वतन
पर लगायी बंदिश
फिर भी पहुँचा घर-घर
सोजे वतन

हिन्दी प्रकाशन के दो सौ वर्ष हो चुके हैं। दो दिग्गज प्रकाशकों की शताब्दियाँ मनायी गयीं। ये हैं—

स्वनामधन्य रामचन्द्र वर्मा (साहित्यरत्न माला कार्यालय वाराणसी) तथा वृन्दावन लाल वर्मा (मयूर प्रकाशन झाँसी)—९ जनवरी १९८९।

पूरे वर्ष योजनाबद्ध रूप से आयोजन कर उस जमाने की आकांक्षाओं, स्वप्नों और नैतिक प्रतिबद्धताओं को आज की समस्याओं से और नयी पीढ़ी के स्वत: स्फूर्त विचारों से जोड़ा गया। यदि सही स्थिति का वैचारिक विश्लेषण हम कर सकें तो प्रकाशन जगत की अनेक उपलब्धियों का हमें बोध होगा। देश के लाखों करोड़ों ज्ञात-अज्ञात जवानों ने अपने जीवन को बलिदान कर देश को जो आजादी दिलायी, उसमें प्रकाशक भी पीछे नहीं थे। इनमें सर्वमान्य नाम है—गणेशशंकर विद्यार्थी का, जिन्होंने मादरे वतन की खातिर साम्प्रदायिक ऐक्य के लिए स्वयं को बलि चढ़ा दिया। इस प्रसंग में कानपुर के नारायणप्रसाद अरोड़ा भी स्मरणीय हैं। उनके नारायणी प्रकाशन ने विद्यार्थी के प्रकाशन आदर्शों को अपनाया।

हिन्दीतर कुछ ऐसे प्रकाशक भी थे, जिन्होंने जेल-यात्राएँ कीं और आजादी से संबंधित साहित्य प्रकाशित कर बहुत बड़ा कार्य किया। इनमें महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा के गो० प० नेने, प्रसाद प्रकाशन पूना के य० गो० जोशी, मामा बरेरकर, मेघचन्द्र मेघाणी और काका कालेलकर स्मरणीय हैं। जहाँ कुछ प्रकाशक रायबहादुरी पाने के लिए अंग्रेजी सरकार की जी हजूरी में लगे हुए थे, वहीं चार पैसे गज के कपड़े का कुर्त्ता, पचास पैसे जोड़े की धोती और कुर्त्ते के कपड़े के बचे टुकड़े से मुफ्त टोपी बनवाकर वस्त्र-धारण करनेवाले आजादी के सिपाहियों की पंक्ति में प्रकाशक भी थे।

आजादी के पूर्व मनोरंजन के साधन आज की तरह नहीं थे। इसलिये पुस्तकें ही मनोरंजन का मुख्य साधन बनीं। ऐयारी, तिलिस्म, सामाजिक, ऐतिहासिक और पौराणिक उपन्यासों के साथ-साथ स्वतंत्रता आन्दोलन से संबंधित साहित्य हिन्दी में धड़ल्ले से हजारों-हजारों छपता और बिकता था। आज की व्यापारिक विकृति प्रकाशन जगत में उन दिनों नहीं थी। घूस, दलाली और ऊँचे कमीशन का रोग नहीं लगा था। पुस्तकें सस्ती थीं और लोग खरीद कर पढ़ते थे। इसी कारण हिन्दी में प्रकाशित पुस्तकें स्वतंत्रता आन्दोलन का माध्यम बनीं।

लोक साहित्य के प्रकाशकों ने भी आजादी के आन्दोलन में बहुत बड़ा योग दिया। जेल जाने का सर्टिफिकेट भले ही उनके पास न हो, परन्तु राष्ट्रीय बिरहे, लावनियाँ, गजलें, कव्वाली और कजरी के माध्यम से उन्होंने राष्ट्रीयता का जो प्रचार गाँव-गाँव में किया वह बेमिसाल है। भोजपुरी साहित्य में भगतसिंह के फाँसी चढ़ने पर सावन बमकेत नामक पुस्तक इतनी प्रसिद्ध हुई कि उसकी लगभग ६ लाख प्रतियाँ एक वर्ष में बिक गयीं। व्यापारी आठ आना सैकड़ा पर इन पुस्तकों को खरीदता था और एक पैसे में बेचता था। जयप्रकाश जी पर लिखा आल्हा खूब बिका। देहाती से देहाती भी उन दिनों आजादी के गीत गुनगुनाया करता था और स्वराज्य की चर्चा करते समय गाँधी बाबा 'देहिले हैं आजादी' गीत हर एक के मुँह पर था। गाँधी जी शिल्प में मुक्ति देखते थे और गुरुदेव रवीन्द्रनाथ को संगीत में मुक्ति दिखायी देती थी। परन्तु जमाने ने गाँधीजी के विचारों द्वारा आजादी पाने के लिए शिल्प के प्रतीक स्वरूप चरखे को चुना और उसका चलन घर-घर हुआ। यह चरखा आजादी की लड़ाई का प्रतीक बना। चरखे में राजनीतिक आजादी से ज्यादा आर्थिक आजादी का सपना था।

आज हम राजनीतिक दृष्टि से पूर्ण स्वतंत्र हैं, पर आर्थिक आजादी की लड़ाई अभी पूरी नहीं हुई है। देश की बहुसंख्यक जनता गरीबी की सीमारेखा के नीचे है। अमीर और गरीब के बीच की खाईं आजादी के बाद अधिक बढ़ी है। हम प्रकाशकों का कर्त्तव्य है कि इस लड़ाई में हाथ बटायें। हमें घूस, दलाली और कमीशनखोरी के दृष्टिकोण से दूर रहकर कम से कम मूल्य का प्रकाशन करना चाहिए, जिसे देश की क़रोड़ों सामान्य जनता खरीद सके।

हिन्द पॉकेट बुक्स

भारत में पुस्तक क्रांति जो पिछले चार दशकों में आयी, उसका सूत्रपात हिन्द पॉकेट बुक्स ने किया। हिन्द पॉकेट बुक्स की कहानी बड़ी ही प्रेरक और साहसपूर्ण है। इसको पढ़कर और सुनकर सब लोग रोमांचित हो जाते हैं क्योंकि हिन्द पॉकेट बुक्स की सस्ती, सुन्दर पुस्तकों के प्रकाशन से भारत के करोड़ों हिन्दी-भाषी अच्छे साहित्य का रसास्वादन कर सके और बहुतों का तो कहना है कि हमें हिन्दी पढ़ने की प्रेरणा भी हिन्द पॉकेट बुक्स से मिली।

उस जमाने की बात सोचें जब १९५०-५५ के करीब केवल हजार-दो हजार ही पुस्तकें हिन्दी में छपती थीं। उस समय इतने जोखिम का कदम उठाना कि १०-२०-५० हजार और लाखों प्रतियों के संस्करण छापकर हिन्दी-भाषी प्रदेशों में पहुँचाना बड़े साहस का कार्य ही नहीं था बल्कि कई तो इसे दुस्साहस कहते थे।

पहली बार जब मार्च १९५८ में दस पुस्तकें हिन्द पॉकेट बुक्स की हिन्दी में प्रकाशित हुई तो लोग देखते रह गए। लगभग १६० पृष्ठ की पुस्तकें उच्चतम कोटि के लेखकों द्वारा लिखी गयी और उनका मुद्रण, प्रकाशन व आवरण इतना सुन्दर कि लोक चमत्कृत हो गए। यह एक ऐतिहासिक घटना थी। पहले ही सेट के अंदर रवीन्द्र नाथ टैगोर की गीतांजलि, दीवान-ए-गालिब, रांगेय राघव के उपन्यास, आचार्य चतुरसेन शास्त्री और चरित्र निर्माण की पुस्तकों का समावेश था।

ये सभी की सभी पुस्तकें केवल एक-एक रुपए में थीं। लोगों को आशंका थी कि यह दुस्साहसिक कदम सफल न होगा। किनारे पर बैठे लोग देख रहे थे कि यह जो कुछ किया जा रहा है यह कैसे सफल हो सकता है जब कि भारत में और विशेषकर हिन्दी-भाषी प्रदेशों में पुस्तकें पढ़ने की आदत बहुत कम है। परन्तु ज्योंही ये पुस्तकें बाजार में आयीं, पाठकों ने देखीं तो मन्त्र-मुग्ध रह गए। पहला संस्करण केवल ६-६ हजार प्रतियों का था जो दो सप्ताह के अंदर बिक गया। उसके बाद पहली दस पुस्तकों के कई संस्करण अगले तीन महीनों में प्रकाशित हुए और देश भर में हिन्द पॉकेट बुक्स फैल गयी। तत्पश्चात हर मास नयी पुस्तकें आने लगीं और पुस्तकों की मार्केट के तन्त्र को हिन्दी पॉकेट बुक्स ने इतना संगठित कर दिया कि शहरों और छोटे कस्बों में ही नहीं परन्तु गाँव-गाँव में हिन्द पॉकेट बुक्स के स्टाल लग गए। जहाँ भी अखबार या पत्रिकाएँ पहुँचती थीं वहाँ हिन्द पॉकेट बुक्स भी पहुँची।

इसके साथ ही भारत में पहला बुक क्लब खोलने का श्रेय भी हिन्द पॉकेट बुक्स की संस्था को है जिन्होंने सन् १९६१ में 'घरेलू लायब्रेरी योजना' के नाम से आयोजन किया। शुरु में एक-एक रुपए की ६ पुस्तकें बिना डाक खर्च के केवल पाँच रुपए में पाठकों तक पहुँचती थीं। 'घरेलू लायब्रेरी योजना' के पैकेट डाकखाने वाले पोस्टमैन

उठाकर सुदूर पर्वतीय प्रदेशों में, आसाम के चाय बागानों में और जहाँ कहीं भी कोई पढ़ने वाला था, वहाँ पहुँचाते थे। दिल्ली के डाकखाने वाले महीने में कई बार हिन्द पॉकेट बुक्स के शाहदरा स्थित कार्यालय में आकर अपने पोस्ट ऑफिस का दफ्तर लगाते थे और जहाँ से ट्रकों में भरकर घरेलू लायब्रेरी योजना के पैकेट चले जाते थे। यह इतनी सफल हुई कि देश ही नहीं विदेशों में भी इसके सदस्य बने। सैनिक भाई जो दूर देश की सीमा में बैठे थे वहाँ तक भी ये पैकेट पहुँचते थे और उन्हें अच्छा साहित्य पढ़ने का आनन्द प्राप्त होता था। सर्वेक्षण करने पर एक बार यह देखा गया कि इस योजना के सदस्यों में हाई कोर्ट के जज, बड़े डाक्टर, स्कूल कालेजों के अध्यापक, अध्यापिकाएँ, विद्यार्थी, यहाँ तक कि एक दो जेलों के अंदर रहनेवाले कैदी भी थे।

इस सारे प्रयास की इतनी प्रशंसा हुई कि श्री जवाहर लाल नेहरू ने पत्र लिखा कि जो काम सरकार नहीं कर सकी थी उसे हिन्द पॉकेट बुक्स ने कर दिया। कितने प्रशंसा के पत्र पाठकों, बड़े-बड़े साहित्यकों, समाज-सेवियों और नेताओं द्वारा प्राप्त हुए जिनकी कोई गिनती नहीं।

इस सारे काम को चलाने का श्रेय श्री दीनानाथ मल्होत्रा और उनके भाई श्री विश्वनाथ जी को था। इसी हिन्द पॉकेट बुक्स के अंदर बाद में अन्य भारतीय भाषाओं की पुस्तकें भी प्रकाशित हुईं जिनमें उर्दू, पंजाबी और मलयालम तथा बाद में अँग्रेजी भी थी जिसे अब भारतीय भाषा ही कहना चाहिए।

इन्हीं सब कारणों से हिन्द पॉकेट बुक्स के प्रमुख श्री दीनानाथ मल्होत्रा को 'यूनेस्को' की तरफ से इंटरनेशनल बुक अवार्ड मिला तथा कई देशों में उनको बुलाकर सम्मानित किया गया और सेमीनार व ट्रेनिंग कोर्स चलाने की जिम्मेदारी दी गयी। श्री दीनानाथ जी का कहना है कि इस सारे काम की सफलता का रहस्य केवल एक ही था कि हमने पाठकों के हित को सामने रखा। जहाँ तक व्यवसायिक सफलता का संबंध है वह अपने आप हुई। हमने उसकी तरफ न देखा न किया। यदि हमारे पाठक प्रसन्न हुए तो उन्होंने पुस्तकें इतनी अधिक खरीदीं कि प्रति पुस्तक पाँच पैसे भी बचे तो हिन्द पॉकेट बुक्स का विस्तार करने में अच्छी राशि प्राप्त हुई।

हिन्द पॉकेट बुक्स ने कभी किसी से—सरकार व अन्य संस्थाओं से कोई वित्तीय सहायता नहीं ली। बाहर के, विदेशों से कई प्रकार के प्रस्ताव आए कि उनके साथ मिलकर कुछ नये आयोजन किए जाएँ पर उन सबको प्रेमपूर्वक ना कह दी क्योंकि भारतीयता की साख रखने के लिए स्वतंत्र प्रकाशन अत्यंत आवश्यक है।

एक बात और उल्लेखनीय है कि हिन्द पॉकेट बुक्स के प्रकाशन से प्रेरणा पाकर अन्य भी कई प्रकाशकों ने पॉकेट बुक्स का प्रकाशन आरम्भ किया जिनमें प्रमुख रहे हैं हिन्दी प्रचारक संस्थान, राजकमल प्रकाशन, स्टार पॉकेट बुक्स इत्यादि। न केवल हिन्दी में प्रत्युत अन्य भारतीय भाषाओं में भी हिन्द पॉकेट बुक्स के साहसिक प्रयोग के कारण सस्ती एवं अच्छी पुस्तकों का प्रकाशन शुरू हुआ। अतएव हिन्द पॉकेट बुक्स को यह श्रेय है कि भारत में पॉकेट बुक्स की क्रान्ति का शुभारम्भ इसी से हुआ।

चुनौती

- प्रकाशन व्यवसाय : वर्तमान स्थिति
- भारतीय प्रकाशन व्यवसाय की ऐतिहासिक रूपरेखा
- हिन्दी प्रकाशनों की स्थिति
- हिन्दी प्रकाशन : चुनौती और समस्या
- हिन्दी प्रकाशकों का दायित्व
- सवाल साक्षरता का
- हिन्दी का सन्दर्भ साक्षरता से
- साक्षरता बनाम नारी शिक्षा
- शैक्षणिक नीतियाँ और प्रवृत्तियाँ
- पुस्तक के जन्म के बाद
- प्रकाशक सम्मेलन क्यों ?
- सस्ता साहित्य मण्डल : सर्व जन हिताय सर्व जन सुखाय

प्रकाशन व्यवसाय : वर्तमान स्थिति

वैज्ञानिक तरीके के अभाव में अपेक्षित सीमा तक नहीं पहुँच सकने के बावजूद यह निर्विवाद है कि स्वतन्त्रता के बाद देश में प्रकाशन-व्यवसाय समुन्नत हुआ है। इसमें सन्देह नहीं कि आज देश में पाठकों की संख्या करोड़ों में कूती जाती है। समाचार-पत्र, मासिक-पत्र और पाकेट-बुक का प्रचलन घर-घर में हो गया है, परन्तु जिस अनुपात से शिक्षा का प्रसार हुआ है, उस अनुपात से सत्साहित्य पढ़ने की रुचि का विकास नहीं दिखाई देता। वैसे प्रतिवर्ष देश में लगभग एक करोड़ से अधिक नये शिक्षार्थी हो रहे हैं, परन्तु आज की दोषपूर्ण शिक्षा-प्रणाली के चलते अधिकांश लोग नौकरी के लिए ही शिक्षा-प्राप्ति को अपना लक्ष्य मानते हैं। परिणामत: प्रकाशन-व्यवसाय का पाठ्य-पुस्तक वाला अंग तो परिपुष्ट हो रहा है, परन्तु साहित्य के विक्रय-क्षेत्र में खोखलापन परिलक्षित है।

प्रकाशन-व्यवसाय की कमियों की ओर ध्यान दिये बिना हम इन समस्याओं का समाधान नहीं खोज सकते। पठनाभिरुचि का अभाव, छात्र आन्दोलन, आर्थिक संक्रमण, प्रकाशक और पुस्तक-विक्रेता-सम्बन्ध, प्रकाशन सम्बन्धी सूचना व आँकड़ों का अभाव, साहित्य-प्रकाशन में पूँजी नियोजित करनेवाले प्रकाशकों की कमी के ऐसे कुछ कारण हैं जिन पर हमें विचार करना होगा।

पठनाभिरुचि का प्रश्न

पठनाभिरुचि का प्रश्न वस्तुत: बहुत जटिल है। यह आन्दोलन सीधे समाज से सम्बन्धित है। इस आन्दोलन को चलाने के लिए केवल प्रकाशकों और लेखकों के प्रयास से ही काम नहीं चलेगा। राष्ट्रीय स्तर पर इस दिशा में अथक प्रयास की तब तक आवश्यकता है, जब तक सामाजिक परिवेश पठन-रुचि के अनुकूल न बन जाय। अच्छे साहित्य के प्रति रुचि दिनोदिन गिरती जा रही है। यथार्थवाद के नाम पर बाजार में विद्यार्थियों से लेकर प्रौढ़ों तक को सेक्स-साहित्य दिया जा रहा है। इस क्षेत्र में ऐसी विकृति आ गयी है कि कोई भी प्रकाशक नैतिक जीवन से सम्बन्धित साहित्य के प्रकाशन का साहस नहीं कर पाता। माँ-बाप बच्चों को प्रारम्भ से ही ऐसे साहित्य को पढ़ने से नहीं रोकते जो उनमें विकार पैदा करता है। साहित्य में रुचि लेने वाले सौ में से एक ही पाठक के घर देश के उत्कृष्ट लेखकों की कृतियाँ मिलती हैं। एक कारण यह भी है कि जहाँ हमारे विद्यार्थियों का शिक्षण-प्रशिक्षण होता है वहाँ अधिकांश ऐसे अध्यापक मिलेंगे जो अच्छे साहित्य से स्वयं अनभिज्ञ हैं। परिणामतः बच्चों में पढ़ने की रुचि जागृत करने में वे कोई दिलचस्पी नहीं लेते। स्कूलों और कालेजों की लाइब्रेरियाँ नाममात्र के लिए हैं।

खोजबीन करने पर पता लगेगा कि अच्छी पुस्तकों पर धूल जमी रहती है, उनको कोई पढ़नेवाला नहीं है। ऐसी स्थिति में सत्साहित्य प्रकाशित करने का साहस कौन करेगा?

देश में राजनीतिक वातावरण एक नया मोड़ ले रहा है। आज का छात्र आन्दोलनकारी हो गया है। उसके दिल-दिमाग में यह बात घर कर गयी है कि उसे देश के विषय में पूरी जानकारी रखनी चाहिए और नये समाज के निर्माण में योग देना चाहिए। ऐसे समय इन कोमलमति छात्रों को विज्ञान, तकनीकी, वीरगाथाओं, चरित्र-निर्माण, अनुशासन सम्बन्धी विषयों की पुस्तकें सुन्दर कलेवर में दी जायें तो उनकी रुचि सत्साहित्य पढ़ने की ओर हो सकती है।

पुस्तकों के बढ़ते मूल्य

कहा जाता है कि आर्थिक संक्रमण के कारण पठनाभिरुचि का विकास नहीं हो पा रहा है, परन्तु यह बात अपने आप में इस बात से खण्डित हो जाती है कि जहाँ केरल और बंगाल में साहित्य पढ़ने के प्रति आम जनता की रुचि बहुत अधिक है, वहाँ हिन्दी भाषी क्षेत्रों में यह रुचि बहुत ही कम है। मेरे एक मित्र ने इस सम्बन्ध में एक अनूठा तर्क पेश किया। उनका कहना था कि दक्षिण भारत चूंकि विदेशी आक्रमणों से बचा रहा और उत्तर सदैव रणभूमि बना रहा, इसीलिए उत्तर की जनता की रुचि पठन-पाठन में परिष्कृत नहीं हो पाई। साथ ही उत्तर के लोग आर्थिक दृष्टि से अभी उतने सम्पन्न भी नहीं हो पाये हैं कि वे पुस्तकें खरीदकर पढ़ सकें। मूल समस्या यह भी है कि अच्छे और कम मूल्य के प्रकाशन आज सुलभ नहीं हो रहे हैं। पुस्तकों के मूल्य तेजी से बढ़ते जा रहे हैं। सामान्य जनता उसे खरीदने में अपने को असमर्थ पाती है। प्रकाशकों का तर्क है कि पुस्तकें कम बिकती हैं, लिहाजा दाम अधिक रखना पड़ता है। पाठकों का मत है कि सत्साहित्य इतना महँगा है कि उनके पारिवारिक बजट के बूते के बाहर है। प्रकाशकों और लेखकों को परस्पर सहयोग करना होगा। लेखक अपनी रायल्टी की दरें कम करें और प्रकाशक पुस्तक का मूल्य कम रखें।

विदेशों में भारतीय मूल के लोग बहुत अधिक संख्या में हैं। वे भारतीय भाषाओं की पुस्तकें पढ़ना चाहते हैं। उन्हें समय-समय पर उचित मूल्य पर भारतीय-साहित्य सुलभ हो तो इस व्यवसाय को बहुत लाभ हो सकता है।

सरकारी और अर्द्धसरकारी संस्थाएँ भी प्रकाशन का कार्य कर रही हैं परन्तु उनकी वितरण और प्रचार-प्रणाली इतनी दूषित है कि करोड़ों रूपयों की पुस्तकें गोदाम में सड़ रही हैं। अच्छा हो कि सरकार इस सम्बन्ध में अपनी नीतियों में परिवर्तन करे और प्रकाशकों को ही इस क्षेत्र में कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करे।

कम पूँजी का व्यवसाय

प्रकाशन व्यवसाय के न पनपने का एक मुख्य कारण है कम पूँजीवाले लोगों का इस व्यवसाय में बहुत अधिक संख्या में होना। इसलिए वे पुस्तक-विक्रय आन्दोलन को अपनी घबराहट के कारण पनपने नहीं देते। जिन कमीशनों पर प्रकाशक पुस्तक-

विक्रेताओं को पुस्तकें देते हैं, उन्हीं कमीशनों पर साधारण ग्राहकों और पुस्तकालयों को भी बेच आते हैं। परिणाम यह होता है कि सारे देश में साहित्य का विक्रय करनेवाले पुस्तक-विक्रेताओं का आज तक अभाव है। नकद मूल्य पर साहित्य मँगाकर रखने वाले पुस्तक-विक्रेताओं की संख्या नगण्य है।

आँकड़ों और सूचनाओं के अभाव में भी सत्साहित्य के विक्रय में बाधा पड़ रही है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि प्रकाशन व्यवसाय से सम्बन्धित अनेक पत्र-पत्रिकाएँ निकलती हैं, परन्तु उनकी संख्या अंगुलियों पर गिनने लायक है। इतने विराट बहुभाषाभाषी देश में करोड़ों शिक्षित व्यक्तियों के बीच नये प्रकाशनों की सूचना देना और प्रचार करना आज के प्रकाशक के लिए व्यक्तिगत रूप से सम्भव नहीं है। इसके लिए प्रकाशकों को अपने संगठन का सहारा लेना होगा और ऐसा प्रयत्न करते रहना होगा कि नई पुस्तकों के सम्बन्ध में जनता को समय-समय पर जानकारी मिलती रहे। विज्ञापन के इस युग में जहाँ फिल्मों के माध्यम से सिगरेट, दवाइयों, कपड़ों आदि का विज्ञापन हो रहा है, वहाँ बिना विज्ञापन के पुस्तकों की माँग होना और साधारण जनता का ध्यान आकृष्ट होना सम्भव नहीं दीखता। इस दिशा में नेशनल बुक ट्रस्ट, फेडरेशन ऑफ इंडियन पब्लिशर्स, अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ आदि संस्थाओं की ओर से समय-समय पर प्रदर्शनियों की व्यवस्था और अन्य माध्यमों का उपयोग हो रहा है। नेशनल बुक ट्रस्ट प्रतिवर्ष राष्ट्रीय पुस्तक मेला भी लगा रहा है, परन्तु यह राष्ट्रीय पुस्तक मेला भारतीय भाषाओं के प्रचार का केन्द्र न बनकर जैसे अँग्रेजी भाषा के प्रचार का केन्द्र बन गया है।

भारतीय प्रकाशन व्यवसाय की ऐतिहासिक रूपरेखा

भारतीय भाषाओं का इतिहास वैसे तो सदियों पुराना है। हमारे देश में विद्वान पुस्तकों को लिखा करते थे और लिपिक उनकी प्रतिलिपियाँ बनाकर देश के विभिन्न भागों में उस कृति को सुरक्षित रखने में सहायक होते थे। भोजपत्र पर लिखे लेख इस बात के आज भी ज्वलन्त प्रमाण हैं। लन्दन विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में संग्रहीत भारत सम्बन्धी गजेटियर में यह विवरण उपलब्ध है कि एक हजार वर्ष पूर्व वाराणसी में एक प्रेस था जो लकड़ी के अक्षरों से पुस्तकों को छापा करता था। परन्तु इस कथन की पुष्टि में कोई ऐतिहासिक प्रमाण उस गजेटियर में नहीं है। भारत में प्रकाशन सम्बन्धी कार्यों का वैज्ञानिक ढंग से विवरण ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापनाकाल से पाया जाता है। कलकत्ता में १८वीं शताब्दी में फोर्ट विलियम में एक प्रेस की स्थापना की गयी थी। साथ ही बंगाल के हुगली जिले में बैपटिस्ट मिशनरी ने एक प्रेस की स्थापना की। उन दिनों अँग्रेजी प्रकाशन के साथ ही उर्दू और हिन्दी के प्रकाशनों को महत्त्व दिया जाता था। वैसे तो भारत में सागर-तट के इलाकों में १६वीं शताब्दी से छपाई का काम आरम्भ होने का प्रमाण मिलता है। आगे चलकर मद्रास, त्रावणकोर, गोवा, श्रीरामपुर, कलकत्ता, हुगली और आगरा में भी छपाई का काम होने लगा। भारतीय भाषाओं में टाइप बनाने का काम चार्ल्स विल्किंस ने त्रिवेणी (जिला हुगली) के लोहार पंचानन कर्मकार की सहायता से शुरू किया था। बाद में पंचानन और उनके दामाद मनोहर की सहायता से श्रीरामपुर (हुगली) के विलियमकेरी ने नागरी के ७०० पंच बनवाये। पंचानन और मनोहर ने ४० भाषाओं के पंच बनाये थे।

प्रारम्भिक प्रकाशन

जहाँ तक पता चला है, उसके अनुसार भारतीय भाषाओं में किताबों का छपना १८०० ई० में प्रारम्भ हुआ। १८वीं शताब्दी में देश-विदेश में छपी पुस्तकों में भारतीय भाषाओं और यूरोपीय भाषाओं के शब्द भारतीय लिपियों में छपे दिखाई दे जाते थे। भारतीय टाइप में १८ मार्च १८०० ई० को न्यू टेस्टामेंट के मैथ्यू लिखित समाचार के बंगला अनुवाद की पहली शीट मुद्रण के लिए तैयार हुई। अगस्त १८०० ई० में मंगल समाचार तथा मतीयेर रचित बंगला पुस्तक प्रकाशित हुई। भारतीय टाइप में छपी यह पहली पूरी पुस्तक है। इसी वर्ष कुछ और पुस्तकें बंगला टाइप में छपीं। हिन्दी की पहली पुस्तक १८०२ ई० में फोर्ट विलियम कालेज के पृष्ठपोषण में कलकत्ता के हरकारू प्रेस में

मुद्रित हुई। इसका नाम 'मिसकीन की मरसिया' था। मात्र ३२४ पंक्तियों में यह पुस्तक समाप्त है और हिन्दी लिपि में उर्दू शैली में लिखी गयी है। १८४६ में आइरिश मिशनरी के जेम्स लांग, जो कि बंगला, हिन्दी, संस्कृत और रूसी भाषा के पंडित थे, भारत आये। १८६१ में पादरी लांग ने 'दीनबन्धु मित्र' के 'नीलदर्शन' नाटक का बंगला अनुवाद माइकेल मधुसूदन दत्त से अपनी देखरेख में कराया और सी० एच० मैनुअल कम्पनी ने इसका प्रकाशन कलकत्ते में किया। १८२४ में फोर्ट विलियम कालेज के इतिहास लेखक टाम्स रोयबक की भारतीय लोकोक्तियों के संकलन की एक पुस्तक प्रकाशित हुई। १८३४ में थैकर ऐण्ड कम्पनी ने 'दृष्टान्त वाक्य संग्रह' प्रकाशित किया। सन् १८६७ में पेरिस में एक बड़ी प्रदर्शनी हुई, जिसमें भारत सरकार ने १८६५ ई० तक भारत में प्रकाशित उर्दू, हिन्दी, बंगला, संस्कृत, अरबी और फारसी की पुस्तकें प्रदर्शनी के लिए भेजी थीं। जितनी पुस्तकें गयीं, उनमें प्रायः कला, साहित्य, धार्मिक साहित्य, भूगोल, स्त्रियोपयोगी, आयुर्वेद तथा शासन सम्बन्धी पुस्तकें तो थीं ही, परन्तु इस प्रदर्शनी में भारतीय प्रकाशनों की जो सबसे बहुमूल्य चीज थी, वह थी श्रीमती ल्यूपोल्ट द्वारा प्रस्तुत 'अन्धों की पहली पोथी' और 'अन्धों की दूसरी पोथी'।

बीसवीं सदी का पूर्वार्द्ध

२०वीं शताब्दी के आरम्भ होते ही भारतीय प्रकाशन-व्यवसाय आधुनिकता की ओर बढ़ने लगा। वैसे तो भारत में हिन्दी, बंगला, असमी, गुजराती, पंजाबी, कन्नड़, मलयालम, मराठी, उड़िया, तमिल, तेलगू और उर्दू लिपि में पुस्तकों का प्रकाशन तो आरम्भ हो चुका था, परन्तु प्रकाशन क्षेत्र में हिन्दी, उर्दू, बंगला और तमिल में प्रकाशनों का बाहुल्य था। १९२० तक कथा-साहित्य, दर्शन, धर्म, व्याकरण आदि विषयों की पुस्तकों की ओर प्रकाशकों का काफी झुकाव रहा। उन्हीं दिनों हिन्दी में बंगला अनुवादों के प्रकाशनों की खूब धूम थी। १९२१ से १९४२ तक उपरोक्त विषयों के अलावा विज्ञान, इतिहास, भूगोल आदि पर भी भारतीय भाषाओं में कुछ प्रकाशन हुए। इन दिनों ब्रिटिश शासन की पराधीनता के कारण कुछ महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय साहित्य भी प्रकाशित हुआ जो कि आज हमारे इतिहास का एक अभिन्न अंग बन चुका है। उपरोक्त अवधि में प्रकाशनों को आधुनिक स्वरूप देने का श्रेय हिन्दी, बंगला तथा मराठी के प्रकाशकों को प्राप्त है।

१९४२ के बाद, 'भारत छोड़ो' आन्दोलन के परिणामस्वरूप अँग्रेज सरकार का रवैया जब भारत को आजाद करने का हुआ, तब भारत के प्रकाशकों ने समाजशास्त्र, ललितकला, कारीगरी आदि विषयों पर भी पुस्तकें प्रकाशित करनी शुरू कीं। सन् १९४२ से ४७ तक का यह समय इस बात का द्योतक है कि भारतीय प्रकाशक और साहित्यकार भारत की जनता के अनुकूल साहित्य प्रकाशित करना जानते और चाहते थे।

साहित्य की श्रीवृद्धि

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि भारतीय प्रकाशकों ने देश के स्वातन्त्र्य-संग्राम में बहुत बड़ा योग दिया है। लाखों की संख्या में उन्होंने राष्ट्रीय पुस्तकें छापीं और कई

प्रकाशकों के तो प्रेस भी जब्त हो गये। इस राष्ट्र-प्रेम के साथ-साथ प्रकाशकों ने साहित्य की श्रीवृद्धि भी सर्वविषयक प्रकाशनों द्वारा की।

हमारे देश में प्रकाशन-व्यवसाय पहले एक ऐसा व्यवसाय था जिसे सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं थी। प्रकाशन का कार्य करनेवाले सम्मान की दृष्टि से नहीं देखे जाते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि प्रारम्भ में कम पढ़े-लिखे लोग इस व्यवसाय में आये। बुद्धिवादी और धनिक लोग अधिक संख्या में इस व्यवसाय को अपनाने के लिए तैयार न थे। इसी कारण आज देश की स्वाधीनता के बाद भी भारतीय प्रकाशन-व्यवसाय पूरी तरह वैज्ञानिक ढंग से संगठित नहीं हो पाया है। कुछ प्रकाशक और विक्रेता अभी भी ऐसे हैं, जिनको न तो प्रकाशन-व्यवसाय सम्बन्धी कोई प्रशिक्षण प्राप्त है और न ही उन्हें प्रकाशन के वैज्ञानिक तरीकों का ज्ञान है। बावजूद इन कमियों के स्थिति आज बदल चुकी है। आज इस व्यवसाय को सामाजिक मर्यादा प्राप्त हो चुकी है और सुलझे हुए प्रकाशक युग के अनुकूल अपने को ढालने के लिए सन्नद्ध हैं।

वास्तव में यह प्रसन्नता की बात है कि आज विश्व में प्रकाशन की दृष्टि से भारत का स्थान काफी ऊपर है। भारतीय प्रकाशन-व्यवसाय अब कम महत्त्वपूर्ण नहीं रहा। केवल आवश्यकता इस बात की है कि अच्छे पढ़े-लिखे प्रशिक्षित लोग इस व्यवसाय के विभिन्न अंगों को संभालें और इसकी प्रगति के लिए ऐसी रूपरेखा प्रस्तुत करें, जिससे व्यवसाय समृद्ध और जनोपयोगी हो, साथ ही साथ सत्साहित्य का सृजन और प्रकाशन हो।

प्रकाशकों के वर्ग

विशाल देश की जनता के लिए विभिन्न विषयों पर निजी रुचियों के अनुकूल पुस्तकों की आवश्यकता है। इसके साथ ही अशिक्षित तथा अनपढ़ लोगों के प्रति समाज का जो दायित्व है, उसका निर्वाह भी इस व्यवसाय को करना है। इन सभी लोगों के लिए हमें पाठ्य-सामग्री जुटानी है। इस तरह हमारे देश में प्रकाशन संस्थाओं के छह वर्ग हैं—पाठ्य-पुस्तक प्रकाशन संस्थान, साहित्यिक प्रकाशन संस्थान, धार्मिक प्रकाशन संस्थान, जन-साहित्य प्रकाशन संस्थान, प्रचार-साहित्य प्रकाशन संस्थान तथा सरकारी प्रकाशन संस्थान।

पाठ्य-पुस्तकों के प्रकाशन क्षेत्र में प्रारम्भ में उल्लेखनीय प्रयास इंडियन प्रेस, रामनारायणलाल, खड्गविलास प्रेस, पुस्तक भण्डार आदि प्रकाशन संस्थानों ने किया। सम्प्रति इस क्षेत्र में हिन्दी में हजार के लगभग प्रकाशन संस्थायें हैं। यहीं उल्लेखनीय यह भी है कि पाठ्य-पुस्तकों के प्रकाशकों के विरुद्ध प्रायः ये शिकायतें सुनी जाती रहीं हैं, मसलन-पुस्तक स्वीकृत होने के बाद अच्छे कागज का उपयोग न करना, अच्छी छपाई का न होना और समय पर बाजार में पुस्तकें न पहुँचाना। फलतः सरकार ने इस क्षेत्र में प्रवेश करने का विचार किया और पाठ्य-पुस्तकों का राष्ट्रीयकरण भी कर दिया, जो वस्तुतः मुक्त व्यवसाय की सर्वमान्य लाभप्रद प्रवृत्तियों के प्रतिकूल है और एकतरफा भी। ध्यान देने की बात है कि पाठ्य-पुस्तकों के प्रकाशकों का एक ऐसा भी वर्ग है जो स्वस्थ और सुन्दर पाठ्य-पुस्तकें प्रकाशित कर रहा है।

बताना न होगा कि अधिक पुस्तकों के प्रकाशन में भी हिन्दी सदैव आगे रही है। हमारे देश की जनता धार्मिक साहित्य को बहुत महत्त्व देती है। प्रकाशकों ने जनता की इस भावना को ध्यान में रखकर धार्मिक साहित्य को भी प्रकाशित किया। अधिकतर धार्मिक पुस्तकों के प्रकाशक हिन्दू धर्म की ही पुस्तकें छापते हैं, क्योंकि हमारे देश की अधिकांश जनता हिन्दू धर्मानुयायी है। प्रकाशकों ने जन-साहित्य के प्रकाशन की ओर भी अभिरुचि प्रकट की है। जन-साहित्य के प्रकाशन से एक प्रत्यक्ष लाभ यह हुआ है कि इससे बहुत से नये पाठक उत्पन्न हुए। इससे साहित्यिक प्रकाशनों के पाठकों में भी वृद्धि हुई। हमारी राज्य सरकारों तथा केन्द्र सरकार ने भी प्रकाशन के क्षेत्र में प्रवेश किया है। इसके साथ ही कई साहित्यिक प्रकाशन संस्थाएँ सरकारी अनुदान प्राप्त कर प्रकाशन का कार्य कर रही हैं।

संस्कृति के संरक्षक

प्रकाशन व्यवसाय का महत्त्व देश की सभ्यता, संस्कृति और शिक्षा से सम्बन्धित है। किसी भी देश की संस्कृति उस देश के प्रकाशकों द्वारा ही सुरक्षित समझी जाती है। शिक्षा के प्रचार-प्रसार में पुस्तक के प्रकाशक का लेखक के समकक्ष ही महत्त्व है। यदि लेखक की कृति समुचित मात्रा में प्रकाशित होती है तो सर्वसाधारण के लिए वह सुलभ होगी। हमारे देश में आज पढ़े-लिखे लोगों की संख्या नहीं के बराबर है। अतः देश में प्रकाशक का निश्चय ही बहुत महत्त्व है। जनता में रुचि को जागृत करने तथा आनेवाली पीढ़ी को शिक्षित बनाने का दायित्व हमारे देश के प्रकाशकों तथा लेखकों के कन्धों पर है। हमें जनता में पठन-रुचि बढ़ाने के लिए सुमुद्रित तथा ज्ञानवर्द्धक साहित्य प्रस्तुत करना है। आर्थिक दृष्टि से भी इस व्यवसाय का अपना महत्त्व है। यह तो निश्चित ही है कि शिक्षा प्रसार के साथ-साथ इस व्यवसाय की समृद्धि होगी और लाखों व्यक्ति इस व्यवसाय से जुड़ेंगे।

प्रकाशन कला की शिक्षा देने के लिए यदि टेक्निकल स्कूल और अधिक संख्या में खोले जायें तो भारतीय प्रकाशक विदेशी प्रकाशकों के समकक्ष पुस्तकों का उत्तम प्रकाशन कर सकेंगे।

हिन्दी प्रकाशनों की स्थिति

सन् १९३० की कलकत्ता के हिन्दी प्रकाशन धारा को देखने पर पता लगेगा कि उस समय बंगला तथा मराठी के अनुवाद, राजनीतिक साहित्य, पौराणिक, ऐयारी तथा जासूसी उपन्यासों की ओर प्रकाशकों, लेखकों तथा पाठकों का झुकाव विशेष था। याद आता है आर०एल० बर्मन कम्पनी के 'हिन्दू पंच' अखबार का वह दफ्तर जहाँ से सती सीरीज, (सती शकुन्तला, सती दमयन्ती), जासूसी सीरीज, ऐयारी के उपन्यास आदि प्रकाशित होते थे। यह वही दफ्तर था जहाँ उस युग के हिन्दी नवरत्न—ईश्वरीप्रसाद शर्मा, नवजादिकलाल श्रीवास्तव, जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी आदि विद्वान् कार्य करते थे। निहालचन्द एण्ड कम्पनी द्वारा प्रकाशित मिस मेयो की 'मदर इण्डिया' के जवाब में रंगा अय्यर लिखित 'फादर इण्डिया' और 'पंजाब का भीषण हत्याकाण्ड' की दस हजार प्रतियाँ छपते ही पाठकों द्वारा हाथोंहाथ खरीद ली गई थीं। पद्मराजजी जैन द्वारा प्रकाशित राष्ट्रीय पैम्फलेट 'बोल माई लाट कुकड़ूँ-कूँ' की लाखों प्रतियाँ बिक गई थीं और गोरी पुलिस की चेरी सी०आई०डी० उसकी एक भी प्रति न पा सकी थी। 'मतवाला' कार्यालय का दफ्तर भी कलकत्ता में था, जहाँ से राष्ट्रीय रचनाएँ 'दिल्ली का दलाल', 'बुधवा की बेटी' आदि प्रकाशित हुई थीं। वैसे देश में और भी अनेक गणमान्य प्रकाशन संस्थाएँ थीं, परन्तु कलकत्ता से जो प्रकाशन होते थे वे ही हिन्दी के प्रतिनिधि प्रकाशन समझे और माने जाते थे। कलकत्ता से हटकर काशी में गोपालरामजी गहमरी का जासूस कार्यालय, भारतजीवन प्रेस, नागरी प्रचारिणी सभा, कानपुर में गणेशशंकरजी 'विद्यार्थी' का प्रकाश पुस्तकालय, लखनऊ में दुलारेलालजी की गंगा पुस्तक माला, मुंशी नवलकिशोर प्रेस, बम्बई में नाथूरामजी प्रेमी का हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय तथा सेठ खेमराज श्रीकृष्णदास का वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस आदि पुराने प्रकाशनों की आज भी हमें याद दिलाते हैं।

बंगला साहित्य का प्रभाव

उन दिनों हिन्दी में पुरुष पाठकों की अपेक्षा स्त्री पाठकों की बहुलता थी। लेखकों की रुचि पौराणिक उपन्यास, जासूसी तथा ऐयारी वृत्तान्तमाला, राजनीतिक, साहित्यिक और धार्मिक पुस्तकें लिखने की ओर ही थी। विज्ञान, तकनीकी, आलोचना आदि विषयों पर पुस्तकें नहीं के बराबर थीं। हिन्दी-प्रकाशन के इस युग में एक और अजूबी चीज पायी जाती थी कि राजे-रजवाड़ों के नाम से भी रचनाएँ लिखी जाती थीं। कई रज़वाड़ों को तो शौक था कि वे लेखक बनें। किसी विद्वान् को रुपया देकर पुस्तक लिखवाते थे और उस पुस्तक पर अपना नाम दे देते थे। यदि कोई लेखक स्वाभिमानी होता था तो उसे रुपया देकर पुस्तक को अपने नाम समर्पण ही करवा लिया जाता था। उन दिनों

लेखक को पुस्तक लिखने से कुछ विशेष आर्थिक लाभ तो नहीं होता था, परन्तु ख्याति की दृष्टि से पुस्तक लिखना अच्छा समझा जाता था।

सन् १९२१ से ४० तक के प्रकाशनों को देखने से मालूम होता है कि उस युग में हिन्दी के प्रकाशन बंगला साहित्य के प्रकाशनों से बहुत प्रभावित थे। हिन्दी की पुस्तकें सजधज के साथ प्रकाशित होने लगी थीं। यह तो नहीं कहा जा सकता कि उस समय की पुस्तकों की रूपसज्जा आज के प्रकाशनों के बराबर थी, परन्तु यह अवश्य कहा जा सकता है कि प्रकाशक तन्मयता के साथ उन दिनों (सन् १९२० के पूर्व वाले प्रकाशन के युग के ढर्रे को त्याग कर) आगे बढ़ना चाहता था। हिन्दी पुस्तकों में तिरंगे कवर और भीतर आर्ट पेपर पर चित्रों को देने की प्रथा-सी चल पड़ी थी। उपहार-भेंट करने के लिए रेशमी जिल्दों की और सोने के ठप्पे लगी हुई पुस्तकें उस समय उपलब्ध होती थीं जो आजकल नहीं दिखाई देतीं। अधिकांश पाठक सोने के ठप्पे वाली रेशमी जिल्द की पुस्तकें पसन्द करते थे। प्रसिद्ध ऐयारी उपन्यास—चन्द्रकान्ता, मोती-महल, पुतली-महल, हेमलता आदि रेशमी सजावट और सोने के ठप्पेवाली पुस्तकें आज भी कलकत्ता के पुराने पुस्तकालयों में देखी जा सकती हैं।

हिन्दी में आधुनिक मोड़

सन् १९३५ में हिन्दी प्रकाशनों को आधुनिक मोड़ देनेवाले एक महान् साहित्यकार थे पं० चन्द्रशेखर पाठक, जिन्होंने हिन्दी में सौ से अधिक पुस्तकें लिखीं और उनकी लेखन-शैली ने पुराने एवं पौराणिक ढंग के उपन्यासों की जगह ऐतिहासिक उपन्यासों को पढ़ने की ओर जनता का ध्यान आकृष्ट किया। पाठकजी के सिकन्दर, भीमसिंह, सती पद्मिनी, पृथ्वीराज चौहान, आदि उपन्यास पौराणिक उपन्यास लिखनेवालों के लिए चुनौती सरीखे थे। पाठकजी ने स्वर्गीय पं० किशोरीलाल गोस्वामी के ऐय्यारी उपन्यासों की परम्परा में हिन्दी को 'मायापुरी' उपन्यास-जैसी कृति उन दिनों दी थी।

आज का पाठक कविता की पुस्तकों में, पाठ्य-पुस्तकों को छोड़कर शायद ही दिलचस्पी रखता हो। याद आता है कि उस समय राष्ट्रकवि माधव शुक्ल की कविता 'राष्ट्रीय झंकार' और 'मेरी माता के सर पर ताज रहे' बच्चे-बच्चे की जबान पर थी। इस पुस्तक की हजारों प्रतियाँ हाथोंहाथ बिक गयीं। शुक्लजी कविता और नाटक दोनों लिखते थे। यद्यपि गाँधीजी के असहयोग आन्दोलन के दिनों में राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत भारती' ने घर-घर में स्थान पा लिया था, फिर भी उन दिनों जनता शुक्लजी का गीत संकलन 'राष्ट्रीय झंकार' जेब में लिए घूमती थी। गुप्तजी की कृति और शुक्लजी की कृति में अन्तर केवल इतना था कि गुप्तजी साहित्य-पक्ष को दृष्टि में रखकर रचनाएँ करते थे और शुक्लजी की रचनाएँ देशभक्ति के जोश में लिखी जाती थीं और वह भी रास्ते चलते। सन् १९३६ में जापान के प्रसिद्ध कवि नागुची कलकत्ता आये थे। उन्हीं दिनों कलकत्ता विश्वविद्यालय के सीनेट हाल में कविवर रामधारी सिंह 'दिनकर' से मेरी पहली मुलाकात हुई थी। वहीं उन्होंने अपनी प्रसिद्ध कविता 'मेरे नगपति, मेरे विशाल' पढ़ी थी।

इसी कविता के कारण दिनकरजी के 'रेणुका' नामक संकलन की हजारों-हजारों प्रतियाँ जनता ने देखते ही देखते खरीदी थीं।

हिन्दी प्रकाशनों में नई चेतना

ये वे दिन थे जब प्रायः कम पूँजीवाले लोग ही प्रकाशन क्षेत्र में आते थे। देश गुलाम था, हमारी संस्कृति पर गुलामी की छाप पड़ी हुई थी, परन्तु गाँधी जी के असहयोग-आन्दोलन ने उस समय प्रकाशकों पर भी अपनी अमिट छाप छोड़ रखी थी। देश-भक्तिपूर्ण पुस्तकें प्रकाशित करने की प्रकाशकों में ललक और होड़ थी। ऐसे प्रकाशक भी थे जो स्वयं पुस्तकें लिखते थे, प्रूफ देखते थे, दौड़-धूप कर छपवाते थे और शहरों व मेलों में घूम-फिरकर बेचते भी थे। बंगला में एक मुहावरा है—'जूतो सेलाई थिके चंडीपाठ' अर्थात् जूता सिलाई से चंडीपाठ तक का काम ये प्रकाशक किया करते थे।

सन् १९४० तक के हिन्दी प्रकाशन का विश्लेषण थोड़े शब्दों में ऊपर किया जा चुका है। उसके बाद हिन्दी प्रकाशन के क्षेत्र में एक नई चेतना दिखाई पड़ी। इस चेतना के कर्णधार थे इण्डियन प्रेस के चिन्तामणि घोष के सुपुत्र पाटिल बाबू, जिन्होंने 'सरस्वती सीरीज' तथा अन्य साहित्यिक कृतियों को आधुनिकतम ढंग से प्रकाशित कर हिन्दी प्रकाशन में नये प्रयोग उपस्थित किये। सोहनलाल द्विवेदी की कविताएँ इण्डियन प्रेस ने सजधज के साथ छापीं और उसे पाठकों ने सराहा भी। इसी समय भारती भण्डार, प्रयाग द्वारा प्रकाशित पुस्तकें भी जनता द्वारा समादृत होने लगी थीं। स्वतन्त्रता युग आते-आते देश में हिन्दी प्रकाशन क्षेत्र में कलकत्ता का महत्त्व कम होने लगा। आजादी के साथ ही पटना, इलाहाबाद और वाराणसी हिन्दी प्रकाशन के गढ़ बन रहे थे। हरिऔधजी, महाबीरप्रसाद द्विवेदी, बाबू श्यामसुन्दरदास, राजा राधिकारमण सिंह, प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी, भगवतीचरण वर्मा, दिनकर और नरेन्द्र शर्मा आदि की रचानाएँ इन्हीं केन्द्रों से प्रकाशित होती थीं।

हिन्दी समय की गति के साथ

सन् १९५० के बाद हिन्दी-प्रकाशन में एक नई क्रान्ति का आविर्भाव हुआ। लाहौर से आये प्रकाशकों द्वारा हिन्दी में वैज्ञानिक रीति से दिल्ली से धुँआँधार प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। हिन्दी के राष्ट्रभाषा होने के कारण हिन्दी प्रकाशकों ने अपने प्रकाशन-क्षेत्र को और व्यापक बनाया। पुरानी प्रकाशन परम्परा समय के साथ दफना दी गयी। अब जासूसी, सती सीरीज, पौराणिक उपाख्यान, राष्ट्रीय पुस्तकें पढ़नेवालों की संख्या नगण्य-सी हो गई है। आजादी के बाद का पाठक दुनिया में मौजूदा वैज्ञानिक संचरण-साधनों के कारण इतना अधिक व्यापक जानकारी रखनेवाला हो गया कि उसे पुस्तकों के नाम पर पुरानी परम्परा की पुस्तकें पढ़ने से सन्तुष्टि नहीं प्राप्त होती। समय की गति को हिन्दी के प्रकाशकों ने पहचाना और उनके द्वारा हिन्दी में विज्ञान, तकनीकी, भूगोल, इतिहास, नवसाक्षर साहित्य, बच्चों के लिए वयक्रम से पुस्तकें प्रकाशित करने का कार्य आरम्भ हो

गया। आजादी के बाद हिन्दी-कथा-साहित्य में प्रेमचन्दजी के बाद अच्छे लेखक भी मिले। बाल-साहित्य में भी हिन्दी के प्रसिद्ध लेखकों की कृतियाँ आयीं। बाल-साहित्य में अँग्रेजी से ग्रिम, हेंस ऐण्डरसन आदि की कहानियाँ हिन्दी में अनूदित होकर आयीं। यूनेस्को के तत्वावधान में कई बाल पुस्तक मालाएँ भी छपीं। बाल-साहित्य के क्षेत्र में हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, राजपाल एण्ड संस, आत्माराम एण्ड संस, राजकमल प्रकाशन प्रा० लि०, सस्ता साहित्य मण्डल, आदि संस्थाओं ने काफी अच्छे प्रकाशन किये। इधर एक अजीब बात प्रकाशकों में देखने को मिली, वह है प्रकाशकों द्वारा काव्य-कृतियों को प्रकाशित करने में नाक-भौं सिकोड़ना। फलतः प्रतिभाशाली कवियों की कृतियों के प्रकाशन में कठिनाई हुई। हिन्दी प्रकाशक इस विषय में यदि शीघ्र ही सजग एवं सचेष्ट नहीं हुए तो भय है कि वे कितने ही रवीन्द्र और गेटे खो देंगे। अच्छा हो कि कविता की पुस्तकें सजधज के साथ प्रकाशित की जायँ और प्रकाशक उनका विशेष रूप से प्रचार करें। इस दृष्टि से यहाँ 'भारतीय ज्ञानपीठ' का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। अवश्य ही इस संस्था ने हिन्दी कविता की अधुनातन प्रवृत्तियों, उपलब्धियों और प्रतिभाओं को सर्वाधिक प्रोत्साहन दिया है।

शिक्षा का प्रसार होने के कारण कालेज-स्तर पर प्रत्येक विषय में हिन्दी पुस्तकों की माँग शुरु हो गयी। लिहाजा कृषि, मूर्तिकला, वस्त्रोत्पादनकला, भूगर्भशास्त्र, रसायनशास्त्र, भौतिकशास्त्र आदि विषयों का हिन्दी में उच्चस्तरीय प्रकाशन हो रहा है। हिन्दी में प्रान्तीय भाषाओं के अनुवाद भी धड़ल्ले से आ रहे हैं। बंगला से ताराशंकर बन्द्योपाध्याय, उड़िया से कालिन्दीचरण जी और पंजाबी से नानकसिंह जी के उपन्यास हिन्दी प्रकाशन-जगत् की उपलब्धि हैं। साहित्य अकादमी और भारतीय ज्ञानपीठ भी विभिन्न भाषाओं की चुनी हुई पुस्तकों का अनुवाद प्रकाशित करने में प्रयत्नशील हैं। हिन्दी प्रकाशनों में आज जितने विविध प्रकार के विषय देखे जाते हैं उतने १९२० से १९४० के बीच में तो थे हीं नहीं। उस समय की तुलना में आज का युग प्रकाशन की दृष्टि से बहुत समृद्ध है, परन्तु जिस गति से देश में शिक्षा बढ़ रही है, उस गति से हिन्दी के प्रकाशनों की माँग नहीं बढ़ रही है। कहा जा सकता है कि देश की आर्थिक विषमताओं के कारण मानव इतना अशान्त है कि उसका ध्यान पढ़ने की ओर जा ही नहीं पा रहा है। लेकिन स्पेस ट्रैव्हेल के इस युग में हिन्दी प्रकाशकों और लेखकों को पाठकों का ध्यान आकृष्ट करने के लिए ऐसा साहित्य प्रस्तुत करना चाहिए जिससे पुस्तकों की ओर पाठकों का रुझान बढ़े, घटे नहीं।

स्थायी और सामयिक प्रकाशन

हिन्दी में विविध विषयों की पुस्तकें लिखने के लिए शब्दों की आवश्यकता है। इसके लिए केन्द्रीय सरकार का हिन्दी निदेशालय काफी काम कर रहा है। यों तो सभी राज्य सरकारें हिन्दी पुस्तकों के प्रकाशन की दिशा में उन्मुख हैं, पर उत्तर प्रदेश सरकार की हिन्दी समिति द्वारा प्रकाशित पुस्तकों का स्वतंत्रता के बाद के प्रकाशनों में विशेष स्थान है। स्थायी मूल्य के साहित्य का इतना विविधतापूर्ण प्रकाशन, कल्पना तथा श्रम का

समन्वित प्रतीक है। कोशों के प्रकाशन में काशी के ज्ञानमण्डल लि० का नाम विशेष रूप से लिया जा सकता है। १९४१ के पूर्व के दो दशकों में प्रकाशन-व्यवसाय की जो सामाजिक स्थिति थी, उस समय से अब की स्थिति में बड़ा अन्तर आ गया है। पहले जहाँ हिन्दी प्रकाशन का कार्य हिन्दी-सेवा तक ही सीमित था, वहीं अब इसे समाज-सेवा कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। हिन्दी पहले जहाँ सिर्फ हिन्दी भाषा भाषियों की भाषा थी, वहीं आज यह भारत की राष्ट्रभाषा है। इस बदलती हुई सामाजिक स्थिति में प्रकाशकों द्वारा पाठकों की रुचि, पुस्तक-विक्रय-कला, प्रचार-प्रसार पद्धति, लेखक-प्रकाशक सम्बन्ध और प्रकाशन स्तर में सुधार आदि पर ध्यान देना अधिक आवश्यक हो गया है।

पाठकों की रुचि प्रकाशन का मेरुदण्ड है। इसके दो पहलू हैं। एक स्थायी साहित्य का और दूसरा सामयिक साहित्य का प्रकाशन। स्थायी साहित्य के प्रकाशन के लिए प्रकाशक को इतना सजग और सचेष्ट रहने की आवश्यकता नहीं है, जितना कि सामयिक साहित्य के लिए। उदाहरण के लिए मेजर यूरी गागरिन की अन्तरिक्ष यात्रा पर पाठक पुस्तकें पढ़ना चाहते थे। नेहरूजी की पहली अमेरिका तथा रूस यात्रा पर लोगों में पढ़ने का कुतूहल था। ऐसी पुस्तकें जब निकलेंगी तो वे सामयिक कही जायेंगी।

लेखक, प्रकाशक और पाठक

स्थायी साहित्य के लिए ऐसी स्थिति नहीं है। साहित्य के किसी भी छपे ग्रन्थ का प्रकाशन मूल्य सर्वदा एक-सा रहता है। स्थायी साहित्य के प्रकाशन में भी पाठकों की रुचि के अनुकूल प्रकाशन होना आवश्यक है। बालक तथा महिला पाठकों की रुचि के सम्बन्ध में लेखकों को और अधिक सजग एवं सचेष्ट रहने की आवश्यकता है। पाठकों के ये दो वर्ग बड़े ही कोमल होते हैं। यदि किसी लेखक की कृति ने इनके हृदय में अपना प्रभाव स्थापित कर लिया तो ये उस लेखक की सम्पूर्ण कृतियों को पढ़कर ही दम लेते हैं। महिलाओं और बच्चों के अलावा हिन्दी पाठकों का एक वर्ग और आ रहा है, वह है बौद्धिक बनने की चेष्टा करनेवाला वर्ग। हिन्दी प्रकाशनों को ऐसे वर्ग के अनुकूल बनाया जा सके तो हिन्दी प्रकाशन का विकास होगा।

हिन्दी प्रकाशन : चुनौती और समस्या

हिन्दी के जाने माने बुजुर्ग कवि बाबा नागार्जुन ने एकबार अपने कलकत्ता प्रवास के दौरान हिन्दी पुस्तकों की बिक्री में गिरावट पर चिन्ता प्रकट करते हुए कहा था कि—'अब तो रद्दी वाले भी किताब खरीदना नहीं चाहते।' अपनी व्यंग्यात्मक शैली में उन्होंने सलाह दी थी कि किताबों को पानी में भिगो कर उसकी लुगदी से बर्तन बनाकर बेचना ज्यादा फायदेमन्द होगा। बाबा की इस चिन्ता से लेखक और प्रकाशक अवश्य सहमत होंगे। प्रकाशकों की यह आम शिकायत है कि हिन्दी के प्रकाशन बिकते ही नहीं। कागज, श्रम तथा अन्य सम्बन्धित सामग्री के लागत मूल्य में वृद्धि तथा पुस्तक विक्रेता, पूँजीगत ब्याज-लाभ आदि के कारण किताबों का बेतहासा मूल्य, हिन्दी पाठकों की क्रयशक्ति के बस का नहीं रह गया है। इस शिकायत की सच्चाई से इन्कार नहीं किया जा सकता, किन्तु तब भी इस समस्या पर गहराई से विचार करना आवश्यक है।

कीमते बढ़ी हैं, इसमें सन्देह नहीं है, लेकिन केवल किताबों की ही नहीं। आज सभी जीवन निर्वाह की बुनियादी वस्तुओं की कीमतें आकाश चूम रही हैं। किताबें तो जीवन निर्वाह के लिए बुनियादी आवश्यकता की वस्तु भी नहीं हैं। कीमतों की वृद्धि का एक बुनियादी कारण मुद्रास्फीति भी है। अर्थात् मुद्रा का प्रसार, जनता की आय में वृद्धि और सामान्यतया उसकी क्रयशक्ति में विकास। क्रयशक्ति में वृद्धि के कारण मनोरंजन की सामग्री की खपत तेजी से बढ़ी है। किताबों के क्षेत्र में यह शिकायत सिर्फ हिन्दी के प्रकाशकों से हीं सुनाई पड़ती है। कीमतें बढ़ने के बावजूद भारत में ही अंग्रेजी, बंगला आदि हिन्दीतर भाषा की पुस्तकों के विक्रय में ऐसी शिकायतें आखिर क्यों नहीं सुनी जाती? हिन्दी की तो नहीं, किन्तु अंग्रेजी पत्रिकाओं के हिन्दी संस्करण तथा अन्य भारतीय भाषाओं के नए-नए संस्करण बराबर प्रकाशित हो रहे हैं और बढ़ते ही जा रहे हैं। कीमतों में वृद्धि के बावजूद उनका बाजार गर्म है। हिन्दी जाननेवाले अधिकांश पाठक हिन्दी की अपेक्षा अंग्रेजी के समाचार पत्र और पत्रिकाओं को ही अधिक मूल्य देकर खरीदते और पढ़ते हैं। अत: यह कहना कि हिन्दी के पाठकों की क्रयशक्ति हिन्दी पुस्तकों की बढ़ी हुई कीमतों का सामना नहीं कर सकती, केवल बात को जड़ से उड़ा देना है। एक दिलचस्प तथ्य यह है कि हिन्दी प्रकाशन के क्षेत्र में ही बंगला उपन्यासों के हिन्दी अनुवाद बंगला संस्करण से भी ऊँची कीमतों के बावजूद बड़े धड़ल्ले से बिकते हैं। यह कहना कि हिन्दी के पाठकों की क्रयशक्ति हिन्दी प्रकाशनों की बढ़ी हुई कीमतों को नहीं झेल सकती, समस्या से केवल आँख मूँद लेना है। यदि इस समस्या पर गहराई से विचार किया जाए तो इसके लिए—लेखक, प्रकाशक और सरकार यानी हिन्दी-प्रकाशन के तीनों प्रमुख स्तम्भ बराबर के जिम्मेदार हैं।

सबसे पहले हम लेखक की भूमिका पर ही विचार करें। बाबा नागार्जुन ने कलकत्ता से अपनी बिदाई के अवसर पर कहा था—'आज जरूरत है नये उभरते

लेखकों और कवियों को समुचित प्रशिक्षण देने की जिससे वे यहाँ के हिन्दी व बंगला साहित्य के अन्तर को अच्छी तरह समझ सकें।

इस शहर के हिन्दी भाषियों के लेखन और आचरण में सामंजस्य नहीं है। साहित्य को जिन्दा रखने के लिए यह जरूरी है कि लेखकों और कवियों को सही मार्ग दर्शन व उचित प्रशिक्षण दिया जाए। यह बात केवल कलकत्ता के हिन्दी लेखकों के लिए ही नहीं, वरन् देश के सभी हिन्दी रचनाकारों के लिए जरूरी है। एक लेखक लिपिक नहीं होता, वह स्रष्टा होता है, और यह अनिवार्य है कि अपने द्वारा सृष्ट रचना-संसार का सर्वज्ञ हो। अब सवाल यह है कि इस कसौटी पर हिन्दी के कितने लेखक खरे उतरते हैं? जब कीमत आसमान छू रहा हो तब हर पाठक अपने पैसे का पूरा मूल्य चाहता है। पढ़ने की उसे भूख है और साक्षरता के विस्तार के साथ यह भूख और भी बढ़ी है। पेट की भूख के शमन के बाद दूसरी उतनी ही उग्र भूख दिमाग की होती है। सुपठित पाठक अपनी इस भूख को यदि हिन्दी की रचनाओं से नहीं मिटा पाता तब वह अंग्रेजी, बंगला तथा अन्य भाषाओं के साहित्य का आश्रय क्यों न लें? नव-साक्षर या केवल समय काटने के लिए पढ़नेवाला पाठक तो कामोत्तेजक या अपराध वृत्ति को उत्तेजित करनेवाली पुस्तकें पढ़कर ही सन्तोष कर लेता है। लेखन प्रारम्भ करने से पहले लेखक को अपने प्रतिपाद्य विषय का पूरा ज्ञान अवश्य होना चाहिये। उसे समाज और परिवेश की पूरी जानकारी होनी चाहिये। मानव मन की गहराइयों में पैठकर मानसिक व्यूहों के आकलन की क्षमता के साथ ही भविष्य के प्रति दृष्टि एक लेखक के लिए नितान्त आवश्यक है। यदि वह पाठक को नई दृष्टि नहीं दे सकता, तो कौन सुधी पाठक उसे पढ़ने में समय और पैसा बर्बाद करना चाहेगा?

यहीं पुस्तक उत्पादन के दूसरे घटक-प्रकाशक की भूमिका प्रारम्भ हो जाती है। यह निर्विवाद रूप से स्वीकार किया जाना चाहिए कि प्रकाशन भी एक व्यवसाय है। कोई प्रकाशन के क्षेत्र में लाभ कमाने के लिए ही उतरता है। किसी सांस्कृतिक तथा साहित्यिक भावुकता से नहीं। किन्तु लाभ की सीमा क्या हो? यह एक विचारणीय तथ्य है।

यह तथ्य है कि प्रकाशन के क्षेत्र में प्रतिद्वन्द्विता नहीं हो सकती क्योंकि इस उत्पादन में प्रत्येक रचना एक अलग उत्पाद होती है। अत: उसके विक्रय मूल्य निर्धारण में प्रकाशक का प्राय: एकाधिकार होता है। अन्य भारतीय भाषाओं की तुलना में हिन्दी का बाजार बहुत अधिक विस्तृत है। व्यापक सम्पूर्ति (खपत) के सामान्य नियम के अनुसार हिन्दी प्रकाशनों का मूल्य अपेक्षाकृत कम होना चाहिए, किन्तु हो रहा है इसका उल्टा। हिन्दी प्रकाशनों का मूल्य अन्य भाषाओं के प्रकाशनों की अपेक्षा अधिक ही होता है। प्रकाशन की गुणवत्ता के बावजूद उनकी कीमतें हिन्दी की पुस्तकों की अपेक्षा बहुत कम होती हैं। यहीं पर प्रकाशक की भूमिका प्रश्नवाचक हो जाती है।

अपने लाभ को बढ़ाने के लोभ में वह पाठ्यपुस्तकों पर बल देता है। बिकनेवाले नामी लेखकों की चाहे जैसी पुस्तक (गुणवत्ता आधार ताक में रखकर) हो, उसे स्वीकार कर छापने के बाद उसके साथ कई गुना अधिक मूल्य वाली पुस्तकें भी चिपका देता है। इसका एक तर्क यह भी है कि पुस्तक को पाठक तक पहुँचाने के पहले उसके अतिरिक्त कई बिचौलियों और पुस्तक-विक्रेता का भी पेट भरना पड़ता है। पर यह समस्या तो प्रत्येक भाषा के लिए समान है। प्रकाशकों द्वारा लेखक के शोषण की बात मै यहाँ नहीं

उठाना चाहता। आजकल पुस्तकों की एक बड़ी खरीदार राज्य सरकारें हैं, जो पुस्तकों की थोक खरीद करती है। भ्रष्ट अधिकारियों के साथ प्रकाशकों के तालमेल से किस तरह निकृष्ट साहित्य ऊँचे मूल्य पर सरकारी संस्थानों और पुस्तकालयों में थोप दिया जाता है, यह छिपा नहीं है। ऐसे भ्रष्टाचार के मामले अखबारों ही में नहीं, विधान सभाओं तक में उठाए जा चुके हैं। लेखक और प्रकाशक की साँठ-गाँठ से कागज के दुरुपयोग पर भी ध्यान जाता है। देखा गया है कि किसी-किसी काव्य संकलन में पूरे पृष्ठ पर सिर्फ दो-दो, तीन-तीन शब्दों की केवल तीन या चार पंक्तियाँ ही छापकर सौ-डेढ़ सौ पृष्ठ पूरे कर लिए गए हैं। यही नहीं, किसी-किसी उपन्यास तक का भी इसी तरह का प्रकाशन किया गया है, जिसकी प्रत्येक पंक्ति में दो-दो, तीन-तीन शब्द ही मुद्रित किए गए हैं, ऐसे मुद्रण का क्या प्रयोजन है, यह समझ से परे है।

यहाँ एक सवाल और उठता है कि पुस्तक प्रकाशन तो व्यवसाय है। उसमें व्यावसायिकता होगी, पर क्या पुस्तक लेखन भी व्यवसाय है? तब तो वह बाजारू हो जाएगा। तब लेखक अपने उद्देश्यों को ही खो देगा। पुस्तक प्रकाशन को एक व्यवसाय स्वीकार कर लेने पर उसकी एक प्रमुख आनुषंगिक प्रवृत्ति की ओर भी ध्यान जाना स्वाभाविक है। हिन्दी के प्रकाशक विज्ञापन की दिशा में शायद इसलिए उदासीन हैं कि यह लगभग एकाधिकार का व्यवसाय है। किन्तु यह नहीं भूला जाना चाहिए कि पुस्तकें मनुष्य की बुनियादी ज़रूरत नहीं हैं। विज्ञापन के इस युग में बहुत आवश्यक वस्तुएँ भी विज्ञापन के अभाव में बिक नहीं पाती।

सरकार की भूमिका को स्पष्ट करने की बहुत अधिक आवश्यकता नहीं प्रतीत होती, क्योंकि जनतांत्रिक कल्याणकारी सरकारों का उत्तरदायित्व तो बहुत बड़ा है। एक ओर तो सरकार साक्षरता अभियान बढ़ाने का दायित्व उठाए हुए हैं और वही दूसरी ओर वह कागज तथा पुस्तकों के लिए डाक महसूल आदि में बेतहाशा वृद्धि कर क्या अपनी ही प्रवृत्ति को पंगु नहीं बना रही है? शारीरिक भूख के शमन के लिए वह उर्वरकों तथा खाद्य सामग्री आदि में सबसिडी (अनुदान) देकर उसको सर्वसाधारण के लिए सुलभ बनाए रहती है, तो क्या बौद्धिक भूख के शमन के लिए उसका कोई दायित्व नहीं है? भ्रष्ट अधिकारियों पर नियंत्रण तो आवश्यक है ही, साथ ही राज्य में अधिकाधिक पुस्तकालय स्थापित कर पुस्तकों की खरीद को व्यापक बनाना भी जरूरी है।

गम्भीर विषयों की पुस्तकें जिनकी बिक्री सीमित होने से प्रकाशक छापने में संकोच करते हैं, सरकार स्वयं उनके प्रकाशन तथा खरीद की जिम्मेदारी ले। कुल मिलाकर यही कहा जा सकता है कि यदि हिन्दी प्रकाशन को अपना भविष्य संवारना है तो लेखक, प्रकाशक और सरकार की त्रिमूर्ति को मिल-जुलकर अपने उत्तरदायित्व को निभाना होगा।

नेशनल बुक ट्रस्ट द्वारा पुस्तक परिक्रमा के नाग से उत्तर प्रदेश, हरियाना और बिहार में दर्जनों हिन्दी पुस्तकों की प्रदर्शनियों का आयोजन सही समय पर सही कदम है।

❀

हिन्दी प्रकाशकों का दायित्व

शिक्षा के क्षेत्र में बिहार का वैशिष्ट्य हमारे गौरवपूर्ण इतिहास की प्रेरणामयी गांथा का उज्ज्वल अंश है। वैशाली और नालन्दा-जैसे प्राचीन विद्यापीठों की गौरवगाथा सारे भारत में ही नहीं, प्रत्युत विश्व में मुखरित रही है। बिहार ने प्रकाशन-कार्य में जो महत्वपूर्ण भाग लिया है, वह अपनी जगह उल्लेखनीय है। स्वर्गीय आचार्य महामहोपाध्याय, रामावतार शर्मा, पं० सकलनारायण शर्मा आदि विभूतियाँ आज भी हमें हिन्दी के गौरव का स्मरण दिलाती हैं। हिन्दी-प्रचार के क्षेत्र में बिहारकेसरी डॉ० श्रीकृष्ण सिंह तथा डॉ० अनुग्रहनारायण सिंह की हिन्दी-सेवाएँ चिरस्मरणीय हैं। राजा राधिकारमण सिंह, आचार्य शिवपूजन सहाय, रामधारी सिंह 'दिनकर', रामवृक्ष बेनीपुरी जैसे विद्वान् भारतीय साहित्य के जाज्वल्यमान नक्षत्र हैं। प्रकाशन के क्षेत्र में खड्गविलास प्रेस, आचार्य रामलोचन शरण का पुस्तक-भंडार, पं० रामदहिन मिश्र की बाल-शिक्षा-समिति, अजन्ता प्रेस, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, ज्ञानपीठ प्राइवेट लि०, अशोक प्रेस आदि प्रकाशन-संस्थाओं ने हिन्दी की जो सेवा की है, वह भारतीय प्रकाशन के इतिहास में अविस्मरणीय है।

पुस्तक-प्रकाशन एवं तत्सम्बन्धी समस्याओं पर कुछ कहने से पूर्व मैं प्रकाशकों के सम्बन्ध में दो शब्द निवेदन करना चाहता हूँ, क्योंकि मैं अनुभव करता हूँ कि प्रकाशकों के त्याग की कहानी सम्भवतः देश भूल चुका है। मेरी आखों के सामने आज भी वह दृश्य नाच रहा है जब मैंने कलकत्ता के चौराहों पर राष्ट्रीय पैम्फलेट छापकर बेचते हुए प्रकाशकों तथा पुस्तक-विक्रेताओं को पुलिस द्वारा बेरहमी से पीटे जाते हुए देखा। उनके प्रेस तथा कार्यालय के सामान गोरी सरकार की चेरी पुलिस उठा ले जाती थी। राष्ट्रीय आन्दोलनों के दिनों में इन्हीं प्रकाशकों ने साहित्य के दीप को अपनी साहित्य-सेवा से दीप्त रखा। राष्ट्रीय आन्दोलनों के दिनों में देश के इन्हीं प्रकाशकों ने बापू के आह्वान पर दिन-रात ब्रिटिश जुल्मों को बर्दाश्त कर राष्ट्रीय भावना जागृत करनेवाले साहित्य का प्रकाशन किया और पूरे देश के जनजीवन को बल दिया। मुझे यह देखकर दुख होता है कि आज प्रकाशन का कार्य करनेवाले इस वर्ग का उतना समादर नहीं है जितना होना चाहिए था। मुझे आपसे कहना है कि प्रकाशक, जनता और साहित्यकार के बीच एक कड़ी है। साहित्यकारों के साहित्य को जनता तक पहुँचाने के उद्देश्य की पूर्ति के लिए इस कड़ी को बनाये रखना आवश्यक है।

पुस्तकों की वह भूमिका, जिसके लिये उन्हें आध्यात्मिक तथा बौद्धिक विचारों की अभिव्यक्ति का एकमात्र साधन माना जाता था, दुर्भाग्यवश आज समाप्त हो चुकी है। रेडियो और टेलीविजन को लोग अब शिक्षा का माध्यम मानने लगे हैं। आज प्रकाशकों

को इन्हीं परिस्थितियों में अपने कर्त्तव्य का निर्वाह करना पड़ रहा है। सन् १९१४ के पूर्व जिस तरह जनता की रुचि पुस्तकों की ओर थी, वह आज जनसंख्या के अनुपात से नगण्य है। आज समस्त विश्व का ढाँचा बदल चुका है। लोग यह समझने लगे हैं कि जबतक हम मोटर-गाड़ियों, दवाइयों, सौन्दर्य-प्रसाधक-सामग्रियों तथा साज-सज्जा के सामानों का उपयोग नहीं करेंगे, तबतक हमारा समाज में सम्मान नहीं होगा। आर्थिक विभीषिका के इस युग में मानव का ध्यान फैशन की होड़ में फँसकर उसे अशान्त बना रहा है। मानसिक शान्ति के अभाव में चिन्तन की ओर बहुत ही कम ध्यान जाता है और चिन्तन के अभाव में मनुष्य को अपने कर्त्तव्याकर्त्तव्य को स्थिर करने का अवसर ही नहीं मिलता। चिन्तन पठन का दूसरा रूप है। जब चिन्तन नहीं तो पठन भी नहीं। पठन की प्रवृत्ति होने पर ही पुस्तकों की ओर झुकाव होता है। आज लोग पुस्तकों को पढ़ने की अपेक्षा रेडियो, चल-चित्र एवं टेलीविजन आदि के कार्यक्रम में अपना खाली समय बिताना आधिक पसन्द कर रहे हैं। लोग प्राकृतिक आनन्द को छोड़कर अप्राकृतिक जीवन को अपनाते जा रहे हैं। यही कारण है कि उन्हें प्राकृतिक आनन्द से वंचित रहना पड़ता है और वे पुस्तकों के नैसर्गिक आनन्द को भूल गये। आज जनता की रुचि पुस्तकों की ओर उतनी नहीं है, जितनी कि १९वीं शताब्दी में थी। कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि पहले की अपेक्षा आज पुस्तकें कम बिक रही हैं बल्कि यह कहना है कि भारतीय जनता की पुस्तकों में रुचि विदेशियों की अपेक्षा लगातार कम हो रही है। पश्चिम का एक उदाहरण प्रस्तुत है। १८९० में मध्य योरोप के सवा छह करोड़ आबादी वाले देश जर्मनी में जर्मन भाषा में १९००० नये प्रकाशन हुए। अर्थात् प्रत्येक एक लाख अबादी के पीछे ३० नये प्रकाशन। आज पश्चिम में शिक्षा के क्षेत्र में पहले से अत्यधिक प्रगति हुई है और अब एक लाख जनता के पीछे जर्मनी में ३४ नये प्रकाशन होते हैं। यह स्थिति हमारे देश में नहीं है । इसलिये जनता की रुचि पुस्तकों की ओर बढ़ाने के लिए प्रकाशकों को चाहिए कि वे इस भार को अपने सबल कन्धों पर उठायें और जनता में पठन-रुचि पैदा करने के लिए स्वस्थ, सुमुद्रित, रुचिकर साहित्य प्रस्तुत करें। हमें इस बात की खोजबीन करनी है कि क्या कारण है कि आज विशाल आबादीवाले भारत देश में पुस्तकों की ओर जनता की रुचि कम है। हमें ऐसी स्थिति उत्पन्न करनी है कि सामान्य जनता का ध्यान साहित्य की ओर आकृष्ट हो। यह कार्य तभी सम्भव है, जब प्रकाशक यह समझें कि पुस्तक-प्रकाशन का कार्य व्यवसाय नहीं, समाज सेवा है। समाज-सेवा की दृष्टि से उन्हें इस व्यवसाय में आना चाहिए। जो लोग इस व्यवसाय से अन्धाधुन्ध धनोपार्जन करना चाहते हैं, वे अन्य धन्धे की ओर जाएँ, क्योंकि ऐसे लोगों के हाथ से साहित्य का मंगल और कल्याण नहीं हो सकता।

हिन्दी के राष्ट्रभाषा हो जाने के बाद हिन्दी-प्रकाशकों का दायित्व बहुत बढ़ गया है। आवश्यक है कि हिन्दी में विज्ञान, गणित और तकनीकी साहित्य काफी संख्या में प्रकाशित किये जाँय। हिन्दी में कोश-ग्रन्थों का अभाव है, हालाँकि इस क्षेत्र में प्रकाशकों तथा सरकार के प्रयास से काफी प्रगति हुई है। केन्द्रीय सरकार ने अभी हाल में ही विज्ञान-सम्बन्धी पुस्तकें छापने के लिए प्रकाशकों को आमन्त्रित किया है, परन्तु उसके नियम-उपनियम ऐसे विचित्र हैं कि प्रकाशक उन्हें स्वीकार नहीं कर सकते। यदि सरकार

को विज्ञान और तकनीकी सम्बन्धी प्रकाशनों को बढ़ावा देना है तो उसे प्रकाशकों को उदारतापूर्वक ऐसी सुविधाएँ देनी चाहिए जिससे उन्हें प्रोत्साहन मिले। हिन्दी में इस तरह की पुस्तकों का प्रकाशन सरकारी तथा गैर-सरकारी स्तर पर थोड़ा-बहुत हो रहा है। सरकारी पक्ष की ओर से तो इस पर बहुत ही रुपया व्यय किया जा रहा है। यदि यही कार्य सरकार द्वारा इसके आधे रुपयों में प्रकाशकों-द्वारा कराया जाय तो बहुत अच्छा होगा। क्योंकि यह स्पष्ट है कि सरकारी प्रकाशनों की बिक्री की वह व्यवस्था नहीं हो सकती जो प्रकाशकगण अपने प्रकाशनों के वितरणार्थ करते हैं। यहाँ यह बता देना भी समीचीन होगा कि कभी-कभी सरकारी प्रकाशन अनुदान पानेवाली लाइब्रेरियों की खरीद के लिए अनिवार्य किए जाने पर भी उतने बिक नहीं पाते, जितना कि एक सामान्य प्रकाशक अपने प्रकाशनों को बेच लेता है। ऐसी स्थिति में मैं सरकार से अनुरोध करूँगा कि वह प्रकाशक संघ के सहयोग से अच्छे प्रकाशकों को आर्थिक सुविधाएँ दे ताकि वे वैज्ञानिक साहित्य के प्रकाशन में दिलचस्पी लें।

आज भारत का स्थान प्रकाशनों की संख्या की दृष्टि से तृतीय है, परन्तु इससे प्रकाशन-स्तर को ऊँचा नहीं माना जा सकता। निःसन्देह जो स्थिति प्रकाशनस्तर की १९४७ तक रही, वह आज नहीं है। पहले की अपेक्षा मुद्रण का स्तर बहुत ऊँचा हो गया है। परन्तु यह बात सभी प्रकाशन-संस्थाओं के लिए लागू नहीं है। इने-गिने प्रेस ही अच्छी छपाई कर सकते हैं। केन्द्रीय गवेषणा और संस्कृति मंत्रालय ने देश में चार प्रिन्टिंग टेकनालॉजी स्कूल प्रान्तीय सरकारों के सहयोग से स्थापित किये हैं। ये स्कूल इलाहाबाद, मद्रास, बम्बई तथा कलकत्ता में स्थित हैं, परन्तु बड़े आश्चर्य की बात है कि केन्द्रीय गवेषणा-मंत्रालय तथा राज्य-सरकारों ने अभी तक प्रकाशक-संघ को इन स्कूलों के कार्य में दिलचस्पी लेने के लिए आमन्त्रित नहीं किया। देश में कुछ ऐसी संस्थाएँ हैं—जैसे भारतीय मानक संस्थान, नेशनल प्रोटक्टिविटी कौन्सिल, नेशनल बुक ट्रस्ट आदि—जिनमें प्रकाशक-संघ को समुचित स्थान मिलना चाहिए। मुद्रक-संघ को तो आमंत्रित किया गया, परन्तु यह सोचने की स्थिति अभी नहीं आई कि पुस्तक-प्रकाशन के लिए प्रकाशक-वर्ग को भी प्रशिक्षित करना नितान्त आवश्यक है। हमने इन स्कूलों का निरीक्षण किया है। इन स्कूलों में प्रकाशन-संस्थाएँ अपने कार्यकर्त्ताओं को पुस्तक-प्रकाशन सम्बन्धी ट्रेनिंग दिला सकती हैं, परन्तु ये स्कूल इतने पर्याप्त नहीं हैं कि इनसे प्रत्येक प्रकाशन-संस्था का एक-एक प्रतिनिधि भी शिक्षित हो सके। उपर्युक्त स्थिति में सरकार को चाहिए कि वह पंचवर्षीय योजनाओं में इस तरह की सुविधाओं की ओर अधिक व्यवस्था करे और इन स्कूलों के संचालन में प्रकाशक-संघ का सहयोग प्राप्त करे।

पहले ही कहा गया है कि देश में पूर्वापेक्षा रेडियो, टेलीविजन, चलचित्र के कारण पुस्तकों के पठन की ओर रुचि घट रही है, परन्तु वर्तमान में पुस्तकों की बिक्री घटने का कुछ दायित्व प्रकाशकों और लेखकों पर भी है। आज का लेखक न तो यह सोचता है कि वह जनता को किस तरह का साहित्य दे और न प्रकाशक ही यह परखने की चेष्टा करता है कि जनता के लिए वह किस तरह का साहित्य प्रकाशित करे। गन्दी और अश्लील पुस्तकों की 'यथार्थ' साहित्य के नाम पर बाजारों में भीड़-सी लग गयी है।

अच्छे प्रकाशक भी थोथी दलीलों में आकर अश्लील साहित्य छाप देते हैं। उस समय दुख होता है जब टेबुल पर लाकर आलोचक ऐसी पुस्तकें रखते हैं, जिनमें सामाजिक मर्यादा का अस्वाभाविक चित्रण रहता है। सोचता हूँ, यदि हम ऐसे ही प्रकाशनों को करते रहे तो हिन्दी साहित्य का भविष्य क्या होगा। आनेवाली पीढ़ियाँ क्या बनेंगी और देश के चरित्र-निर्माण का क्या होगा? हिन्दी के किसी भी युग में इतनी अधिक संख्या में असंस्कृत लेखक और प्रकाशक नहीं हुए, जितने कि हम आज देख रहे हैं। न तो ऐसे प्रकाशक को प्रकाशक माना जायगा और न ही ऐसे लेखकों को लेखक, जो साहित्य के नाम पर व्यभिचार बेचना चाहते हैं। हम सम्भवत: यह भूल जाते हैं कि साहित्य, आध्यात्मिक और नैतिक चेष्टा को बल देने के लिए लिखा जाता है, उसके मूल को नष्ट करने के लिए नहीं। ये शब्द उन व्यभिचार बेचनेवाले लेखकों और प्रकाशकों के लिये चेतावनी है जो इस तरह का साहित्य लिखते और प्रकाशित कर रहे हैं। समाज ऐसे साहित्य के प्रकाशन को हरगिंज बरदाश्त नहीं करेगा और अपने प्रकाशकों से कहेगा कि ऐसे साहित्य का प्रकाशन भूल से भी न करें, जिससे जनता की रुचि, चरित्र-निर्माण और देश-सेवा से हटकर गन्दगी की ओर जाती है।

आजकल हिन्दी-प्रकाशनों में सबसे खटकनेवाली चीज दिखाई देती है प्रूफरीडिंग की असावधानी। अधिकतर पुस्तकें अशुद्धियों से भरी हुई हैं। शुद्ध पुस्तकें प्रकाशित करने के दायित्व को प्रकाशक समझें। विशेषत: जब विज्ञान और गणित की पुस्तकों में प्रूफरीडिंग की भूलें रह जाती हैं तो उस पुस्तक का सर्वनाश समझिए। यदि कोई कोश-ग्रन्थ अशुद्ध छपा तो आप ही सोचिए कि उसका फिर क्या महत्व रह गया? आवश्यक है कि प्रकाशक पाण्डुलिपियों की तैयारी, सम्पादन और प्रूफरीडिंग में विशेषरूप से दिलचस्पी लें, जिससे शुद्ध पुस्तकों का प्रकाशन हो और अशुद्ध पुस्तकें छपने-छापने का कलंक उन पर न लगे। पुस्तकों को सुसंस्कृत रूप में प्रकाशित करना प्रकाशकों का नैतिक कर्त्तव्य है।

यह ठीक है कि पुस्तकों की बिक्री नहीं हो रही है, परन्तु इसका कारण क्या है यह हमें ही देखना और समझना होगा। यदि हम सचेष्ट होकर पुस्तकों के प्रचार-प्रसार की वैज्ञानिक प्रणाली को अपने देश में लागू करें और जनता को नए प्रकाशनों की सूचना समय से दें तो निश्चय ही पुस्तकों की बिक्री बढ़ सकती है। हिन्दी के प्रकाशकों ने इस दिशा में नेतृत्व किया है। कई पत्र, यथा 'प्रकाशन समाचार', 'हिन्दी प्रचारक', 'पुस्तक जगत्', 'नया साहित्य' आदि इसलिए प्रकाशित किए जाते हैं कि जनता को नयी पुस्तकों की सूचना समय से मिलती रहे। इसी दिशा में प्रकाशक-संघ ने गतवर्ष राष्ट्रीय पुस्तक-समारोह का आयोजन किया। आवश्यकता इस बात की है कि हमारे देश में भी आगामी वर्ष से राष्ट्रीय पुस्तक-समारोह विदेशों की तरह धूमधाम से मनाया जाय। इस समारोह को राष्ट्रीय पर्व जैसा रूप दिया जाना चाहिए। पुस्तकों का प्रचार शिक्षा का प्रचार है और शिक्षा का प्रचार देश के निर्माण की ओर बढ़ता हुआ कदम है। इस तरह का समारोह

को विज्ञान और तकनीकी सम्बन्धी प्रकाशनों को बढ़ावा देना है तो उसे प्रकाशकों को उदारतापूर्वक ऐसी सुविधाएँ देनी चाहिए जिससे उन्हें प्रोत्साहन मिले। हिन्दी में इस तरह की पुस्तकों का प्रकाशन सरकारी तथा गैर-सरकारी स्तर पर थोड़ा-बहुत हो रहा है। सरकारी पक्ष की ओर से तो इस पर बहुत ही रुपया व्यय किया जा रहा है। यदि यही कार्य सरकार द्वारा इसके आधे रुपयों में प्रकाशकों-द्वारा कराया जाय तो बहुत अच्छा होगा। क्योंकि यह स्पष्ट है कि सरकारी प्रकाशनों की बिक्री की वह व्यवस्था नहीं हो सकती जो प्रकाशकगण अपने प्रकाशनों के वितरणार्थ करते हैं। यहाँ यह बता देना भी समीचीन होगा कि कभी-कभी सरकारी प्रकाशन अनुदान पानेवाली लाइब्रेरियों की खरीद के लिए अनिवार्य किए जाने पर भी उतने बिक नहीं पाते, जितना कि एक सामान्य प्रकाशक अपने प्रकाशनों को बेच लेता है। ऐसी स्थिति में मैं सरकार से अनुरोध करूँगा कि वह प्रकाशक संघ के सहयोग से अच्छे प्रकाशकों को आर्थिक सुविधाएँ दे ताकि वे वैज्ञानिक साहित्य के प्रकाशन में दिलचस्पी लें।

आज भारत का स्थान प्रकाशनों की संख्या की दृष्टि से तृतीय है, परन्तु इससे प्रकाशन-स्तर को ऊँचा नहीं माना जा सकता। निःसन्देह जो स्थिति प्रकाशनस्तर की १९४७ तक रही, वह आज नहीं है। पहले की अपेक्षा मुद्रण का स्तर बहुत ऊँचा हो गया है। परन्तु यह बात सभी प्रकाशन-संस्थाओं के लिए लागू नहीं है। इने-गिने प्रेस ही अच्छी छपाई कर सकते हैं। केन्द्रीय गवेषणा और संस्कृति मंत्रालय ने देश में चार प्रिन्टिंग टेकनालॉजी स्कूल प्रान्तीय सरकारों के सहयोग से स्थापित किये हैं। ये स्कूल इलाहाबाद, मद्रास, बम्बई तथा कलकत्ता में स्थित हैं, परन्तु बड़े आश्चर्य की बात है कि केन्द्रीय गवेषणा-मंत्रालय तथा राज्य-सरकारों ने अभी तक प्रकाशक-संघ को इन स्कूलों के कार्य में दिलचस्पी लेने के लिए आमन्त्रित नहीं किया। देश में कुछ ऐसी संस्थाएँ हैं—जैसे भारतीय मानक संस्थान, नेशनल प्रोटक्टिविटी कौन्सिल, नेशनल बुक ट्रस्ट आदि—जिनमें प्रकाशक-संघ को समुचित स्थान मिलना चाहिए। मुद्रक-संघ को तो आमंत्रित किया गया, परन्तु यह सोचने की स्थिति अभी नहीं आई कि पुस्तक-प्रकाशन के लिए प्रकाशक-वर्ग को भी प्रशिक्षित करना नितान्त आवश्यक है। हमने इन स्कूलों का निरीक्षण किया है। इन स्कूलों में प्रकाशन-संस्थाएँ अपने कार्यकर्त्ताओं को पुस्तक-प्रकाशन सम्बन्धी ट्रेनिंग दिला सकती हैं, परन्तु ये स्कूल इतने पर्याप्त नहीं हैं कि इनसे प्रत्येक प्रकाशन-संस्था का एक-एक प्रतिनिधि भी शिक्षित हो सके। उपर्युक्त स्थिति में सरकार को चाहिए कि वह पंचवर्षीय योजनाओं में इस तरह की सुविधाओं की ओर अधिक व्यवस्था करे और इन स्कूलों के संचालन में प्रकाशक-संघ का सहयोग प्राप्त करे।

पहले ही कहा गया है कि देश में पूर्वापेक्षा रेडियो, टेलीविजन, चलचित्र के कारण पुस्तकों के पठन की ओर रुचि घट रही है, परन्तु वर्तमान में पुस्तकों की बिक्री घटने का कुछ दायित्व प्रकाशकों और लेखकों पर भी है। आज का लेखक न तो यह सोचता है कि वह जनता को किस तरह का साहित्य दे और न प्रकाशक ही यह परखने की चेष्टा करता है कि जनता के लिए वह किस तरह का साहित्य प्रकाशित करे। गन्दी और अश्लील पुस्तकों की 'यथार्थ' साहित्य के नाम पर बाजारों में भीड़-सी लग गयी है।

अच्छे प्रकाशक भी थोथी दलीलों में आकर अश्लील साहित्य छाप देते हैं। उस समय दुख होता है जब टेबुल पर लाकर आलोचक ऐसी पुस्तकें रखते हैं, जिनमें सामाजिक मर्यादा का अस्वाभाविक चित्रण रहता है। सोचता हूँ, यदि हम ऐसे ही प्रकाशनों को करते रहे तो हिन्दी साहित्य का भविष्य क्या होगा। आनेवाली पीढ़ियाँ क्या बनेंगी और देश के चरित्र-निर्माण का क्या होगा? हिन्दी के किसी भी युग में इतनी अधिक संख्या में असंस्कृत लेखक और प्रकाशक नहीं हुए, जितने कि हम आज देख रहे हैं। न तो ऐसे प्रकाशक को प्रकाशक माना जायगा और न ही ऐसे लेखकों को लेखक, जो साहित्य के नाम पर व्यभिचार बेचना चाहते हैं। हम सम्भवत: यह भूल जाते हैं कि साहित्य, आध्यात्मिक और नैतिक चेष्टा को बल देने के लिए लिखा जाता है, उसके मूल को नष्ट करने के लिए नहीं। ये शब्द उन व्यभिचार बेचनेवाले लेखकों और प्रकाशकों के लिये चेतावनी है जो इस तरह का साहित्य लिखते और प्रकाशित कर रहे हैं। समाज ऐसे साहित्य के प्रकाशन को हरगिंज बरदाश्त नहीं करेगा और अपने प्रकाशकों से कहेगा कि ऐसे साहित्य का प्रकाशन भूल से भी न करें, जिससे जनता की रुचि, चरित्र-निर्माण और देश-सेवा से हटकर गन्दगी की ओर जाती है।

आजकल हिन्दी-प्रकाशनों में सबसे खटकनेवाली चीज दिखाई देती है प्रूफरीडिंग की असावधानी। अधिकतर पुस्तकें अशुद्धियों से भरी हुई हैं। शुद्ध पुस्तकें प्रकाशित करने के दायित्व को प्रकाशक समझें। विशेषत: जब विज्ञान और गणित की पुस्तकों में प्रूफरीडिंग की भूलें रह जाती हैं तो उस पुस्तक का सर्वनाश समझिए। यदि कोई कोश-ग्रन्थ अशुद्ध छपा तो आप ही सोचिए कि उसका फिर क्या महत्व रह गया? आवश्यक है कि प्रकाशक पाण्डुलिपियों की तैयारी, सम्पादन और प्रूफरीडिंग में विशेषरूप से दिलचस्पी लें, जिससे शुद्ध पुस्तकों का प्रकाशन हो और अशुद्ध पुस्तकें छपने-छापने का कलंक उन पर न लगे। पुस्तकों को सुसंस्कृत रूप में प्रकाशित करना प्रकाशकों का नैतिक कर्त्तव्य है।

यह ठीक है कि पुस्तकों की बिक्री नहीं हो रही है, परन्तु इसका कारण क्या है यह हमें ही देखना और समझना होगा। यदि हम सचेष्ट होकर पुस्तकों के प्रचार-प्रसार की वैज्ञानिक प्रणाली को अपने देश में लागू करें और जनता को नए प्रकाशनों की सूचना समय से दें तो निश्चय ही पुस्तकों की बिक्री बढ़ सकती है। हिन्दी के प्रकाशकों ने इस दिशा में नेतृत्व किया है। कई पत्र, यथा 'प्रकाशन समाचार', 'हिन्दी प्रचारक', 'पुस्तक जगत्', 'नया साहित्य' आदि इसलिए प्रकाशित किए जाते हैं कि जनता को नयी पुस्तकों की सूचना समय से मिलती रहे। इसी दिशा में प्रकाशक-संघ ने गतवर्ष राष्ट्रीय पुस्तक-समारोह का आयोजन किया। आवश्यकता इस बात की है कि हमारे देश में भी आगामी वर्ष से राष्ट्रीय पुस्तक-समारोह विदेशों की तरह धूमधाम से मनाया जाय। इस समारोह को राष्ट्रीय पर्व जैसा रूप दिया जाना चाहिए। पुस्तकों का प्रचार शिक्षा का प्रचार है और शिक्षा का प्रचार देश के निर्माण की ओर बढ़ता हुआ कदम है। इस तरह का समारोह

करने का दायित्व यदि प्रकाशकों पर है तो उसे कन्धा देने का दायित्व जनता और सरकार पर भी है। प्रकाशक-संघ की योजना है कि आगामी वर्ष से राजनीतिक पार्टियों, सांस्कृतिक संस्थाओं, केन्द्र तथा राज्य सरकारों, लेखकों, पत्रकारों, आकाशवाणी आदि के सहयोग से राष्ट्रीय पुस्तक-समारोह धूमधाम से मनाया जाय। समारोह की यह पद्धति यदि हमारे देश में आशानुकूल प्रचलित हो जाय तो शिक्षा के क्षेत्र में एक ऐसा कार्य हो जायगा जो हमारी पंचवर्षीय योजनायें अब तक नहीं कर सकीं। पंचवर्षीय योजनाएँ तो सरकारी सीमा तक ही सीमित रह जाती हैं, परन्तु राष्ट्रीय-पुस्तक-समारोह यदि जनता को आकर्षित कर सका तो एक नयी क्रान्ति के साथ-साथ, इसके माध्यम से शिक्षा की ओर जनता का ध्यान आकर्षित करने में भी सफलता मिलेगी।

गत वर्ष मैं प्रकाशक-संघ की ओर से अन्तर्राष्ट्रीय प्रकाशक-संघ की वियेना काँग्रेस में सम्मिलित हुआ था। मुझे वहाँ विभिन्न देशों से आये हुए प्रतिनिधियों से मिलने का अवसर प्राप्त हुआ। मैंने देखा कि प्रत्येक पश्चिमी देश में राष्ट्रीय पुस्तक-समारोह मनाया जाता है और सारा राष्ट्र तन-मन-धन से उसमें सहयोग करता है। प्रकाशक इन समारोहों के अवसर पर सारे देश में पुस्तक-प्रदर्शनियाँ करते हैं। पुस्तकों से सम्बन्धित चल-चित्रों का प्रदर्शन इन दिनों देश के सिनेमाघरों में होता है। कलाकार नाटकों-द्वारा वर्ष की प्रसिद्ध कृतियों का मंचन करते हैं। लेखक स्थान-स्थान पर भाषण देकर अपनी पुस्तकों की महत्ता समझाते हैं। राष्ट्रनायक टेलीवीजन द्वारा अपने भाषणों में पुस्तकें पढ़ने के लिए जनता से अपील करते हैं। वे पाठक पुरस्कृत किये जाते हैं जो वर्ष में अधिक पुस्तकें पढ़ते हैं। कई देशों में तो सिनेमा-घरों में टिकट के साथ-साथ इस समारोह के अवसर पर पुस्तकें भी खरीदनी पड़ती हैं। हमें जानकर आश्चर्य होगा कि हालैण्ड और फ्रैन्कफर्ट के पुस्तक-मेलों के टिकट उनके आकर्षक कार्यक्रमों के कारण एक वर्ष पहले ही बिक जाते हैं। सरकार, प्रकाशक, लेखक और पुस्तक-प्रेमियों से अनुरोध है कि वे भारत की संस्कृति और शिक्षा के गौरव-वृद्धि के लिए तत्पर हों और भविष्य में होनेवाले समारोहों में प्रकाशक-संघ को सहयोग दें।

पुस्तकों की विक्री में कमी का एक और कारण है। इतना समय बीत गया, फिर भी किसी जिज्ञासु को विषय-विशेष पर पुस्तक-सूचियाँ प्राप्त नहीं होतीं। यदि कोई व्यक्ति यह जानना चाहे कि इतिहास के और विज्ञान के कितने प्रकाशन हिन्दी में सुलभ हैं तो पाठक के लिए समस्या खड़ी हो जाती है और वह विभिन्न प्रकाशकों से सूचियाँ एकत्र करते-करते थक-सा जाता है। ऐसी स्थिति में प्रकाशकों का यह दायित्व है कि वे जनता के लिए प्रकाशक-संघ के माध्यम से विषय-क्रमानुसार सूचियाँ प्रस्तुत करें। प्रायः देखने में आता है कि माँग हिन्दी पुस्तकों की होती है, लेकिन निश्चित सूचना के अभाव में हिन्दी पुस्तकों के समय पर न मिलने के कारण पुस्तकालय अंग्रेजी की पुस्तकें खरीद लेते हैं, चाहे सामान्य जनता उन पुस्तकों का उपयोग भले न करे। हिन्दी पुस्तकों की बिक्री की कमी इसलिए भी है कि हिन्दी में ठोस साहित्य के प्रणयन का अभाव है। पुस्तकें खरीदकर पढ़ने का शौक हमारे देश में वैसे भी नहीं है, और यदि पढ़े-लिखे लोग

कभी पुस्तकें खरीदते भी हैं तो देखने में आता है कि उनकी रुचि अंग्रेजी में प्रकाशित पुस्तकों की ओर ही रहती है। इसका कुछ दोष हिन्दी के साहित्यकारों और प्रकाशकों को दिया जा सकता है। आज की रचनाओं और प्रकाशनों में कुछ कमियाँ हैं, जिनके कारण जनता का ध्यान अब तक इनकी तरफ उतना आकृष्ट नहीं हो पाया जितना अपेक्षित था। यदि लोगों को मालूम हो जाए कि हिन्दी की अमुक रचना किसी नई विचारधारा की प्रवर्त्तक एवं मौलिक है, तो निश्चय ही पाठक हिन्दी की पुस्तकें पढ़ने में पूर्वापेक्षा अधिक दिलचस्पी लेंगे।

पुस्तकों की बिक्री बढ़ाने के लिए प्रकाशक-संघ की ओर से पिछले दिनों 'सहकारिता के आधार पर पुस्तक-विक्रय' विषय पर एक विचार-गोष्ठी दिल्ली में आयोजित हुई। गोष्ठी ने एक निष्कर्ष यह भी निकाला था कि प्रकाशक-संघ के माध्यम से एक ऐसे सहकार की स्थापना की जाय, जो प्रचार-सामग्री संयुक्तरूप से प्रकाशित करके प्रकाशकों तथा विक्रेताओं को दे। गोष्ठी का मत था कि इससे हिन्दी पुस्तकों का प्रचार-प्रसार काफी होगा। यह नहीं है कि आज हिन्दी में ठोस प्रकाशक कतई नहीं हैं, परन्तु वास्तविकता यह है कि उनके द्वारा जो प्रकाशन हो रहे हैं, उनकी सूचना जनता तक समुचित रूप से नहीं पहुँच रही है। भारत आज ४४ करोड़ आदमियों का देश हो गया। प्रकाशक-वर्ग इतना समृद्ध नहीं है कि वर्त्तमान वैज्ञानिक प्रणाली पर अधिक धनराशि व्यय कर सके। ऐसी स्थिति में सहकारिता ही ऐसा माध्यम है, जिसके द्वारा प्रकाशक-वर्ग अपनी समस्या का हल खोज सकता है। पाठ्य-पुस्तकें तो अपने-आप बिकती हैं, परन्तु हमें साहित्यिक प्रकाशनों की बिक्री की व्यवस्था की ओर ध्यान देना होगा। पाठ्य-पुस्तक-प्रकाशकों से अनुरोध है कि वे जो रूपए पाठ्य-पुस्तकों से कमाते हैं, उसका कुछ अंश साहित्यिक प्रकाशनों में लगाएँ और साहित्यिक प्रकाशनों के प्रचार-प्रसार में योग दें। पाठ्य-पुस्तकों के प्रकाशकों के लिए यह आवश्यक है कि वे पाठ्य-पुस्तकों का मुद्रण तथा विषयस्तर ऊँचा उठायें ताकि हमारी आनेवाली पीढ़ी उचित रूप से शिक्षा प्राप्त कर सके और उसकी रुचि साहित्य की ओर बढ़े।

दो शब्द मुझे पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादकों तथा व्यवस्थापकों से भी कहना है। आज के युग में समाज में पत्र-पत्रिकाओं का महत्वपूर्ण स्थान है। साहित्य के प्रचार के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि प्रत्येक पत्र-पत्रिका में पुस्तकों की समालोचना का स्तम्भ अवश्य रहे और पुस्तकों के विज्ञापन में निर्धारित दरों में पचास फीसदी कमी की जाय। यह बताते हुए प्रसन्नता हो रही है कि भारत की कई पत्र-पत्रिकाओं ने अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक-संघ के अनुरोध पर समालोचना के लिए स्तम्भ की स्थापना की है और अपने विज्ञापन की दरों में काफी कमी भी की है। अन्य पत्र-पत्रिकाओं के व्यवस्थापकों तथा सम्पादकों से अनुरोध है कि वे इस दिशा में प्रकाशक-संघ की सहायता करें।

इस युग में जब दुनिया के किसी भी प्रबुद्ध देश में पुस्तकों पर टेण्डर-प्रणाली नहीं है, तब भारत में प्रकाशक-संघ के अनवरत प्रयत्नों के बावजूद यह प्रणाली पुस्तकों के लिए आज भी लागू है। गुड़-गोबर एक ही भाव तौला जाय तो चल नहीं सकता!

साहित्य-साहित्य है। इसमें मोल-भाव बहुत उचित नहीं है। प्रकाशक-संघ ने इस मोल-भाव को खत्म करने के लिए 'नेट बुक एग्रिमेण्ट' कायम किया है, जो बहुत ही सफल हुआ। आज सारे भारत में हिन्दी की पुस्तकों को खरीदने के लिए कहीं भी जाइए, एक ही दाम में प्राप्त कर सकेंगे। यदि टेण्डर-प्रणाली खत्म हो जाय तो निश्चय ही साहित्य के प्रकाशकों को प्रोत्साहन मिलेगा और अच्छे साहित्य के प्रकाशन की ओर प्रकाशकों का और अधिक झुकाव होगा। देश मे पंचवर्षीय योजनाएँ चल रही हैं। परन्तु हमें दु:ख है कि इन पंचवर्षीय योजनाओं में सहयोग के लिए प्रकाशकों को कभी आमंत्रित नहीं किया गया। हमारा अपना ख्याल है कि जिस तरह सरकार ने समाचार-पत्रों का महत्व समझा, ठीक उसी तरह उसने प्रकाशकों का सहयोग प्राप्त किया होता तो योजनाओं के प्रचार-प्रसार में काफी गति आ सकती थी। प्रकाशकों की ओर से सरकार को यह विश्वास दिया जा सकता है कि इन योजनाओं की सफलता के लिये हमारा सहयोग माँगा गया, तो सहर्ष दिया जाएगा।

पिछले दिनों जब मैं यूनेस्को द्वारा आयोजित दक्षिण-पूर्वी एशिया के प्रकाशकों की विचार-गोष्ठी में सम्मिलित होने गया था, तो मुझे महसूस हुआ कि हिन्दी प्रकाशनों का परिचय हमारे पड़ोसी देशों को अवश्य प्राप्त होना चाहिए। लोगों का सुझाव था कि हिन्दी प्रकाशनों के इनर टाइटिल में अंग्रेजी में ही नाम दिया जाय। यदि हम लोग पुस्तकों का विषय तथा नाम अंग्रेजी में छाप दिया करें तो लोगों को यह जानने में सुविधा होगी कि अमुक विषय पर अमुक पुस्तक प्रकाशित हुई है। ख्याल है कि यह सुझाव प्रकाशक वर्ग स्वीकार करेगा।

लेखक-प्रकाशक सम्बन्ध प्रकाशक-संघ की स्थापना के बाद काफी उन्नत और सुदृढ़ हुआ है। मैं प्रकाशकों और लेखकों से अनुरोध करूँगा कि वे आपसी सम्बन्ध बहुत ही सद्भावपूर्ण रखें। प्रकाशकों का यह कर्त्तव्य है कि वे लेखकों को समुचित पारिश्रमिक दें और साथ ही लेखकों को इस बात के लिए सचेष्ट रहना चाहिए कि वे जो सामग्री जनता के लिए प्रस्तुत करें, वह ठोस हो और उपादेय भी। प्रकाशक जो सुविधाएँ लेखकों को पहले दिया करते थे, उसमें भारत की स्वतंत्रता के बाद आज उल्लेखनीय परिवर्तन हुआ है। आज का प्रकाशक यह समझने लगा है कि पुस्तक-प्रकाशन में लेखक और प्रकाशक दोनों का ही समान योग है।

ऊपर जिक्र किया गया है कि सुमुद्रित पुस्तकों की नितान्त आवश्यकता है। देश में अच्छी पुस्तकें प्रकाशित करने के लिए अभी आधुनिक मशीनों की कमी है। सरकार को चाहिए कि वह 'वास्तविक उपभोक्ता' प्रकाशकों को विदेशों से मशीनें आयात करने के लिए बिना किसी रोक-टोक के लाइसेंस दे। इस तरह की मशीनों के आयात से हमारे विदेशी मुद्रा-कोश में कोई विशेष कमी नहीं होगी, क्योंकि ये मशीनें सामान्य मूल्य की ही होती हैं।

पहले राजनीति के दायरे में ही साम्प्रदायिकता, जातीयता और प्रान्तीयता थी। आज यह कहते हुए दु:ख हो रहा है कि प्रकाशकों के बीच भी प्रान्तीयता के विष का

वपन किया जा रहा है। समाचार आते रहते हैं कि अमुक प्रान्त के प्रकाशकों ने अमुक राज्य के शिक्षा-विभाग को लिखा है कि उसी राज्य के ही प्रकाशकों को संरक्षण दिया जाय। जन-मानस को उदीप्त करनेवाले प्रकाशक बन्धुओं, यदि आपने राजनीति की इस गन्दी चीज का सहारा लिया तो देश का क्या होगा? कृपाकर इन चीजों से दूर ही रहिए। हम सारे भारत के हैं, हम सारे विश्व के हैं और हमारी सीमा अनन्त है। प्रकाशकों का दूसरा चक्कर है, विदेशी सहायता स्वीकार करना। इस संकेत को लोग स्वयं समझ लें। अनुरोध है कि प्रकाशक दलगत राजनीति के लिए रुपयों के गुलाम न बनें और ऐसे प्रकाशनों से बाज आयें जो कि उन्हें रुपए देकर प्रकाशित कराए जाते हैं।

अन्त में हिन्दी के उन प्रकाशकों के प्रति श्रद्धा निवेदित है, जिन्होंने हिन्दी प्रकाशन की नींव डाली। ऐसे लोगों में स्वर्गीय महादेव सेठ, मुंशी नवलकिशोर, रामकृष्ण वर्मा, गोपालराम गहमरी, चन्द्रशेखर पाठक, चिन्तामणि घोष, राधामोहन गोकुलजी, रामलाल वर्मा, नाथूराम प्रेमी, मूलचन्द अग्रवाल, पद्मराज जैन, गणेशशंकर विद्यार्थी, महाशय राजपाल, नारायण प्रसाद अरोड़ा, बैजनाथ केड़िया, शिवनारायणजी मिश्र, राष्ट्रकवि मैथिलीशरणजी गुप्त, नारायणदत्त सहगल, निहालचन्द वर्मा, देवनारायण द्विवेदी, पं० मार्तण्ड उपाध्याय, महाबीरप्रसाद पोद्दार, जीतमल लूणिया, पं० वाचस्पति पाठक, रायकृष्णदास आदि स्मरणीय हैं।

१९६१ में पटना अधिवेशन में दिया गया अध्यक्ष कृष्णचन्द्र वेरी का भाषण।

सवाल साक्षरता का

दूरदर्शन पर साक्षरता मिशन का प्रचार सुनते-सुनते कभी-कभी मन में आता है कि इसकी समीक्षा की जाए—जो वक्तव्य प्रसारित किया जा रहा है वह कहाँ तक सही है? कहा जाता है—अपने मन पर हम सबका अधिकार है, धरती हम सभी की है, इसलिए हम सबके एक साथ उठ खड़े होने का वक्त आ गया है। सवाल यह है कि हम क्या एक साथ मिलकर खड़े नहीं हो रहे हैं? मुझे स्मरण आ रहा है मद्रास का साउथ ईस्ट एशिया सम्मेलन जो सन् १९५९ में आयोजित हुआ था। सम्मेलन में भारत सहित दस देशों के लोग सम्मिलित हुए थे। उस समय हमारे देश में ब्रिटेन स्थित नेशनल बुक लीग जैसी कोई संस्था नहीं थी। यद्यपि सन् १९५७ में नेशनल बुक ट्रस्ट स्थापित हो चुका था।

आज स्थिति यह है कि हमारे देश में नेशनल बुक ट्रस्ट, साहित्य अकादमी, आथर्स गिल्ड ऑफ इण्डिया, फेडरेशन ऑफ इण्डियन पब्लिसर्श जैसी सबल संस्थाएँ स्थापित हो गयी हैं, जो अच्छे प्रकाशन भी करती हैं और प्रकाशकों, लेखकों की आवाज भी बुलन्द कर रही हैं। साथ ही साहित्य अकादमी से हिन्दी में प्रकाशित होनेवाला प्रकाशन 'समकालीन भारतीय साहित्य' अन्य भाषाओं के प्रकाशनों की सूचना देता है। इसमें हिन्दी भाषी लेखकों की समस्याएँ तो सामने आती ही हैं, अहिन्दी भाषी लेखकों के सम्बन्ध में भी चर्चा हो रही है। आज का साहित्यकार कई माध्यमों से अपने को प्रकट कर रहा है, उसे तमाम तरह का मंच मिल रहा है—जैसे नेशनल बुक ट्रस्ट, सभी राज्यों की अकादमियों, दिल्ली साहित्य अकादमी, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, अनुवाद परिषद्, राज्यों की हिन्दी संस्थाएँ आदि। फिर कोई वजह नहीं दिखती कि लेखक समुदाय साक्षरता के इस आन्दोलन में पीछे रहे।

सन् १९५७ में स्थापित नेशनल बुक ट्रस्ट से मैं १९६६ से जुड़ा हुआ हूँ। जब डॉ० केसकर इसके अध्यक्ष बने तब से लेकर आज तक के नेशनल बुक ट्रस्ट में जमीन आसमान का अन्तर आ गया है। डॉ० केसकर ने आते ही कई ग्रंथमालाएँ प्रकाशित करायीं। इसमें आदान-प्रदान ग्रंथमालाओं का प्रकाशन हुआ। लखनऊ, काशी, प्रयाग, आगरा आदि में हिन्दी की प्रदर्शनियों का आयोजन हुआ। सन् १९६६ में ट्रस्ट के तत्वावधान में अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ ने हिन्दी प्रकाशन की परिस्थितियाँ और सम्भावनाओं पर लखनऊ में एक विचारगोष्ठी की, जिसमें हिन्दी के मूर्धन्य साहित्यकार अमृतलाल नागर, भगवतीचरण वर्मा, यशपाल, लखनऊ विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष डॉ० दीनदयाल गुप्त, आदि प्रमुख लोग शामिल हुए। मैं गोष्ठी का संयोजक था। मुझे प्रसन्नता हुई कि मेरे आह्वान पर राजकमल के ओमप्रकाशजी, हिन्द

पॉकेट बुक्स के दीनानाथ मल्होत्रा के साथ ही लखनऊ, मेरठ, दिल्ली तथा इलाहाबाद के कई प्रतिष्ठित प्रकाशक उसमें सम्मिलित हुए थे। उस समय से लेकर आज तीस वर्ष बाद तक बहुत काम हुआ है। नेशनल बुक ट्रस्ट ने सन् १९६६ के बाद गिफ्ट कूपन का कार्य प्रारम्भ किया। इसके अलावा पुस्तक सप्ताहों का आयोजन प्रारम्भ किया। उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, हरियाणा में पुस्तक परिक्रमा लगवायी। विश्व पुस्तक मेले सन् १९७२ से लेकर १९९६ तक प्रति दो वर्ष पर बराबर लगते ही जा रहे हैं। राष्ट्रीय पुस्तक मेलों का एक पूरा सरंजाम चल रहा है। क्षेत्रीय भाषाओं के मेले भी लग रहे हैं। ट्रस्ट अच्छे प्रकाशन के लिए सब्सिडी दे रहा है। लेखक प्रकाशक संवाद का आयोजन हो रहा है। विदेशों में प्रदर्शनियाँ लगवायी जा रही हैं। इस प्रकार नेशनल बुक ट्रस्ट साक्षरता मिशन का कार्य भी कर रहा है।

प्रकाशन विभाग भी बहुत अच्छे प्रकाशन कर रहा है। प्रदर्शनियाँ लगवा रहा है। भारतीय भाषाओं में प्रकाशन भी कर रहा है। पत्रकारिता के उत्कृष्ट प्रकाशनों पर भारतेन्दु पुरस्कार दे रहा है। हिन्दी साहित्यकारों के चित्रों का एलबम भी प्रकाशित किया गया है।

देश में लेखकों की एक प्रगतिशील संस्था है जिसका नाम 'पहल' है। यह संस्था लघु पत्र-पत्रिकाओं के आन्दोलन को चलाने का प्रयास कर रही है। इससे सिद्ध होता है कि सभी छोटे बड़े लेखक एक मंच पर आने का प्रयास कर रहे हैं। पूरी समस्या आर्थिक दृष्टि से चार पहलुओं पर आ टिकती है—शिक्षा, मकान, कपड़ा और रोटी। इनकी प्राथमिकताओं के बाद पुस्तकें हैं। आज टी० वी० के चालीस-चालीस चैनल चल रहे हैं। मीडिया के संघर्ष के युग में जहाँ टी० वी०, वीडियो, आडियो की भीड़ लगी हुई है और दूरदर्शन अति लुभावने कार्यक्रम चला रहा है, पुस्तकें टिक नहीं पा रही हैं। साक्षरता के नाम पर पुस्तक जगत को मीडिया के प्रलोभन के साथ खड़ा करना सम्भव नहीं है।

डी० ए० वी० स्कूलों के आन्दोलन को स्मरण कर देखते हैं कि आर्य समाज ने सम्पूर्ण देश में हिन्दी के नये पाठक सृजित किए। चन्द्रकान्ता के लेखक देवकीनन्दन खत्री स्वयं में एक आन्दोलन थे। नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, म० प्र० हिन्दी साहित्य समिति और कलकत्ता की बंगीय हिन्दी परिषद् आदि संस्थाओं ने हिन्दी में पाठकीय आन्दोलन चलाने के लिए बहुत प्रयत्न किए।

आज तो हम देश में कुछ और संस्थानों के नाम भी सुन रहे हैं यथा कलकत्ता का बड़ाबाजार कुमारसभा पुस्तकालय जो प्रतिवर्ष हिन्दी पठन-पाठन के लिए पाठक-प्रकाशक संवाद आयोजित कराता है। साथ ही अच्छी पुस्तकों पर विवेकानन्द पुरस्कार देता है और भी कई प्रकार के पुरस्कारों की भीड़ लगी हुई है, जिनमें ज्ञानपीठ पुरस्कार, व्यास सम्मान, के० के० बिड़ला फाउण्डेशन के अन्य भारी भरकम पुरस्कार आदि हैं।

विभिन्न मंत्रालय भी हिन्दी पुस्तकों पर पुरस्कार दे रहे हैं। साक्षारता के लिए भी पुरस्कार दिए जा रहे हैं, तब क्यों यह आह्वान हो रहा कि आइए हम सबके एक साथ उठ खड़े होने का वक्त आ गया है।

हर व्यवस्था में अभिव्यक्ति की मुखर आजादी के बावजूद विचार का एक ऐसा हिस्सा रहता है, जिसे मीडिया स्वीकार नहीं कर पाता। परिणामस्वरूप विचार की अभिव्यक्ति के वे औजार सुलभ नहीं हो पाते जो व्यवस्था से जुड़े विचार को सहज ही सुलभ हो जाते हैं। लेकिन अभिव्यक्ति की आतुरता किसी न किसी रूप में अपना रास्ता तलाश लेती है। उसका एक रास्ता स्वतंत्र पुस्तक लेखन और प्रकाशन भी है। इतिहास गवाह है कि बहुत सारी ऐसी पुस्तकों ने सार्थक रचनात्मक साहित्य के साथ चेतना का सर्जन भी किया है।

यह भी सच है कि कुछ हद तक पुस्तक सार्थक वैचारिकी की दृष्टि से उपयोगी नहीं रही। यह भी सच है कि इन सबके बावजूद पुस्तकें प्रखर वैचारिकी की सम्पादक भी हैं। हमारी चिन्ता का विषय यह हो गया है कि इस तरह का सार्थक प्रकाशन और लेखन किस प्रकार होता रहे, जिससे वैचारिकी का प्रवाह हो। आज व्यावसायिकता का शिकंजा ज्ञान और विज्ञान के क्षेत्र में मजबूत होता जा रहा है। खुले बाजार और उपभोक्तावाद के नाम पर अपसंस्कृति की माँग जोरों पर है। अनेक बार ऐसा लगता है कि साहित्यिक प्रकाशन की कोई सार्थकता नहीं है, न ही कोई भूमिका। कई बार ऐसा लगता है कि इस सीमित पैमाने पर किए गये प्रयासों का क्या परिणाम होगा? पिछले वर्ष से कागज के मूल्यों में बेतहाशा वृद्धि हुई है। कहते हैं कि यह वृद्धि ढाई गुने के लगभग है। क्या इसके लिए सरकार की नीतियाँ जिम्मेदार हैं? या कागज के मिलों के मालिक हमारा दोहन कर रहे हैं। कहते हैं हमारा कागज विदेशों के कागजों से सस्ता पड़ता है इसलिए उसका निर्यात जोरों पर हो रहा है। इस बेतहाशा मूल्य वृद्धि से पुस्तकों के छपने की संख्या कम होती जा रही है। हम अपने लक्ष्य से भटक रहे हैं। यदि यही गति रही तो हम सब एक साथ कैसे खड़े हो पायेंगे? पर प्रश्न विचारणीय है कि पुस्तकों के मूल्य विगत वर्षों में असाधारण रूप में क्यों बढ़े हैं। वैसे ही पुस्तकों के वर्तमान मूल्य से पाठक त्रस्त हो चुका था। पुस्तक पढ़ना विलासिता का चिन्ह बनता जा रहा है।

कागज के वर्तमान मूल्यों के कारण जनता कैसे शिक्षित होगी, विचारणीय है। आजादी के पचास वर्ष बाद भी सत्य यह है कि तमाम सरकारी घोषणाओं और आँकड़ों के बावजूद देश में आधे से अधिक बच्चे और उसमें दो तिहाई से अधिक लड़कियाँ प्राथमिक शिक्षा से वंचित हैं। सभी बच्चों को शिक्षा हम इसलिए नहीं दे पाए कि शिक्षा जैसे व्यापक उद्देश्य की पूर्ति करना वर्तमान स्थिति में तभी सम्भव है, जब आर्थिक दृष्टि से परिवार सम्पन्न हों। दूसरा एक और नया शगूफा देश में छूटा है। हर बच्चा इंगलिश मीडियम स्कूल में पढ़ना चाहता है, भले कुछ पढ़े या न पढ़े। माँ बाप की यह इच्छा होती है कि बच्चा अँग्रेजी माध्यम से ही पढ़े। इसपर से अन्धाधुन्ध दाम की ड्रेस, टाई, जूते आदि खरीदे जाते हैं। किताबों से अधिक परिधानों पर व्यय होता है।

आज एक रिक्शावाला भी अपने बच्चों को अँग्रेजी माध्यम स्कूल में छोड़ने और फिर लाने में परेशान रहता है।

अगर यही स्थिति बनी रही तो इक्कीसवीं सदी के पहले दशक में प्रौढ़ निरक्षरों की कतार में सबसे आगे भारत होगा। कारण हमारे कार्यक्रमों में केवल लफ्फाजी है। जब

साक्षारता मिशन पर फिल्में टी० वी० पर प्रसारित होती हैं तो स्पष्ट लगता है कि इण्टरव्यू में पात्र मेकअप करके बिठाये गये हैं। उसमें सच्चाई नाम की चीज नहीं होती।

हमारे एक मित्र की पत्नी ने बताया कि रोज शाम को उनकी इच्छा होती है कि कुछ लोगों को पढ़ाएँ, परन्तु दस महिलाओं को कहने के बाद उसमें से एकाध पढ़ने को तैयार होती हैं। ऐसी स्थिति में समझ में नहीं आता कि साक्षारता का कहाँ स्थान होगा? लोग कहते हैं कि देश.की आर्थिक स्थिति सुधरेगी तो साक्षरता का विकास होगा।

आबादी बढ़ती जा रही है। उस दृष्टि से विद्यालय नहीं खुल पा रहे हैं। आपरेशन ब्लैक बोर्ड स्कीम में भ्रष्टाचार व्याप्त है। पुस्तकों की खरीद में भ्रष्टाचार है। अधिकारी और प्रकाशक की घालमेल से किताबें सही जगह नहीं पहुँचतीं। कई राज्यों में पुस्तकें सरकार के शिक्षा विभाग के गोदामों में ही पड़ी हुई सड़ रही हैं।

ऐसी स्थिति में समस्या उठती है कि गाँव-गिराँव के किसान मजदूर के बेटों को विद्यालय भेजने के लिए प्रेरिते करना। यह समस्या पंचायतों के माध्यम से सफल हो सकती है। यह उत्साहजनक संवाद की स्थिति है कि पंचायतों के अन्तर्गत शिक्षा विभाग के अधिकारी काम कर रहे हैं।

यह सच है कि मीडिया का हमारे दैनिक जीवन पर प्रभाव होता है। अखबार में छपी चीज हमें बहुत प्रभावित करती है। दृश्य माध्यमों का भी हमारे जीवन पर प्रभाव पड़ता है। देखना यह है कि अखबार में जो कुछ छप रहा है और दृश्य माध्यम जो कुछ दिखा रहा है, क्या वह हमारी संस्कृति और शिक्षा पद्धति के अनुकूल है?

पिछले एक दशक में ऐसा कोई भी कार्यक्रम नहीं दिखा जो जनमानस को झकझोर सके। महाराष्ट्र में हुए एक आन्दोलन को अपवाद माना जा सकता है। यह आन्दोलन 'ग्रंथाली' आन्दोलन कहलाता है। लेखक, पाठक, प्रकाशक मिलकर बसों में पुस्तकें सजा लेते हैं। यह स्थिर कर लिया जाता है कि आज प्रस्थान पथ क्या होगा। पाठक उत्सुकता से इंतजार करते हैं और पुस्तकें खरीदते हैं। यह एक अनुकरणीय प्रयास है। ऐसा ही एक प्रयास नेशनल बुक ट्रस्ट ने प्रारम्भ किया है। जिसमें शहर के आठ दस स्थान नियत कर लिए जाते हैं। वहाँ पुस्तकों की चलित दुकानें जाती हैं और लोग पुस्तकें खरीदते हैं। इसका पुस्तक प्रचार पर अच्छा प्रभाव पड़ा है। यदि इस तरह के प्रयोग किए जाएँ तो साक्षरता को बहुत बल मिलेगा। हमारे यहाँ कुछ स्थानों में रिक्तता है, विश्वकोष के कार्य में वैसी प्रगति नहीं हो रही है जैसी अपेक्षित है। इस क्षेत्र में मराठी साहित्यकार बहुत आगे हैं। मराठी का विश्वकोश बनानेवाले जोशी जी दिवंगत हो गये। उन्होंने मराठी विश्वकोश के सत्रह खण्ड प्रकाशित किए हैं। इसका प्रत्येक खण्ड सत्तर रुपये का है। हमें यह जानकर सुखद आश्चर्य हुआ कि प्रत्येक लेखक ने स्वेच्छया विश्वकोष को अपनी सामग्री प्रदान की है।

कहा जा रहा है कि नवजागरण का साहित्य सुलभ नहीं है जो भ्रष्टाचार के दलदल से हमें उबार सके। हम यदि ऐसा लेखन और प्रकाशन करें जो नवजागरण के रुझान की ओर हो तो क्या नवजागरण को गुम होने से बचाया नहीं जा सकेगा? यहाँ समस्या फिर उलझ जाती है। न प्रकाशक अपनी गति बदलने को तैयार है, न अधिकारी,

बीच में फँसता है बेचारा लेखक। नवजागरण पर लिखकर वह प्रकाशक से क्या पाएगा यही उसके लिए चिन्तनीय हो जाता है।

कहते हैं प्रकाशक, लेखक और पाठक यदि सभी मिलजुलकर विचार करें तो कोई रास्ता निकल सकता है। इन तीनों को जोड़नेवाली संस्था नेशनल बुक ट्रस्ट है। नेशनल बुक ट्रस्ट पुस्तकों के मूल्य पर काबू पाने के लिए सतर्क है। आजकी परिस्थिति में हिन्दी को विशेष रूप से ऐसे आन्दोलन की जरूरत है जो मूल्य पर नियंत्रण कर हिन्दी क्षेत्र में पढ़ने-लिखने की प्रवृत्ति की गिरावट को रोके।

जूनियर हाईस्कूल के बाद लड़के किताबें नहीं पढ़ते हैं। वे गाइडों के पीछे दौड़ते हैं। देखा गया है कि विश्वविद्यालयों के बी० ए० स्तर के छात्र को यह पता नहीं होता कि प्रेमचन्द कौन थे, रामचन्द्र शुक्ल कौन थे? महादेवी वर्मा कौन थीं? घनानन्द, जायसी, भारतेन्दु का नाम उन्होंने सुना ही नहीं है।

युवाओं में सत् साहित्य के प्रति रुचि जागृत करने के लिए निराश होने की जरूरत नहीं है। इन कवियों, साहित्यकारों की रचनाओं को मीडिया के माध्यम से प्रस्तुत किया जाय, गीत गवाए जाएँ, रचनाएँ सुनायी जाएँ। इसमें दूरदर्शन का सहोयग लिया जा सकता है। सम्भव है इन प्रयत्नों से पुस्तकों की बिक्री बढ़े। भारतीय भाषाओं में दो भाषाओं की बड़ी प्रशंसा होती है—बंगला और मलयालम। कहते हैं कि बंगला में अपेक्षाकृत बहुत अच्छे पाठक हैं। मैंनें बंगाल में काफी समय तक रहकर यह महसूस किया है कि बंगाली कुछ खरीदें चाहे न खरीदे, पूजा के अवसर पर पत्रिकाओं की वार्षिकी जरूर खरीदता है। पूजा के अंक प्रत्येक बंगाली परिवार में दो चार की संख्या में मिलेंगे। इसमें आनन्द बाजार पत्रिका के प्रकाशन, आजकल कार्यालय की वार्षिकी की बिक्री पूजा में बहुत ही प्रचलित है। कल्लोल प्रकाशन की पूजा स्मारिका भी पसन्द की जाती है। मेरे मित्र और सम्माननीय लेखक डॉ० प्रतापचन्द चन्द्र ने बताया कि पूजा स्मारिका लिखने के बहाने ही वे प्रतिवर्ष दो तीन छोटे उपन्यास लिख पाते हैं। ऐसी स्थिति बंगाल के लेखकों में सुनील गंगोपाध्याय, दिव्येन्दु पालित, दिवंगत समरेश बसु की भी रही है। दुर्भाग्य है कि हिन्दी में यह कार्यक्रम चेष्टा करने पर भी लागू नहीं हो सका और प्रयास करने के बावजूद भी दीपावली की संख्या निकालने का जो प्रयत्न किया गया, वह व्यर्थ हो गया। हिन्दी के प्रचार-प्रसार में काम करनेवाली संस्थाओं की दशा बहुत उत्साहवर्धक नहीं दिखाई देती। ये संस्थाएँ जनमानस से कटी हुई दिखती हैं। इनका दायरा केवल पढ़े-लिखे लोगों तक ही है। सामान्य पाठकों के लिए इन संस्थाओं के पास कार्यक्रम नहीं है। हठात् यह प्रश्न जब उठते हैं तो कहा जाता है कि आर्थिक अभाव है। इस आर्थिक अभाव का निराकरण इस देश में सम्भव नहीं है। यहाँ अब करोड़ों की बात छोटी मानी जाती है। मुद्रा का अवमूल्यन इतना हो गया है कि भगवान् भी इस देश की माँग पूरी नहीं कर सकेगा।

आज ऐसे गाँधी की आवश्यकता है जो लोगों को स्वेच्छा से कार्य करने के लिए प्रेरित करे। देखें ये संस्थाएँ कब जागती हैं और साक्षरता मिशन के लिए लोगों का प्रयास कब सफल होता है।

यह भी पता चला है कि प्रौढ़ शिक्षा के नाम पर जो कुछ हो रहा है उसका दस प्रतिशत भी लाभकारी नहीं है। पुस्तकें छपती जरूर हैं। केन्द्रों पर जाती भी हैं परन्तु अधिकांश केन्द्र फर्जी होते हैं। आँगनबाड़ियाँ भी सार्थक भूमिका नहीं निभा रही हैं। भ्रष्टाचार के इस आलम में साक्षरता मिशन संकट में है।

संघर्ष के इस युग में विभिन्न कालखण्डों में एक आवाज अवश्य सुनायी दे रही है। प्रकाशन बन्द मत करो, कुछ न कुछ लिखो और कुछ न कुछ प्रकाशित करो। कभी न कभी तुम्हारी आवाज वहाँ पहुँचेगी, जहाँ तुम पहुँचाना चाहते हो। गीता के इस ज्ञान पर कि 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन'—काम करते जाओ फल मिलेगा ही, निराश न हो—इसी सिद्धान्त पर हम काम करते जाते हैं।

प्रसन्नता की बात है कि आज पुस्तक मेलों की बाढ़ आ गयी है। कोई ऐसा राज्य नहीं है जहाँ बड़े नगरों में पुस्तक मेले नहीं लगते हों और लाखों लोग मेले में न जाते हों। बंगाल पुस्तक मेलों के लिए बहुत प्रसिद्ध है। वहाँ पूजा मण्डपों तक में पुस्तकों की दुकान लगती है। पाठक पुस्तकें खरीदते हैं, पढ़ते हैं।

एन० सी० ई० आर० टी० का प्रयत्न भी सराहनीय है। यह सरकारी संस्था स्कूलों के लिए पाठ्यक्रम तैयार कर प्रकाशन भी करती है। इसका प्रभाव भी जनमानस पर अच्छा पड़ा है।

हमारी एक संस्था है इण्डियन काउन्सिल फॉर कल्चरल रिलेशन्स। यह संस्था विदेशों में हमारा साहित्य भेजती है। संस्था के माध्यम से होनेवाले सांस्कृतिक आयोजन भी हमारे साहित्य और संस्कृति का प्रचार करते हैं और पुस्तकों के प्रति रुचि जगाते हैं। विदेशों में भी अब हिन्दी के समाचार पत्र निकलने लगे हैं। प्रवासी टाइम्स और शान्तिदूत इनमें प्रमुख हैं।

गाँधी शान्ति प्रतिष्ठान पर्यावरण पर पुस्तकें प्रकाशित कर रहा है। अनुपम मिश्र के प्रयत्नों से जो भी कार्य हो रहा है वह साक्षरता मिशन की आवश्यकता की पूर्ति करने में सहायक है।

केन्द्रीय सचिवालय और हिन्दी परिषद् साक्षारता मिशन के कार्य में सहयोग कर रहे हैं। यह परिषद् कार्यालयों में हिन्दी की पढ़ाई के लिए ही बनी है, परन्तु हम इसे यहीं तक सीमित नहीं मानते। परिषद् के अन्तर्गत चलनेवाले बहुत से कार्यालयों ने सूचित किया है कि कम मूल्यों की जो पुस्तकें प्रकाशित हो रही हैं इनकी वे प्रदर्शनी अपने यहाँ लगाना चाहते हैं। इसके दो सौ बाइस शहरी कार्यालयों के अन्तर्गत बहुत-सी सरकारी संस्थाएँ हैं। यदि इस मंच का उपयोग किया जाए तो साक्षारता का बहुत कार्य हो सकता है। इसमें काम करनेवाले सरकारी कर्मचारियों में सभी भाषा-भाषी होते हैं। परन्तु अभी एक भी सामान्य प्रकाशक ऐसी स्थिति में नहीं है कि अपने दम पर वह प्रदर्शनियाँ लगवाए और उसका खर्च उठाए। इस दिशा में स्तुत्य कार्य है गीताप्रेस का। वे दुर्गा सप्तशती का एक लाख का संस्करण प्रकाशित करते हैं। यदि दुर्गा सप्तशती एक लाख बिक सकती है तो कोई वजह नहीं कि हिन्दी के प्रसिद्ध कवियों की धार्मिक कृतियाँ यदि कम मूल्य में प्रकाशित हों तो उनका भी एक लाख का संस्करण नहीं बिक सकता है।

इस तरह का प्रयोग करने की चेष्टा हो रही है। देखना है कि कहाँ तक सफलता मिलती है।

विदेशों में पुस्तक मेले लगते हैं और खूब लगते हैं। सम्भवत: कोई भी ऐसा प्रगतिशील राष्ट्र नहीं है जहाँ पुस्तक मेले नहीं लगते हों। इन सब पुस्तक मेलों में फ्रैंकफर्ट बुक फेयर भी है, जहाँ सभी देशों के प्रकाशक जाते हैं। काफीराइटों का विनिमय करते हैं। अच्छे-अच्छे ग्रन्थों का विनिमय होता है इससे साक्षरता के विकास को गति मिलती है। फेडरेशन ऑफ इण्डियन पब्लिशर्स की मैं प्रशंसा करना चाहूँगा। विगत दो वर्षों से इस मंच से दीनानाथ मल्होत्रा भारतीय भाषाओं के प्रकाशकों का सम्मेलन करवा रहे हैं। प्रत्येक भाषा के श्रेष्ठ प्रकाशक को पुरस्कृत कर रहे हैं। एक नयी लहर दौड़ रही है। इस नयी लहर द्वारा समकालीन भारतीय भाषाओं में साहित्य सुलक्ष हो सकेगा, ऐसी आशा बँधी है।

अभी हाल में गुजराती और मराठी भाषा के प्रकाशकों ने एक सम्मेलन अहमदाबाद में इसी प्रयोजन से किया। विषय था कैसे भारतीय भाषाओं की पुस्तकें जल्दी से जल्दी इन दोनों भाषाओं में सुलभ हो जाएँ।

वाराणसी में भी हिन्दी और बंगला भाषा के प्रकाशकों का ऐसा ही सम्मेलन आयोजित कराने का प्रयास हो रहा है। हिन्दी से बंगला में भी अनुवाद होने लगे हैं। पहले बंगला से हिन्दी में अनुवाद होते थे। आज बंगला में राहुल भी सुलभ है और प्रेमचन्द भी। भगवतीचरण वर्मा, अमृतलाल नागर जैसे हिन्दी के अन्य साहित्यकार भी बंगला प्रकाशकों के चहेते बन गये हैं।

देश में आज जो समय आ रहा है, उसमें एक ऐसा वातावरण जरूर तैयार हो जायेगा, जब हम कह सकेंगे कि साक्षरता के लिए समय ठीक है, अनुकूल है, हम एक साथ खड़े होने में समर्थ हैं।

हिन्दी का सन्दर्भ साक्षरता से

गंगा, यमुना के किनारे और विशेष कर हिन्दी प्रदेशों में ही हमारी भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता का विकास हुआ। ये दो वारिधाराएँ हमारी संस्कृति चेतनता की साक्षी रहीं। ये हमारी सभ्यता की निरन्तर प्रवहमान धमनियाँ बनीं, पर आज दशा एकदम उलटी है। देश की ३५ प्रतिशत जनता गंगा के किनारे रहती है, जिसमें ६० प्रतिशत जनता निरक्षर है। इनके सामने राष्ट्रभाषा की कोई समस्या ही नहीं! राष्ट्रभाषा का प्रश्न तो साक्षरों के बीच का प्रश्न है। निरक्षर के सामने कोई भाषा की समस्या नहीं, उसके सामने तो बस एक भाषा है, और वह है मांतृभाषा।

भारत में ५० प्रतिशत निरक्षर हैं। उन निरक्षरों में से भी हिन्दी प्रदेश में ६० प्रतिशत निरक्षर हैं। जो प्रदेश अपनी साक्षरता में पिछड़ा हो उसकी मातृभाषा, राष्ट्रभाषा की संवैधानिक गारंटी पाकर भी यदि गन्तव्य तक नहीं पहुँच पायी तो आश्चर्य क्या? राष्ट्रभाषा को उसका वास्तविक स्थान दिलाने के लिये पहले हिन्दीभाषी प्रदेश को जगाना होगा। उसे साक्षर बनाना होगा, उसमें पढ़ने का संस्कार भरना होगा।

जब भी पढ़ने के संस्कार की बात उठती है तो डेली टेलीग्राफ की एक सर्वे रिपोर्ट सामने आती है। इस अखबार के पाठकों में १०० हिन्दी पढ़नेवालों में से केवल १५ अखबार पढ़ते हैं, जबकि बंगला पढ़नेवालों में यह संख्या सौ के पीछे ५४ पड़ती है। बंगाल पहले मजदूर आन्दोलन का राज्य माना जाता था, आज बंगाल के नाम के साथ पुस्तक मेलों का भी नाम जुड़ गया है। सफल पुस्तक मेले आयोजित करने में यह राज्य आज विश्व के मानचित्र पर अपना स्थान बना चुका है। केवल कलकत्ता नगर में ही नहीं, बंगाल के अनेकानेक जिलों में तो वर्ष में चार-चार पुस्तक मेले लगते हैं। महानगरीय पुस्तक मेलों में तो शिक्षा जगत् का महाकुंभ जुटता है। देश-विदेश के पाठक, लेखक, रचनाकार, शिक्षाविद, सम्पादक, लघुपत्रों के संपादक और प्रकाशक, देशी-विदेशी संवाददाता, फीचर लेखक, मुद्रक और प्रकाशक सभी का इन मेलों में योगदान होता है।

इन मेलों से पठन संस्कार प्रभावित होता है। लोगों की पुस्तकों में रुचि बढ़ती है। आम जनता को किस प्रकार का साहित्य प्रभावित करता है, इसका आकलन होता है। ऐसे मेले साक्षरता के लिए निरक्षरों का दिमाग बनाते हैं।

पर ऐसे सुव्यवस्थित मेले हिन्दीभाषी क्षेत्रों में नहीं होते। परिणाम यह है कि साक्षरता के लिए आम आदमी का दिमाग बन ही नहीं पाता। वह केवल अपने पेट से जूझता है और दिमाग को खाली रखता है। इसका फल हिन्दी के पुस्तक-व्यवसाय पर स्पष्ट दिखायी पड़ता है।

इस संबंध में केवल एक ही उदाहरण काफी होगा। बंगाल के सारे सांस्कृतिक कार्यक्रम नजरुल या रवीन्द्र के गीतों से आरम्भ होते हैं, वहीं हिन्दी क्षेत्र के कार्यक्रमों में

निराला का गीत—वीणावादिनी वर दे—पाता है। जहाँ नजरुल के गीतों के संकलन 'संचयिता' के अब तक ४५ संस्करण बिक चुके हैं, वहीं निराला की अनामिका के इनेगिने सात-आठ संस्करण ही हुए हैं।

इधर हिन्दी प्रकाशक संघ का एक सूत्री कार्यक्रम रह गया है—पुस्तक बेचना। वह भी जनता को नहीं, सरकार को। इसके बावजूद भी वे जायज-नाजायज सारे तरीके अपनाने के बाद भी आठ-नौ सौ पुस्तकों से अधिक का संस्करण बेच नहीं पाते हैं, क्योंकि वे जनता से कटे हैं। उन्हें जनता की परवाह भी नहीं, केवल सरकारी कृपा का ही सहारा है।

हिन्दभाषियों में पठन-संस्कार विकसित करने का और प्रयत्न ही नहीं है, फिर साक्षरता कैसे बढ़ेगी? मातृभाषा में वह ऊर्जा कैसे आयेगी, जिससे वह राष्ट्रभाषा का अपना वास्तविक दर्जा पा सके?

सन् १९९० का विश्व साक्षरता वर्ष बीत गया, पर हमने क्या किया? करोड़ों आदिवासियों के लिए उनकी रुचि के अनुसार पुस्तकें मुहैया करानी थीं, पर हम मौन क्यों रह गये? इस समय आदिवासियों के पाँच सौ गुट हैं। उनकी बोलियों में छपी बाइबिलें तो मिल सकती हैं पर आवश्यकतानुसार हिन्दी में पुस्तकें सुलभ नहीं।

सरकार की भूमिका इस क्षेत्र में बहुत अधिक प्रभावशाली नहीं रही या उसने वह नहीं किया, जो उसे करना चाहिए था। उसने पुस्तक की सरकारी खरीद को तो प्रोत्साहन दिया, पर पुस्तक जनता खरीदे इसकी ओर उसका ध्यान नहीं गया। त्रिपुरा का एक उदाहरण सामने है। वहाँ के पुस्तक मेले में १० प्रतिशत तो सामान्य कमीशन पुस्तक विक्रेता देता था और जब पुस्तक क्रेता पुस्तक खरीद कर मेले से बाहर निकलता था, तब उसका कैशमेमो देखकर मेले के बाहर १० प्रतिशत कमीशन सरकार देती थी। लेकिन हिन्दीभाषी क्षेत्रों में सरकारें ऐसा न कर सकीं। यदि करतीं तो हिन्दी क्षेत्रों में भी पुस्तक खरीदने के प्रति जनता में ललक होती। हमारे प्रख्यात उपन्यासकार अमृतलाल नागर को निधन के कुछ वर्ष पूर्व अफसोस करते हुए यह न कहना पड़ता कि हिन्दी में हजार के संस्करण बिकते-बिकते कई वर्ष लग जाते हैं। इसलिए अच्छा लेखक भी लेखकीय जीविका से पेट नहीं भर सकता।

वस्तुतः खादी की बिक्री में सरकार जिस तरह की रुचि लेती है और गाँधी जयन्ती से जनवरी तक जैसे कमीशन देने की व्यवस्था की जाती है, वैसे ही हिन्दी पुस्तकों की खरीद के लिए सरकार से जनता को सहयोग राशि की व्यवस्था की ज़ानी चाहिए। पर यह हो कैसे? जिस देश में सम्पूर्ण बजट का ५ प्रतिशत मात्र शिक्षा पर खर्च होता है, उस देश की साक्षरता का भगवान् ही भला करे। एक कहावत है कि मंगा क्या नहाये क्या निचोड़े?

पहले तो सरकार के पास बजट नहीं है, फिर जो कुछ धन है उसका सही इस्तेमाल नहीं है। और यदि इस्तेमाल है, तो सही पैसा सही स्थान तक पहुँच नहीं पाता। यदि यह स्थिति न होती, तो आज हिन्दी की यह दशा न होती।

राष्ट्रभाषा का प्रश्न केवल भाषा का प्रश्न नहीं है, वह हमारे सांस्कृतिक संदर्भ का प्रश्न है। वह हमारे सर्वांगीण विकास और सम्यक चिन्तन का प्रश्न है। हमारे सांस्कृतिक मानस के अभ्युदय का प्रश्न है। हम जब बंगाल के दो साल के बच्चे को रवीन्द्र संगीत गाते देखते हैं तो हमें अपने हिन्दी प्रदेश की मिट्टी में खेलता दो वर्ष का धूलभरा हीरा याद आता है जिसके विकास के लिए हमारा दायित्वबोध बिल्कुल निष्क्रिय है। हम उसके पढ़ने के लिये पुस्तकें तक तो जुटा नहीं पाते, फिर सर्वांगीण विकास का सपना कैसा? हम २१वीं सदी में प्रवेश करते भारत को कौन-सी सांस्कृतिक सुविधा दे पायेंगे?

यह स्थिति भयावह है। इसका सामना करने के लिये हमें संकल्पबद्ध होना पड़ेगा। हिन्दी के विकास और राष्ट्रभाषा को उसके उचित स्थान पर ले जाने के लिए हमें प्रयत्न करने होंगे।

१४ सितम्बर को समूचे देश में हिन्दी दिवस मनाया जाता है। सरकारी स्तर पर भी आयोजन होते हैं और जनता के स्तर पर भी, पर यह सब कुछ हमारी समारोही प्रवृत्ति तक ही सीमित रह जाता है। एक उत्सवी प्रयत्न करके हम अपने कर्त्तव्य की इतिश्री कर देते हैं। हमारे देश में ५२० दूरदर्शन केन्द्र हैं और १८० आकाशवाणी केन्द्र। यदि ये चाहते तो हिन्दी का सोया मानस झकझोर देते। ये चाहते तो राज भाषा के साथ-साथ भारतीय भाषाओं के जागरण का बिगुल बजा सकते थे, पर इस दिन ये जो कुछ करते हैं, वह फर्ज अदायगी के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता।

'हिन्दी दिवस' मनाने का तात्पर्य है, हिन्दी में बोलना, हिन्दी में सोचना, हिन्दी में राजकाज ही नहीं व्यक्तिगत कार्य भी करना और हिन्दी को जीवन में आत्मसात् करने का संकल्प लेना।

साक्षरता बनाम नारी शिक्षा

हमारे देश के नेताओं के भाषणों में नारी-शिक्षा के चाहे जो भी आँकड़े प्रस्तुत किए जाते हों किन्तु वस्तुत: स्थिति कुछ भिन्न है। महिला साक्षरता अभी भी अपेक्षित स्थिति में नहीं पहुँची है। जहाँ केरल में स्त्री साक्षरता ८६.९३ प्रतिशत है, महाराष्ट्र में ५०.५७ प्रतिशत, गुजरात में ४८.५० प्रतिशत, पश्चिम बंगाल में ४७.१५ प्रतिशत है, वहीं उत्तर प्रदेश में यह कुल २८.३९ प्रतिशत है। उत्तर प्रदेश में पुरुषों की शिक्षा का प्रतिशत ५५.३५ प्रतिशत होने पर महिला शिक्षा में इतना अन्तर होना दुर्भाग्य की बात है। देश भर में शिक्षा के जो आँकड़े देखे गये हैं उसमें सबसे नीचे उत्तर प्रदेश है।

वाराणसी जिले को ही लें। उदाहरणार्थ, जहाँ बालकों के लिए १०० विद्यालय हैं, वहीं बालिकाओं के लिए केवल २० विद्यालय। अभी सरकार ने तय किया था कि आपेरशन ब्लैक बोर्ड के माध्यम से उत्तर प्रदेश में विशेष रूप से लोगों को प्रशिक्षित किया जायेगा। इस योजना के अन्तर्गत तीन वर्षों में चरणबद्ध तरीके से प्रदेश के ८९५ विकास खण्डों में ६५,३८८ प्राथमिक विद्यालयों को चुना गया। १९८७-८८ में २७७ विकासखण्डों के १८,२९४ विद्यालयों में ये योजना लागू की गयी।

ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड सिर्फ विद्यालयों को न्यूनतम शैक्षिक सुविधाएँ उपलब्ध कराने तक ही सीमित नहीं रहा, बल्कि विद्यालयों के शैक्षिक स्तर में सुधार के लिए चयनित विद्यालयों की आवश्यकतानुसार लगभग ७२०० महिला अध्यापकों के पद सृजित कर उनकी नियुक्तियाँ भी की गई। परन्तु आश्चर्य है कि महिला शिक्षिकाओं के पद सृजन के बाद भी शिक्षित महिलाओं की संख्या नहीं बढ़ रही है। छात्राओं की तादात पूछने पर शिक्षाधिकारी मौन रह जाते हैं। अब तक इस योजना पर ६४ करोड़ रुपये खर्च हो चुके हैं। प्राइमरी स्तर के छात्रों को दोपहर का भोजन देने की बात भी प्रधानमंत्री के व्याख्यानों में कही जा रही है, परन्तु अभी ये सब सिर्फ कागजी कार्यवाही है।

औरतों की आजादी और समानता के नारों को बुलन्द करनेवाली सरकार और महिला समाज कल्याण संगठन अब विश्व राजनीति की गोद में सरक गये हैं। १८५ देशों की ५० हजार से ऊपर महिला प्रतिनिधियों ने बीजिंग (चीन) में महिलाओं की समस्याओं पर विचार-विमर्श किया। भारतीय प्रतिनिधि मण्डल भी बहुत बड़ा था। उसने भारत के महिला आन्दोलन की उपलब्धियों की चर्चा की। अशिक्षा, कुपोषण और अस्वास्थ्य के खिलाफ कार्यक्रम चलाने के लिए हमारे प्रतिनिधिमण्डल ने बहुत ठोस कार्यक्रम उपस्थित किये। हमारे प्रतिनिधिमण्डल के नेता माधवराव सिंधिया ने बताया कि तीसरी दुनियाँ की गरीब महिलाओं की परेशानियाँ दिनोत्तर बढ़ रही हैं। पश्चिमी देश समाज परिवर्तन की वास्तविकता से नजर चुरा रहे हैं।

राष्ट्रसंघ के नेतृत्व में चलनेवाले अन्तर्राष्ट्रीय महिला दशकों की स्थिति बहुत अच्छी नहीं रही है। पश्चिमी देशों के लोग राष्ट्रसंघ में छाये हुए हैं। तीसरी दुनियाँ के देशों को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाकर शिक्षा का प्रसार बढ़ाकर यहाँ की औरतों की स्थिति सुधारी जा सकती है। स्त्रियों की उन्नति के लिए उनके कानूनी हकों में वृद्धि करनी होगी। उपेक्षित महिलाओं की तरफ दुनियाँ का ध्यान आकर्षित करना होगा।

प्रसन्नता की बात है कि भारत में पंचायतीराज के कार्यक्रम में स्त्रियों को ३० प्रतिशत की भागीदारी जरूर मिली है। परन्तु शिक्षा के क्रम में सुधार नहीं हो सका है। सामाजिक जिम्मेदारियों के बावजूद स्त्रियों को दूसरे दर्जे का नागरिक माना जाता है। जरूरत इस बात की है कि हम महिलाओं को समानता के ज्यादा अवसर दें। यह हमारा कोई एहसान नहीं होगा, बल्कि औरतों का कर्ज उतारना होगा।

यद्यपि इस लड़ाई में महिलाओं से सम्बन्धित जो काम हुए हैं उससे सिद्ध होता है कि ९० प्रतिशत देशों ने औरतों की तरक्की के काम में दिलचस्पी ली है। ७० प्रतिशत देशों ने इसे बहुत ही गम्भीर रूप में लिया है। बहुत से देशों में औरतों को कानूनी सहायता भी मिली है। औरतों के खराब स्वास्थ्य को सुधारने में भी दिलचस्पी दिखायी जा रही है। ४० प्रतिशत देशों में औसत औरतें परिवार नियोजन में रुचि रखती हैं। नारी-समानता से सम्बद्ध कुछ ऐसे महत्वपूर्ण मुद्दे हैं जिन्हें विश्व-समुदाय को ध्यान में रखकर उसे व्यावहारिक रूप में साकार करने का प्रयास करना चाहिए, तभी नारी शिक्षा में भी सुधार सम्भव है। जैसे :

- ❑ लगातार बढ़ती गरीबी पर काबू पाने के लिये महिलाओं को समर्थ बनाना।
- ❑ सभी क्षेत्रों और सभी स्तरों पर समानता, शिक्षा, प्रशिक्षण, स्वास्थ्य की देखभाल और तत्सम्बन्धित सेवाओं तक महिलाओं की पहुँच बढ़ाना।
- ❑ महिलाओं के खिलाफ हिंसा के प्रयोग का उन्मूलन करना।
- ❑ सशस्त्र संघर्ष के निपटारे में महिलाओं की भागीदारी बढ़ाते हुए युद्ध, शस्त्र प्रयोग, विदेशी आधिपत्य और हमलों के दौरान महिलाओं की रक्षा करना।
- ❑ आर्थिक आत्मनिर्भरता बढ़ाकर संसाधनों पर महिलाओं की पकड़ मजबूत करना।
- ❑ सत्ता-सामर्थ्य में भागीदारी और कामकाज के लिये सही स्थितियाँ पैदा करना।
- ❑ उन सभी मुद्दों को प्रोत्साहित करना, जिनसे शक्ति और सत्ता के ढाँचे तथा निर्णय की प्रक्रिया में महिलाओं को सभी क्षेत्रों और स्तरों पर बल मिल सके।
- ❑ नीति, नियोजन, कार्यक्रम और कार्यान्वियन के सभी स्तरों पर लैंगिक समानता के आयाम समन्वित हों।
- ❑ महिलाओं के अधिकारों की सुरक्षा के लिए अन्तर्राष्ट्रीय मानदण्डों का प्रयोग कारगर ढंग से किया जाय।

- नारी-पुरुष की समानता की जागृति बढ़ाने के लिए, परम्परागत और आधुनिक संचार साधनों के प्रयोग का विस्तार किया जाय।
- समानता पाने के लिये ऐसे कार्यक्रमों को प्रोत्साहित करना, जिससे महिलाओं की मिली-जुली जिम्मेदारी विकसित हो सके।
- बालिका शिशु के विकास के लिए विशेष प्रयास किये जायें।

आज भारत की सभी विधायिकाओं में औरतें सक्रिय रूप से भाग ले रही हैं। परन्तु उनका प्रतिशत डेनमार्क, स्वीडेन, फिनलैण्ड, सोवियत रूस और चीन से कम है। आज की दुनियाँ के कुल काम का दो तिहाई औरतें करती हैं, किन्तु उन्हें केवल १० प्रतिशत ही आमदनी होती है। इसमें भी औरतें विश्व की सम्पूर्ण सम्पदा की एक प्रतिशत की मालकिन हैं।

अब स्पष्ट हो गया है कि देश की आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों से आम औरतें और बच्चे प्रभावित होते हैं। अतः उन्हें सामाजिक व आर्थिक स्वरूप से भी आत्मनिर्भर होना चाहिए। शिक्षा में भी औरतें अभी बहुत पीछे हैं। भारत के ३५२ गाँवों और ८३ जिलों के शहरी इलाकों में अभी भी औरतों की साक्षरता ०.५ प्रतिशत से कम है। अन्य जिलों में साक्षरता की दर ५ से १० प्रतिशत के बीच है। इन ८३ जिलों में से ६४ जिले उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान और मध्यप्रदेश में हैं।

हमारे देश में स्त्रियों की सामाजिक दशा सुधारने के लिए अनेक कार्यक्रम बनाये जा रहे हैं। गरीब औरतों के लिए अभी भी जीवन चलाना कठिन हो रहा है। व्यापारीकरण हो जाने के कारण गाँवों में लकड़ी नहीं मिलती। लकड़ी ऊर्जा का सबसे सस्ता स्रोत था। इससे गरीब लोग अपना घर भी बना लेते थे। पंचायतों को कहा गया है कि पानी और दूसरी नागरिक सुविधायें ग्रामांचल में सुलभ करायें। आज औरतों की जनसंख्या में भारत दूसरे नम्बर पर है, परन्तु हमलोग गर्भ में ही लड़कियों को मार रहे हैं। एक हजार पुरुषों के पीछे अब ९३० औरतें रह गयी हैं। अमीर देशों में औरत की औसत उम्र ७८ साल है जबकि पुरुष की ७२ साल। भारत में यह उल्टा है। औरत की औसत उम्र ५६ साल है और पुरुष की ६२ साल। महिलाओं के सुधार के सम्बन्ध में बहुत कुछ कहा जा सकता है, परन्तु जितना आन्दोलन होता है उसी के साथ महिलाओं की तकलीफें बढ़ रही हैं। हत्या, पुरुषों द्वारा महिलाओं की प्रताड़ना, दहेज प्रथा को लेकर उत्पीड़न आज बहुत बढ़ते जा रहे हैं। दहेज की वजह से हत्याओं की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ रही है। समुद्र तटीय इलाकों में तमिल महिलाओं का बहुत शोषण होता है। चाय बागान और खेतों में काम करनेवाली महिलायें भी सुखी नहीं हैं। अशिक्षित औरतों से लोग बहुत ही दुर्व्यवहार करते हैं। आज ग्रामों में जो भोजन महिलाओं को मिल रहा है उसमें कैलोरी की उचित मात्रा नहीं मिल पाती। अस्वास्थ्यकर हालत में रहने की वजह से औरतों को बहुत सी बीमारियाँ हो जाती हैं। गरीब इलाकों की मासूम और कमसिन लड़कियों का तो व्यापार भी होने लगा है।

क्या ऐसी अस्वास्थ्यकर हालत में हम अपने वायदे के अनुसार सन् २००० तक शिक्षित और आत्मनिर्भर बन सकेंगे? अनुमान है कि २१वीं सदी का यह सपना पूरा हो सकता है, यदि हम ग्राम-ग्राम में महिलाओं के विद्यालय खोलें, उनकी शिक्षा पर बल दें।

ब्रिटिश शासन के दौरान ही भारतीय शैक्षिक प्रणाली ने संगठित रूप धारण कर लिया था। १८३५ में शिक्षा सम्बन्धी प्रथम नीति की घोषणा मैकाले की टिप्पणी के साथ हुई थी। १८५४ में वुड की विज्ञप्ति में वित्तीय सहायता बढ़ी। कलकत्ता, मद्रास तथा बम्बई में विश्वविद्यालय स्थापित हुए। आज देश में २०० विश्वविद्यालय हैं।

दादाभाई नौरोजी ने प्रथम शिक्षा आयोग के सम्मुख अपनी गवाही में यह माँग प्रस्तुत की थी कि सभी बच्चों के लिए ४ वर्षों तक अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था हो। गोपालकृष्ण गोखले ने भी इसी माँग को दुहराया। १९१२ में प्रारम्भिक शिक्षा का सर्वसुलभीकरण का उत्तरदायित्व सरकार ने स्वीकारा। यद्यपि गोखले का यह प्रयास कार्यरूप में असफल रहा, परन्तु भारतीय नेताओं ने अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा के लिए चेतना जागृत करने में सफलता प्राप्त की। १९१८ से १९३१ के बीच नवनिर्वाचित प्रान्तीय विधानसभाओं ने अनिवार्य शिक्षा सम्बन्धी कानून पारित किए। १९४४ में सार्जेन्ट योजना के नाम से युद्धोत्तर शैक्षिक विकास योजना के द्वारा ६ से १४ वर्ष तक के सभी बच्चों के लिए प्रारम्भिक शिक्षा निःशुल्क तथा अनिवार्य बनाने का सुझाव आया, परन्तु स्वतंत्रता संघर्ष के कारण यह योजना लागू नहीं हो पायी और १९४७ में देश की आजादी के बाद अनिवार्य शिक्षा के महत्त्व को लोगों ने पहचाना।

महात्मा गाँधी ने बुनियादी शिक्षा योजना को प्रस्तुत किया जिसके अन्तर्गत सभी बच्चों को ७ वर्षों की शिक्षा मातृभाषा में सुलभ कराने का प्रस्ताव था। उसके बाद देश में बहुत सी शिक्षा संस्थायें बुनियादी शिक्षा के सिद्धान्तों पर स्थापित हो गयीं।

भारत में शिक्षा प्रणाली के पुनर्गठन का कार्य १९४८ में सर्वपल्ली राधाकृष्णन की देखरेख में शुरु हुआ। नेहरू जी ने इस दिशा में अपने प्रधानमंत्रित्व काल में बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य किए। उनके शासनकाल में शिक्षा प्रणाली के ढाँचे, लक्ष्यों, पाठ्यक्रमों, प्रक्रियाओं तथा संरचना में आमूल परिवर्तन हुआ।

१९५२ में भारत सरकार ने डॉ० लक्ष्मणस्वामी मुदालियर की अध्यक्षता में माध्यमिक शिक्षा आयोग स्थापित किया। स्कूल शिक्षा के लिए ११ वर्ष तथा स्नातक उपाधि के लिए ३ वर्ष की अवधि स्थिर हुई। १९६८ में राष्ट्रीय शिक्षा नीति पर एक प्रस्ताव प्रकाशित हुआ और शिक्षा का आमूल पुनर्गठन किया गया। विज्ञान और टेक्नोलॉजी के विकास पर बल दिया गया। चरित्रवान तथा कुशल युवक-युवतियों को राष्ट्रीय सेवा के विकास के लिए वचनबद्ध करने का कार्यक्रम बना। १९८६ की राष्ट्रीय शिक्षा नीति में भौतिक तथा आध्यात्मिक विकास को सामान्य रूप से आधार माना गया। इसके बाद समूचे देश में अनुसंधान तथा विकास की प्रगति बढ़ी। वर्तमान को सुधारने तथा भविष्य को उज्ज्वल बनाने के लिए शिक्षा के क्षेत्र में पूँजी निवेश किया गया।

१९४४ में निःशुल्क तथा अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा का कार्यक्रम बनाया गया था, परन्तु आजादी के बाद सरकार ने महसूस किया कि ५० वर्षों तक भी हम अनिवार्य शिक्षा के लक्ष्य को नहीं पा सके। राष्ट्रीय शिक्षा नीति १९८६ के अनुसार लक्ष्य तिथि १९९५ स्थिर हुई। १९९५ भी बीत गया। अभी भी भारत में ४८ प्रतिशत आबादी निरक्षर है। माध्यमिक स्कूलों की संख्या लगभग ८० हजार हो गयी है, फिर भी सभी छात्र माध्यमिक शिक्षा प्राप्त करने में असमर्थ हैं।

व्यावसायिक पाठ्यक्रमों को अनिवार्य और व्यापक बनाने का प्रयत्न किया जा रहा है। विशेषकर स्त्रियों को शिक्षा मिले ऐसा सरकार को सोचना चाहिए। समाज कल्याण मंत्रालय द्वारा शैक्षिक टेक्नोलॉजी में गुणात्मक सुधार किये गये। देश भर में शैक्षिक प्रौद्योगिकी रेडियो तथा दूरदर्शन के द्वारा सुलभ कराई जा रही है। आवश्यकता है कि स्वैच्छिक संस्थायें आगे आयें और महिला शिक्षा के विकास में देश को आत्मनिर्भर बनायें।

विज्ञान प्रदर्शनियाँ सारे देश में लग रही हैं। विज्ञान प्रतिभा की खोज हो रही है। कलकत्ता में ५८ एकड़ क्षेत्र में भारत का पहला विज्ञान नगर स्थापित किया गया है। अनुसूचित जाति, जनजातियों, अल्पसंख्यकों तथा शरीरिक एवं मानसिक रूप से अक्षम व्यक्तियों को शिक्षा पाने का अवसर मिलना चाहिए।

कुल मिलाकर नारी शिक्षा के लिए कार्य तो हो रहे हैं, परन्तु हमें ईमानदारी से प्रयास करना चाहिए कि यह कार्य केवल कागजी न रह जाय और हम आँकड़े इकट्ठे करने में ही व्यस्त रहें, वरन् जो भी कार्य हो, व्यावहारिक रूप से सामने आए, जिससे नारी जगत् का वास्तविक कल्याण हो।

पाठकों की दृष्टि से १०० में ६० महिलाएँ पढ़ने में रुचि रखती हैं। यदि नारी-शिक्षा की प्रगति हो तो निश्चय ही पुस्तकों के प्रचार-प्रसार को बल मिलेगा।

शैक्षणिक नीतियाँ और प्रवृत्तियाँ

अंग्रेजी शिक्षा की चिरकालीन प्रभावग्रस्तता के कारण मूल तक पहुँचकर अपनी शिक्षा-पद्धतियों के दोषों की खोज अब बड़ा दुष्कर कार्य हो गया है। निश्चय ही आज हमारे सामने एक नये शुभारम्भ एवं नवजागरण की स्थिति आ गयी है इसलिए उसे उपयोग का एक साधन मात्र न समझा जाये बल्कि 'शिक्षा' एक 'पूँजी' भी समझा जाय। किसी भी आधुनिक राष्ट्र की शैक्षिक नीतियों तथा प्रवृत्तियों को—विशेषकर जब वह आर्थिक रूप से अविकसित हो तब कुछ नयी उद्दीपक चुनौतियों के सन्दर्भ में जरूर जाँचा-परखा जाना चाहिए। कहना न होगा कि किसी भी शैक्षिक नीति को 'राष्ट्रवादी' होना अत्यावश्यक है: 'राष्ट्रवादी' इस अर्थ में कि उसके स्वरूप का निर्माण, उस समाज या राष्ट्र-विशेष की वास्तविक और प्रत्याशित माँगों तथा आवश्यकताओं को दृष्टि में रखकर किया जायेगा। समग्र सम्भावनाओं के परिप्रेक्ष्य में देखें तो आज की पीढ़ी के शिक्षकों का उत्तरदायित्व और कठिनाइयाँ अधिक गम्भीर एवं व्यापक हैं। यह बुद्धिजीवियों के सोचने-विचारने की बात है कि भारत की 'राष्ट्रीय एकता' क्या प्रशासनात्मक एकता के अतिरिक्त अन्य अर्थों में आवश्यक नहीं है? आनेवाले वर्षों में हमें किस प्रकार की 'अनेकता में एकता' या 'एकता में अनेकता' प्राप्त करनी है? दिनों-दिन जटिलता बनते जा रहे हमारे सामाजिक जीवन के साथ हमारे विश्वविद्यालयों की संगति का स्वरूप क्या होगा? —ये सब ऐसे विषय हैं जिनपर देश के बुद्धिजीवियों, साहित्यकारों, शिक्षकों, विद्यार्थियों और पुस्तक प्रकाशकों को दृढ़तापूर्वक गम्भीरता से विचार करने की आवश्यकता है। यह कितनी बड़ी विडम्बना है कि स्वतंत्रता के बाद बीस वर्ष बीत जाने के बावजूद आज हम केवल एक विदेशी भाषा का दासवत् अनुशीलन ही नहीं कर रहे हैं बल्कि विदेशियों द्वारा लिखित पाठ्य-पुस्तकों, उनके विचारों, आदर्शों, उनके समझने के तरीकों, उनके खोजे हुए प्रतिरूपों और उन लक्ष्यों को आत्मसात कर रहे हैं! निश्चित ही विचारों के क्षेत्र में ऐसी स्थायी परनिर्भरता बौद्धिक पतन का प्रतीक है। हम सम्भवत: यह भूल गये हैं कि अपने सिद्धान्त अपने ही तथ्यों पर आधारित और विकसित होते हैं। इस परिप्रेक्ष्य में वस्तुत: हमें जिस महत्वाकांक्षा की अपेक्षा रखनी है वह है शैक्षिक और बौद्धिक आत्मनिर्भरता। हमारे विद्यापीठों को सच्चे अर्थों में सृजनात्मक चिन्तन का केन्द्र बनना होगा।

विश्वविद्यालय स्तर पर अब देश की प्रादेशिक भाषाओं को शिक्षा माध्यम बनने की मान्यता मिल गयी है। यह कई-कई कोणों और दृष्टियों से शुभ है। इससे हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दी का भी हित-सम्वर्द्धन होगा। अंग्रेजी भाषा की दासता से हम मुक्त होंगे और देश में ज्ञान का विस्तार शिक्षण-जगत् में नवजागरण से होगा! निस्सन्देह यह बड़ी

पुस्तक लिख या लिखवाकर संस्थान को सहयोग दे सकें तो संस्थान आपका हार्दिक आभारी होगा। यदि भविष्य में इस दिशा में आपकी कोई कार्य-योजना है तो कृपया उसकी भी जानकारी संस्थान को दें।

❒ यदि आप विद्यार्थी हैं: —तो आप से हमारा विशेष अनुरोध है—अपने राष्ट्र के उन्नत भविष्य के लिए आप यह दृढ़तापूर्वक संकल्प करें कि अपना अध्ययन आप अपनी राष्ट्रभाषा तथा अपने देश की भाषा के माध्यम से करेंगे। आपके इस संकल्प की सफलता के लिए हिन्दी प्रचारक संस्थान का पूरा-पूरा सहयोग आपके साथ है। इस दिशा में कठिनाइयाँ हो तो उनके प्रति अपने समाधानों से संस्थान को परिचित करायें।

❒ यदि आप पुस्तक-प्रकाशक हैं: —तो हमारा आप से विनम्र अनुरोध है कि इस नवजागरण की बेला में अपने दायित्व को अवश्य अनुभव करें। यदि आप विश्वविद्यालय स्तर की पाठ्य-पुस्तकें राष्ट्रभाषा हिन्दी या देश की प्रादेशिक भाषाओं में प्रकाशित करना चाहते हैं तो हिंन्दी प्रचारक संस्थान का पूरा सहयोग आपके साथ है। विश्वविद्यालय स्तर की पाठ्य-पुस्तकों की प्रकाशनार्थ पाण्डुलिपियाँ संस्थान आपको उपलब्ध कराने के लिए प्रतिश्रुत है।

❒ यदि आप पुस्तक-विक्रेता हैं:—तो आपका यह कर्त्तव्य है कि आप संस्थान की योजना को पूरा-पूरा सहयोग दें।

❒ यदि आप पुस्तकालयाध्यक्ष हैं:—तो हमारा अनुरोध है कि संस्थान द्वारा संचालित इस योजना को आप हार्दिक सहयोग दें। संस्थान-द्वारा प्रकाशित एवं प्रस्तुत प्रकाशनों को आप कृपया अपने पुस्तकालय में वरीयता के साथ स्थान दें। इस सम्बन्ध में विस्तृत सूचीपत्र के लिए कृपया संस्थान के पते पर सूचित करें।

अन्त में एक बार पुनः आपको हार्दिक मंगल-कामनाओं और सक्रिय सहयोग के लिए आपका विनम्र आह्वान करते हुए हम अपनी इस परिकल्पित नयी यात्रा पर आगे बढ़ते हैं।

❀

नाज़ुक घड़ी है। अब यह अपेक्षित नहीं है कि हम बुद्धिजीवी-साहित्यकार, शिक्षक-विद्यार्थी प्रकाशन ज्ञान के नवजागरण से दूर रहकर केवल पारस्परिक दावेदारी को ही दिखाते रहें। हमें शीघ्रातिशीघ्र अपने दायित्व का बड़ी निष्ठा और दृढ़ता से निर्वाह करना है। विश्वविद्यालय स्तर के तमाम विषयों की पाठ्य-पुस्तकों को हमें अपने देश की भाषाओं में तैयार करके प्रस्तुत करना है। हमारे कहने का आशय है कि हमें न केवल अँग्रेजी वरन् किसी भी अन्य विदेशी भाषा की दासता अब स्वीकार नहीं करनी है। हमें अपनी सीमा और सामर्थ्य का पुनरीक्षण करना है और उसी बल पर अपनी परम्परा, अपने ज्ञान और मौलिक सृजन-चिन्तन को विकसित एवं प्रतिष्ठित करना है। ज्ञान, मौलिक सृजन-चिन्तन के इस विकास एवं प्रतिष्ठापन के सन्दर्भ में नवजागरण के लिए 'हिन्दी प्रचारक संस्थान' आपका सदा आह्वान करता है!

यह एक संयोग है कि हिन्दी प्रचारक संस्थान देश का पहला प्रकाशन प्रतिष्ठान है जिसने यथासमय अपने इस दायित्व का अनुभव किया कि देश में विश्वविद्यालय स्तर के सभी विषयों की मौलिक और अनूदित पाठ्य-पुस्तकें मातृभाषा हिन्दी में कम मूल्य में सहज सुलभ हो सकें। संस्थान की दृष्टि यह भी है कि भले ही व्यावसायिक दृष्टि से कुछ पुस्तकों का हिन्दी प्रस्तुतीकरण कम-लाभकर हो किन्तु वे सहज सुलभ अवश्य हों। साथ ही संस्थान यह भी चाहता है कि देश के पाठकों को सस्ते दामों पर स्तरीय, श्रेष्ठ और उच्चकोटि की सृजनात्मक, मौलिक एवं अनूदित साहित्यिक कृतियाँ भी उपलब्ध हों।

पाठ्य-पुस्तकों के सन्दर्भ में संस्थान ने जिन विषयों की पाठ्य-पुस्तकें प्रकाशित करने की योजना बनायी है, वे विषय इस प्रकार हैं—१. भौतिक शास्त्र, २. रसायन शास्त्र, ३. जीव-विज्ञान, ४. भूगर्भ शास्त्र, ५. भूगोल, ६. खगोल, ७. ज्योतिष, ८. गणित, ९. आयुर्वेद, १०. दर्शन, ११. इतिहास, १२. राजनीति शास्त्र, १३. समाजशास्त्र, १४. अर्थशास्त्र, १५. विधि, १६. शिक्षाशास्त्र, १७. भाषा विज्ञान, १८. धर्मशास्त्र, १९. कृषि, २०. तकनीकी, २१. रस-रसायन, २२. वास्तु कला, २३. स्थापत्य कला, २४. ललित कला, २५. चित्रकला, २६. संगीत, २७. मनोविज्ञान, २८. साहित्य, २९. कोश।

हमारा आपसे विनम्र अंनुरोध है कि संस्थान-द्वारा प्रवर्तित इस योजना यज्ञ को आप अपना सक्रिय और हार्दिक सहयोग दें, ताकि भविष्य में हम और आप अपने सभी लक्ष्यों की पूर्ति कर सकें। यह सफलता किसी एक की नहीं हम सभी की होगी—अवान्तर से भारतीय बुद्धिजीवी वर्ग की यह सफलता होगी।

❒ यदि आप लेखक-साहित्यकार हैं:—तो हमारा मानना है कि आजका सजग साहित्यकार देश की किसी भी गतिविधि के प्रति उदासीन नहीं रह सकता। इसीलिए संस्थान अपनी इस योजना के कार्यान्वयन और सफलता के लिए आपके बहुमूल्य सहयोग की सादर अपेक्षा करता है। आप कृपया अपनी अप्रकाशित एवं सृजनाधीन पुस्तकों की सविवरण सूची संस्थान के पते पर भेजने का अनुग्रह करें।

❒ यदि आप शिक्षक हैं:—तो निस्सन्देह भारतीय ज्ञान-विज्ञान के सन्दर्भ में नवजागरण के आप पुरस्कर्त्ता हैं। हमारा निवेदन है कि विश्वविद्यालय स्तर के उन सभी विषयों से, जिनमें आपकी रुचि है, कृपया हमें अवगत करायें। यदि आप किसी विषय में

पुस्तक लिख या लिखवाकर संस्थान को सहयोग दे सकें तो संस्थान आपका हार्दिक आभारी होगा। यदि भविष्य में इस दिशा में आपकी कोई कार्य-योजना है तो कृपया उसकी भी जानकारी संस्थान को दें।

❒ यदि आप विद्यार्थी हैं: —तो आप से हमारा विशेष अनुरोध है—अपने राष्ट्र के उन्नत भविष्य के लिए आप यह दृढ़तापूर्वक संकल्प करें कि अपना अध्ययन आप अपनी राष्ट्रभाषा तथा अपने देश की भाषा के माध्यम से करेंगे। आपके इस संकल्प की सफलता के लिए हिन्दी प्रचारक संस्थान का पूरा-पूरा सहयोग आपके साथ है। इस दिशा में कठिनाइयाँ हो तो उनके प्रति अपने समाधानों से संस्थान को परिचित करायें।

❒ यदि आप पुस्तक-प्रकाशक हैं: —तो हमारा आप से विनम्र अनुरोध है कि इस नवजागरण की बेला में अपने दायित्व को अवश्य अनुभव करें। यदि आप विश्वविद्यालय स्तर की पाठ्य-पुस्तकें राष्ट्रभाषा हिन्दी या देश की प्रादेशिक भाषाओं में प्रकाशित करना चाहते हैं तो हिंन्दी प्रचारक संस्थान का पूरा सहयोग आपके साथ है। विश्वविद्यालय स्तर की पाठ्य-पुस्तकों की प्रकाशनार्थ पाण्डुलिपियाँ संस्थान आपको उपलब्ध कराने के लिए प्रतिश्रुत है।

❒ यदि आप पुस्तक-विक्रेता हैं:—तो आपका यह कर्त्तव्य है कि आप संस्थान की योजना को पूरा-पूरा सहयोग दें।

❒ यदि आप पुस्तकालयाध्यक्ष हैं:—तो हमारा अनुरोध है कि संस्थान द्वारा संचालित इस योजना को आप हार्दिक सहयोग दें। संस्थान-द्वारा प्रकाशित एवं प्रस्तुत प्रकाशनों को आप कृपया अपने पुस्तकालय में वरीयता के साथ स्थान दें। इस सम्बन्ध में विस्तृत सूचीपत्र के लिए कृपया संस्थान के पते पर सूचित करें।

अन्त में एक बार पुन: आपको हार्दिक मंगल-कामनाओं और सक्रिय सहयोग के लिए आपका विनम्र आह्वान करते हुए हम अपनी इस परिकल्पित नयी यात्रा पर आगे बढ़ते हैं।

❀

पुस्तक के जन्म के बाद

यह प्रश्न किया जा सकता है कि पुस्तक का जन्म कहाँ होता है? उसका जन्म किसके मन में सबसे पहले हुआ—लेखक के या प्रकाशक के? लेखक पाण्डुलिपि के रूप में जो कुछ प्रकाशक के पास लाता है, उसका जन्मदाता भी वह स्वयं होता है। किन्तु उस रचना को अभी पुस्तकाकार रूप में ग्रहण करना है। वैसे पुस्तक का जन्म तो प्रकाशक के मन में होता है। किसी भी रचना को चाहे वह काव्य हो, नाटक हो, उपन्यास हो, कथा हो या किसी भी विषय से सम्बन्धित या अन्य रचना हो, एक पुस्तक का रूप उसे प्रकाशक ही दे सकता है। प्रकाशन की प्रक्रिया में लेखक की भागीदारी तो है, किन्तु उसकी समग्र जवाबदेही प्रकाशक के ऊपर ही होती है। वह लेखक के साथ किसी पुस्तक को लिखने का अनुबंध करता है और मुद्रक के साथ उसे छापने का। प्रकाशक का काम पुस्तक को लिखवाने और छपवाने के साथ समाप्त नहीं होता, बल्कि एक प्रकार से प्रारम्भ होता है।

प्रकाशन कार्य पुस्तक को प्रकाशित करने या उसे प्रकाश में लाने का है। कोई पुस्तक लेखक के पास पाण्डुलिपि के रूप में या मुद्रक के पास मुद्रित रूप में अप्रकाशित ही है, अर्थात् अंधकार में होती है। उसे अभी प्रकाशित किया जाना है। यहीं आकर प्रकाशक की योग्यता, कुशलता, दूरदर्शिता आदि की परीक्षा होती है। यदि पुस्तक अच्छी लिखी हुई है, तो उसका श्रेय लेखक को जाना चाहिए। यदि वह सुमुद्रित है तो पुस्तक के सम्पादक, मुद्रक, जिल्दसाज आदि साधुवाद के पात्र हैं, जिन्होंने एक सुन्दर सुरुचिपूर्ण पुस्तक का निर्माण किया। वह पुस्तक अभी पाठकों तक पहुँचनी है। वह कैसे और कितने पाठकों तक पहुँच पाती है? प्रत्येक पुस्तक एक नये जन्मे शिशु के समान है, जिसे जीवन में बहुत कुछ करना है। जन्म हुआ, नामकरण भी हो चुका, किन्तु शेष सारे संस्कार अभी तो होने हैं।

नये पाठकों की खोज

प्रकाशक कैसी पुस्तक का प्रकाशन करे, यह समझने के लिए उसे समाज में लोगों की पठन-रुचि का अध्ययन करते रहना होगा। उसे यह जानना होगा कि पाठकों का कौन-सा नया वर्ग ऐसा है, जो प्रयत्न करने पर उसे मिल सकता है। उन नये पाठकों तक पहुँचने के लिए क्या नये तरीके अपनाये जायें। ग्रामीण पाठकों, बाल पाठकों, महिला पाठकों आदि के कई वर्ग अभी ऐसे हैं, जो अछूते तो नहीं हैं, किन्तु उनमें अभी पठन-रुचि और पुस्तकमनस्कता का पूरी तरह विकास नहीं हुआ है और उनकी माँग कितनी है

इसका पूरा अनुमान नहीं लग सका है। जैसे हम छात्रों के लिए पाठ्य-पुस्तकों एवं अन्य छात्रोपयोगी साहित्य को, प्रकाशन का एक पृथक और विशिष्ट प्रकार मानते हैं, वैसे ही हमें बाल-साहित्य, महिला-साहित्य, नवसाक्षर-साहित्य, तकनीकी-साहित्य आदि को भी पृथक् एवं विशिष्ट विधा मानकर चलना होगा।

प्रायः सुनने में आता है कि भारतीय भाषाओं का प्रकाशन-व्यवसाय ओछी पूँजी पर आधारित है। इस ओछी पूँजी में जो अनिवार्य देनदारियाँ हैं, जैसे—लेखक की रायल्टी, मुद्रक का बिल, कागज का मूल्य आदि। जब ये बातें ही समय से नहीं निभ पातीं, तो विज्ञापन और नये बाजारों की खोज के लिए पूँजी कहाँ से आयेगी? यह प्रश्न उठाया तो जा सकता है, किन्तु उत्तर भी प्रश्न में ही छिपा है। जैसी अनिवार्यता कागज, छपाई, लेखकीय रायल्टी आदि की देनदारियों की है, वैसी ही अनिवार्यता प्रकाशक अपने मन में विज्ञापन और प्रचार-प्रसार के निमित्त होनेवाले व्यय को भी माने। पुस्तकोन्नयन की गतिविधियों में उसे भाग लेना होगा, लोगों में पठन-रुचि और पुस्तक-मनस्कता जगानी होगी और जब कोई प्रकाशक वर्ग ऐसे पुस्तकीय गतिविधियों में भाग लेने का संकल्प लेकर खड़ा होगा, तो उसे पता चलेगा कि इस कार्य में उसके सहायक और मार्ग-दर्शक कई हैं तथा आगे का मार्ग प्रशस्त है। पुस्तक-प्रकाशकों के अपने तीन अखिल भारतीय संगठन हैं, जो प्रायः ऐसे कार्यक्रम बनाते रहते हैं। भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय द्वारा गठित एक स्वायत्त संस्थान है, नेशनल बुक ट्रस्ट, जो पुस्तकोन्नयन का प्रयास करता रहता है। वह प्रकाशक संगठनों की सहायता से भारत में क्षेत्रीय, राष्ट्रीय और विश्व स्तर के पुस्तक मेलों को आयोजित करता है और अंतर्राष्ट्रीय पुस्तक-मेलों में भाग लेता है।

समाज पठनशील बने

जैसा प्रारम्भ में भी कहा गया कि प्रकाशक-वर्ग का एक बहुत बड़ा सामाजिक और सांस्कृतिक दायित्व है, क्योंकि पुस्तकें अन्य किसी उपभोक्ता वस्तु से इस अर्थ में भिन्न हैं कि अन्य वस्तुएँ जहाँ हमारी दैहिक और भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करती है, वहाँ पुस्तकें हमें भावना, ज्ञान और दर्शन के अतीन्द्रिय अंतरिक्षों की यात्रा कराते हुए हमारी सांस्कृतिक, शैक्षिक और आध्यात्मिक पिपासा को जहाँ एक ओर शान्त करती है, तो दूसरी ओर उसे और तीव्र भी कर देती हैं। इसलिए समाज को पठनशील बनाने में शिक्षा मंत्रालय के साथ प्रकाशकों को भी अपनी भागीदारी का निर्वाह करना है। पुस्तकों को पाठकों की खोज में पत्र-पत्रिकाओं से भी आगे बढ़कर अपना सापेक्ष्य महत्त्व सिद्ध करना है। जो पाठक अनिवार्यतः प्रतिदिन समाचारपत्र पढ़ते हैं, अपने कार्यालयों में बैठकर पत्रावलियाँ पढ़ते हैं, उन्हें पुस्तकें साहचर्य, मित्र, दार्शनिक और पथ-प्रदर्शक जैसी लगेंगी। पुस्तकों में कहीं बातें कांतासम्मत उपदेश जैसी मीठी लगेंगी। किन्तु क्या हम इन सब लोगों तक पुस्तकों को पहुँचा सके हैं? संसार में इस समय एक मिनट से भी कम समय में एक नई पुस्तक आ रही है, भारत में स्थिति क्या है? क्या इतनी पुस्तकें हैं, जितनी चाहिए, और क्या उपलब्ध पुस्तकों को पाठक आसानी से प्राप्त हो जाते हैं?

ऊपर दिये हुए कुछ प्रश्न जिन रिक्तताओं की ओर संकेत कर रहे हैं, प्रत्येक नये प्रकाशक को अन्य प्रकाशकों के सहयोग से उन्हें भरना है। पूँजी की कमी को सहकारी प्रयासों से एक सीमा तक दूर किया जा सकता है। जो काम एक जने के लिए बोझ है, वह दस-पाँच के सामने बोझ नहीं रहेगा। पुस्तकों की निकासी के लिए नये केन्द्र बनाये जा सकते हैं। पुस्तकों को हमें गाँवों तक भी पहुँचाना है और उन पर से शहरी एकाधिकार को तोड़ना है। पुस्तक कोई विलास की वस्तु न होकर हमारी एक मौलिक आवश्यकता है। मिशनरी भावना से काम करने के लिए विद्यादान के महादान से बढ़कर दूसरा दान और होगा भी कौन सा? हमने अभी भारत में पुस्तक प्रकाशन के इतिहास की एक झलक पहले ही दी है। यह इतिहास ऐसे प्रकाशकों और मुद्रकों के कारनामों से बना है, जिनके प्रकाशनों और छापेखानों को विदेशी सरकार ने जब्त कर लिया था। हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं का वर्तमान स्वरूप राष्ट्रीयता के आन्दोलन के दिनों में गढ़ा गया था।

प्रकाशक सम्मेलन क्यों ?

हिन्दी पुस्तक व्यवसायियों तथा प्रकाशकों के हित संरक्षण एवं उनकी समस्याओं के समाधान के लिए एक संघ की नितान्त आवश्यकता महसूस की जा रही थी। इस आवश्यकता की गुरुता सन् १९५४ में अपने चरमोत्कर्ष पर आई और अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ की स्थापना के लिए प्रतिनिधि प्रकाशकों का सम्मेलन १ एवं २ मई को दिल्ली में आहूत किया गया। इस सम्मेलन के संयोजक पं० वाचस्पति पाठक थे। उन्होंने आयोजित सम्मेलन के उद्देश्यों पर प्रकाश डालते हुए कहा कि प्रकाशन व्यवसाय का इतिहास पिछले एक अर्द्ध-शताब्दी का इतिहास है। यह युग आधुनिक हिन्दी साहित्य के अभ्युदय से जुड़ा हुआ है। साहित्य के विकास के साथ-साथ प्रकाशकों की जिम्मेदारी और उनकी समस्याएँ भी बढ़ रही हैं। यह वह मूल कारण है जिससे प्रभावित होकर इस संघ की स्थापना की जा रही है।

प्रकाशक संघ के इस प्रथम सम्मेलन के अभ्यागतों के स्वागतार्थ जो १४ प्रकाशकों की समिति बनी, उसके प्रधान आत्माराम एण्ड सन्स के संचालक रामलाल पुरी चुने गए तथा हिन्दी एकेडेमी प्रयाग के साहित्य मंत्री रामचन्द्र टण्डन इसके संयोजक मनोनीत किये गये। उन्होंने अपने महत्वपूर्ण भाषण में कहा कि हिन्दी प्रकाशकवर्ग का एक प्रभावशाली तपका साहित्य सेवा के प्रति जागरूक है और उच्चकोटि के साहित्य प्रकाशन से हिन्दी भण्डार को सम्पन्न करने का आकांक्षी है, किन्तु मेरे सामने अनेक समस्याएँ हैं। हिन्दी प्रकाशक पुस्तक उत्पादन में टेक्निकल दृष्टि से अभी पाश्चात्य जगत् से बहुत पिछड़ा है। पश्चिम की यांत्रिकता का प्रभाव अभी हमारे पुस्तक उत्पादन में जैसा पड़ना चाहिए वैसा नहीं पड़ा। वितरण व्यवस्था भी संगठित नहीं है। प्रकाशक और लेखक के बीच जैसा सम्बन्ध अपेक्षित है वैसा आज नहीं है। इन सभी सन्दर्भों में यह अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ जन्म ले रहा है। इन महत्वपूर्ण उद्देश्यों में निश्चित ही संघ को सफलता मिलेगी।

टण्डनजी की भविष्यवाणी सत्य निकली कि अपने जन्म-समय से यह संघ प्रकाशकों के हित के लिए संगठित हो जायेगा। २४ फरवरी १९५५ को राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की अध्यक्षता में एक शिष्टमण्डल तत्कालीन प्रधानमंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू से मिला और उन्हें एक प्रतिवेदन भी दिया, जिसमें डाक दरों की वृद्धि और रेलभाड़े की कमी की ओर विशेष ध्यान आकृष्ट किया गया। उन्होंने शिष्ट मंडल की बातों को ध्यान से सुना और कहा कि हिन्दी में अच्छी पुस्तकें नहीं छप रही हैं। साथ ही हिन्दीवालों में पुस्तकें पढ़ने का रिवाज भी नहीं है। शिष्टमण्डल ने उनसे आमलोगों में पठनरुचि विकसित करने के लिए सरकार की ओर से पहल करने का अनुरोध किया।

इस शिष्टमण्डल में जैनेन्द्र, राजेश्वरप्रसादनारायण सिंह, बनारसीदास चतुर्वेदी, आर० के० मालवीय, अमरनाथ विद्यालंकार, देवीदत्त पन्त, मार्तण्ड उपाध्याय आदि के नाम उल्लेख्य हैं। २८ फरवरी, १९५५ को अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ का एक शिष्टमण्डल तत्कालीन शिक्षामंत्री मौलाना अबुलकलाम आजाद से भी मिला। इसका नेतृत्व प्रकाशक संघ के अध्यक्ष रामचन्द्र टण्डन ने किया। इस शिष्टमण्डल ने नेहरूजी के सम्मुख प्रस्तुत किए गए आवेदन पत्र में दो विशेष बातें थीं:

१. प्रकाशन व्यवसाय की जाँच-पड़ताल करने के लिए एक सार्वजनिक कमीशन की माँग।

२. केन्द्र व राज्य सरकारों द्वारा पुस्तक विक्रेताओं से टेण्डर न माँगने का अनुरोध।

इस शिष्टमण्डल ने जोर देकर कहा कि टेण्डर प्रथा द्वारा घटिया किस्म की किताबों को ही सरकारी प्रश्रय मिलता है। मौलाना आजाद हमारे शिष्टमण्डल के तर्कों से बहुत प्रभावित थे। इस शिष्टमण्डल में उल्लेखनीय व्यक्ति थे यशपाल जैन, वाचस्पति पाठक, रामलाल पुरी, दीनानाथ मल्होत्रा, ओमप्रकाश तथा देवराज आदि।

संघ का तीसरा शिष्टमण्डल रामचन्द्र टण्डन के नेतृत्व में रेल मंत्री लालबहादुर शास्त्री से मिला और उन्हें एक ज्ञापन दिया।

ज्ञापन में दिए सुझावों का सार निम्न था:

१. जहाँ तक डाक दरों का सम्बन्ध है—

(क) पुस्तक पैकटों पर डाक दरें कम की जायँ। १ मई, १९५३ के पहले जो डाक दरें थीं, कम से कम उस स्तर पर इन्हें ले आया जाय।

(ख) रजिस्ट्री बिना वी० पी० की व्यवस्था को पुन: लागू किया जाय और रजिस्ट्रेशन को अनिवार्य रखा जाय।

(ग) वी० पी० सरचार्ज को समाप्त किया जाय।

(घ) जैसा कि दूसरे देशों में होता है, थैलों में डाक भेजने की व्यवस्था उन पुस्तकों के लिए लागू की जाय जो देश के अन्दर ही भेजी जाती हैं। यह व्यवस्था ब्रिटेन की व्यवस्था से मिलती-जुलती हो।

२. सारे देश में पुस्तकों पर लिया जानेवाला बिक्री कर समाप्त किया जाय।

३. पुस्तकों को विशेष वस्तु समझा जाय और उन्हें भेजने पर रियायती रेलभाड़ा लिया जाय।

४. अनिष्टकारी विदेशी साहित्य पर प्रतिबन्ध हो।

५. केन्द्र एवं राज्य सरकारों द्वारा खरीदी जानेवाली पुस्तकें टेण्डर व्यवस्था द्वारा न खरीदी जायँ, खरीद पूरे वर्ष हो और इन खरीदों का आधार साहित्य अकादमी द्वारा तैयार की गई विशेष सूचियाँ हों।

६. प्रकाशन उद्योग की वर्तमान दशा पर विचार करने के लिए एक लोक आयोग नियुक्त हो, जो इसके विकास के लिए उपयुक्त सिफारिशें पेश करे।

इस प्रकार संघ अपने जन्म के साथ ही हिन्दी व्यवसाय के हितरक्षण के लिए प्रयत्नशील हो गया। फिर भी कुछ लोगों को ऐसा अनुभव हुआ कि हम छोटे प्रकाशक हैं और हमारी अनदेखी कर दी गयी। उनका कहना था कि उक्त सम्मेलन में हिन्दी के मात्र ३९ प्रकाशकों ने ही भाग लिया, अतएव अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ हिन्दी प्रकाशकों का प्रतिनिधित्व करने में पूर्ण सक्षम नहीं है।

यद्यपि स्वागताध्यक्ष पं० वाचस्पति पाठक ने अपनी सामर्थ्य एवं सीमाओं का उल्लेख करते हुए बड़ी ईमानदारी से यह स्वीकार किया कि उक्त सम्मेलन जल्दी में बुलाया गया था इसलिए भूल होना स्वाभाविक है। फिर भी असहमत लोगों की मुद्रा में परिवर्तन नहीं आया और उन लोगों ने हिन्दी प्रकाशकों का एक अलग संगठन बनाने का निर्णय किया। फलत: अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा प्रकाशक सम्मेलन का जन्म हुआ।

अ० भा० राष्ट्रभाषा प्रकाशक सम्मेलन

८ अप्रैल, १९५५ को असन्तुष्ट प्रकाशकों ने अ० भा० राष्ट्रभाषा प्रकाशक सम्मेलन के नाम से वाराणसी स्थित टाउनहाल में अपना प्रथम अधिवेशन किया। इस सम्मेलन का प्रारम्भ निम्नलिखित उद्देश्यों को स्थापित करने के लिए किया गया:

(क) राष्ट्रभाषा में प्रकाशित साहित्य का देश-विदेश में प्रचार करना तथा पुस्तक व्यवसायियों के अधिकारों और हितों की रक्षा करना।

(ख) प्रकाशन व्यवसाय की उन्नति के लिए सभी उचित और आवश्यक उपाय करना और उनसे समस्त प्रकाशकों को लाभान्वित करना।

(ग) हिन्दी के प्रकाशन स्तर को उन्नत करना।

(घ) पुस्तकों के प्रचार तथा पठन-पाठन के प्रति लोगों में अभिरुचि उत्पन्न करना।

(ङ) उक्त सभी उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सुलभ और स्वस्थ प्रकाशन करना। स्थान-स्थान पर पुस्तकालय स्थापित करना, विभिन्न विषयों पर श्रेष्ठ लेखन के लिए पुरस्कार देना। प्रदर्शनी एवं मेलों आदि की व्यवस्था करना, ग्राहकों के पत्रों के प्रकाशन एवं उनके अन्तिम सन्तोष की व्यवस्था करना।

(च) ग्राहकों के प्रति शुद्धता, न्याय एवं मर्यादापूर्ण व्यवहार करना।

इस सम्मेलन में २९ प्रकाशकों की समिति गठित हुई। इन्द्रचन्द्र नारंग—सभापति, रामलाल पुरी—कार्यकारी अध्यक्ष, राजाबाबू, विश्वनाथ शर्मा, कृष्णगोपाल केड़िया—उपसभापति, कृष्णचन्द्र बेरी—प्रधानमंत्री, गणेश पाण्डेय—प्रबन्धमंत्री, तरुण भाई—संगठनमंत्री, सवाईमल जैन—अर्थमंत्री, सुधाकर पाण्डेय—प्रचारमंत्री, परमानन्द पोद्दार, हरिहरनाथ अग्रवाल, वीरेन्द्रकुमार सिंह—संयुक्तमंत्री निर्वाचित हुए। इसके अलावा १२ व्यक्ति कार्यकारिणी के सदस्य निर्वाचित घोषित किये गये।

नागरी प्रचारिणी सभा के प्रधानमंत्री डॉ० राजबली पाण्डेय ने सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए कहा कि किसी भी तरह से प्रकाशक समाज की एकता कायम रखी जाय। उन्होंने आशा व्यक्त की कि यह सम्मेलन पथ प्रदर्शन का काम करेगा। आगत प्रतिनिधियों का स्वागत करते हुए स्वागताध्यक्ष बाबू रामचन्द्र वर्मा ने प्रकाशकों की समस्याओं पर विस्तृत रूप से प्रकाश डाला। अपने भाषण में उन्होंने कई प्रस्ताव रखे, जिन्हें अनुमोदन पर स्वीकृत किया गया। इसके बाद हिन्दी भवन, इलाहाबाद, के अध्यक्ष इन्द्रचन्द्र नारंग का भाषण बड़ा प्रभावोत्पादक रहा। उन्होंने प्रकाशकों को सतर्क रहने की चेतावनी दी। इस सम्मेलन में पं० किशोरीदास वाजपेयी, पं० सीताराम चतुर्वेदी, डॉ० जगन्नाथप्रसाद शर्मा, तरुणभाई आदि ने विचार व्यक्त किए। इस अवसर पर काशी की ५१ प्रकाशन संस्थाओं की लगभग ३००० पुस्तकों की एक बृहद् प्रदर्शनी भी लगायी गयी।

अखिल भा० राष्ट्रभाषा प्रकाशक सम्मेलन की कार्यकारिणी की प्रथम बैठक इन्द्रचन्द्र नारंग के सभापतित्व में इलाहाबाद में ८ मई १९५५ को हुई। इस अवसर पर प्रधानमंत्री ने गत माह से किए गए कार्यों का पूर्ण विवरण उपस्थित किया। इसमें दुलारेलाल भार्गव को यह अधिकार दिया गया कि संघ का एक कार्यालय दिल्ली में खोलने की व्यवस्था करें। प्रेमनारायण भार्गव को अधिकार दिया गया कि वे लखनऊ में उत्तर प्रदेश प्रकाशक संघ के परामर्श से सम्मेलन का कार्यालय खोलें। अन्तिम प्रस्ताव में कहा गया कि पुस्तकों के राष्ट्रीयकरण के विरुद्ध देश भर में जोरदार आन्दोलन चलाया जाय और ९ अगस्त को एक प्रदर्शन आयोजित किया जाय। इस अवसर पर रामचन्द्र वर्मा ने अपने भाषण में कहा कि लेखक प्रकाशक दोनों की कठिनाइयों का मुझे अनुभव है। वर्माजी ने प्रकाशकों और लेखकों से अनुरोध किया कि वे ईमानदारी से सेवा करें। पं० भगवानदास अवस्थी ने समिति के सदस्यों का स्वागत करते हुए अ० भा० राष्ट्रभाषा प्रकाशक सम्मेलन को प्रकाशक समाज का वास्तविक प्रतिनिधि घोषित किया। सम्मेलन के कार्यकर्ताओं को सम्बोधित करते हुए अवस्थीजी ने कहा कि आपको अपने आचरणों से प्रकाशक समाज में सम्मेलन के प्रति विश्वास और आस्था स्थापित करना है। इस बैठक में यह भी अनुभव किया गया कि प्रकाशन के क्षेत्र में निराशा और बेकारी फैल रही है। प्रकाशकों को इस बात की बड़ी चिन्ता हो रही है कि पाठ्य-पुस्तकों के राष्ट्रीयकरण की जो रूपरेखा सरकार ने रखी है, वह श्रेष्ठ साहित्य के सृजन और प्रकाशन में उपयोगी नहीं हो सकती है तथा इससे जनता को भी लाभ नहीं पहुँच सकता। सभा का मत था कि सरकार प्रकाशन के राष्ट्रीयकरण के बजाय, जिस प्रकार अच्छे लेखकों को प्रतिवर्ष उनके श्रेष्ठ लेखन के लिए पुरस्कार देती है, उसी प्रकार अच्छे प्रकाशन के लिए प्रकाशकों को भी पुरस्कार वं प्रोत्साहन दे, जिससे प्रकाशकों में प्रतिस्पर्धा की भावना जागृत हो।

अक्टूबर १९५५ में अ० भा० राष्ट्रभाषा प्रकाशक सम्मेलन के पदाधिकारियों को यह ज्ञात हुआ कि अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ के कुछ प्रमुख कार्यकर्त्ता और सम्मेलन के प्रभावशाली व्यक्ति दोनों संस्थाओं के एकीकरण के लिए उच्चस्तरीय वार्ता कर रहे हैं। निकट भविष्य में दोनों संस्थाओं के कार्यसमिति की बैठक प्रयाग में होनेवाली है। इसमें

दोनों संस्थाओं के एकीकरण की वार्ता होगी। इसमें प्रमुख रूप से निम्नलिखित समस्याएँ रखी जाएँगी:

(क) अभी तक दोनों संस्थाओं के जितने सदस्य हैं उनसे प्रवेश शुल्क न लिया जाय और इन दोनों संगठनों के सदस्य एकीकृत संस्था के सदस्य स्वत: बन जायें। संस्था का नाम अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ होगा।

(ख) संघ के सदस्य तीन प्रकार के होंगे, जिनका सदस्यता शुल्क क्रमश: ५ रु०, ११ रु० और २४ रु० होगा। २४ रु० वाले सदस्य सक्रिय सदस्य माने जायेंगे। नये सदस्यों से २५ रु० प्रवेश शुल्क लिया जायेगा।

(ग) संयुक्त अधिवेशन में संस्तुत प्रस्ताव दोनों संस्थाओं के सदस्यों को मान्य होंगे। तत्पश्चात् जो लोग सदस्य बन जायेंगे, वे आगामी वर्ष के लिए चुनाव में भाग ले सकेंगे।

(घ) इस सम्बन्ध में दोनों संगठनों के प्रमुख प्रतिनिधियों के बीच प्रयाग तथा वाराणसी में जो वार्ताएँ हो रही हैं उन्हें अधिवेशन में मान्यता प्रदान करने के लिए प्रस्तुत किया जाएगा।

(ङ) सभी प्रान्तीय संगठन अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ को पंजीकरण शुल्क देकर सम्बद्ध हो सकेंगे। उनका एक-एक प्रतिनिधि कार्यकारिणी समिति में लिया जाएगा।

राष्ट्रभाषा प्रकाशक सम्मेलन के प्रधानमंत्री की ओर से अपील में कहा गया कि प्रकाशन व्यवसाय के हित की दृष्टि से यह आवश्यक है कि हम परस्पर मिलकर देश के हिन्दी प्रकाशन व्यवसाय को समुन्नत बनाने के लिए व्यापक प्रयत्न करें। अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ के प्रधानमंत्री पं० वाचस्पति पाठक ने भी सम्मेलन को सफल बनाने के लिए अपने विचार व्यक्त किये।

तदनुसार नई दिल्ली में २८ एवं २९ अप्रैल, १९५६ को आयोजित प्रकाशक सम्मेलन में अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ तथा अ० भा० राष्ट्रभाषा प्रकाशक सम्मेलन का एकीकरण हुआ।

इस अधिवेशन में पं० देवनारायण द्विवेदी—अध्यक्ष, इन्द्रचन्द्र नारंग, रामलाल पुरी, गणेश पाण्डेय, मार्तण्ड उपाध्याय—उपाध्यक्ष, श्रीराम मेहरा—उपाध्यक्ष, पं० वाचस्पति पाठक—प्रधानमंत्री, ओम प्रकाश, कृष्णचन्द्र बेरी, विश्वनाथ—संयुक्तमंत्री, कन्हैयालाल मलिक—कोषाध्यक्ष और १४ व्यक्ति कार्यकारिणी समिति के सदस्य बनाये गए। दूसरे अधिवेशन में निम्नलिखित प्रस्ताव सर्व सम्मति से स्वीकृत किए गए। अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ का यह अधिवेशन कतिपय राज्य सरकारों द्वारा पाठ्य-पुस्तकों के प्रकाशन तथा विक्रय व्यवसाय के राष्ट्रीयकरण एवं उसके त्वरित कार्यान्वयन को देखते हुए इस निष्कर्ष पर पहुँचा है कि राष्ट्रीयकरण की यह नीति मुद्रण और प्रकाशन क्षेत्र में जबरदस्त बाधक है।

संघ कार्यसमिति के इस निश्चय की सम्पुष्टि करता है कि समीक्षार्थ पत्र-पत्रिकाओं को प्रकाशक अपने प्रकाशनों की मात्र एक प्रति भेजा करें। अधिवेशन पुस्तकालय और

सरकारी पुस्तकों की खरीद में अधिकाधिक कमीशन देने की स्पर्धा को चिन्ता की दृष्टि से देखता है।

केन्द्र एवं राज्य सरकारों से प्रार्थना की गयी है कि प्रकाशकों से सम्बन्धित सभी सूचानाएँ प्रकाशक संघ कार्यालय में भेजे जाने की नियमित व्यवस्था करें। संघ विभिन्न प्रदेशों और केन्द्र सरकार द्वारा लेखकों को पुरस्कृत करने की अभिनन्दनीय नीति का स्वागत करता है, साथ ही प्रादेशिक सरकारों से मांग करता है कि वे केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय की पुरस्कार योजना का अनुसरण करते हुए उत्कृष्ट कृतियों के लेखकों को पुरस्कार देने के अतिरिक्त पुरस्कृत पुस्तकों की कम से कम एक हजार प्रतियाँ खरीद कर सत्साहित्य के प्रकाशन को क्रियात्मक प्रोत्साहन दें।

प्रकाशक संघ का अनुरोध है कि प्रकाशक लेखकों के प्रति अपने व्यवहार को उदार बनाएँ। संघ उन प्रकाशकों की घोर निन्दा करता है जो अधिक बिकनेवाली तथा पाठ्यक्रम की पुस्तकों के अनधिकृत संस्करण छाप लेने के गर्हित व्यापार में लगे हुए हैं।

संघ भारत सरकार से अनुरोध करता है कि भारत के जिन तीन राष्ट्रीय पुस्तकालयों को प्रत्येक नये प्रकाशन की एक-एक प्रति भेजना प्रकाशकों के लिए अनिवार्य कर दिया गया है, उन पर रजिस्ट्री और डाक खर्च माफ हो।

संघ हिन्दीभाषी क्षेत्रों में पुस्तकें पढ़ने, खरीदने की प्रवृत्ति के अभाव को सांस्कृतिक दैन्य के रूप में देखते हुए चिन्तित है और कार्यसमिति को आदेश देता है कि लेखकों और पुस्तक विक्रेताओं के सहयोग से अधिक पुस्तकें पढ़ने के आन्दोलन को प्रगतिशील बनाये।

संघ का यह अधिवेशन विभिन्न सरकारी विभागों द्वारा खरीद के नाम पर पुस्तकों की एकाधिक प्रति विचारार्थ मँगवाने की नीति को अनुचित मानता है और सुझाव देता है कि इस प्रयोजन के लिए एक प्रति से अधिक की माँग न की जाय।

संघ का यह अधिवेशन १ अप्रैल, १९५६ से रजिस्ट्री फीस में २ आने की वृद्धि की उस सीमा तक विरोध करता है, जहाँ तक उसका सम्बन्ध पुस्तकों के पैकेट से है।

संघ का यह अधिवेशन विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा पुस्तकों की बिक्री पर सेलटैक्स लगाने की प्रवृत्ति का विरोध करता है। भारत सरकार पुस्तक को समाज के लिए आवश्यक वस्तु घोषित कर चुकी है और संघ की दृष्टि में उसका यह कर्त्तव्य है कि राज्य सरकारों को पुस्तकों पर बिक्री कर लगाने से रोके और जिन राज्यों ने पहले से बिक्री कर लगा रखा है, उसे हटवाये।

संघ का यह अधिवेशन भारत तथा राज्य सरकारों द्वारा टेण्डर माँग कर पुस्तकों के खरीद को अनुचित समझता है। इस अवसर पर राष्ट्रभाषा प्रकाशक सम्मेलन के प्रधानमंत्री ने अपनी रिपोर्ट में कहा कि सम्मेलन इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि यह अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ दिल्ली, इलाहाबाद और अ० भा० राष्ट्रभाषा प्रकाशक सम्मेलन काशी का यह सम्मिलित अधिवेशन हो रहा है, जिसके लिए दोनों संस्थाओं के अधिकारी तथा संचालक अभिनन्दनीय हैं।

दिल्ली में २७ अप्रैल, १९५६ को पुस्तकों के जैकेट की एक अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी संघ की ओर से की गयी, जिसमें भारत के विभिन्न भाषाओं के प्रकाशकों के अतिरिक्त आस्ट्रेलिया, आस्ट्रिया, ब्रिटेन, चेकोस्लोवाकिया, चीन, डेनमार्क, फ्रांस, हंगरी, नार्वे, पाकिस्तान, पोलैण्ड, यू० एस० ए०, युगोस्लाविया और कनाडा जैसे प्रमुख देशों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया।

अन्तर्राष्ट्रीय प्रकाशक कांग्रेसं : १९५६

इस वर्ष अन्तर्राष्ट्रीय प्रकाशक कांग्रेस में जिसके १८ देश सदस्य है, उसमें भारत भी सम्मिलित हुआ। पहली बार अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ ने उक्त अन्तर्राष्ट्रीय संस्था का सदस्य बनकर विश्व के प्रकाशकीय रंगमंच पर भारत को उसका उचित प्रतिनिधित्व दिलाया। अन्तर्राष्ट्रीय प्रकाशक कांग्रेस का फ्लोरेन्स अधिवेशन कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण था। विशेषत: इसलिए कि इंसमें पहली बार पूरे एशिया का प्रतिनिधित्व अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ द्वारा हुआ। संघ का प्रतिनिधित्व दीनानाथ जी ने किया जो हिन्दी की प्रसिद्ध प्रकाशन संस्था 'राजपाल एण्ड संज' के भागीदार हैं।

आप राजनीति विज्ञान में एम० ए० हैं। कुछ दिनों तक आप डी० ए० वी० कालेज, लाहौर में लेक्चरर थे। जब १९४५ में लाहौर में इण्डियन बुक कं० की स्थापना हुई तब आप मैनेजिंग डायरेक्टर थे। इस संस्था ने अंग्रेजी पुस्तकों के प्रकाशन की एक नई परम्परा स्थापित की थी। भारत के विभाजन के बाद १९४७ में आप अपनी पैतृक संस्था राजपाल एण्ड संस, दिल्ली से जुड़े।

पुस्तक मेला समारोह

३० सितम्बर, १९५६ को पुस्तक मेला समारोह कलकत्ता के टांटिया हाईस्कूल में आयोजित किया गया। इस समारोह के सभापति डॉ० जगन्नाथप्रसाद शर्मा थे। समारोह का उद्घाटन डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी-अध्यक्ष, पश्चिम बंगाल विधान सभा ने किया। आयोजक थे—प्रो० हीरालाल चोपड़ा, दयाराम बेरी, दीनानाथ कश्यप। कृष्णचन्द्र बेरी ने आगतों का अभिनन्दन किया। डॉ० शम्भुनाथ सिंह ने आयोजन की महत्ता पर प्रकाश डाला। इस अवसर पर पं० रामबालक शास्त्री तथा कलकत्ते के अनेक विद्वानों के भाषण हुए।

कार्यसमिति की महत्वपूर्ण बैठक

२२ सितम्बर, १९५७ को राजकमल दिल्ली के कार्यालय में प्रकाशक संघ के कार्यसमिति की एक महत्वपूर्ण बैठक हुई। इसमें गत सम्मेलन की रिपोर्ट ओमप्रकाश जी ने पढ़ी और उसमें स्वीकृत किए गए प्रस्तावों पर विचार किया गया। अधिकतर प्रस्तावों पर कार्य शिथिलता के कारण कार्यवाही नहीं हो सकी थी। पं० वाचस्पति पाठक ने बताया कि अमेरिकी दूतावास से संघ के प्रतिनिधि मण्डल ने सम्पर्क किया और उनसे गेहूँ के

ब्याज के बदले खरीदी जानेवाली पुस्तकों में हिन्दी पुस्तकों के खरीद के लिए प्रार्थना की गई। अमेरिकी दूतावास के एक अधिकारी ने बताया कि यह राशि किस प्रकार खर्च की जाएगी, इसपर अभी कोई निश्चय नहीं हुआ है। लेकिन इसमें हिन्दी पुस्तकों की खरीद के लिए कोई स्थान नहीं है। इसके बाद कमीशन के मसले पर विचार किया गया। वाचस्पति पाठक, दीनानाथ मल्होत्रा, देवनारायण द्विवेदी, मार्तण्ड उपाध्याय ने इस सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट किए। ओमप्रकाश बेरी ने बंगाल के पुस्तक व्यवसाय के सम्बन्ध में अपने विचार बताए। मार्तण्डजी ने सुझाव दिया कि कागज तथा गत्ता आदि के भाव को बढ़ने से रोकने के लिए संघ की ओर से कुछ किया जाना चाहिए। दीनानाथजी ने बताया कि इस सम्बन्ध में भारत सरकार के प्रधानमंत्री, वित्तमंत्री, वाणिज्यमंत्री को पत्र भेजे जा चुके हैं। विश्वनाथजी ने कहा कि प्रकाशक संघ की ओर से हमें सरकार से यह माँग करनी चाहिए कि पुस्तक-प्रकाशन कार्य की सीमाएँ बाँध दे, जिससे प्रकाशकों और सरकार के प्रकाशन कार्यक्रमों का क्षेत्र अलग-अलग रहे।

सन् १९५८ के लिए अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ के अध्यक्ष पं० वाचस्पति पाठक साधारण सभा द्वारा निर्वाचित हुए। उत्तरप्रदेश के तत्कालीन शिक्षामंत्री पं० कमलापति त्रिपाठी ने वाराणसी में इस सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए कहा कि हिन्दी पुस्तकों का व्यवसाय बढ़ाने के लिए सरकार सहयोग करेगी, लेकिन प्रकाशकों को चाहिए कि वह भी सरकार के साथ सहयोग करें। इस अवसर पर १९५७ में हिन्दी में प्रकाशित पुस्तकों की एक प्रदर्शनी लगाई गई। सम्मेलन में भाग लेने के लिए—दिल्ली, आगरा, प्रयाग, मद्रास, कलकत्ता, इन्दौर, जबलपुर, पटना, ग्वालियर, मेरठ, जयपुर आदि से अनेक प्रतिनिधि आये थे। इन दिनों हिन्दी विरोधियों का आन्दोलन पूरे भारत में चल रहा था। इस दृष्टि से यह सम्मेलन बहुत ही महत्वपूर्ण था। इस सम्मेलन में यह विचार किया गया कि अन्तर्राष्ट्रीय प्रकाशक संघ से सम्पर्क स्थापित किया जाय और विदेशों की अच्छी पुस्तकों का अनुवाद हिन्दी में प्रकाशित किया जाय। सम्मेलन में पुस्तकालयों को अधिक कमीशन देने की टेण्डर-प्रथा का विरोध किया गया। निश्चय हुआ कि किसी भी पुस्तकालय को १० प्रतिशत से अधिक टेण्डर न दिया जाय। पैकिंग, मजदूरी, डाक-व्यय, रेलभाड़ा में अतिरिक्त कमीशन दिया जाय। पुस्तकालय तथा पुस्तक विक्रेताओं के भ्रम को दूर करने के लिए पुस्तक विक्रेताओं को पंजीबद्ध किया जाय।

२८ सितम्बर से ५ अक्टूबर, १९५८

हिन्दी पुस्तक जगत की समस्याओं पर एक सेमिनार दीनानाथ मल्होत्रा के संयोजकत्व में दिल्ली में किया गया। इस सेमिनार में प्रकाशन व्यवसाय के संगठन, उसकी रूपरेखा, प्रकाशकों के प्रकाशन स्तर, पाण्डुलिपियों का चुनाव, पुस्तकों का सम्पादन तथा बिक्री विज्ञापन आदि समस्याओं पर विस्तार के साथ विचार किया गया। सेमिनार में कहा गया कि विक्रेताओं की भी एक समस्या है। प्रकाशक यदि फुटकर बिक्री पर कमीशन का प्रतिबन्ध लगा सकें तो निश्चय ही इस व्यवसाय के प्रति विक्रेताओं का आकर्षण बढ़ेगा। प्रकाशक यदि स्वतः अपने प्रकाशनों को न बेचकर विक्रेताओं के द्वारा

बेचें तो माल निकासी की समस्या हल हो सकती है। हिन्दी प्रकाशन व्यवसाय में सबसे जटिल कोई समस्या है तो वह यह कि अच्छे विक्रेताओं की कमी। नये प्रकाशन चाहे कितने अच्छे क्यों न हों, वह बाजार में इसलिए नहीं पहुँच पाते कि पुस्तक-विक्रेता उसके महत्व को ही नहीं समझते। उनकी दृष्टि में साहित्यिक पुस्तकों का बेचना व्यवसाय का महत्वपूर्ण अंग नहीं है। उन्हें पुस्तकें उधार चाहिए और न बिकने की स्थिति में वापसी की शर्त पर वे इन पुस्तकों को ले जाना चाहते हैं। ऐसी स्थिति में प्रकाशकों के सामने दो मार्ग रह जाते हैं। या तो वे पुस्तक विक्रेताओं को पुस्तकें उधार दें और उनके बिकने पर मूल्य लें या न बिकनेवाली पुस्तकें अनिश्चित अवधि के बाद वापस ले लें। ७५ प्रतिशत लेन-देन में प्रकाशक असुरक्षित है। शायद ही २५ प्रतिशत ऐसे विक्रेता हैं जो बिकने पर मूल्य देते हैं।

प्रकाशन व्यवसाय में शिक्षित कार्यकर्त्ताओं का न होना इसकी समृद्धि में बाधक है। हिन्दी प्रकाशन गृहों में शिक्षित कार्यकर्त्ताओं का नितान्त अभाव है। यदि ग्राहक सीधे डाक से पुस्तकें मँगाना चाहें तो वे अधिक पोस्टेज व्यय के कारण पुस्तकें नहीं मँगाते, क्योंकि १ रु० की पुस्तक के लिए उससे भी अधिक डाक व्यय देना पड़ता है। हिन्दी प्रकाशन व्यवसाय में लेखकों और प्रकाशकों में मधुर सम्बन्ध का होना आवश्यक है। बहुत से ऐसे लेखक हैं जो प्रकाशक बन गए हैं, इससे उन्हें भी कठिनाई का सामना करना पड़ रहा है। प्रकाशकों को अच्छे लेखकों से हाथ धोना पड़ रहा है। पुस्तकों की बिक्री पर सेलटैक्स से बहुत बड़ी बाधा पहुँच रही है। केन्द्र सरकार ने पुस्तक व्यवसाय पर सेलटैक्स न लगाने के औचित्य को तो स्वीकार किया है, किन्तु कुछ प्रान्तीय सरकारों के द्वारा सेलटैक्स लेने के कारण हमारे व्यवसाय में बाधा हो रही है। इसका परिहार अभीष्ट है। कागज के अभाव में कागज के व्यापारी कलमुखी (ब्लैक) व्यापार पर उतर आए हैं, फलत: स्वस्थ साहित्य सस्ते मूल्य पर जनता के लिए सुलभ करना सम्भव नहीं हो रहा है। प्रकाशकों के लिए ऐसी कोई संस्था नहीं है जो उन्हें मौलिक और अनूदित पाण्डुलिपियों के चयन में सहायता दे। अत: हिन्दी के प्रकाशक देश के पाठकों को हिन्दी-पुस्तकों की ओर आकृष्ट करें इसलिये अनूदित साहित्य छपना चाहिये।

इस अवसर पर संघ के प्रधानमंत्री दीनानाथ मल्होत्रा ने कहा कि कागज का अभाव निरन्तर बढ़ता जा रहा है। आज से १ वर्ष पहले कागज का भाव ६५ पै० प्रति पौण्ड था और आज ११० पै० प्रति पौण्ड में भी कागज आसानी से प्राप्त नहीं है। हमारे देश में कागज की खपत दिनो-दिन बढ़ती जा रही है और कागज का उत्पादन अपेक्षाकृत कम हो रहा है। कागज का ब्लैक मार्केट शुरु हो चुका है। इसके लिए कोई रोकथाम नहीं है। कागज के मिल मालिकों और व्यापारियों की इस मुनाफाखोरी के कारण बच्चों के लिए टेक्स्टबुक दिनो-दिन मँहगी होती जा रही है। संघ द्वारा कुछ व्यावहारिक सुझाव बताये गए। जैसे—सरकार शीघ्र एक उच्च समिति नियुक्त कर कागज के बढ़ते हुए मिल रेट, कागज के डिस्ट्रीब्यूशन और व्यापारियों के अनुचित लाभ की जाँच-पड़ताल करें। टैरिफ-बोर्ड द्वारा इस सम्बन्ध में जो जाँच हो रही है, वह तभी प्रभावी होगी, जब उचित मूल्य पर कागज मिले।

हम सरकार से आग्रह करेंगे कि राष्ट्रीयकरण के अन्तर्गत वे केवल उन विषयों पर ही पुस्तकें प्रकाशित करें, जिन्हें साधारणतया प्रकाशक आर्थिक तथा अन्य कारणों से प्रकाशित नहीं कर पा रहे हैं। पुस्तकों की खरीद में कमीशन के सम्बन्ध में टेण्डर माँगने की प्रथा को प्रधानता देना गलत है, फिर भी आज तक यह प्रथा चली आ रही है। उत्कृष्ट प्रकाशनों पर प्रकाशकों के लिए नगद पुरस्कार देने की सरकार की ओर से परम्परा स्थापित होनी चाहिए। इस अवसर पर सदानन्द भटकल, प्रकाशवती पाल, जगदीश अग्रवाल, भगत सिंह, राजकिशोर अग्रवाल, इन्दुरकर, दुलाल गुहा, रामतीर्थ भाटिया, मोहन पंजवानी, प्रो० रामसेवक सिंह, विश्वमित्र, रघुनाथ, सुरेन्द्र, घूमिमल, योगेन्द्र, गन्धर्वराज सहगल, श्रीपति दुबे, श्रीनिवास, श्रीराम मेहरा, भानुचन्द गुप्त, पीताम्बर रस्तोगी, सूर्यबली सिंह आदि ने अपने विचार व्यक्त किए।

२९ सितम्बर को वक्ताओं ने विभिन्न विषयों पर पेपर पढ़े। देवराजजी ने प्रकाशकों के कार्यक्षेत्र और पाण्डुलिपियों का चुनाव विषय पर पेपर पढ़ा। दिल्ली विश्वविद्यालय के डॉ० नगेन्द्र इस गोष्ठी के सभापति थे। दूसरी वार्ता युगान्तर प्रकाशन प्रा० लि० के डॉ० प्रो० बालकृष्ण की हुई—विषय था पुस्तकों का सम्पादन, मुद्रण तथा रूप-सज्जा। सस्ता साहित्य मण्डल के मार्तण्ड उपाध्याय इस बैठक के सभापति थे। तीसरी बैठक में प्रकाशकों व पुस्तक विक्रेताओं के सम्बन्ध पर सदानन्द गणेश भटकल ने अपना व्याख्यान दिया। इस बैठक के सभापति श्रीराम मेहरा थे।

३० सितम्बर की पहली बैठक में प्रकाशनगृह की आन्तरिक व्यवस्था पर रामलाल पुरी ने भाषण दिया। सभापति थीं श्रीमती प्रकाशवती पाल। दूसरी बैठक में सरदार सोहन सिंह ने बाल साहित्य सृजन पर भाषण दिया। सभापति थे पी० एन० कृपाल, सेक्रेटरी शिक्षा मंत्रालय। तीसरी बैठक के सभापति राज्यसभा के सदस्य बनारसीदास चतुर्वेदी थे और मुख्य वक्ता थे कुलभूषण। १ अक्टूबर को दीनानाथ मल्होत्रा ने प्रकाशन कार्य, आर्थिक लेखाजोखा विषयक वार्ता पेश की, सभापति थे आचार्य चतुरसेन शास्त्री। चौथी बैठक के वक्ता थे कविराज हरनामदास, सभापति थे यू० एस० मोहनराव, विषय था—पुस्तकों का विज्ञापन।

२ अक्टूबर को हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी के संचालक इस गोष्ठी के प्रथम वक्ता थे। सभापति थे देवनारायण द्विवेदी, विषय था—प्रकाशन व्यवसाय का संगठन और उसकी रूपरेखा। दूसरी वार्ता कापीराइट और उनकी समस्याओं पर थी, वक्ता थे—बी० एन० लोकुर जो उस समय कानून मंत्रालय में सचिव थे। तीसरी और अन्तिम वार्ता लेखकों और प्रकाशकों के सम्बन्धों पर थी, वक्ता थे—रामचन्द्र टंडन। अन्तिम बैठक के अध्यक्ष राज्यसभा के सदस्य राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर थे।

३ अक्टूबर के वार्ता का विषय था अमेरिका में पुस्तक प्रकाशन, वक्ता थे—सूचना विभाग के टी० आर० जैकब, सभापति थे—दिल्ली राज्य पुस्तक विक्रेता संघ के अध्यक्ष एस० एच० प्रियलानी। सेमिनार में सम्मिलित होनेवाले सभी प्रकाशकों को शिक्षा-मंत्रालय ने अपने यहाँ आमंत्रित किया था।

४ अक्टूबर की पहली बैठक 'प्रकाशन समाचार' के सम्पादक ओंप्रकाश की वार्ता से प्रारम्भ हुई, सभापति थे—डा० बी० एस० पुरी, विषय था-पुस्तक विक्रय और थोक वितरण। गोष्ठी की दूसरी बैठक में भाग लेने वालों को अपना दृष्टिकोण उपस्थित करने के लिए अवसर दिया गया। इस गोष्ठी में लेखक, प्रकाशक, पुस्तक विक्रेता, मुद्रक और पुस्तकालयाध्यक्ष के रूप में क्रमशः चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, श्रीनिवास अग्रवाल, कृष्णचन्द्र बेरी, रामसिंह रावल, एम० एम० एल० टंडन आदि मंच पर उपस्थित थे। इन सभी लोगों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से विभिन्न समस्याओं पर विचार-विमर्श किया। तीसरी बैठक में सौभाग्यमलजी जैन ने गोष्ठी के निर्णयों पर एक प्रस्ताव वक्तव्य के रूप में रखा, जिसका सभी प्रतिनिधियों ने समर्थन किया।

संघ का चौथा अधिवेशन

अ० भा० प्रकाशक संघ का चतुर्थ अधिवेशन २३ दिसम्बर १९५८ प्रातःकाल साढ़े दस बजे आगरा विश्वविद्यालय के सीनेट हाल में पं० वाचस्पति पाठक के सभापतित्व में आरम्भ हुआ। उपस्थित लोगों का स्वागत करते हुए स्वागताध्यक्ष जगदीशप्रसाद अग्रवाल ने पुस्तक व्यवसायियों की आवश्यकताओं पर प्रकाश डाला। संघ के प्रधानमंत्री दीनानाथ मल्होत्रा ने वार्षिक कार्य विवरण उपस्थित करते हुए इस बात की माँग की कि प्रकाशकों की सहायता के लिये एक फाइनेंस निगम की स्थापना की जाय। तत्पश्चात् तत्कालीन केन्द्रीय सूचना तथा प्रसारण मंत्री डा० बी० वी० केसकर ने अधिवेशन का उद्घाटन करते हुए कहा कि हिन्दी प्रकाशकों का संगठन युगधर्म के अनुसार है, क्योंकि आज की दुनिया में संगठन और संघ का जोर है। हिन्दी के प्रकाशकों का क्षेत्र विशाल और भविष्य उज्ज्वल है। हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा होने के साथ-साथ लगभग ४८ प्रतिशत भारतीयों द्वारा बोली जाती है, इस कारण हिन्दी और इसके सेवकों पर विशेष जिम्मेदारी आ पड़ी है। श्री दीनानाथ ने कहा कि सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य जो संघ ने पिछले वर्ष किया, वह प्रकाशन और पुस्तक व्यवसाय सेमिनार का आयोजन था। इसमें भारत के ६५ प्रकाशकों ने भाग लिया, जिसमें हिन्दी तथा भारतीय भाषाओं के प्रकाशक भी थे। इस सेमिनार का उद्घाटन भारत सरकार के तत्कालीन शिक्षामंत्री कालूलाल श्रीमाली ने किया। शिक्षा-मंत्रालय के अधिकारियों ने इसके आयोजन में सक्रिय सहयोग दिया तथा यूनेस्को के अधिकारी इसमें काफी दिलचस्पी लेते रहे।

संघ ने इस वर्ष भारत सरकार के सम्मुख सुझाव रखा है कि लेखकों, मुद्रकों प्रोड्यूसरों तथा प्रकाशकों आदि को भी उनकी उत्कृष्ट कृतियों पर पुरस्कार देकर सम्मानित किया जाना चाहिए।

संघ के अध्यक्ष पं० वाचस्पति पाठक ने अपने भाषण में कहा कि अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ के लिए यह प्रसन्नता की बात है कि हमारे अनुरोध पर डाकतार तथा रेलवे विभाग ने एकाधिक सुविधाएँ पुस्तकों के पैकेटों व बण्डलों पर प्रकाशकों और पुस्तक विक्रेताओं को दी हैं। अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ पिछले चार वर्षों से हिन्दी के

प्रकाशकों को एक मंच पर लाने के लिए तथा हिन्दी प्रकाशन परम्परा को स्वस्थ बनाये रखने के लिए प्रयत्नशील है। अन्तर्राष्ट्रीय प्रकाशक संघ का सदस्य बनकर संघ ने भारत के प्रकाशन जगत की आवाज को विश्वमंच तक पहुँचाया है। अ० भा० प्रकाशक संघ के सक्रिय सदस्यों तथा अन्य सदस्यों का यह विचार था कि प्रकाशन-व्यवसाय की रीढ़ यानी अच्छे पुस्तक विक्रेताओं की देश में आज बहुत कमी है। इसका कारण, कमीशन सम्बन्धी आपसी होड़ है, जो मुख्यतः सरकारी अनुदान पर, संस्थाओं द्वारा टेंडर पर, पुस्तकें बेचने की प्रथा से सम्बन्धित है। कई बार प्रयत्न किया गया कि इस होड़ को समाप्त कर दिया जाय किन्तु अभी तक सफलता नहीं मिली है।

पारित प्रस्ताव

सम्मेलन रेलवे मंत्रालय से अनुरोध करता है कि रेलवे के विभिन्न कार्यालयों में पुस्तक चयन समिति में अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ का एक सदस्य रखा जाय। इससे प्रकाशकीय हितों के संरक्षण के साथ-साथ सत्साहित्य के चयन में सहायता मिलेगी। यह सम्मेलन पाठ्यपुस्तकों के राष्ट्रीयकरण पर अपनी नीति स्पष्ट करते हुए घोषणा करता है कि सरकार की पाठ्यपुस्तकों के राष्ट्रीयकरण की नीति मुक्त व्यापार के सर्वमान्य सिद्धान्तों के विरुद्ध है।

सम्मेलन उद्योग-मंत्रालय से अनुरोध करता है कि कम मूल्य पर साहित्य सुलभ कराने के लिए विदेशी मैकेनिकल न्यूज प्रिंट का कुछ कोटा प्रकाशकों को दे।

संघ का यह अधिवेशन पुस्तकों पर लगे सेलटैक्स का विरोध करता है, जिन राज्यों में यह टैक्स लगाया गया है उन राज्य सरकारों से पुनः अनुरोध किया जाता है कि वे इस टैक्स को शीघ्रातिशीघ्र वापस लें।

अगले वर्ष के लिए पं० वाचस्पति पाठक—सभापति, महेन्द्रजी, एच० के० घोष, देवनारायण द्विवेदी, रामलाल पुरी तथा मार्तण्ड उपाध्याय—उपसभापति, दीनानाथ मल्होत्रा —प्रधानमंत्री, ओमप्रकाश, कृष्णचन्द्र बेरी, जगदीशप्रसाद अग्रवाल—संयुक्तमंत्री, कन्हैयालाल मलिक—कोषाध्यक्ष, इनके अलावा १३ कार्यकारिणी के सदस्य निर्वाचित हुए।

इस अधिवेशन में दिल्ली, इलाहाबाद, वाराणसी, आगरा, मेरठ आदि के प्रकाशकों ने भाग लिया। इसमें पुस्तकों की परिभाषा पर फिर से विचार किया गया तथा यह निश्चय किया गया कि संघ पंजीबद्ध पुस्तक विक्रेताओं पर बिक्री का भार छोड़ दे। संघ में पंजीबद्ध पुस्तक विक्रेताओं का प्रतिनिधित्व करने के लिए आठ पुस्तक विक्रेताओं को संघ के नये विधान के अनुसार कार्यसमिति का सदस्य बनाया गया।

विशेष अधिवेशन : १९५९

अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ में संयुक्त हिन्दी प्रकाशक संस्था का विलयन करके प्रकाशक संघ को संपुष्ट करने का महत्त्वपूर्ण कार्य अगस्त २२ एवं २३, १९५९ के

विशेष अधिवेशन में सम्पन्न हो गया। प्रकाशक संघ के इस अधिवेशन में कार्य समिति का यह सुझाव स्वीकार कर लिया, जिसमें संयुक्त हिन्दी प्रकाशक संस्था को अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ में विलीन करने की बात कही गयी है।

पुस्तक विक्रेताओं के ८ प्रतिनिधि संघ के नये विधान के अनुसार केन्द्रीय कार्य समिति के लिए सदस्य निर्वाचित किये गये—

अजय चौहान, जिज्ञासा, जबलपुर। मगनचन्द वेदी, सर्वोदय साहित्य मंदिर, हैदराबाद। पुरुषोत्तमदास मोदी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी। ओमप्रकाश घई, यूनिवर्सिटी पब्लिशर्स, जालन्धर। अयोध्या सिंह, विशाल भारत बुक डिपो, कलकत्ता। शंकरदयाल सिंह, पारिजात प्रकाशन, पटना। चंपालाल रांका, सरस्वती प्रेस बुक डिपो, चौड़ा रास्ता, जयपुर। सत्यनारायण, प्रधानमंत्री, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास।

अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ की कार्य समिति की एक बैठक पं० वाचस्पति पाठक के सभापतित्व में २५ अक्टूबर १९५९ को प्रातःकाल १० बजे राजकमल प्रकाशन प्रा० लि० के इलाहाबाद कार्यालय में हुई। इस गोष्ठी में सम्बद्ध पुस्तक विक्रेताओं द्वारा प्रकाशकों के बारे में विचार-विमर्श किया गया। प्रधानमंत्री ने संयुक्त हिन्दी प्रकाशक संस्था को अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ में विलीन होने तक की सारी स्थिति बताई। उन्होंने बताया कि अबतक १२०० के लगभग पुस्तक विक्रेता पंजीबद्ध हो चुके हैं। पुस्तक जगत में एक जागृति और नवचेतना उत्पन्न हो गयी है। कहीं-कहीं से शिकायत भी प्राप्त हो रही है जिसे दूर किया जायेगा।

अन्त में निश्चय किया गया कि प्रकाशक असम्बद्ध पुस्तक विक्रेताओं को पुस्तकें न बेचें।

अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ ने पुस्तकों की बिक्री पर नियमन को दृष्टिगत रखते हुए भारत में ही नहीं अपितु समस्त एशिया में सर्वप्रथम नेट बुक एग्रीमेन्ट का क्रान्तिकारी कदम उठाया है, जिससे प्रकाशकों, पुस्तक विक्रेताओं, साहित्यकारों को कालान्तर में लाभ पहुँचेगा। इन क्षेत्रों में विभिन्न तर्क उपस्थित किये गये, किन्तु एग्रीमेन्ट की मूल भावना को सभी ने स्वीकार किया।

कृष्णचन्द्र बेरी ने वियेना कांग्रेस की रिपोर्ट पेश की । अन्तर्राष्ट्रीय प्रकाशक संघ की १५वीं कांग्रेस २४ से ३० मई १९५९ को वियेना में आयोजित हुई थी। इसमें भाग लेने के लिये भारतीय प्रतिनिधि मण्डल के अन्य सदस्य रामलाल पुरी, श्यामलाल गुप्त तथा राजेन्द्र गुप्त थे। रामलाल पुरी भारतीय प्रतिनिधि मण्डल के नेता थे। अन्तर्राष्ट्रीय प्रकाशक कांग्रेस के प्रधानमंत्री डा० हांस कांजेत ने अपनी रिपोर्ट पेश करते हुए कहा कि वर्तमान समय में कागज की समस्या बहुत महत्त्वपूर्ण है, न केवल यूरोप बल्कि सम्पूर्ण संसार में मशीनों और कागज को उपलब्ध करने में दिक्कत हो रही है। हमें चाहिए कि किसी भी देश में उस देश की भाषा में अगर कोई उत्कृष्ट मौलिक कृति प्रकाशित हो तो अन्य देशों में पुस्तक के अनुवाद में यथासाध्य सहायता दी जानी चाहिए।

नवम्बर १९५९ में यूनेस्को द्वारा दक्षिण-पूर्वी एशिया के देशों की एक विचार गोष्ठी मद्रास में हुई, जिसमें रामलाल पुरी और कृष्णचन्द्र बेरी भारत के प्रतिनिधि थे। इसी वर्ष संघ ने पुस्तकों के मुद्रण में एकरूपता लाने के लिए अक्षरों तथा वर्तनी समिति का निर्माण किया। केन्द्र के शिक्षा मंत्रालय ने भी संघ के इस कार्य में सहयोग दिया। फलत: इसका एक मानक रूप निर्धारित हो गया, जिससे भविष्य में हिन्दी के समस्त प्रकाशनों में मुद्रण सम्बन्धी एकरूपता आयी और विभक्ति आदि की समस्या सुलझी।

पाँचवाँ अधिवेशन

प्रकाशक संघ का पाँचवाँ अधिवेशन रामलाल पुरी के सभापतित्व में कलकत्ता में ९ एवं १० जनवरी १९६० को हुआ। अधिवेशन के अवसर पर हिन्दी पुस्तकों की एक अभिनव पुस्तक प्रदर्शनी का आयोजन किया गया। प्रदर्शनी का उद्घाटन विश्वमित्र के सम्पादक कृष्णचन्द्र अग्रवाल ने किया। सूर्यबली सिंह के मंगलाचरण के बाद कार्यवाही आरम्भ हुई। समारोह का उद्घाटन राष्ट्रीय पुस्तकालय के पुस्तकालयाध्यक्ष डा० वी० एस० केशवनन् ने किया। डा० केशवनन् ने अपने भाषण में इस बात पर जोर दिया कि प्रकाशक ऐसे प्रकाशनों की ओर ध्यान दें जो ज्ञान के सभी पहलुओं—विज्ञान, कला, तकनीकी आदि से पूर्ण हों, जिसमें जीवन की सार्थकता हो।

सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष लक्ष्मीचन्द जी जैन ने अपने भाषण में कहा कि प्रकाशन के क्षेत्र में दो प्रकार के काम हैं—पहला जनसाधारण और बालकों के लिये सुबोध साहित्य का निर्माण तथा पाठ्यपुस्तकों का प्रकाशन; दूसरा, उत्कृष्ट साहित्य का उच्चस्तरीय प्रकाशन। दोनों प्रकार के प्रकाशनों के मार्ग में कागज की महँगाई आड़े आ रही है। सरकार और कागज उद्योग का कर्त्तव्य है कि इन समस्याओं पर गंभीरता से विचार करे। कागज और पुस्तकों के आयात में सरकारी प्रतिबन्धों के कारण विदेशी विनिमय मुद्रा समस्या बनकर आती है। इस समस्या का भी हल निकालना चाहिए।

संघ के सभापति पं० वाचस्पति पाठक ने नवनिर्वाचित सभापति रामलाल पुरी को सभापति पद का भार सौंपते हुए आशा व्यक्त की कि पुरी जी जैसे कर्मठ व्यक्ति प्रकाशक संघ के कार्य को प्रगति देने में समर्थ होंगे। इस अवसर पर विजयकुमार बनर्जी (कलकत्ता के मेयर), रामकुमारजी भुवालका, नगर निगम के उपमेयर किशोरीलाल ढंढनिया ने अपने विचार प्रस्तुत किये। तत्पश्चात् संघ की वार्षिक रिपोर्ट पेश की गयी।

नवनिर्वाचित अध्यक्ष रामलाल पुरी ने अपने भाषण में कुछ सुझाव पेश किये:

१. सरकार टेंडर सिस्टम समाप्त कर दे, क्योंकि अच्छी पुस्तकों पर अधिक कमीशन देना संभव नहीं है।

२. रेलवे बुक स्टाल पुस्तकों की बिक्री का बहुत बड़ा साधन हैं, किन्तु सरकार ने इसका एकाधिकार एक ही संस्था को दे रखा है। सरकार इस एकाधिकार को समाप्त करके प्रकाशक संघ को भी रेलवे स्टेशनों पर अपनी दुकान खोलने का अवसर दे।

३. सरकार द्वारा पुस्तकों का डाकखर्च कम हो।
४. पुस्तकों पर किसी प्रकार का बिक्रीकर या अन्य कर नहीं लगना चाहिए।
५. सरकार पुस्तकों के प्रकाशन तथा बिक्री आदि के सम्बन्ध में जो समितियाँ बनाये उसमें प्रकाशकों के प्रतिनिधि शामिल किये जायँ।

संघ के प्रस्ताव

इस अवसर पर संघ ने अनेक प्रस्ताव पास किये हैं जिनमें प्रमुख हैं—

संघ का अधिवेशन संघ से अब तक असम्बद्ध कतिपय प्रकाशकों, प्रकाशन संस्थाओं, पाठकों, पुस्तकालयों, पुस्तक विक्रेताओं, सरकारी आर्डरों पर एक समान कमीशन देने की नीति को पुस्तक व्यवसाय के मूलभूत सिद्धान्तों के प्रतिकूल समझता है।

संघ का पाँचवाँ अधिवेशन पुस्तक विक्रेताओं के हित की दृष्टि से सभी प्रकाशकों से यह अनुरोध करता है किं यथासमय अपने प्रकाशनों की विभिन्न नगरों में सप्लाई स्थानीय पुस्तक विक्रेताओं द्वारा ही करें।

संघ का अधिवेशन भारत सरकार से अनुरोध करता है कि अन्य वस्तुओं की अपेक्षा पुस्तकों के शैक्षिक और सांस्कृतिक महत्त्व को समझते हुए वी० पी० डाक से भेजे जाने वाले पैकेटों के लिए पचास पैसे का रजिस्ट्रेशन शुल्क हटा दे, जिससे डाक की बढ़ी हुई दरों के कारण पुस्तकों की बिक्री के अवरोध को दूर किया जा सके।

आगामी वर्ष के लिये प्रकाशक संघ के निम्नलिखित पदाधिकारियों का निर्वाचन हुआ : सभापति—रामलाल पुरी; उपसभापति—वाचस्पति पाठक, देवनारायण द्विवेदी, दीनानाथ मल्होत्रा, जयनाथ मिश्र, लक्ष्मीचन्द जैन; प्रधानमंत्री—ओम प्रकाश; संयुक्तमंत्री—कृष्णचन्द्र बेरी, उपेन्द्रनाथ अश्क, सौभाग्यमल जैन; कोषाध्यक्ष—कन्हैयालाल मलिक इनके अलावा १५ व्यक्ति कार्य समिति के सदस्य निर्वाचित हुए।

सहकारिता विचार गोष्ठी

१७ से १९ नवम्बर १९६० में अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ की ओर से सहकारिता विषय पर दिल्ली में एक विचार गोष्ठी का आयोजन हुआ। इसमें भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय के उपदेष्टा सरदार सोहन सिंह, नीदरलैण्ड दूतावास नई दिल्ली के फर्स्ट कल्चरल सेक्रेटरी जे० ई० शॉप, दीनानाथ मल्होत्रा, ओमप्रकाश तथा कृष्णचन्द्र बेरी ने विभिन्न पहलुओं पर अपने-अपने निबन्ध पढ़े।

सेमिनार का उद्घाटन करते हुए भारत सरकार के शिक्षा सचिव पी० एन० कृपाल ने कहा कि इस कार्य को स्वीकार कर हमें बहुत प्रसन्नता हुई है कि विकासशील देशों में सेमिनारों के आयोजन की प्रथा बढ़ रही है। केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय के सहायक शिक्षा सलाहकार सरदार सोहन सिंह ने १८ नवम्बर के सेमिनार में अपना निबन्ध पढ़ा जिसका विषय था—'पुस्तकों की सहकारी बिक्री का सिद्धान्त'। दूसरा निबन्ध दीनानाथ जी ने पढ़ा, तीसरा निबन्ध ओमप्रकाश जी ने तथा अन्तिम निबन्ध कृष्णचन्द्र बेरी ने। सेमिनार

का समापन करते हुए रामलाल पुरी ने कहा कि हमारे देश में पुस्तकों को पढ़ने की रुचि कितनी कम है, इसका अनुमान अन्य देशों की स्थिति से तुलना करके सहज ही लगाया जा सकता है। नार्वे में एक लाख लोगों के पीछे एक साल में ८७, स्वीडेन में ७७, डेनमार्क में ६९, ब्रिटेन में ४२ तथा हमारे देश में मुश्किल से एक नई पुस्तक प्रकाशित होती हैं, क्योंकि हमारे सामाजिक जीवन में पुस्तक अभी भी गौण और फालतू चीज समझी जाती है। १९५८ में अँग्रेजी में लगभग ४ हजार पुस्तकें छपीं परन्तु १९५९ में यह संख्या लगभग १२ हजार हो गयी, यानी तीन गुना। इसके विपरीत १९५८ में हिन्दी की ४३०० पुस्तकें प्रकाशित हुईं थीं और १९५९ में सिर्फ ४ हजार प्रकाशित हुईं। अर्थात् ३०० कम।

जर्मन प्रतिनिधि का स्वागत

जर्मन प्रकाशक तथा पुस्तक विक्रेता संघ के प्रतिनिधि हंस अलबर्ट स्टेलसन १९६० के दिसम्बर में जर्मन पुस्तकों की प्रदर्शनी के सिलसिले में भारत आये हुए थे, उनका वाराणसी में अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ की ओर से स्वागत करते हुए कहा गया—यह बड़े सौभाग्य की बात है कि आप हमारी काशी नगरी में पधारे। अलबर्ट ने अपने भाषण में कहा कि जर्मनी में पुस्तक-व्यवसाय को व्यवसाय से अधिक सेवा का कार्य समझा जाता है। जो लोग इस व्यवसाय को अपनाते हैं उनकी पैसा कमाने की प्रवृत्ति कम होती है। उनका लक्ष्य होता है कि वे इस व्यवसाय द्वारा समाज सेवा के क्षेत्र में प्रवृत्त हों। वस्तुतः पुस्तक प्रकाशन और बिक्री का कार्य इसी सेवाभाव से भारत में भी होना चाहिए। जिस पुस्तक द्वारा लोगों को ज्ञान प्राप्त हो, उस व्यवसाय में सेवाभाव आ जाय तो निश्चय ही ऐसा व्यवसाय देश का कल्याण करने में समर्थ होगा। प्रकाशकों को अपनी जीविका ईमानदारी से चलानी चाहिए।

छठवाँ वार्षिक अधिवेशन

अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ का छठवाँ वार्षिक अधिवेशन १६-१७ एवं १८ अप्रैल १९६१ को कृष्णचन्द्र बेरी की अध्यक्षता में पटना में हुआ। स्वागताध्यक्ष मदनमोहन पाण्डेय ने आगत सभी प्रकाशकों का स्वागत किया और अपने भाषण में बिहार के प्रेस और प्रकाशन व्यवसाय का इतिहास बताया। संघ के प्रधानमंत्री ओमप्रकाश जी ने वार्षिक रिपोर्ट प्रस्तुत करते हुए कहा कि १० जनवरी १९६० को ५वें वार्षिक अधिवेशन में यह प्रस्ताव स्वीकृत किया गया था कि नेशनल बुक ट्रस्ट में प्रकाशक संघ को भी प्रतिनिधित्व दिया जाय। भारत सरकार ने इस माँग के उत्तर में बताया कि बुक ट्रस्ट पर उनका कोई स्वत्वाधिकार नहीं है, क्योंकि ट्रस्ट स्वायत्त संस्था है। डाक विभाग से पुस्तकों के पैकेट का रजिस्ट्री खर्च हटाने का प्रस्ताव भी गत अधिवेशन में स्वीकृत किया गया था। संघ की ओर से देश भर में १ से १४ नवम्बर १९६० तक राष्ट्रीय पुस्तक उत्सव मनाया गया। १७ नवम्बर से १९ नवम्बर तक दिल्ली में सहकारिता के आधार पर पुस्तकों के प्रचार, बिक्री और प्रकाशन पर विचार करने के लिए संघ की ओर से सेमिनार आयोजित किया गया।

हमारी कार्य समिति ने सबसे पहले १२ अप्रैल, १९५५ तथा २५ अक्टूबर, १९५९ की बैठक में हिन्दी प्रकाशन व बिक्री बढ़ाने की निश्चित योजना बनाने की आवश्यकता पर बल दिया, लेकिन खेद है कि जब इसके सैद्धान्तिक और व्यावहारिक पक्ष पर विस्तृत रूप से विचार करने के लिए संघ की ओर से सेमिनार आयोजित किया गया तब देश के केवल २४ प्रकाशक और पुस्तक-विक्रेता भाग लेने के लिए उपस्थित हो सके, जिनमें १४ सिर्फ स्थानीय दिल्ली के थे। इस अवसर पर नवनिर्वाचित अध्यक्ष के रूप में श्री बेरी ने अपना सारगर्भित भाषण दिया और कहा कि भारत का स्थान प्रकाशनों की दृष्टि से विश्व में तीसरा अवश्य है, किन्तु इससे भारत के प्रकाशन स्तर को ऊँचा नहीं कहा जा सकता। निस्सन्देह प्रकाशन स्तर की १९४७ की स्थिति से आज १९६१ की स्थिति प्रगति पर है। पहले की अपेक्षा मुद्रण का स्तर बहुत ऊँचा हो गया है परन्तु यह बात सभी प्रकाशन संस्थाओं के लिए लागू नहीं है। इने-गिने प्रेस अच्छी छपाई कर पाते हैं। केन्द्रीय गवेषणा और सहकारिता मंत्रालय ने देश में ५ प्रिन्टिंग टेक्नालॉजी स्कूल राज्य सरकारों के सहयोग से स्थापित किए हैं। ये स्कूल इलाहाबाद, मद्रास, बम्बई, दिल्ली तथा कलकत्ता में स्थित हैं। इन स्कूलों में प्रकाशकों को प्रशिक्षण प्राप्त करना चाहिए।

सम्मेलन का आरम्भ करते हुए बिहार के तत्कालीन राज्यपाल जाकिर हुसैन ने कहा कि प्रकाशकों को अलग-अलग पाठकों की रुचि तथा उनकी आवश्यकताओं का ध्यान रखते हुए लेखकों एवं पुस्तकों का चुनाव व प्रकाशन करना चाहिए। आपने यह भी कहा कि कम कीमत में अच्छी पुस्तकें लोगों को उपलब्ध हो सकें, इस पर प्रकाशकों को ध्यान देना चाहिए। इस अवसर पर उपस्थित केन्द्रीय संस्कृति तथा गवेषणा सचिव हुमायूँ कबीर ने हिन्दी साहित्य का भण्डार समृद्ध करने के लिए अनुवाद साहित्य के प्रकाशनों पर विशेष ध्यान देने के लिए प्रकाशकों से अपील की। अनुवाद साहित्य से ही किसी भाषा का साहित्य समृद्ध होता है। भारत में पुस्तकें बहुत कम संख्या में प्रकाशित होती हैं। दुनियाँ में ५१ प्रतिशत पुस्तकें अंग्रेजी में छपती हैं। उसके बाद क्रमश: जर्मन, फ्रेंच और रुसी भाषा का स्थान है। अपने देश में १४ भारतीय भाषाओं में प्रतिवर्ष मुश्किल से ५०० से ६०० तक नई पुस्तकें प्रकाशित होती हैं। निस्सन्देह इसमें हिन्दी की संख्या सबसे अधिक होती है।

प्रमुख प्रस्ताव

पटना सम्मेलन में कई प्रस्ताव पास किए गए। संघ द्वारा प्रस्तावित बिक्री के नियमों और व्यवस्था पर ढिलाई के लिए कार्य समिति ने एक प्रस्ताव द्वारा अधिवेशन का ध्यान आकृष्ट करते हुए खेद प्रकट किया कि संघ ने प्रचार के लिए हिन्दी के प्रकाशकों और पुस्तक विक्रेताओं का सहयोग नहीं प्राप्त किया है। अधिवेशन भारत की केन्द्र तथा राज्य सरकारों से साग्रह अनुरोध करता है कि शासन पंचायत पुस्तकालयों की खरीद के लिए टेण्डर प्रथा समाप्त कर दे। अधिवेशन का अनुरोध है कि हिन्दी पुस्तकों के थोक और खुदरा विक्रेताओं को नियत कमीशन और सुविधाएँ दी जायें। स्थानीय विक्रेताओं द्वारा पूर्ति न हो सकने की स्थिति में ही प्रकाशक अन्य व्यवस्था करें। संघ का अधिवेशन

निश्चय करता है कि संघ के विधान की धाराओं का संशोधन करके सदस्यों का वार्षिक सदस्यता शुल्क ५० रु० से घटाकर २० रु० कर दिया जाय तथा प्रवेश शुल्क को २५ रु० से घटाकर १० रु० कर दिया जाय। संघ का यह अधिवेशन निश्चय करता है कि संघ का मुख-पत्र प्रकाशित करने के लिए पहले प्रस्ताव को कार्यान्वित किया जाय। संघ का यह अधिवेशन पाठ्यक्रमों की नियत खरीद के लिए स्वीकृति देनेवाले केन्द्रीय तथा प्रादेशिक अधिकारियों से अनुरोध करता है कि वे पुस्तकों के नमूने की कम से कम प्रतियों की माँग किया करें।

पदाधिकारियों का चुनाव

अध्यक्ष—कृष्णचन्द्र बेरी; उपाध्यक्ष—वाचस्पति पाठक, लक्ष्मीचन्द जैन, देवनारायण द्विवेदी, ओमप्रकाश, मदनमोहन पाण्डेय; प्रधानमंत्री—रामलाल पुरी; संयुक्तमंत्री—पुरुषोत्तमदास मोदी, जयनाथ मिश्र, कन्हैयालाल मलिक; कोषाध्यक्ष —श्यामलाल गुप्त एवं कार्यकारिणी के अन्य १५ सदस्य निर्वाचित किए गए।

१४ सितम्बर १९६१ गुरुवार को आत्माराम ऐण्ड संस, दिल्ली में कार्यसमिति की एक बैठक हुई, जिसमें संघ के प्रधानमंत्री ने इलाहाबाद में हुई कार्यसमिति की पिछली बैठक की कार्यवाही सुनाई, जिसे स्वीकृत किया गया। राष्ट्रीय पुस्तक समारोह के प्रस्ताव के अन्तर्गत उसकी प्रगति का विवरण प्रस्तुत हुआ। इस अवसर पर लक्ष्मीचन्द जैन ने बताया कि संघ के मुखपत्र के सम्बन्ध में यथासम्भव प्रयत्न किया गया, परन्तु उन्हें वांछित सहयोग और सहायता नहीं मिल सकी।

प्रधानमंत्री ने बताया कि संघ को अन्तर्राष्ट्रीय प्रकाशक संघ का सदस्य बनने से कोई लाभ नहीं हो सकता क्योंकि अन्तर्राष्ट्रीय प्रकाशक संघ पश्चिमी देशों तक ही सीमित है। इसके अतिरिक्त संघ से हमें इस दौरान बहुत कम पत्र तथा सूचनाएँ प्राप्त हुई हैं।

कार्यसमिति ने ओमप्रकाश के सुझाव को सर्वसम्मति से स्वीकृत किया कि पुस्तक व्यवसाय की एकता की दृष्टि से अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ के तत्वावधान में पब्लिशर्स इन्डस्ट्रीज कौन्सिल आफ इण्डिया का गठन किया जाना चाहिए।

राष्ट्रीय पुस्तक समारोह पर पुन: विचार करते हुए समिति ने निश्चय किया कि यह समारोह १४ नवम्बर से २९ नवम्बर के मध्य होगा। दिल्ली में होनेवाले इस समारोह के संयोजक को अध्यक्ष मनोनीत करेंगे।

देश का प्रथम राष्ट्रीय पुस्तक समारोह

१४ नवम्बर १९६१ को वाराणसी में अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ द्वारा राष्ट्रीय पुस्तक समारोह प्रारम्भ हुआ। इस अवसर पर अध्यक्ष पद से महादेवी वर्मा ने अनेक सुझाव दिए। उ० प्र० के तत्कालीन शिक्षामंत्री आचार्य जुगलकिशोर, प्रकाशक संघ के अध्यक्ष कृष्णचन्द्र बेरी, साप्ताहिक हिन्दुस्तान के बाँकेबिहारी भटनागर, बाबू रामचन्द्र वर्मा, सुधाकर पाण्डेय, राजदेव दीक्षित, हिन्दू विश्वविद्यालय के उपकुलपति एच० एन० भगवती के भाषण हुए। डॉ० मंगलदेव शास्त्री की अध्यक्षता में प्रकाशकों की एक

विचारगोष्ठी का आयोजन भी किया गया, जिसमें लक्ष्मीचन्द जैन, डॉ० मंगलदेव शास्त्री, देवनारायण द्विवेदी, पं० जगन्नाथप्रसाद शर्मा, प्रो० विश्वनाथ राय, रामबालक शास्त्री, करुणापति त्रिपाठी, डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, गणेशदास, उमाशंकर पाण्डेय आदि के भाषण हुए।

राष्ट्रीय पुस्तक समारोह का शुभारम्भ पहली बार कलकत्ता में प्रो० कल्याणमल लोढ़ा के सभापतित्व में हुआ। दिल्ली में इसका समारम्भ दिल्ली पब्लिक लाइब्रेरी में आयोजित एक सभा से हुआ, जिसकी अध्यक्षता केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय के तत्कालीन संयुक्त सचिव रमाप्रसन्न नायक ने की। प्रमुख वक्ता थे मन्थननाथ गुप्त, राजबहादुर सिंह तथा यशपाल जैन।

बम्बई में आयोजित पुस्तक समारोह में तीन विचार गोष्ठियाँ आयोजित की गयीं। अमेरिका में भारत के भूतपूर्व राजदूत छागला ने इसका उद्‌घाटन किया। इन गोष्ठियों में सदानन्द भटकल; महाराष्ट्र के तत्कालीन पर्यटनमंत्री होमी तलियार खाँ; प्रिन्सिपल टी० के० टोपे, डेविड अब्राहम, जी० एल० मेहता, काका साहब कालेलकर, गुलाबदास ब्रोकर, ज्योतीन्द्र दवे तथा पंजाब के तत्कालीन राज्यपाल महामहिम एन० बी० गाडगिल उपस्थित थे। गाडगिल साहब ने उक्त अवसर पर भाषण करते हुए कहा कि लेखकों तथा साहित्य स्रष्टाओं को विश्व के नैतिक उत्थान में बहुत बड़ी भूमिका अदा करनी है। उन्हें सलाह देते हुए उन्होंने कहा कि अपनी प्रतिभा तथा ज्ञान का इस प्रकार उपयोग करना चाहिए, जिससे वे मानव जाति की ज्ञान की पूँजी में वृद्धि कर सकें।

दक्षिण भारत में आयोजित पुस्तक समारोह की एक विशेषता यह थी कि समारोह में केवल मद्रास शहर के ही नहीं, वरन् सम्पूर्ण दक्षिण भारत के प्रकाशकों, पुस्तक विक्रेताओं तथा विभिन्न संस्थाओं के पुस्तकालयाध्यक्षों ने भाग लिया। दक्षिण भारत में राष्ट्रीय पुस्तक समारोह समिति के संयोजक वी० सदानन्द ने दक्षिण भारत पुस्तक उद्योग परिषद् के तत्वावधान में उक्त समारोह का आयोजन किया था।

केरल के पुस्तक समारोह समिति के अध्यक्ष सी० के० मणि ने तथा आन्ध्रप्रदेश के पुस्तक परिषद् के भूतपूर्व अध्यक्ष तथा वितरक प्रो० पी० के० वेंकटराव ने समारोह को काफी बड़े पैमाने पर संगठित किया। मद्रास में प्रकाशकों तथा पुस्तक विक्रेताओं को पुस्तक समारोह इस ढंग से मनाने की सलाह दी गयी थी:

१. समुचित सजावट, तख्तियों व बोर्डों द्वारा उल्लासपूर्ण वातावरण तैयार किया जाए। २. चुनी हुई पुस्तकों का विशिष्ट रूप से प्रदर्शन किया जाय। ३. पुस्तकों के दामों में विशेष छूट द्वारा पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया जाए। ४. प्रकाशक पुस्तक विक्रेताओं को चुनी हुई पुस्तकों तथा निर्धारित न्यूनतम रकम की पुस्तकों के खरीदने पर विशेष रियायत दें।

३१ दिसम्बर १९६१ को अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ की कार्यकारिणी की एक बैठक वाराणसी में हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय के कार्यालय में हुई, जिसमें निम्न प्रस्ताव पास हुए:

१. स्थिर हुआ कि संघ का आगामी अधिवेशन अप्रैल १९६२ में लखनऊ में किया जाय।

२. कार्यसमिति ने आगामी वर्ष के सभापति पद के लिए श्री लक्ष्मीचन्द जैन तथा पं० मदनमोहन पाण्डेय का नाम प्रस्तावित किया।

३. ३५०० रु० का बजट राष्ट्रीय पुस्तक समारोह की स्मारिका प्रकाशित करने के लिए स्वीकृत किया गया।

अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ की कार्यकारिणी की बैठक कार्यक्रमानुसार ११ मार्च, १९६२ को नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली में हुई, जिसमें अधिवेशन के लिए लखनऊ का निर्वाचन हुआ। कार्यकारिणी की बैठक का अनुमोदन साधारण सभा में किया गया। यह भी निश्चय हुआ कि अधिवेशन के अवसर पर पुस्तकों की प्रदर्शनी तथा बाल साहित्य पर गोष्ठी आयोजित की जाय। कार्यसमिति ने एक प्रस्ताव द्वारा निश्चित किया कि संघ का एक निजी भवन दिल्ली में बनवाया जाय और एक लाख रुपया एकत्र करने के लिए संघ की ओर से अपील निकाली जाय।

सातवाँ वार्षिक अधिवेशन लखनऊ

अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ का सातवाँ वार्षिक अधिवेशन उत्तरप्रदेश की राजधानी लखनऊ में २९ तथा ३० अप्रैल, १९६२ को बड़े उत्साहवर्द्धक वातावरण में सम्पन्न हुआ। सम्मेलन का उद्घाटन प्रदेश के तत्कालीन मुख्यमंत्री माननीय चन्द्रभानु गुप्त ने किया। भारतीय ज्ञानपीठ के संचालक लक्ष्मीचन्द जैन ने अध्यक्षता की। मुख्यमंत्री ने अपने भाषण में कहा कि हिन्दी के राष्ट्रभाषा पद पर आसीन हो जाने के कारण हिन्दी के लेखकों-प्रकाशकों का दायित्व अब बढ़ गया है। हिन्दी के प्रकाशकों को चाहिए कि वे अब बड़े-बड़े नगरों में हिन्दी की सान्ध्यकालीन कक्षाएँ चलाएँ। इस कार्य के लिए सरकार ने बजट में एक उचित धनराशि रखी है। प्रकाशकों को चाहिए कि वे लेखकों के साथ अपने सम्बन्ध सुधारें। उनके विरुद्ध देश में दूषित प्रचार है कि प्रकाशक लेखकों से ४-४ आने प्रति पृष्ठ की दर से पुस्तकें लिखवाकर उन्हें लूटते हैं। यह शोषण जब तक बन्द नहीं हो जाता लेखक-प्रकाशक सम्बन्ध सुधर नहीं सकते। सम्मेलन के अध्यक्ष लक्ष्मीचन्दजी जैन ने प्रकाशनसम्बन्धी समस्याओं पर प्रकाश डालते हुए कहा कि साहित्य सृजन की दिशा में प्रकाशन के क्षेत्र में उत्कृष्ट प्रकाशन आ रहे हैं। उन्होंने आगे कहा कि आज हमारे देश में इस संघर्ष ने व्यापक समस्या का रूप ले लिया है। यह समस्या राष्ट्रीय बन गयी है, क्योंकि लेखक, प्रकाशक, पाठक तीनों के बीच स्वार्थों के लिए टकराव उपस्थित है। इन तीनों के अलावा एक और तत्व प्रकाशन व्यवसाय में प्रबल रूप से आ रहा है, जिसका नाम है राजसत्ता। राजतंत्र ने पाठ्य-पुस्तकों के राष्ट्रीयकरण के जो नमूने प्रस्तुत किए हैं वे चिन्ताजनक हैं।

अधिवेशन के अवसर पर बाल पुस्तकों की एक प्रदर्शनी का प्रदेश के तत्कालीन शिक्षामंत्री आचार्य जुगलकिशोर ने उद्घाटन किया।

अधिवेशन के दूसरे दिन बाल साहित्य गोष्ठी का आयोजन हुआ, जिसका उद्घाटन आचार्य जुगलकिशोर ने किया एवं अध्यक्षता सरस्वती के सम्पादक श्रीनारायण चतुर्वेदी ने की। गोष्ठी की प्रमुख वक्ता सावित्री वर्मा, निरंकारदेव सेवक, रघुबीरशरण मित्र, डॉ० सीताराम जायसवाल, द्वारकाप्रसाद माहेश्वरी थे। प्रकाशकों की ओर से दीनानाथ मल्होत्रा और निरंजनलाल भार्गव ने बाल साहित्य के प्रकाशन पर प्रकाश डाला।

राज्य हिन्दी समिति के अध्यक्ष डॉ० दीनदयाल गुप्त ने प्रकाशकों को सलाह दी कि यदि वे हिन्दी की उच्च शिक्षा के लिए उपयुक्त पुस्तकों की भरमार कर दें, तो फिर हिन्दी को माध्यम बनाए जाने में कोई कठिनाई नहीं होगी। दीनानाथ मल्होत्रा बताया कि अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ का यह अधिवेशन कार्यसमिति द्वारा प्रस्तुत नेटबुक समझौते के कार्यान्वयन के स्थगन सम्बन्धी प्रस्ताव को स्वीकार करता है।

इस अवसर पर नर्मदेश्वर चतुर्वेदी, कन्हैयालाल मलिक, वाचस्पति पाठक, रामलाल पुरी, दीनानाथ मल्होत्रा, कल्याण दास, शशिधर मालवीय आदि ने पुस्तक व्यवसाय के मानदण्ड को ऊँचा बनाये रखने के लिए प्रकाशकों तथा पुस्तक विक्रेताओं का ध्यान आकृष्ट किया। प्रातःकाल के सम्मेलन में विभिन्न प्रदेशों से आये लगभग ६० सदस्यों ने भाग लिया। सायंकाल ३ बजे 'पुस्तकों की बिक्री कैसे बढ़ाई जाय' विषय पर एक विचारगोष्ठी का आयोजन किया गया। इस गोष्ठी में श्रीमती प्रकाशवती पाल, सौभाग्यमल जैन, रघुवीरशरण बंसल, तेजनारायण टंडन, अमरनाथ, गोकुलदास धूत, यशपाल जैन आदि लोगों ने भाग लिया।

गोष्ठी का समापन करते हुए अध्यक्ष लक्ष्मीचन्द जैन ने तीन प्रस्ताव रखे जो सर्वसम्मति से स्वीकृत किए गए—

१. प्रकाशक संघ स्थानीय पुस्तक-विक्रेताओं के सहयोग से ऐसी व्यवस्था करे कि हिन्दी की सभी पुस्तकें दिल्ली में ग्राहकों को सुलभ हों।

२. प्रकाशकों द्वारा कागज की माँग का सर्वेक्षण प्रकाशक संघ के माध्यम से हो। अच्छे किस्म का कागज प्रकाशकों को प्राप्त हो ऐसी व्यवस्था संघ के माध्यम से की जाय।

३. पुस्तकों की बिक्री बढ़ाने के लिए मार्केट रिसर्च का कार्य किया जाय और इस विषय पर पी०एच० डी० करनेवाले काशी के अध्यापक बृजभूषण कुल से सहयोग लिया जाय।

१९६२ और १९६३ के लिए लक्ष्मीचन्द जैन—अध्यक्ष, रामलाल पुरी, वाचस्पति पाठक, कृष्णचन्द्र बेरी, दीनानाथ मल्होत्रा, जयनाथ मिश्र—उपाध्यक्ष, कन्हैयालाल मलिक—प्रधानमंत्री, ओमप्रकाश, श्रीमती प्रकाशवती पाल, पुरुषोत्तम मोदी-संयुक्तमंत्री एवं राजकुमार कपूर—कोषाध्यक्ष चुने गए। कार्यकारिणी समिति के १५ अन्य सदस्य भी निर्वाचित किए गए।

अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ की कार्यसमिति की एक बैठक रविवार २१ अक्टूबर, १९६२ को लक्ष्मीचन्द जैन की अध्यक्षता में दिल्ली में हुई, जिसमें निम्नलिखित प्रस्ताव स्वीकृत किए गए—

१. नेट बुक समझौते के प्रश्न पर समिति ने विचार किया। समिति ने अनुभव किया कि क्षेत्रीय समितियों के गठन के लिए केन्द्रीय कार्यालय द्वारा किए प्रयत्नों के बावजूद कुछ नगरों को छोड़कर क्षेत्रीय समितियों का निर्माण सभी जगह नहीं हो सका।

२. राष्ट्रीय पुस्तक समारोह के विषय में निश्चय किया गया कि १४ नवम्बर से २० नवम्बर ६३ तक यह समारोह मनाया जाय।

आठवाँ वार्षिक सम्मेलन

अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ का आठवाँ अधिवेशन २७ अप्रैल, १९६३ को दिल्ली पब्लिक लाइब्रेरी हाल में लक्ष्मीचन्द्र जैन की अध्यक्षता में प्रारम्भ हुआ। अधिवेशन की कार्यवाही प्रारम्भ करते हुए संघ के प्रधानमंत्री कन्हैयालाल मलिक ने विगत वर्ष की रिपोर्ट पेश की। रिपोर्ट में संघ के माध्यम से पत्रिकाओं में विज्ञापन प्रकाशित कराने की योजना का जिक्र था।

दिल्ली में अनुष्ठित 'पाठ्य सामग्री के क्षेत्र में व्यावसायिक संघ का योग' विषय पर आयोजित गोष्ठी का भी उल्लेख रिपोर्ट में है। इसके बाद संघ के सभापति जैनजी का अध्यक्षीय भाषण हुआ, जिसमें उन्होंने केन्द्रीय सरकार की हिन्दी सम्बन्धी नीति की आलोचना की। उन्होंने दिल्ली में सभी प्रकार की पुस्तकों की उपलब्धि, मार्केट रिसर्च, हिन्दी में उपलब्ध पुस्तकों का बृहद् सूचीपत्र, सामूहिक विज्ञापन, कागज की समस्या, राष्ट्रीय पुस्तक समारोह, पाठ्य-पुस्तकों का राष्ट्रीयकरण, पुस्तकों पर रेलभाड़े की वृद्धि आदि विषयों पर प्रकाश डाला और उपर्युक्त कार्यक्रमों को पूरा करने की जो चेष्टा संघ द्वारा हुई है वह बताया।

प्रकाशक संघ की प्रेरणा से १४ नवम्बर से २० नवम्बर, १९६३ तक भारत के प्रमुख नगरों में राष्ट्रीय पुस्तक समारोह उत्साहपूर्वक से मनाया गया। १ अक्टूबर, १९६३ से रेलभाड़े के साथ-साथ माल भाड़ा बढ़ाये जाने का संघ ने विरोध किया।

राजस्थान पुस्तक व्यवासायी संघ का गठन–अनेक महत्वपूर्ण प्रस्ताव पारित

गत १-२ एवं ३ मई, १९६५ को अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ का १०वाँ वार्षिक अधिवेशन जयपुर में सम्पन्न हुआ। अधिवेशन का उद्घाटन राजस्थान के तत्कालीन राज्यपाल डॉ० सम्पूर्णानन्द ने किया। उद्घाटन समारोह के विशेष अतिथि राजस्थान के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री मोहनलाल सुखाड़िया थे। इस अवसर पर भारत के विभिन्न नगरों से आए प्रकाशकों तथा राजस्थान के पुस्तक व्यवसायियों का स्वागत दिनेश खरे ने किया। उन्होंने अपने भाषण में माँग की कि पुस्तकों में व्यवहृत कागज पर से बिक्री कर हटाया जाय। उन्होंने प्रकाशकों को सहकारिता और सरकार द्वारा दिये जाने वाले वित्तीय सहयोग का सहारा लेने का सुझाव दिया।

अध्यक्ष पद से भाषण करते हुए ओमप्रकाश ने कहा कि प्रकाशकों को यह प्रतिज्ञा

करनी चाहिए कि वे ऐसा साहित्य प्रकाशित करेंगे, जो देश के बहुमुखी निर्माण में सहायक होगा तथा देश को एकता और राष्ट्रीयता के सूत्र में बाँधेगा। अपने सारगर्भित भाषण में अनेक समस्याओं को उठाते हुए उन्होंने राष्ट्रीयकृत पुस्तकों में गलतियों के अनेक आँकड़े प्रस्तुत किए और बताया कि उनका प्रकाशन और वितरण समय पर उचित ढंग से नहीं होता। उन्होंने सुझाव दिया कि सरकार को इस दिशा में प्रकाशकों के अनुभव का लाभ उठाना चाहिए।

स्वागत मंत्री चम्पालाल राँका ने कहा कि राजस्थान पुस्तक व्यवसाय की दृष्टि से अत्यन्त पिछड़ा हुआ राज्य है। इसलिए सरकार और समाज दोनों को इस व्यवसाय को संरक्षण देना चाहिए। सरकार ने टेण्डर प्रणाली को समाप्त करने की ओर जो कदम उठाया है उससे भी आगे बढ़कर टेण्डर प्रणाली को जड़ मूल से समाप्त कर देना चाहिए।

इसी दिन सुबह साढ़े नौ बजे हिन्दी पुस्तकों की प्रदर्शनी का उद्घाटन शिक्षा संचालक वी० वी० जॉन ने किया। इस अवसर पर राजस्थान विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष डॉ० सत्येन्द्र ने पुस्तकों के महत्व पर प्रकाश डाला।

अधिवेशन के सिलसिले में महाराजा कालेज, जयपुर में 'उच्च शिक्षा के लिए हिन्दी में प्रकाशन' विषय पर एक विचारगोष्ठी हुई। गोष्ठी में भाग लेनेवालों में राजस्थान के समस्त डिग्री कालेजों के प्रिन्सिपल, एजुकेशन सेक्रेटरी, शिक्षा संचालक तथा हिन्दी के प्रकाशक थे। प्रकाशकों की ओर से बोलते हुए कृष्णचन्द्र बेरी ने 'उच्च शिक्षा के लिए हिन्दी' विषय पर प्रबन्ध प्रस्तुत किया। प्रबन्ध में कहा गया कि प्रकाशन की आवश्यकता इस बात की है कि विश्वविद्यालयों में साहित्येतर विषयों को हिन्दी में पढ़ाने को प्रोत्साहित किया जाय। विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में हिन्दी पुस्तकों की माँग, कालेज की पुस्तकों का हिन्दी में लेखन, प्राध्यापकों की हिन्दी प्रकाशन में रुचि, प्रकाशक का कर्त्तव्याकर्त्तव्य, सरकार और सरकारी एजेन्सियों की भूमिका तथा हिन्दी पुस्तकों और पुस्तकालय सेवा पर प्रकाश डाला। प्राध्यापकों की ओर से बोलते हुए शंकर सहाय सक्सेना ने हिन्दी प्रकाशकों से अपील की कि वे विश्वविद्यालयों के लिए हिन्दी में साहित्येतर विषयों की पुस्तकें यथाशीघ्र प्रकाशित कर अपने कर्त्तव्य का पालन करें। कालेजों के प्रधानाचार्यों की ओर से बावले साहब, डॉ० स्वर्णलता अग्रवाल, सिरोही के डॉ० माथुर, सीकर के गोस्वामीजी, एजुकेशन सेक्रेटरी पं० विष्णुदत्त शर्मा आदि ने विचार-विमर्श में भाग लिया। राजस्थान के शिक्षा संचालक जॉन साहब गोष्ठी के सभापति थे। उन्होंने आशा व्यक्त की कि इस गोष्ठी से हिन्दी में प्रकाशन कार्य को प्रोत्साहन मिलेगा।

प्रकाशन और बिक्री की समस्याओं पर लगातार तीन दिन तक विचार करने के बाद अधिवेशन तीन तारीख की शाम को समाप्त हुआ। समापन समारोह के विशेष अतिथि राजस्थान के शिक्षामंत्री नाथूराम मिर्धा थे। इस अवसर पर अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ के उप सभापति की हैसियत से कृष्णचन्द्र बेरी ने अधिवेशन में पास किए

गए प्रस्तावों की जानकारी दी और बताया कि अब तक देश भर में विभिन्न विषयों की जो पुस्तकें हिन्दी में प्रकाशित हुई हैं, आगामी एक वर्ष में उनकी सूची प्रकाशित की जायगी। अच्छी पुस्तकों के प्रकाशन के लिए प्रकाशकों को सस्ते ब्याज पर ऋण उपलब्ध कराने के लिए एक अर्द्ध-सरकारी संस्था की स्थापना की जानी चाहिए। विज्ञान की उत्तम पुस्तकों को पुरस्कृत करने के लिए प्रतियोगिताएँ आयोजित की जानी चाहिए। पुस्तकों के पार्सल भी अखबारों के पार्सलों की भाँति सस्ती दरों पर रेलवे द्वारा बुक किये जाने चाहिए। पुस्तकों के क्रय-विक्रय और उनके निर्माण के सम्बन्ध में समय-समय पर प्रशिक्षण पाठ्यक्रम आयोजित किया जाना चाहिए। एक अन्य प्रस्ताव द्वारा यह बताया गया कि प्रकाशक गलत शर्तों के साथ लेखकों के साथ अनुबन्ध न करें और लेखक के हित का भी ध्यान रखें। लेखक और प्रकाशक के सम्बन्धों के विषय में जो भ्रान्तियाँ उत्पन्न हो गई हैं, उनके निराकरण के बारे में प्रयत्न किया जाय।

समापन समारोह में स्वागत मंत्री राँका ने राजस्थान पुस्तक व्यवसायी संघ के गठन की जानकारी दी और राजस्थान के पुस्तक व्यवसायियों को सभा में पास किए गए प्रस्तावों के विषय में विस्तृत रूप से प्रकाश डाला तथा कई महत्वपूर्ण प्रस्ताव भी पढ़कर सुनाए।

११वाँ अधिवेशन दिल्ली

१६ एवं १७ जुलाई, १९६६ को सादगी के साथ अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ का ११वाँ अधिवेशन दिल्ली में सम्पन्न हुआ। १६ जुलाई को प्रातः कार्यकारिणी की एक बैठक भूतपूर्व अध्यक्ष ओमप्रकाश की अध्यक्षता में हुई। कार्यसमिति ने विगत वर्ष की रिपोर्ट पर विचार किया और इसके बाद साधारण समिति की रिपोर्ट प्रस्तुत की गयी। सायंकाल ५ बजे संघ का खुला अधिवेशन रामलाल पुरी की अध्यक्षता में आरम्भ हुआ। अध्यक्ष पद से बोलते हुए श्री पुरी ने प्रकाशक और पुस्तक-विक्रेता, प्रकाशक और पुस्तकालय, प्रकाशक और लेखक, लेखक और प्रकाशन व्यवसाय, समाचार-पत्र तथा प्रकाशन व्यवसाय, चित्रकार और पुस्तकों के नमूने, पुस्तकों का मूल्य और कमीशन दर, प्रकाशन-व्यवसाय और सरकार द्वारा संरक्षण, पुरस्कार, टेण्डर प्रणाली, डाकदर, राष्ट्रीयकरण, हिन्दी राष्ट्रभाषा कैसे बनेगी, हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाएँ, पुस्तकें खरीदने की आदत, बर्न कापीराइट कन्वेन्शन, हिन्दी प्रकाशक संघ का मुखपत्र तथा प्रचार-प्रसार आदि विषयों पर विस्तृत प्रकाश डाला। उन्होंने आगे कहा कि पुस्तक व्यवसाय ऐसा उद्योग है जिस पर देश की सांस्कृतिक उन्नति निर्भर करती है। पुस्तकें ऐसी सजीव माध्यम हैं जिसमें अतीत, वर्तमान व भविष्य पर निरन्तर क्रियाशील विचारक निवास करते हैं। मनुष्य के सीमित जीवन में अपरिमित ज्ञान प्राप्त करने में पुस्तकें ही माध्यम हैं। हमारी जनता गरीब है किन्तु हमारे इस गरीब देश में ही ५६ करोड़ रुपए की शराब प्रतिवर्ष बिकती है। केवल सिनेमा से ३० करोड़ रुपए का मनोरंजन कर सरकार वसूल करती है। इसके अतिरिक्त चाय, पान, बीड़ी, सिगरेट का खर्च तो करोड़ों तक

पहुँच जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि व्यर्थ और विलासिता की चीजों पर खर्च की जानेवाली राशि यदि पुस्तकें खरीदने जैसे सत्कार्य में लगे तो मानव जाति का कल्याण होगा।

अधिवेशन में कुल १४ प्रस्ताव विभिन्न विषयों पर पारित किए गए। अगले वर्ष के लिए निम्नलिखित व्यक्तियों का चुनाव हुआ। अध्यक्ष—रामलाल पुरी, उपाध्यक्ष—ओमप्रकाश, मार्तण्ड उपाध्याय, दीनानाथ मल्होत्रा, लक्ष्मीचन्द जैन, श्रीमती प्रकाशवती पाल, प्रधानमंत्री—कृष्णचन्द्र बेरी, संयुक्तमंत्री— रघुबीरशरण बंसल, पुरुषोत्तमदास मोदी, रमेश सन्त, कोषाध्यक्ष—कन्हैयालाल मलिक। इसके अलावा कार्यकारिणी समिति के १५ सदस्य निर्वाचित हुए।

अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ के कार्यसमिति की बैठक हिन्दी प्रचारक भवन, वाराणसी में १९ तथा २० अगस्त १९६६ को हुई जिसमें ४४ सदस्य उपस्थित थे।

संघ के प्रधानमंत्री श्री बेरी ने अपने वक्तव्य में कहा कि सबसे अधिक प्रसन्नता की बात यह है कि संघ के सदस्यों के अतिरिक्त इस अवसर पर विशिष्ट आमंत्रित व्यक्ति भी हमारे बीच उपस्थित हैं। प्रकाशक संघ द्वारा आयोजित नेशनल बुक ट्रस्ट के सेमिनार में पारित प्रस्ताव के अनुसार प्रकाशन व्यवसाय को उद्योग मान लिया गया है। इससे प्रकाशन व्यवसाय को नई दिशा मिलेगी। दूसरे दिन राष्ट्रीय पुस्तक समारोह के अवसर पर पुस्तक प्रदर्शनी में रखे जानेवाले गोष्ठी के विषयों पर विचार-विमर्श हुआ। सभी लोगों ने सुझाव दिया कि इस सम्बन्ध में व्यापक कार्यक्रम बनाया जाय।

संघ की कार्यसमिति की एक बैठक २९ एवं ३० जनवरी, १९६७ को दिल्ली में संघ के अध्यक्ष रामलाल पुरी के निवास स्थान पर हुई। प्रारम्भ में प्रधानमंत्री की रिपोर्ट प्रस्तुत की गयी। राष्ट्रीय पुस्तक समारोह का विवरण, प्रकाशकों की डायरेक्टरी, आकाशवाणी के डायरेक्टर को पुस्तकों के प्रचार-प्रसार के लिए लिखे पत्र तथा एम० एन० दस्तूर एण्ड कं० की सर्वेक्षण सम्बन्धी सूचना आदि से समिति को अवगत कराया गया।

दीनानाथ मल्होत्रा के इस सुझाव पर विचार हुआ कि प्रकाशक संघ का एक स्थायी आफिस बने जिसमें एक वैतनिक मंत्री की नियुक्ति की जाय। मल्होत्राजी ने यह भी सुझाव दिया कि पदाधिकारियों के बीच कार्य का बँटवारा अधिवेशन के समय हो जाय। प्रधानमंत्री ने आश्वासन दिया कि यह प्रणाली अपनाई जायेगी। साथ ही यह भी निश्चय किया गया कि २३ एवं २४ अप्रैल को संघ का आगामी १२वाँ अधिवेशन महाराष्ट्र के पूना नगर में किया जाय और इसके पूर्व संघ का विधान संशोधित कर लिया जाय।

१२वाँ अधिवेशन

संघ का १२वाँ वार्षिक अधिवेशन महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा 'पूना' के आमंत्रण पर २३ एवं २४ अप्रैल, १९६७ को कृष्णचन्द्र बेरी की अध्यक्षता में हुआ। निराला की 'वीणावादिनि वर दे' सरस्वती वन्दना संगीतमय वातावरण में उच्चरित हुई। राष्ट्रभाषा सभा

के प्रकाशन मंत्री तथा अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष गोपाल परशुराम नेने ने अधिवेशन में भाग लेनेवाले प्रतिनिधियों तथा अतिथियों का स्वागत करते हुए अपने भाषण में कहा कि हमारी संस्था के इतिहास में आज का अवसर बहुत ही उल्लेखनीय और महत्वपूर्ण है। पिछले ३०-३५ वर्षों में राष्ट्रभाषा हिन्दी में जो कार्य हुआ है उसी का यह परिणाम है कि हमें प्रकाशक संघ का अधिवेशन यहाँ बुलाने का अवसर मिला। संघ के संयुक्तमंत्री पुरुषोत्तमदास मोदी ने देश-विदेश से प्राप्त सन्देशों व शुभकामनाओं का पाठ किया। डॉ० आनन्दप्रकाश दीक्षित-अध्यक्ष हिन्दी विभाग, पूना विश्वविद्यालय ने अधिवेशन का उद्घाटन करते हुए कहा कि अहिन्दी भाषी प्रदेशों के पाठकों के लिए किस प्रकार की पुस्तकों की अपेक्षा है इस ओर आप लोग ध्यान दें। आप भारत की भिन्न भाषाओं के सर्वोत्तम साहित्य को अनूदित रूप में प्रकाशित करें। अध्यक्षीय भाषण में कहा गया कि आज के हिन्दी प्रकाशक की भूमिका सांस्कृतिक, शैक्षिक और राष्ट्रीय—तीनों ही दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। जहाँ राष्ट्रभाषा हिन्दी ने राष्ट्रीय आन्दोलन को एक सूत्र में पिरोया और हिन्दी प्रकाशकों ने राष्ट्रीय कृतियों को प्रकाशित कर राष्ट्रीय आन्दोलन में योग दिया, वहाँ आज संविधान द्वारा हिन्दी को राष्ट्रभाषा का पद प्राप्त होने पर हिन्दी प्रकाशकों का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वे इस गौरव की रक्षा करें, जो राष्ट्रभाषा के प्रकाशक के नाते उन्हें प्राप्त है। आज के हिन्दी-प्रकाशक को व्यवसायी से परे भी कुछ बनने की आवश्यकता है।

हिन्दी-प्रकाशन के सम्बन्ध में बहुत-सी भ्रान्त धारणाएँ लोगों के मन में हैं। आम धारणा है कि हिन्दी में छपनेवाली किसी भी नयी पुस्तक के दस-बीस हजार पाठक होने ही चाहिए, परन्तु स्थिति ठीक इसके विपरीत है। हिन्दी की पुस्तकें बिकती नहीं हैं, बल्कि बेची जाती हैं। प्रकाशक के लिए तो परमावश्यक है कि वह अपने पाठक की रुचि जाने और उनसे सम्पर्क स्थापित करने का मार्ग खोजे, चाहे वह स्थान भारत की काशी नगरी हो या अमेरिका का बोस्टन शहर। अपने संगठन के प्रति प्रकाशक उदासीन हैं। परस्पर एक दूसरे का सम्मान करना भी हमने नहीं सीखा है। आज के युग में संगठन के माध्यम से बहुत-सी समस्याएँ हल की जा सकती हैं, इसका बोध तो हमें हुआ है, परन्तु बोध की मात्रा में अभी कमी है। राजनीति का चक्र भी स्वाध्याय और पठनाभिरुचि पर प्रभाव डालता है। सरकार विद्यालयों तथा पुस्तकालयों के लिए अनुदान देती है, युनिवर्सिटी ग्रान्ट्स कमीशन कालेजों और विश्वविद्यालयों के लिए अनुदान देता है। देखने में आया है कि अनुदान की रकम से अधिक कमीशनवाली रद्दी पुस्तकें खरीद ली जाती हैं। कहीं-कहीं ऐसा भी देखने में आता है कि पुस्तकें खरीदी ही नहीं जातीं, नकली बिल भी बन जाते हैं जो कि सिर्फ सरकारी लेखा-जोखा के समय दिखा दिए जाते हैं।

अन्तिम प्रश्न यह है कि क्या सशक्त साहित्य का सृजन हो रहा है? कहा जा सकता है कि सरस्वती के उपासक वर्ग ने सदैव अपनी भूमिका का उचित रूप से निर्वाह किया है। कलम के धनी नये लेखक आज भी हमारे बीच हैं। प्रकाशकों को इन्हें परखना चाहिए, क्योंकि इन्हीं की कलम से पाठकों को नए युग का बोध होगा। नई हिन्दी पुस्तकों को देश में उपलब्ध कराने के लिए प्रकाशक संघ ने देश के प्रमुख नगरों में हिन्दी

पुस्तक विक्रय केन्द्रों की स्थापना करने की योजना बनायी है। पुस्तकों के सुमुद्रण के लिए हिन्दी के प्रकाशकों के पास आधुनिक मशीनों का अभाव है। वाणिज्य मंत्रालय को हिन्दी प्रकाशकों को आधुनिक मशीनों के आयात के लिए संघ के माध्यम से कुछ लाइसेंस प्रतिवर्ष देने चाहिए। पोस्टेज की दरें पुस्तकों के लिए कम होनी चाहिए। इससे पाठक मनोवांछित पुस्तकें डाक द्वारा मँगा सकते हैं।

अन्त में सभी प्रकाशकों से अपील करता हूँ कि वे स्वदेशी भावना को अपने हृदय में स्थान दें। अपने को राष्ट्रीय वातावरण के अनुकूल बनायें और पाठकों से सीधा सम्पर्क स्थापित करने का माध्यम खोजें। अध्यक्षीय भाषण के बाद महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा के अध्यक्ष, महामहोपाध्याय 'पद्मभूषण' साहित्य वाचस्पति, दत्तोवामन पोतदार ने आगत अतिथियों को धन्यवाद दिया। इस अवसर पर महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा के मंत्री, ग० वा० करमरकर ने अतिथियों के प्रति आभार प्रकट किया।

२४ अप्रैल, १९६७ को अधिवेशन के दूसरे दिन की कार्यवाही प्रात:काल ७ बजे मासिक पुस्तक प्रदर्शनी की गोष्ठी से आरम्भ हुई। रामलाल पुरी ने पुस्तक प्रदर्शनी की योजना विस्तार से सुनाई और सदस्यों से विचार विमर्श किया। अपराह्न ३ बजे संघ का खुला अधिवेशन प्रारम्भ हुआ, जिसमें संघ के अध्यक्ष की ओर से गत वर्ष का विवरण प्रस्तुत किया गया जो साधारण समिति द्वारा स्वीकृत हुआ।

अध्यक्ष ने आगामी वर्ष के लिए निम्नलिखित पदाधिकारियों तथा कार्यसमिति के सदस्यों की घोषणा की। उपाध्यक्ष—रामलाल पुरी, गोपाल परशुराम नेने, श्रीमती शीला सन्धु, नर्मदाप्रसाद खरे तथा भोलानाथ अग्रवाल —कोषाध्यक्ष, कन्हैयालाल मलिक, प्रधानमंत्री—दयानन्द वर्मा, पुरुषोत्तमदास मोदी, चन्द्रशेखर शास्त्री तथा केदार साथी—संयुक्तमंत्री निर्वाचित किंए गए। कार्यसमिति के अन्य १५ सदस्यों की भी घोषणा की गयी।

१३ अगस्त, १९६७ को आगरा में संघ की कार्यकारिणी की एक महत्वपूर्ण बैठक हुई। संघ के उपाध्यक्ष भोलानाथ अग्रवाल के आमन्त्रण पर अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ की नवगठित कार्यकारिणी समिति की यह प्रथम बैठक थी। बैठक में ४५ प्रमुख प्रकाशकों ने भाग लिया। कार्यसमिति के निर्णयानुसार कहा गया कि पूना अधिवेशन को मूर्तरूप प्रदान करने के लिए संघ आगामी अक्टूबर में नई दिल्ली में एक विशेष सम्मेलन बुला रहा है। इस सम्मेलन में विभिन्न विषयों पर पाठ्य-पुस्तकों का निर्माण करने के लिए तीस समितियों का गठन किया जाएगा। विशेष सम्मेलन का संयोजन श्री लक्ष्मीचन्द जैन करेंगे।

संघ ने प्रस्ताव पारित कर स्टाकहोम के कापीराइट संशोधन पर हुए समझौते का स्वागत किया। संघ ने यह भी कहा है कि यदि ब्रिटेन इस संस्था को नहीं मानता तो संघ वहाँ के प्रकाशनों का बहिष्कार करेगा।

कलकत्ता में नेशनल बुक ट्रस्ट द्वारा आयोजित पुस्तक मेले के अवसर पर २८ जनवरी, १९७३ को भारतीय संस्कृति संसद, कलकत्ता, के सभाकक्ष में अ० भा०

हिन्दी प्रकाशक संघ द्वारा आयोजित पुस्तक-विक्रेताओं तथा प्रकाशकों का सम्मेलन नर्मदेश्वर चतुर्वेदी की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। संघ के प्रधानमंत्री दयानन्द वर्मा ने सम्मेलन का उद्देश्य और परिचय देते हुए कहा कि आज के प्रकाशक और पुस्तक विक्रेता दोनों को एक दूसरे का पूरक होना चाहिए, क्योंकि हिन्दी के पुस्तक उद्योग की स्थिति कुछ ऐसी हो गई है कि वे कभी-कभी एक दूसरे के प्रतियोगी हो जाते हैं। मोहन केड़िया ने हिन्दी पुस्तकों के बढ़ते हुए मूल्य की चर्चा की। इस अवसर पर बलदेव दास, दयानन्द वर्मा, विजयप्रकाश बेरी ने अपने विचार व्यक्त किए। अध्यक्ष पद से बोलते हुए चतुर्वेदी जी ने सरकारी खरीद पर निर्भर होने की प्रवृत्ति को इस व्यवसाय के लिए घातक बताया।

१६वाँ अधिवेशन

अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ का वार्षिक अधिवेशन २५ नवम्बर ७३ को दिल्ली में, संघ के नवनिर्वाचित अध्यक्ष कृष्णचन्द्र बेरी की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। संघ के प्रधानमंत्री दयानन्द वर्मा ने सदस्यों का स्वागत किया और १९७१-७२ तथा १९७२-७३ का आय-व्यय प्रस्तुत किया। राजपाल एण्ड संस के प्रतिनिधि ईश्वरचन्द खण्डेलवाल की शिकायत थी कि राजा राममोहन राय लाइब्रेरी फाउन्डेशन द्वारा जो पुस्तकें खरीदी गई हैं उनमें सरकारी प्रकाशन ही अधिक हैं। उनका सुझाव था कि इस सम्बन्ध में प्रकाशक संघ को कोई सक्रिय कदम उठाना चाहिए। दुख के साथ बताया गया कि शिक्षा-प्रसार के इस युग में उपभोक्ताओं को अपनी खपत का कागज मिलना तो दूर, इतना भी कागज नहीं मिल रहा है जितना कि उन्होंने १९७०-७१ और ७२ में खर्च किया है। तत्कालीन सूचना तथा प्रसारण राज्यमंत्री इन्द्रकुमार गुजराल ने कहा कि आज सम्पूर्ण विश्व में कागज का संकट है। हमारे यहाँ इसकी कमी इसलिए अधिक महसूस की जा रही है कि हमारी माँग इधर काफी बढ़ गयी है। अध्यक्ष पद से आगत अतिथियों का स्वागत करते हुए कहा गया कि नित्य सुबह और शाम चढ़ते उतरते मूल्यों के इस युग में प्रकाशन व्यवसाय की जो भयावह स्थिति हो रही है उसका इस अधिवेशन में उसी परिप्रेक्ष्य में गम्भीरतापूर्वक विचार करके निदेशक सिद्धान्त स्थिर करने होंगे, जिससे कि हम आज की समस्याओं की चुनौती स्वीकार कर सकें। इस समस्या पर विचार करने के लिए हमें तीन पहलुओं को सामने रखना होगा—

१. सामयिक, २. सरकारी सहयोग, ३. आन्तरिक ।

अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ की १९७३-७४ में कार्यसमिति की प्रथम बैठक २५ मई, १९७४ को हिन्दी बुक सेन्टर नई दिल्ली कार्यालय में सम्पन्न हुई। बैठक में विभिन्न प्रकाशन संस्थाओं के २० प्रतिनिधियों ने भाग लिया। प्रधानमंत्री रघुवीरशरण बंसल ने वाराणसी एवं दिल्ली के संघ कार्यालयों द्वारा आगे के कार्यों का विवरण सदस्यों को बताया। बैठक में मुख्य विचार विनिमय का विषय कागज की समस्या थी। इस विचार विनिमय में राजस्थान के झुन्नीलाल जसोरिया, मेरठ के पीताम्बर रस्तोगी, अलवर के चिरंजीलाल जैन, दिल्ली के जवाहर चौधरी, रामतीर्थ भाटिया, दयानन्द वर्मा, रामचन्द्र गुप्त, विश्वनाथ मल्होत्रा, लक्ष्मीचन्द जैन आदि ने भाग लिया।

१७वाँ वार्षिक अधिवेशन

१२ फरवरी, १९७५ को विश्व हिन्दी सम्मेलन के अवसर पर अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ का १७वाँ सम्मेलन नागपुर में सम्पन्न हुआ। संघ के नवनिर्वाचित अध्यक्ष श्री विश्वनाथ ने अपने वक्तव्य में कहा कि कागज की भीषण समस्या के कारण अनेक प्रकाशन-गृह बन्द होने की स्थिति में हैं। क्या सरकार का यह कर्त्तव्य नहीं है कि बाल-साहित्य, धार्मिक-साहित्य, उपन्यास, उद्योग-धन्धों की पुस्तकें, नवसाक्षर ग्रामीण-साहित्य, साहित्यिक कृति जैसे उपन्यास, नाटक, आलोचना आदि के लिए वाणिज्य मंत्रालय अच्छी क्वालिटी का कागज उपलब्ध कराये। अस्वस्थता के कारण निवर्तमान अध्यक्ष होते हुए श्री कृष्णचन्द्र बेरी उपस्थित न हो सके। अपना लिखित सुझाव भेजा—

१. संघ द्वारा हिन्दी पुस्तकों की ग्रन्थ सूची का प्रकाशन वार्षिकी के रूप में किया जाय।

२. प्रकाशक संघ को विभिन्न राज्यों के शिक्षा विभाग तथा विश्वविद्यालयों से अनुबन्धित किए जाने पर बल दिया जाय।

३. सरकारी तथा गैर सरकारी विक्रेता के बिलों की वसूली के सम्बन्ध में संघ की ओर से प्रयास किया जाना चाहिए।

४. पुस्तकों पर छपे दामों से कम दाम लेने के लिये सरकारी संस्थाएँ बहुधा दबाव डालती हैं, इस क्षेत्र में भी उचित कार्यवाही करने के लिए संघ की सहायता ली जानी चाहिए।

५. संघ का अपना कार्यालय (भवन) होना चाहिए। संघ की पत्रिका का प्रकाशन पुन: आरम्भ होना चाहिए।

जुलाई १९७५ में विश्वनाथजी की अध्यक्षता में आयोजित प्रकाशक संघ की कार्यसमिति की बैठक हुई जिसमें कार्यसमिति ने फेडरेशन ऑफ इण्डियन पब्लिशर्स के आग्रह पर संघ का सहयोगी सदस्य बनना स्वीकार कर लिया हैं, किन्तु प्रकाशक संघ अपना पृथक अस्तित्व बनाये रखेगा तथा केन्द्रीय सरकार व अन्य सरकारी सँस्थाओं से पूर्ववत स्थायी सम्पर्क रखेगा और उसमें अपना प्रतिनिधि भेजेगा। यह सुझाव सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिया गया कि १९७५ में द्वितीय विश्व पुस्तक मेले के अवसर पर बुकक्लब पर एक सेमिनार हो तथा पुस्तक विक्रय पर एक रिफ्रेशर कोर्स आयोजित किया जाय।

२०वाँ अधिवेशन

जनवरी १९७६ में दिल्ली में अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ का अधिवेशन विश्वनाथजी की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। अध्यक्ष महोदय ने अपने भाषण में कहा कि प्रकाशक संघ एक व्यावसायिक मंच है। संघ के माध्यम से सदस्यों को उनके व्यवसाय में सहायता न मिले तो संघ का उद्देश्य सार्थक नहीं होगा। इस कामकाजी अधिवेशन में आपने बताया कि पुस्तक व्यवसाय आज संक्रमण काल से गुजर रहा है। आपने सरकार

से अपील की कि इन्डस्ट्रियल फाइनेन्स कारपोरेशन की भाँति पुस्तक वित्त निगम की स्थापना करके सस्ते दर पर पूँजी उपलब्ध कराई जाय, साथ ही डाक की दर भी कम की जाय। इस अवसर पर संघ की प्रधानमंत्री श्रीमती शीला सन्धु ने गत वर्ष की कार्यवाही पढ़ी। संघ के कोषाध्यक्ष कन्हैयालाल की अनुपस्थिति में रघुबीरशरण बंसल ने आय-व्यय का विवरण प्रस्तुत किया। इस वर्ष आयोजित द्वितीय विश्व पुस्तक मेले में संघ की ओर से २४ जनवरी, १९७६ को पुस्तकों के सामूहिक प्रचार-प्रसार विषय पर एक गोष्ठी हुई। १८ से २० मई, १९७६ को नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया तथा अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ के सहयोग से हिन्दी प्रकाशन का आगामी दशक विषय पर एक गोष्ठी का आयोजन हुआ। इस गोष्ठी के अध्यक्ष रमाप्रसन्न नायक तथा निर्देशिका श्रीमती शीला संधू थीं।

२१वाँ अधिवेशन

अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ का २१वाँ अधिवेशन वाराणसी में २१ तथा २२ अप्रैल, १९७७ को सम्पन्न हुआ। आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने उद्‌घाटन भाषण में प्रकाशकों द्वारा हिन्दी के प्रकाशन के क्षेत्र में किए गए कार्यों की सराहना की। इस अवसर पर संघ के नवनिर्वाचित अध्यक्ष झुन्नीलाल जसोरिया के स्वागत में कहा गया कि काशी की साहित्यिक, सांस्कृतिक परम्परा अक्षुण्ण है। रघुबीरशरण बंसल ने प्राप्त सन्देश तथा शुभ कामनाओं का पाठ किया। अपने अध्यक्षीय भाषण में राजस्थान प्रकाशन, जयपुर के संचालक और संघ के नये अध्यक्ष झुन्नीलाल जसोरिया ने स्वागत करते हुए आशा व्यक्त की कि संघ पुस्तक उद्योग की नई राष्ट्रीयनीति के अन्तर्गत देश में पुस्तक पठन-पाठन का नया वातावरण बनाने और अपने सामाजिक मानवीय दायित्व को पूरी तरह से निभा सकने में समर्थ होगा। इस अवसर पर ठाकुरप्रसाद सिंह, लक्ष्मीशंकर व्यास, देवनारायण द्विवेदी, पुरुषोत्तमदास मोदी, वाचस्पति पाठक, हरिकृष्ण गौतम, रघुबीरशरण बंसल, श्री नारायण गौतम और विजयप्रकाश बेरी ने अपने विचार व्यक्त किये। अगले वर्ष के लिए दयानन्द वर्मा संघ के प्रधानमंत्री निर्वाचित हुए।

अधिवेशन में निम्नलिखित प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित किये गये—

१. हिन्दी संस्थान, उत्तर प्रदेश के हिन्दी प्रकाशनों और उनकी कार्यविधियों से संघ समन्वय करे।

२. साहित्यिक पुस्तकों के लिए सस्ते कागज का आवंटन किया जाय । १०+२+३ की शिक्षा प्रणाली को तबतक लागू न किया जाय जबतक शिक्षा की नयी नीति घोषित न हो। पुस्तकों का राष्ट्रीयकरण समाप्त किया जाय तथा डिफेन्स ऑफ इण्डिया रूल्स की जगह सम्बन्धित टेक्स्ट बुक बिल को जनमत संग्रह करने के बाद ही पास किया जाय। जो विषय पाठ्यक्रम में प्रस्तावित हों और जिनपर सरकार पुस्तकें नहीं छापती, उन विषयों की पुस्तकें छापने के लिए प्रकाशकों को सस्ते मूल्य पर कागज दिया जाय।

विश्व पुस्तक मेला

सन् १९७२ तथा १९७६ में दिल्ली में प्रथम तथा द्वितीय विश्व पुस्तक मेले का आयोजन किया गया। तृतीय विश्व पुस्तक मेला इस बार १९७८ में आयोजित किया गया। ४ जून, १९७७ को अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ की कार्यकारिणी की बैठक में निम्नलिखित महत्वपूर्ण निर्णय लिए गए। फेडरेशन ऑफ इण्डियन पब्लिशर्स की कार्यसमिति के लिए रघुबीरशरण बंसल को प्रतिनिधि के रूप में मनोनीत किया गया। नेशनल बुक ट्रस्ट में प्रकाशक संघ का प्रतिनिधित्व करने के लिए कृष्णचन्द्र बेरी का नाम भेजने का निश्चय किया गया। तृतीय विश्व पुस्तक मेले के अवसर पर हिन्दी मण्डप लगाने की रूपरेखा प्रस्तुत हुई। केन्द्रीय हिन्दी संस्थान के लिए झुन्नीलाल जसोरिया, मोहितमोहन बसु, दिनेशचन्द्र ग्रोवर, श्रीमती शीला संधु का नाम प्रस्तावित किया गया। प्रकाशकों की आचार संहिता बनाने तथा पुस्तकों का मूल्य निर्धारण स्थिर करने के लिए जवाहर चौधरी के संयोजकत्व में हरिकृष्ण गौतम, रामतीर्थ भाटिया, चम्पालाल रांका, दयानन्द वर्मा, ओमप्रकाश शर्मा की एक उपसमिति गठित की गयी।

अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ का २३वाँ अधिवेशन १२ फरवरी, १९७८ को दिल्ली में सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर अध्यक्ष कृष्णचन्द्र बेरी ने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा कि संघ अपने जीवन के २५ वर्ष पूरा करने जा रहा है। निश्चित रूप से संघ ने इस अवधि में बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य किए हैं। इन दिनों नेशनल बुक ट्रस्ट की ओर से तृतीय विश्व पुस्तक मेले का आयोजन किया गया। उपराष्ट्रपति बी० डी० जत्ती ने दीप प्रज्वलित कर इस पुस्तक मेले का शुभारम्भ किया।

❀

सस्ता साहित्य मण्डल : 'सर्व जन हिताय सर्व जन सुखाय'

'सस्ता साहित्य मंडल' से मेरा व्यक्तिगत परिचय १९३० के लगभग हुआ, जब मैं ११ वर्ष का बालक था। 'मंडल' के आदि-संस्थापक जीतमल लूणिया मेरे पिता तथा कलकत्ते के प्रसिद्ध प्रकाशक निहालचन्द एण्ड कम्पनी के व्यवस्थापक, निहालचन्द वर्मा के परम मित्र थे। लूणियाजी द्वारा प्रकाशित, महात्मा गाँधी द्वारा लिखित एवं शौकत अली तथा मुहम्मद अली को समर्पित 'हिन्दुस्तान का राष्ट्रीय झंडा' तथा 'असहयोग दर्शन' की दो-दो सौ प्रतियाँ विक्रयार्थ हमने मँगाई थीं। लूणियाजी के माध्यम से ही चन्द्रराज भण्डारी लिखित 'भारत के हिन्दू सम्राट' नामक पुस्तक का पूरा स्टाक तथा वितरण का भार हमें मिला था। सन् १९३२ में 'मंडल' से हरिभाऊ उपाध्याय लिखित 'युगधर्म' पुस्तक प्रकाशित हुई थी। इसकी २५० प्रतियाँ विक्रयार्थ लूणियाजी ने हमें भेजीं। 'युगधर्म' का कलकत्ते की राष्ट्रवादी जनता ने बहुत स्वागत किया। इस पुस्तक का प्रचार हमारी फर्म की ओर से बर्मा, सिंगापुर आदि तक किया गया। लूणियाजी ने योगिराज अरविन्द की पुस्तक 'धर्म और जातीयता' को पं० देवनारायण द्विवेदी से अनूदित कराकर प्रकाशित किया था जो बहुत लोकप्रिय हुई।

'मंडल' के 'सर्व जन हिताय, सर्व जन सुखाय' राष्ट्रीय प्रकाशनों की चर्चा करते हुए मेरे पिताजी ने मुझे बताया था कि १९२५ की बेलगाँव कांग्रेस में 'मंडल' के संस्थापक जीतमल लूणिया राष्ट्रीय साहित्य लेकर वहाँ गये हुए थे। कलकत्ता के कुछ प्रकाशकों की ओर से निहालचन्द वर्मा राष्ट्रीय ट्रैक्ट और राष्ट्रीय कैलेन्डर लेकर इसी कांग्रेस में उपस्थित हुए थे। कानपुर कांग्रेस के अवसर पर लूडो की तरह 'स्वराज दर्शन' खेल भी प्रकाशित किया गया था।

'हिन्दी पुस्तक एजेन्सी' के संस्थापक महावीर प्रसाद पोद्दार ने कलकत्ता के खादी भण्डार से सन् १९३० में नवजीवनमाला सिरीज निकाली, जो एक साल बाद बंद हो गई। बाद में 'मंडल' ने उसे १९३७-३८ में पुनः प्रकाशित किया।

सेठ जमनालाल बजाज बहुत पहले से चाहते थे कि उत्तम पुस्तकें सस्ते मूल्य पर पाठकों को पढ़ने को मिलें, जिससे उनमें देश-प्रेम, राष्ट्रीयता और त्याग की भावना जागृत हो। अतः 'तिलक के स्वराज्य फंड' से २५ हजार रुपये का अनुदान देकर 'सस्ता साहित्य

मण्डल' को सन् १९२५ में एक सार्वजनिक संस्था के रूप में कार्य करने की दिशा दी। 'मंडल' ने कभी भी हल्के साहित्य का प्रकाशन नहीं किया। जनता में राष्ट्रीयता की भावना जगे और सुरुचिपूर्ण साहित्य को पढ़ने का प्रोत्साहन मिले, इसीलिय सस्ता साहित्य मण्डल की स्थापना की गई थी। जब 'मंडल' से पट्टाभिसीतारमैया के 'कांग्रेस का इतिहास' का प्रथम संस्करण प्रकाशित हुआ तो कांग्रेस के नेताओं और राष्ट्रप्रेमी जनता ने उसे अपना दस्तावेज माना। आजादी के बाद कांग्रेस के जयपुर-अधिवेशन के अवसर पर मार्तण्ड उपाध्याय ने इसका सज-धज के साथ दूसरा संस्करण प्रकाशित किया। उन्हें विश्वास था कि पुस्तक की काफी प्रतियाँ बिकेंगी, परन्तु बहुत अधिक संख्या में न बिकने के कारण उन्हें थोड़ी निराशा हुई। सन् १९३० में बापू का 'गीता का भाष्य', 'मंडल' ने छापा। बाद में 'नवजीवनमाला' के अन्तर्गत इसे १९३१ में प्रकाशित किया गया।

१९३७ में अपनी बर्मा-यात्रा के सिलसिले में मुझे तत्कालीन भारतीय प्रान्त बर्मा प्रदेश कांग्रेस के महामंत्री रमेश मेहता से मिलने का अवसर मिला। उन्होंने पूछा कि क्या मैं 'अनासक्ति योग' की १०० प्रतियाँ रंगून, माण्डले आदि स्थानों पर उनके दिये पतों पर भिजवा सकता हूँ? इसी यात्रा के दौरान माण्डले में मुझे बर्मा के राष्ट्रपिता आँग-साँन से मिलने का अवसर मिला। वह उस समय विद्यार्थी थे। उन्होंने 'मंडल' द्वारा प्रकाशित बापू की आत्मकथा तथा सत्य के प्रयोग के विषय में जानने की इच्छा प्रकट की। इन्हीं दिनों 'मण्डल' द्वारा क्रोपाटकिन लिखित 'रोटी का सवाल' प्रकाशित हुआ। अराजकतावादी आन्दोलन का यह सैद्धान्तिक ग्रन्थ माना जाता था। हमारे देश के क्रान्तिकारियों ने इसे बड़ी रुचि के साथ पढ़ा।

राजेन्द्रबाबू की आत्मकथा का प्रकाशन पहले पटना के एक सज्जन ने १९४५-४६ में किया था। पुस्तक रायल साइज में लगभग ५०० पृष्ठों की जिल्दबँधी थी। जहाँ तक मैंने सुना था, वे सज्जन २५ प्रतिशत रायल्टी देना चाहते थे और मृत्युंजय बाबू ४० प्रतिशत रायल्टी माँग रहे थे। मृत्युंजयबाबू का आशय पुस्तक से कोई लाभ कमाना नहीं था, परन्तु वे इस धन को राष्ट्रीय आन्दोलन में भेंट करना- चाहते थे। बाद में राजेन्द्रबाबू की आत्मकथा का दूसरा संस्करण 'मंडल' से प्रकाशित हुआ। मैं प्रभुदयालजी हिम्मतसिंह का पत्र लेकर राजेन्द्रबाबू से मिला था। वे उन दिनों कुछ अस्वस्थ थे। जब मैंने उनकी आत्मकथा को साहित्य की बहुत बड़ी निधि बताया तो उन्होंने हँसते हुए कहा कि इसे 'मंडल' ने लोकप्रिय बना दिया।

'मंडल' ने एक हजार रुपये की सहायक-सदस्य-योजना प्रचलित की थी, जिसके द्वारा अपने प्राप्य प्रकाशन तथा आगे होनेवाले प्रकाशनों को एक निश्चित अवधि तक देते रहने के साथ-साथ सदस्यता राशि को लौटा देने की घोषणा भी की गयी थी। मार्तण्ड उपाध्याय और यशपाल जैन के प्रयत्न से इस योजना में 'मंडल' को बड़ी सफलता मिली।

मुझे आज भी दक्षिण अफ्रीका के स्वामी भवानी दयाल संन्यासी नहीं भूलते हैं, जिनकी पुस्तक 'प्रवासी की आत्मकथा' की एजेन्सी लेकर 'मंडल' ने बेचा था। सम्भवत: मैंने इन्हें कलकत्ता के शम्भूप्रसादजी वर्मा की प्रकाशन-संस्था 'कलकत्ता पुस्तक भण्डार' में देखा। था। उन दिनों पं० राजवल्लभ ओझा, पं० उमादत्त शर्मा भी वर्माजी के यहाँ बहुधा आते-जाते थे। मैं उन दिनों 'बंगाल छात्र संघ' का मंत्री था और मुझमें एक लालसा बनी रहती थी कि राष्ट्रवादी लेखकों का आशीर्वाद प्राप्त करूँ।

सर्वोदय साहित्य का 'मंडल' ने अपने प्रकाशनों के द्वारा गाँधीजी तथा विनोबाजी आदि के विचारों का व्यापक प्रसार किया। विनोबाजी के भूदान-यज्ञ को तो बहुत बड़ा बल दिया।

'मंडल' द्वारा प्रकाशित कुछ पुस्तकें बहुत ही चर्चित रहीं। इनमें नेहरूजी की 'विश्व इतिहास की झलक', उनकी आत्मकथा 'मेरी कहानी' और बाद में प्रकाशित 'इन्दु से प्रधानमंत्री' आदि प्रमुख हैं।

'मंडल' के 'जीवन साहित्य' पत्रिका को मैं नियमित रूप से पढ़ता हूँ, परन्तु मेरा ऐसा विचार है कि यह पत्रिका चालीस वर्ष से अधिक उम्र के लोगों के लिए है। इस पत्रिका को इस ढंग से बनाया जाय जिससे नवयुवक भी इसकी ओर आकृष्ट हों, तो लोगों का बहुत हित होगा।

'मंडल' की स्वर्ण जयन्ती हिन्दी-प्रकाशन-युग की एक अभिनव घटना है। इससे प्रकाशकों को सत्साहित्य के प्रकाशन की प्रेरणा मिलेगी।

दृष्टिकोण

✍ हमारा दायित्व

✍ बाल साहित्य : दशा और दिशा

✍ बाल पुस्तक सप्ताह

*

हमारा दायित्व

आज यह बात काफ़ी स्पष्ट हो चुकी है कि शहरों और ग्रामों के पाठकों की पठन-रुचि का अनुशीलन कर स्वस्थ साहित्य का प्रकाशन किया जाय और उसका समुचित रूप से प्रचार-प्रसार हो। राष्ट्रभाषा हो जाने के बाद भी हिन्दी के साहित्यिक प्रकाशनों की बिक्री का आज जो स्वरूप है उसे बहुत उत्साहवर्धक नहीं कहा जा सकता। स्वाधीनोत्तर काल में शिक्षा के प्रसार के कारण पठन-रुचि बढ़ी ही है, परन्तु हिन्दी के लेखकों और प्रकाशकों के सम्मिलित प्रयत्न के अभाव में इस स्थिति का विशेष लाभ नहीं उठाया जा सका। इसके दो प्रमुख कारण हैं—एक है अधिकांश प्रकाशकों का अपने सामाजिक दायित्व को न समझना और दूसरा, सुधी प्रकाशकों को पुस्तकों के प्रचार-प्रसार में साहित्यकारों तथा शिक्षाविदों का सहयोग न मिलना।

प्रकाशकों के दायित्व के विषय में कहा जा सकता है कि अधिकांश लोग आज भी समय और काल को न समझ पाने के कारण पुस्तक-प्रकाशन के इस पुनीत व्यवसाय को खालिस बनिये की दुकान समझ बैठे हैं। ऐसे वर्ग को यह ज्ञात ही नहीं है कि तेजी के साथ बढ़ती हुई मानव-प्रगति में उन्हें ज्ञान-प्रसार की महत्त्वपूर्ण भूमिका निभानी है। साहित्यकारों द्वारा प्रस्तुत उनकी रचनाओं और उनके जीवन का समुचित मूल्यांकन नहीं किया गया, तो यह कड़ी एक खाईं का रूप ले लेगी। हिन्दी का क्षेत्र जितना बृहत् है उसे देखते हुए हमारे प्रकाशकों की आर्थिक सीमा बहुत ही कम है। बहुत से प्रकाशक इस व्यापकता में आगे बढ़ने की चेष्टा न कर अपना दायरा घोर निजी स्वार्थ तक सीमित कर लेते हैं। उन्हें न तो साहित्यकार के पारिश्रमिक की चिन्ता होती है और न ही समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्व का अनुभव। ऐसे ही लोगों ने निष्ठावान् प्रकाशकों के मार्ग में काँटे बिछा दिये हैं। अच्छा हो, ये प्रकाशक समय रहते अपने कर्त्तव्य को समझें और परस्पर सहकारिता का पथ अपनाकर प्रकाशक की सही भूमिका का निर्वाह करें। विभिन्न प्रकाशक संघ इस दिशा में सभी प्रकाशकों का सही दिशा-निर्देश कर सकते हैं।

हमारे साहित्यकारों को भी प्रकाशकों के महत्त्व को समझना चाहिए। अच्छा हो कि आप अपनी कटु आलोचनाओं से इस अंग को कमजोर न बनायें। साथ ही यह समझने की चेष्टा करें कि प्रकाशकों की क्या-क्या कठिनाइयाँ हैं और आप उनके निवारण में कहाँ तक सहायक हो सकते हैं। राष्ट्रीय पुस्तक-समारोह अथवा अन्य ऐसे आयोजनों में प्रकाशकों को योंग दें, जो साहित्य के प्रचार के लिए प्रकाशक-संघ अनुष्ठित करता है। लेखकों का सबसे बड़ा योग है समाज की आवश्यकतानुसार साहित्य का सर्जन करना और प्रकाशक का कर्त्तव्य है उसे प्रकाशित कर सर्वसाधारण तक पहुँचाना। इस तरह दोनों ही एक-दूसरे के पूरक हैं। दोनों एक-दूसरे के असहयोगी रह कर नहीं चल सकते।

सामान्य बात पर लेखक-प्रकाशक दुराव उचित नहीं है। प्रकाशक को इस व्यवसाय में लेखक को भी एक भागीदार मानना चाहिये। हमारे कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि प्रकाशक के ऊपर प्रकाशन के अतिरिक्त जो प्रचार का व्यय-भार है उसे न गिना जाय, वरन् हमारा स्पष्ट अभिप्राय यह है कि लाभांश में साहित्यकार को उसका उचित अंश रॉयल्टी के रूप में अवश्य मिलना चाहिए। आज हमारे अधिकांश लेखकों की स्थिति बड़ी ही दयनीय है। इस दिशा में प्रकाशकों को सद्भावना से काम लेना होगा। भगीरथ बनकर साहित्यकार की साहित्य-गंगा को समाज के शुष्क परिवेश में प्रवाहित कराना होगा, जिससे जन-मनोभूमि उर्वरा होकर पुष्पवती और फलवती हो सके।

हिन्दी के साहित्येतर वाङ्मय की समस्या

किसी भाषा की समृद्धि का परिचय उस भाषा में रचित साहित्य से ठीक-ठीक नहीं मिलता। साहित्य के किसी अङ्ग विशेष—काव्य,. नाटक, उपन्यास, निबन्ध, आलोचना, शोध-प्रबन्ध, काव्याङ्ग आदि में से किसी एक पर लेखनी उठाना उतना श्रम-साध्य नहीं, जितना किसी साहित्येतर विषय—गणित, विज्ञान, ज्योतिष, आयुर्वेद, भूगोल, खगोल विद्या, दर्शन आदि पर होता है। साहित्य का संबंध मानव-हृदय से अधिक होता है तथा साहित्येतर का संबंध मानव-बुद्धि से। दोनों में से किसी एक की भी उपेक्षा भाषा के पूर्ण विकास की अवरोधक होती है। यह सच है कि किसी भाषा की शैशवावस्था में भाषा के ये दोनों अंग साथ ही साथ विकसित नहीं होते। जिस प्रकार मनुष्य अपनी शैशवावस्था से तरुणावस्था तक भावना-प्रधान होता है, तदनन्तर वय की प्रौढ़ता के साथ बुद्धि में भी प्रौढ़ता आने लगती है और उत्तरोत्तर मनुष्य भावना-प्रधान कम, बुद्धि-प्रधान अधिक होता जाता है, ठीक यही अवस्था भाषा की भी होती है। किसी भी भाषा में आरम्भ में कहानी आदि के रूप में ही साहित्य की सृष्टि होती है। उस भाषा का व्यवहार करनेवाला मानव-समूह जैसे-जैसे मानसिक-विकास प्राप्त करता जाता है, वैसे-ही-वैसे साहित्येतर विषयों के वाङ्मय की आवश्यकता उसके लिए अनिवार्य होती ज़ाती है।

जब तक हमारे देश में अँग्रेजी भाषा को राजभाषा के रूप में मान्यता प्राप्त थी, देश के विद्वानों का ध्यान साहित्येतर विषयों पर ग्रन्थ-निर्माण की ओर नहीं गया। जब स्वतंत्र भारत का संविधान अस्तित्व में आया और उसमें हिन्दी को इस नए राष्ट्र की राष्ट्रभाषा के रूप में मान्यता मिली, तब स्वतंत्र-चेता विद्वानों ने अनुभव किया कि साहित्येतर प्रत्येक विषय पर राष्ट्रभाषा में ग्रन्थों का होना नितान्त आवश्यक है; क्योंकि ग्रन्थों के अभाव में राष्ट्रभाषा के माध्यम से शिक्षा देना ही कठिन होगा। यही सोचकर राष्ट्र और राष्ट्रभाषा के मान-वर्द्धन की दृष्टि से कतिपय विद्वज्जन अपने ज्ञान के क्षेत्र में ग्रन्थ-रचना में प्रवृत्त हुए।

यह सच है कि नया मार्ग बनाना कठिन होता है। यही कारण है कि भारत का अधिकांश प्राचीन नेतृवर्ग हिन्दी को अपनाने से कतराता है। यह कम आश्चर्य और हीनता की बात नहीं कि जिस संस्कृत भाषा में साहित्येतर विषयों पर भी प्रचुर वाङ्मय उपलब्ध है, उसकी शिक्षा भारत के विश्वविद्यालयों में आज भी संस्कृत या हिन्दी के माध्यम से न देकर अँग्रेजी के माध्यम से दी जाती है। इसमें सन्देह नहीं कि जिस दिन सारे भारत में

शिक्षा का माध्यम राष्ट्रभाषा कर दी जाएगी, सभी विषयों पर ग्रन्थ उपलब्ध होने लगेंगे तब समर्थ भारतीय विद्वानों-द्वारा ही वह कार्य सम्पन्नता प्राप्त कर लेगा। पहले ग्रन्थ हाथों में आ जाये तभी शिक्षा का माध्यम राष्ट्रभाषा होगी, यह टाल-मटोल की नीति है और राष्ट्र तथा राष्ट्रभाषा के प्रति गौरव की भावना की न्यूनता प्रकट करती है। दूसरे देश की भाषा का आश्रय लेकर न तो कोई देश यथार्थतः प्रगति कर सकता है और न दूसरे देशों के समक्ष स्वाभिमान से सिर ऊँचा करके खड़ा हो सकता है। अतः राष्ट्रभाषा में साहित्येतर ज्ञान-विषयक वाङ्मय की अभिवृद्धि समर्थ विद्वानों का कर्त्तव्य हो जाता है।

दूसरी बात इस विषय में कहने की यह है कि जो विद्वान् ज्ञान-विज्ञान-विषयक ग्रन्थों का प्रणयन करें, समाज और शासन-द्वारा उनका समुचित सम्मान होना चाहिए। साहित्यकारों से कुछ अर्थों में उनका महत्त्व अधिक ही ठहरता है। उनके द्वारा भाषा की अशक्तता, असमर्थता और संकीर्णता दूर होती है। इस तरह राष्ट्रभाषा साहित्य तथा ज्ञान-विज्ञान के सभी क्षेत्रों पर समान अधिकार की क्षमता प्राप्त कर लेती है। साहित्येतर विषयों पर ग्रन्थ-निर्माण के प्रोत्साहन के लिए भी ऐसे लेखकों का समुचित सम्मान आवश्यक है। हमारा विश्वास है कि सारा राष्ट्र इस बात की महत्ता का अनुभव करेगा और ज्ञान-विज्ञान के समर्थ ग्रन्थ-प्रणेता विद्वानों को उनकी कृतियों के अनुरूप यथोचित सम्मान प्रदान करने में संकोच नहीं करेगा।

राष्ट्रीय लिपि की समस्या

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने 'साहित्य की महत्ता' का मूल्यांकन करते हुए यह लिखा है कि विजित जाति पर विजेता जाति की भाषा अपना आधिपत्य स्थापित अवश्य कर लेती है, किन्तु यह आधिपत्य तभी तक रहता है, जब तक विजित जाति जगती नहीं। जब विजित जाति स्वतंत्र होकर चेतती है तो वह विदेशी भाषा का कृत्रिम आधिपत्य दूर फेंक देती है। इटली, जर्मनी, इंग्लैण्ड आदि देशों के साहित्य का इतिहास इसका प्रमाण है। जब अँग्रेज जाति जगी तब उसने फ्रांसीसी भाषा की दासता का व्यामोह परे फेंक दिया और उसके सारे गुणों से दृष्टि हटाकर अपनी मातृभाषा के सम्मान और संवर्द्धन में लगा दिया। वही अँग्रेजी, जो कुछ दिनों पूर्व अपनी जन्म-भूमि में ही अनादृत और उपेक्षित रही, आज सर्व-सपृक्त अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार की भाषा हो रही है। कोई देश जब तक अपनी भाषा का सम्मान स्वयं नहीं करता, तब तक विदेशों में उसके सम्मान का प्रश्न ही नहीं उठता। राष्ट्र-प्रेम की पूर्णता राष्ट्रभाषा-प्रेम में निहित है। दुःख तो यह है कि भारत का शासक-मण्डल न स्वयं जागृत है और न जागृत देशों से प्रेरणा ही ग्रहण करता है। अँग्रेजी भाषा की दासता की मोह-निद्रा अभी पूर्णतया भंग नहीं हुई है। निहित-स्वार्थी राजनीतिज्ञ राष्ट्रभाषा के व्यवहार पर एक-न-एक अड़ंगा लगाया करते हैं अन्यथा भारत की जनता का हिन्दी-प्रेम निर्विवाद है। यह अलग बात है कि कतिपय स्वार्थान्ध राजनीतिज्ञ जनता की दाल में मक्खी डालने की आदत से बाज नहीं आ रहे हैं।

राष्ट्रभाषा हिन्दी को राष्ट्रव्यापी व्यावहारिक रूप देने के लिए भारत के पूर्व शिक्षा-मंत्री एम० सी० छागला ने 'गुजराती साहित्य-परिषद्' के २२वें अधिवेशन का उद्घाटन

करते समय अपने भाषण में एक सुन्दर सुझाव देते हुए स्थानीय या प्रादेशिक भाषा के प्रति प्रेमातिशयता को राष्ट्र की एकता में सबमें बड़ी बाधा बताया था।

यह सत्य है कि यदि हम अपने-अपने राज्य की भाषा से ही चिपके रहना चाहेंगे तो देश-भाषा या राष्ट्रभाषा को अपनाने की उदारता हममें नहीं पनपेगी? उन्होंने आगे बताया था कि जब तक हम हिन्दी को सार्वदेशिक भाषा का विकसित रूप नहीं दे देते तब तक हमें वर्तमान व्यवस्था पर ही सन्तोष करना चाहिए। राष्ट्रभाषा को शीघ्र सार्वदेशिक व्यवहार की भाषा बनाने की दिशा में जो सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सुझाव उन्होंने रखा, वह भारत की सभी भाषाओं द्वारा एक लिपि को ग्रहण करने का था। उनका यह कथन यथार्थ है कि एक लिपि के ग्रहण द्वारा विभिन्न प्रान्तों के लोग परस्पर अधिक समीप आ जायेंगे। पहले भारत के लोक-व्यवहार की भाषा संस्कृत थी, उसकी लिपि भी नागरी थी। अत: यदि नागरी लिपि को सभी राज्य स्वीकार कर लें, तो निश्चय ही सारे देश में भ्रातृ-भावना का उत्कर्ष होगा। उन्होंने यह भी कहा था कि विभिन्न भाषाओं की पुस्तकें अधिकाधिक संख्या में नागरी लिपि में मुद्रित होनी चाहिए। इस संबंध में उन्होंने उर्दू की पुस्तकों का उल्लेख किया, जो नागरी लिपि में छपीं और हजारों की संख्या में बिक गयीं। विभिन्न भाषा के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का हिन्दी में अनुवाद प्रस्तुत करने की महती आवश्यकता की ओर भी उन्होंने हमारा ध्यान आकृष्ट किया।

नागरी लिपि सर्वगुण-सम्पन्न, सर्वाधिक सरल और सर्वाधिक वैज्ञानिक लिपि है, इसे डॉ. सुनीतिकुमार चटर्जी जैसे महान् भारतीय भाषाशास्त्री और स्तुर्तवाँ—जैसे विदेशी भाषा-वैज्ञानिक एक स्वर से स्वीकार कर चुके हैं। अस्तु, जिस भाषा को भारत के महामनीषी स्वामी दयानन्द सरस्वती, राजा राममोहनराय, डॉ० एल० राय, केशवचन्द्र सेन, अमृतलाल चक्रवर्ती, महात्मा गाँधी प्रभृति एक स्वर से सर्वगुण-सम्पन्न और सार्वदेशिक व्यवहार-योग्य स्वीकार कर चुके हैं, उसे सम्प्रति देश के भीतर व्यावहारिक रूप देने में शैथिल्य दिखाना अपने महान् कर्त्तव्य से पराङ्मुख होना ही कहा जायेगा। हम तब तक अन्य देशों के समक्ष सिर ऊँचा करके खड़े नहीं हो सकते जब तक अपनी राष्ट्रभाषा को सच्चे अर्थ में व्यावहारिक राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठित नहीं कर देते। हमारा राष्ट्र तभी सच्चे गौरव का अधिकारी होगा जब सारा देश हृदय से राष्ट्रभाषा का सम्मान करने लगेगा।

साहित्य में अश्लीलता

साहित्य समाज का दर्पण होता है। युगविशेष के साहित्य को देखकर तत्कालीन समाज की मनोवृत्ति का पता सरलता से लग जाता है। युग-धर्म का प्रतिनिधित्व करते हुए साहित्य मानवता को ऊर्ध्वमुखी बनाने का शाश्वत सन्देश देता है, यही उसका वैशिष्ट्य है। मानवता को अधोमुखी बनानेवाली प्रवृत्तियाँ जिस वाङ्मय में बलवती होती हैं, वह साहित्य नहीं कहा जा सकता। 'सहित' का भाव ही यदि साहित्य है तो उसमें हमें प्राणिमात्र के हित या मंगल की विधायिनी-शक्ति लानी होगी। मानव स्वभाव में ऐसी

सहज दुर्बलता होती है जो असत् मार्ग की ओर बड़े वेग से खींच ले जाती है। साधारण जन तो दुष्प्रवृत्तियों का सहज ही शिकार हो जाते हैं। इसी बात को ध्यान में रखकर सच्चा साहित्यिक या संस्कार-सम्पन्न साहित्यिक बड़ी सावधानी से कुश-कण्टकों को बचाते हुए पाठकों को अभ्युदय के पथ पर चलने को प्रेरित करता है। प्राचीन आचार्यों ने जहाँ साहित्य के गुणों की गणना करके उसका विधान किया, वहीं दोषों की गणना करके उसके परिहार की भी सम्मति दी। इन दोषों में अश्लीलता, अनुचितार्थता और ग्राम्यत्व विशेष ध्यान देने योग्य हैं। ध्यान देने योग्य इसलिए हैं कि सामान्यजनों के हृदयों में इनके प्रति विकर्षण न होकर आकर्षण ही अधिक होता है।

आज हिन्दी-साहित्य में सजग प्रहरियों के अभाव में अनेक लेखकों में ये दुष्प्रवृत्तियाँ जड़ जमाती जा रही हैं। इससे लोक का अहित होता है, समाज पतनोन्मुख होता है। इस ओर ध्यान नहीं दिया जा रहा है। जुगुप्सा, लज्जा और अमंगल व्यञ्जक भावनाओं का जितना शीघ्र निराकरण किया जाय उतना ही अच्छा। इस मार्ग को प्रशस्त करने में न केवल लेखकों का अपितु प्रकाशकों का भी उतना ही दायित्व है। हम आशा के साथ प्रकाशक-बन्धुओं से भी विनम्र अनुरोध करते हैं कि इस प्रकार की प्रवृत्तियों को प्रसार का अवसर न देकर लोकाराधन का प्रशस्त-पथ अपनाएँ।

जब प्रकाशक और लेखक की दृष्टि लोक-हित की ओर से हटकर अर्थ की ही ओर केन्द्रित हो जाती है, तब अश्लील साहित्य का प्रचुरता से सर्जन होने लगता है। किन्तु हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि लोक-हित के साथ ही साथ हमारा भी हित सम्बद्ध है। यदि समाज का अहित होता है तो हमारा भी अहित अपरिहार्य है। अत: ऐसे साहित्य को प्रोत्साहन देना हमारा कर्त्तव्य है जो पाठक को पढ़ने के पश्चात् कुछ सोचने और चिन्तन करने को बाध्य कर दे। मनुष्य का कल्याण समाज-बद्ध रहने ही में है। समाज की विच्छृंखलता मानवता के विनाश की प्रक्रिया है। मानवता को जीवित रखने की शक्ति साहित्य में ही होती है। वह हमारी आध्यात्मिक शक्ति को उद्बोधन देता है। एकान्तिक भौतिकता की पूजा श्लाघ्य नहीं होती। अत: समय रहते हमें सावधान हो जाना चाहिए।

❀

बाल-साहित्य : दशा और दिशा

बालक प्रकृति की श्रेष्ठतम कृति है, अनमोल देन है तथा सबसे निर्दोष वस्तु है। वह सहज है, सरल है। उस पर न कोई छाया है और न किसी पूर्वाग्रह की कालिमा है। कोरे स्लेट की तरह वह निर्मल है जिस पर कुछ भी लिखा जा सकता है। उसके अलिखित और अनचिन्हे भविष्य की दिशा निश्चित करना हमारा काम है। हम यह कार्य साहित्य के माध्यम से करते हैं। इसीलिए बाल साहित्य की महत्ता अन्य साहित्य से अधिक हो जाती है, क्योंकि वह बालकों में संस्कार की सृष्टि करता है। उन्हें वह देता है जो बालकों के पास नहीं होता।

क्या, क्यों और कैसे की अतुल सम्पत्ति लेकर बालक धरती पर आता है और इन्हीं के सहारे उसकी जिज्ञासा ज्ञान का अर्जन करती है। यह ज्ञान जहाँ उसे एक ओर सहज अनुभव से प्राप्त होता है वहीं दूसरी ओर बाल-साहित्य अपने प्रयास से उसकी जिज्ञासा शान्त करता चलता है। इन्हीं दृष्टियों से बाल साहित्य का भी मूल्यांकन होना चाहिये। वस्तुत: अभी यह हिन्दी में नहीं हुआ है। विदेशों में बालक के मनोवैज्ञानिक विकास की, उनकी आवश्यकता तथा उनकी ग्राह्यता के सम्बन्ध में अनेक शोध और सर्वेक्षण हुए हैं। जबकि हमारे देश में ऐसे सर्वेक्षण की ओर अभी बहुत सोच नहीं पाये हैं। जिन्हें हम मानवता का जनक समझते हैं, वे अब भी उपेक्षित हैं।

प्रयास अभी अधूरे

बाल साहित्य जहाँ बच्चों की रुचि की सन्तुष्टि करता है, इसलिये उसमें बालकों की जिज्ञासा को शान्त करने की क्षमता भी होनी चाहिये। सिंहासन बत्तीसी, बेताल पचीसी, ईसप की कहानियाँ आदि ग्रन्थ बाल-साहित्य के नाम पर हमारे यहाँ बहुत पहले से उपलब्ध हैं। इन कहानियों में जीवन का शाश्वत-सत्य बोलता है। इनमें स्थायी मानव मूल्यों की स्थापना है। परिश्रम करना, ज्ञानार्जन करना, बड़ों का आदर करना, गुरु की सेवा आदि के सम्बन्ध में बहुत कुछ इनमें कहा एवं बताया गया है, किन्तु वह आधुनिक जीवन के परिप्रेक्ष्य में अपूर्ण हैं। आज का जीवन वैज्ञानिक उपलब्धियों से घिरा है। रेडियो, टेलिविजन, इलेक्ट्रॉनिक के अनेक उपकरण आज बच्चों के सामने हैं। जिन्होंने आज के जीवन को सहज बनाने की चेष्टा की है। वायुयान, जलयान जिन्होंने हमें गति प्रदान की है। एटमबम और युद्धक मिसाइल्स भी सामने हैं जिन्होंने जीवन को दुर्गति प्रदान की है। बच्चों की सहज जिज्ञासा इन सबको जानना चाहती है। वह जानना चाहती है कि बम्बे में पानी कैसे आता है। पत्र जो डाक के डिब्बे में डाले जाते हैं वे कैसे अभीष्ट स्थान पर पहुँच पाते हैं। दूर बैठे व्यक्ति से बात कैसे होती है। पक्षियों की तरह

बायुयान हवा में कैसे उड़ते हैं। क्या इन सबका पूरा-पूरा उत्तर आज का हमारा बाल साहित्य दे सकने में समर्थ है?

यह सत्य है कि इधर प्रभूत बाल साहित्य प्रस्तुत हुआ है। इधर आये दिन नगरों में उच्चकोटि की बाल पत्रिकायें भी निकल रही हैं। बालगीतों के क्षेत्र में कुछ उत्कृष्ट रचनायें आयी हैं। बाल कहानी और नाटक भी लिखे जा रहे हैं। बाल साहित्य के लेखकों के समग्र भी प्रकाशित हो रहे हैं। ये शुभ लक्षण हैं, किन्तु बाल साहित्य और उसके विकास की यह दिशा समुचित नहीं लगती। अंग्रेजी में शेक्सपियर के नाटकों के बाल संस्करण प्रकाशित हुए हैं। संसार के 'क्लैसिकों' के बाल संस्करण देखे जाते हैं। क्या हिन्दी में 'रामचरित मानस' का बालसंस्करण है तथा सूर, कबीर, रहीम ऐसे कवियों के जो हमारे जन-जीवन में समाये हुए हैं के सम्बन्ध में कोई बाल संस्करण निकला है? वास्तव में ये न तो प्रकाशित हैं न कहीं से प्रकाशित होने की योजना की कोई जानकारी है।

आवश्यक साहित्य का प्रभाव

फिर वैज्ञानिक उपलब्धियों की जानकारी देनेवाले बाल साहित्य तो नगण्य ही है। आज भी बच्चों के लिए ग्रहण, राहु और केतु नामक ग्रह नक्षत्र राक्षसों की करामात ही हैं। आर्य भट्ट के सम्बन्ध में जितनी जानकारी हमारे पास आयी, उसका पाँच प्रतिशत भी हम बच्चों को नहीं दे पाये। ऐसा विषय भी बाल-साहित्य के अन्तर्गत नहीं लिया गया जो इस कृषिप्रधान देश में कृषि से सम्बन्धित है—जैसे बीज की कहानी, मिट्टी की कहानी, दुनियाँ कैसे बनी। ऐसे विषयों पर बहुत कम बाल-साहित्य है। अन्धविश्वासों को ध्वस्त करनेवाला भी बाल-साहित्य नहीं है। आज भी जादू, टोना और भूत-प्रेत की कहानियाँ बाल पाकेट बुक्स के अन्तर्गत प्रकाशित होती हैं। साहस के नाम पर कुछ हलके और भद्दे ढंग की जासूसी कहानियाँ बच्चों की पुस्तकों में दिखाई देती हैं। इन सबका प्रभाव बाल मस्तिष्क पर क्या पड़ेगा, इसे सहज ही समझा जा सकता है।

फिर अभी तक जो बाल-साहित्य आया है, वह नगरीय बालकों की मानसिकता को ध्यान में रखकर लिखा गया है। ८० प्रतिशत बच्चे जो गाँवों से आते हैं, उन गाँवों की परिस्थिति से बाल साहित्य अछूता है। उनमें न तो वहाँ की मिट्टी की सुगन्ध है और न सूनी झोपड़ियों का हाहाकार।

विषय, वस्तु और भाषा

विषय और वस्तु के सन्दर्भ में हमने बहुत अधिक क्षेत्र अछूता छोड़ रक्खा है। नेशनल बुक ट्रस्ट और चिल्ड्रेन बुक ट्रस्ट ने इस क्षेत्र में कुछ महत्त्वपूर्ण काम किये हैं, निश्चित रूप से वे सराहनीय हैं। किन्तु इस कार्य को अभी बहुत आगे बढ़ाना है।

भाषा की दृष्टि से भी बाल-साहित्य के लेखकों का दायित्व कम नहीं है, किस वय सीमा के बच्चे का शब्दज्ञान कितना होगा, इस पर हमारे देश में कभी विचार किया

बाल-साहित्य : दशा और दिशा

बालक प्रकृति की श्रेष्ठतम कृति है, अनमोल देन है तथा सबसे निर्दोष वस्तु है। वह सहज है, सरल है। उस पर न कोई छाया है और न किसी पूर्वाग्रह की कालिमा है। कोरे स्लेट की तरह वह निर्मल है जिस पर कुछ भी लिखा जा सकता है। उसके अलिखित और अनचिन्हे भविष्य की दिशा निश्चित करना हमारा काम है। हम यह कार्य साहित्य के माध्यम से करते हैं। इसीलिए बाल साहित्य की महत्ता अन्य साहित्य से अधिक हो जाती है, क्योंकि वह बालकों में संस्कार की सृष्टि करता है। उन्हें वह देता है जो बालकों के पास नहीं होता।

क्या, क्यों और कैसे की अतुल सम्पत्ति लेकर बालक धरती पर आता है और इन्हीं के सहारे उसकी जिज्ञासा ज्ञान का अर्जन करती है। यह ज्ञान जहाँ उसे एक ओर सहज अनुभव से प्राप्त होता है वहीं दूसरी ओर बाल-साहित्य अपने प्रयास से उसकी जिज्ञासा शान्त करता चलता है। इन्हीं दृष्टियों से बाल साहित्य का भी मूल्यांकन होना चाहिये। वस्तुतः अभी यह हिन्दी में नहीं हुआ है। विदेशों में बालक के मनोवैज्ञानिक विकास की, उनकी आवश्यकता तथा उनकी ग्राह्यता के सम्बन्ध में अनेक शोध और सर्वेक्षण हुए हैं। जबकि हमारे देश में ऐसे सर्वेक्षण की ओर अभी बहुत सोच नहीं पाये हैं। जिन्हें हम मानवता का जनक समझते हैं, वे अब भी उपेक्षित हैं।

प्रयास अभी अधूरे

बाल साहित्य जहाँ बच्चों की रुचि की सन्तुष्टि करता है, इसलिये उसमें बालकों की जिज्ञासा को शान्त करने की क्षमता भी होनी चाहिये। सिंहासन बत्तीसी, बेताल पचीसी, ईसप की कहानियाँ आदि ग्रन्थ बाल-साहित्य के नाम पर हमारे यहाँ बहुत पहले से उपलब्ध हैं। इन कहानियों में जीवन का शाश्वत-सत्य बोलता है। इनमें स्थायी मानव मूल्यों की स्थापना है। परिश्रम करना, ज्ञानार्जन करना, बड़ों का आदर करना, गुरु की सेवा आदि के सम्बन्ध में बहुत कुछ इनमें कहा एवं बताया गया है, किन्तु वह आधुनिक जीवन के परिप्रेक्ष्य में अपूर्ण हैं। आज का जीवन वैज्ञानिक उपलब्धियों से घिरा है। रेडियो, टेलिविजन, इलेक्ट्रॉनिक के अनेक उपकरण आज बच्चों के सामने हैं। जिन्होंने आज के जीवन को सहज बनाने की चेष्टा की है। वायुयान, जलयान जिन्होंने हमें गति प्रदान की है। एटमबम और युद्धक मिसाइल्स भी सामने हैं जिन्होंने जीवन को दुर्गति प्रदान की है। बच्चों की सहज जिज्ञासा इन सबको जानना चाहती है। वह जानना चाहती है कि बम्बे में पानी कैसे आता है। पत्र जो डाक के डिब्बे में डाले जाते हैं वे कैसे अभीष्ट स्थान पर पहुँच पाते हैं। दूर बैठे व्यक्ति से बात कैसे होती है। पक्षियों की तरह

वायुयान हवा में कैसे उड़ते हैं। क्या इन सबका पूरा-पूरा उत्तर आज का हमारा बाल साहित्य दे सकने में समर्थ है?

यह सत्य है कि इधर प्रभूत बाल साहित्य प्रस्तुत हुआ है। इधर आये दिन नगरों में उच्चकोटि की बाल पत्रिकायें भी निकल रही हैं। बालगीतों के क्षेत्र में कुछ उत्कृष्ट रचनायें आयी हैं। बाल कहानी और नाटक भी लिखे जा रहे हैं। बाल साहित्य के लेखकों के समग्र भी प्रकाशित हो रहे हैं। ये शुभ लक्षण हैं, किन्तु बाल साहित्य और उसके विकास की यह दिशा समुचित नहीं लगती। अंग्रेजी में शेक्सपियर के नाटकों के बाल संस्करण प्रकाशित हुए हैं। संसार के 'क्लैसिकों' के बाल संस्करण देखे जाते हैं। क्या हिन्दी में 'रामचरित मानस' का बालसंस्करण है तथा सूर, कबीर, रहीम ऐसे कवियों के जो हमारे जन-जीवन में समाये हुए हैं के सम्बन्ध में कोई बाल संस्करण निकला है? वास्तव में ये न तो प्रकाशित हैं न कहीं से प्रकाशित होने की योजना की कोई जानकारी है।

आवश्यक साहित्य का प्रभाव

फिर वैज्ञानिक उपलब्धियों की जानकारी देनेवाले बाल साहित्य तो नगण्य ही है। आज भी बच्चों के लिए ग्रहण, राहु और केतु नामक ग्रह नक्षत्र राक्षसों की करामात ही हैं। आर्य भट्ट के सम्बन्ध में जितनी जानकारी हमारे पास आयी, उसका पाँच प्रतिशत भी हम बच्चों को नहीं दे पाये। ऐसा विषय भी बाल-साहित्य के अन्तर्गत नहीं लिया गया जो इस कृषिप्रधान देश में कृषि से सम्बन्धित है—जैसे बीज की कहानी, मिट्टी की कहानी, दुनियाँ कैसे बनी। ऐसे विषयों पर बहुत कम बाल-साहित्य है। अन्धविश्वासों को ध्वस्त करनेवाला भी बाल-साहित्य नहीं है। आज भी जादू, टोना और भूत-प्रेत की कहानियाँ बाल पाकेट बुक्स के अन्तर्गत प्रकाशित होती हैं। साहस के नाम पर कुछ हलके और भद्दे ढंग की जासूसी कहानियाँ बच्चों की पुस्तकों में दिखाई देती हैं। इन सबका प्रभाव बाल मस्तिष्क पर क्या पड़ेगा, इसे सहज ही समझा जा सकता है।

फिर अभी तक जो बाल-साहित्य आया है, वह नगरीय बालकों की मानसिकता को ध्यान में रखकर लिखा गया है। ८० प्रतिशत बच्चे जो गाँवों से आते हैं, उन गाँवों की परिस्थिति से बाल साहित्य अछूता है। उनमें न तो वहाँ की मिट्टी की सुगन्ध है और न सूनी झोपड़ियों का हाहाकार।

विषय, वस्तु और भाषा

विषय और वस्तु के सन्दर्भ में हमने बहुत अधिक क्षेत्र अछूता छोड़ रक्खा है। नेशनल बुक ट्रस्ट और चिल्ड्रेन बुक ट्रस्ट ने इस क्षेत्र में कुछ महत्त्वपूर्ण काम किये हैं, निश्चित रूप से वे सराहनीय हैं। किन्तु इस कार्य को अभी बहुत आगे बढ़ाना है।

भाषा की दृष्टि से भी बाल-साहित्य के लेखकों का दायित्व कम नहीं है, किस वय सीमा के बच्चे का शब्दज्ञान कितना होगा, इस पर हमारे देश में कभी विचार किया

ही नहीं गया। किन्तु पश्चिम में बाल-साहित्य के निर्माण में प्रारम्भिक शर्त बच्चों के शब्दज्ञान सम्बन्धी रहती है। उदाहरणार्थ 'ब्राइट स्टोरी रीडर्स' की चर्चा की जा सकती है। यह रीडर्स प्राइमर से लेकर ग्रेड पाँच तक की है। अंग्रेजी के और विश्व के महान् ग्रन्थों का सारांश इनमें है। शेक्सपियर के नाटकों और क्लैसिकल साहित्यों के सारांश से लेकर परियों की कथा तक इन पुस्तकों में आयी हैं। लेकिन सबके बावजूद इसका ध्यान रखा गया है कि प्राइमरी में पढ़नेवाले बच्चों को जितना शब्दज्ञान है उसी के भीतर उनकी सभी प्राइमरी की पुस्तकें लिखी जायँ। ज्यों-ज्यों शब्दज्ञान बढ़ता चलता है, त्यों-त्यों पुस्तकों की भाषा ग्रेड के अनुसार प्रौढ़ एवं प्रांज्जल होती चलती है। 'ब्राइट स्टोरी रीडर' की पुस्तकों के पीछे एक शब्दकोश भी लगा रहता है, जिससे स्पष्ट मालूम हो जायेगा कि इस पुस्तक के पढ़ने के बाद बच्चों के शब्द संसार में कितने शब्दों की वृद्धि होगी। शब्दों के साथ-साथ वाक्यरचना पर भी ध्यान देना आवश्यक है।

बच्चों की मानसिकता के अनुसार ही उनकी भाषा होनी चाहिये। भाषिक संरचना यदि जटिल होगी तो वे विषयवस्तु तक नहीं पहुँच पायेंगे। सरलता, सहजता उनकी भाषा की प्रमुख शर्त है, साथ ही उसमें लयात्मकता भी होनी चाहिये, जिससे बच्चे आसानी से उसे पढ़ और ग्रहण कर सकें।

प्रश्न दिशा का

बच्चों की जिज्ञासा का न्यूक्लियस बच्चे ही होते हैं। पहले ज्ञान अपने से बाहर की ओर बढ़ता है, तब बच्चा अपने आसपास के सम्बन्ध में जानना चाहता है। जो परिवेश वह देखता है उसके सम्बन्ध में जानना चाहता है। इस प्रकार उसकी जिज्ञासा विश्व की ओर बढ़ती है। जानवर, वातावरण, नदी, पौधे, वृक्ष, सागर सबके सम्बन्ध में उसकी जानने की इच्छा होती है और इसकी सन्तुष्टि बाल साहित्य को करनी चाहिये।

हिन्दी के बाल-साहित्य की स्थिति, अभावजन्य है पर निराशाजनक नहीं है। विश्वास है कि जिस गति से बाल साहित्य का उत्पादन हो रहा है, यदि वह गति बनी रही तो, निश्चित ही हमारा बाल साहित्य संसार के बाल साहित्य के समक्ष रखा जा सकता है—प्रश्न मात्र दिशा का है तथा साथ-साथ नये वैज्ञानिक सन्दर्भ में सोचने का भी है कि वास्तव में हम किस दिशा की ओर बढ़ें और बच्चों के लिए कैसा साहित्य उपलब्ध करें और करावें।

बाल पुस्तक सप्ताह

अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ की ओर से राष्ट्रनायक पं० जवाहरलाल नेहरू के जन्मदिवस के उपलक्ष में १४ नवम्बर से २१ नवम्बर तक सारे देश में बाल पुस्तक सप्ताह का आयोजन किया गया। वाराणसी जैसे साहित्यिक और संस्कृतिक केन्द्र में इस आयोजन का और भी महत्त्व है।

पुस्तकों की वह भूमिका, जब उन्हें किसी भी प्रकार की आध्यात्मिक या बौद्धिक विचारों की अभिव्यक्ति का एकमात्र साधन माना जाता था, समाप्त हो चुकी है। यह कमी उस समय से आरम्भ हुई जबकि विज्ञान के इस युग में रेडिया एवं टेलीविजन की प्रथा क्रमशः बढ़ने लगी और साथ ही चलचित्रों का भी प्रचलन जब से तेजी से बढ़ा। विज्ञान के इन तीनों आविष्कारों के कारण जिन्हें कि लोग आजकल शिक्षा का माध्यम मानने लगे हैं, तब से तो दिनोदिन लोगों का ध्यान पुस्तकों की ओर से हटता जा रहा है। प्रथम विश्व महायुद्ध के बाद से व्यक्तिवाद की समाप्ति हो रही है और जनजागरण का सन्देश सारे विश्व में फैल चुका है। प्रकाशकों ने भी यह अनुभव किया है कि यह उनकी भूल होगी कि यदि वे विज्ञान के इस युग में पुराने विचारों के रंगीन स्वप्नों में अपने को खोये रखें और आनेवाली नयी दुनिया के अनुकूल अपने प्रकाशनों को न बनायें। १९१४ के पूर्व जिस तरह से जनता की रुचि पुस्तकों को पढ़ने की ओर रही वह आज के इस वैज्ञानिक युग में संख्या के अनुपात से नहीं है। आज समस्त विश्व का सामाजिक ढाँचा ही बदल चुका है। लोग यह सोचने लगे हैं कि आज के भौतिकवादी समाज के ढाँचों में यदि वे मोटरगाड़ियों, दवाइयों, सौन्दर्य प्रसाधनों, भोजन और साज-सजावट के सामानों का प्रयोग नहीं करेंगे तो उनका समाज में सम्मान नहीं होगा। आर्थिक विभीषिका के इस युग में मानव का ध्यान फैशन की होड़ के कारण उसे मानसिक शान्ति नहीं देता। मानसिक शान्ति के अभाव में चिन्तन की ओर बहुत ही कम ध्यान जाता है और चिन्तन के अभाव में मनुष्य को अपने कर्त्तव्याकर्त्तव्य को स्थिर करने का अवसर ही नहीं मिलता। चिन्तन पठन का दूसरा रूप है। यदि चिन्तन नहीं तो फिर पठन भी नहीं। पठन की प्रवृत्ति होना ही पुस्तकों की ओर झुकाव है। आज लोग पुस्तकें पढ़ने की अपेक्षा वैज्ञानिक आविष्कारों द्वारा प्रस्तुत रेडियो, टेलीविजन एवं चलचित्र आदि में अपना खाली समय बिताना अच्छा समझते हैं। प्रकृति के वास्तविक आनन्द को छोड़कर लोग अब अप्राकृतिक जीवन को अपनाते जा रहे हैं। इसी का परिगाम है कि उन्हें प्राकृतिक आनन्द से वंचित रहना पड़ता है और वे पुस्तकों के नैसर्गिक आनन्द को भूल जाते हैं। आज जनता की पठनरुचि पुस्तकों की ओर उतनी नहीं जितनी कि १९वीं शताब्दी में रही है। यहाँ यह कहा जा

सकता है कि इसका यह तात्पर्य कदापि नहीं है कि पहले के बजाय आज पुस्तकें कम बिक रही हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि उस युग में जनसंख्या के अनुपात में जितनी पुस्तकें बिकती थीं उतनी आज उस अनुपात से नहीं बिक रही हैं। भारत में तो पुस्तकों की ओर जनता की रुचि वैसे ही कम है, परन्तु पश्चिम का एक सामान्य सा उदाहरण उपस्थित है। १८९० में मध्य योरोप में सवा छ: करोड़ आबादी वाली जर्मन भाषी जनता में १९ हजार नये प्रकाशन हुए अर्थात् प्रत्येक एक लाख की आबादी पर ३० नये प्रकाशन किये गये। १९५७ से शिक्षा के क्षेत्र में तिगुनी प्रगति हुई है। उसके बावजूद एक लाख जनता के पीछे केवल ३४ नये प्रकाशन हुए और वह भी ऐसी दशा में जबकि शिक्षा का प्रसार पहले के बजाय कई सौ गुना बढ़ा है।

जनता में पठनाभिरुचि बढ़ाने का दायित्व हमारे देश में विशेषकर राष्ट्रभाषा के प्रकाशकों तथा लेखकों के कन्धों पर अब आ पड़ा है। हमें जनता में पठनरुचि बढ़ाने के लिए सुमुद्रित तथा रुचिकर साहित्य प्रस्तुत करना है। अपने इसी दायित्व के मद्देनजर अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ ने 'बाल पुस्तक सप्ताह' मनाने का आयोजन किया, ताकि बाल्यकाल से ही बच्चों में पठनरुचि की भावना जागृत हो।

रात की खिली कली का सुबह होते-होते एक विकसित फूल बन जाना, प्रकृति का एक अद्भुत चमत्कार है। भले ही हम इस चमत्कार को न समझें। इसी तरह एक नवजात शिशु का कुछ वर्षों में एक सन्त, ज्ञानी या शूरवीर होना भी जीवन का एक चमत्कार है। हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि ऐसी घटनायें किसी के वश की बात नहीं हैं, फिर भी हमें यह साफ दिखाई देता है कि मानव में कुछ ऐसी प्रवृत्ति अवश्य है जो एक संवेदनशील शिशु को अपनी ओर आकर्षित करती है। इन प्रवृत्तियों में एक प्रमुखतम प्रवृत्ति साहित्य भी है। जो साहित्य बच्चों को प्यारा लगता है, उसे चाहे किसी भी व्यक्ति ने किसी भी वर्ग के लिए लिखा हो, वह वास्तविक साहित्य है। बाल साहित्य शैशव की दैवी सामग्री से मनुष्य का निर्माण करनेवाली अद्भुत वस्तु है। कहा गया है कि धन्य हैं वे लोग जिन्होंने अपने जीवन का श्रेष्ठतम अंश बाल साहित्य के निर्माण में अर्पित कर दिया, वास्तव में उनका जीवन भारत के निर्माण के लिए लगा हुआ समझा जायेगा। हमारे देश के लेखक और प्रकाशक दोनों ही बाल साहित्य के निर्माण में जुटे हुए हैं। आवश्यकता इस बात की है कि बच्चों की रुचि का ध्यान रक्खा जाय और हम जनता का ध्यान आकर्षित करें कि वह अपने नन्हें-मुन्नों को ऐसा साहित्य पढ़ने को दें।

९२ करोड़ आबादी वाले इस देश में किसी भी वस्तु का प्रचार-प्रसार बड़ा ही महत्त्व रखता है। साहित्य कितना ही स्वस्थ सुमुद्रित एवं प्रकाशित क्यों न हो, लेकिन उसका समुचित प्रचार-प्रसार नहीं हो पाता, तो उसके स्वस्थ होने का कोई लाभ नहीं। इसलिए हमें यह देखना है कि अब तक किन कारणों से अच्छा और स्वस्थ साहित्य प्रकाशित होने के बाद भी प्रचार-प्रसार के अभाव में नहीं बिक सका।

देश की स्वतन्त्रता के बाद हम लोगों में एक ऐसी भावना उत्पन्न हो गयी है कि प्रत्येक समस्या का समाधान हम सामूहिक रूप से सोचने लगे हैं और इसी विचार का परिणाम "बाल पुस्तक सप्ताह" है।

प्राय: पश्चिम के सभी देशों में इस तरह के बाल पुस्तक सप्ताह बहुत वर्षों से आयोजित होते आ रहे हैं। इन अवसरों पर वर्ष के श्रेष्ठतम बाल साहित्य की पुरस्कृत कृति के कथानक को नाटकों द्वारा मंचित किया जाता है। अच्छे और मनोरंजक बाल साहित्य कथानकों को लेकर चलचित्र बनाये जाते हैं और उसी सप्ताह में प्रदर्शित होते हैं। वर्ष की श्रेष्ठ बाल साहित्य कृति का निर्णय प्रकाशक, लेखक तथा पुस्तक विक्रेताओं के प्रतिनिधि करते हैं। देश के प्रकाशक, विक्रेता, लेखक, पुस्तकालय तथा शिक्षक संघ इस समारोह में सामूहिक रूप से भाग लेते हैं और जनता को बाल साहित्य की उपयोगिता बताते हैं। कूपन सिस्टम के आधार पर बच्चों को अपना निजी पुस्तकालय पुस्तकें खरीदकर खोलने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। इस तरह के आयोजनों के अवसर पर सरकार—शिक्षा मंत्रालय, परिवहन मंत्रालय, सूचना तथा प्रसारण मंत्रालय सहायता करते हैं। राष्ट्रीय नेता "बाल पुस्तक सप्ताह" की उपयोगिता जनता को प्रकाशक संघ के मंचों पर आकर बताते हैं। पोस्टल विभाग ऐसे अवसरों पर "बच्चों को पुस्तकें उपहार दीजिए" शीर्षक मोहर डाक पर लगाता है। विद्यालयों में पढ़ी हुई पुस्तकों के आधार पर छात्र-छात्राओं की प्रतियोगिता का आयोजन होता है और इस बात के लिये भी पुरस्कृत किया जाता है कि किस छात्र ने सबसे अधिक बाल साहित्य वर्ष भर में पढ़ा।

कनाडा में बाल पुस्तक सप्ताह समारोह सबसे निराला होता है। वहाँ देश की २७ राष्ट्रीय संस्थाएँ "बाल पुस्तक सप्ताह" में भाग लेती हैं और बाल पुस्तक सप्ताह राष्ट्रीय पर्व के रूप में माना जाता है। फ्रान्स में इस अवसर पर ८ तरह के पोस्टर विभिन्न स्थानों पर प्रदर्शित करने के लिए प्रकाशित किये जाते हैं:

(१) प्रकाशकों तथा मुद्रकों के लिए : "जो व्यक्ति पुस्तकें पढ़ता है वह दो के समान है।"

(२) पुस्तक विक्रेताओं के लिए : "पुस्तकें पढ़िए और ज्ञान प्राप्त कीजिए।"

(३) बेकरियों के लिए : "भोजन के बाद पुस्तकें पढ़ना पाचन के लिए आवश्यक है।"

(४) स्टेशनों के लिए : "पुस्तक पढ़िए ताकि आपकी यात्रा सफल हो।"

(५) पोस्ट आफिसों के लिए : "मेरी बधाई स्वीकार कीजिए, मैं पुस्तक भेज रहा हूँ"

(६) होटलों के लिए : "सदा पुस्तकें साथ रखिए।"

(७) प्राइमरी स्कूलों के लिए : "पुस्तकों से खेलो।"

(८) सेकेन्ड्री, माध्यमिक विद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों के लिए : "बिना पठन के संस्कृति का प्रसार नहीं हो सकता।"

हमें आशा है कि हम शिक्षाशास्त्रियों, शिक्षकों, जनता, लेखकों तथा अपनी सरकार के सहयोग से आगामी वर्षों में बड़े धूमधाम से "बाल पुस्तक सप्ताह" का आयोजन कर सकेंगे। कम समय में इस समारोह के आयोजन का निश्चय किया गया और इसमें बहुत-सी त्रुटियाँ रह गयी हैं। आशा है कि अभिभावक अपने बच्चों को १४ नवम्बर से २१ नवम्बर के बीच किसी भी दिन बाल पुस्तक प्रदर्शनी दिखाने के लिए जरूर ले जायेंगे ताकि "बाल पुस्तक सप्ताह" का यह आयोजन अपने पुनीत उद्देश्य में सफल हो।

❀

पत्रकारिता

- कलकत्ता की हिन्दी पत्रकारिता का महत्वपूर्ण अवदान
- कलकत्ता की हिन्दी पत्रकारिता को मराठी पत्रकारों का अवदान
- क्रांतिकारी पत्रकार : रामरिख सहगल

कलकत्ता की हिन्दी पत्रकारिता का महत्वपूर्ण अवदान

'सेनापति'

कलकत्ता के पत्रकारिता इतिहास में 'सेनापति' का प्रकाशन एक महत्वपूर्ण घटना थी। इसका पहला अंक कार्तिक दीपावली शुक्रवार ५ नवम्बर १९२६ को प्रकाशित हुआ था। इसी के आसपास कलकत्ता से दूसरा प्रभावशाली पत्र 'हिन्दू पंच' निकला था। इसके प्रकाशक थे आर० एल० बर्मन और सम्पादक थे पं० ईश्वरी प्रसाद शर्मा तथा 'सेनापति' के प्रकाशक एवं व्यवस्थापक थे निहालचन्द वर्मा और सम्पादक थे पं० रामगोविन्द त्रिवेदी। त्रिवेदी जी दर्शनशास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान थे। इनकी कलम में जोर था और इनकी ज्ञान-गरिमा भी अपने समय में शिखर पर थी। बनैली के राजा के वे राजगुरु थे और महापण्डित राहुल सांकृत्यायन के भी निर्देशक रह चुके थे।

पं० रामगोविन्द त्रिवेदी की सशक्त लेखनी, निहालचन्द वर्मा की साहित्यिक प्रतिभा तथा उनका साहित्यकारों से विराट परिचय, सम्पर्क और पत्र की राष्ट्रीय नीति के कारण इस पत्र को व्यापक जन समर्थन मिला। बड़ी आशा, विश्वास और सफलता की मंगल भावना लेकर यह साप्ताहिक पत्र अवतीर्ण हुआ था। इस पत्र के पहले ही अंक में प्रकाशित महाकवि हरिऔध जी की निम्नलिखित पंक्तियाँ पत्र के संबंध में कितनी आशान्वित हैं:

उजाला घर-घर पसरेगा, अंधेरापन भी निखरेगा।
अमावस पूनम होवेगी, चाँद धरती पर उतरेगा॥

यह केवल ऐतिहासिक संयोगमात्र ही था कि करीब-करीब एक ही समय में कुछ महीने के आगे पीछे आगरा से पं० कृष्णदत्त पालीवाल के सम्पादकत्व में महान् क्रान्तिकारी पत्र 'सैनिक' निकला और कलकत्ता से 'सेनापति'। 'सैनिक' की राष्ट्रीय भावना और पवित्र उद्देश्य की छाया 'सेनापति' के प्रकाशन के मूल में भी रही। इस दृष्टि से 'सैनिक' और 'सेनापति' के नाम में ही सिर्फ अर्थ की निकटता नहीं थी, बल्कि उसके काम में भी बहुत अधिक साम्य था। सेनापति के सम्पादकीय के ऊपर एक नीति वाक्य छपता था, जिससे पत्र के उद्देश्य पर प्रकाश पड़ता है।

'वीर-सहाय्य-निर्विघ्नाः सुखलभ्या हि सिद्धयः।'

—कथा सरित्सागर

अर्थात् वीरों की सहायता से प्राप्त होनेवाली सिद्धि निर्विघ्न एवं सुखद होती है। इस प्रकार 'सेनापति' के प्रकाशन के उद्देश्य के मूल में भारतीयों के हृदय में सोयी वीरता, शौर्य तथा राष्ट्रीयता के नवीन उद्वेग के लिए उद्बोधन था। यह आसान कार्य नहीं था, वह भी सन् १९२६ में जब असहयोग आन्दोलन की असफलता की गहरी निराशा भारतीय मन को दबोच बैठी थी।

इसी महत् उद्देश्य से प्रभावित होकर छायावाद के प्रमुख स्तम्भ बाबू जयशंकर प्रसादजी 'सेनापति' की सफलता के प्रति बड़े ही आशावान थे और उन्होंने स्पष्ट घोषणा की थी:

हाथों में हो शक्ति कर्म में नव कौशल हो।
मन में भगवद् भक्ति सत्य का अतुलित बल हो॥
जीवन का संग्राम करें हँस हँस कर निर्मम।
ऐसे निश्छल सेनापति की है निश्चय जय॥

—बाबू जयशंकर 'प्रसाद'

केवल 'प्रसाद' जी ने ही नहीं, वरन् उस समय के हिन्दी के सभी प्रमुख कवि एवं साहित्यकारों ने 'सेनापति' से ऐसी ही आशा की थी। उनका विश्वास था कि यह पत्र निष्प्राण भारतीयता में नवीन जीवन का संचार करेगा:

छोड़ प्रिया का सुखदकर, चक्र सुदर्शन धार।
'सेनापति' बनकर करो, नव जीवन संचार॥

—पं० मोहनलाल महतो 'वियोगी'

दबी और पादाक्रान्त राष्ट्रीयता में नव जीवन, नव जागरण एवं नव स्फूर्ति की आवश्यकता पर बल देते हुए पं० पद्मसिंह शर्मा का कथन ऐतिहासिक महत्व का है—

'इस समय देश में वीर भाव जागरण की बड़ी आवश्यकता है। इसके लिए अनेक प्रयत्न और आन्दोलन होने चाहिए। सेनापति द्वारा मैं अपने विचार प्रकट करने की चेष्टा किया करूँगा।'

—पण्डित पद्मसिंह शर्मा

सेनापति का संघर्ष

सेनापति का उद्देश्य महान् था। अपने उद्देश्य की पूर्ति में उसे चार मोर्चों पर संघर्षरत होना पड़ा—१. पत्रकारिता के क्षेत्र में संघर्ष, २. अंग्रेजी शासन के विरुद्ध संघर्ष, ३. सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध संघर्ष और ४. सामाजिक अज्ञान के विरुद्ध संघर्ष।

ये संघर्ष इतने विशाल और विकराल थे कि किसी भी पत्र के लिए जन्म से ही इनसे जूझना अपने अस्तित्व के लिए प्रत्यक्ष खतरा मोल लेना था, पर सेनापति की निर्भीक पत्रकारिता ने इस खतरे को सहर्ष स्वीकार किया और आग को गले लगाया।

पत्रकारिता के क्षेत्र में संघर्ष

उन दिनों की पत्रकारिता आज जैसी नहीं थी। आज की पत्रकारिता में और उस युग की पत्रकारिता में जमीन आसमान का अन्तर था। सूचनाएँ, तथ्य और आँकड़े मिलने इतने सुलभ नहीं थे। न विश्वकोश या ज्ञानकोश ही उपलब्ध थे और न आज जैसी इयर बुक्स ही उपलब्ध थी। साथ ही उस युग की हिन्दी में प्रत्येक सामाजिक संदर्भ को व्यक्त करने की सहज क्षमता नहीं थी। हिन्दी का शब्दकोश इतना विकसित नहीं था। हिन्दी पत्रकारिता के लिए सबसे बड़ी बाधा उसके पाठकों की कमी थी। यों सन् १९२६ में हमारे देश में साक्षरता भी ५, ६ प्रतिशत से अधिक नहीं थी। पत्रों के प्रति लोगों का रुझान तो और भी कम था। पढ़े लिखे लोग अंग्रेजी पत्र पढ़ना ही अच्छा समझते थे। हिन्दी पत्रकारिता भी अंग्रेजी पत्रकारिता की छाया के बल पर चलती थी। हिन्दी के पत्रकार सारी जानकारी अंग्रेजी के पत्रों के सहारे प्राप्त करते थे।

सेनापति के समक्ष भी ऐसा ही संकट था, किन्तु उसके योग्य व्यवस्थापक एवं सम्पादक बड़े प्रयत्न से अद्यतन सूचनाएँ एकत्र करते थे। अंग्रेजी और बंगला के बड़े-बड़े समाचार पत्रों के दफ़्तरों में जाते और अपने पाठकों की ज्ञान पिपासा शान्त करने के लिए सार्थक प्रयत्न करते थे।

भाषा के संकट का भी सामना 'सेनापति' की पत्रकारिता ने या यों कहिये त्रिवेदी जी के सम्पादकीय ने बड़े साहस एवं विद्वत्ता से किया था। उनके सम्पादकीय की भाषा ने उस युग के करीब-करीब सभी सामाजिक संदर्भों को व्यक्त करने की चेष्टा की और कहना न होगा कि उसे इस क्षेत्र में अच्छी सफलता भी मिली। उनका सम्पादकीय इतना बोधगम्य एवं सारगर्भित होता था कि वह शीघ्र ही बहुचर्चित हो गया।

अंग्रेजी शासन के विरुद्ध संघर्ष

सेनापति का जन्म ही अंग्रेजी शासन के विरुद्ध एक जेहाद था। इस पत्र की निर्भीक एवं शासनपूर्ण नीति अपने जन्मकाल से ही अंग्रेजी शासन पर कड़े कशाघात करती रही। 'वाक् जाल की निस्सारता' शीर्षक से इस पत्र का सम्पादकीय बड़ा ही आकर्षक तथा मन मोहनेवाला था। "तीसरी व्यवस्थापिका परिषद का उद्घाटन करते हुए उस दिन हमारे भाग्यविधाता, विवेक शून्य नौकरशाही के प्रधान कार्याध्यक्ष, प्रजा के सुख-दु:ख का समुचित ध्यान रखनेवाले सम्राट के प्रतिनिधि भारत के बड़े लाट वाइसराय लार्ड इरविन महोदय ने जो भाषण दिया, वह स्पष्ट और मीठा होते हुए भी निस्सार और महत्वहीन है।" उस युग में लार्ड इरविन के भाषण को निस्सार और सत्वहीन कहना बहुत बड़ा जोखिम उठाना था, पर पत्र की सत्यवादिता एवं निर्भीकता ऐसा करने में जरा भी नहीं हिचकी। चीन में अफीम के प्रचार पर विचार करते हुए इस पत्र के सम्पादकीय में लिखा गया कि—"चीन में इस सत्यानाशी अफीम का प्रचार करनेवाले अंग्रेज व्यापारी हैं। एशिया की छाती पर अखण्ड साम्राज्य स्थापित करने की इच्छा से चीन में अंग्रेज व्यापारियों ने जी जान से अफीम का प्रचार कर इस बात की चेष्टा की है कि चीनी सदा पिनक में ही पड़े रहें और हम उनका धन-वैभव ढोकर यूरोप ले जायें।"

अंग्रेजों की नीति की ऐसी ही कटु आलोचना सेनापति सम्पादकीय में अनेक अवसरों पर की गयी। सन् १९२७ के फरवरी के तीसरे सप्ताह में इन्दौर में भयंकर साम्प्रदायिक दंगा हुआ। इस पत्र ने उस दंगे की निन्दा तो की ही, साथ ही साथ अंग्रेजी शासन की 'विभाजित कर शासन करो' की कुत्सित नीति का भी बड़े ही जोरदार शब्दों में पर्दाफास किया।

पूरे देश के देशवासियों को अंग्रेजों के खिलाफ भड़काने में भी इस पत्र ने प्रमुख भूमिका निभायी। इस पत्र के एक सम्पादकीय का निम्नांकित अंश द्रष्टव्य है।

"नागपुर में बंगाल के राजनीतिक कैदियों को बिना शर्त छोड़ देने के लिए सत्याग्रह शुरु हुआ है। सरकार ने सुभाष बाबू प्रभृति नवयुवकों को बिना कोई अभियोग प्रमाणित किये ही नजरबन्द कर रखा है। ...आश्चर्य का विषय केवल यही है कि बंगाल के लाल जेलखानों में सड़ रहे हैं और इस प्रान्त में उनके संबंध में किसी प्रकार का आन्दोलन नहीं हो रहा है।" २३ मार्च १९२७ के सम्पादकीय से इन सम्पादकीय प्रपत्रों के कारण पत्र का राष्ट्रीय रूप निखर कर हिन्दी पाठकों के समक्ष आया और कलकत्ता की हिन्दी साहित्य प्रेमी जनता 'सेनापति' को राष्ट्रीय चेतना से भरा समझने लगी।

सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध संघर्ष

हिन्दू समाज में व्याप्त अंधविश्वासों के विरुद्ध भी सेनापति ने अपना युद्ध छेड़ा। जाति-पाँति, छुआ-छूत, बाल-विवाह, बेमेल-विवाह आदि के विरोध में बार-बार इसमें लेख छपते रहे। इस पत्र का समर्थन विधवा विवाह को प्राप्त था। लड़कियों की शिक्षा पर पत्र ने बड़ा जोर दिया था। जो लड़कियाँ शिक्षा के क्षेत्र में सफल होती थीं उनका चित्र यह पत्र बड़े सम्मान के साथ छापता था। इसका एक कालम जरूर होता था। महिला समाज सुधार के संबंध में इस पत्र की भूमिका के सन्दर्भ में एक घटना का उल्लेख अवश्य करना चाहूँगा। कलकत्ता में एक व्यापारी नेपाली लड़कियों का व्यापार करता था। उसे ऐसा जघन्य कार्य न करने के लिए एक नेपाली युवक खड़गबहादुर सिंह ने कहा—पर वह व्यापारी नहीं माना। अन्त में खड़गबहादुर सिंह ने उसकी हत्या कर दी और स्वयं पुलिस स्टेशन पर जाकर रिपोर्ट लिखायी कि मैंने ऐसा अपराध किया है। उस पर हत्या का अभियोग अदालत में चला। पूरे देश में इस मुकदमे की काफी चर्चा हुई। मुकदमे के दौरान ही जेल में रहकर खड़गबहादुर सिंह ने बी० ए० की परीक्षा भी उत्तीर्ण की। जस्टिस गेगरी ने उसे फाँसी तो नहीं दी, पर आठ वर्ष का कठोर कारावास दिया।

'सेनापति' ने उस युवक के साथ बड़ा ही आदरभाव दिखाया। अपने मुखपृष्ठ पर 'नेपाली वीर शिरोमणि खड़ग बहादुर सिंह—बी० ए०' का चित्र छापा और सम्पादकीय में बड़े जोरदार शब्दों में लिखा कि न्याय करते समय केवल कानून की लौह दीवारों के बीच में ही अपनी बुद्धि को बन्द नहीं करना चाहिए, बल्कि सामाजिक सन्दर्भों को भी अच्छी तरह देखना चाहिए। जिस परिस्थिति में खड़ग बहादुर सिंह ने जो कुछ किया, अपने समाज, धर्म और देश के प्रति एक निष्ठावान व्यक्ति यही करता। 'सेनापति' ने लार्ड लिटन के नाम आवेदन भी किया कि खड़ग बहादुर सिंह की सजा माफ कर दी जाय।

सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध ऐसा संघर्ष छेड़ा था अल्पजीवी 'सेनापति' ने।

सामाजिक अज्ञान के विरुद्ध संघर्ष

उस युग में सामाजिक अज्ञान भी अपनी चरम सीमा पर था। लोग विश्वास नहीं करते थे कि लन्दन में टेम्स नदी के नीचे रेल भी चल सकती है। ऐसी स्थिति में इस पत्र ने 'विचित्र बातें', 'ज्ञान-विज्ञान', 'अवलोकन', 'विश्व चक्र' आदि प्रभावशाली कालम चलाये, जिनमें समसामयिक अन्तर्राष्ट्रीय घटना-चक्र की चर्चा होती थी और नवीन वैज्ञानिक उपलब्धियों से पाठकों को परिचित कराया जाता था। 'पुस्तक समीक्षा' का भी एक कालम था जिसमें नवीन पुस्तकों का सम्यक परिचय छपता था। इसका उद्देश्य पुस्तक का विज्ञापन मात्र नहीं था। सम्पादकीय विभाग खोज-खोज कर उन पुस्तकों की चर्चा करता था जो पाठकों के लिए किसी भी दृष्टि से उपयोगी होती थीं।

पाठकों की रुचि परिष्कार की ओर भी इस पत्र का अत्याधिक ध्यान था और वह इसके लिए पूरी सतर्कता बरतता था। अश्लील सामग्री का प्रकाशन तो दूर, इस पत्र में अश्लील विज्ञापन भी नहीं छपते थे जिससे पत्र को काफी आर्थिक क्षति उठानी पड़ी थी।

साहित्यकारों का विराट सहयोग

सेनापति को जनता का प्रेम और पाठकों का विश्वास ही नहीं प्राप्त हुआ, वरन् हिन्दी के अपने समय के मूर्धन्य साहित्यकारों का भी सहयोग मिला। स्वयं निहालचन्दजी वर्मा उच्च कोटि के तिलिस्मी कथाकार थे, पर उन्होंने उस पत्र को अपने प्रचार का साधन नहीं बनाया, किन्तु हिन्दी के साहित्यकारों का सहज सहयोग पा लिया था। 'प्रसाद', 'हरिऔध', 'दिनकर', किशोरीलाल गोस्वामी, गोपालराम गहमरी, गुलाब राय, बलदेवप्रसाद खरे, बेढब बनारसी, संतराम बी० ए०, प्रवासीलाल वर्मा, रामचन्द्र वर्मा, प्रो० टी० एल० वास्वानी एम० ए०, हनुमानप्रसाद पोद्दार, पण्डित केदारनाथ मिश्र 'प्रभात', पण्डित मधुसूदन ओझा 'स्वतंत्र', पं० गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश' आदि साहित्यकारों की सेवा से 'सेनापति' लाभान्वित हुआ था।

आज के चोटी के साहित्यकारों की प्रतिभा उन दिनों अपनी आँखें खोल रही थी। कुछ की रचनाएँ तो ऐसी हैं जिन्हें देखने से विश्वास नहीं होता कि उस समय इतने महान् कवि कभी ऐसा भी लिखते थे। स्वयं 'दिनकर जी' ने सेनापति में छपी अपनी रचनाओं को देखकर मुझसे कहा था, भाई इन्हें मेरे जीवन में कभी प्रकाशित मत करना। श्रद्धा पूर्वक प्रणाम करते हुए सेनापति के होलिकांक में छपी उनकी एक प्रारम्भिक रचना की बानगी दिखाता है कि उर्वशी का कवि कभी ऐसा भी लिखता था:

बन्धु से विरोध की बनी है पिचकारी खूब।
कुमति कुभाव के गुलाल रंग घोली है॥
बान्धवों के शोणित की खूब ही मची है कीच।
यही देखनीय भारतीयों की होली है॥

—रामधारी सिंह 'दिनकर'

अन्य विशेषताएँ

अपने सम्पादकीय कालमों की विशेषता के अतिरिक्त सेनापति अपने व्यंग्य चित्रों के लिये भी प्रख्यात था। कवर के तीसरे पृष्ठ पर एक बड़ा व्यंग्य चित्र छपता था। निहालचन्द जी इसे 'बसुमति' से किराये पर ले आते थे। पहले ये चित्र 'बसुमति' में छपते थे और बाद में 'सेनापति' में। उन व्यंग्य चित्रों का परिचय निहालचन्द वर्मा ही पत्र में लिखते थे, जिनका अपने आप में बड़ा महत्व था।

'सेनापति' अपनी रिपोर्टिंग के लिए भी विख्यात था। महत्वपूर्ण सांस्कृतिक कार्यक्रमों, रिपोर्ताजों को यह पत्र छापता था जिसकी बड़ी चर्चा होती थी। इन रिपोर्ताजों का आज भी ऐतिहासिक महत्व है। एक उदाहरण लीजिये:

कलकत्ता में पहला कवि सम्मेलन मारवाड़ी अग्रवाल महासभा के पण्डाल में ४ अप्रैल १९२७ को हुआ। 'खबर' के अनुसार २५ हजार लोग उपस्थित थे। कवि सम्मेलन का स्तर क्या था इसे आप सेनापति 'संवाददाता' के ही शब्दों में सुनिये:

'पण्डित अनूप शर्मा बी० ए०, एल० टी०' के नीचे लिखे हुए मनहरण छन्द को उपस्थित श्रोताओं ने इतना अधिक पसन्द किया कि उन्हें बार-बार सुनाना पड़ा:

धराधर घाघरा बहती नदी है यहां।
और वहां धाराधर धावन अपार है॥
ज्वालामुखी धधक धधक उठता है यहां।
तड़ित तड़क वहां करती बिहार है॥
होती नहीं मध्य मांनवों की अधीर ध्वनि।
होती व्योम बीच हा हा-हू हू की पुकार है॥
भूमि हाहाकार है, गगन हाहाकार है।
यहां भी हाहाकार है वहां भी हाहाकार है॥

इस अखिल भारतीय कवि सम्मेलन का स्तर इस कविता से आप सहज ही समझ सकते हैं, जिसमें हितैषी, गिरिजादत्त शुक्ल गिरीश, द्वारिकाप्रसाद गुप्त, रसिकेन्द्र, सुखदेव प्रसाद विस्मिल, रामनरेश त्रिपाठी, हरिभाऊ उपाध्याय, भगवतीप्रसाद बाजपेयी, माधव शुक्ल ऐसे महाकवि उपस्थित हों।

गौहाटी में हुए कांग्रेस के ४१वें अधिवेशन तथा भरतपुर में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन का समाचार बड़े ही महत्व का है।

इस प्रकार कलकत्ता की हिन्दी पत्रकारिता के इतिहास में अल्पजीवी सेनापति की ख्याति दीर्घजीवी है।

कलकत्ता की हिन्दी पत्रकारिता को मराठी पत्रकारों का अवदान

हिन्दी पत्रकारिता की विकास-यात्रा में उन विभूतियों का भी महत्त्वपूर्ण योगदान था जो मूलतः मराठी थे, जिनकी मातृभाषा हिन्दी नहीं थी। इसी क्रम के शीर्ष बिन्दु पर पराड़करजी का कृतित्व एवं व्यक्तित्व भी था। लेकिन पराड़करजी के अतिरिक्त भी ऐसी प्रतिभायें थीं जिनपर आज समय की धूल काफी जम चुकी है और जिनके चित्र बहुत कुछ धुँधले हो चुके हैं। अपनी स्मृति के सन्दूक में पुराने दस्तावेजों की तरह बन्द इन भूले-बिसरे चित्रों को झाड़ पोछकर रखने का यह सत्प्रयत्न किसी ऐतिहासिक क्रमबद्धता को स्थापित करने के उद्देश्य से नहीं वरन् स्मृति के सिंहासन पर बैठी उन विभूतियों के प्रति पूजन एवं अर्चन के भाव से ही किया गया है। शायद आपको भी ये तपःपूत व्यक्तित्व हिन्दी-पत्रकारिता के प्रति अपने समर्पण से प्रभावित कर सकें।

सखाराम गणेश देऊस्कर

उन हस्ताक्षरों में थे जिन्हें जन्मना मराठी होते हुए भी बंगाल की धरती ने अपना बना लिया था। वह बंगीय साहित्य परिषद् के संस्थापकों में से थे। बंगला की अनेक पत्र पत्रिकाओं में, जिनमें बसुमति प्रमुख था, वे कालम के कालम लिखते थे। उनकी सबसे बड़ी देन है उनकी देशेर कथा। असहयोग आन्दोलन के दिनों में उसकी लाखों प्रतियाँ बिक गयीं। हिन्दी में भी इस पुस्तक के तीन संस्करण हुए। हिन्दी में सबसे लोकप्रिय संस्करण 'देश की बात' शीर्षक से पं० देवनारायण द्विवेदी ने प्रकाशित किया। उन दिनों आज की तरह अनुवाद के लिए लेन-देन की बात नहीं उठती थी। देऊस्कर जी ने अपनी कृति के लिए देवनारायण द्विवेदी से एक पैसा भी नहीं लिया। उन्हें इसी से सन्तोष था कि ऐसी विचारधारा की पुस्तक का हिन्दी अनुवाद पं० देवनारायण द्विवेदी के माध्यम से प्रकाशित हो रहा है। द्विवेदीजी स्वयं इसके प्रकाशक भी थे। बंगला के ही नहीं, हिन्दी, अँग्रेजी आदि भाषाओं के पत्रकार देऊस्कर जी को गुरुतुल्य मानते थे और उनका व्यक्तित्व सभी के आदर का पात्र था।

गोखले जी

असहयोग आन्दोलन के दिनों कोट पतलून पहनने वाले लोगों को श्रद्धा से नहीं देखा जाता था। सम्पादक होने के नाते 'सेनापति' का सम्पादक मण्डल श्री गोखले को अटपटा आदमी समझता था। गोखले के पैन्ट का घेरा बहुत बड़ा था। नाटे कद का होने के कारण कभी-कभी पैन्ट का आयतन इतना बढ़ जाता था कि जूते भी ढक जाते थे। वे बन्द गले का कोट पहनते थे। आठ दिनों पर दाढ़ी बनाते थे। मुश्किल से उस समय उनकी उम्र ३५ से ४० के बीच रही होगी। उनकी काली-काली आँखों में एक पैनापन

था। दृष्टि की तरह ही उनकी कलम में भी तेजी थी। तभी तो उन्होंने एक बहुत बड़े काण्ड का रहस्योद्घाटन किया था।

गिरीश पार्क के बगल में एक हीरालाल सेठ रहते थे। वे नेपाली सुन्दरी को भगाकर लाये थे। उस सेठ को खुकड़ी से मारकर हत्या करने की योजना खड्ग बहादुर नामक एक नेपाली युवक ने तैयार कर ली थी। हत्या के पूर्व गोखले ने इस रहस्य को जान लिया था। यद्यपि गोखले जी सेनापति साप्ताहिक से सम्बद्ध थे, लेकिन उसमें इस समाचार को महत्व न मिलने के कारण दैनिक विश्वमित्र के व्यवस्थापक बाबू मूलचंद अग्रवाल को इस समाचार को प्रकाशनार्थ दिया गया, किन्तु उनकी इस बात को वहाँ भी विश्वसनीय नहीं समझा गया। विश्वास तब हुआ जब हीरालाल की वस्तुतः हत्या हो गयी। यदि गोखले की बात पत्रकार जगत् प्रकाशित कर देता तो हीरालाल हत्या से बच जाते और शायद वह कुकर्म का मार्ग भी छोड़ देते। यह थी उस पत्रकार की अद्भुत पकड़।

गोखले सेनापति अखबार में मात्र २० रुपये महीने पर तीन घंटे काम करते थे। वे मराठी ग्रन्थों के अच्छे अनुवादक तथा कलकत्ता के स्थानीय दैनिक पत्रों में स्तम्भकार थे, जिसके जरिये वे चालीस-पचास रुपये और कमा लेते थे। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद से मेरा सम्पर्क उनसे टूट गया। गोखले का पूरा नाम भी अब स्मृति की पिटारी में शेष नहीं रहा।

सदानन्दजी

दुबले-पतले-लम्बे पं० सदानन्द महाराष्ट्र के होते हुए भी हिन्दी-भाषी प्रतीत होते थे। हिन्दी, अंग्रेजी और बंगला पर उनका पूर्ण अधिकार था। वे 'हिन्दू पंच' के सम्पादकीय विभाग में अंग्रेजी से अनूदित सामग्री देने के लिए नियुक्त किये गये थे। उन दिनों साप्ताहिक पत्र-पत्रिकाओं में अंग्रेजी उपन्यासों के अनुवाद छपा करते थे। इसी परम्परा में 'हिन्दू पंच' ने 'मिस्ट्री आफ लन्दन' के हिन्दी अनुवाद 'लन्दन रहस्य' को धारावाहिक प्रकाशित किया था और यह कार्य 'हिन्दू पंच' के संस्थापक स्व० रामलाल वर्मा ने सदानन्दजी को सौंपा था। प्रसंगवश यह बता देना चाहता हूँ कि बाबू रामलाल वर्मा ने किसी विद्यालय में 'ककहरा' तक नहीं पढ़ा था, किन्तु खत्रियों की पारिवारिक भाषा 'खड़ी बोली' होने के नाते हिन्दी पर उनका अच्छा अधिकार था। वे किसी भी लेखक, अनुवादक को छोड़ते नहीं थे, उन पर अपनी कलम चला ही देते थे। सदानन्दजी इस आदत से परिचित थे, साथ ही स्वाभिमानी, विद्वान् और चिन्तक भी थे। सोच समझकर सटीक अनुवाद करने की उनमें क्षमता थी। उन्होंने अपनी नियुक्ति के पूर्व बाबू रामलाल वर्मा से वचन ले लिया था कि उनके अनुवाद पर कलम नहीं लगायेंगे। वर्माजी ने अपने इस वचन का पालन ५-६ वर्षों तक तो किया, किन्तु बाद में वे अपने वचन का

निर्वाह आदत से मजबूर होने के कारण न कर सके। उन्होंने मशीनप्रूफ देखते समय कुछ संशोधन-सम्पादन कर ही दिया। हिन्दू पंच का यह अंक जब निकला और सदानन्दजी ने प्रात:काल दफ्तर में उसे देखा तो उनकी मानसिकता को बहुत ठेस पहुँची। उन्होंने पत्र लिखा कि बाबू साहब! आपने वचन भंग किया। सदानन्दजी जा रहे हैं, उन्हें खोजने की चेष्टा मत कीजियेगा। इस घटना के बाद सदानन्दजी सदासर्वदा के लिए सम्पादन मंच से अन्तर्ध्यान हो गये। लेकिन आज भी उनकी यह स्वाभिमान-गाथा इस बात की याद दिलाती है कि सम्पादक और लेखक समाचार-पत्र में लिखते समय भी अपने स्वाभिमान को नहीं छोड़ सकता।

माधव हरि भड़कमकर

स्वतंत्र पत्रकारिता करनेवाले ओजस्वी मराठी पत्रकार माधव हरि भड़कमकर कलकत्ता के पत्रकार जगत् के चमत्कारी पुरुष थे, जिनके घुंघराले बालों के हिलते ही बड़े-बड़े सेठिये काँप उठते थे। इसी से अनुमान लगा सकते हैं कि उनकी कलम में कितना तीखापन था। उन दिनों समाज में जहाँ वेश्यावृत्ति का कुप्रभाव था, वहीं घिरचाबाद की भी चर्चा थी। उग्रजी के चाकलेट के बाद माधवजी लिखित घिरचा पुस्तक का प्रकाशन जैसे ही हुआ, प्रतिदिन उसकी दो हजार प्रतियाँ बड़ाबाजार के स्टेट बैंक के चौराहे पर लगातार एक सप्ताह तक बिकती रहीं। यह क्रम तब तक चला जब तक कि तत्कालीन सरकार ने पुस्तक को अश्लील घोषित करके जब्त नहीं कर लिया। 'सेनापति' साप्ताहिक, 'दैनिक विश्वमित्र', दैनिक स्वतंत्र भारत, दैनिक लोकमान्य आदि में वे सनसनीखेज कालम लिखते थे। इनकी दिनचर्या थी, प्रात:काल जनता से प्रभातफेरी के समय मिलना-जुलना, उड़ती बातों को सुनना और नोट बनाना, इसके बाद जो कुछ सामग्री तैयार हो जाती उसे १२ बजे तक समाचारपत्रों में दे देते थे। उसके बाद ५ बजे तक सोते और फिर दूसरे दिन सायं ५ बजे से रात ११ बजे तक उनका कार्य चलता था। निरालाजी और उग्रजी से इनकी बहुत बनती थी। धोती पहनते थे लेकिन उसके ऊपर अंग्रेजी ढंग का कोट होता था। तेल-फुलेल का ज्यादा शौक था। ईमानदार पहले दर्जे के थे। समाचार जब लिखते थे तो धनपति इनकी खुशामद करते थे कि कहीं उन पर भी छींटा न कस दें।

नरोत्तम व्यास

उन्नत ललाट, अपनी पूरी तेजस्विता को फटे वस्त्रों में संजोये पं० नरोत्तम व्यास की साधु मुस्कान आज भी मेरे मानस पर अंकित है। उनकी प्रारम्भिक साधनास्थली कलकत्ता रही। वहाँ उन्होंने 'रंगमंच' नामक सिने पत्रिका प्रकाशित की, जिसकी सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि उसमें ऐसे कलाकारों और चलचित्रों का विवरण रहता था जो चारित्रिक दृष्टि से उच्चकोटि के होते थे। व्यासजी किसी भी दशा में कोरिन्थियन और अश्लील थियेटरों की चर्चा नहीं करते थे और न ही मांसल प्रदर्शन करनेवाली अभिनेत्रियों

की चर्चा करते थे। उनकी प्रशंसा के पात्र थे न्यु थियेटर्स के कलाकार नवाब, पहाड़ी सान्याल, कानन, सर्वोपरि बरुआ। देवकी बोस से व्यासजी का परिचय 'सीता' की पटकथा लिखने के सन्दर्भ में हुआ। यह फिल्म बहुत ही सफल हुई, जिसमें पृथ्वीराज कपूर राम का अभिनय कर रहे थे। इस फिल्म के बाद शान्ताराम ने उन्हें पहचाना और वे उन्हें प्रभात स्टूडियो में काम करने के लिए बम्बई ले आये। व्यासजी ने प्रभात स्टूडियो की फिल्म अमर ज्योति तथा महात्मा की पटकथा लिखी। सुप्रसिद्ध उपन्यासकार य० गो० जोशी ने अपने उपन्यास 'मेरा लड़का' पर पटकथा लिखने के लिए व्यासजी को आमन्त्रित किया और उसे भी शान्ताराम ने 'प्रभात' के बैनर के नीचे फिल्माया। इस चित्र को बड़ी सफलता मिली। व्यासजी ने मराठी में भी कई फिल्मों पर पटकथायें लिखीं। वे नवभारत टाइम्स में भी फिल्मी कालम लिखते थे। उन्होंने बम्बई में परेल में तुलसी विद्यालय की स्थापना की। उन्होंने दो फिल्में स्वयं भी बनाईं भैयादूज और शान्ति। ये दोनों फिल्मे फ्लाप हो गईं। इससे उन्हें बहुत मानसिक और आर्थिक चोट पहुँची। पं० व्यास ने हिन्दी को लगभग ५० कृतियाँ दीं। इनमें परशुराम, भारत का धार्मिक इतिहास, सूर्यकान्त, वेदान्त आदि प्रमुख हैं। व्यासजी 'नारायण' पत्रिका के सम्पादक थे, किन्तु नारायण पत्रिका के दरवाजे दो प्रसिद्ध लेखकों के लिए बन्द थे—उग्र और निराला। वे अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' केदारनाथ मिश्र 'प्रभात', गंगा के सम्पादक ईश्वरी प्रसाद शर्मा, कवि-नाटककार जयशंकर प्रसाद, हास्यरसावतार जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी, नवजादिकलाल श्रीवास्तव आदि को अपनी पत्रिका में स्थान देते थे। नारायण पत्रिका का वैशिष्ट्य था धार्मिक प्रवचनों को लेख के रूप में प्रकाशित करना। व्यासजी स्वामी विवेकानन्द के विचारों से प्रभावित थे। वे मारवाड़ी समाज के गोविन्द भवन आन्दोलन को भी बढ़ावा दे रहे थे। इस आन्दोलन को गति देने के लिए ही मूलतः नारायण का प्रकाशन होता था। अनेक मारवाड़ी धनपतियों के लेख इनमें छपते थे, जो बहुधा दूसरों के लिखे होते थे।

पं० चन्द्रशेखर पाठक

मारवाड़ी ब्राह्मण के सम्पादक लगभग, १०० पुस्तकों के प्रसिद्ध लेखक, उन्नत ललाट, बड़ी-बड़ी मूँछों से आवेष्टित, गौर वर्ण के दुबले-पतले, लम्बे पं० चन्द्रशेखर पाठक उन प्रतिभाओं में थे, जो एक घंटे में १६ पेजी फार्म लिखकर दे देते थे। उनकी कमजोरी यही थी कि उन्हें प्रातःकाल ५ बजे कोई आकर घर पर पकड़ ले। ६ बजे तक वे हमें हेमलता ऐयारी उपन्यास के लिए १६ पृष्ठ लिखकर दे देते थे। पाठकजी जहाँ पत्रकारिता के उन्नायक थे, वहीं उन्होंने हिन्दी में 'वारांगना रहस्य', 'विचित्र समाज-सेवक', 'मायापुरी', 'भयानक बदला', 'कृष्णवसना सुन्दरी' आदि पचासों उपन्यास लिखे। सम्पादक की हैसियत से जब उन्होंने पद्मराज जैन के मारवाड़ी ब्राह्मण का सम्पादन आरम्भ किया तो पहले जहाँ जैन साहब की लेखनी से सिर्फ धर्म-मिश्रित सम्पादकीय पढ़ने को मिलते थे, वहीं पाठकजी के आगमन से सम्पादकीय टिप्पणियों में ऐसा निखार आया कि राजनीतिक, सामाजिक विषयों का सही-सही मूल्यांकन लोगों को पढ़ने को

मिलने लगा। पाठकजी ने अपने जीवनकाल में होमियोपैथी के लगभग ५० ग्रन्थ लिखे। उन्हें सुप्रसिद्ध एम० भट्टाचार्य कम्पनी ने छापा। दुर्भाग्य है कि हिन्दी में ऐसे यशस्वी सम्पादक-लेखक का स्मरण भुला दिया गया जिसने मराठी होते हुए भी हिन्दी की अपूर्व सेवा की।

पं० लक्ष्मण नारायण गर्दे

ब्रह्मर्षि-रूप पं० लक्ष्मण नारायण गर्दे पत्रकार जगत् के उन तेजस्वी नक्षत्रों में थे, जिन्हें ध्रुव की संज्ञा दी जा सकती है। शान्त, मृदुभाषी, कोमलचित्त, सरलता की मूर्ति, दीन-दुखियों के रक्षक, गर्देजी महाराज का ऐसा सम्मोहक व्यक्तित्व था जो अपनी अमिट छाप लोगों पर छोड़े बिना नहीं रहता था। अचकन पहने और ऊपर से अद्धी का दुपट्टा ओढ़े गर्देजी वैदिककालीन ब्राह्मण प्रतीत होते थे। कलकत्ते के पत्रकार जगत् में उन्हें वह सम्मान प्राप्त था, जो स्व० अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी और जनार्दन भट्ट जैसे उद्भट सम्पादकों को प्राप्त था। गर्देजी ने बहुत वर्षों तक श्रीकृष्ण सन्देश का सम्पादन किया। इस पत्रिका में जहाँ धर्मप्रधान लेख रहते थे, वहीं तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों पर लेख तथा समाचार भी दिये जाते थे। गर्देजी महाराज के मित्रों में सेनापति के व्यवस्थापक निहालचन्द वर्मा, विश्वमित्र के सम्पादक मातासेवक पाठक 'मतवाला' के व्यवस्थापक महादेव प्रसाद सेठ, सुप्रसिद्ध शिक्षाविद जनार्दन भट्ट, कार्तिकेयचरण मुखोपाध्याय, गुलाब रत्न वाजपेयी, कलकत्ता विश्वविद्यालय के प्रसिद्ध प्राध्यापक सकलनारायण शर्मा, लालताप्रसाद सुकुल आदि थे। उनकी लेखनी का चमत्कार स्वतंत्र भारत, दैनिक विश्वमित्र, बसुमति आदि में देखने को मिलता था। वे संस्कृत के निष्णात पण्डित होने के कारण काशी के भार्गव पुस्तकालय, मास्टर खेलाड़ीलाल, बम्बई के खेमराज श्रीकृष्णदास प्रभृति प्रकाशकों के संस्कृत प्रकाशनों का सम्पादन भी करते थे। कलकत्ता से द्वितीय विश्वयुद्ध के समय पर गर्देजी महाराज काशी आ गये और यहीं मृत्युपर्यन्त पत्रकारिता जगत् की सेवा में तल्लीन रहे।

क्रान्तिकारी पत्रकार : रामरिख सहगल

'चाँद' मासिक पत्रिका के 'फाँसी' अंक और 'मारवाड़ी' अंक के प्रकाशक रामरिख सहगल अपने युग के एक जीवन्त, क्रान्तिकारी प्रकाशकों में से थे। वे तूफान की तरह प्रकाशन के क्षेत्र में आये और एक हंगामे की तरह पूरे प्रकाशन क्षेत्र में छा गये। यदि कहा जाय तो सन् १९३० से १९४० तक के हिन्दी प्रकाशन का युग चाँद प्रेस के प्रकाशनों की धूम का युग था। जी० पी० श्रीवास्तव की 'दिलजले की आह' और 'लतखोरी लाल' तथा धनीराम प्रेम का कहानी संग्रह 'वल्लरी' उन दिनों प्रकाशनों के रत्न माने जाते थे। पं० सुन्दरलाल कृत 'भारत में अँग्रेजी राज' इन्होंने ही प्रकाशित किया था। मेहताबराय का बाल साहित्य 'मनमोहक' ३ भाग इन्होंने छापा था। इस संस्था की ओर से लगभग २०० प्रकाशन हुए थे।

रामरिख सिंह सहगल ने 'चाँद', मासिक, 'भविष्य' साप्ताहिक और 'कर्मयोगी' तथा 'गुलदस्ता' आदि का सम्पादन किया था। वैसे 'भविष्य' के प्रधान सम्पादक भगवतीचरण वर्मा थे। सहगलजी के सम्पादन में 'चाँद' का 'फाँसी' और 'मारवाड़ी' अंक जन-जीवन में अत्यधिक लोकप्रिय हुए। 'फाँसी' अंक को तो अँग्रेज सरकार ने जब्त कर लिया था और मारवाड़ी अंक को कुछ धनाढ्य लोगों ने हजारों की संख्या में खरीद कर जलवा दिया था। आर्थिक तथा सरकारी संकटों और सेठों के प्रकोप से 'चाँद' और 'भविष्य' के बन्द हो जाने के वर्षों बाद सहगल साहब ने प्रयाग से 'कर्मयोगी' मासिक निकालना आरम्भ किया था।

'कर्मयोगी' और 'गुलदस्ता' के साथ ही एक अंग्रेजी साप्ताहिक 'क्राइसिस' भी सहगलजी निकालते थे। १ फरवरी १९५२ को दो वर्ष की लम्बी बीमारी के बाद प्रयाग में सहगलजी का शरीरान्त हुआ।

स्मृति पाथेय

- ✍ पुण्य स्मरण : पं० मदनमोहन मालवीय
- ✍ स्मृतियों की परिधि में टण्डन जी
- ✍ ऐसे थे लोहियाजी
- ✍ मानवता की कसौटी : बाबू सम्पूर्णानन्द
- ✍ भारतीय संस्कृति एवं शिक्षा के उन्नायक : डॉ० जाकिर हुसेन
- ✍ पूर्व राष्ट्रपति : वाराहगिरि वेंकटगिरि
- ✍ अविस्मरणीय यादें : कामरेड एम० एन० राय
- ✍ एक अद्‌भुत व्यक्तित्व : आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी
- ✍ भाषाविद् रामचन्द्र वर्मा की उपेक्षा क्यों ?
- ✍ हिन्दी के प्रबल समर्थक : बेढब बनारसी
- ✍ एक अप्रतिम व्यक्तित्व : पं० लालधर त्रिपाठी 'प्रवासी'
- ✍ गीत यात्री : वीरेन्द्र मिश्र
- ✍ निहालचन्दजी वर्मा का संक्षिप्त जीवन परिचय
- ✍ प्रकाशक और पत्रकार : बाबू रामलाल वर्मा
- ✍ विद्यावाचस्पति : पं० रामदहिन मिश्र
- ✍ माँ भारती के अनन्य सेवक : रघुनाथप्रसाद सिंघानियाँ
- ✍ प्रकाशक और स्वतंत्रता सेनानी : बाबू बैजनाथ केड़िया
- ✍ साहित्यसेवी प्रकाशक : बाबू रामकृष्ण वर्मा
- ✍ आदर्श व्यक्तित्व : राधाकृष्ण खेमका
- ✍ गालिब के पहले प्रकाशक : मुंशी नवलकिशोर
- ✍ हिन्दी प्रकाशन जगत का ज्योति विहग : रामलाल पुरी
- ✍ आध्यात्मिक ज्योति जगानेवाले : ब्रह्मलीन संत सेठ जयदयालजी गोयनका
- ✍ हिन्दी प्रकाशन जगत के स्तम्भ : सम्पादक बाबू मूलचन्द अग्रवाल

✍ प्रकाशन जगत के मूक साधक : पत्रकार पं० विष्णुदत्त शुक्ल

✍ चिम्मनलाल वैश्य का लेखन और प्रकाशन

✍ राष्ट्र की आत्मा थे : बालकराम नागर

✍ हिन्दी और हिन्दुत्व के प्रबल समर्थक : विशनचन्द्रजी सेठ

✍ बहुमुखी प्रतिभा के धनी : गुलाबरत्न वाजपेयी

✍ राजेन्द्रशंकर भट्ट का संक्षिप्त परिचय

✍ निष्काम साधक : केशवप्रसाद शर्मा

✍ बनारस के ठलुआ प्रकाशक : बाबू मुकुन्ददास गुप्त

✍ आधुनिक हिन्दी प्रकाशन के जनक : आचार्य रामलोचन शरण

✍ सीताराम चतुर्वेदी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

✍ मानवीय संवेदनाओं के व्यक्ति : पं० नरेशचन्द्र चतुर्वेदी

✍ दयाराम बेरी

✍ पंजाब के हिन्दी प्रकाशन के अग्रदूत : महाशय राजपाल

*

पुण्य स्मरण :
पण्डित मदनमोहन मालवीय

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के प्रवेश द्वार के बाहर एक विशालकाय कांस्य प्रतिमा लगी है। जब उधर से गुजरता हूँ तो उस मूर्ति को प्रणाम कर स्मरण करता हूँ कि ये वही मालवीयजी महाराज हैं जिन्हें सारा विश्व मदनमोहन मालवीय के नाम से जानता है और मुझे १९३६ में जिनके दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

जब कलकत्ता में छात्र था तो सुना करता था कि मालवीयजी महाराज ने बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी का निर्माण किया है। इस भव्य विश्वविद्यालय का सारा परिसर काशीनरेश ईश्वरीनारायण सिंह जी ने महामना मालवीयजी को दानस्वरूप दिया था। परिसर में बनी अनेक इमारतें राजाओं-महाराजाओं की देन हैं। मालवीयजी महाराज दरभंगा नरेश या बड़ौदा नरेश सभी से कुछ न कुछ माँगकर ले आया करते थे। धीरे-धीरे आजादी के पूर्व इस विश्वविद्यालय ने ऐसा स्वरूप ले लिया था कि लोग इसे भारत का आक्सफोर्ड कहने लगे थे। क्षेत्रफल की विशालता के कारण विश्वविद्यालय स्वयं में एक नगर माना जाता है।

बचपन में सुना करता था कि मालवीयजी महाराज ने लंदन के गोलमेज सम्मेलन में गाँधीजी के साथ भाग लिया था। यह सम्मेलन ब्रिटिश साम्राज्य के कर्णधारों ने इसलिए बुलाया था कि भारत को किस तरह का स्वराज्य दिया जाय। मालवीयजी महाराज नरमपंथी माने जाते थे, परन्तु गोलमेज सम्मेलन के अवसर पर उन्होंने गाँधीजी का साथ दिया और पूर्ण स्वराज्य से कुछ भी कम लेने की बात स्वीकार नहीं की।

मालवीयजी हिन्दू महासभा के अध्यक्ष थे तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन के भी दो बार अध्यक्ष रह चुके थे। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की भी अध्यक्षता उन्हें मिली थी। ऐसा राजनैतिक, सामाजिक और शैक्षिक समन्वय बिरलों में ही पाया जाता है।

हमलोगों ने सुना था कि मालवीय जी महाराज नारी शिक्षा के बड़े पक्षधर थे। इसका सबसे बड़ा प्रमाण काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में महिला कालेज की स्थापना है। मार्टिन बर्न, बर्नपुर, बंगाल के डाइरेक्टर सर बीरेन मुखर्जी की पत्नी लेडी रानू मुखर्जी महिला कालेज की स्थापना के प्रेरकों में थीं। लेडी मुखर्जी काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के एक प्राध्यापक की ही बेटी थीं और मालवीयजी महाराज की प्रेरणा से इनका विवाह सर बीरेन मुखर्जी से हुआ था।

सुना करता था कि काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में बंगाल के बड़े-बड़े शिक्षाविद् प्राध्यापक रहे हैं। उनमें राधाकुमुद मुखर्जी, इतिहासवेत्ता रमेशचन्द्र मजुमदार और डे बाबा आदि ऐसे त्यागी पुरुष थे, जिन्हें मालवीयजी महाराज ने मुफ्त में बटोर रखा था। मेरे जीवन में वह अवसर आया, जब कल्पनालोक से बाहर निकल इस महापुरुष के दर्शन करने का सौभाग्य मिला। कलकत्ते में १९३७ में छात्रसंघ का अधिवेशन होनेवाला था। मैं उसका मंत्री था। मन में बड़ा उत्साह था कि किसी महान नेता को आमंत्रित करूँ, जो हमारे सम्मेलन का उद्घाटन करे। उद्घाटनकर्ता के रूप में राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन इलाहाबाद में हमें अपनी स्वीकृति दे चुके थे।

इलाहाबाद में डा० राममनोहर लोहिया ने सम्मेलन के लिए अनेक लोगों के संदेश हमें दिलवाये थे। उन संदेशों में प्रमुख संदेश था लोहिया जी का, आचार्य जे०बी० कृपलानी का। प्रसंगतः वहीं हमारे मन में विचार आया कि हमलोग काशी उतरते हुए कलकत्ता चलें और मालवीय जी महाराज का भी संदेश सम्मेलन के लिए प्राप्त करें।

प्रयाग से रवाना होते समय मेरे मित्र मोतीलाल शर्मा और मैं छोटी लाइन की ट्रेन से सवारी करके बनारस आ रहे थे। कुछ राष्ट्रीय नेता भी उसी डिब्बे में थे। मालवीयजी महाराज की चर्चा करने पर उन्होंने हम लोगों को बताया कि मालवीयजी एक क्रांतिदर्शी सनातनी हैं, जिन्होंने हरिजनों को भी जनेऊ दिया था। उन्हीं नेताओं ने हमें रास्ते में बताया कि मालवीयजी काशी में राष्ट्ररत्न बाबू शिवप्रसाद गुप्त के नगवाँ स्थित भवन में रहते हैं। हमारा रास्ता सुगम हो गया।

काशी उतरे और स्नान-ध्यान करके प्रातः ९ बजे नगवास्थित बाबू शिवप्रसाद गुप्त की कोठी पर पहुँच गये। द्वार पर पहुँचने पर सहज ही भीतर जाने की अनुमति मिल गयी और प्रथम दर्शन बाबू शिवप्रसाद गुप्त का ही मिला। बाबू शिवप्रसाद गुप्त के सम्बन्ध में सुना था कि वे मानव दृष्टि के व्यक्ति हैं और उनमें कृत्रिमता नाम की कोई चीज नहीं है। हमलोगों ने निवेदन किया कि मालवीयजी महाराज से मिलवा दें, जिसे गुप्तजी ने सहर्ष स्वीकार किया।

हमलोग एक भव्य बैठके में ले जाये गये। खादीमय बैठका, खादी की दूधिया चादरों से ढँका था। तकियों पर भी खादी के गिलाफ थे। संकोच करते हुए हम और मोतीलाल बैठे-बैठे प्रतीक्षा कर रहे थे कि मालवीयजी महाराज के दर्शन शीघ्र ही होंगे। लगभग आधे घण्टे की प्रतीक्षा के बाद पदचाप सुनाई दी और वही मालवीयजी महाराज आते हुए दीखे, जिनकी फोटो हमने समाचार पत्रों में देखी थी।

ऐसे महापुरुष को मन ही मन हमलोगों ने नमन किया। मैं और मोतीलाल दोनों ही उठ खड़े हुए। श्रद्धापूर्वक संकोची प्रणाम किया। मन में कुछ भय भी था कि मालवीयजी महाराज किस तरह मिलेंगे। परन्तु सेकेण्डों में सबकुछ ठीक हो गया। बाबू शिवप्रसाद गुप्त ने कहा कि तुमलोग बैठ जाओ और जो बातें करना हो ५ मिनट में कर लो। मालवीयजी को विश्वविद्यालय जाना है।

मैंने जल्दी में एक स्वर में ही कह डाला कि हमलोग प्रयाग होते हुए आपके दर्शनार्थ आये हैं। कृपया हमारे कलकत्ता में होनेवाले छात्र सम्मेलन के लिए एक संदेश लिखकर दे दीजिये। मालवीयजी महाराज हँसे और बोले, मैं संदेश बोलता हूँ तुम लोग लिख लो। हमलोगों ने निवेदन किया कि यदि कुछ लिखित मिल जाय तो बहुत उत्तम। मैंने उन्हें बताया कि बाबू राजेन्द्र प्रसाद, सुभाषचन्द्र बोस, कृपलानीजी, लोहियाजी आदि के संदेश लिखित रूप में हमें मिल गये हैं।

मालवीय जी महाराज हँसे, कहा भगवान का आदेश है कि तुमलोग मेरा दिया हुआ संदेश स्वयं लिख लो। बाबू शिवप्रसाद गुप्त ने कागज आगे बढ़ा दिया। पेंसिल हमारे जेब में थी। संदेश लिखना शुरु किया।

मालवीय जी संदेश बोल रहे थे—

दूध पीयो कसरत करो, नित्य जपो हरिनाम।
हिम्मत से कारज करो, पूरन हों सब काम॥

कुछ पलों में ही सबकुछ हो गया। मालवीय जी महाराज एक मोटर में बैठकर विश्वविद्यालय चले गये और हमलोग बाबू शिवप्रसाद गुप्त के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हुए नगवा कोठी से बाहर आ गये। मैं सोच रहा था कि वह स्वप्न था या कि सत्य।

❀

स्मृतियों की परिधि में
टण्डनजी

बालक था, पर महत्वाकांक्षाओं ने मेरे बचपन को दबा दिया था। नेतागिरी का जुनून सर पर सवार था। कक्षा ९ में ही मैं कलकत्ता बड़ाबाजार छात्र संघ का मंत्री हो गया और बंगाल छात्रसंघ का संयुक्तमंत्री भी। इसके पूर्व बच्चों की वानर सेना का सेक्रेटरी रहा। यह सब बंगाल की उस धरती पर, जहाँ क्रान्ति के अंकुर सहजता से फूटते हैं, किन्तु जहाँ की मिट्टी अन्य प्रान्त के लोगों को बड़ा समझ-बूझकर ही अपने सिर पर बैठाती है।

वानर सेना के सैनिक के रूप में ही मैं काशी आया था। मैंने यहीं टण्डनजी को देखा था। उस समय मस्तिष्क पर उनकी कोई विशेष छबि नहीं बन पायी थी, क्योंकि मुझमें क्रान्ति सुगबुगा रही थी और मैं अपने सामने शान्ति के देवता को जो मेरे सामने बैठा हुआ था ठीक से पहचान न सका था।

१९३७ के अप्रैल की बात है, मैं कलकत्ता के स्कॉटिश चर्च कालेज में पढ़ता था। छात्रों की कान्फ्रेन्स होनेवाली थी। तलाश थी एक सभापति की। एक उद्घाटन कर्त्ता की, एक मुख्य अतिथि की। अपने प्रयत्न में अग्रसर हुआ। श्री प्रभुदयाल हिम्मतसिंह का पत्र लेकर सदाकत आश्रम पहुँचा। डॉ० राजेन्द्रप्रसादजी की आत्मीयता तो मिली, पर आश्वासन नहीं मिला।

स्व० शरद बोस के पत्र के बल पर डॉ० सरोजिनी नायडू से मिलने का सौभाग्य मिला। उनकी स्वाभाविक महानता और आरोपित अभिजात्यता भी मुझे किसी प्रकार का आश्वासन न दे सकी। तब इलाहाबाद की ओर चला। वहाँ डॉ० राममनोहर लोहिया थे, जिनसे मेरे परिवार का घनिष्ठ सम्बन्ध था। उन्होंने मुझे इस सम्बन्ध में लिखा था कि कोई न कोई व्यवस्था हो जायेगी। उनके वाक्य की डोर पकड़कर बढ़ना अब मेरे लिए स्वाभाविक भी था और सरल भी। उन दिनों चीन से लौटे कामरेड एम० एम० राय इलाहाबाद के बारनेट होटल के एक कक्ष में अपनी महिला मित्र एलेन के साथ थे, बड़ी सहजता से मिले, किन्तु निश्चित आश्वासन देने की स्थिति में वे भी नहीं थे। उन्होंने कहा—'मैं कलकत्ता पहुँच सका तो अवश्य उपस्थित होऊँगा।

अब मेरे पास अन्तिम 'आप्शन' कृपलानी जी के लिए था। डॉ० लोहिया ने हमारे लिए कृपलानीजी से आग्रह किया। पर उन्होंने भी अपनी असमर्थता व्यक्त की। हम लोग टण्डनजी के यहाँ पहुँचे। जहाँ डूबते को एक तिनका चाहिए था वही मिल गया, एक विश्वास हुआ कि अब नाव से अवश्य पार उतर जाऊँगा।

लोहियाजी उन दिनों अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के परराष्ट्रसचिव थे। टण्डनजी से उनकी बड़ी निकटता थी। उनकी कृपा से वे राजी होने की स्थिति में आये। मैं अपने सहपाठी मोतीलाल शर्मा के साथ टण्डनजी के निवासस्थान पर पहुँचा। वे बड़ी सरलता से मिले। लगा कि सामने कोई नेता नहीं, वरन् ऋषि बैठा है। उनकी सहजता ने मुझे पहली दृष्टि में ही मोह लिया। वे मुस्कराते हुए बोले—अप्रैल में तो कलकत्ते में बड़ी गर्मी पड़ती है। कैसे मुझे ले चलोगे?

हम लोगों ने कहा कि जैसे सम्भव हो, आपको चलना ही होगा। उन्होंने सहज स्वीकृति दे दी। इसके बाद मैं कलकत्ता में उनका पत्र मिला, कि प्रिय कृष्णचन्द्र जी, 'आपका १३ ता० का पत्र अभी मिला। मैंने आपके मिलने के दूसरे या तीसरे दिन डाक्टर राममनोहर लोहिया से बता दिया था कि २९ और ३० तारीख को मैं पहुँच सकूँगा। उन्होंने मुझसे कहा था कि वह तुरन्त आपको इत्तला दे देंगे। आप लिखते हैं कि आपको कोई इत्तला नहीं। शायद लोहिया जी भूल गये। यद्यपि इसकी सम्भवाना मुझे कम जान पड़ती है। वह तो कलकत्ता भी जानेवाले थे। शायद गये हों और आपसे मिले हों।

चूँकि २९ और ३० तारीखों में आप लोगों को सुविधा नहीं है, इसलिए मेरा निवेदन है कि मेरे पहुँचने पर जोर न दीजिए। २६ ता० तक तो मुझे कानपुर में ही लोक सेवा मण्डल के काम से, जिसका मैं प्रधान हूँ, ठहरना होगा। उसके बाद लगभग दो दिन का एक अन्य आवश्यक कार्य है। इसीलिए मैंने २९ और ३० तारीखें रखी थीं।'

उपरोक्त पत्र अब भी मेरी अप्रतिम धरोहर है। यह पत्र हिन्दी में है, जबकि उस समय अधिकांश नेता अँग्रेजी में लिखना पसन्द करते थे। टण्डन जी के हिन्दी प्रेम ने मुझपर उस समय जो छाप छोड़ी, वह आज तक बनी है।

तारीख तो परिवर्तित हो गयी थी, पर कितना उत्साहित किया था इस पत्र ने। इसी उत्साह का परिणाम था हमारी वह भारी भीड़ जो उनके स्वागतार्थ स्टेशन पर एकत्र हुई थी। हम गाजे-बाजे के साथ उन्हें लेने गये और बिद्रन स्ट्रीट तक बग्घी में बैठाकर जुलूस में ले गये। जरा भी 'ना नुकुर' नहीं, यहाँ भी दिखावा नहीं। सब कुछ आत्मीयता के साथ और बच्चों का काम जानकर स्वीकार करते गये।

जुलूस वैसा व्यवस्थित नहीं था जैसा हम चाहते थे। लड़के जुलूस में बिखरे हुए चल रहे थे, फिर भी उन्होंने कुछ बुरा नहीं माना। बैठना न चाहकर भी हमारे उत्साहपूर्ण आग्रह ने उन्हें बग्घी पर बैठा दिया। उन दिनों सप्ताह में मात्र तीन दिन वे अन्न लिया करते थे, शेष दिन गुड़, पानी, दही और फल पर कट जाता था।

शाम को टाउनहाल में सभा थी। सौभाग्य से कामरेड एम० एन० राय भी अपने वचन के अनुसार उद्घाटन के लिए पहुँच गये थे। कलकत्ता विश्वविद्यालय के उपकुलपति डाक्टर श्यामाप्रसाद मुखर्जी हमारे मुख्य अतिथि थे। इनके अतिरिक्त मंच पर थे—आल इण्डिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस के सभापति श्री शिवनाथ बनर्जी, प्रसिद्ध मजदूर नेता श्री दयाराम बेरी, सीतारामजी सेक्सरिया और प्रभुदयालजी हिम्मतसिंह आदि। हमारा मंच गौरवान्वित हो गया था। उम्मीद से अधिक हमें सफलता दिखाई देने लगी थी।

हमारा सभा-ज्ञान सीमित था। हम अनेक गलतियाँ करते चले जा रहे थे। मैं मंत्री था और मेरी रिपोर्ट में आय-व्यय का ब्यौरा ही नहीं था। मेरे बचपन के दोस्त और मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के पालिट ब्यूरो के सदस्य तथा उत्तर प्रदेश सी० पी० आई० एम० के अध्यक्ष श्री शंकरदयाल तिवारी ने आपत्ति की। तिवारी की बार-बार आपत्ति से मैं परेशान हो गया। आय-व्यय का ब्यौरा होना चाहिए था—आपत्ति उचित थी, पर आय-व्यय का हिसाब तैयार नहीं था। अगली कार्यसमिति में उसे अवश्य उपस्थित किया जाय। टण्डनजी का वाक्य वेदवाक्य की भाँति मान लिया गया। कोई हंगामा नहीं। कोई नारेबाजी नहीं। मामला रफा-दफा हो गया।

टण्डनजी का अध्यक्षीय भाषण उपदेशात्मक था। उन्होंने छात्रों को धर्मनिष्ठ होने की सलाह दी। सदाचार, सत्य और अहिंसा का उपदेश दिया। उन्होंने कहा—छात्रों को पढ़ना-लिखना जारी रखते हुए खेतों में काम करना चाहिए। लगा, टण्डनजी के स्वर में गाँधीजी बोल रहे हैं। वैसा ही शान्तभाव, वैसा ही स्वरों का आरोह-अवरोह न कोई भाषणी पैंतरेबाजी।

पर कामरेड एम० एन० राय और शिवनाथ बनर्जी के भाषण गरमागरम थे। क्रान्तिकारी थे। सिद्धान्तों और तर्कों से भरे हुए थे। अहिंसा से अधिक हिंसा पर ज़ोर दिया गया था, किन्तु अध्यक्ष टण्डनजी पर कोई प्रभाव नहीं था। वे शान्तभाव से सुनते रहे। एक ओर गंगा-सी शान्ति, दूसरी ओर समुद्र सा उछाल।

कान्फ्रेन्स समाप्त हुई। टण्डनजी ने मुस्कराते हुए अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की—कामरेड राय और बनर्जी के भाषण बिजली की तरह थे। बड़ी चमक थी, किन्तु भारतीय अल्पवयस्क युवकों के लिए कितने लाभप्रद होंगे, इसका मुझे अनुमान नहीं। ऐसे थे सहजता और सरलता की मूर्ति टण्डनजी।

❀

ऐसे थे लोहियाजी

डा० राममनोहर लोहिया को बहुत नजदीक से देखने का अवसर मुझे तब मिला जब वे विदेश से डाक्टरेट की उपाधि लेकर कलकत्ता लौटे। बात १९३४ के आसपास की है। मेरे चाचा मजदूर नेता श्री दयाराम बेरी उनके पिता श्री हीरालाल लोहिया के मित्र थे। कलकत्ता में हमारी पुस्तकों की दुकान हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय में हीरालालजी नित्य शाम को आकर बैठते थे। लोहियाजी अपने पिता से मिलने के लिए सायंकाल अवश्य आते थे। पिता के प्रति उनका सहज स्नेहभाव देखने को मिलता था। हीरालालजी बड़े लहजे से उनसे पूछते थे कि मनोहर आज की गतिविधि क्या रही। लोहियाजी विनयपूर्वक अपने पिता को मिनटों में दिनभर की कार्यसूची बता देते थे।

जर्मनी से लौटने के बाद लोहियाजी ने कांग्रेस में भाग लेने के लिए उत्सुकता दिखाई। समाजवादी विचारधारा के पोषक लोहियाजी कालक्रम में नेहरूजी के निकट आये और उन्हीं की कृपा से अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के विदेश सचिव हुए।

समाजवादी खेमे का सदस्य होने के कारण मैं स्वयं लोहियाजी के प्रति बहुत आकृष्ट था। उनका और हमारे परिवार का सामीप्य तो एक कारण था ही, परन्तु दूसरा कारण लोहियाजी का समाजवादी व्यक्तित्व था।

१९३५ से ही देश में समाजवादी विचारधारा भारतीय युवकों को आकृष्ट कर रही थी। आचार्य नरेन्द्रदेव, जयप्रकाश नारायण, मीनू मसानी, डा० राममनोहर लोहिया, कमला देवी चट्टोपाध्याय, अच्युत पटवर्द्धन, युसुफ मेहर अली, सज्जाद जहीर, सम्पूर्णानन्द प्रभृति भारतीय समाजवादी आन्दोलन के गणमान्य नेता माने जाते थे। देश के युवकों का ध्यान इनकी गतिविधियों पर लगा रहता था।

१९३७ में मैं बंगाल छात्रसंघ की बड़ाबाजार शाखा का मंत्री था। हमलोग कलकत्ता में छात्रसंघ का अधिवेशन करने की तैयारी कर रहे थे। हमें तलाश थी किसी एक अध्यक्ष और उद्घाटनकर्त्ता की। लोहियाजी से पूर्व परिचय होने के कारण मैं अपने साथी मोतीलाल शर्मा के साथ इलाहाबाद गया। वहाँ आनन्द भवन में लोहियाजी रहते थे। उनसे अनुरोध किया कि सम्मेलन का अध्यक्ष स्थिर कर दें। लोहियाजी ने आचार्य जे०बी० कृपलानी के नाम का सुझाव दिया, परन्तु कृपलानीजी को अवकाश न होने के कारण वे तैयार नहीं हुए। उन दिनों प्रसिद्ध क्रान्तिकारी नेता कामरेड एम०एन० राय चीन से भारत आये हुए थे और इलाहाबाद के बार्नेट होटल में रुके हुए थे। लोहियाजी का पत्र लेकर हमलोग उनसे मिले और वे सम्मेलन का उद्घाटन करने को सहमत हो गये।

लोहियांजी से अध्यक्षता करने का आग्रह किया गया। उन्होंने हमलोगों को सुझाव दिया कि श्री पुरुषोत्तमदासजी टण्डन को सम्मेलन का सभापतित्व करने को कहा जाय। लोहिया जी के कहने पर टण्डनजी ने स्वीकृति दे दी।

लोहियाजी ने कृपा करके सम्मेलन के लिए एक सन्देश अवश्य दे दिया:

"दुनिया का रूप बड़ी तेजी से बदल रहा है। आज का जमाना क्रान्तियों का जमाना है। सामाजिक, राजनैतिक सभी बातें बदल रही हैं। इन्हें जानना बहुत जरूरी है। जो आजकल विद्यार्थी हैं उन्हें बड़ी खुशी होनी चाहिए कि उन्हें इन सब बातों को समझने का अवसर मिला है। विद्यार्थियों को आजकल दो चीजों की ज्यादा जरूरत है। एक उन्हें उन्मुक्त होना चाहिए एवं दूसरा उन्हें निडर और क्रान्तिकारी होना चाहिए। वे उत्सुक हों और दुनिया को समझने की कोशिश करें। वे निडर हों और पुरानी दकियानूसी सरकारों, रिवाजों और खयालों को खतम करें।"

मानवता की कसौटी :
बाबू सम्पूर्णानन्द

सन् १९३६ के आस-पास बंगाल से ही अपने छात्र जीवन में मेरा झुकाव समाजवादी आन्दोलन की ओर था। कांग्रेस समाजवादी दल का गठन हो चुका था। हमारे चहेते नेता थे अच्युत पटवर्धन, जयप्रकाश नारायण, कमलादेवी चट्टोपाध्याय, सज्जाद जहीर, यूसुफ मेहर अली, डॉ० राममनोहर लोहिया, डॉ० अशरफ आदि। इन लोगों में ऊपरी तबके में आचार्य नरेन्द्रदेवजी और सम्पूर्णानन्दजी का नाम लिया जाता था। भ्रमवश बंगाली सम्पूर्णानन्दजी के नाम से भ्रमित हो उन्हें सन्यासी या साधु समझते थे। उनकी पुस्तक 'समाजवाद' प्रत्येक युवा समाजवादी के लिए बाइबिल बन चुकी थी।

बाबू सम्पूर्णानन्दजी गणेशशंकर विद्यार्थी के अन्यतम सहयोगियों में थे। विद्यार्थीजी की तरह ही वे भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के स्वतंत्रता सेनानी रहे और बाबू शिवप्रसाद गुप्त द्वारा सम्पादित 'आज' को उन्होंने बहुमूल्य सहयोग दिया।

गणेशशंकर विद्यार्थी के प्रताप प्रेस से बाबू सम्पूर्णानन्दजी की प्रारम्भिक कृतियाँ प्रकाशित हुई थीं। सम्राट अशोक, छत्रसाल, चेतसिंह, सम्राट हर्षबर्द्धन आदि उनकी प्रारम्भिक कृतियाँ थीं। विद्यार्थीजी के 'दैनिक प्रताप' में भी उन्होंने लेख लिखे।

बाद में उन्होंने ज्ञानमण्डल को 'ब्राह्मण सावधान' पुस्तक लिखकर दी, जिसकी चर्चा बहुत ही व्यापक रूप में हुई। 'गणेश' पर लिखी उनकी शोधपरक कृति और 'समाजवाद' ज्ञानमण्डल के ही प्रकाशन थे।

प्रारम्भ में बाबू सम्पूर्णानन्द पं० गोविन्द वल्लभ पंत के मंत्रिमण्डल में शिक्षा मंत्री रहे। बाद में उ० प्र० के मुख्यमंत्री बने और अन्त में सन् १९६४ में राजस्थान के राज्यपाल बनाये गये। उनके समय में जयपुर का राजभवन काशीवासियों के लिए अतिथिशाला बना हुआ था।

सार्वजनिक जीवन में अपनी ईमानदारी के कारण उन्हें बहुत सम्मानित दृष्टि से देखा जाता था। बाबूजी के नाम से लोग उन्हें सम्बोधित करते थे। बाबूजी स्वतंत्र विचार के थे। उन्हें व्यक्तिगत की अपेक्षा कर्तृत्व प्रभावित करता था। अनेक बार जवाहरलाल नेहरू जैसे महान् नेता से भी उनके सैद्धान्तिक मतभेद उभर आते थे।

राजनीतिक महत्ता के बावजूद उनका साहित्यकार और पत्रकार मन किसी भी हालत में कम नहीं था। इसलिए हिन्दी की सेवा करने में भी वे सक्षम हुए। भाषा को सरल बनाने और परिष्कृत करने का बहुत श्रेय उनको भी है। उन्हीं के मुख्यमंत्रित्व काल

में उत्तरप्रदेश हिन्दी समिति बनी। वह अपनी आकर्षक लेखन शैली के लिए प्रसिद्ध थे। लेखन में अपना हृदय निकाल कर रख देते थे।

बाबू सम्पूर्णानन्द के अन्तरंग सहयोगियों में रामेश्वर सहाय सिनहा, डॉ० गिरीश सहाय, कृष्णदेव प्रसाद गौड़ 'बेढब बनारसी' अन्यतम थे। स्थानीय राजनीति में राजबिहारी सिंह, सज्जन देवी महतो, कृष्णचन्द्र शर्मा, डॉ० तुंगम्मा आदि उनके नजदीकी थे। भगवतीशरण सिंह उनके सचिव थे। जीवनपर्यन्त बाबू सम्पूर्णानन्दजी ने साहित्यिक लेखन की मर्यादा को अक्षुण्ण रखा।

उ० प्र० में बेसिक शिक्षा का आविर्भाव डॉ० सम्पूर्णानन्दजी के कार्यकाल में ही हुआ। गाँधीजी के आदर्शों पर प्रदेश के सभी प्राइमरी स्कूल बेसिक शिक्षा से जोड़े गये। कताई-बुनाई और कृषि तथा बागवानी रोजगारपरक शिक्षा का माध्यम बने। बाबूजी के निर्देश पर इन विषयों पर अलग-अलग पाठ्य-पुस्तकें तत्कालीन शिक्षा निदेशक डॉ० इबादुर रहमान खान ने बनाईं।

ईमानदारी की प्रतिमूर्ति डॉ० सम्पूर्णानन्द आज देश के लिए आदर्श मिसाल हैं। इतने बड़े-बड़े पदों पर रहने के बाद भी वे अपने परिवार के लिए कुछ भी नहीं छोड़ गये। उनके पुत्र सर्वदानन्दजी अपने अन्तिम जीवन काल में अर्थाभाव के कारण समुचित चिकित्सा का लाभ भी नहीं उठा सके।

देश की स्वतंत्रता के लिये त्याग करनेवाले इने-गिने नेताओं में सम्पूर्णानन्दजी का नाम आता है। उनकी रगों में राष्ट्रप्रेम की धारा प्रवाहमान थी। बापू द्वारा संचालित कोई भी ऐसा आन्दोलन नहीं था, जिसमें उन्होंने सक्रिय रूप से भाग न लिया हो। सन् १९४२ के आन्दोलन में उनकी भूमिका चिरस्मरणीय रहेगी।

वे जब भी विधान सभा के लिए चुनाव लड़े तो कभी भी पराजित नहीं हुए। एक बार साम्प्रदायिकता ने उन्हें झकझोरना चाहा, परन्तु उस बार भी वे सत्य की कसौटी पर खरे उतरे और उन्होंने अपने प्रतिद्वन्द्वी रूस्तम सैटिन के विरुद्ध अद्भुत और आश्चर्यजनक विजय प्राप्त की। अपने जीवन के अन्तिम दिनों में वे काशी विद्यापीठ के कुलाधिपति भी थे। उनका स्वाभिमान, चिन्तन और उनकी पवित्र भावनाएँ सामाजिक मानदण्डों की आदर्श बनी रहीं। काशी को गर्व है कि उसने डॉ० सम्पूर्णानन्द के रूप में मानवतावादी उच्च आदर्शवाला एक नेता पाया।

भारतीय संस्कृति एवं शिक्षा के उन्नायक: डॉ० जाकिर हुसैन

डा० जाकिर हुसैन का जन्म १८९७ में हैदराबाद में हुआ। उनके पिता हैदराबाद में वकालत करते थे और आइने-दकन नामक कानून के एक पत्र के सम्पादक थे।

उनकी प्रारम्भिक शिक्षा एक अँग्रेज शिक्षक की देखरेख में घर पर हुई। जब उनके पिता की मृत्यु हुई, उनकी उम्र लगभग ९ वर्ष थी। १९०७ में उनका परिवार उत्तर प्रदेश के इटावा शहर में चला आया और यहाँ वह अपने तीन भाइयों के सहित एक हाईस्कूल में भरती हुए।

डा० जाकिर हुसैन ने अलीगढ़ विश्वविद्यालय से स्नातक की उपाधि प्राप्त की। बाद में पी-एच० डी० की उपाधि उन्हें बर्लिन विश्वविद्यालय से मिली।

१९२० में देश में असहयोग आन्दोलन की जो लहर आई, उससे डा० जाकिर हुसैन भी अछूते न रह सके। यहीं से उनके महात्मा गाँधी से दीर्घ सम्पर्क की शुरुआत हुई।

वह उन कुछ देशभक्त भारतीयों में थे, जिन्होंने राष्ट्र की सेवा में शिक्षा के क्षेत्र में जीवन अर्पित किया। उन्होंने ही १९२० में महात्मा गाँधी को दिल्ली में जामिया मिलिया स्थापित करने के लिए प्रेरित किया। उनका विचार था कि राजनीति के संकीर्ण माध्यम से राष्ट्र का पुनरुत्थान सम्भव नहीं है। उनके विचार में राष्ट्र का उत्थान शिक्षा और संस्कृति में नया दृष्टिकोण अपनाने और राष्ट्रीय चेतना को नया स्वरूप देने से ही सम्भव था।

उनके विचार में अँग्रेजी शिक्षा-प्रणाली संकीर्ण और पुरानी थी और इसके द्वारा व्यक्तित्व का विकास सम्भव नहीं था। डा० जाकिर हुसैन का लक्ष्य था कि जामिया मिलिया के माध्यम से एक ऐसी शिक्षा-प्रणाली का विकास किया जाए, जो राष्ट्रीय संस्कृति के अनुरूप हो।

जामिया मिलिया देश की उन कुछ शिक्षा संस्थानों में है, जिसने सबसे पहले जीवनयापन और ज्ञानार्जन में सामूहिक दृष्टिकोण अपनाने, छात्रों को अच्छा नागरिक बनाने और उनमें कला के प्रति रुचि पैदा करने का प्रयास किया।

लगभग ३० वर्ष तक वह जामिया मिलिया के उपकुलपति रहे और उन्होंने ऐसी परिस्थितियों में काम किया, जो किसी भी कम विश्वास और लगनवाले व्यक्ति को निरुत्साहित करने के लिए पर्याप्त थीं।

स्वतंत्रता से पहले और स्वतंत्रता के बाद भी डा० जाकिर हुसैन ऐसी शिक्षा प्रणाली तैयार करने के लिए काम करते रहे, जो राष्ट्र के विकास में सहायक हो।

हिन्दुस्तानी तालीमी संघ, सेवाग्राम, के अध्यक्ष की हैसियत से डा० जाकिर हुसैन ने महात्मा गाँधी के बुनियादी शिक्षा सम्बन्धी विचारों को व्यावहारिक रूप दिया। उन्होंने किताबी शिक्षा और व्यावहारिक शिक्षा को इस प्रकार मिलाया कि शिक्षा का एक अधिक उपयोगी रूप सामने आया।

डा० जाकिर हुसैन यूनेस्को से भारतीय प्रतिनिधिमण्डलों के सदस्य के रूप में भी सम्बद्ध रहे। १९५६-५८ में वह यूनेस्को के कार्यकारी मण्डल के सदस्य चुने गए। वह इंडियन कमेटी, अन्तर्राष्ट्रीय छात्र सेवा (१९५५ तक) और अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय सेवा, जेनेवा (१९५५-५७) के अध्यक्ष भी रहे हैं।

संस्कृति और शिक्षा के क्षेत्र में उनकी सेवाओं के लिए उन्हें १९५४ में 'पद्म विभूषण' से भी अलंकृत किया गया।

साहित्य, विज्ञान, कला और समाज सेवा के क्षेत्र में उल्लेखनीय काम करनेवालों के लिए राज्यसभा में जो स्थान सुरक्षित रहते हैं, उनमें से एक स्थान पर डा० जाकिर हुसैन को १९५२ में नामजद किया गया। अप्रैल, १९५६ में वह पुनः राज्यसभा के सदस्य नामजद किए गए और ६ जुलाई, १९५७ को बिहार का राज्यपाल नियुक्त होने तक राज्यसभा के सदस्य रहे।

मई, १९६२ में वह भारत के उपराष्ट्रपति निर्वाचित हुए। इसके बाद १९६७ से लेकर अपने जीवन के अंतिम दिनों तक उन्होंने भारत के राष्ट्रपति के सर्वोच्च पद को सुशोभित किया।

डा० जाकिर हुसैन ने अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। इनमें प्रमुख हैं—'कैपिटलिज्म : ऐन एस्से इन अंडरस्टैंडिंग', 'शिक्षा' (हिन्दी)। इसके अतिरिक्त उन्होंने प्लेटो के 'रिपब्लिक', लिस्टके 'नेशनल सिस्टम ऑफ इकानामिक्स' और एडविन केनन्स के 'एलिमेंट्स ऑफ इकानामिक्स' का उर्दू में अनुवाद किया है।

पूर्व राष्ट्रपति : वाराहगिरि वेंकटगिरि

श्री वाराहगिरि वेंकटगिरि का जन्म १० अगस्त, १८९४ को बरहमपुर, उड़ीसा में हुआ। कल्लिकोटा कालेज, बरहमपुर से स्नातक होने के बाद गिरि जी ने आयरलैण्ड के राष्ट्रीय विश्वविद्यालय, डबलिन में प्रवेश किया। वहाँ से उन्होंने बार-ऐट-लॉ की उपाधि ली।

भारत लौटने पर गिरि जी इंडियन नेशनल कांग्रेस में शामिल हुए। कुछ समय बाद उन्होंने मजदूर संगठन को अपना कार्य-क्षेत्र बनाया। आल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस की स्थापना में उनका भी हाथ था और वे दो बार इसके अध्यक्ष रहे। उनके सार्वजनिक जीवन का काफी समय आल इंडिया रेलवेमेन्स फेडरेशन को बनाने में व्यतीत हुआ। वे ७ साल तक इसके महासचिव भी रहे और बाद में सात साल के लिए इसके सहअध्यक्ष।

जेनेवा में १९२७ में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन सम्मेलन में उन्होंने आल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस का प्रतिनिधित्व किया और लन्दन में १९३१ में उन्होंने भारतीय मजदूरों के प्रतिनिधि के रूप में दूसरे गोलमेज सम्मेलन में भाग लिया।

गिरि जी एक अनुभवी संसदविद् भी थे। १९३७ में वे मद्रास विधानसभा के लिए चुने गए और मद्रास मंत्रिमण्डल में १९३७ से १९३९ तक श्रममंत्री रहे। १९४६ के आम चुनाव में वे मद्रास विधानसभा के लिए फिर चुने गए और टी० प्रकाशम् के मंत्रिमण्डल में लगभग एक साल तक श्रममंत्री रहे। १९४७ में उनके मंत्रिमण्डल से त्यागपत्र के बाद वे श्रीलंका में १९५० तक भारत के उच्चायुक्त रहे।

१९५२ के पहले आम चुनाव में श्री गिरि मद्रास राज्य के पथपतनम् निर्वाचन क्षेत्र से कांग्रेस के टिकट पर लोकसभा के लिए निर्वाचित हुए। इसके कुछ महीने बाद वे भारत सरकार के श्रममंत्री बने, जिस पद पर वे मई १९५२ से सितम्बर १९५४ तक रहे।

गिरि जी ख्याति के मजदूर नेता और प्रशासक थे और एक सफल राजनयिक भी। १९३७ में वे राष्ट्रीय आयोजना समिति के संयोजक रहे, जिसके अध्यक्ष स्वर्गीय जवाहरलाल नेहरू थे।

गिरि जी १९५९ से ६० तक उत्तर प्रदेश के राज्यपाल, १९६१ से ६५ तक केरल के राज्यपाल और २ अप्रैल १९६५ से १९६७ तक तत्कालीन मैसूर के राज्यपाल भी रहे। इसके बाद जब डॉ० जाकिर हुसैन भारत के राष्ट्रपति बने तब वे उपराष्ट्रपति हुए। उनके निधन के बाद अब तक के सबसे प्रतिष्ठापरक राष्ट्रपति के चुनाव में वे भारत के राष्ट्रपति पद पर शानदार ढंग से निर्वाचित हुए।

अविस्मरणीय यादें :
कामरेड एम० एन० राय

बात १९३६ की है। उन दिनों मैं कलकत्ता के बड़ाबाजार छात्रसंघ का महामंत्री और बंगाल स्टुडेन्ट फेडरेशन का संयुक्त मंत्री था। उसी साल अप्रैल में कलकत्ता के टाउनहाल में हमलोग अपनी दूसरी कान्फ्रेन्स आयोजित करने जा रहे थे। तलाश थी दो नेताओं की जो हमारे सम्मेलन का सभापतित्व और उद्घाटन करें। इस सिलसिले में मैं डॉ० राम मनोहरलाल लोहिया से मिलने इलाहाबाद गया। लोहिया जी उन दिनों कांग्रेस के विदेशमंत्री थे। उनसे समय नियत कर मैं अपने सहपाठी श्री मोतीलाल शर्मा के साथ आनन्द भवन पहुँचा। यहाँ पहुँचने पर लोहिया जी ने ही बताया कि सुप्रसिद्ध कम्युनिस्ट नेता कामरेड एम० एन० राय भारत आ गये हैं और स्थानीय बारनेट होटल में रुके हुए हैं। लोहिया जी का सुझाव था कि कामरेड राय उद्घाटन करें और बा० पुरुषोत्तमदास टण्डन सभापतित्व। उत्साहपूर्वक राय महोदय से मिलने सायंकाल साढ़े चार बजे होटल पहुँचा। आव देखा न ताव, होटल पहुँचकर सीधे कामरेड राय के कमरे में दाखिल हो गया। कमरे में घुसते ही कामरेड राय के बाहुपाश में एक गोरी महिला को देखा। वे थीं उनकी भावी अमेरिकन पत्नी कुमारी एलेन। मैं झिझका और घबड़ाहट में बाहर लौट पड़ा।

बालक था। उन दिनों मुझे दुनियादारी का बहुत कम बोध था। कमरे में प्रवेश करते ही कामरेड राय मेरे अबोधपन को भाँप गये और बड़ी सरलतापूर्वक बोले कि बाहर बैठो, मैं आता हूँ। मैं बाहर चला गया और होटल की गैलरी में जा बैठा। कामरेड राय बाहर आये। मुझे समझाया कि कभी भी बिना पूछे किसी के कमरे में प्रवेश नहीं करना चाहिए। बाद में मैंने उनसे बातचीत की। उन्होंने वचन दिया कि वे हमारी कलकत्ता में होनेवाली कान्फ्रेन्स का उद्घाटन करेंगे।

मुझे आज भी बारनेट होटल के उस कमरे का दृश्य याद आता है। मन में अफसोस होता है कि मुझे कुछ समझदार होना चाहिए था।

❀

एक अद्भुत व्यक्तित्व : आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का नाम लेते ही हिन्दी साहित्य की वाग्मिता, भव्यता एवं पांडित्य का मिश्रित रूप आँखों के सामने मूर्त हो जाता है। आज द्विवेदी जी नहीं हैं, फिर भी उनकी भंगिमा मेरे नेत्रों के सामने है। भारतीय मनीषा का अक्षयवट नहीं है, पर अब भी उसकी छाया हमारे ऊपर है।

संभवत: सन् १९३५ की बात है। तब मैं कलकत्ता में विद्यार्थी था, पर मेरी चेतना अच्छी तरह पंख पसार चुकी थी। कलकत्ते के ही संभ्रांत नागरिक भागीरथ कानोड़ियाजी के यहाँ पं० गुरुनारायणजी पाण्डेय पधारे थे। वे आजमगढ़ के निवासी थे। राजर्षि पुरुषोत्तमदास जी का संस्तुति पत्र लाए थे। हिंन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग की परीक्षाओं के लिये विद्यार्थी तैयार करने के निमित्त एक विद्यालय खोलने का आग्रह उस पत्र में किया गया था। टंडनजी का आदेश शिरोधार्य करते हुए कानोड़ियाजी ने मंदिर स्ट्रीट में तुलसी-साहित्य विद्यालय नाम की एक संस्था की स्थापना की। इसी विद्यालय में प्रथम बार द्विवेदी जी ने अध्यापन आरम्भ किया था।

लम्बा कद, करीने से कटी मूँछ, प्रशस्त ललाट और क्षण-क्षण में हास बिखेरती हुई द्विवेदीजी की सहज पाण्डित्यपूर्ण भंगिमा—उनकी वाक्शक्ति उस विद्यालय में पहले पहल मुझे देखने को मिली। पंडितजी उन दिनों कानोड़ियाजी के परिवार के अभिभावक शिक्षक (गार्जियन ट्युटर) थे। कानोड़ियाजी ने अपने इस पारिवारिक रत्न को समाज को सौंपकर हिन्दी का कितना उपकार किया था, इसे आज बड़ी सरलता से समझा जा सकता है।

शीघ्र ही द्विवेदीजी की प्रतिभा की बेल को विकास के लिये एक नया आयाम मिला। विश्वकवि रवीन्द्रनाथ शान्तिनिकेतन में हिन्दी भवन की स्थापना करना चाहते थे। इन्हें एक ऐसे व्यक्ति की तलाश थी, जिसकी देख-रेख में उस भवन का भी निर्माण करा सकें और साथ-साथ अध्यापन का गुरुतर दायित्व भी वहन कर सकने में समर्थ हो, जिसे वह इन दोनों बातों का भार सौंप सकें। कानोड़ियाजी इस सन्दर्भ में 'टू इन वन' साबित हुए। उन्होंने शान्ति-निकेतन में हिन्दी भवन की स्थापना भी की तथा रविबाबू को द्विवेदीजी जैसा वाग्मी विद्वान् भी दिया।

द्विवेदीजी के लिये रविबाबू का सम्पर्क मणिकांचन-योग था। उनकी प्रतिभा का कंचन सुगंधित होने लगा। धीरे-धीरे उसकी सुरभि हिन्दी जगत् पर छाने लगी। सन् १९४९ में उत्तर प्रदेश के शिक्षा अधिकारी स्व० रामेश्वर सहाय सिन्हा तथा दीनानाथ कश्यप के साथ मैं शान्तिनिकेतन गया था। द्विवेदीजी ने हम लोगों की अविस्मरणीय आवभगत की। कितनी आत्मीयता थी उनके उस मिलन में। ऐसा लगा जैसे हम अपने परिवार में आए हों। यही पक्ष द्विवेदीजी के व्यक्तित्व का सबसे प्रबल पक्ष था। उनके पास जाने पर कोई स्वयं को पराया अनुभव नहीं करता था। 'बिछुरत एक प्राण हरि लेई' के वे साक्षात दृष्टांत थे।

सन् १९५६ में बंगाल के तत्कालीन शिक्षा मंत्री महाराजा प्रतापादित्य के वंशज राय हरेन्द्रनाथ चौधरी मेरे अतिथि होकर काशी पधारे। हिन्दी के संबंध में उनकी बहुत अच्छी धारणा नहीं थी। हिन्दी की विपन्नता का चित्र ही अभी तक उनके सामने उपस्थित किया गया था। बातचीत के सिलसिले में मुझे उनकी इस मानसिकता की गंध मिली। मैंने चौधरी साहब की इस धारणा को ध्वस्त करने के लिए उन्हें हिन्दी के कुछ विद्वानों से भेंट कराने की योजना बनाई। उन दिनों उत्तर प्रदेश के शिक्षामंत्री पं० कमलापतिजी थे। द्विवेदीजी काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग का अध्यक्ष पद सुशोभित कर रहे थे। इन दोनों महानुभावों ने मुझे सलाह दी कि मैं पहले चौधरी साहब को हिन्दी सेवी संस्थाओं में ले जाऊँ तथा उन्हें बताऊँ कि हिन्दी में क्या हो रहा है। इस क्रम में हिन्दी प्रचारक की ओर से मान मन्दिर में राय हरेन्द्रनाथ चौधरी के सम्मान में एक साहित्य गोष्ठी आयोजित की गई, जिसकी अध्यक्षता पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने की। मेरे लिये द्विवेदीजी का वह पहला भाषण था, जिसे हमने बंगला में सुना था। ऐसी धाराप्रवाह बंगला, वह भी साहित्यिक बंगला, द्विवेदीजी बोल सकेंगे, मुझे कल्पना नहीं थी। भाषा पर ऐसा प्रकांड अधिकार देखकर स्वयं चौधरी साहब चमत्कृत हो उठे। फिर हिन्दी के संबंध में द्विवेदीजी ने ऐसी विशद् जानकारी दी कि मान्य अतिथि अभिभूत हो उठे। उन्होंने उसी सभा में यह घोषणा की कि कलकत्ता के प्रेसीडेंसी कालेज में हिन्दी चेयर की स्थापना की जाएगी। द्विवेदीजी के पांडित्य और वाग्मिता का ही परिणाम था कि कलकत्ता पहुँचते ही चौधरी साहब ने हिन्दी लेक्चरर की स्थापना कराई। स्व० द्विवेदीजी के प्रभाव से डॉ० तारकनाथ अग्रवाल कालेज में हिन्दी के विभागाध्यक्ष बनाए गए।

जिस सभा में द्विवेदीजी उपस्थित होते थे, उनके भव्य व्यक्तित्व से वह सभा महिमामंडित हो जाती थी। अपने भाषण से वे छा जाते थे। सन् १९६७ में अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ का अधिवेशन कानपुर में हुआ। हम लोगों ने एक विचार गोष्ठी रखी, जिसका विषय था—क्या हिन्दी विश्वविद्यालयों में पठन-पाठन का माध्यम बन सकेगी? आचार्य मुंशीराम शर्मा, आचार्य जुगुलकिशोर आदि वक्ता थे। अध्यक्षता कर रहे थे द्विवेदीजी। उस सभा में भी द्विवेदीजी की वाणी की ओजस्विता एवं तेजस्विता ने

चमत्कार कर दिया और हमें इस निष्कर्ष पर पहुँचाया कि हिन्दीभाषी राज्यों के विश्वविद्यालयों के कुलपतियों का एक सम्मेलन किया जाय। यह द्विवेदीजी की सूझ और प्रेरणा थी कि केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय की ओर से देश के हिन्दी भाषी विद्यालयों के कुलपतियों का सम्मेलन १९६८ में काशी में हुआ। अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ के प्रतिनिधि के रूप में मैं शामिल हुआ। इसके बाद द्विवेदीजी चंडीगढ़ विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष होकर चले गए। उक्त सम्मेलन में हिन्दू विश्वविद्यालय के कुलपति डॉ० जोशी ने अपने उद्‌घाटन भाषण में द्विवेदीजी के कानपुर के भाषण की चर्चा की।

द्विवेदीजी साठ वर्ष के हो चुके थे। हिन्दी प्रचारक संस्थान की ओर से उनका षष्ठिपूर्ति उत्सव आयोजित किया गया। ६० बालिकाओं ने जब उनकी आरती उतारी, तब उनके नेत्र सजल हो उठे थे। उन्होंने भाव विह्वल होकर कहा—लक्ष्मी, सरस्वती और दुर्गा मेरी आरती उतारें, यह उचित नहीं। मैं तो स्वयं उनकी पूजा करता हूँ, आरती उतारता हूँ, और इनके आशीर्वाद का आकांक्षी हूँ।

सरस्वती का वरद् पुत्र, कबीर का महान् अध्येता, कबीर की ही भाँति काशी की अमरता को ठुकराकर अन्त समय में दिल्ली चला गया और वहीं देवलीन हुआ। अब मात्र उनकी यश:स्मृति शेष रह गई है।

भाषाविद् रामचन्द्र वर्मा की उपेक्षा क्यों?

पिछले कुछ वर्षों से लगातार किसी न किसी हिन्दी सेवी को इस अर्थ में याद किया जाता है कि उसके जन्म के सौ वर्ष पूरे हो गए। जन्मशती समारोहों के इस दौर में स्व० रामचन्द्र वर्मा को भी इस वर्ष याद किया गया, परन्तु उस तरह नहीं जिस तरह सरकारी स्तर पर किया जाता है। स्व० रामचन्द्र वर्मा की जन्मशती विद्वानों की एक कमेटी द्वारा मनाई गयी, जिसमें कुछ जाने-माने साहित्यकारों एवं नागरिकों ने ही अपना सहयोग दिया।

स्व० रामचन्द्र वर्मा बीसवीं शताब्दी के उन महान् हिन्दीसेवियों में अपना गौरवपूर्ण स्थान रखते हैं, जो हिन्दी की छबि निखारने, उसकी प्रकृति की रक्षा करने तथा उसे अभिव्यक्ति की दृष्टि से सशक्त करने के लिए प्राणपन से साधना रत रहे। लेकिन ऐसे हिन्दी साधक के प्रति सरकारी उपेक्षा, समझ से परे है।

स्व० रामचन्द्र वर्मा, आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी तथा बाबू बालमुकुन्द गुप्त की तरह हिन्दी प्रेमियों और साहित्यकारों के बीच में लगातार याद किये जाते रहेंगे। वर्माजी ने हिन्दी भाषा के संस्कार का दुसह दायित्व अपने ऊपर लिया और उसका सफलतापूर्वक निर्वाह अपने अन्तिम समय तक करते रहे। उनकी पुस्तक 'अच्छी हिन्दी' निश्चित रूप से एक ऐसी अनुपम कृति है जो लगभग पचास वर्षों से हिन्दी जगत् का पथ-प्रदर्शन कर रही है।

वर्माजी ने हिन्दी में कोश-रचना के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण कार्य किया है। बीस वर्ष की अल्पायु में ही उन्होंने 'हिन्दी शब्द सागर' जैसी महत्वपूर्ण कृति का सम्पादन किया था। संक्षिप्त शब्द सागर, प्रामाणिक हिन्दी कोश, उर्दू हिन्दी कोष तथा मानक हिन्दी कोश जैसे ग्रंथों का भी उन्होंने सम्पादन किया।

कोश-रचना प्रक्रिया पर लिखी उनकी 'कोश-कला' नामक पुस्तक अपने विषय की भारतीय भाषाओं में ही नहीं, विश्व साहित्य में पहली पुस्तक है।

शब्दों के सूक्ष्म अर्थों का विवेचन करनेवाली उनकी पुस्तकें 'शब्द साधना' और 'शब्दार्थ-दर्शन' भी अपने ढंग की अनूठी कृतियाँ मानी जाती हैं।

ऐसे व्यक्ति को इसलिए भी सरकारी तंत्र द्वारा याद करना जरूरी था कि उन्होंने सौ से अधिक उच्चकोटि की बंगला, मराठी, गुजराती, अँग्रेजी, फारसी आदि की कृतियों को भी हिन्दी जगत् के लोगों को अपने उत्कृष्ट अनुवाद के माध्यम से सुलभ कराया।

ऐसे हिन्दी सेवी का समादर करते हुए हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग ने उन्हें विद्यावाचस्पति और भारत सरकार ने पद्मश्री के अलंकरण से अलंकृत किया था। फिर भी ऐसे मनीषी की याद सरकार को नहीं रही, यह आश्चर्य का विषय है।

हम उन विद्वान् लेखकों को साधुवाद देते हैं जिन्हें वर्माजी की याद है।

हिन्दी के प्रबल समर्थक : बेढब बनारसी

कृष्णदेवप्रसाद गौड़ बाहरी जगत के लिए 'बेढब बनारसी' नाम से प्रसिद्ध थे, परन्तु हम लोग उन्हें मास्टरसाहब ही कहा करते थे। वैसे तो उनके जीवन के अनेक संस्मरण मेरी यादों के घेरे में हैं और अनेक धूमिल भी हो गये हैं, पर उनमें से दो-एक चित्र अब भी रंगीन हैं।

बात १९६८ की है। यूनेस्को की ओर से दिल्ली में एक सम्मेलन पाठकों की पठनरुचि के विकास के लिए आयोजित हुआ था, जिसमें नेशनल बुक ट्रस्ट के तत्वावधान में एक गोष्ठी सम्पन्न हुई तथा जिसके संयोजक डॉ० केशवन थे, जो नेशनल लाइब्रेरी के लाइब्रेरियन रह चुके थे। गोष्ठी में सेठ गोविन्ददास, डॉ० नगेन्द्र तथा दिल्ली विश्वविद्यालय की अँग्रेजी विभाग की एक महिला प्राध्यापिका भारत का प्रतिनिधित्व कर रहे थे। डॉ० नगेन्द्र और सेठ गोविन्ददासजी आकर चले गये थे। मेरे साथ सिर्फ वह महिला प्राध्यापिका कार्यवाही में भाग लेने के लिए शेष रह गयी थी। उस समय मैं जहाँ कहीं भी जाता था, हिन्दी में ही अपना प्रबन्ध पढ़ता था और बोलता भी था। मैंने इस विचारगोष्ठी में हिन्दी में अपना प्रबन्ध प्रस्तुत किया और जब मैं बोलने लगा तो डॉ० केशवन ने आपत्ति की कि बेरीजी को यह देखना चाहिए कि यह अन्तर्राष्ट्रीय गोष्ठी है और इसलिए उन्हें अँग्रेजी में बोलना चाहिए। मैंने इसका तीव्र प्रतिवाद किया और मेरी महिला सहयोगी दिल्ली विश्वविद्यालय की अँग्रेजी प्राध्यापिका ने भी अपने अँग्रेजी वक्तव्य में मेरे इस दृष्टिकोण का जमकर समर्थन किया और कहा कि भारत में होनेवाली इस कान्फ्रेन्स में बेरीजी को हिन्दी में बोलने का पूर्ण अधिकार है। मेरी महिला सहयोगी की बातों का समर्थन फोर्ड फाउण्डेशन के भारत स्थित सचिव आर्थर आइसनबर्ग ने भी किया और विवश होकर केशवनजी ने मुझे हिन्दी में बोलने की अनुमति दी। यहाँ यह स्मरणीय है कि मैंने अपने हिन्दी प्रबन्ध के अँग्रेजी अनुवाद की प्रतिलिपि भी श्रोताओं के बीच प्रचारित की थी। जब मैं बनारस लौटकर आया तो मुझे इस बात पर बहुत ही आक्रोश था कि मेरा अपमान किया गया। मैंने यह बात 'मास्टर साहब' से कही तो वे बहुत ही क्रोधित हुए और तत्काल उन्होंने दो पृष्ठों का एक लम्बा खत नेशनल बुक ट्रस्ट के तत्कालीन चेयरमैन डॉ० बी० वी० केसकर को लिखा। 'मास्टर साहब' के इस पत्र का

प्रभाव यह पड़ा कि तब से नेशनल बुक ट्रस्ट की नजरों में हिन्दी के उपयोग की बात सामने आई और हिन्दी का व्यवहार ट्रस्ट के कार्यों में बढ़ा।

मुझे सार्वजनिक क्षेत्र में लाने का बहुत बड़ा श्रेय मास्टर साहब को है। जब कोई विशिष्ट व्यक्ति काशी आता था तो मास्टर साहब उससे पूछते थे कि आप हिन्दी प्रचारक के बेरीजी से मिलने गये कि नहीं? उनकी कृपा से बाहर से आनेवाले सभी साहित्यकारों का सान्निध्य मुझे प्राप्त हुआ और उसी सम्पर्क का प्रभाव है कि अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ की गतिविधियों को देशव्यापी बनाने का सुअवसर मुझे मिला।

एक अप्रतिम व्यक्तित्व : पं० लालधर त्रिपाठी 'प्रवासी'

बचपन में पढ़ा था कि गुदड़ी के लाल इसी पृथ्वी पर पैदा होते हैं। परन्तु इन शब्दों की सार्थकता मुझे अपने जीवन में तब देखने को मिली, जब कवि प्रवासीजी को मैंने गुदड़ी बाजार में देखा। घटना यों गुजरी कि बनारस के राजादरवाजा के गुदड़ी बाजार में उनकी पहली काव्य कृति 'शाद्वल' की डेढ़ हजार प्रतियाँ मैंने वजन के भाव पर खरीदीं।

यह बात १९३९ की है। उन दिनों हम लोग कलकत्ता से भगदड़ में काशी आये थे। रोज सायं नौजवान कवियों की जमात जुटती थी। रामघाट स्थित हमारे मकान पर एक दिन सहसा गुदड़ी के लाल, प्रवासीजी के दर्शन हो गए और यहीं से शुरू होती है प्रचारक परिवार और प्रवासीजी के गुजरे ४७ वर्षों के परस्पर सानिध्य की कहानी।

गोरखपुर जनपद के उरबा बाजार कस्बे में १९१६ ई० में जन्मे श्री लालधर त्रिपाठी 'प्रवासी' के विषय में स्थानीय विद्यालयों के प्रधानाचार्यों से चर्चा सुनी है। पुराने लोगों से पता चलता है कि वे बचपन से ही मेधावी छात्र थे और अपने इलाके के परम सम्मानित व्यक्ति। उन्होंने गोरखपुर से हाईस्कूल परीक्षा पास की और बाद में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में बी० ए० तक की पढ़ाई पूरी की। वे कितने प्रबुद्ध विद्वान् थे इसका परिचय तो उनके जीवन में घटनेवाली घटनाओं से ही ज्ञात होता है।

१९४८ में मानमन्दिर महल में हम लोगों ने विद्यामन्दिर प्रेस स्थापित किया। प्रवासीजी को यह दायित्व सौंपा गया कि वह छपनेवाली पुस्तकों का संशोधन एवं सम्पादन करें और प्रूफ देखें। उन्होंने हमारा निमन्त्रण सहर्ष स्वीकार किया।

१९५० में उन्हें हिन्दी प्रचारक की ओर से कोषों के निर्माण का दायित्व सौंपा गया। हजारों पृष्ठों के तीन कोश उनके संयोजन में तीन वर्षों के अन्तराल में प्रकाशित हो गये। पुनीतजी और पं० प्रद्युम्न पाण्डेय उनके सहयोगी थे।

निरालाजी चाहते थे कि प्रवासीजी कविगुरु रवीन्द्रनाथजी की गीतांजलि का रूपान्तर करें। प्रवासीजी के कवि ने इस चुनौती को स्वीकार किया और वे इस कार्य में जुट गये। एक वर्ष के अन्दर ही गीतांज़लि हिन्दी में उपलब्ध हो गयी। निरालाजी ने इसकी भूमिका लिखी। १९५१ में ही इसके दो संस्करण हो गये। अनुवाद की भूरि-भूरि प्रशंसा हुई। लोगों ने यह भी स्वीकार किया कि कहीं-कहीं अनुवाद मूल से भी आगे निकल गया है। फिर भी उनकी यह विनम्रता दृष्टव्य है—

तेरे सम्मुख मेरे कवि का, टिकता नहीं व्यर्थ अभिमान।
महाकवे, तेरे चरणों में करना चाहूँ जीवनदान॥

बहुधा हिन्दी का ऐसा दुर्भाग्य रहा कि हम जीते जी अपने गुदड़ी के लाल का मूल्यांकन नहीं कर पाते। जब वे हमसे बिछुड़ जाते हैं तब हमारे स्मृति फलक में प्रिय साहित्यकार की रचनाओं का चित्र उभरता है। प्रवासीजी ऐसे ही एक बीते दिनों की याद हैं।

बात १९५६ की है। कलकत्ता विश्वविद्यालय के प्राच्य भाषा विभाग के अध्यक्ष डॉ० शशिभूषण दासगुप्ता की प्रसिद्ध कृति 'राधा का क्रम विकास' का अनुवाद प्रवासीजी द्वारा हुआ। प्रवासीजी ने अनुवाद क्रम में कई स्थलों पर पुस्तक में कुछ ऐसे तथ्य जोड़े जो मूल पुस्तक में नहीं थे। इस प्रकार डॉ० दासगुप्ता के समक्ष पहली बार प्रवासीजी की विद्वत्ता आयी। वे बड़े प्रभावित हुए। अपने महीने भर के काशी प्रवास काल में उन्होंने प्रवासीजी को ही अपना सहयोगी बनाया और मुझसे कहा कि प्रवासीजी से कहो कि वे एम० ए० की डिग्री ले लें। मैं उन्हें कलकत्ता विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में प्राध्यापक पद पर नियुक्त कर गौरव का अनुभव करूँगा।

जब डॉ० दासगुप्ता कलकत्ता लौटे तो उन्होंने प्रवासीजी को बंगीय साहित्य परिषद में व्याख्यान देने के लिए कलकत्ता आमन्त्रित किया। कलकत्ता प्रवास में प्रवासीजी ने भारतीय संस्कृति संसद में अपना छत्रसाल सुनाया। लोगों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की। सारे माहौल को यह कहते भी सुना गया कि हिन्दी में दूसरा भूषण पैदा हो गया है।

उन दिनों हमारी संस्था द्वारा हिन्दी पुस्तक मेला कलकत्ता के टाँटिया हाईस्कूल में आयोजित किया गया था। समारोह के अध्यक्ष डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी थे। विशिष्ट अतिथि थे डॉ० शम्भूनाथ सिंह और प्रवासीजी। प्रमुख वक्ता थे पं० रामबालक शास्त्री। इसी अवसर पर ईरान के प्रभारी राजदूत भी आये हुए थे। प्रवासीजी ने इस अवसर पर कविगुरु के बंगला छन्दों के साथ गीतांजलि का अपना अनुवाद प्रस्तुत किया, तब सुनीतिबाबू ने उनकी प्रशंसा करते हुए कहा कि तुम्हारे जन्म के सन्दर्भ में परमात्मा ने भौगोलिक भूल कर दी, तुम्हें तो बंगाल में पैदा होना चाहिए था। तुम बंग-मनीषी हो। इस प्रसङ्ग में उनकी गीतांजलि की कुछ पंक्तियाँ देखिए—

प्रेम, प्राण, गान, गंध, ज्योति पुलक में अमन्द
बरस पड़ी विमल सुधाधार तुम्हारी
प्लावित कर स्वर्ग् भूमि लोक चाह से।

दिनकरजी ने उर्वशी महाकाव्य लिखकर समाप्त ही किया था। उनसे मेरी बहुत आत्मीयता थी। हमारे यहाँ से प्रकाशित प्रवासीजी द्वारा अनूदित मालविकाग्नि-मित्र और शाकुन्तलम् का रूपान्तरण उन्होंने पढ़ा था। वे प्रवासीजी की काव्य प्रतिभा से बहुत प्रभावित थे। उन्हें प्रवासीजी के आलोचक होने का पता भी था। उन्होंने मुझे व्यक्तिगत पत्र लिखा कि प्रवासीजी उर्वशी पर एक लेख लिखें तो उन्हें हार्दिक प्रसन्नता होगी।

दिनकरजी का उर्वशी पर यह लेख जब 'हिन्दी प्रचारक' में प्रकाशित हुआ तब सारे देश में उर्वशी की चर्चा इतनी जोर से हुई जिसकी दिनकरजी को स्वयं अपेक्षा नहीं थी।

प्रवासीजी कवि सम्मेलनों के पुरोधा थे। उन्होंने अनेक कवि सम्मेलनों में काव्यपाठ किया होगा। ऐसा एक काव्यपाठ १९६० में असम हिन्दी साहित्य सम्मेलन तिनसुकिया में हुआ। मंत्री थे मेरे मित्र स्व० श्री राधाकृष्ण खेमका, एम० एल० ए०। उन्होंने मुझे लिखा कि मैं प्रवासीजी तथा बिहार के गीतकार कवि गोपाल सिंह नेपाली को वहाँ भेजूँ। इसी प्रसंग में प्रवासीजी ने, पूरे आसाम का दौरा किया। उनका 'छत्रसाल' वहाँ के साहित्यिक वातावरण में बहुत दिनों तक गूँजता रहा।

बहुत दिनों तक छत्रसाल की यह पंक्तियाँ रक्तवाहिनियों को उत्तेजित करती रहीं—

बढ़ी वाहिनी, चढ़ बैठी मुगलों की छाती,
किन्तु न सम्मुख, अरि सेना अब थी दिखलाती।
लगा बिलाने दृश्य व्योम अंजन बरसाने,
जाते थे बस, वीर जय-ध्वनि से पहचाने।

जहाँ एक ओर प्रवासीजी कोषकार और कवि के रूप में उद्भाषित थे, वहीं उनका आलोचक भी कम प्रखर नहीं था। प्रिय प्रवास दर्शन, दिनकर का काव्य, कामायनी का विवेचन तथा हिन्दी गीति-काव्य का विकास उनकी श्रेष्ठ आलोचनात्मक कृतियाँ हैं। 'काव्यांग परिचय' और 'हिन्दी स्पष्ट रूप' में उनकी पाठ्य पुस्तकें हैं। इनमें से एक कलकत्ता विश्वविद्यालय में पढ़ायी जाती रही है।

प्रवासीजी ने हिन्दी प्रचारक का भी कुछ दिनों तक सम्पादन किया था। नागरी प्रचारिणी सभा के कोषों के निर्माण में भी इनका योगदान महत्वपूर्ण रहा है।

काशी के तीन ऐसे महान् व्यक्तित्व रहे हैं जिनमें पांडित्य या प्रतिभा थी, जिनकी शिक्षा व्यवस्थित और पूर्ण न हो सकी, पर उनका साहित्यिक कृतित्व और ज्ञान इतना महान् था कि वे किसी भी हिन्दी के प्राध्यापक से टक्कर ले सकते थे। स्व० गंगाधर मिश्र, श्री त्रिलोचन शास्त्री और स्व० लालधर त्रिपाठी 'प्रवासी'।

कवि, आलोचक और चिन्तक होने के साथ-साथ प्रवासीजी उत्कृष्ट भाषाविद् थे। उनका संस्कृत, हिन्दी, उर्दू, परसियन, बंगला और मराठी पर भी अधिकार था।

हमारी साहित्यिक गोष्ठी के प्रवासीजी एक जीवन्त सदस्य थे। वे चाहें जहाँ भी रहें, शाम होते ही चले आते थे और अपनी नयी कृति आंजनेय सुनाते थे। आज महज उनकी याद आती है। शाम की उदासी उन्हें ढूँढ़ने लगती है तो कवि नरेन्द्र की यह दो पंक्तियाँ अनायास स्मृति में उभर आती हैं—

सांझ होते ही न जाने छा गई कैसी उदासी
क्या किसी की याद आयी ओ बिरह व्याकुल प्रवासी।

गीत यात्री : वीरेन्द्र मिश्र

वीरेन्द्र मिश्र का नाम लेते ही यादों की एक बारात स्मृति पटल पर निकलने लगती है। मिश्र जी एक ऐसे गीतकार थे जिनके गीतयात्री को अपना रास्ता स्वयं बनाना पड़ा। जीवन और साहित्य के प्रारम्भ में ही उन्होंने कैसी मुसीबतें झेलीं, इसे कुछ ही लोग जानते हैं।

पन्द्रह अगस्त १९४७ को हमारा देश आजाद हुआ था और जिस घटना का जिक्र मैं कर रहा हूँ, वह घटना उसके ठीक तीन माह पूर्व की है। उस समय कलकत्ता में मुस्लिम लीग का शासन था। मुख्यमंत्री थे श्री सुहरावर्दी। हिन्दू-मुस्लिम दंगों से सारा वातावरण आक्रांत था। फिर भी अवसर अनुकूल होते ही बीच-बीच में साहित्यिक-सांस्कृतिक कार्यक्रम भी सम्पन्न हो जाते थे। ऐसा ही एक कार्यक्रम (कवि सम्मेलन) उन दिनों कलकत्ता के बड़ाबाजार पुस्तकालय में सम्पन्न हुआ। कवि सम्मेलन के अध्यक्ष थे दैनिक 'विश्वमित्र' के तत्कालीन प्रधान सम्पादक पं० देवदत्त मिश्र। कलकत्ता के सभी श्रेष्ठ कवि तथा प्रबुद्ध श्रोता वहाँ उपस्थित थे। कवि सम्मेलन अपने पूरे रंग पर था। स्थानीय कवि रणधीर साहित्यालंकार जिनका उस समय कलकत्ता नगर के सुकण्ठ हिन्दी गीतकारों में किसी समर्थ प्रतिभा के अभाव में मंचों पर एकछत्र राज्य था, कलकत्ता के मंचों पर खूब जमते थे।

उसी कार्यक्रम में कलकत्ता के साहित्यकार और पत्रकार, छेदीलाल गुप्त एवं शिवनारायण शर्मा के साथ ग्वालियर का एक बीस वर्षीय युवा कवि भी आया हुआ था। अपने उक्त मित्रों के काफी प्रयत्नों के बाद भी उस नौजवान अनिमंत्रित कवि को पढ़वाने का जोखिम अध्यक्ष महोदय नहीं उठा पा रहे थे। अंततः उन दोनों के काफी पीछे पड़ने पर झुंझलाते हुए अध्यक्ष ने उस युवा कवि को प्रस्तुत किया। जहाँ कुछ देर पूर्व तक अनुभव-सम्पन्न दिग्गज गीतकार रणधीर साहित्यालंकार के गीतों में लोग झूम रहे थे, वहीं इस युवा कवि को मंच पर देखकर श्रोता हँसने लगे, कुछ विरोध भी करने लगे। लेकिन उस युवा कवि ने जैसे ही अपनी स्वर लहरी छेड़ी, लोगों को लगा कि जैसे वे एक नये श्रवणलोक में प्रवेश कर रहे हैं।

युवा कवि की प्रथम रचना के बीच कई बार प्रशंसात्मक करतल ध्वनि हुई। अपने काव्यपाठ के समापन पर जब इस युवा कवि ने मुग्ध काव्यप्रेमी जनता से पूछा—एक और रचना पढ़ने की आज्ञा है? तो एक स्वर से घोष हुआ—'एक नहीं चार'। और तब उस कवि ने लगातार सात रचनाएँ पढ़कर कविता और कवितापाठ के संयुक्त प्रभाव से लोगों को मंत्रमुग्ध कर दिया। उसने काव्य गोष्ठी को आनंदानुभूति के चरमोत्कर्ष पर पहुँचा दिया। हिंसा से त्रस्त वातावरण में रस वर्षा की फुहार करने वाला कवि जो सबके

समक्ष था उसका नाम था, वीरेन्द्र मिश्र। उसकी लय, उसकी धुन और उसकी भावाभिव्यक्ति उसके व्यक्तित्व की शालीन गरिमा की तरह ही लोगों के अन्तर्मन तक जा पहुँची थी। प्रेम और राष्ट्र सम्बन्धी विषयों पर एक से बढ़कर एक उसके गीतों ने समा बाँध दिया था। वह एक विलक्षण गीत संध्या थी। वह आज भी मुझे अच्छी तरह से स्मरण है। अपने अभूतपूर्व और अविस्मरणीय काव्यपाठ के कारण उस युवा कवि को उस कवि सम्मेलन में पहले तो किसी के द्वारा ५० रु० का एक पुरस्कार घोषित हुआ, फिर तो जैसे ५० और १०० रु० के पुरस्कारों की झड़ी-सी लग गयी। श्रोता बहुत अभिभूत थे। मैंने स्वयं अपनी आँखों से इतिहास बनते देखा। प्रतिभा का प्रचण्ड प्रभाव अनुभव किया। कहने की आवश्यकता नहीं कि वह युवा कवि और कोई नहीं आज के हमारे प्रतिष्ठित एवं वरिष्ठ कवि एवं नवगीत के शलाका पुरुष पं० वीरेन्द्र मिश्र ही थे। उस कार्यक्रम में उपस्थित कवि और श्रोता आज तक काव्य-माधुरी से रसप्लावित उस वीरेन्द्र संध्या को भूल नहीं पाए। उनमें साक्षी रूप में एक मैं भी हूँ।

बाद में पता चला कि कलकत्ता के दो माह के अपने प्रवास में उक्त कवि-सम्मेलन के व्यापक प्रभाव के पश्चात वीरेन्द्र मिश्र की रचनाएँ वहाँ के पत्रों के मुख पृष्ठ पर सुशोभित होती रहीं। सम्पादक स्वयं उनके आवास पर पहुँच कर रचनाएँ ले आते थे। ऐसा होता है किसी युगांतरकारी कवि के साहित्य का लोकप्रिय प्रभाव।

कलकत्ता में हमलोगों ने बिड़ला नक्षत्रशाला में सन् १९८२ में हिन्दी प्रकाशक संघ की ओर से एक विशेष विचारगोष्ठी आयोजित की थी। वक्ताओं में सर्वश्री तुषारकांति घोष, गजेन्द्र मित्र, नवनीतादेव सेन, स्वदेश भारती, प्रभृति बंगला और हिन्दी के लेखक उपस्थित थे। मिश्रजी को भी हमने आमंत्रित किया था और वह सम्मिलित हुए थे।

सन् १९८४ में तृतीय विश्व हिन्दी सम्मेलन दिल्ली में सम्पन्न हुआ। मिश्रजी द्वारा लिखित राष्ट्रभाषा हिन्दी का हृदयस्पर्शी गीत (स्वागत करती हिन्दी सबकी ही) सम्मेलन का उद्घाटन-गीत था, जिसे उनकी स्वयं की बनायी धुन पर आकाशवाणी वाद्यवृन्द ने समूहगान के रूप में प्रस्तुत कर, हजारों श्रोताओं को मुग्ध कर दिया था। देश-विदेश से आए लोग तो मुग्ध हुए ही, सम्मेलन का उद्घाटन करनेवाली प्रधानमंत्री, श्रीमती इंदिरा गाँधी भी भावविभोर हो गईं।

विनय की प्रतिमूर्ति, सरस्वती के विद्यावारिधि सूर्यपुत्र, वीरेन्द्र मिश्र का स्वागत सन. १९८६ में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में जनसम्पर्क अधिकारी जगतप्रकाश चतुर्वेदी द्वारा सम्पन्न हुआ था। उन्हें सुनने के लिये पूरा संगीत महाविद्यालय आया हुआ था। उसमें विश्वविद्यालय के संगीत विभाग की अध्यक्षा, संगीत विशारद, डा० प्रेमलता शर्मा भी थीं। मिश्रजी से वह इतनी प्रभावित थीं कि हमसे विशेष आग्रह करके हमारी संस्था द्वारा पूर्व-प्रकाशित उनकी कृति 'धरती गीताम्बरा' उन्होंने माँगी और उसका वाचन किया।

कविवर पं० वीरेन्द्र मिश्र अनेक मनोदशा के गीतकार थे। गीत में सघन अनुभूतियाँ होती हैं, शायद इसीलिये उसे प्रेम और सौन्दर्य तक सीमित करके देखा-सुना जाता है। लेकिन वीरेन्द्रजी ने गीत की पुरानी रुढ़ि परिभाषा और मुहावरों को तोड़कर नये और यथार्थवादी विषयों पर सार्थक गीत रचना की है। उनकी सम्पूर्ण जीवन-यात्रा गीतयात्रा ही

है। सौन्दर्य प्रेम, राष्ट्रीयता, सामाजिकता और विश्व सन्दर्भ आदि अनेक प्रसंगों के गीत उन्होंने रचे हैं। एकसाथ इतने सारे, इतने विविध सन्दर्भों का सफल निर्वाह, हर रचनाकार के वश की बात नहीं है।

गीतम, लेखनीबेला, अविराम चल मधुवंती, झुलसा है छायानट धूप में, धरती गीताम्बरा, शांति गन्धर्व, गीत पंचम आदि गीत संकलन वीरेन्द्रजी की प्रमुख रचनाएँ हैं। इन रचनाओं में उनके गीतों का वास्तविक स्वरूप मिलता है। सौन्दर्य की चेतना, प्रेमानुभूति और सामाजिक दायित्वों के निर्वाह की शुरुआत इन विशिष्ट गीतसंग्रहों में पूर्णतः विकसित हुई हैं। लय और तुक का ठीक-ठीक निर्वाह तथा शब्द चयन का कौशल भी इनमें द्रष्टव्य है।

"लेखनी बेला" में निहित आधुनिकता बोध "अविराम चल मधुवंती" में अपने चरम पर पहुँच गया है। आज जिसे नवगीत कहा जाता है, उसके प्रवर्तकों में वीरेन्द्र मिश्र प्रमुख है। आज के जीवन की जटिलता से उत्पन्न यथार्थ बोध इन गीतों की विशेष उपलब्धि है। कोमल अनुभूतियों के कारण लयात्मकता भी गहरी है। बहुत सोच-समझकर लय से सधे हुए अपने छंदों में गीतकार ने शब्दों का प्रयोग किया है। अनुभूति और यथार्थ के समन्वय के कारण, उनके गीतों की प्रभावोत्पादकता पाठक अथवा श्रोता को सहज ही अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है।

वीरेन्द्र मिश्र के राष्ट्रीय सन्दर्भ के गीत संग्रह "धरती गीताम्बरा" का प्रकाशन हिन्दी प्रचारक संस्थान ने सन् १९८२ में किया था। इस संग्रह में कई महत्त्वपूर्ण गीत और कविताएँ हैं। 'मेरा देश', 'कुर्सियों की राजनीति', 'अंधकार के पहरेदार से', 'खजाना' आदि कई लम्बी गीति-कविताएँ उल्लेखनीय हैं।

'धरती गीताम्बरा' में गीत की अनुभूति, सघनता तथा वैयक्तिक सन्दर्भों के साथ कविता की वस्तुनिष्ठता और लोकसन्दर्भ दोनों का अच्छा निर्वाह हुआ है। यही कारण है कि इन तमाम विशेषताओं के कारण मिश्रजी के गीत आकाशवाणी, दूरदर्शन तथा कवि सम्मेलनों के मंचों पर लोकप्रिय हुए।

अपने स्वरूप में इनको हम मिश्रजी के पुराने संग्रहों में संकलित गीतों से भिन्न रूप में पाते हैं। इसी कारण से इस संकलन की कविताएँ उल्लेखनीय हैं। इनमें संगीतात्मकता भी बहुत है। लय का निर्धारण संगीत ने किया है। किन्तु संगीत ने ही रचनाओं की अनुभूति को सहज ही सम्प्रेष्य बनाया है।

ऐसे गीतकार बहुत कम हैं जो वीरेन्द्र मिश्र की तरह जीवनभर गीतमय बने रहे हों, अपने को गीत में ढालते हुए, आज की भींड़ भरी जिन्दगी की घुटन को लेकर, इन गीतों की रचना वीरेन्द्र मिश्र जैसे गीतकार के वश की ही बात थी।

वे आज़ हमारे बीच नहीं हैं। हम उन्हें देवदूत मानते हैं।

निहालचन्दजी वर्मा का संक्षिप्त जीवन परिचय

अमृतसर निवासी हिन्दी के प्रसिद्ध उपन्यासकार निहालचन्दजी वर्मा का जन्म चैत सुदी ६ सम्वत् १९४५ में अपने ननिहाल पंजाब के धर्मकोट नामक स्थान पर जिला फिरोजपुर में हुआ था। वर्माजी ने अपना पहला उपन्यास 'मोती महल' आज से ७० वर्ष पूर्व लिखा था। ऐयारी और तिलिस्मी उपन्यासधारा में आप देवकीनन्दन खत्री के बाद प्रमुख माने जाते हैं।

बेरी होते हुए भी, निहालचन्दजी अपने आपको निहालचन्द वर्मा लिखते थे। वे श्री रामकृष्ण वर्मा के शिष्य थे। इनके अतिरिक्त, उनके अन्य शिष्य रामचन्द्र चोपड़ा, रामलाल सेठ, विश्वेश्वरनाथ सेठ सभी अपने नामों के आगे वर्मा जोड़ने लगे थे।

मोती महल, जादू का महल, सोने का महल, प्रेम का फल, आनन्द भवन, डंडे की करामात, हीर-रांझा, सिन्दबाद जहाजी, तिलिस्मी चिराग, बनते बिगड़ते संदर्भ, मेरी आत्मकथा (यन्त्रस्थ), करनी भरनी (यन्त्रस्थ) आदि वर्माजी की प्रमुख कृतियाँ हैं। आपने ७५ वर्ष की अवस्था में अपने दो प्रमुख उपन्यास 'आदर्श परिवार' तथा 'गुलाब कुमारी' लिखे थे।

वर्माजी के 'प्रेम का फल' का कलकत्ता की 'हिन्दी नाट्य समिति' द्वारा पारसी रंगमंच के मुकाबले अभिनय किया गया था, जिसके वे सात वर्ष तक मंत्री रह चुके थे। बंगीय प्रकाशक संघ के १९३३ से १९३९ तक आप मंत्री भी रहे। वर्माजी हिन्दी के प्रकाशकों में सबसे समृद्ध रचनाकार थे। आपने निहालचन्द एण्ड कम्पनी की स्थापना की थी और आर० एल० बर्मन एण्ड कम्पनी कलकत्ता के चार वर्ष तक साझीदार भी रहे। हिन्दी की सुप्रसिद्ध प्रकाशन संस्था 'हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय' वाराणसी तथा कलकत्ता के भी आप भागीदार थे तथा विद्या मन्दिर प्रेस प्रा० लि० के डाइरेक्टर भी रहे। उनका निधन वाराणसी में १९७० में हुआ।

प्रकाशक और पत्रकार : बाबू रामलाल वर्मा

आधुनिक हिन्दी प्रकाशन के जनक बाबू रामलाल वर्मा का जन्म वाराणसी में सन् १८८५ में हुआ था। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि हिन्दी में सन् १९२० से १९३० तक साजसज्जा और रंगीन चित्रों से भरपूर उनका प्रकाशन, प्रकाशन जगत का एक नया चमत्कार था। पुस्तकें शुद्ध और अच्छी छपें इसलिए वे स्वत: जब तक मशीन प्रूफ नहीं देख लेते थे, तब तक प्रिन्ट ऑर्डर नहीं देते थे। स्व० ईश्वरीप्रसाद शर्मा, हास्यरसावतार पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी, मुंशी नवजादिक लाल श्रीवास्तव, पं० नरोत्तमव्यास प्रभृति महान् साहित्यकार उनके नौ रत्नों में से थे। दरोगा दफ्तर सीरीज के जासूसी उपन्यास, सती सीरीज, ऐतिहासिक सीरीज आदि उनके प्रमुख प्रकाशन हैं। आर० एल० बर्मन एण्ड कं० के नाम से उनकी प्रकाशन संस्था थी, और प्रारम्भ में निहालचन्द एण्ड कम्पनी के व्यवस्थापक निहालचन्द वर्मा उनके साझीदार थे।

बाबू रामलालजी ने हिन्दी में जो कीर्ति स्थापित की उसकी समता आज के हिन्दी प्रकाशक नहीं कर सकते। उनकी व्यवस्था में प्रकाशित सभी पुस्तकें मेकअप, गेटअप और छपाई की दृष्टि से अद्वितीय हैं। बाबूसाहब ने 'वीर पंचरत्न', 'गाँधी गौरव', 'विष्णुपुराण', 'शिवपुराण' जैसी कृतियों सहित लगभग ६०० पुस्तकें प्रकाशित कीं।

हिन्दी पत्रकारिता में भी उन्होंने चार-चाँद लगाये। उस जमाने में भी 'हिन्दू पंच' का ३३,००० सरकुलेशन था। 'हिन्दू पंच' का कीर्तिमान 'बलिदान-अंक' उस समय प्रकाशित हुआ जब देश में स्वतंत्रता की लहर दौड़ रही थी। इस अंक को गोरी सरकार ने जब्त कर लिया।

बाबू साहब इतने सामाजिक व्यक्ति थे कि सभी क्षेत्रों के महापुरुष उनसे मिलने जाते थे। पं० जवाहरलाल नेहरू, डॉ० अन्सारी, प्रसिद्ध पहलवान राममूर्ति आदि उनसे मिलनेवालों में प्रमुख थे।

हिन्दी के इस ज्योतिर्मय नक्षत्र का सन् १९३० ई० में महज ४७ वर्ष की उम्र में तिरोधान हो गया। उनके निधन पर कलकत्ता की माहेश्वरी सभा के भवन में जो विराट् शोक-सभा हुई थी वैसी शोक-सभा कलकत्ता के जीवन में देखने में नहीं आई।

❀

विद्यावाचस्पति : पं० रामदहिन मिश्र

कर्म की प्रेरणा शक्ति तथा स्वाध्याय के प्रतीक स्व० पं० रामदहिन मिश्र का जन्म शाहाबाद जिले के पधार नामक गाँव में चैत्रपूर्णिमा सम्वत् १९४३ को हुआ था। पण्डितजी मुख्य रूप से लेखक थे। प्रकाशन क्षेत्र में प्रवृत्त होने के बाद भी उनका लेखन-कार्य भी बड़े ही सुनियोजित रूप से चलता था। प्रकाशन क्षेत्र में उनका लक्ष्य अर्थोपार्जन के अतिरिक्त मुख्य रूप से प्रकाशकीय आदर्श को स्थापित करना रहा। प्रकाशन क्षेत्र में वे अथक परिश्रम करते थे और कभी-कभी उन्होंने २०-२० घण्टे तक एक साथ काम किया।

पण्डितजी के पुस्तक-प्रकाशन के दो विभाग थे। एक ग्रन्थमाला-कार्यालय, जिसके अन्तर्गत साहित्य-ग्रन्थमाला नाम से सत्साहित्य के साथ-साथ, साहित्यिक और ग्रन्थमालायें तथा दूसरे के द्वारा विविध विषयक पुस्तकों का प्रकाशन होता था। प्रथम की स्थापना सन् १९१३ में और दूसरे की सन् १९२६ में पण्डितजी ने की थी।

पण्डितजी की प्रवृत्ति बालोपयोगी और किशोरोपयोगी साहित्य में विशेष रूप से रही और इस विषय पर उन्होंने दर्जनों पुस्तकें स्वयं लिखीं। इतना ही नहीं, उन्होंने सन् १९३७ में बाल-शिक्षा-समिति से ही एक किशोरोपयोगी मासिक 'किशोर' पत्र का प्रकाशन और सम्पादन शुरु किया। जीवन-पर्यन्त उन्होंने बाल और प्रौढ़ साहित्य का सृजन किया। उनका प्रकाशन-कार्य जैसे ही सुचारु रूप से चलने लगा, उन्होंने उसकी सारी व्यवस्था अपने सुपुत्र के हाथ सौंप दी और अपना सारा समय साहित्य की आराधना में लगाने लगे।

पण्डितजी ने सन् १९४३ से १९५२ के बीच जिन अनेक पुस्तकों का प्रणयन किया, उनमें काव्यालोक, काव्यदर्पण, काव्यविमर्श, काव्य में अप्रस्तुत योजना आदि प्रमुख हैं।

राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद ने उनकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर उन्हें विद्यावाचस्पति की उपाधि से विभूषित किया था।

पं० रामदहिन मिश्र का देहावसान सन् १९५८ में हुआ।

माँ भारती के अनन्य सेवक : रघुनाथप्रसाद सिंघानियाँ

स्व० रघुनाथप्रसाद सिंघानियाँ हिन्दी जगत् के उन महारथियों में थे, जिन्होंने कलकत्ता में हिन्दी और माँ भारती की सेवा अपने प्रकाशन तथा लेखन दोनों ही माध्यमों से की। स्व० रायबहादुर रामदेव चोखानी उनके पृष्ठपोषकों में थे। रायबहादुर साहब को ही सिंघानियाँजी को प्रकाशन एवं लेखन के क्षेत्र में लाने का श्रेय है।

सिंघानियाँजी का जन्म सन् १९०७ ई० में हुआ था। हाईस्कूल में पढ़ते समय ही लेखन और प्रकाशन की भावना का उनमें उदय हुआ। उनका निधन १९ नवम्बर, १९६४ को जिह्वा में कैन्सर का आपरेशन होने के बाद कलकत्ता के चितरंजन सेवा सदन में हुआ। उनकी प्रकाशन संस्थाओं का नाम मारवाड़ी साहित्य सदन तथा 'राजस्थान रिसर्च सोसाइटी' है। इन संस्थाओं ने लगभग २० प्रकाशन किये हैं। सिंघानियाँजी ने पूरे राजस्थान में घूम-घूम कर हस्तलिखित ग्रन्थों का अन्वेषण कार्य किया और इसके बाद 'राजस्थान रिसर्च सोसाइटी' की स्थापना की। उनका अपना प्रेस भी कलकत्ते में मुक्ताराम बाबू स्ट्रीट में 'राजस्थान प्रेस' के नाम से जाना जाता था। उन्होंने बहुत से अमूल्य हस्तलिखित एवं अप्राप्य ग्रन्थों को 'सूरजमल जालान स्मृति पुस्तकालय' को दान में दे दिया।

सिंघानियाँजी ने राजस्थान, राजस्थानी, मारवाड़ी, जीवन, नवजीवन, बड़ा बाजार, जागरण तथा स्वधर्म आदि साप्ताहिक, मासिक, एवं त्रैमासिक पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन और सम्पादन किया। उनके प्रकाशनों में सुन्दर ग्रन्थावली (भूमिका लेखक रवि ठाकुर), राजस्थान के लोक गीतों के दो खण्ड तथा मारवाड़ी भजन सागर बहुत प्रसिद्ध हैं।

प्रकाशक एवं स्वतंत्रता सेनानी :
बाबू बैजनाथ केड़िया

बाबू बैजनाथ केड़िया प्रसिद्ध प्रकाशन संस्था हिन्दी पुस्तक एजेन्सी के संस्थापकों में थे। आपका जन्म भाद्रपद शुक्ल ८ सं० १९४२ में हुआ था। कुछ दिनों के बाद वे उक्त संस्था से पृथक हो गये और बाद में उन्होंने उसे फिर खरीद लिया। सन् १९३० ई० में हिन्दी पुस्तक एजेन्सी ने ज़िस प्रगति के साथ हिन्दी में प्रकाशन का कार्य प्रारम्भ किया, वह अविस्मरणीय है। इस संस्था का प्रमुख कार्यालय कलकत्ता में था। काशी, पटना, दिल्ली और लाहौर में भी इसकी शाखायें खुली थीं। कलकत्ता के अलावा काशी और पटना में इनकी शाखायें प्रमुख रही हैं। इस संस्था से प्रेमचन्दजी का प्रसिद्ध उपन्यास 'सेवा सदन' तथा कहानी संग्रह 'सप्त-सरोज' प्रकाशित हुआ। जी० पी० श्रीवास्तव, पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र', नेताजी सुभाषचन्द्र बोस, कार्तिकचरण मुखोपाध्याय तथा रामदास गौड़ प्रभृति लेखक इस संस्था से सम्बद्ध थे। केड़िया जी प्रकाशक होने के साथ-साथ असहयोग आन्दोलन के सक्रिय सेनानी भी थे। उन्होंने कारावास भी वरण किया। 'स्फुट विचार' तथा 'दूर्वादल' ये दो इनकी मौलिक कृतियाँ हैं। समाज-सुधारक होने के साथ-साथ वे पक्के गाँधीवादी थे और मारवाड़ी समाज में जो सामाजिक क्रान्ति स्वतंत्रता के पूर्व जागृत हुई, उसमें उनका भी बहुत बड़ा हाथ था। इन्होंने 'साहित्य परिचय' नाम की मासिक पत्रिका पं० छबिनाथ पाण्डेय के सम्पादकत्व में निकाली थी, जो कुछ दिनों के बाद बन्द हो गयी।

हिन्दी पुस्तक एजेन्सी ने छोटे-बड़े मिलाकर लगभग ७-८ सौ प्रकाशन किये थे। केड़िया जी का निधन मार्गशीर्ष शुक्ल ८ सं० २००४ में हुआ।

साहित्यसेवी प्रकाशक : बाबू रामकृष्ण वर्मा

चमेली के फूलों की सेज पर भी भला कोई प्रकाशक सो सकता है? है कोई मिसाल विश्व के प्रकाशन-जगत् में? कहा जा सकता है—नहीं! और वास्तव में प्रकाशक तो काँटों की सेज पर ही सोता है! लेकिन हिन्दी के एक प्रकाशक थे—बाबू रामकृष्ण वर्मा, जिनके विषय में प्रसिद्ध है कि वे कभी-कभी चमेली के फूलों की सेज पर सोते थे!

बाबू रामकृष्ण वर्मा 'भारतजीवन प्रेस' नामक संस्था के संस्थापक थे। सन् १८५९ में उनका जन्म हुआ था। बाबू रामकृष्ण वर्मा का रहन-सहन किसी राजा-महाराजा से कम न था। इस समय के बड़े-बड़े जमीन्दार जहाँ अपने घरों में प्रकाश के लिये बड़े-बड़े लैम्पों का प्रयोग करते थे, वहीं बाबू रामकृष्ण वर्मा वर्ष भर यानी ३६५ दिन झाड़-फनूस की रोशनी का आनन्द अपने घर में लेते थे।

वे सुकवि भी थे। कहा जाय तो काशी के तत्कालीन 'कवि-समाज' के वे रत्न थे और साथ ही उस संस्था के मंत्री भी। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने उनकी गणना उच्चकोटि के साहित्य सेवियों में की है। इनकी संस्था द्वारा प्रकाशित वृत्तान्त माला (१८९३), पुलिस वृत्तान्त माला (१८९०), संसार दर्पण प्रभृति पुस्तकें प्रकाशित हुई। देव, भिखारीदास और पद्माकर आदि अनेक कवियों की कृतियाँ बाबू रामकृष्ण वर्मा ने छापी थीं। द्वारकानाथ गांगुली कृत 'वीर नारी' तथा माइवेल मधुसूदन दत्त कृत 'कृष्ण कुमारी' का हिन्दी अनुवाद भी वर्माजी ने ही प्रकाशित किया था। इनकी संस्था से प्रकाशित 'कथासरित सागर' दस भागों में छपा था। भारतजीवन प्रेस की स्थापना इन्होंने सन् १८८४ में की थी और 'भारत जीवन' पत्र के सम्पादक भी वे स्वयं थे। इनकी संस्था का नामकरण बाबू हरिश्चन्द्र ने किया था। नागरी प्रचारिणी सभा के संस्थापकों में भी वर्माजी प्रमुख थे। इनकी संस्था ने लगभग दो सौ पुस्तकें प्रकाशित की थीं, जिनमें अधिकांश काव्य-कृतियाँ थीं।

आगे चलकर 'भारत जीवन प्रेस' को लहरी बुक डिपो ने अपने हाथ में ले लिया। हिन्दी के प्राचीन ब्रजभाषा काव्यों के सम्पादन, प्रकाशन एवं संरक्षण का काम नवलकिशोर प्रेस लखनऊ, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, खड्ग विलास प्रेस, बॉकीपुर पटना तथा भारत-जीवन प्रेस, वाराणसी ने भी किया। इन्होंने ब्रजभाषा के सैकड़ों मूल ग्रंथ एवं अनेक काव्य संकलन प्रकाशित किये। इन ग्रंथों में अधिकांश का प्रकाशन फिर नहीं हुआ और शोधछात्रों को इनकी प्राप्ति के लिए वहुत पुराने पुस्तकालयों की शरण लेनी पड़ी। रामकृष्ण वर्मा स्वयं सुकवि थे। इसलिए इस थाती की सुरक्षा में वे संलग्न हुए। इसमें उनके सबसे बड़े सहायक पण्डित नकछेदी तिवारी थे।

सन् १९०६ में ही ४७ वर्ष की अल्पायु में ही उनका स्वर्गवास हो गया, परन्तु उनकी साहित्यिक सेवायें और प्रकाशन जगत् में उनका योगदान चिरस्मरणीय रहेगा।

❀

आदर्श व्यक्तित्व : राधाकृष्ण खेमका

बात कहाँ से और कैसे आरम्भ करूँ। भाई राधाकृष्णजी खेमका मेरे वरेण्य थे। अपने स्मृति-जगत को टटोलता हूँ तो याद आता है कि उनसे मेरा परिचय सन् १९३६ में हुआ था। उन दिनों मैं विद्यार्थी था। छात्र आन्दोलन में मेरी रुचि थी। मैं हिन्दी पुस्तकों के प्रचारार्थ असम गया हुआ था। खेमकाजी भी छात्र आन्दोलन में दिलचस्पी रखते थे और साहित्य के प्रति उनका अनुराग भी था। मैं उन दिनों बंगाल स्टूडेण्ट फेडरेशन की बड़ाबाजार शाखा का मंत्री था। छात्रों में समाज़वाद की नई लहर उठ चुकी थी। मैं भी इस नई विचारधारा में मगन रहा करता था।

खेमकाजी से पहली मुलाकात में समाजवाद पर ही चर्चा हुई। उस समय वे बड़ी ही प्रसन्न मुद्रा में थे। सामाजिक परिवेश में कुछ सुधार सम्बन्धी भी बातें चल पड़ीं। कलकत्ता में उन दिनों खत्री समाज में हुए विधवा विवाह को लेकर बड़ा कोलाहल था। मैं उस विवाह में सम्मिलित हुआ था। यह इतना बड़ा अपराध था कि मुझे समाज के चौधरियों ने बहिष्कृत कर दिया, पर मैं निर्द्वन्द था। मेरी आत्मा कह रही थी कि मैंने कोई अपराध नहीं किया है। मेरे अहम् ने निस्संकोच इसकी चर्चा खेमकाजी से की। उन्होंने बताया कि मारवाड़ी समाज में भी यही स्थिति है। उनकी मुद्रा बदली और वे बड़े बहादुराना तरीके से बोले कि—'कृष्णचन्द्र! राधाकृष्ण भी तुम्हारी ही तरह विधवा विवाह का समर्थक है।' समय बीता, मुझे विदित हुआ कि खेमका जी ने अपने कथन को अपने जीवन में चरितार्थ कर दिया। वे मारवाड़ी समाज के रुढ़िगत बन्धनों को तोड़नेवाले अग्रणी नेताओं में प्रमुख थे। वे कभी भी अन्धविश्वास को बन्दरियों जैसे मरे बच्चे की तरह छाती से लगाये रखना नहीं चाहते थे। १९६२ में तिनसुकिया में जब हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन हुआ, तब मैंने काशी से गोपाल सिंह नेपाली, लालधर त्रिपाठी 'प्रवासी', बेधड़क बनारसी, राहगीर और रमा सिंह आदि को असम भेजा था। वहाँ से लौटकर साहित्यिक मित्रों ने मुझे बताया कि खेमकाजी जहाँ राजनीतिक और समाजिक क्षेत्र के उद्दीप्त नेता हैं, वहीं साहित्यिक क्षेत्र में भी उनकी प्रतिभा जगमगा रही है।

खेमकाजी असम के विधायक थे और हमारे परिवार के स्नेही भी। असम के भूतपूर्व वरिष्ठ मंत्री पं० कामाख्याप्रसाद त्रिपाठी कहा करते थे कि हमें प्रसन्नता होती कि यदि हमने राधाकृष्ण खेमका को अपना समाजकल्याण मंत्री बनाया होता, किन्तु यह

विचार, कल्पना बनकर ही रह गया, कार्यान्वित नहीं हो पाया। भाई खेमकाजी को क्रूर काल ने हमसे छीन लिया। अब मात्र उनकी स्मृति को सजोना ही हमारे हाथ में रह गया।

उनका स्मृति-ग्रन्थ भावी युवा पीढ़ी के लिए एक आदर्श ग्रन्थ साबित होगा। खेमकाजी गाँधी विचारधारा के उन्नायक तथा समाज में कथनी और करनी को सत्यश: चरितार्थ करनेवाले सादगी की प्रतिमूर्ति थे। अब ऐसे लोग मिलते कहाँ हैं? मैं उनकी पुण्यस्मृति को नमस्कार करता हूँ और विश्वास करता हूँ कि उनकी पुण्यस्मृति अनन्तकाल तक समाज का मार्गदर्शन करती रहेगी।

गालिब के पहले प्रकाशक : मुंशी नवलकिशोर

भारतीय पत्रकारिता को पंख लगाने तथा पुस्तक प्रकाशन के सिलसिले में जिन साधकों ने नाम कमाया है उनमें मुंशी नवलकिशोर हमेशा मूर्धन्य रहेंगे। मुंशीजी व्यक्ति नहीं, संस्था थे और संस्था भी भरी-पूरी और सर्वगुण सम्पन्न।

मुंशीजी के जीवन-इतिहास के पन्ने पलटते जाएँ तो 'सफ़ीर', 'कोहेनूर', 'अवध अखबार', 'अवध रिव्यू' तथा 'माधुरी' आदि पत्र-पत्रिकाओं का इतिहास अपने आप बोलने लगता है। ऐसा इसलिए भी कि मुंशी नवलकिशोर प्रकाशक भी थे, मुद्रक भी और लेखक भी।

उर्दू, हिन्दी, संस्कृत, फारसी, अरबी तथा अँग्रेजी आदि भाषाओं में पारंगत मुंशी नवलकिशोर की भी गणना है। मिर्ज़ा गालिब को उनके दीवान के माध्यम से प्रकाश में लाने का श्रेय भी मुंशी जी को ही जाता है। इन दोनों महानुभावों में प्रगाढ़ मैत्री भी थी।

मुंशी नवलकिशोर का जन्म मथुरा के 'रीढ़ा' गाँव में ३ फरवरी १८३६ ई० को हुआ था। 'रीढ़ा' में उनका ननिहाल था। इनके पिता पं० जमुनाप्रसाद भार्गव अलीगढ़ के 'सासनी' नामक स्थान के प्रतिष्ठित जमींदार थे। इनके दादा का नाम पंडित बालमुकुन्द था। उन्हें मुगल सम्राट शाहआलम (आगरा) का कोषाध्यक्ष होने का गौरव प्राप्त था।

नवलकिशोर का बचपन ननिहाल में ही बीता। आरम्भिक पढ़ाई के लिए सासनी (अलीगढ़) आए। पढ़ाई की व्यवस्था घर पर ही की गई। एक पंडित जी की देख-रेख में चार वर्ष तक पढ़ाई हुई। १८५० ई० तक आगरा में रहे।

आगरा कालेज में पढ़ते-पढ़ते अखबार पढ़ने की आदत पड़ी, जो धीरे-धीरे चस्के में बदल गई। उस समय आगरा से प्रकाशित होने वाले 'सफीर' (उर्दू अखबार) ने इन्हें बहुत प्रभावित किया। 'सफीर' में इनकी रचनाएँ छपने लगीं और पाठक उसे पसन्द करने लगे। अब पत्रकार बनने का इरादा बना और आगरा से लाहौर की डगर नाप डाली। वहाँ के 'कोहेनूर' के संचालक मुंशी हरसुखराय थे। पन्द्रह रुपये मासिक वेतन तय हुआ। योग्यता एवं कार्य-क्षमता के साथ-साथ प्रशासकीय गुणवत्ता को देखकर नवलकिशोरजी को 'कोहेनूर' का प्रबंधक बना दिया गया। नवलजी ने बड़े मनोयोग से काम किया और अपनी प्रतिभा से अखबार को थोड़े से समय में ही चमका दिया। प्रबंधक के रूप में

काम करते हुए प्रेस-तंत्र का गंभीर ज्ञान अर्जित किया। मैटर कम्पोज करना, मैटर को सलीके से बाँधना, प्रूफ उठाना, मैटर का मेकअप करना, पेज बनाना, प्रूफ शोधना, फर्मा कसना, मशीन पर चढ़ाना, छापना, मशीन चलाना, जिल्दसाजी तथा फर्मों की सिलाई आदि करना सब सीख लिया। नतीजा यह हुआ कि इतना सब जान लेने से प्रेस-तंत्र में स्वावलम्बन की भावना आ गई। यदि इन कामों से सम्बन्धित कोई श्रमिक समय पर उपलब्ध न हो पाए तो नवलकिशोरजी उसे पूरे आत्मविश्वास से कर डालते थे।

नवलकिशोरजी ने मुंशी हरसुख राय के निर्देशन में जो कुछ सीखा, उसे वे उनको सिखाने और ज्ञान पारिश्रमिक के रूप में वसूल लेते। यही कारण था कि जब-जब मुंशी जी इनका वेतन बढ़ाने का प्रस्ताव रखते, वे दो टूक मना कर देते। लेकिन उनकी इस निष्ठा एवं श्रमशीलता ने मुंशीजी का दिल जीत लिया। मुंशीजी के यहाँ कोई संतान नहीं थी। वे नवलकिशोर को संतान-वत्सलता से ही देखते-समझते थे। फलतः एक दिन प्रेस के सारे अधिकार नवलकिशोर को सौंप दिए। यह घटना १८५४ ई० की है। मुंशी हरसुख राय पर फौजदारी का मुकदमा चल रहा था। उन्हें जेल जाना पड़ गया।

मुंशीजी के जेल जाने का नवलकिशोर पर विशेष प्रभाव पड़ा। अब तो दायित्व और भी बढ़ गया। उन्होंने प्रेस की कार्यप्रणाली को और भी मजबूत कर दिया। कुछ ही समय में प्रेस और चमका। मुंशी हरसुख राय की अनुपस्थिति में लोक-समाज ने नवल-किशोर को 'मुंशी' कहकर सम्बोधित करना शुरु कर दिया और वे 'मुंशी नवलकिशोर' हो गए। उन्होंने अपनी सूझबूझ तथा प्रतिभा के बल पर मुंशी हरसुख राय को बरी करवा लिया। इससे उन्हें खूब प्रसिद्धि मिली।

१८५७ ई० में मुंशी नवलकिशोर के मन में निजी प्रेस खोलकर प्रकाशन, मुद्रण तथा लेखन-जगत में क्रान्ति लाने का विचार कौंधा और वे लाहौर से आगरा आ गए। १८५७ ई० की राष्ट्रीय क्रान्ति हुई। लेखक-कवि दिल्ली को छोड़कर लखनऊ की दिशा लेने लगे। तब उनके मन में विचार आया कि सत्साहित्य भारतीय संस्कृति की खरी पहचान करवाने में सक्षम है। भारतीय भाषाओं के सत्साहित्य को यदि ढंग से आम जनता तक पहुँचाया जाए तो भारतीय एकता को सुदृढ़ किया जा सकता है। बस फिर क्या था। सन् १८५८ में लखनऊ की रकाबगंज बस्ती में उन्होंने अपने ही नाम से 'नवलकिशोर प्रेस' खोल दिया। प्रेस चमका, धीरे-धीरे उसमें सत्साहित्य छपने लगा। रकाबगंज का स्थान प्रेस के लिए छोटा पड़ गया और फिर हजरतगंज के बड़े मकान में प्रेस लगा। जर्मनी से मशीनें तथा छपाई सामग्री मँगवाई गई।

अब नवलकिशोरजी के मन में एक उर्दू अखबार निकालने का भाव जागा और यह धुन 'अवध अखबार' के रूप में २६ नवम्बर १८५८ ई० को व्यवहार में सामने आयी। 'अवध अखबार' उस समय एशिया भर में देशी भाषाओं का सर्वप्रथम अखबार था।

'अवध अखबार' की सफलता के बाद 'अवध रिव्यू' (अँग्रेजी साप्ताहिक) प्रकाशित किया। उनकी यह रुचि १९२२ ई० में 'माधुरी' (हिन्दी मासिक) के प्रकाशन के साथ बुलन्दी पर रही।

मुंशी नवलकिशोर को मिर्जा गालिब नवल बाबू कहते थे। 'नवलकिशोर प्रेस' के बारे में मिर्ज़ा गालिब ने लिखा है—'इस छापेखाने ने जिसका भी दीवान छापा, उसको जमीन से आसमान पर पहुँचा दिया है। हुस्ने-खत से अल्फाज को चमका दिया।'

मिर्ज़ा गालिब के साथ मुंशी नवलकिशोरजी का सम्बन्ध दोस्ती के साथ-साथ लेखक और प्रकाशक का भी था। दोनों एक-दूसरे से, एक-दूसरे के कृतित्व से परिचित थे। मुंशीजी गालिब की शायरी को प्रकाशित करना चाहते थे। गालिब की शायरी को 'कुल्लियात' शीर्षक से नवाब जियाउद्दीन अहमद खाँ ने सम्बोधित तथा मजीर हुसैन मियाँ ने संकलित किया था, जो १८५७ ई० के गदर में गुम हो गया था। जैसे-तैसे यह पाण्डुलिपि लखनऊ पहुँची और इसका विज्ञापन 'अवध अखबार' के मुख्य पृष्ठ पर दिया जाने लगा।

जब मिर्ज़ा गालिब मुंशी नवलकिशोर से पहली बार मिले, तो उन्होंने मुंशीजी के बारे में लिखा—'खालिक ने उनको जोहरा की सूरत और मुश्तारी की सीरत अदा की है।'

मुंशी नवलकिशोर ने समय-समय पर 'रामचरित मानस' (तुलसीदास), सूरसागर (सूरदास), बीजक (कबीर), विहवारीश माधवानल कामकंदला (बोधा), कवि कल्पतरु (चिंतामणि), नखशिख हजारा (परमानंद सुहाने), शृंगार संग्रह (सरदार कवि), षडऋतु हजारा (हबीबुल्ला), 'षडऋतु काव्य-संग्रह- (हफीजुल्ला खाँ), संदुरी तिलक, भाषाकाव्य संग्रह, कवित्त-रत्नाकर तथा शिवासिंह सरोज प्रभृति हिन्दी-ग्रन्थों के साथ-साथ हिन्दी का 'मंगलकोश' भी प्रकाशित किया। केशव कृत 'रसिकप्रिया' और 'कविप्रिया' भी छापी।

मुंशी नवलकिशोर द्वारा अन्य ग्रन्थों में—हीर रांझा, बेताल पचीसी, सिंहासन बत्तीसी, किस्सा हातिमताई, तोता मैना की कहानी, किस्सा चार दरवेश, आल्हा, अलिफ लैला आदि के साथ-साथ वेद, पुराण, उपनिषद् आदि का भी पहली बार प्रकाशन किया गया।

मुंशी नवलकिशोर द्वारा प्रकाशित कुल जमा साहित्य का लगभग पैंसठ प्रतिशत साहित्य उर्दू, अरबी तथा फारसी में तथा शेष हिन्दी, तथा गुरुमुखी आदि से अनूदित था। धार्मिक साहित्य के प्रकाशन के प्रति उनमें आस्था और पवित्रता का भाव मुखर था। इन ग्रन्थों को प्रकाशित करने के सिलसिले में कम्पोजिटरों तथा कातिबों को पूरी शुद्धता के साथ, प्रेस में जूता पहने बिना जाने की सख्त हिदायत रहती थी और सब इसका पूरा-पूरा पालन करते थे।

मुंशी नवलकिशोर प्रेस के लिए सन् १९५० दुर्भाग्यपूर्ण रहा। २० हजार के घाटे के कारण प्रेस बन्द हो गया। यह घाटा 'माधुरी' के कारण हुआ था।

मुंशी नवलकिशोर सधे हुए लेखक भी थे और सम्पादक भी। इनकी वनयात्रा (१९६८ ई०), मनोहर-कहानियाँ (१९८० ई०) तथा वर्ण (१८९१ ई०) मौलिक कृतियाँ हैं। संपादित कृतियों में 'पंचरतन' (जानकी मंगल, वैराग्य संदीपनी, पार्वती मंगल, रामलला नहछू तथा बरवै रामायण) तथा 'रहीम रत्नावली' (मरणोपरांत १८९८ ई० में प्रकाशित) उल्लेखनीय हैं।

मुंशी नवलकिशोर के जीवन के समाजसेवी तथा राजनीतिक पहलू भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है : १८७५ ई० से १८९३ ई० तक 'लखनऊ नगरपालिका' के वे सदस्य रहे। 'नवलकिशोर हाईस्कूल' को 'जुबली कालेज' बनाया । समय-समय पर लखनऊ तथा आगरा की शिक्षण संस्थाओं को लाखों का दान दिया। समाज के पिछड़े वर्ग, असहाय गरीबों, विधवाओं की मुक्तहस्त से सेवा की। इसी समाज सेवा भावना के लिए ब्रिटिश सरकार ने 'केसरी हिन्द' तथा 'सी.आई.ई.' जैसा सम्मान दिया। स्वतंत्र भारत सरकार ने उनपर डाक टिकट भी निकाला।

१८८५ में अफगानिस्तान के शाह अब्दुल रहमान ने मुंशी से मुलाकात के बाद कहा—'भारत की मेरी यात्रा मुंशी नवलकिशोर से मिलकर सफल हो गई।

(साभार संकलित)

हिन्दी प्रकाशन जगत का ज्योति विहग : रामलाल पुरी

पुरीजी के निधन का समाचार सुनते ही स्तब्ध रह गया। लगा प्रकाशन जगत की त्रयी (वाचस्पति पाठक, देवनारायण द्विवेदी तथा रामलाल पुरी) का यह दूसरा नक्षत्र भी डूब गया। हिन्दी प्रकाशन जगत का ज्योति विहग उड़ गया। मन यादों के दायरे में चक्कर काटने लगा।

अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ के अध्यक्ष पद को तीन बार सुशोभित करने वाले पुरीजी के व्यक्तित्व में ममत्व और नेतृत्व की अद्भुत त्रिवेणी प्रवाहित थी। उनके सान्निध्य का लाभ मैंने पिछले तीन दशकों में उठाया था।

अपने जन्मकाल के बाद ही अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ को विघटन का मुँह देखना पड़ा था। १९५५ में वाराणसी में समानान्तर एक दूसरा संघ भी बन गया था। पुरीजी दिल्लीवाले संघ के उपाध्यक्ष थे, पर पुरीजी की प्रतिभा और लगन का ही परिणाम था कि यह दरार शीघ्र ही पट गयी और दोनों संघ एक हो गये।

उन दिनों की यादों की परतें अचानक खुलने लगती हैं। १९५९ में वियेना में अन्तर्राष्ट्रीय प्रकाशक कांग्रेस के चित्र मानस पर बनने लगते हैं। पुरीजी भारतीय प्रतिनिधि मण्डल के नेता थे। उनके नेतृत्व एवं वक्तृत्व कला को परखने का मुझे निकट से अवसर मिला। मेरे टूटे-फूटे अँग्रेजी भाषण की जिस कुशलता के साथ उन्होंने व्याख्या की, उससे उनके अँग्रेजी ज्ञान और भाषा पर अधिकार का मैं आज तक कायल हूँ।

यह तो उनका एक पक्ष है। दूसरा पक्ष उनके ममत्व का है। मैं जब भी उनके साथ रहा, मुझे लगा मेरा बड़ा भाई या अभिभावक मेरे साथ है। विएना में मैं एक दिन सर्दी से ठिठुरने लगा। मेरे पाँव में सूती मोजे थे। पुरीजी ने अपना ऊनी मोजा निकाला और मुझे पहनने के लिए विवश किया। बात आई-गयी और चली गयी। मोजा भी मेरे पैर से निकल गया, पर उनका स्नेह जो मेरे मन से चिपका वह आजतक छूट नहीं पाया, किन्तु वह व्यक्ति मुझसे छूट गया। कितना निर्मम है काल देवता?

वे एक हस्ती थे। उन्होंने प्रकाशन व्यवसाय को एक दिशा दी थी, लेकिन कितने सहज थे, इसका एक उदाहरण देता हूँ कि—मैं लन्दन एयरपोर्ट पर उतर रहा था—और सामने देखता हूँ एक सरल मुस्कान ओठों पर चिपकाये पुरीजी मेरे स्वागत में खड़े हैं। आपको कष्ट करने की क्या आवश्यकता थी। मैं मारे संकोच के बोल पड़ा। पुरीजी ने बड़ी सरलता से मेरी बात का जवाब दिया कि 'छोटे भाई को लेने बड़ा भाई नहीं आयेगा, तो कौन आयेगा' कहते हुए उन्होंने मुझे गले लगा लिया।

बातें व्यक्तिगत हैं, मामूली हैं, पर इनमें मानवीय मूल्यों के आदर्श छिपे हैं जिनकी आज बेहद कमी है, जो खोजे नहीं मिलती हैं। एक बार अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ के अध्यक्ष पद के चुनाव में मेरी उन्हीं से स्पर्द्धा हो गयी। हम दोनों एक-दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी थे, किन्तु मैं उन्हीं के घर पर टिका था, कितना स्नेह और ममत्व से भरा था उनका वह आतिथ्य? कैसे बताऊँ! उसके लिए शब्द नहीं हैं मेरे पास।

एक पद के दो प्रतिद्वन्दी, दोनों में 'कीन कन्टेस्ट' पर दोनों एक साथ रहते हों, एक साथ खाना खाते हों, एक ही मोटर में बैठकर सभा स्थल पर जाया करते हों। लोग हम लोगों को देखकर आश्चर्य करें कि कितने अजीब हैं ये? ...और परिणाम घोषित होने के बाद आशीर्वादात्मक लहजे से उनका यह कहना कि 'तुम्ही मेरे योग्य उत्तराधिकारी हो।' आज यह सब बातें सपना होती जा रही हैं और जो अपना होता जा रहा है वह है द्वेष, घृणा, ईर्ष्या, वैमनस्य आदि।

प्रकाशकों के लिए उन्होंने क्या नहीं किया। १९६६ में लखनऊ में आयोजित सेमिनार में उन्होंने प्रकाशन व्यवसाय को इन्डस्ट्री की मान्यता दिलाने की जोरदार आवाज उठायी, जिसे सैद्धान्तिक स्तर पर सरकार ने भी स्वीकार किया। १९६६ में बम्बई में नेशनल बुक ट्रस्ट के तत्वावधान में आयोजित प्रथम पुस्तक मेले में संघ के सभापति की हैसियत से दिया गया वक्तव्य स्मरणीय है। मासिक पुस्तक प्रदर्शनी की मूल कल्पना आपकी ही थी। १९५८ के संघ के कलकत्ता अधिवेशन के आप सभापति थे, उसमें बड़े ही व्यावहारिक सुझाव थे उनके भाषण में। एक दिलचस्प घटना भी हुई, लोकभारती के दिनेश जी की सगाई उसी समय तय हुई, पर कौन होगा उनका पिता? कौन होगा उनका अभिभावक?—समस्या थी। तत्क्षण पुरीजी आये और हँसते हुए बोले—जिसका कोई नहीं है उसका रामलाल पुरी है।' संघ की शायद ही कोई बैठक उनसे छूट जाय। वे बड़े गर्व से कहते थे कि संघ की बैठकों में मेरी उपस्थिति शत-प्रतिशत है।

लोक कथाओं के बड़े प्रेमी थे। अनेक अव्यवस्थित और गवाँरू ढंग से छपी लोककथाओं को चुन-चुनकर उनका स्तरीय प्रकाशन उन्होंने किया। इस तरह जंगली फूलों को वे ड्राइंग रूम के गुलदस्ते बनाकर सजा गये। आज जो लोक साहित्य का नये रूप में उद्धार हुआ है, उसके मूल में पुरीजी की भूमिका सराहनीय है।

उनकी ज्ञान गरिमा का ही प्रभाव था कि वे ईरान के बाल सेमिनार में आमंत्रित किये गये। विश्व का शायद ही कोई ऐसा विकसित एवं विकासशील देश हो जहाँ वे नहीं गये थे। किन्तु ज्ञान और अनुभव की विशालता में उनकी सहजता और सरलता बड़े महत्त्व की थी। अवसर के समय उनमें साहस और तेजस्विता का स्वयं उद्रेक होता था। लन्दन में मेरे सामने विद्यार्थियों ने उनसे शिकायत की कि हाई कमीशन के कर्मचारियों का उनके प्रति व्यवहार अच्छा नहीं है। वे शीघ्र ही इस मसले पर विजयालक्ष्मी पण्डित से मिले और वह काम कराया जिसे स्वनामधन्य लोग भी नहीं करा सके थे।

मूलत: अँग्रेजी के प्रकाशक होकर भी उन्होंने हिन्दी की बड़ी सेवा की। नये लेखकों को प्रोत्साहित किया। हिन्दी प्रकाशन को स्तर दिया। हिन्दी साहित्य सम्मेलन

दिल्ली की स्थापना में उन्होंने तन मन धन से योग दिया। जब भी हिन्दी का सवाल आया वे कभी झुके नहीं और अपने गन्तव्य की ओर बढ़ने से कभी रुके नहीं।

उनके व्यक्तित्व का एक स्मरणीय पक्ष और है कि वे उच्च कोटि के कला प्रेमी थे। सांस्कृतिक कार्यक्रमों में रुचि लेते थे। फिल्मों के बड़े शौकीन थे। कलात्मक वस्तुएँ खूब खरीदते थे और दोस्तों को खरीदवाते थे। जेनेवा में लीग ऑफ नेशन्स के सेक्रटरी तथा प्रसिद्ध प्रकाशक डॉ० वहीद यूनेस्को के दक्षिण-पूर्व एशिया सम्मेलन में पाकिस्तान के प्रतिनिधि के रूप में मद्रास आये हुए थे। पुरीजी ने उन्हें इतनी कलात्मक वस्तुएँ खरीदवा दीं कि उनके रुपये चुक गये। इसके बाद पुरीजी ने वहीद साहब के पाकिस्तान जाने की पूरी व्यवस्था अपने पास से की।

ऐसा था वह व्यक्तित्व जो सम्प्रति मेरी स्मृति में कौंध गया, जिसे शायद मैं अपने कलम के दायरे में बाँध नहीं पाया। अपनी असमर्थता की इस बेलौश स्वीकृति में मुझे संकोच नहीं, क्योंकि इस समय मेरा उद्देश्य उन स्मृतियों को लिपिबद्ध करना नहीं, वरन् श्रद्धा से नमन करना है।

आध्यात्मिक ज्योति जगानेवाले : ब्रह्मलीन संत सेठ जयदयालजी गोयनका

आज भारत में घर-घर गीता, रामायण, पुराण, महाभारत, उपनिषद् और अन्य धार्मिक साहित्य का प्रचार और प्रसार दृष्टिगोचर हो रहा है। देश में जो आध्यात्मिक ज्योति प्रज्वलित दृष्टिगोचर होती है, इस ज्योति के जगानेवाले बैकुण्ठ निवासी सेठ जयदयालजी गोयनका थे। गोयनकाजी कोई बड़े विद्वान् न थे। संत समागम, धार्मिक ग्रन्थों के अध्ययन, भगवत्कृपा से और आध्यात्मिक चिन्तन से उन्हें ज्ञान की ज्योति प्राप्त हुई थी। उनको भगवत्दर्शन हुआ और उन्होंने अपना समग्र जीवन भगवतार्पण कर दिया। यद्यपि सेठ जयदयालजी एक प्रमुख व्यवसायी थे, परन्तु जिस प्रकार राजा जनक अपने राजपाट को चलाते और सांसारिक कार्यों में लिप्त रहते हुए भी सदा ईश्वर भक्ति में लीन ब्रह्मचर्य से रहते थे—वे गृहस्थ रहकर भी सन्यासी का निर्लिप्त जीवन व्यतीत करते थे, यही स्थिति सेठ जयदयालजी की भी थी।

विश्वविख्यात गीता प्रेस, जहाँ से सर्वश्रेष्ठ धार्मिक पत्र कल्याण निकलता है, वह सेठ जयदयालजी गोयनका की ही साधना का फल है। सेठजी गीता का नियमित पाठ करते थे। गीता के १५वें अध्याय का मनन करते हुए उन्हें निम्न श्लोकों ने बहुत प्रभावित किया। इसमें भगवान् की घोषणा पाकर वह भाव-विभोर हो गये।

य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः॥
न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि॥

इसका अर्थ है कि जो ~~पुरुष~~ मुझमें परम प्रिय करके बसे परम रहस्ययुक्त गीता शास्त्र को मेरे भक्तों में कहेगा वह मुझको प्राप्त होगा—इसमें कोई सन्देह नहीं है। इससे बढ़कर मेरा प्रिय कार्य करनेवाला मनुष्यों में कोई भी नहीं है तथा पृथ्वी भर में उससे बढ़कर मेरा प्रिय दूसरा कार्य होगा भी नहीं।

सेठजी के हाथ जैसे ही यह सूत्र लगा, वे भगवत् वाक्य को शिरोधार्य करके गीता प्रचार के कार्य में लग गये। पहले स्वयं गीता के मर्म को समझा, उसका निरन्तर

स्वाध्याय एवं मनन करके उसके तत्व को आत्मसात् किया। धीरे-धीरे उनका गीता ज्ञान सुरक्षित होने लगा—गोष्ठियों और सत्संगों में सेठजी गीता का प्रवचन करने लगे। गीता के श्लोकों की उनकी व्याख्या बहुत ही हृदयग्राही होती थी, श्रोता बड़े प्रभावित होते। इस तरह गीता उनके जीवन सूत्र की संचालिका बन गई और वे उसमें तल्लीन हो गये। उनके अन्तस्तल से यह आवाज आने लगी कि गीता के सन्देश लोगों तक पहुँचाओ और सेठ जयदयालजी ने इस अन्तःप्रेरणा के फलस्वरूप गीता प्रचार को अपना जीवनोद्देश्य बना लिया। किसी अन्य प्रेस की छपाई से सन्तोष न होने पर अपना निजी प्रेस खोलने का विचार उनमें उद्भूत हुआ। इसी संकल्प का परिणाम गोरखपुर का गीता प्रेस है, जिसका जन्म २५ अप्रैल १९२३ को लघुरूप में हुआ, यह आज भारत का ही नहीं विश्व का एक प्रसिद्ध तथा विशाल प्रेस है, जहाँ से हजारों धार्मिक पुस्तकें और ग्रंथ करोड़ों की संख्या में छपे और देश के कोने-कोने में वितरित हुए। यहाँ से प्रकाशित होनेवाली 'कल्याण' मासिकपत्रिका २.५० लाख से अधिक छपती है। गीता प्रेस द्वारा गत ६० वर्षों से धार्मिक और आध्यात्मिक साहित्य की सलिल धारा प्रवाहित हो रही है।

सेठ जयदयालजी एक संत पुरुष थे। कहते हैं कि उन्हें कई बार भगवत् साक्षात्कार हुआ। उनके मार्मिक और सरल प्रवचनों से लाखों लोगों को भगवत्भक्ति की प्रेरणा मिली और उनका जीवन पवित्र बन गया। अनन्य भगवद्भक्त दिव्य, आध्यात्मिक ज्योति तथा कल्याण-पत्र आदि के सम्पादक ब्रह्मलीन भाई हनुमानप्रसादजी पोद्दार भी महात्मा सेठ जयदयाल गोयनका की ही देन हैं। उन्हीं की प्रेरणा से भाईजी ने कल्याण पत्र का सम्पादन आरम्भ किया और गोरखपुर में ५० वर्ष बैठकर अपनी एकान्त साधना तथा गीता प्रेस द्वारा प्रकाशित अलभ्य धार्मिक एवं आध्यात्मिक साहित्य संसार को प्रदान किया। भाई हनुमानप्रसादजी पोद्दार ने २७ जनवरी, १९७० को लिखे अपने वसीयतनामे में कहा है—'यों तो मेरे जीवन पर उपनिषद्, ऋषियों, श्रीमद्भागवत, वैष्णव ग्रन्थों का बड़ा प्रभाव है तथापि महान् आचार्य, शंकराचार्य तथा भगवान् चैतन्यदेव से मुझे सर्वाधिक लाभ प्राप्त हुआ है। पर यदि सत्य कहा जाए, तो मेरे जीवन पर बहुत बड़ा प्रभाव श्रद्धेय पूज्य जयदयालजी गोयनका का है। मेरे जीवन को बहकने से बचाने तथा एक ही आध्यात्म पथ पर सुरक्षित रखने का सारा श्रेय उन्हीं की कृपा को है। उनको मेरे पास भगवान् ने ही भेजा था। यद्यपि सम्बन्धों में वे मेरे मौसेरे भाई होते थे; तथापि उनके दूर-दूर रहने के कारण मिलने का काम नहीं पड़ा। कलकत्ता की पारख कोठी में पिताजी के साथ हमारी दुकान पर वे स्वयं आने लगे और उन्होंने मुझे अपनी ओर खींचा। यह लगभग सन् १९१० की बात है, तब से शरीर के अन्त तक उनकी कृपा बराबर बनी रही। मैंने कई बार गीता प्रेस और कल्याण के काम को छोड़कर भागना चाहा, पर उनकी प्रबल कृपा शक्ति ने भागने नहीं दिया। उनसे मुझे जो कुछ मिला, उसकी कहीं तुलना नहीं हो सकती। यों कहना चाहिए कि मुझमें यदि कहीं कोई अच्छापन है तो वे भगवान् एवं जयदयालजी के कृपादान का फल है।'

आध्यात्मिक ज्योति जगानेवाले : ब्रह्मलीन संत सेठ जयदयालजी गोयनका

आज भारत में घर-घर गीता, रामायण, पुराण, महाभारत, उपनिषद् और अन्य धार्मिक साहित्य का प्रचार और प्रसार दृष्टिगोचर हो रहा है। देश में जो आध्यात्मिक ज्योति प्रज्वलित दृष्टिगोचर होती है, इस ज्योति के जगानेवाले बैकुण्ठ निवासी सेठ जयदयालजी गोयनका थे। गोयनकाजी कोई बड़े विद्वान् न थे। संत समागम, धार्मिक ग्रन्थों के अध्ययन, भगवत्कृपा से और आध्यात्मिक चिन्तन से उन्हें ज्ञान की ज्योति प्राप्त हुई थी। उनको भगवत्दर्शन हुआ और उन्होंने अपना समग्र जीवन भगवतार्पण कर दिया। यद्यपि सेठ जयदयालजी एक प्रमुख व्यवसायी थे, परन्तु जिस प्रकार राजा जनक अपने राजपाट को चलाते और सांसारिक कार्यों में लिप्त रहते हुए भी सदा ईश्वर भक्ति में लीन ब्रह्मचर्य से रहते थे—वे गृहस्थ रहकर भी सन्यासी का निर्लिप्त जीवन व्यतीत करते थे, यही स्थिति सेठ जयदयालजी की भी थी।

विश्वविख्यात गीता प्रेस, जहाँ से सर्वश्रेष्ठ धार्मिक पत्र कल्याण निकलता है, वह सेठ जयदयालजी गोयनका की ही साधना का फल है। सेठजी गीता का नियमित पाठ करते थे। गीता के १५वें अध्याय का मनन करते हुए उन्हें निम्न श्लोकों ने बहुत प्रभावित किया। इसमें भगवान् की घोषणा पाकर वह भाव-विभोर हो गये।

य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः॥
न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि॥

इसका अर्थ है कि जो पुरुष मुझमें परम प्रिय करके बसे परम रहस्ययुक्त गीता शास्त्र को मेरे भक्तों में कहेगा वह मुझको प्राप्त होगा—इसमें कोई सन्देह नहीं है। इससे बढ़कर मेरा प्रिय कार्य करनेवाला मनुष्यों में कोई भी नहीं है तथा पृथ्वी भर में उससे बढ़कर मेरा प्रिय दूसरा कार्य होगा भी नहीं।

सेठजी के हाथ जैसे ही यह सूत्र लगा, वे भगवत् वाक्य को शिरोधार्य करके गीता प्रचार के कार्य में लग गये। पहले स्वयं गीता के मर्म को समझा, उसका निरन्तर

स्वाध्याय एवं मनन करके उसके तत्व को आत्मसात् किया। धीरे-धीरे उनका गीता ज्ञान सुरक्षित होने लगा—गोष्ठियों और सत्संगों में सेठजी गीता का प्रवचन करने लगे। गीता के श्लोकों की उनकी व्याख्या बहुत ही हृदयग्राही होती थी, श्रोता बड़े प्रभावित होते। इस तरह गीता उनके जीवन सूत्र की संचालिका बन गई और वे उसमें तल्लीन हो गये। उनके अन्तस्तल से यह आवाज आने लगी कि गीता के सन्देश लोगों तक पहुँचाओ और सेठ जयदयालजी ने इस अन्त:प्रेरणा के फलस्वरूप गीता प्रचार को अपना जीवनोद्देश्य बना लिया। किसी अन्य प्रेस की छपाई से सन्तोष न होने पर अपना निजी प्रेस खोलने का विचार उनमें उद्भूत हुआ। इसी संकल्प का परिणाम गोरखपुर का गीता प्रेस है, जिसका जन्म २५ अप्रैल १९२३ को लघुरूप में हुआ, यह आज भारत का ही नहीं विश्व का एक प्रसिद्ध तथा विशाल प्रेस है, जहाँ से हजारों धार्मिक पुस्तकें और ग्रंथ करोड़ों की संख्या में छपे और देश के कोने-कोने में वितरित हुए। यहाँ से प्रकाशित होनेवाली 'कल्याण' मासिकपत्रिका २.५० लाख से अधिक छपती है। गीता प्रेस द्वारा गत ६० वर्षों से धार्मिक और आध्यात्मिक साहित्य की सलिल धारा प्रवाहित हो रही है।

सेठ जयदयालजी एक संत पुरुष थे। कहते हैं कि उन्हें कई बार भगवत् साक्षात्कार हुआ। उनके मार्मिक और सरल प्रवचनों से लाखों लोगों को भगवत्भक्ति की प्रेरणा मिली और उनका जीवन पवित्र बन गया। अनन्य भगवद्भक्त दिव्य, आध्यात्मिक ज्योति तथा कल्याण-पत्र आदि के सम्पादक ब्रह्मलीन भाई हनुमानप्रसादजी पोद्दार भी महात्मा सेठ जयदयाल गोयनका की ही देन हैं। उन्हीं की प्रेरणा से भाईजी ने कल्याण पत्र का सम्पादन आरम्भ किया और गोरखपुर में ५० वर्ष बैठकर अपनी एकान्त साधना तथा गीता प्रेस द्वारा प्रकाशित अलभ्य धार्मिक एवं आध्यात्मिक साहित्य संसार को प्रदान किया। भाई हनुमानप्रसादजी पोद्दार ने २७ जनवरी, १९७० को लिखे अपने वसीयतनामे में कहा है—'यों तो मेरे जीवन पर उपनिषद्, ऋषियों, श्रीमद्भागवत, वैष्णव ग्रन्थों का बड़ा प्रभाव है तथापि महान् आचार्य, शंकराचार्य तथा भगवान् चैतन्यदेव से मुझे सर्वाधिक लाभ प्राप्त हुआ है। पर यदि सत्य कहा जाए, तो मेरे जीवन पर बहुत बड़ा प्रभाव श्रद्धेय पूज्य जयदयालजी गोयनका का है। मेरे जीवन को बहकने से बचाने तथा एक ही आध्यात्म पथ पर सुरक्षित रखने का सारा श्रेय उन्हीं की कृपा को है। उनको मेरे पास भगवान् ने ही भेजा था। यद्यपि सम्बन्धों में वे मेरे मौसेरे भाई होते थे; तथापि उनके दूर-दूर रहने के कारण मिलने का काम नहीं पड़ा। कलकत्ता की पारख कोठी में पिताजी के साथ हमारी दुकान पर वे स्वयं आने लगे और उन्होंने मुझे अपनी ओर खींचा। यह लगभग सन् १९१० की बात है, तब से शरीर के अन्त तक उनकी कृपा बराबर बनी रही। मैंने कई बार गीता प्रेस और कल्याण के काम को छोड़कर भागना चाहा, पर उनकी प्रबल कृपा शक्ति ने भागने नहीं दिया। उनसे मुझे जो कुछ मिला, उसकी कहीं तुलना नहीं हो सकती। यों कहना चाहिए कि मुझमें यदि कहीं कोई अच्छापन है तो वे भगवान् एवं जयदयालजी के कृपादान का फल है।'

हनुमानप्रसाद पोद्दार सेठ जयदयालजी को अपना गुरु मानते थे। इन्हें प्रभु का साक्षात्कार सेठजी की ही कृपा से हुआ। भगवान् विष्णु का ध्यान और मानसिक पूजा वे सेठजी के निर्देश के अनुसार करते थे। उन दिनों भाईजी ने भगवद् गुरु की वन्दना में एक पद लिखा जिसमें उन्होंने अपने दोनों गुरुओं का स्मरण संकेत रूप में एक साथ किया। उनके दूसरे गुरु कलकत्ता के दयालु साधु थे जो भाईजी को एकान्त साधना का अभ्यास कराते थे।

जयदेव जयदेव जयदयालु देवा।
परम गुरु परम पूज्य परम देव देवा॥
सब विधि तव चरण सरन आय पर्‌यो दास।
दीन हीन अति मलीन तदपि सरन आया॥
पातक अपार किन्तु दया को भिखारी।
दुखित जान राखु सरन, पाप पुंजहारी॥
विनती करूँ बार बार, जानहु सब सेवा।
जयतु जयतु जय दयालु जय दयालु देवा॥

सेठ जयदयालजी गोयनका के सत्संगों के कारण राजस्थानी समाज में अद्भुत जागृति और आध्यात्मिक चेतना उत्पन्न हुई। ऋषिकेश में उनका ग्रीष्म ऋतु में नियमित रूप से सत्संग चलता था और हजारों श्रोता प्रतिदिन उसका लाभ लेते थे। गीता के श्लोकों की व्याख्या सेठजी ऐसे सरल और हृदयग्राही रूप में करते थे कि श्रोता मुग्ध हो जाते थे।

सेठजी की अमृत वर्षा

सेठ जयदयालजी गोयनका अपने प्रवचनों में अमृत वर्षा करते थे। उनके प्रवचन का कुछ अंश श्रद्धालु पाठकों के लाभार्थ प्रस्तुत है:

मनुष्य-जन्म सबसे उत्तम, अत्यन्त दुर्लभ और भगवान् की विशेष कृपा का फल है। ऐसे अमूल्य जीवन को पाकर जो मनुष्य आलस्य, भोग, प्रमाद और दुराचार में अपना समय बिता देता है, वह महान् मूढ़ है। उसको घोर पश्चाताप करना पड़ेगा।

झूठ, कपट, चोरी, जारी आदि शास्त्र विपरीत आचरणों का नाम 'दुराचार' (पाप) है। अपने हित की इच्छा करनेवाले मनुष्यों को इन सब दोषों को मृत्यु को सामने समझकर सर्वथा त्याग देना चाहिए।

क्लेश, कर्म और सारे दुःखों से मुक्ति अपार, अक्षय और सच्चे सुख की प्राप्ति के लिये अपने पूर्ण ज्ञान के कारण मनुष्य शरीर चौरासी लाख योनियों से बढ़कर है। भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, सदाचार, मुक्ति और आदर्श शिक्षा प्रणाली को सदा से बतलानेवाली यह भारतभूमि सर्वोत्तम है। सारे मत-मतान्तरों का उद्गम स्थान विद्या, शिक्षा और सभ्यता

का जन्मदाता तथा स्वार्थ, त्याग, ईश्वर भक्ति, ज्ञान, क्षमा, दया आदि गुणों का भण्डार है। सत्य, तप, दान और परोपकार आदि सदाचार के सागर हैं, सारे मत-मतान्तर आदि नित्य हैं, वैदिक सनातन धर्म सर्वोत्तम धर्म है।

केवल भगवान् के भजन और कीर्तन से ही अल्पकाल में सहज ही कल्याण करनेवाले होने के कारण कलियुग सर्वयुगों में उत्तम युग है। ऐसे कलिकाल में सभी वर्ण, आश्रम और जीवों का लालन-पोषण करनेवाला होने के कारण सभी आश्रमों में गृहस्थ आश्रम सर्वोत्तम है। यह सब कुछ प्राप्त होने पर भी जिसने अपना आत्मोद्धार नहीं किया, वह महान् पामर एवं मनुष्य रूप में पशु के समान ही है।

ऐसे क्षणिक, अल्पायु, अनित्य और दुर्लभ शरीर को पाकर जो अपने अमूल्य समय का एक क्षण भी व्यर्थ नहीं बिताते, जिनका तन, मन, धन और सारा समय केवल सब लोगों के कल्याण के लिए ही व्यतीत होता है, वे ही जन धन्य हैं। वे ही देवताओं के लिये भी पूजनीय हैं। उन्हीं बुद्धिमानों का जन्म सफल और धन्य है।

प्रथम तो जीवन है ही अल्प और जितना है, वह भी अनिश्चित है। न जाने मृत्यु कब आकर हमें मार दे। यदि आज ही मृत्यु आ जाए तो हमारे पास क्या साधन है, जिससे हम उसका प्रतिकार कर सकें। यदि नहीं कर सकते तो हम तो अनाथ की तरह मारे जायेंगे। इसलिए जब तक देह में प्राण है और मृत्यु दूर है, तब तक हमलोगों को अपना समय ऊँचे से ऊँचे काम में लगाना चाहिए। शरीर और कुटुम्ब के पोषण के साथ धन का संग्रह यदि सबके मंगल के कार्य में लगे, तभी उसका संग्रह करना चाहिए। यदि सब चीजें हमें सच्चे सुख की प्राप्ति में सहायता नहीं पहुँचातीं, तो उनका संग्रह करना मूर्खता नहीं तो और क्या है। धन, सम्पत्ति और कुटुम्ब की तो बात ही क्या, हमारे इस सुन्दर देह से भी हमारा कोई सम्बन्ध नहीं रह जायेगा और हम अपने देह-सम्पत्ति आदि को अपने उद्देश्य के अनुसार तथा अपने तथा संसार के कल्याण के काम में नहीं लगा सकेंगे। सम्पत्ति तो यहीं ही रह जायेगी और देह भी मिट्टी या राख हो जायेगी, अतः वह किसी भी काम में नहीं आयेगी।

'विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः ।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति ॥'

यह सब बातें सोचकर हमको अपनी सब वस्तुएँ ऐसे काम में लगानी चाहिए, जिससे हमें पश्चाताप न करना पड़े। परम शान्ति, परम आनन्द और परम प्रेमरूप परमात्मा प्राप्ति के साधन में ही इस जीवन को बिताने की तत्परता के साथ प्राणपर्यन्त चेष्टा करनी चाहिए।

(साभार संकलित)

हनुमानप्रसाद पोद्दार सेठ जयदयालजी को अपना गुरु मानते थे। इन्हें प्रभु का साक्षात्कार सेठजी की ही कृपा से हुआ। भगवान् विष्णु का ध्यान और मानसिक पूजा वे सेठजी के निर्देश के अनुसार करते थे। उन दिनों भाईजी ने भगवद् गुरु की वन्दना में एक पद लिखा जिसमें उन्होंने अपने दोनों गुरुओं का स्मरण संकेत रूप में एक साथ किया। उनके दूसरे गुरु कलकत्ता के दयालु साधु थे जो भाईजी को एकान्त साधना का अभ्यास कराते थे।

जयदेव जयदेव जयदयालु देवा।
परम गुरु परम पूज्य परम देव देवा॥
सब विधि तव चरण सरन आय पर्‌यो दास।
दीन हीन अति मलीन तदपि सरन आया॥
पातक अपार किन्तु दया को भिखारी।
दुखित जान राखु सरन, पाप पुंजहारी॥
विनती करूँ बार बार, जानहु सब सेवा।
जयतु जयतु जय दयालु जय दयालु देवा॥

सेठ जयदयालजी गोयनका के सत्संगों के कारण राजस्थानी समाज में अद्भुत जागृति और आध्यात्मिक चेतना उत्पन्न हुई। ऋषिकेश में उनका ग्रीष्म ऋतु में नियमित रूप से सत्संग चलता था और हजारों श्रोता प्रतिदिन उसका लाभ लेते थे। गीता के श्लोकों की व्याख्या सेठजी ऐसे सरल और हृदयग्राही रूप में करते थे कि श्रोता मुग्ध हो जाते थे।

सेठजी की अमृत वर्षा

सेठ जयदयालजी गोयनका अपने प्रवचनों में अमृत वर्षा करते थे। उनके प्रवचन का कुछ अंश श्रद्धालु पाठकों के लाभार्थ प्रस्तुत है:

मनुष्य-जन्म सबसे उत्तम, अत्यन्त दुर्लभ और भगवान् की विशेष कृपा का फल है। ऐसे अमूल्य जीवन को पाकर जो मनुष्य आलस्य, भोग, प्रमाद और दुराचार में अपना समय बिता देता है, वह महान् मूढ़ है। उसको घोर पश्चाताप करना पड़ेगा।

झूठ, कपट, चोरी, जारी आदि शास्त्र विपरीत आचरणों का नाम 'दुराचार' (पाप) है। अपने हित की इच्छा करनेवाले मनुष्यों को इन सब दोषों को मृत्यु को सामने समझकर सर्वथा त्याग देना चाहिए।

क्लेश, कर्म और सारे दुःखों से मुक्ति अपार, अक्षय और सच्चे सुख की प्राप्ति के लिये अपने पूर्ण ज्ञान के कारण मनुष्य शरीर चौरासी लाख योनियों से बढ़कर है। भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, सदाचार, मुक्ति और आदर्श शिक्षा प्रणाली को सदा से बतलानेवाली यह भारतभूमि सर्वोत्तम है। सारे मत-मतान्तरों का उद्गम स्थान विद्या, शिक्षा और सभ्यता

का जन्मदाता तथा स्वार्थ, त्याग, ईश्वर भक्ति, ज्ञान, क्षमा, दया आदि गुणों का भण्डार है। सत्य, तप, दान और परोपकार आदि सदाचार के सागर हैं, सारे मत-मतान्तर आदि नित्य हैं, वैदिक सनातन धर्म सर्वोत्तम धर्म है।

केवल भगवान् के भजन और कीर्तन से ही अल्पकाल में सहज ही कल्याण करनेवाले होने के कारण कलियुग सर्वयुगों में उत्तम युग है। ऐसे कलिकाल में सभी वर्ण, आश्रम और जीवों का लालन-पोषण करनेवाला होने के कारण सभी आश्रमों में गृहस्थ आश्रम सर्वोत्तम है। यह सब कुछ प्राप्त होने पर भी जिसने अपना आत्मोद्धार नहीं किया, वह महान् पामर एवं मनुष्य रूप में पशु के समान ही है।

ऐसे क्षणिक, अल्पायु, अनित्य और दुर्लभ शरीर को पाकर जो अपने अमूल्य समय का एक क्षण भी व्यर्थ नहीं बिताते, जिनका तन, मन, धन और सारा समय केवल सब लोगों के कल्याण के लिए ही व्यतीत होता है, वे ही जन धन्य हैं। वे ही देवताओं के लिये भी पूजनीय हैं। उन्हीं बुद्धिमानों का जन्म सफल और धन्य है।

प्रथम तो जीवन है ही अल्प और जितना है, वह भी अनिश्चित है। न जाने मृत्यु कब आकर हमें मार दे। यदि आज ही मृत्यु आ जाए तो हमारे पास क्या साधन है, जिससे हम उसका प्रतिकार कर सकें। यदि नहीं कर सकते तो हम तो अनाथ की तरह मारे जायेंगे। इसलिए जब तक देह में प्राण है और मृत्यु दूर है, तब तक हमलोगों को अपना समय ऊँचे से ऊँचे काम में लगाना चाहिए। शरीर और कुटुम्ब के पोषण के साथ धन का संग्रह यदि सबके मंगल के कार्य में लगे, तभी उसका संग्रह करना चाहिए। यदि सब चीजें हमें सच्चे सुख की प्राप्ति में सहायता नहीं पहुँचातीं, तो उनका संग्रह करना मूर्खता नहीं तो और क्या है। धन, सम्पत्ति और कुटुम्ब की तो बात ही क्या, हमारे इस सुन्दर देह से भी हमारा कोई सम्बन्ध नहीं रह जायेगा और हम अपने देह-सम्पत्ति आदि को अपने उद्देश्य के अनुसार तथा अपने तथा संसार के कल्याण के काम में नहीं लगा सकेंगे। सम्पत्ति तो यहीं ही रह जायेगी और देह भी मिट्टी या राख हो जायेगी, अत: वह किसी भी काम में नहीं आयेगी।

'विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः ।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति ॥'

यह सब बातें सोचकर हमको अपनी सब वस्तुएँ ऐसे काम में लगानी चाहिए, जिससे हमें पश्चाताप न करना पड़े। परम शान्ति, परम आनन्द और परम प्रेमरूप परमात्मा प्राप्ति के साधन में ही इस जीवन को बिताने की तत्परता के साथ प्राणपर्यन्त चेष्टा करनी चाहिए।

(साभार संकलित)

हिन्दी प्रकाशन जगत के स्तम्भ : सम्पादक बाबू मूलचन्द अग्रवाल

बाबू मूलचन्दजी अग्रवाल हिन्दी के उन उन्नायकों और सेवियों में थे, जिन्हें हिन्दी पत्रकारिता, हिन्दी प्रकाशन और हिन्दी जगत् का स्तम्भ कहा जा सकता है। ३० अगस्त, सन् १८९३ में आपका जन्म उत्तर प्रदेश के जालौन जनपद के अन्तर्गत कालपी में हुआ था।

मूलतः आपका कार्य-क्षेत्र कलकत्ता ही रहा। प्रारम्भ में आप एक विद्यालय के हेडमास्टर रहे, तत्पश्चात् आपने 'विश्वमित्र' दैनिक का प्रकाशन किया और उसी के साथ-साथ 'पापुलर ट्रेडिंग कं०' नाम की प्रकाशन संस्था की स्थापना भी की। इस संस्था द्वारा ऐतिहासिक, पौराणिक तथा स्त्रियोपयोगी जीवन चरित्रों का प्रकाशन भी किया।

अपनी पारिवारिक हालत के बारे में बाबू मूलचन्दजी ने अपनी आत्मकथा में एक स्थान पर लिखा है कि उनके स्वसुरजी ने खुद सारी सम्पत्ति अर्जित की थी लेकिन उसे व्यय करने की कला उनके पास एकदम न थी। बड़ी लड़की पर उनका विशेष प्रेम था। माँ के अभाव में वह उनकी यथेष्ट सेवा भी करती थी। मेरे स्वसुरजी को विवाह में आभूषणों आदि के साथ दहेज में दो हजार रुपये देने थे, लेकिन उन्होंने उन पैसों को बैंक में जमा कर दिया। इसका नतीजा यह हुआ कि विशाल कोठी में रहनेवाली उस लड़की को मछुआबाजार की एक बहुत गन्दी बस्ती के गन्दे मकान में रहने के लिये मजबूर होना पड़ा। सवेरा होते पाखाने के लिये लाइन लगाकर भोर में तीन-चार बजे से ही खड़ा हो जाना पड़ता था। चारो ओर मांस की दुकाने और उस पर से मुसलमानों के होटलों से उठती मांस की झन्नाटेदार बदबू। सोने के लिये खटमलों से पटा तख्त। यहाँ तक कि कमरों की दीवारों पर भी खटमलों की सेना दौड़ती रहती थी। रात को बेचारी पूरी नींद भी सो नहीं पाती थी। मेरे परिवार के पास इतना पैसा न था कि किराये पर दूसरा मकान लिया जाय लेकिन इसके बावजूद मछुआबाजार में अत्यधिक कष्ट को देखते हुए ५० रुपये माहवार पर एक दूसरा मकान किराये पर लिया गया। मेज, कुर्सी, आलमारी आदि किसी तरह खरीदी गयी। शहर में साथियों और रिश्तेदारों के बीच इस बात की खासी चर्चा थी कि मैं ससुराल के धन को प्राप्त करने के कारण यह सब कर रहा हूँ। लेकिन यहाँ तो इसका उल्टा था कि लक्ष्मीधीश की पुत्री को आराम से रखने के लिये घर का पैसा आर्थिक तंगी के बावजूद खर्च करना पड़ रहा था।

यहीं से सन् १९३७ में अफगानिस्तान के शाह अमानुल्ला की जीवनी प्रकाशित हुई थी। अमानुल्ला और उनकी बेगम सुरैया को उन दिनों सामाजिक क्रान्ति का पथ-दर्शक समझा जाता था। इस जीवनी को पचीसों आर्ट पेपर पर चित्रों से सुसज्जित कर प्रकाश में लाना मूलचन्दजी की अनोखी सूझ-बूझ माना गया। महाकवि निराला, इलाचन्द्र जोशी, डॉ० हेमचन्द्र जोशी, श्रीकान्तठाकुर विद्यालंकार, माता सेवक पाठक, उमादत्त शर्मा प्रभृति इस संस्था के प्रमुख लेखक थे। लगभग १०० पुस्तकें संस्था से प्रकाशित हुईं। तुलसीकृत रामायण (भाषा-टीका) तथा 'महाभारत' गद्य रूप में सर्वप्रथम इसी संस्था द्वारा प्रकाशित हुआ था। 'सिपाही विद्रोह' तथा 'पंजाब हत्याकांड' का प्रकाशन भी इस संस्था ने किया था। सन् १९४० के आस-पास इस संस्था का प्रकाशन-कार्य स्थगित हो गया। संस्था के संस्थापक बाबू मूलचन्द अग्रवाल का निधन ३० अक्टूबर, सन् १९५६ को हुआ।

❀

हिन्दी प्रकाशन जगत के स्तम्भ : सम्पादक बाबू मूलचन्द अग्रवाल

बाबू मूलचन्दजी अग्रवाल हिन्दी के उन उन्नायकों और सेवियों में थे, जिन्हें हिन्दी पत्रकारिता, हिन्दी प्रकाशन और हिन्दी जगत् का स्तम्भ कहा जा सकता है। ३० अगस्त, सन् १८९३ में आपका जन्म उत्तर प्रदेश के जालौन जनपद के अन्तर्गत कालपी में हुआ था।

मूलतः आपका कार्य-क्षेत्र कलकत्ता ही रहा। प्रारम्भ में आप एक विद्यालय के हेडमास्टर रहे, तत्पश्चात् आपने 'विश्वमित्र' दैनिक का प्रकाशन किया और उसी के साथ-साथ 'पापुलर ट्रेडिंग कं०' नाम की प्रकाशन संस्था की स्थापना भी की। इस संस्था द्वारा ऐतिहासिक, पौराणिक तथा स्त्रियोपयोगी जीवन चरित्रों का प्रकाशन भी किया।

अपनी पारिवारिक हालत के बारे में बाबू मूलचन्दजी ने अपनी आत्मकथा में एक स्थान पर लिखा है कि उनके स्वसुरजी ने खुद सारी सम्पत्ति अर्जित की थी लेकिन उसे व्यय करने की कला उनके पास एकदम न थी। बड़ी लड़की पर उनका विशेष प्रेम था। माँ के अभाव में वह उनकी यथेष्ट सेवा भी करती थी। मेरे स्वसुरजी को विवाह में आभूषणों आदि के साथ दहेज में दो हजार रुपये देने थे, लेकिन उन्होंने उन पैसों को बैंक में जमा कर दिया। इसका नतीजा यह हुआ कि विशाल कोठी में रहनेवाली उस लड़की को मछुआबाजार की एक बहुत गन्दी बस्ती के गन्दे मकान में रहने के लिये मजबूर होना पड़ा। सवेरा होते पाखाने के लिये लाइन लगाकर भोर में तीन-चार बजे से ही खड़ा हो जाना पड़ता था। चारो ओर मांस की दुकाने और उस पर से मुसलमानों के होटलों से उठती मांस की झन्नाटेदार बदबू। सोने के लिये खटमलों से पटा तख्त। यहाँ तक कि कमरों की दीवारों पर भी खटमलों की सेना दौड़ती रहती थी। रात को बेचारी पूरी नींद भी सो नहीं पाती थी। मेरे परिवार के पास इतना पैसा न था कि किराये पर दूसरा मकान लिया जाय लेकिन इसके बावजूद मछुआबाजार में अत्यधिक कष्ट को देखते हुए ५० रुपये माहवार पर एक दूसरा मकान किराये पर लिया गया। मेज, कुर्सी, आलमारी आदि किसी तरह खरीदी गयी। शहर में साथियों और रिश्तेदारों के बीच इस बात की खासी चर्चा थी कि मैं ससुराल के धन को प्राप्त करने के कारण यह सब कर रहा हूँ। लेकिन यहाँ तो इसका उल्टा था कि लक्ष्मीधीश की पुत्री को आराम से रखने के लिये घर का पैसा आर्थिक तंगी के बावजूद खर्च करना पड़ रहा था।

यहीं से सन् १९३७ में अफगानिस्तान के शाह अमानुल्ला की जीवनी प्रकाशित हुई थी। अमानुल्ला और उनकी बेगम सुरैया को उन दिनों सामाजिक क्रान्ति का पथ-दर्शक समझा जाता था। इस जीवनी को पचीसों आर्ट पेपर पर चित्रों से सुसज्जित कर प्रकाश में लाना मूलचन्दजी की अनोखी सूझ-बूझ माना गया। महाकवि निराला, इलाचन्द्र जोशी, डॉ० हेमचन्द्र जोशी, श्रीकान्तठाकुर विद्यालंकार, माता सेवक पाठक, उमादत्त शर्मा प्रभृति इस संस्था के प्रमुख लेखक थे। लगभग १०० पुस्तकें संस्था से प्रकाशित हुईं। तुलसीकृत रामायण (भाषा-टीका) तथा 'महाभारत' गद्य रूप में सर्वप्रथम इसी संस्था द्वारा प्रकाशित हुआ था। 'सिपाही विद्रोह' तथा 'पंजाब हत्याकांड' का प्रकाशन भी इस संस्था ने किया था। सन् १९४० के आस-पास इस संस्था का प्रकाशन-कार्य स्थगित हो गया। संस्था के संस्थापक बाबू मूलचन्द अग्रवाल का निधन ३० अक्टूबर, सन् १९५६ को हुआ।

हिन्दी प्रकाशन जगत के स्तम्भ : सम्पादक बाबू मूलचन्द अग्रवाल

बाबू मूलचन्दजी अग्रवाल हिन्दी के उन उन्नायकों और सेवियों में थे, जिन्हें हिन्दी पत्रकारिता, हिन्दी प्रकाशन और हिन्दी जगत् का स्तम्भ कहा जा सकता है। ३० अगस्त, सन् १८९३ में आपका जन्म उत्तर प्रदेश के जालौन जनपद के अन्तर्गत कालपी में हुआ था।

मूलतः आपका कार्य-क्षेत्र कलकत्ता ही रहा। प्रारम्भ में आप एक विद्यालय के हेडमास्टर रहे, तत्पश्चात् आपने 'विश्वमित्र' दैनिक का प्रकाशन किया और उसी के साथ-साथ 'पापुलर ट्रेडिंग कं०' नाम की प्रकाशन संस्था की स्थापना भी कीं। इस संस्था द्वारा ऐतिहासिक, पौराणिक तथा स्त्रियोपयोगी जीवन चरित्रों का प्रकाशन भी किया।

अपनी पारिवारिक हालत के बारे में बाबू मूलचन्दजी ने अपनी आत्मकथा में एक स्थान पर लिखा है कि उनके स्वसुरजी ने खुद सारी सम्पत्ति अर्जित की थी लेकिन उसे व्यय करने की कला उनके पास एकदम न थी। बड़ी लड़की पर उनका विशेष प्रेम था। माँ के अभाव में वह उनकी यथेष्ट सेवा भी करती थी। मेरे स्वसुरजी को विवाह में आभूषणों आदि के साथ दहेज में दो हजार रुपये देने थे, लेकिन उन्होंने उन पैसों को बैंक में जमा कर दिया। इसका नतीजा यह हुआ कि विशाल कोठी में रहनेवाली उस लड़की को मछुआबाजार की एक बहुत गन्दी बस्ती के गन्दे मकान में रहने के लिये मजबूर होना पड़ा। सबेरा होते पाखाने के लिये लाइन लगाकर भोर में तीन-चार बजे से ही खड़ा हो जाना पड़ता था। चारो ओर मांस की दुकाने और उस पर से मुसलमानों के होटलों से उठती मांस की झन्नाटेदार बदबू। सोने के लिये खटमलों से पटा तख्त। यहाँ तक कि कमरों की दीवारों पर भी खटमलों की सेना दौड़ती रहती थी। रात को बेचारी पूरी नींद भी सो नहीं पाती थी। मेरे परिवार के पास इतना पैसा न था कि किराये पर दूसरा मकान लिया जाय लेकिन इसके बावजूद मछुआबाजार में अत्यधिक कष्ट को देखते हुए ५० रुपये माहवार पर एक दूसरा मकान किराये पर लिया गया। मेज, कुर्सी, आलमारी आदि किसी तरह खरीदी गयी। शहर में साथियों और रिश्तेदारों के बीच इस बात की खासी चर्चा थी कि मैं ससुराल के धन को प्राप्त करने के कारण यह सब कर रहा हूँ। लेकिन यहाँ तो इसका उल्टा था कि लक्ष्मीधीश की पुत्री को आराम से रखने के लिये घर का पैसा आर्थिक तंगी के बावजूद खर्च करना पड़ रहा था।

यहीं से सन् १९३७ में अफगानिस्तान के शाह अमानुल्ला की जीवनी प्रकाशित हुई थी। अमानुल्ला और उनकी बेगम सुरैया को उन दिनों सामाजिक क्रान्ति का पथ-दर्शक समझा जाता था। इस जीवनी को पचीसों आर्ट पेपर पर चित्रों से सुसज्जित कर प्रकाश में लाना मूलचन्दजी की अनोखी सूझ-बूझ माना गया। महाकवि निराला, इलाचन्द्र जोशी, डॉ० हेमचन्द्र जोशी, श्रीकान्तठाकुर विद्यालंकार, माता सेवक पाठक, उमादत्त शर्मा प्रभृति इस संस्था के प्रमुख लेखक थे। लगभग १०० पुस्तकें संस्था से प्रकाशित हुईं। तुलसीकृत रामायण (भाषा-टीका) तथा 'महाभारत' गद्य रूप में सर्वप्रथम इसी संस्था द्वारा प्रकाशित हुआ था। 'सिपाही विद्रोह' तथा 'पंजाब हत्याकांड' का प्रकाशन भी इस संस्था ने किया था। सन् १९४० के आस-पास इस संस्था का प्रकाशन-कार्य स्थगित हो गया। संस्था के संस्थापक बाबू मूलचन्द अग्रवाल का निधन ३० अक्टूबर, सन् १९५६ को हुआ।

❀

प्रकाशन जगत के मूक साधक : पत्रकार पं० विष्णुदत्त शुक्ल

स्व० पं० विष्णुदत्त शुक्ल का जन्म मार्ग शीर्ष ३ सम्वत् १९५३ में हुआ था। विष्णु प्रेस के नाम से आपकी संस्था कलकत्ता के बड़ाबाजार स्थित नाई टोला मुहल्ले में थी। उन्होंने इसी प्रेस के द्वारा 'पत्रकार कला' नामक पुस्तक प्रकाशित की थी। आपकी संस्था से लगभग १०-१२ पुस्तकें निकलीं, जिनमें पत्रकार कला और सभा-विधान नामक पुस्तकें प्रमुख थीं। सन् १९६५ में आपका निधन कानपुर में हो गया।

आपकी शिक्षा-दीक्षा इण्टरमीडिएट तक हुई थी। सन् १९२० में हिन्दू कालेज, काशी से आचार्य जे० बी० कृपलानी के नेतृत्व में असहयोग आन्दोलन में आपने कालेज छोड़ दिया। जब बाबू शिवप्रसादजी गुप्त द्वारा काशी विद्यापीठ स्थापित हुआ तो उसमें कुछ दिनों तक पढ़ते और पढ़ाते रहे।

आपने 'युगान्तर' साप्ताहिक गोरखपुर, 'विक्रम' दैनिक कानपुर, 'प्रताप' साप्ताहिक कानपुर में सहायक सम्पादक पद पर भी काम किया। बाद में कलकत्ता में राष्ट्रभाषा सम्मेलन, जिसके संचालक महात्मा गाँधी और सभापति नेताजी सुभाष बोस थे, के मंत्रित्व का भार सम्भाला। सन् १९३७ में बर्मा, चीन और जापान की यात्रा की। सन् १९४८ में 'सहयोगी' के नाम से अपना साप्ताहिक पत्र निकाला।

आपने कुल २५ पुस्तकें लिखीं, जिनमें १४ मौलिक और ९ अनूदित तथा दो सम्पादित हैं। मौलिक पुस्तकों में—पत्रकार कला; सभा-विधान तथा संस्कृत की सौलोचनीयम् और गंगा सागरीयम् की चर्चा विशेष रूप से हुई । सम्पादित पुस्तकों में काकोरी के शहीद को लोगों ने विशेष रूप से पसन्द किया।

'सौलोचनीयम्' उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा, पुरस्कृत हुई और 'गंगासागरीयम्, सागर विश्वविद्यालय में एम० ए० के पाठ्यक्रम में सम्मिलित की गई।

आपको हिन्दी, अँग्रेजी, बंगला, गुजराती, मराठी, संस्कृत इन ६ भाषाओं का अच्छा ज्ञान था।

चिम्मनलाल वैश्य का लेखन और प्रकाशन

शाहजहाँपुर जैसे जनपद के एक जागरूक कस्बे तिलहर में लाला चिम्मनलाल वैश्य ने लगभग ६० ग्रन्थ रचकर हिन्दी की अभूतपूर्व सेवा की। वैश्यजी ने कासगंज में भी कुछ दिन निवास करके आर्य समाज को जागृत किया।

चिम्मनलालजी की जीवन चरित्र लिखने में विशेष रुचि थी। इनके रचे हुए जीवन चरित्रों में दशरथ, राम लक्ष्मण, भरत, युधिष्ठिर, अर्जुन, भीमसेन, आचार्य विदुर, दुर्योधन, धृतराष्ट्र, गुरुदत्त, पूरन भक्त और महारानी मदालसा प्रसिद्ध हैं। इनका "सरस्वतीचन्द्र जीवन" ग्रन्थ सबसे प्रसिद्ध और प्रशंसनीय है। इस ग्रन्थ की प्रशंसा में "सरस्वती" के सम्पादक पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी ने लिखा था—

"स्वामी दयानन्द सरस्वती के जितने जीवन चरित्र प्रकाशित हो चुके हैं, उनमें लेखरामजी का उर्दू में लिखा हुआ जीवन चरित्र सर्वश्रेष्ठ है। इसी के आधार पर सरस्वतीचन्द्र की जीवनी लिखी गयी है। लेखरामजी ने पुस्तक में प्राय: सारी मुख्य-मुख्य घटनाओं को उद्धृत करके इस पुस्तक की रचना की है। इसके सिवाय मास्टर आत्मारामजी तथा लाला राधाकृष्णजी के लेखों से भी आपने सहायता ली है। पुस्तक में स्वामीजी के साधारण चरित्र के अतिरिक्त उनके शास्त्रार्थ, धर्मोपदेश और ग्रन्थ निर्माण आदि की भी बातें हैं। पुस्तक कोई ४०० पृष्ठों में समाप्त हुई है। टाइप अच्छा, कागज मोटा है। स्वामी जी, पं० लेखरामजी और पं० गुरुदत्तजी विद्यार्थी का हाफटोन कागज पर चित्र भी पुस्तक में छपा हैं। इस पर भी इतनी बड़ी पुस्तक का मूल्य सिर्फ एक रुपया दो आना है। महात्मा लोग चाहे जिस देश, जाति, धर्म और सम्प्रदाय के हों, उनका चरित्र पढ़ने से कुछ न कुछ लाभ अवश्य होता है। जो ऐसा समझते हैं, उन्हें स्वामीजी का चरित्र पढ़ना और अपने संग्रह में रखना चाहिए।"

वैश्यजी की "नारायणी शिक्षा' के चौदह से अधिक संस्करण हुए। १६०० पृष्ठों की इस पुस्तक में ३० अध्याय हैं, जिसमें स्त्रियों को घर-गृहस्थी की सभी उपयोगी बातें समझायी गई हैं। सरस्वतीचन्द्र जीवनी की भूमिका में वैश्यजी ने लिखा है—

"प्रिय सज्जन पुरुषों! मेरी ऐसी बुद्धि, विद्या और ब्रह्मचर्य कहाँ? जो विद्वान, योगीराज दिग्विजयी महर्षि श्री १०८ स्वामी दयानन्द सरस्वती का जीवन-चरित्र लिख सकता, परन्तु कई वर्षों से मेरा चित्त उपरोक्त जीवन चरित्र को लिखने में लगा हुआ था, वह आज परमेश्वर की दया और कई एक सज्जन महाशयों की कृपादृष्टि से मनोरथ पूर्ण

हो गया, जिसको लेकर मैं आपके समीप आया हूँ। स्वीकार कीजिये और जो कुछ भूलचूक हो मुझे अल्पबुद्धि समझकर क्षमा कीजिये।"

इस जीवन चरित्र की रचना में लेखक को सबसे बड़ा सहारा लेखरामजी आर्य मुसाफिर की अप्रकाशित कृति से प्राप्त हुआ। यह कृति उर्दू की थी, जिसका अनुवाद करने में 'बिसौली' के बाबू तोताराम मुख्तार का सहयोग विशेष रूप से रहा।

वैश्यजी का अपना प्रकाशन भी था। इनकी नारायणी शिक्षा, पुराण तत्व प्रकाश और प्रेम धारा आदि कई पुस्तकें लोकप्रिय हैं। वैश्यजी की पुत्री प्रियम्वदा देवी भी अच्छी लेखिका थीं। इनके ग्रन्थ—"आनन्दमयी रात्रि का स्वप्न", "धर्मात्मा चाची", "अभागा भतीजा" एवं "कलियुगी परिवार" प्रकाशित होकर विद्वानों द्वारा प्रशंसित भी हुए। इनमें पहली पुस्तक उपन्यास है जिसमें, मूर्ख पत्नियों के बहकाने से पतियों का अपने भाइयों से अलग होना, चरित्रहीन होकर कष्ट भोगना, ससुराल में अपमान सहना तथा अन्त में मेल-मिलाप से लाभ आदि की अनेक घटनाएँ लिखी गई हैं। दूसरी पुस्तक में मरणोन्मुख चाची के मुख से कथाओं के रूप में कई गृहस्थोपयोगी उपदेश लिखे गए हैं। तीसरी पुस्तक में स्त्री शिक्षा सम्बन्धी अनेक विचार, स्वप्न के रूप में प्रकट किए गए हैं। चारों ही पुस्तकें नारी-जागृति के लिए रची गई थीं।

चिम्मन लालजी ने आर्य समाज के माध्यम से हिन्दी का भण्डार समृद्ध किया। महापुरुषों के जीवन परिचय और स्त्रियों के सुधार के लिए उपदेशात्मक पुस्तकें लिखकर वैश्यजी ने हिन्दी की सेवा की। पुस्तकों का लेखन और प्रकाशन उनका मिशन था, व्यवसाय नहीं।

(साभार संकलित)

राष्ट्र की आत्मा थे : बालकराम नागर

बालक राष्ट्र की आत्मा है, उनके लिए साहित्य सर्जना राष्ट्रीय आत्मा को संस्कारित करने का पुनीत प्रयास है। इस प्रयास के प्रति समर्पित नागरजी का जीवन हमारे लिए प्रणम्य है। उनका कर्तृत्व और व्यक्तित्व राष्ट्र की भावी पीढ़ी की चिन्तना के परिष्कार के लिए संकल्पबद्ध है। वह उन भावी चलते-फिरते सपनों में रंग और रेखाएँ भरते रहे हैं जो कल यथार्थ होकर देश के एक योग्य नागरिक बनेंगे। उनका यह कार्य स्तुत्य है।

हिन्दी की विचित्र स्थिति है। हिन्दी का बाल साहित्य का लेखक उस सम्मानजनक दृष्टि से नहीं देखा जाता, जिस सम्मानजनक दृष्टि से बंगला या किसी अन्य भाषा का लेखक देखा जाता है। बंगला का कोई भी लेखक अपने कर्त्तव्य के शीर्ष बिन्दु पर पहुँचा हुआ तबतक नहीं माना जाता जबतक वह बाल साहित्य नहीं लिखता। यही कारण है कि बंगला के बड़े से बड़े लेखक ने बच्चों लिए कुछ न कुछ अवश्य लिखा है। इस क्षेत्र में रविबाबू का योगदान भी कम महत्व का नहीं है। उनका तो कहना था कि प्रत्येक बालक यह सन्देश लेकर संसार में आता है कि ईश्वर अभी मनुष्यों से निराश नहीं हुआ है।

सचमुच बच्चे हमारी आशा हैं, आकांक्षा हैं, हमारे भविष्य हैं। वर्तमान का भोग करते हुए भविष्य के निर्माण की योजना ही दूरदर्शिता है। इस दूरदर्शिता के सम्बन्ध में अभी तक हम चूकते गये। यदि ऐसी गलती न होती तो स्वतन्त्रता के बाद पैदा हुआ बच्चा आज ५० वर्ष का एक प्रौढ़ और चरित्रवान नागरिक होता। उसके पास जीवन मूल्यों का अकाल न होता, वह सही माने में हमारी राष्ट्रीय अस्मिता की पहचान बनता। पर स्थिति आज इसके विपरीत है।

वस्तुत: हम बालक के लिए लिखकर, उसके लिए तो लिखते ही हैं जो वह है, साथ ही उसके लिए भी लिखते हैं जो उसे होना चाहिए। इस दृष्टि से बाल साहित्य के रचनाकार की सारी सर्जना राष्ट्र-निर्माण की सर्जना है। इसी से विदेश में बाल-साहित्य के रचनाकारों का सम्मान सामान्य साहित्यकारों से अधिक होता है।

चलते को सब रास्ता देते हैं, पर घुटनों के बल रेंगनेवालों को खड़ा करना, उनके पगों में गति डालना और फिर रास्ता देना, यह बाल साहित्य के रचयिता ही कर सकते हैं।

कितनी शुभ घड़ी और कितना शुभ मुहूर्त रहा होगा। इनके पूर्वजों की कितनी दूरदर्शिता थी कि नागरजी का नाम बालकराम रखकर इनके पूरे व्यक्तित्व और कर्तृत्व को बालक से जोड़ दिया गया। इनकी सम्पूर्ण रचनाधर्मिता बालक के लिए अर्पित हो गयी।

❀

हिन्दी और हिन्दुत्व के प्रबल समर्थक : विशनचन्द्रजी सेठ

हमारे देश में ऐसे बहुत से महान पुरुष हुए हैं, जिनके पवित्र आचरण और कल्याणकारी कार्यों के लिए हम उनका सदा सर्वदा स्मरण करते रहते हैं। अपने बहुआयामी जीवन दर्शन तथा राष्ट्र के अभ्युत्थान के लिए उनके क्रियाकलापों के कारण उनके चिरस्मरण समाज के हृदय पटल पर अंकित हो जाते हैं। ऐसे ही महापुरुषों में पूज्यचरण विशनचन्द्रजी सेठ का नाम हमारे सामने उभरता है। वे समाज के समग्र विकास का स्वप्न देखते थे और उसके क्रियान्वयन के लिए उन्होंने अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया था। वे हमारे लिए कुछ मार्गदर्शक सूत्र छोड़ गये हैं, जो हमारे प्रेरणास्रोत बनेंगे।

समाजसेवी, लेखक, चिंतक, सांसद श्री विशनचन्द्रजी सेठ भारत माँ के उन सपूतों में थे जिन्होंने विश्वासों, सिद्धान्तों के अनुरूप राष्ट्र और समाज के निर्माण के लिए कुछ विशेष क्षेत्रों को चुना। अपनी असाधारण प्रज्ञा साधना और कर्मठता के बल पर उन क्षेत्रों के समग्र विकास के लिए अनुपम कार्य किया। उन्होंने जिस कार्य में हाथ लगाया उसे शिखर तक पहुँचाया। अपने प्रयासों में अपूर्व सफलता प्राप्त की। वे हिन्दू समाज के साथ-साथ खत्री जाति के प्रज्ञा पुरुष कहलाये। देश जब अपनी अभ्युन्नति के लिए पराधीनता से संघर्ष कर रहा था, उन दिनों वीर सावरंकर के व्यक्तित्व ने सेठजी को हिन्दू धर्म की ध्वजा उठाने की प्रेरणा दी।

मुझे स्मरण है कि वे हिन्दू महासभा के महामंत्री पं० अंजनीनंदन मिश्र के आमंत्रण पर हिन्दू सभा के कार्यक्रमों की विशद् व्याख्या करने के लिए १९७५ में काशी आये हुए थे। मैं भी उस सभा में एक वक्ता था। मेरा उनका पूर्व परिचय नहीं था। उन्होंने मेरी वक्तृता सुनने के बाद तत्काल कहा कि आप अखिल भारतीय खत्री महासभा का अध्यक्ष पद सम्हालिये, जो ११ वर्षों से रिक्त है। उनके विलक्षण व्यक्तित्व और स्वप्नदर्शी वाणी ने मुझपर ऐसा सम्मोहन किया कि मैंने मन ही मन उन्हें अपना अग्रज स्वीकार कर आज्ञापालन की दृष्टि से स्वीकृति दे दी।

सेठजी गाँधीजी से बहुत प्रभावित थे। केवल मतभेद हिन्दुत्व के प्रश्न पर था। सेठजी ने अपने ढंग से आजादी की लड़ाई भी लड़ी। संसद में नेहरूजी के साथ लम्बा पत्र-व्यवहार भी किया। लालबहादुरजी के कहने पर विदेश यात्राएँ भी कीं और एक लोकप्रिय सांसद के रूप में राजनीति के क्षितिज पर उभरे।

व्यक्तित्व की पहचान उसके विचार-दर्शन से होती है। सेठजी के पत्रों का गुच्छा

मैंने सुरक्षित रखा हुआ है। उनमें अंकित उनका आचरण, व्यवहार और चरित्र दर्पण की तरह चमकता हुआ दिखाई देता है। मूर्तरूप में हिन्दुत्व का प्रचार, समाज सेवा के लिए उनके किये कार्य, सांस्कृतिक और सामाजिक संस्थाओं की स्थापना में उनका योगदान युग-युग तक स्मरण किया जायेगा। आज तो भारत के माननीय उच्चतम न्यायालय ने भी दिवंगत सेठजी की हिन्दू सम्बन्धी व्याख्या को स्वीकार कर लिया है।

सेठजी हिन्दी और हिन्दुत्व के प्रबल समर्थक थे। राजनेताओं, समाज सुधारकों और स्वार्थी उद्योगपतियों के विरुद्ध कई बार उन्होंने अपने असंतोष के साथ सटीक टिप्पणी की है। रायबरेली में इंदिरा गाँधी के विरुद्ध सांसद का चुनाव लड़ना, उन सिद्धान्तों का प्रतिपादन था जिनके लिए उन्होंने जीवन भर संघर्ष किया। कट्टर मुस्लिमवाद को सेठजी कभी पसन्द नहीं करते थे। सामान्य मुस्लिम जनों के प्रति उनके मन में बड़ा आदर भाव था। वे चाहते थे कि मुसलमान भाई भारतवासी बनकर रहें।

कांग्रेसी नेताओं की तुष्टिकरण नीति उन्हें अप्रिय लगती थी। इंदिराजी का विरोध भी इन्हीं सिद्धान्तों के कारण था। राष्ट्र निर्माता के रूप में हिन्दी सेवा, नारी शिक्षा के प्रति रुझान उनके द्वारा खत्री सभाओं के मंच से किये कार्यों से प्रकट होती है।

राजर्षि टण्डनजी के साथ उनके पत्र व्यवहार सेठजी की विचारधारा को स्पष्ट कर देते हैं। सत्य कहने में वे किसी को नहीं छोड़ते थे, चाहे उनके परिवार का कोई जन ही क्यों न हो।

सेठजी विधवा विवाह के बड़े समर्थक थे। समाज में व्याप्त दहेज प्रथा के कट्टर विरोधियों के रूप में उनका नाम हमारे समक्ष है।

शाहजहाँपुर की शिक्षा संस्थाएँ उनके और उनके परिवार द्वारा किये आदर्श कार्यों के साक्षी हैं।

राष्ट्रीय दृष्टि और सामाजिक दृष्टि से बढ़कर उनके पास एक और चीज थी, जिसे हम जीवन-दृष्टि कह सकते हैं। यह वही दृष्टि है जिसकी प्रेरणा पाकर वे सामान्य से सामान्य और बड़े से बड़े प्रत्येक व्यक्ति को नियमित पत्रोत्तर देते थे।

उनके मुखमण्डल पर सात्विकता विराजती थी, जो मुझे बहुत ही अच्छी लगती थी। वन्देमातरम् के उच्चारण से उन्हें भारतमाता का वह सांस्कृतिक रूप दिखाई देता था जिसमें राणाप्रताप, शिवाजी, तात्याटोपे, झाँसी की रानी आदि थे।

सेठजी की प्रेरणा से खत्री समाज ने अपने देवपुरुष भगवान राम का स्मरण अपनी सभाओं में करना प्रारम्भ किया। प्रभु की कृपा से वृन्दावन प्रवासकाल में उन्हें बहुत बड़ा सत्संग परिवार मिला। कहा करते थे कि मेरे कोई पूर्व पुण्य का लाभ मिल रहा है कि आज घर बैठे मुझे साधु-संतों के दर्शन हो जाते हैं।

ज्योति विहग उड़ गया है। परमानन्द में लीन हो गया है, परन्तु हमारे नेत्र उसके ओझल होने के सत्य को आज भी स्वीकार नहीं कर पा रहे हैं।

❀

हिन्दी और हिन्दुत्व के प्रबल समर्थक : विशनचन्द्रजी सेठ

हमारे देश में ऐसे बहुत से महान पुरुष हुए हैं, जिनके पवित्र आचरण और कल्याणकारी कार्यों के लिए हम उनका सदा सर्वदा स्मरण करते रहते हैं। अपने बहुआयामी जीवन दर्शन तथा राष्ट्र के अभ्युत्थान के लिए उनके क्रियाकलापों के कारण उनके चिरस्मरण समाज के हृदय पटल पर अंकित हो जाते हैं। ऐसे ही महापुरुषों में पूज्यचरण विशनचन्द्रजी सेठ का नाम हमारे सामने उभरता है। वे समाज के समग्र विकास का स्वप्न देखते थे और उसके क्रियान्वयन के लिए उन्होंने अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया था। वे हमारे लिए कुछ मार्गदर्शक सूत्र छोड़ गये हैं, जो हमारे प्रेरणास्रोत बनेंगे।

समाजसेवी, लेखक, चिंतक, सांसद श्री विशनचन्द्रजी सेठ भारत माँ के उन सपूतों में थे जिन्होंने विश्वासों, सिद्धान्तों के अनुरूप राष्ट्र और समाज के निर्माण के लिए कुछ विशेष क्षेत्रों को चुना। अपनी असाधारण प्रज्ञा साधना और कर्मठता के बल पर उन क्षेत्रों के समग्र विकास के लिए अनुपम कार्य किया। उन्होंने जिस कार्य में हाथ लगाया उसे शिखर तक पहुँचाया। अपने प्रयासों में अपूर्व सफलता प्राप्त की। वे हिन्दू समाज के साथ-साथ खत्री जाति के प्रज्ञा पुरुष कहलाये। देश जब अपनी अभ्युन्नति के लिए पराधीनता से संघर्ष कर रहा था, उन दिनों वीर सावरकर के व्यक्तित्व ने सेठजी को हिन्दू धर्म की ध्वजा उठाने की प्रेरणा दी।

मुझे स्मरण है कि वे हिन्दू महासभा के महामंत्री पं० अंजनीनंदन मिश्र के आमंत्रण पर हिन्दू सभा के कार्यक्रमों की विशद् व्याख्या करने के लिए १९७५ में काशी आये हुए थे। मैं भी उस सभा में एक वक्ता था। मेरा उनका पूर्व परिचय नहीं था। उन्होंने मेरी वक्तृता सुनने के बाद तत्काल कहा कि आप अखिल भारतीय खत्री महासभा का अध्यक्ष पद सम्हालिये, जो ११ वर्षों से रिक्त है। उनके विलक्षण व्यक्तित्व और स्वप्नदर्शी वाणी ने मुझपर ऐसा सम्मोहन किया कि मैंने मन ही मन उन्हें अपना अग्रज स्वीकार कर आज्ञापालन की दृष्टि से स्वीकृति दे दी।

सेठजी गाँधीजी से बहुत प्रभावित थे। केवल मतभेद हिन्दुत्व के प्रश्न पर था। सेठजी ने अपने ढंग से आजादी की लड़ाई भी लड़ी। संसद में नेहरूजी के साथ लम्बा पत्र-व्यवहार भी किया। लालबहादुरजी के कहने पर विदेश यात्राएँ भी कीं और एक लोकप्रिय सांसद के रूप में राजनीति के क्षितिज पर उभरे।

व्यक्तित्व की पहचान उसके विचार-दर्शन से होती है। सेठजी के पत्रों का गुच्छा

मैंने सुरक्षित रखा हुआ है। उनमें अंकित उनका आचरण, व्यवहार और चरित्र दर्पण की तरह चमकता हुआ दिखाई देता है। मूर्तरूप में हिन्दुत्व का प्रचार, समाज सेवा के लिए उनके किये कार्य, सांस्कृतिक और सामाजिक संस्थाओं की स्थापना में उनका योगदान युग-युग तक स्मरण किया जायेगा। आज तो भारत के माननीय उच्चतम न्यायालय ने भी दिवंगत सेठजी की हिन्दू सम्बन्धी व्याख्या को स्वीकार कर लिया है।

सेठजी हिन्दी और हिन्दुत्व के प्रबल समर्थक थे। राजनेताओं, समाज सुधारकों और स्वार्थी उद्योगपतियों के विरुद्ध कई बार उन्होंने अपने असंतोष के साथ सटीक टिप्पणी की है। रायबरेली में इंदिरा गाँधी के विरुद्ध सांसद का चुनाव लड़ना, उन सिद्धान्तों का प्रतिपादन था जिनके लिए उन्होंने जीवन भर संघर्ष किया। कट्टर मुस्लिमवाद को सेठजी कभी पसन्द नहीं करते थे। सामान्य मुस्लिम जनों के प्रति उनके मन में बड़ा आदर भाव था। वे चाहते थे कि मुसलमान भाई भारतवासी बनकर रहें।

कांग्रेसी नेताओं की तुष्टिकरण नीति उन्हें अप्रिय लगती थी। इंदिराजी का विरोध भी इन्हीं सिद्धान्तों के कारण था। राष्ट्र निर्माता के रूप में हिन्दी सेवा, नारी शिक्षा के प्रति रुझान उनके द्वारा खत्री सभाओं के मंच से किये कार्यों से प्रकट होती है।

राजर्षि टण्डनजी के साथ उनके पत्र व्यवहार सेठजी की विचारधारा को स्पष्ट कर देते हैं। सत्य कहने में वे किसी को नहीं छोड़ते थे, चाहे उनके परिवार का कोई जन ही क्यों न हो।

सेठजी विधवा विवाह के बड़े समर्थक थे। समाज में व्याप्त दहेज प्रथा के कट्टर विरोधियों के रूप में उनका नाम हमारे समक्ष है।

शाहजहाँपुर की शिक्षा संस्थाएँ उनके और उनके परिवार द्वारा किये आदर्श कार्यों के साक्षी हैं।

राष्ट्रीय दृष्टि और सामाजिक दृष्टि से बढ़कर उनके पास एक और चीज थी, जिसे हम जीवन-दृष्टि कह सकते हैं। यह वही दृष्टि है जिसकी प्रेरणा पाकर वे सामान्य से सामान्य और बड़े से बड़े प्रत्येक व्यक्ति को नियमित पत्रोत्तर देते थे।

उनके मुखमण्डल पर सात्विकता विराजती थी, जो मुझे बहुत ही अच्छी लगती थी। वन्देमातरम् के उच्चारण से उन्हें भारतमाता का वह सांस्कृतिक रूप दिखाई देता था जिसमें राणाप्रताप, शिवाजी, तात्याटोपे, झाँसी की रानी आदि थे।

सेठजी की प्रेरणा से खत्री समाज ने अपने देवपुरुष भगवान राम का स्मरण अपनी सभाओं में करना प्रारम्भ किया। प्रभु की कृपा से वृन्दावन प्रवासकाल में उन्हें बहुत बड़ा सत्संग परिवार मिला। कहा करते थे कि मेरे कोई पूर्व पुण्य का लाभ मिल रहा है कि आज घर बैठे मुझे साधु-संतों के दर्शन हो जाते हैं।

ज्योति विहग उड़ गया है। परमानन्द में लीन हो गया है, परन्तु हमारे नेत्र उसके ओझल होने के सत्य को आज भी स्वीकार नहीं कर पा रहे हैं।

❀

बहुमुखी प्रतिभा के धनी : गुलाबरत्न वाजपेयी

हिन्दी के अनन्य सेवक जिन्होंने कलकत्ता को अपना कार्यक्षेत्र बनाया, उनमें स्व० गुलाबरत्न वाजपेयी 'गुलाब' का नाम सदा सुवासित रहेगा। बचपन से ही अक्खड़ स्वभाव के गुलाबजी का जन्म सुमेरपुर, उन्नाव में सम्वत् १९५८ में चैत्र कृष्ण नवमी के दिन हुआ था। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा वाराणसी में हुई थी। जब ये चौथी कक्षा में थे, तब उन्हें पाठशाला के एक मास्टर साहब 'नथुनी' नाम से पुकारते थे। 'भारत' के तत्कालीन सम्पादक राधाकुमुद झिंगरन की प्रेरणा से कारमाइकेल लाइब्रेरी में पुस्तकों का अध्ययन करने लगे। १२ वर्ष की उम्र में ही झिंगरन जी की प्रेरणा से इन्होंने एक कविता लिखी जो 'प्रताप' के मुख पृष्ठ पर छपी। इन्हें गणेशशंकर विद्यार्थी द्वारा भी प्रेरणा मिली। पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र जो इनके भानजे थे, उनको साहित्यिक प्रेरणा इन्हीं से प्राप्त हुई थी। इन्होंने कई ग्रन्थ प्रणीत किये तथा कई पत्रों का सम्पादन भी किया है, जिंसमें 'सरस्वती', कानपुर का 'प्रताप', लखनऊ का 'सुधा' तथा 'माधुरी', उरई का 'उत्साह' तथा खण्डवा से प्रकाशित 'कर्मवीर' प्रमुख हैं।

मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी से इन्हें कविता क्षेत्र में प्रेरणा मिली और निरालाजी के सुप्रसिद्ध 'मतवाला' में भी इनकी कवितायें छपीं। राष्ट्रीय धारा के कवि माधव शुक्ल इन्हें पुत्रवत मानते थे। दिनकरजी से भी इन्हें प्रेरणा एवं प्रोत्साहन मिला करता था।

इन्हें पत्रिकाओं में लिखने के एवज में सरस्वती, सुधा, माधुरी से ५ से १५ रुपये मासिक तक पारिश्रमिक मिलता था।

इन्होंने १० उपन्यास भी लिखे। 'हलाहल' उपन्यास के लिए इन्हें कुल सौ रुपये पारिश्रमिक मिले। इसी प्रकार चित्रकाव्य कविता संग्रह के लिए भी सौ रुपये पारिश्रमिक मिले।

बाद में ये स्वयं ही प्रकाशक बन गये और अपनी रचनायें स्वयं ही प्रकाशित करने लगे। नेपाली भाषा में भी इनका एक उपन्यास 'काँड़ा' (काँटा) नाम से प्रकाशित हुआ है। सन् १९३० से १९४५ तक इन्होंने नाटक कम्पनी में भी काम किया और स्टेज के लिए नाटक लिखने लगे।

बाद में ये कलकत्ता के 'भारतलक्ष्मी स्टूडियो' में काम करने लगे और इस प्रकार फिल्म लाइन में भी इन्होंने प्रवेश किया, जो उन दिनों प्रतिष्ठा की बात थी। कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक एवं मनोविज्ञान की पच्चीसों पुस्तकों के प्रणेता पं० गुलाब रत्न वाजपेयी का अन्तिम जीवन अत्यन्त संघर्ष में गुजरा, जैसा कि प्रायः हिन्दी के साहित्यकारों का होता है।

सन् १९६४ में मुझे लिखे गये इनके एक पत्र से उनकी आर्थिक अवस्था का अन्दाजा लगाया जा सकता है:

'लड़का अभी अस्पताल में है... खर्च बहुत ज्यादा है... मैं परेशानी का जीवन व्यतीत कर रहा हूँ।'

सन् १९६९ में काँटों के बीच गुलाब की ये पँखुड़ियाँ बिखर जरूर गयीं, मगर उसकी सुरभि अभी भी शेष है।

बहुमुखी प्रतिभा के धनी : गुलाबरत्न वाजपेयी

हिन्दी के अनन्य सेवक जिन्होंने कलकत्ता को अपना कार्यक्षेत्र बनाया, उनमें स्व० गुलाबरत्न वाजपेयी 'गुलाब' का नाम सदा सुवासित रहेगा। बचपन से ही अक्खड़ स्वभाव के गुलाबजी का जन्म सुमेरपुर, उन्नाव में सम्वत् १९५८ में चैत्र कृष्ण नवमी के दिन हुआ था। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा वाराणसी में हुई थी। जब ये चौथी कक्षा में थे, तब उन्हें पाठशाला के एक मास्टर साहब 'नथुनी' नाम से पुकारते थे। 'भारत' के तत्कालीन सम्पादक राधाकुमुद झिंगरन की प्रेरणा से कारमाइकेल लाइब्रेरी में पुस्तकों का अध्ययन करने लगे। १२ वर्ष की उम्र में ही झिंगरन जी की प्रेरणा से इन्होंने एक कविता लिखी जो 'प्रताप' के मुख पृष्ठ पर छपी। इन्हें गणेशशंकर विद्यार्थी द्वारा भी प्रेरणा मिली। पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र जो इनके भानजे थे, उनको साहित्यिक प्रेरणा इन्हीं से प्राप्त हुई थी। इन्होंने कई ग्रन्थ प्रणीत किये तथा कई पत्रों का सम्पादन भी किया है, जिसमें 'सरस्वती', कानपुर का 'प्रताप', लखनऊ का 'सुधा' तथा 'माधुरी', उरई का 'उत्साह' तथा खण्डवा से प्रकाशित 'कर्मवीर' प्रमुख हैं।

मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी से इन्हें कविता क्षेत्र में प्रेरणा मिली और निरालाजी के सुप्रसिद्ध 'मतवाला' में भी इनकी कवितायें छपीं। राष्ट्रीय धारा के कवि माधव शुक्ल इन्हें पुत्रवत मानते थे। दिनकरजी से भी इन्हें प्रेरणा एवं प्रोत्साहन मिला करता था।

इन्हें पत्रिकाओं में लिखने के एवज में सरस्वती, सुधा, माधुरी से ५ से १५ रुपये मासिक तक पारिश्रमिक मिलता था।

इन्होंने १० उपन्यास भी लिखे। 'हलाहल' उपन्यास के लिए इन्हें कुल सौ रुपये पारिश्रमिक मिले। इसी प्रकार चित्रकाव्य कविता संग्रह के लिए भी सौ रुपये पारिश्रमिक मिले।

बाद में ये स्वयं ही प्रकाशक बन गये और अपनी रचनायें स्वयं ही प्रकाशित करने लगे। नेपाली भाषा में भी इनका एक उपन्यास 'काँड़ा' (काँटा) नाम से प्रकाशित हुआ है। सन् १९३० से १९४५ तक इन्होंने नाटक कम्पनी में भी काम किया और स्टेज के लिए नाटक लिखने लगे।

बाद में ये कलकत्ता के 'भारतलक्ष्मी स्टूडियो' में काम करने लगे और इस प्रकार फिल्म लाइन में भी इन्होंने प्रवेश किया, जो उन दिनों प्रतिष्ठा की बात थी। कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक एवं मनोविज्ञान की पच्चीसों पुस्तकों के प्रणेता पं० गुलाब रत्न वाजपेयी का अन्तिम जीवन अत्यन्त संघर्ष में गुजरा, जैसा कि प्राय: हिन्दी के साहित्यकारों का होता है।

सन् १९६४ में मुझे लिखे गये इनके एक पत्र से उनकी आर्थिक अवस्था का अन्दाजा लगाया जा सकता है:

'लड़का अभी अस्पताल में है... खर्च बहुत ज्यादा है... मैं परेशानी का जीवन व्यतीत कर रहा हूँ।'

सन् १९६९ में काँटों के बीच गुलाब की ये पँखुड़ियाँ बिखर जरूर गयीं, मगर उसकी सुरभि अभी भी शेष है।

राजेन्द्रशंकर भट्ट का संक्षिप्त परिचय

लेखक के बहुविध व्यक्तित्व की इससे प्रतीति होती है कि वह एक साथ अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ और आथर्स गिल्ड ऑफ इण्डिया, दोनों कार्य समितियों के सदस्य थे। साथ ही साथ, संघ के मुख पत्र 'हिन्दी प्रकाशक' के सम्पादक भी रह चुके हैं। लेखक की स्फटिक संस्थान से प्रकाशित पहली पुस्तक 'मेवाड़ के महाराणा और शहंशाह अकबर' ने लेखन, मुद्रण और प्रकाशन में नया कीर्तिमान स्थापित किया था। उत्तर प्रदेश शासन से उन्हें विशेष पुरस्कार प्राप्त हुआ था। जिस माह यह पुस्तक प्रकाशित हुई उसी माह राजेन्द्रशंकर भट्ट राजस्थान सरकार की सेवा में तीस वर्ष कार्यरत रहकर सेवा निवृत्त हुए थे, जिसमें पच्चीस वर्ष तक वे जन सम्पर्क विभाग के निदेशक रहे। आज देश में कोई दूसरा व्यक्ति नहीं है जिसने इतने वर्ष किसी राज्य के जन सम्पर्क का संचालन किया हो। शेष अवधि जो उन्हें भाषा विभाग के संचालन के लिए प्राप्त हुई, उससे राजस्थान के राजकार्य में हिन्दीकरण को नई गति मिली। दोनों विभागों में राजेन्द्रशंकर भट्ट ने नये कीर्तिमान स्थापित किये और राजस्थान के लिए राज्य में तथा राज्य के बाहर असाधारण प्रसिद्धि एवं प्रतिष्ठा अर्जित की।

भारतीय इतिहास की दृष्टि से महाराणा प्रताप और भारतीय संस्कृति की दृष्टि से सवाई जयसिंह का जो अद्वितीय स्थान है, उसके कारण राजेन्द्रशंकर भट्ट इन दोनों के सम्बन्ध में लिखने के लिए प्रेरित हुए। इन दोनों का जीवन चरित्र नेशनल बुक ट्रस्ट ने अपनी राष्ट्रीय-जीवन-चरित्र माला में प्रकाशित करके इनके महत्त्व को स्वीकारा, लेकिन अब दोनों अप्राप्य हैं।

राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से राजेन्द्रशंकर भट्ट इस बात के प्रतिपादक रहे हैं कि देश के लोगों को अपने विभिन्न राज्यों और क्षेत्रों के बारे में जानकारी निरन्तर बढ़ाते रहना चाहिए, इसके लिए ऐसा साहित्य प्रकाशित होना चाहिए जिससे एकबद्धता होने की भावना को दृढ़ता प्राप्त हो। इस दृष्टि से आपने कश्मीर का अवलोकन तथा अध्ययन किया और थोड़े समय बाद आप के द्वारा असम तथा राजस्थान का हर पहलू से निरीक्षण होता था। इन राज्यों के विषय में आपकी पुस्तकों का एक-एक संस्करण प्रस्तुत होने के बाद शेष राज्यों के विषय में तो कभी कुछ लिखा नहीं गया। प्रस्तुत पुस्तक में

अपनी राजस्थान पर लिखी लेख-माला में तथा अपने बहुत से लेखों में राजेन्द्रशंकर भट्ट ने शब्द-चित्र शैली का प्रयोग किया है।

स्वाधीनता पूर्व की पत्रकारिता का राजेन्द्रशंकर भट्ट ने इलाहाबाद प्रेस समाचार समितियों के माध्यम से प्रतिनिधित्व भी किया। अन्त तक वे देश के प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में निरन्तर लिखते रहते रहे हैं। साहित्य तथा पत्रकारिता से सम्बन्धित राजस्थान तथा देश की प्राय: सभी प्रमुख संस्थाओं से राजेन्द्रशंकर भट्ट सम्बन्धित रहे। पत्रकारों की आर्थिक अवस्था का अध्ययन करने के लिए देश में जो पहली समिति बनी, उसके आप संयोजक रहे हैं।

राजेन्द्रशंकर भट्ट को उत्तर प्रदेश की दो साहित्यिक संस्थाओं ने 'साहित्य मार्तण्ड' और 'साहित्य शास्त्री' से विभूषित किया है। वे आज भी हिन्दी की सेवा कर रहे हैं।

❀

निष्काम साधक : केशवप्रसाद शर्मा

समाजनिष्ठ और शिक्षा के क्षेत्र में अपने मूल्यवान् अवदानों के कारण श्री केशवप्रसाद शर्मा कालजयी और स्मरणीय हो गये हैं। उनके अतुलनीय अनुपमेय चरित्र की विशेषताएँ एक नहीं अनेक हैं। उनमें से एक-एक का पृथक्-पृथक् विश्लेषण किया जाए, तो एक अच्छी खासी विवरणिका तैयार हो जाएगी। समाज और शिक्षा के हित में अपना हित माननेवाला यह महान् व्यक्तित्व हर क्षेत्र में कसौटी पर खरा उतरा। वे निस्पृह रूप से यावज्जीवन मानवमात्र के कल्याण में लगे रहे और शिक्षा के कार्य को उन्होंने अपना सबसे बड़ा धर्म माना।

जहाँ तक मुझे याद है कि मेरा उनका पहला परिचय १९४६ में कलकत्ता के जैन भवन में तुलसी जयन्ती के अवसर पर हुआ। उन दिनों तुलसी जयन्ती का आयोजन करना राष्ट्रप्रेमियों का एक जगह जमा होना माना जाता था। जयन्ती के सभापति विश्वमित्र के सम्पादक बाबू मूलचन्द अग्रवाल थे। नियमित वक्ताओं में भगवतीचरण वर्मा, जगदम्बाप्रसाद शुक्ल 'हितैषी', राजनारायण चतुर्वेदी 'आजाद', दयाराम बेरी आदि थे। छोटे तबके में मैं, कृष्णचन्द्र अग्रवाल और केशव बाबू भी वक्ता हो जाते थे। मूलचन्दजी हमलागों के परिवार की राष्ट्रीयता से परिचित थे। सम्भवत: यही कारण था कि वे हमें इस अवसर पर वक्तव्य देने के लिए बुलाते थे। केशव बाबू ने तुलसी जयन्ती के अवसर पर एक बार कहा था कि राष्ट्र की दासता को तो मुक्ति मिल गई है, परन्तु यह मुक्ति तभी सम्पूर्ण होगी जब हम प्रत्येक नागरिक को शिक्षित कर लेंगे। युवा केशव बाबू ने अपने जीवन में यही किया।

उन्होंने कलकत्ता में १९६३ में विक्रम विद्यालय हावड़ा के प्रधानाचार्य का पद ग्रहण करने के बाद विद्यालय का स्वरूप ही बदल दिया। मान्यता प्राप्त की, विज्ञान की पढ़ाई शुरू कराई और प्रयोगशालाओं की स्थापना के साथ-साथ भवन निर्माण कराया।

इस प्रकार से केशव बाबू प्रेरणा के स्रोत बने। उन्होंने अध्यापकों को निरन्तर परिश्रम करने एवं अध्ययनशील रहने के लिए प्रोत्साहित किया। विद्यालय में नियमित रूप से कक्षाएँ चलती थीं। कहा जाता था कि विक्रम विद्यालय का अध्यापन स्तर कलकत्ते के अच्छे से अच्छे स्कूल से बेहतर है। इसका कारण था उनके सहयोगियों को पद की गरिमा के अनुसार अपने कार्य की स्वतंत्रता प्राप्त थी। नियमत: अध्यापक १० से ४ बजे तक पढ़ाने के लिए प्रतिबद्ध थे, परन्तु केशव बाबू के सहयोगियों ने समय की सीमा को न मानते हुए अतिरिक्त कोचिंग क्लास भी लिये। कुशलता और ईमानदारी के कारण केशव बाबू का प्रधानाचार्य के रूप में किया गया कार्य अद्वितीय माना गया।

कलकत्ता में हिन्दीभाषी शिक्षकों के लिए टीचर्स ट्रेनिंग कालेज का अभाव था। केशव बाबू के प्रयत्न से एक जूनियर टीचर्स ट्रेनिंग कालेज की स्थापना हुई, जिसमें पश्चिम बंगाल के मान्यता प्राप्त स्कूलों के ६० शिक्षक प्रतिवर्ष बी० एड० की उपाधि प्राप्त करते हैं। उनकी मूल चीज थी शिक्षा। व्यापक रूप में वे इस चीज को चुन चुके थे, परन्तु उन्होंने अनुभव किया कि स्त्री-शिक्षा के विकास के बिना विद्या के क्षेत्र में उनका कार्य अपूर्ण रह जायेगा। उन्होंने नारी समाज के कल्याण के लिए बालिका विद्यालय की स्थापना तो की ही, साथ ही उसमें सांस्कृतिक और खेलकूद के कार्यक्रमों को विशेष रूप से प्रोत्साहित किया। आज उनके द्वारा स्थापित शिक्षण संस्थाओं में ५००० छात्र-छात्राएँ पढ़ते हैं।

जब हम लोग युवा थे, राजनीति में हमारा झुकाव नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के प्रति था। रामगढ़ कान्फ्रेन्स के लिए सुभाष बाबू कांग्रेस सभापति पद के प्रार्थी थे। उनका मुकाबला पट्टाभि सीतारमैया से था। गाँधीजी ने कहाकि पट्टाभि की हार मेरी हार है। बीमार अवस्था में सुभाष बाबू रामगढ़ कांग्रेस की अध्यक्षता करने गये। कांग्रेस के प्रथम श्रेणी के नेताओं ने उनका साथ छोड़ दिया। इस अवसर पर बिहार के किसान नेता स्वामी सहजानन्द सुभाष बाबू के साथ थे। स्वामीजी एक बड़े अच्छे साहित्यकार और आध्यात्म तत्व के वेत्ता थे। उनके किसान साहित्य और गीतामृत प्रसिद्ध हो चुके थे। सम्भवतः इसी समय युवा केशव बाबू के मन में स्वामी सहजानन्दजी के प्रति भक्ति जगी और कालक्रम में उन्होंने १९७२ में गाजीपुर में स्वामी सहजानन्द सरस्वती विद्यापीठ-महाविद्यालय की स्थापना की। केशव बाबू ने मात्र १,४०,०००/- रुपये में महामहिम काशी नरेश से ३० बीघा जमीन ली। वे प्रतिवर्ष मुझसे भी कुछ राशि लेते थे। सुनता था कि वे गाजीपुर में एक असाधारण कार्य कर रहे हैं। १९८८ में जब मैं अपने स्व० मित्र सांसद डॉ० रघुनाथ सिंह के साथ सहजानन्द की मूर्त्ति के अनावरण के अवसर पर गया तो गंगातट पर स्थित इस महान् विद्यालय को देख चकित हो गया। स्मरण हुआ कि युवाकाल की प्रेरणा अब मूर्त्त रूप ले चुकी है।

मृदुभाषी केशव बाबू को मैंने कभी उत्तेजित होते नहीं देखा। नाना प्रकार की उलझनों के बावजूद वे बराबर शान्त और सुस्थिर रहते थे। विद्यालयों में अन्दरूनी राजनीति घुस गई है। इसका ज्ञान होते हुए भी उन्होंने सहयोगियों को इसका भास होने नहीं दिया।

कलकत्ता के साहित्यिक जीवन से वे हिले-मिले हुए थे। व्यापक और विविध प्रवृत्तियों का उनका विस्तृत कार्यक्षेत्र जहाँ शिक्षा, संस्कृति, सामाजिक सुधार आदि था, वहीं उन्होंने साहित्य को भी अपनाया। उनके प्रेरक महामहोपाध्याय सकलनारायण शर्मा, गांगेय नरोत्तम शास्त्री, गोविन्दनारायण मिश्र, सम्पादकाचार्य अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी, ललिताप्रसाद सुकुल, परमानन्द शर्मा प्रभृति थे।

भारतीय साहित्य के प्रति उनकी अभिरुचि उनके विद्यालय द्वारा प्रकाशित पत्रिका के विशेषांकों में परिलक्षित है। विद्यालय के छात्रों के लेख तो उसमें हुआ ही करते थे, परन्तु उन पत्रिकाओं की विशेषता यह थी कि केशव बाबू के अनुरोध पर विभिन्न साहित्यकार भी लेख लिखते थे। उन्हें स्थानीय साहित्यकारों का स्नेह-सौजन्य और सौहार्द्र प्राप्त था। केशव बाबू के सम्पर्क में सभी साहित्यकार एक विलक्षण आत्मीयबोध की रस तृप्ति करते थे।

अपने विद्यालयों में विभिन्न भारतीय भाषाओं के साहित्यकारों को आमंत्रित कर उनका समादर करने में केशव बाबू अपना गौरव समझते थे।

सहजानन्द समग्र के पाँच खण्डों के सम्पादन में उन्होंने चार वर्षों का समय लगाया और प्रतीत हुआ कि वे सिर्फ शिक्षाशास्त्री और समाजसेवी ही नहीं बल्कि उनमें हिन्दी वाङ्मय को सजाने का अद्भुत कौशल भी है। २५०० पृष्ठों का यह समग्र प्रकाशित करने का मुझे सौभाग्य मिला था, परन्तु यह कार्य सीताराम आश्रम बिहटा ने मुझसे माँग लिया और मैंने स्वेच्छया उन्हें दे भी दिया।

केशव बाबू आज हमारे बीच नहीं रहे, परन्तु उनके विचारों, कार्यों, साहित्य, शिक्षा और समाज के क्षेत्र में उनके द्वारा किये गये कार्यों को फैलाने का दायित्व हमलोगों पर है। उनका ज्ञान, विचार और उनकी जीवन साधना तभी मूर्त रूप लेगी, जब हम अपने कर्तव्य का निर्वाह करें।

बनारस के ठलुआ प्रकाशक : बाबू मुकुन्ददास गुप्त

बाबू मुकुन्ददास गुप्त का स्वागत ठलुआ क्लब की ओर से बहुत पहले ही हो जाना चाहिए था। इसके लिए किसे दोषी ठहराया जाय इस विषय में कुछ कह नहीं सकता। गुप्तजी काशी के परम् शान्त स्वभाव के ठलुवा थे। मेरे पिताजी की मण्डली के अन्यतम सदस्य भी थे। नेमी-व्रती और नित्य गंगा स्नान करनेवाले बाबू मुकुन्ददासजी भारतेन्दु नगरी के जबरदस्त हाजिर जवाब थे। मौन भाषा में कम बोलते हुए भी वह ऐसे तथ्य की बातें कह जाते थे, जो धुआँधार गर्जना के साथ भाषण देनेवाले आज नहीं कह पाते।

'टाइम टेबुल प्रेस' का नाम उन्होंने वास्तव में सार्थक किया है। हिन्दी के रेलवे टाइम टेबुल के पीछे ये ऐसे चिपके कि टाइम टेबुल छापनेवाले रेलवे प्रेस को भी इनके सामने हार माननी पड़ी। रेलवे के घाटे के बजट को तो जनता पूरा कर देती है, परन्तु इनके घाटे के बजट को कौन पूरा करता, यह बहुत बड़ी समस्या थी उनके सामने। लगातार ५० वर्षों तक इतने बड़े घाटे की रकम यदि जोड़ी जाय तो कम से कम एक लाख डालर पुराने जमाने में थी। टाइम टेबुल के प्रकाशन के क्षेत्र में इन्होंने इतनी बड़ी धाक जमा दी कि रेलमंत्री पं० कमलापति मान गये कि बनारस में कोई निष्ठावान व्यक्ति है, जो रेलवे मंत्रालय का पूरा संचालन तो नहीं, परन्तु अंशतः रेलवे की सेवा जरूर कर सकता है।

आप लोगों को शायद यह नहीं मालूम होगा कि इतना बड़ा घाटा सहकर भी उन्होंने आजीवन इस कार्य को बन्द नहीं किया। वे हिन्दी के सबसे पुराने प्रकाशकों में से थे। पुस्तक भवन के नाम से १९२० से ही वे प्रकाशन का कार्य करते रहे। उन्होंने तुलसीदास की विनयपत्रिका से लेकर भगवद्गीता तक छापी। साथ ही 'मेरी मिट्टी क्यों पलीद की' जैसी प्रसिद्ध पुस्तक भी इन्हीं का प्रकाशन है। प्रकाशन के क्षेत्र से अन्तिम समय में इसलिए हटे कि यह काम बड़ा झगड़ालू और शान्त प्रकृति के विपरीत उनको लगने लगा।

❀

आधुनिक हिन्दी प्रकाशन के जनक : आचार्य रामलोचन शरण

बात १९२६ की है। मैं ६ वर्ष का बालक था। आचार्य जी द्वारा प्रकाशित हिरामन तोता, बिलाई मौसी, संसार के पहलवान, चन्दामामा आदि बाल साहित्य की पुस्तकें बड़े चाव से पढ़ता था। मुझे स्मरण है कि संसार के पहलवान राममूर्ति साहब को मैंने कलकत्ते में हिन्दू पंच कार्यालय के बाहर अपने ऊपर मोटर चढ़ाते देखा था। वहीं मुझे पता चला कि राममूर्तिजी अपना सर्कस लेकर कलकत्ते आये हैं। सर्कस भी देखा। संसार के पहलवान की दूसरी पात्र महिला तारा बाई पहलवान थीं। उन्हें भी मैंने हिन्दू पंच कार्यालय में देखा था। मैं इन विभूतियों को समझ नहीं पाता, यदि मैंने आचार्य रामलोचन शरण की छापी हुई संसार के पहलवान न पढ़ी होती।

आचार्यजी हिन्दी में उन दिनों प्रकाशित बाल साहित्य के सर्वश्रेष्ठ प्रकाशकों में थे। यदि उनके प्रकाशनों की समानता कोई फर्म कर सकती, थी तो वह इण्डियन प्रेस था। इण्डियन प्रेस की पुस्तक 'खेल तमाशा' की पंक्तियाँ आज भी मेरी जबान पर हैं। आज देश में मुद्रण प्रकाशन की विभिन्न तकनीकें अपनाई गयी हैं, परन्तु जिन दिनों आचार्यजी ने बाल-साहित्य का प्रकाशन शुरु किया था, तकनीक सम्बन्धी कोई चर्चा नहीं थी। ऐसा लगता है कि मुद्रण और प्रकाशन में तकनीकी वे स्वयं ही निर्मित करते थे और पुस्तकों की साज-सज्जा आदि का उनके पास दैवी गुण था। न तो उन्होंने किसी प्रिन्टिंग स्कूल में कोई अनुभव प्राप्त किया था और न ही वे विदेशी प्रकाशनों की नकल करने की प्रवृत्ति रखते थे।

आचार्यजी के प्रमुख लेखकों में रामवृक्ष बेनीपुरी, जयशंकर प्रसाद, शिवपूजन सहाय, विनोदशंकर व्यास, अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', प्रो० मनोरंजन, लाला भगवानदीन प्रभृति थे। इन लेखकों की कृतियों को बहुत अच्छे रूप में हिन्दी में लाने का श्रेय आचार्य रामलोचन शरण को ही है। मेरी याददाश्त आज भी ताजी है जब मैं निर्माल्य, नवीन, बीन नदी में दीन, अशान्त आदि प्रकाशनों की जिल्दसाजी और सुमुद्रण का स्मरण करता हूँ। जितना अच्छा मुद्रण उतनी ही अच्छी प्रूफरीडिंग, उतना ही अच्छा सम्पादन, उतनी ही अच्छी बाइण्डिग आदि का संयोजन करनेवाला उन दिनों यदि कोई प्रकाशक था तो वह आचार्य रामलोचन शरण ही थे। मेरे पिताजी मुझे बताया करते थे कि आचार्यजी बड़े जीवट के व्यक्ति हैं। आज के युग में प्रकाशन के विभिन्न कार्यक्रमों में

अलग-अलग व्यक्ति स्पेशलाइजेशन करते हैं, परन्तु यह देखकर आश्चर्य होता है कि पुरानी हड्डी के आचार्य रामलोचन शरण में कैसे उन सारे गुणों का एक साथ समन्वय था, जो प्रकाशन क्षेत्र में बहुत कम विभूतियों में देखने को मिलेगा।

बीसवीं सदी के तीसरे दशक में पुस्तक भण्डार उत्तर भारत की ही नहीं, अपितु सारे भारत की एकमात्र ऐसी प्रकाशन संस्था थी, जो साहित्यिक कृतियों को विशिष्ट रूप से प्रकाशित करती थी। कलकत्ता के प्रकाशक जहाँ ऐयारी, तिलिस्मी, जासूसी और ऐतिहासिक उपन्यास की पुस्तकों के प्रकाशन में व्यस्त थे तथा इलाहाबाद के कला, साहित्य, महिलोपयोगी, इतिहास, राजनीति की पुस्तकें प्रकाशित करते थे, वहीं आचार्यजी हिन्दी के उस समय के महारथियों को जनता-जनार्दन के समक्ष अपने प्रकाशन के माध्यम से सामने ला रहे थे। आचार्यजी ने कभी भी इस बात की परवाह नहीं की कि उनकी पुस्तकें बाजार में बिकेंगी या नहीं। उनमें एक ही धुन थी कि हिन्दी साहित्य की सेवा कैसे की जाय। उन्होंने प्रकाशन को इसका माध्यम चुना। आचार्यजी मास्टर साहब के नाम से सारे भारत में विख्यात थे। उन्होंने बिहार की सबसे बड़ी प्रकाशन संस्था पुस्तक भण्डार की स्थापना जिस अध्यवसाय, निष्ठा एवं लगन से की, उसकी मिसाल आज भी कहीं देखने को नहीं मिलती।

पटना में सन् १९६१ में जब मैं अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ की अध्यक्षता करने के लिए गया हुआ था, तो मुझे बहुत बड़ी परेशानी अनुभव हो रही थी कि जिस पटना शहर में आचार्य रामलोचन शरण जैसे महारथी उपस्थित हों, वहाँ अध्यक्षता करने के लिए मेरा जाना दुराग्रह नहीं तो और क्या है? बिहार पुस्तक व्यवसायी संघ की ओर से अधिवेशन के अवसर पर एक स्मारिका निकली गयी थी। मेरी जिज्ञासा थी कि स्मारिका में पं० रामदहिन मिश्र, आचार्य रामलोचन शरण आदि के सम्बन्ध में क्या सामग्री दी गयी है। मुझे प्रसन्नता हुई कि आचार्यजी के विषय में स्मारिका में काफी उपयोगी सामग्री दी गयी थी।

पटना में मेरा कार्यक्रम बना कि मैं आचार्यजी का दर्शन करूँ और उनका आशीर्वाद लूँ। मैंने अपनी यह इच्छा आचार्यजी के पुत्र भाई मैथिली शरण, सियाराम शरण और जानकीवल्लभ शरण से प्रकट की। उन लोगों ने मुझे आचार्यजी से मिलने के लिए आमन्त्रित किया। आज के युग में व्यवसायी खातिरदारी में कितना माडर्न हो गया है, यह बात आचार्यजी के गोविन्द मित्र रोड स्थित घर में स्वागत-सत्कार में तीनों भाइयों ने प्रदर्शित की। परन्तु जब आचार्यजी ने देखा तो सहज स्वभाव से उन्होंने कहा, 'यह क्या आडम्बर कर रहे हो, इनको दरी बिछाकर जमीन पर ही भोजन कराओ, तो अधिक उत्तम होगा'। भोजनोपरान्त हम बहुत देर तक आचार्यजी से बातें करते रहे। हिन्दी प्रकाशन के भूत, वर्तमान और भविष्य के सम्बन्ध में नाना प्रकार की चर्चाएँ हुईं। उनकी बातों से यह झलक रहा था कि वे नई पीढ़ी को जैसे आशीर्वाद दे रहे हैं और यह मनोकामना प्रकट

आधुनिक हिन्दी प्रकाशन के जनक : आचार्य रामलोचन शरण

बात १९२६ की है। मैं ६ वर्ष का बालक था। आचार्य जी द्वारा प्रकाशित हिरामन तोता, बिलाई मौसी, संसार के पहलवान, चन्दामामा आदि बाल साहित्य की पुस्तकें बड़े चाव से पढ़ता था। मुझे स्मरण है कि संसार के पहलवान राममूर्ति साहब को मैंने कलकत्ते में हिन्दू पंच कार्यालय के बाहर अपने ऊपर मोटर चढ़ाते देखा था। वहीं मुझे पता चला कि राममूर्तिजी अपना सर्कस लेकर कलकत्ते आये हैं। सर्कस भी देखा। संसार के पहलवान की दूसरी पात्र महिला तारा बाई पहलवान थीं। उन्हें भी मैंने हिन्दू पंच कार्यालय में देखा था। मैं इन विभूतियों को समझ नहीं पाता, यदि मैंने आचार्य रामलोचन शरण की छापी हुई संसार के पहलवान न पढ़ी होती।

आचार्यजी हिन्दी में उन दिनों प्रकाशित बाल साहित्य के सर्वश्रेष्ठ प्रकाशकों में थे। यदि उनके प्रकाशनों की समानता कोई फर्म कर सकती, थी तो वह इण्डियन प्रेस था। इण्डियन प्रेस की पुस्तक 'खेल तमाशा' की पंक्तियाँ आज भी मेरी जबान पर हैं। आज देश में मुद्रण प्रकाशन की विभिन्न तकनीकें अपनाई गयी हैं, परन्तु जिन दिनों आचार्यजी ने बाल-साहित्य का प्रकाशन शुरु किया था, तकनीक सम्बन्धी कोई चर्चा नहीं थी। ऐसा लगता है कि मुद्रण और प्रकाशन में तकनीकी वे स्वयं ही निर्मित करते थे और पुस्तकों की साज-सज्जा आदि का उनके पास दैवी गुण था। न तो उन्होंने किसी प्रिन्टिंग स्कूल में कोई अनुभव प्राप्त किया था और न ही वे विदेशी प्रकाशनों की नकल करने की प्रवृत्ति रखते थे।

आचार्यजी के प्रमुख लेखकों में रामवृक्ष बेनीपुरी, जयशंकर प्रसाद, शिवपूजन सहाय, विनोदशंकर व्यास, अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', प्रो० मनोरंजन, लाला भगवानदीन प्रभृति थे। इन लेखकों की कृतियों को बहुत अच्छे रूप में हिन्दी में लाने का श्रेय आचार्य रामलोचन शरण को ही है। मेरी याददाश्त आज भी ताजी है जब मैं निर्माल्य, नवीन, बीन नदी में दीन, अशान्त आदि प्रकाशनों की जिल्दसाजी और सुमुद्रण का स्मरण करता हूँ। जितना अच्छा मुद्रण उतनी ही अच्छी प्रूफरीडिंग, उतना ही अच्छा सम्पादन, उतनी ही अच्छी बाइण्डिग आदि का संयोजन करनेवाला उन दिनों यदि कोई प्रकाशक था तो वह आचार्य रामलोचन शरण ही थे। मेरे पिताजी मुझे बताया करते थे कि आचार्यजी बड़े जीवट के व्यक्ति हैं। आज के युग में प्रकाशन के विभिन्न कार्यक्रमों में

अलग-अलग व्यक्ति स्पेशलाइजेशन करते हैं, परन्तु यह देखकर आश्चर्य होता है कि पुरानी हड्डी के आचार्य रामलोचन शरण में कैसे उन सारे गुणों का एक साथ समन्वय था, जो प्रकाशन क्षेत्र में बहुत कम विभूतियों में देखने को मिलेगा।

बीसवीं सदी के तीसरे दशक में पुस्तक भण्डार उत्तर भारत की ही नहीं, अपितु सारे भारत की एकमात्र ऐसी प्रकाशन संस्था थी, जो साहित्यिक कृतियों को विशिष्ट रूप से प्रकाशित करती थी। कलकत्ता के प्रकाशक जहाँ ऐयारी, तिलिस्मी, जासूसी और ऐतिहासिक उपन्यास की पुस्तकों के प्रकाशन में व्यस्त थे तथा इलाहाबाद के कला, साहित्य, महिलोपयोगी, इतिहास, राजनीति की पुस्तकें प्रकाशित करते थे, वहीं आचार्यजी हिन्दी के उस समय के महारथियों को जनता-जनार्दन के समक्ष अपने प्रकाशन के माध्यम से सामने ला रहे थे। आचार्यजी ने कभी भी इस बात की परवाह नहीं की कि उनकी पुस्तकें बाजार में बिकेंगी या नहीं। उनमें एक ही धुन थी कि हिन्दी साहित्य की सेवा कैसे की जाय। उन्होंने प्रकाशन को इसका माध्यम चुना। आचार्यजी मास्टर साहब के नाम से सारे भारत में विख्यात थे। उन्होंने बिहार की सबसे बड़ी प्रकाशन संस्था पुस्तक भण्डार की स्थापना जिस अध्यवसाय, निष्ठा एवं लगन से की, उसकी मिसाल आज भी कहीं देखने को नहीं मिलती।

पटना में सन् १९६१ में जब मैं अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ की अध्यक्षता करने के लिए गया हुआ था, तो मुझे बहुत बड़ी परेशानी अनुभव हो रही थी कि जिस पटना शहर में आचार्य रामलोचन शरण जैसे महारथी उपस्थित हों, वहाँ अध्यक्षता करने के लिए मेरा जाना दुराग्रह नहीं तो और क्या है? बिहार पुस्तक व्यवसायी संघ की ओर से अधिवेशन के अवसर पर एक स्मारिका निकली गयी थी। मेरी जिज्ञासा थी कि स्मारिका में पं० रामदहिन मिश्र, आचार्य रामलोचन शरण आदि के सम्बन्ध में क्या सामग्री दी गयी है। मुझे प्रसन्नता हुई कि आचार्यजी के विषय में स्मारिका में काफी उपयोगी सामग्री दी गयी थी।

पटना में मेरा कार्यक्रम बना कि मैं आचार्यजी का दर्शन करूँ और उनका आशीर्वाद लूँ। मैंने अपनी यह इच्छा आचार्यजी के पुत्र भाई मैथिली शरण, सियाराम शरण और जानकीवल्लभ शरण से प्रकट की। उन लोगों ने मुझे आचार्यजी से मिलने के लिए आमन्त्रित किया। आज के युग में व्यवसायी खातिरदारी में कितना माडर्न हो गया है, यह बात आचार्यजी के गोविन्द मित्र रोड स्थित घर में स्वागत-सत्कार में तीनों भाइयों ने प्रदर्शित की। परन्तु जब आचार्यजी ने देखा तो सहज स्वभाव से उन्होंने कहा, 'यह क्या आडम्बर कर रहे हो, इनको दरी बिछाकर जमीन पर ही भोजन कराओ, तो अधिक उत्तम होगा'। भोजनोपरान्त हम बहुत देर तक आचार्यजी से बातें करते रहे। हिन्दी प्रकाशन के भूत, वर्तमान और भविष्य के सम्बन्ध में नाना प्रकार की चर्चाएँ हुईं। उनकी बातों से यह झलक रहा था कि वे नई पीढ़ी को जैसे आशीर्वाद दे रहे हैं और यह मनोकामना प्रकट

कर रहे हैं कि उनका लगाया हुआ हिन्दी प्रकाशन का पौधा बढ़े, फले और फूले। जब मैं चलने लगा तब उन्होंने गद्-गद् स्वर में मुझे स्वलिखित रामायण के दो खण्ड भेंट किये और कहा कि आप इसे अपने पिता निहालचन्दजी को मेरी ओर से दे दीजियेगा। मैंने देखा कि उस वयोवृद्ध व्यक्ति के हृदय में जितनी ही सरलता थी उतनी ही भक्ति भी थी। चलते समय मैंने उनको नमस्कार किया और सोचा कि यदा-कदा इनके दर्शन करता रहूँगा। आचार्यजी ने मुझसे कहा कि मैं शीघ्र ही बनारस आऊँगा और आप से मिलूँगा। दुर्भाग्यवश इस मुलाकात के बाद मैं उनका दर्शन लाभ न कर सका और मुझे सहसा यह समाचार मिला कि वे परलोक गमन कर गये। रामभक्त हिन्दी के उद्भट प्रकाशक आचार्य रामलोचन शरण आज हमारे बीच तो नहीं हैं, परन्तु उनकी चलाई हुई प्रकाशन विधाएँ आज भी हमारा मार्गदर्शन कर रहीं हैं।

सीताराम चतुर्वेदी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

जीवन मूल्यों के संरक्षक आचार्य सीतारामजी चतुर्वेदी मेरे प्रकाशक साहित्यकार पिता स्व० निहालचन्द्रजी वर्मा के मित्र हैं। मेरे पिता उन्हें ब्राह्मण होने के नाते अपना पूज्य गुरु मानते थे। दोनों के बीच २० वर्षों की छोटाई बढ़ाई थी।

वैसे तो मैंने बचपन में चतुर्वेदीजी को कविवर रत्नाकरजी के सभापतित्व में होनेवाले कलकत्ता हिन्दी साहित्य सम्मेलन के जुलूस में देखा था। दूसरे विश्वयुद्ध के समय १९३९ में उन्हें बनारस में निकट से देखने का अवसर मिला। मेरे पिता निहालचन्दजी नाटकों की दुनिया से जुड़े थे। १९१५ में स्थापित कलकत्ता की हिन्दी नाट्य समिति के वे संस्थापकों में थे। अक्सर चतुर्वेदीजी से उनकी चर्चा का विषय रंगमंच और भरत का नाट्यशास्त्र रहा करता था। मेरे पिताजी के आग्रह पर चतुर्वेदीजी ने अपना 'अजन्ता' नामक नाटक १९५२ में प्रकाशनार्थ हमें दिया। हमलोग उन्हें २० प्रतिशत रायल्टी देते थे, जो कि उस समय शीर्षस्थ लेखकों को प्राप्त थी।

१९५१ के आसपास हमारे पिता निहालचन्दजी ने अपने पिता रामरतन बेरी की स्मृति में रामघाट में एक विशाल पुस्तकालय की स्थापना की। चतुर्वेदीजी के परामर्श से पुस्तकालय में हिन्दी में प्रकाशित विविध विषयों की पुस्तकें मँगाई गयीं और १०,००० पुस्तकों का एक अच्छा खासा पुस्तकालय स्थापित हुआ। उद्‌घाटन के लिए पं० सीतारामजी चतुर्वेदी से निवेदन किया गया। राय कृष्णदासजी हमारे पड़ोसी थे। उन्हें मुख्य अतिथि होना था, परन्तु इस अवसर पर सिर्फ उनका शुभ सन्देश आया। बसन्त पंचमी के दिन उद्‌घाटन समारोह की भव्यता देखते बनती थी। दरवाजे पर सजावट की गई थी। रामघाट मुहल्ले में खूब चहलपहल थी। लोगों में चर्चा थी कि पं० सीतारामजी चतुर्वेदी पुस्तकालय के उद्‌घाटनार्थ आनेवाले हैं। भारतीय परम्परा के अनुसार शंख ध्वनि से चतुर्वेदीजी का स्वागत किया गया। उन्हें मुहल्ले के लोगों ने फूल-मालाओं से लाद दिया। पिताजी और हमारे परिवार के लोगों ने उनके चरण छुए और उन्होंने उद्‌घाटन के अवसर पर अपने व्याख्यान में हमारे समूचे परिवार को आशीर्वाद दिया। चतुर्वेदीजी ने अपने मित्र और हमारे पिताजी के परम स्नेही कविवर जगन्नारायणदेव शर्मा 'पुष्कर' को पुस्तकालयाध्यक्ष बनाने की घोषणा की। पुष्करजी को उन्होंने परामर्श दिया कि वे बाल साहित्य की पुस्तकें लिखें और उनके प्रकाशन की आय से पुस्तकालय चलता रहे।

चतुर्वेदीजी प्रकाशक भी हैं। मुझे आज भी उनका १९५५ में वाराणसी में आयोजित प्रकाशक सम्मेलन में दिया गया उत्तेजक व्याख्यान स्मरण है। इन्द्रचन्द्र नारंग अध्यक्ष थे। मंच पर विराजमान उपेन्द्रनाथ अश्क, किशोरीदास वाजपेयी, रामचन्द्र वर्मा, 'आज' के तत्कालीन सम्पादक सत्येन्द्रकुमार गुप्त प्रमुख वक्ता थे।

कर रहे हैं कि उनका लगाया हुआ हिन्दी प्रकाशन का पौधा बढ़े, फले और फूले। जब मैं चलने लगा तब उन्होंने गद्-गद् स्वर में मुझे स्वलिखित रामायण के दो खण्ड भेंट किये और कहा कि आप इसे अपने पिता निहालचन्दजी को मेरी ओर से दे दीजियेगा। मैंने देखा कि उस वयोवृद्ध व्यक्ति के हृदय में जितनी ही सरलता थी उतनी ही भक्ति भी थी। चलते समय मैंने उनको नमस्कार किया और सोचा कि यदा-कदा इनके दर्शन करता रहूँगा। आचार्यजी ने मुझसे कहा कि मैं शीघ्र ही बनारस आऊँगा और आप से मिलूँगा। दुर्भाग्यवश इस मुलाकात के बाद मैं उनका दर्शन लाभ न कर सका और मुझे सहसा यह समाचार मिला कि वे परलोक गमन कर गये। रामभक्त हिन्दी के उद्भट प्रकाशक आचार्य रामलोचन शरण आज हमारे बीच तो नहीं हैं, परन्तु उनकी चलाई हुई प्रकाशन विधाएँ आज भी हमारा मार्गदर्शन कर रहीं हैं।

सीताराम चतुर्वेदी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

जीवन मूल्यों के संरक्षक आचार्य सीतारामजी चतुर्वेदी मेरे प्रकाशक साहित्यकार पिता स्व० निहालचन्द्रजी वर्मा के मित्र हैं। मेरे पिता उन्हें ब्राह्मण होने के नाते अपना पूज्य गुरु मानते थे। दोनों के बीच २० वर्षों की छोटाई बढ़ाई थी।

वैसे तो मैंने बचपन में चतुर्वेदीजी को कविवर रत्नाकरजी के सभापतित्व में होनेवाले कलकत्ता हिन्दी साहित्य सम्मेलन के जुलूस में देखा था। दूसरे विश्वयुद्ध के समय १९३९ में उन्हें बनारस में निकट से देखने का अवसर मिला। मेरे पिता निहालचन्दजी नाटकों की दुनिया से जुड़े थे। १९१५ में स्थापित कलकत्ता की हिन्दी नाट्य समिति के वे संस्थापकों में थे। अक्सर चतुर्वेदीजी से उनकी चर्चा का विषय रंगमंच और भरत का नाट्यशास्त्र रहा करता था। मेरे पिताजी के आग्रह पर चतुर्वेदीजी ने अपना 'अजन्ता' नामक नाटक १९५२ में प्रकाशनार्थ हमें दिया। हमलोग उन्हें २० प्रतिशत रायल्टी देते थे, जो कि उस समय शीर्षस्थ लेखकों को प्राप्त थी।

१९५१ के आसपास हमारे पिता निहालचन्दजी ने अपने पिता रामरतन बेरी की स्मृति में रामघाट में एक विशाल पुस्तकालय की स्थापना की। चतुर्वेदीजी के परामर्श से पुस्तकालय में हिन्दी में प्रकाशित विविध विषयों की पुस्तकें मँगाई गयीं और १०,००० पुस्तकों का एक अच्छा खासा पुस्तकालय स्थापित हुआ। उद्घाटन के लिए पं० सीतारामजी चतुर्वेदी से निवेदन किया गया। राय कृष्णदासजी हमारे पड़ोसी थे। उन्हें मुख्य अतिथि होना था, परन्तु इस अवसर पर सिर्फ उनका शुभ सन्देश आया। बसन्त पंचमी के दिन उद्घाटन समारोह की भव्यता देखते बनती थी। दरवाजे पर सजावट की गई थी। रामघाट मुहल्ले में खूब चहलपहल थी। लोगों में चर्चा थी कि पं० सीतारामजी चतुर्वेदी पुस्तकालय के उद्घाटनार्थ आनेवाले हैं। भारतीय परम्परा के अनुसार शंख ध्वनि से चतुर्वेदीजी का स्वागत किया गया। उन्हें मुहल्ले के लोगों ने फूल-मालाओं से लाद दिया। पिताजी और हमारे परिवार के लोगों ने उनके चरण छुए और उन्होंने उद्घाटन के अवसर पर अपने व्याख्यान में हमारे समूचे परिवार को आशीर्वाद दिया। चतुर्वेदीजी ने अपने मित्र और हमारे पिताजी के परम स्नेही कविवर जगन्नारायणदेव शर्मा 'पुष्कर' को पुस्तकालयाध्यक्ष बनाने की घोषणा की। पुष्करजी को उन्होंने परामर्श दिया कि वे बाल साहित्य की पुस्तकें लिखें और उनके प्रकाशन की आय से पुस्तकालय चलता रहे।

चतुर्वेदीजी प्रकाशक भी हैं। मुझे आज भी उनका १९५५ में वाराणसी में आयोजित प्रकाशक सम्मेलन में दिया गया उत्तेजक व्याख्यान स्मरण है। इन्द्रचन्द्र नारंग अध्यक्ष थे। मंच पर विराजमान उपेन्द्रनाथ अश्क, किशोरीदास वाजपेयी, रामचन्द्र वर्मा, 'आज' के तत्कालीन सम्पादक सत्येन्द्रकुमार गुप्त प्रमुख वक्ता थे।

वस्तुत: प्रकाशकों का यह सम्मेलन १९५४ में हुए दिल्ली के उस सम्मेलन का प्रतिवाद था, जिसके अध्यक्ष हिन्दुस्तानी अकादमी के सचिव रामचन्द्र टण्डन थे और जिसमें उत्तरप्रदेश के प्रकाशकों का समुचित प्रतिनिधित्व नहीं था। चतुर्वेदीजी ने सम्मेलन में अपनी संस्था अखिल भारतीय विक्रम परिषद्, काशी का प्रतिनिधित्व किया था। इस संस्था के संस्थापक महामना पं० मदनमोहन मालवीयजी थे। अपनी ओजस्वी वक्तृता में चतुर्वेदीजी ने हिन्दी के प्रकाशकों को नैतिक मानदंडों को अपनाने का परामर्श दिया था।

कलकत्ता में मीरजापुर के प्रसिद्ध उद्योगपति घराने के बिन्नानियों ने पथरियाघाट स्ट्रीट में एक अभिनव शिक्षण संस्थान खोला था। चतुर्वेदीजी उसके प्रधानाचार्य होकर कलकत्ता गए थे। वहाँ का अभिभावक समुदाय पंडितजी की इस रीति नीति से बहुत प्रभावित हुआ, जिसके अन्तर्गत पाठ्य-क्रमानुसार शिक्षकों को पढ़ाना पड़ता था। वे नोट्स तैयार करवाते थे, परन्तु पाठ्य-पुस्तकों का व्यवहार वर्जित था। अध्यापकों ने शुरु-शुरु में इसका विरोध किया, परन्तु बाद में इस क्रम से ही पढ़ाई होने लगी।

अपने कलकत्ता प्रवास में चतुर्वेदीजी प्राय: सभी साहित्यिक संस्थाओं से जुड़े रहे। उनके निकटतम मित्रों में सीताराम सेकसरिया, भगीरथ कनोड़िया, प्रभुदयाल, हिम्मतसिंह, राधाकृष्ण नेवटिया, भँवरमल सिंधी आदि थे।

पंडितजी को औघड़दानी कहा जा सकता है, जिसपर रीझ गए उसे मनमाना वर दे दिया और वह उनसे जो मनमाना चाहे करा सकता है।

श्रद्धेय नारायण स्वामी पंडितजी के छोटे भाई थे। नारायण स्वामीजी के विषय में अनेक किंवदंतियाँ प्रचलित हैं। कोई उन्हें सिद्ध पुरुष मानता है और कोई महात्मा। किसी ने तो उन्हें तांत्रिक ही समझ रखा था। पं० सीतारामजी की तरह नारायण स्वामी प्रकाण्ड विद्वान् होते हुए भी बहुत बड़े पुस्तक प्रेमी थे। नारायण स्वामी की पुस्तकों के संकलन की प्रवृत्ति आज भी मुजफ्फरनगर में देखी जा सकती है।

सीतारामजी कट्टर गाँधीवादी रहे हैं। उन्होंने अपने जीवन में गाँधी को भरपूर जिया है। उनके सिद्धान्तों का स्वस्थ चिन्तन किया है। उनके साहित्य का मनन किया है और रहन-सहन में गाँधीवाद को अपनाया है। सीतारामजी का स्फूर्त व्यक्तित्व पुराने साहित्यिक सम्मेलनों की स्मृति में परिलक्षित है। सामाजिक, शैक्षणिक तथा आध्यात्मिक कोई भी सम्मेलन हो उसमें यदि उनका व्याख्यान हो जाए तो जनमानस पर उनकी अमिट छाप पड़ जाती थी। ऐसे महान् हैं हमारे चतुर्वेदीजी।

मानवीय संवेदनाओं के व्यक्ति :
पं० नरेशचन्द्र चतुर्वेदी

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय राष्ट्रीय चरित्र की उज्ज्वलता धूमिल होती प्रतीत होती है। राजनैतिक जीवन में तो यह शिकवा अथवा यूँ कहूँ कि यह उपेक्षा की वस्तु होती जा रही है। ऐसे में राजनीति के दुर्ग में शक्तिपुंज के रूप में अपनी धवल कान्ति बिखेर रहे थे जननायक, जनक से विदेह, प्रकाश स्तम्भ श्री नरेशचन्द्र चतुर्वेदी। चतुर्वेदीजी के नाम को वर्षों पहले से सुनता आ रहा था। उनसे मिलने का अवसर १९८५ में मिला। वह भी जब श्री चतुर्वेदीजी मेरा अभिनन्दन करने हेतु मेरे समक्ष थे। कुछ संकोच था मेरे मन में, क्योंकि प्रथम दर्शन में ही मुझे उनके व्यक्तित्व का आभास हुआ। दीप्त मुखमण्डल पर द्विजत्व की दार्शनिकता प्रत्यक्ष थी। चश्मे के भीतर से झाँकती स्नेहसिक्त आँखें उनकी चिन्तन प्रवृत्ति की गुरुता स्पष्ट कर रही थीं। सन् १९८५ में दिल्ली में अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ के तत्वावधान में मेरे अभिनन्दन का एक कार्यक्रम तत्कालीन रक्षामंत्री, भारत सरकार, श्री कृष्णचन्द्र पंत की अध्यक्षता में रखा गया था।

श्री पन्तजी को अभ्यर्थना कार्यक्रम के दौरान कुछ आवश्यक कार्य आ पड़ा। उन्होंने अध्यक्षता के लिये नरेशजी को अपने स्थान पर भेजा। आरम्भिक बात-चीत में ही श्री चतुर्वेदीजी ने मुझे अपनत्व के सूत्र में बाँध दिया। यह बिरले व्यक्तित्व की सामान्य विशेषता है कि वे अपने आसपास के लोगों पर कभी अपनी बात लादने की चेष्टा नहीं करते हैं। बल्कि अपनी बात सामनेवाले से ही करा लेते हैं। मैं अपने बारे में कुछ बतलाऊँ इसके पूर्व ही उन्होंने मेरे परिवार तथा मेरे बारे में अनेक बातें बता डालीं। आधी शताब्दी पूर्व मेरे पूज्य पिताश्री, स्वर्गीय बाबू रामलाल वर्मा के साथ कलकत्ता से 'हिन्दू पंच' नामक पत्र को ईश्वरीप्रसाद शर्मा के सम्पादकत्व में प्रकाशित करते थे। पत्र की अपनी वाणी तथा अपील थी। साप्ताहिक होते हुए भी वह मान्य था। प्रथम चर्चा में ही चतुर्वेदीजी ने मुझे बतलाया कि 'हिन्दू पंच' से वे अपने जीवन के आरम्भिक दिनों में प्रभावित हुए थे। जबकि वे एक स्वयंसेवक के रूप में समाज सेवा एवं राष्ट्रीय उत्थान के क्षेत्र में कार्य कर रहे थे। भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस के संस्थापकों में अग्रगण्य मेरे चाचा श्री दयारामजी बेरी की भी चर्चा उन्होंने की, जो उस समय मजदूर आन्दोलन के क्षेत्र में निष्ठापूर्वक कार्य कर रहे थे। पायनियर ट्रेड यूनियन आन्दोलनकारी के रूप में उन्होंने कई वर्ष जेल में बिताये थे।

वस्तुत: प्रकाशकों का यह सम्मेलन १९५४ में हुए दिल्ली के उस सम्मेलन का प्रतिवाद था, जिसके अध्यक्ष हिन्दुस्तानी अकादमी के सचिव रामचन्द्र टण्डन थे और जिसमें उत्तरप्रदेश के प्रकाशकों का समुचित प्रतिनिधित्व नहीं था। चतुर्वेदीजी ने सम्मेलन में अपनी संस्था अखिल भारतीय विक्रम परिषद्, काशी का प्रतिनिधित्व किया था। इस संस्था के संस्थापक महामना पं० मदनमोहन मालवीयजी थे। अपनी ओजस्वी वक्तृता में चतुर्वेदीजी ने हिन्दी के प्रकाशकों को नैतिक मानदंडों को अपनाने का परामर्श दिया था।

कलकत्ता में मीरजापुर के प्रसिद्ध उद्योगपति घराने के बिन्नानियों ने पथरियाघाट स्ट्रीट में एक अभिनव शिक्षण संस्थान खोला था। चतुर्वेदीजी उसके प्रधानाचार्य होकर कलकत्ता गए थे। वहाँ का अभिभावक समुदाय पंडितजी की इस रीति नीति से बहुत प्रभावित हुआ, जिसके अन्तर्गत पाठ्य-क्रमानुसार शिक्षकों को पढ़ाना पड़ता था। वे नोट्स तैयार करवाते थे, परन्तु पाठ्य-पुस्तकों का व्यवहार वर्जित था। अध्यापकों ने शुरु-शुरु में इसका विरोध किया, परन्तु बाद में इस क्रम से ही पढ़ाई होने लगी।

अपने कलकत्ता प्रवास में चतुर्वेदीजी प्राय: सभी साहित्यिक संस्थाओं से जुड़े रहे। उनके निकटतम मित्रों में सीताराम सेकसरिया, भगीरथ कनोड़िया, प्रभुदयाल, हिम्मतसिंह, राधाकृष्ण नेवटिया, भँवरमल सिंघी आदि थे।

पंडितजी को औघड़दानी कहा जा सकता है, जिसपर रीझ गए उसे मनमाना वर दे दिया और वह उनसे जो मनमाना चाहे करा सकता है।

श्रद्धेय नारायण स्वामी पंडितजी के छोटे भाई थे। नारायण स्वामीजी के विषय में अनेक किंवदंतियाँ प्रचलित हैं। कोई उन्हें सिद्ध पुरुष मानता है और कोई महात्मा। किसी ने तो उन्हें तांत्रिक ही समझ रखा था। पं० सीतारामजी की तरह नारायण स्वामी प्रकाण्ड विद्वान् होते हुए भी बहुत बड़े पुस्तक प्रेमी थे। नारायण स्वामी की पुस्तकों के संकलन की प्रवृत्ति आज भी मुजफ्फरनगर में देखी जा सकती है।

सीतारामजी कट्टर गाँधीवादी रहे हैं। उन्होंने अपने जीवन में गाँधी को भरपूर जिया है। उनके सिद्धान्तों का स्वस्थ चिन्तन किया है। उनके साहित्य का मनन किया है और रहन-सहन में गाँधीवाद को अपनाया है। सीतारामजी का स्फूर्त व्यक्तित्व पुराने साहित्यिक सम्मेलनों की स्मृति में परिलक्षित है। सामाजिक, शैक्षणिक तथा आध्यात्मिक कोई भी सम्मेलन हो उसमें यदि उनका व्याख्यान हो जाए तो जनमानस पर उनकी अमिट छाप पड़ जाती थी। ऐसे महान् हैं हमारे चतुर्वेदीजी।

❀

मानवीय संवेदनाओं के व्यक्ति :
पं० नरेशचन्द्र चतुर्वेदी

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय राष्ट्रीय चरित्र की उज्ज्वलता धूमिल होती प्रतीत होती है। राजनैतिक जीवन में तो यह शिकवा अथवा यूँ कहूँ कि यह उपेक्षा की वस्तु होती जा रही है। ऐसे में राजनीति के दुर्ग में शक्तिपुंज के रूप में अपनी धवल कान्ति बिखेर रहे थे जननायक, जनक से विदेह, प्रकाश स्तम्भ श्री नरेशचन्द्र चतुर्वेदी। चतुर्वेदीजी के नाम को वर्षों पहले से सुनता आ रहा था। उनसे मिलने का अवसर १९८५ में मिला। वह भी जब श्री चतुर्वेदीजी मेरा अभिनन्दन करने हेतु मेरे समक्ष थे। कुछ संकोच था मेरे मन में, क्योंकि प्रथम दर्शन में ही मुझे उनके व्यक्तित्व का आभास हुआ। दीप्त मुखमण्डल पर द्विजत्व की दार्शनिकता प्रत्यक्ष थी। चश्मे के भीतर से झाँकती स्नेहसिक्त आँखें उनकी चिन्तन प्रवृत्ति की गुरुता स्पष्ट कर रही थीं। सन् १९८५ में दिल्ली में अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ के तत्वावधान में मेरे अभिनन्दन का एक कार्यक्रम तत्कालीन रक्षामंत्री, भारत सरकार, श्री कृष्णचन्द्र पंत की अध्यक्षता में रखा गया था।

श्री पन्तजी को अभ्यर्थना कार्यक्रम के दौरान कुछ आवश्यक कार्य आ पड़ा। उन्होंने अध्यक्षता के लिये नरेशजी को अपने स्थान पर भेजा। आरम्भिक बात-चीत में ही श्री चतुर्वेदीजी ने मुझे अपनत्व के सूत्र में बाँध दिया। यह बिरले व्यक्तित्व की सामान्य विशेषता है कि वे अपने आसपास के लोगों पर कभी अपनी बात लादने की चेष्टा नहीं करते हैं। बल्कि अपनी बात सामनेवाले से ही करा लेते हैं। मैं अपने बारे में कुछ बतलाऊँ इसके पूर्व ही उन्होंने मेरे परिवार तथा मेरे बारे में अनेक बातें बता डालीं। आधी शताब्दी पूर्व मेरे पूज्य पिताश्री, स्वर्गीय बाबू रामलाल वर्मा के साथ कलकत्ता से 'हिन्दू पंच' नामक पत्र को ईश्वरीप्रसाद शर्मा के सम्पादकत्व में प्रकाशित करते थे। पत्र की अपनी वाणी तथा अपील थी। साप्ताहिक होते हुए भी वह मान्य था। प्रथम चर्चा में ही चतुर्वेदीजी ने मुझे बतलाया कि 'हिन्दू पंच' से वे अपने जीवन के आरम्भिक दिनों में प्रभावित हुए थे। जबकि वे एक स्वयंसेवक के रूप में समाज सेवा एवं राष्ट्रीय उत्थान के क्षेत्र में कार्य कर रहे थे। भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस के संस्थापकों में अग्रगण्य मेरे चाचा श्री दयारामजी बेरी की भी चर्चा उन्होंने की, जो उस समय मजदूर आन्दोलन के क्षेत्र में निष्ठापूर्वक कार्य कर रहे थे। पायनियर ट्रेड यूनियन आन्दोलनकारी के रूप में उन्होंने कई वर्ष जेल में बिताये थे।

वस्तुत: प्रकाशकों का यह सम्मेलन १९५४ में हुए दिल्ली के उस सम्मेलन का प्रतिवाद था, जिसके अध्यक्ष हिन्दुस्तानी अकादमी के सचिव रामचन्द्र टण्डन थे और जिसमें उत्तरप्रदेश के प्रकाशकों का समुचित प्रतिनिधित्व नहीं था। चतुर्वेदीजी ने सम्मेलन में अपनी संस्था अखिल भारतीय विक्रम परिषद्, काशी का प्रतिनिधित्व किया था। इस संस्था के संस्थापक महामना पं० मदनमोहन मालवीयजी थे। अपनी ओजस्वी वक्तृता में चतुर्वेदीजी ने हिन्दी के प्रकाशकों को नैतिक मानदंडों को अपनाने का परामर्श दिया था।

कलकत्ता में मीरजापुर के प्रसिद्ध उद्योगपति घराने के बिन्नानियों ने पथरियाघाट स्ट्रीट में एक अभिनव शिक्षण संस्थान खोला था। चतुर्वेदीजी उसके प्रधानाचार्य होकर कलकत्ता गए थे। वहाँ का अभिभावक समुदाय पंडितजी की इस रीति नीति से बहुत प्रभावित हुआ, जिसके अन्तर्गत पाठ्य-क्रमानुसार शिक्षकों को पढ़ाना पड़ता था। वे नोट्स तैयार करवाते थे, परन्तु पाठ्य-पुस्तकों का व्यवहार वर्जित था। अध्यापकों ने शुरु-शुरु में इसका विरोध किया, परन्तु बाद में इस क्रम से ही पढ़ाई होने लगी।

अपने कलकत्ता प्रवास में चतुर्वेदीजी प्राय: सभी साहित्यिक संस्थाओं से जुड़े रहे। उनके निकटतम मित्रों में सीताराम सेकसरिया, भगीरथ कनोड़िया, प्रभुदयाल, हिम्मतसिंह, राधाकृष्ण नेवटिया, भँवरमल सिंधी आदि थे।

पंडितजी को औघड़दानी कहा जा सकता है, जिसपर रीझ गए उसे मनमाना वर दे दिया और वह उनसे जो मनमाना चाहे करा सकता है।

श्रद्धेय नारायण स्वामी पंडितजी के छोटे भाई थे। नारायण स्वामीजी के विषय में अनेक किंवदंतियाँ प्रचलित हैं। कोई उन्हें सिद्ध पुरुष मानता है और कोई महात्मा। किसी ने तो उन्हें तांत्रिक ही समझ रखा था। पं० सीतारामजी की तरह नारायण स्वामी प्रकाण्ड विद्वान् होते हुए भी बहुत बड़े पुस्तक प्रेमी थे। नारायण स्वामी की पुस्तकों के संकलन की प्रवृत्ति आज भी मुजफ्फरनगर में देखी जा सकती है।

सीतारामजी कट्टर गाँधीवादी रहे हैं। उन्होंने अपने जीवन में गाँधी को भरपूर जिया है। उनके सिद्धान्तों का स्वस्थ चिन्तन किया है। उनके साहित्य का मनन किया है और रहन-सहन में गाँधीवाद को अपनाया है। सीतारामजी का स्फूर्त व्यक्तित्व पुराने साहित्यिक सम्मेलनों की स्मृति में परिलक्षित है। सामाजिक, शैक्षणिक तथा आध्यात्मिक कोई भी सम्मेलन हो उसमें यदि उनका व्याख्यान हो जाए तो जनमानस पर उनकी अमिट छाप पड़ जाती थी। ऐसे महान् हैं हमारे चतुर्वेदीजी।

❀

मानवीय संवेदनाओं के व्यक्ति : पं० नरेशचन्द्र चतुर्वेदी

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय राष्ट्रीय चरित्र की उज्ज्वलता धूमिल होती प्रतीत होती है। राजनैतिक जीवन में तो यह शिकवा अथवा यूँ कहूँ कि यह उपेक्षा की वस्तु होती जा रही है। ऐसे में राजनीति के दुर्ग में शक्तिपुंज के रूप में अपनी धवल कान्ति बिखेर रहे थे जननायक, जनक से विदेह, प्रकाश स्तम्भ श्री नरेशचन्द्र चतुर्वेदी। चतुर्वेदीजी के नाम को वर्षों पहले से सुनता आ रहा था। उनसे मिलने का अवसर १९८५ में मिला। वह भी जब श्री चतुर्वेदीजी मेरा अभिनन्दन करने हेतु मेरे समक्ष थे। कुछ संकोच था मेरे मन में, क्योंकि प्रथम दर्शन में ही मुझे उनके व्यक्तित्व का आभास हुआ। दीप्त मुखमण्डल पर द्विजत्व की दार्शनिकता प्रत्यक्ष थी। चश्मे के भीतर से झाँकती स्नेहसिक्त आँखें उनकी चिन्तन प्रवृत्ति की गुरुता स्पष्ट कर रही थीं। सन् १९८५ में दिल्ली में अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ के तत्वावधान में मेरे अभिनन्दन का एक कार्यक्रम तत्कालीन रक्षामंत्री, भारत सरकार, श्री कृष्णचन्द्र पंत की अध्यक्षता में रखा गया था।

श्री पन्तजी को अभ्यर्थना कार्यक्रम के दौरान कुछ आवश्यक कार्य आ पड़ा। उन्होंने अध्यक्षता के लिये नरेशजी को अपने स्थान पर भेजा। आरम्भिक बात-चीत में ही श्री चतुर्वेदीजी ने मुझे अपनत्व के सूत्र में बाँध दिया। यह बिरले व्यक्तित्व की सामान्य विशेषता है कि वे अपने आसपास के लोगों पर कभी अपनी बात लादने की चेष्टा नहीं करते हैं। बल्कि अपनी बात सामनेवाले से ही करा लेते हैं। मैं अपने बारे में कुछ बतलाऊँ इसके पूर्व ही उन्होंने मेरे परिवार तथा मेरे बारे में अनेक बातें बता डालीं। आधी शताब्दी पूर्व मेरे पूज्य पिताश्री, स्वर्गीय बाबू रामलाल वर्मा के साथ कलकत्ता से 'हिन्दू पंच' नामक पत्र को ईश्वरीप्रसाद शर्मा के सम्पादकत्व में प्रकाशित करते थे। पत्र की अपनी वाणी तथा अपील थी। साप्ताहिक होते हुए भी वह मान्य था। प्रथम चर्चा में ही चतुर्वेदीजी ने मुझे बतलाया कि 'हिन्दू पंच' से वे अपने जीवन के आरम्भिक दिनों में प्रभावित हुए थे। जबकि वे एक स्वयंसेवक के रूप में समाज सेवा एवं राष्ट्रीय उत्थान के क्षेत्र में कार्य कर रहे थे। भारतीय राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस के संस्थापकों में अग्रगण्य मेरे चाचा श्री दयारामजी बेरी की भी चर्चा उन्होंने की, जो उस समय मजदूर आन्दोलन के क्षेत्र में निष्ठापूर्वक कार्य कर रहे थे। पायनियर ट्रेड यूनियन आन्दोलनकारी के रूप में उन्होंने कई वर्ष जेल में बिताये थे।

जैसी आशा थी, श्री चतुर्वेदी ने कौशल पूर्वक सभा का संचालन किया तथा अंत में ऐसा सारगर्भित भाषण दिया कि व्यक्तिगत अभ्यर्थना के लिए आयोजित वह सभा सत्साहित्य के प्रकाशन, लेखन एवं हिन्दी जगत् की समस्याओं का विचार मंच बन गई। इसके पश्चात् चतुर्वेदीजी के प्रति आत्मीय स्मृति सदा के लिए मेरे मन में प्रविष्ट हो गई। पत्र व्यवहार के अतिरिक्त आने-जानेवालों के माध्यम से सम्पर्क का आदान-प्रदान होता ही रहा है।

अभी हाल में ही उनका सन्देश मुझे कानपुर के श्री जगदीश जगेश के माध्यम से मिला। हिन्दी प्रकाशन के क्षेत्र में हमने शुरू से नये-नये प्रयोग किये। इस समय हम अप्रत्याशित कम दामों पर ख्याति प्राप्त लेखकों की समस्त रचनाओं को प्रकाशित करने की योजना पर कार्य कर रहे है। कुछ संग्रह तो प्रकाशित हो गये हैं, जिनको हिन्दी पाठकों ने सन्तोषजनक ढंग से अपनाया भी है। जगेशजी से इसका विवरण सुनकर चतुर्वेदीजी ने बहुत प्रसन्नता व्यक्त की। चतुर्वेदीजी की स्मृति आते ही मन में आनन्दानुभूति होती है। चतुर्वेदी जी के तराशे हीरे जैसे व्यक्तित्व से सद्‌गुणों की रंग-बिरंगी छटा मानस में बिखर जाती है। शुद्ध राष्ट्रीयता अथवा संकीर्ण साम्प्रदायिकता के आधार पर उन्होंने लोकसभा चुनाव लड़ा था। चाहे राजनीति हो, अथवा हिन्दी साहित्य के किसी भी युग के किसी भी क्षेत्र पर विचार अथवा संस्कृति, कला, शिल्प का कोई अंग हो, उस पर उनके व्यावहारिक चिन्तन से सहज मानवीयता झलकती है। उनके भीतर गुण ही गुण हैं जो तराशे हीरे की तरह किसी भी कोण से आती किरणों पर चमक उठते हैं।

आज सेठ गोविन्द दास, पुरुषोत्तमदास टण्डन, प्रो० वासुदेव सिंह जैसे हिन्दी के प्रथम पंक्ति के जन-नेता भले ही नहीं है, लेकिन उनका स्थान पं० नरेशचन्द्र चतुर्वेदीजी ने ले लिया है। पण्डितजी का राजनीति में होना ही हमारे लिए अपने हिन्दी पूर्वजों का राजनीति में होना है।

दयाराम बेरी

बीसवीं सदी के राष्ट्रीय स्तर के नेताओं के दो भाग किये जा सकते हैं। एक भाग में वे लोग आते हैं जो महात्मा गाँधी के भारत-आगमन के पूर्व से देश-प्रेम में पगे हुए थे और जिन्होंने गाँधी जी के आन्दोलनों से आत्मविश्वास और स्फूर्ति पाई। दूसरा भाग अवश्य ही उन नेताओं का है जो गाँधी जी की प्रेरणा से ही देश-प्रेम में दीक्षित हुआ। हमारे चरित्र नायक श्री दयाराम बेरी पहली कोटि के नेताओं में से हैं। सन् १८९५ में अमृतसर में एक मध्यवित्त खत्री परिवार में जन्में श्री दयाराम को देश-प्रेम की भावना वंश-परम्परा से प्राप्त थी। इनके मातामह के पूर्व पुरुषों ने भारत के सन् १८५७ के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय भाग लिया था। इनके पिता का नाम श्री रामरतन बेरी था। इन्हें अपने नाम में ही नहीं, काम में भी जीवन में आगे बढ़ते रहने की प्रेरणा अपनी माता श्रीमती दया कौर से जन्मघुट्टी के साथ ही मिली थी। श्रीमती दया कौर के हृदय में अपार देश-भक्ति थी और बाल्यकाल में उन्हीं की प्रेरणा थी कि श्री दयाराम जीवन भर के लिए देश-सेवा के कठिन किन्तु उदात्त पथ के पथिक बन गये। उनके इस देश-प्रेम के अंकुर को लोकमान्य तिलक और श्रीमती एनीबेसेन्ट के देशभक्ति पूर्ण ओजमय व्याख्यानों से खाद और पानी मिलता रहा। यह एक बड़े ही आश्चर्य की बात लग सकती है कि भारत में महात्मा गाँधी के प्रभाव-प्रवर्तन के काफी पहले, प्रथम विश्व युद्धकाल में सन् १९१४ में ही श्री दयाराम को भारतीय सेना में विदेशी ब्रिटिश शासन के विरुद्ध प्रचार करने के फलस्वरूप दण्डित होना पड़ा था।

स्वाभाविक था कि जब महात्मा गाँधी ने भारत आकर अँग्रेजों के खिलाफ अपने असहयोग आन्दोलन का बिगुल फूँका तो श्री दयाराम उनके अनुयायियों की पहली पंक्ति में थे। सन् १९२१ में पहली बार उन्हें कारावास का दण्ड भुगतना पड़ा। अपने इस देश-प्रेम के कारण ही उनका कार्यक्षेत्र अमृतसर से फैलकर समग्र उत्तर भारत में नेपाल, छपरा, वाराणसी होता हुआ पूर्व में सुदूर कलकत्ता तक फैल गया। पंजाब के जालियाँवाला बाग के हत्याकांड से मर्माहत होकर उन्होंने कलकत्ता के आन्दोलन में बड़ी ओजस्वी भूमिका निभाई। उनके प्रयत्न से वहाँ एक अभूतपूर्व हड़ताल का आयोजन हुआ, जिसके फलस्वरूप उन्हें पुलिस की लाठी प्रहार का बुरी तरह शिकार होना पड़ा।

स्वदेशी आन्दोलनों में श्री बेरी को दस बार कारावास जाना पड़ा, जहाँ उन्होंने अपने जीवन का एक चौथाई से अधिक बहुमूल्य भाग २२ वर्ष बिताया। साम्प्रदायिकता के दानव से भी वे बड़े दुखित थे और इसके निवारण के लिए उन्होंने अपने प्रयत्नों में कभी ढिलाई नहीं की। १९२३ में जेल से बाहर आते ही वे इस काम में भी जुट गये और बराबर सभायें आयोजित कर साम्प्रदायिक सद्भाव के लिए जनता को उत्प्रेरित करते रहे।

जैसी आशा थी, श्री चतुर्वेदी ने कौशल पूर्वक सभा का संचालन किया तथा अंत में ऐसा सारगर्भित भाषण दिया कि व्यक्तिगत अभ्यर्थना के लिए आयोजित वह सभा सत्साहित्य के प्रकाशन, लेखन एवं हिन्दी जगत् की समस्याओं का विचार मंच बन गई। इसके पश्चात् चतुर्वेदीजी के प्रति आत्मीय स्मृति सदा के लिए मेरे मन में प्रविष्ट हो गई। पत्र व्यवहार के अतिरिक्त आने-जानेवालों के माध्यम से सम्पर्क का आदान-प्रदान होता ही रहा है।

अभी हाल में ही उनका सन्देश मुझे कानपुर के श्री जगदीश जगेश के माध्यम से मिला। हिन्दी प्रकाशन के क्षेत्र में हमने शुरू से नये-नये प्रयोग किये। इस समय हम अप्रत्याशित कम दामों पर ख्याति प्राप्त लेखकों की समस्त रचनाओं को प्रकाशित करने की योजना पर कार्य कर रहे है। कुछ संग्रह तो प्रकाशित हो गये हैं, जिनको हिन्दी पाठकों ने सन्तोषजनक ढंग से अपनाया भी है। जगेशजी से इसका विवरण सुनकर चतुर्वेदीजी ने बहुत प्रसन्नता व्यक्त की। चतुर्वेदीजी की स्मृति आते ही मन में आनन्दानुभूति होती है। चतुर्वेदी जी के तराशे हीरे जैसे व्यक्तित्व से सद्‌गुणों की रंग-बिरंगी छटा मानस में बिखर जाती है। शुद्ध राष्ट्रीयता अथवा संकीर्ण साम्प्रदायिकता के आधार पर उन्होंने लोकसभा चुनाव लड़ा था। चाहे राजनीति हो, अथवा हिन्दी साहित्य के किसी भी युग के किसी भी क्षेत्र पर विचार अथवा संस्कृति, कला, शिल्प का कोई अंग हो, उस पर उनके व्यावहारिक चिन्तन से सहज मानवीयता झलकती है। उनके भीतर गुण ही गुण हैं जो तराशे हीरे की तरह किसी भी कोण से आती किरणों पर चमक उठते हैं।

आज सेठ गोविन्द दास, पुरुषोत्तमदास टण्डन, प्रो० वासुदेव सिंह जैसे हिन्दी के प्रथम पंक्ति के जन-नेता भले ही नहीं है, लेकिन उनका स्थान पं० नरेशचन्द्र चतुर्वेदीजी ने ले लिया है। पण्डितजी का राजनीति में होना ही हमारे लिए अपने हिन्दी पूर्वजों का राजनीति में होना है।

दयाराम बेरी

बीसवीं सदी के राष्ट्रीय स्तर के नेताओं के दो भाग किये जा सकते हैं। एक भाग में वे लोग आते हैं जो महात्मा गाँधी के भारत-आगमन के पूर्व से देश-प्रेम में पगे हुए थे और जिन्होंने गाँधी जी के आन्दोलनों से आत्मविश्वास और स्फूर्ति पाई। दूसरा भाग अवश्य ही उन नेताओं का है जो गाँधी जी की प्रेरणा से ही देश-प्रेम में दीक्षित हुआ। हमारे चरित्र नायक श्री दयाराम बेरी पहली कोटि के नेताओं में से हैं। सन् १८९५ में अमृतसर में एक मध्यवित्त खत्री परिवार में जन्में श्री दयाराम को देश-प्रेम की भावना वंश-परम्परा से प्राप्त थी। इनके मातामह के पूर्व पुरुषों ने भारत के सन् १८५७ के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय भाग लिया था। इनके पिता का नाम श्री रामरतन बेरी था। इन्हें अपने नाम में ही नहीं, काम में भी जीवन में आगे बढ़ते रहने की प्रेरणा अपनी माता श्रीमती दया कौर से जन्मघुट्टी के साथ ही मिली थी। श्रीमती दया कौर के हृदय में अपार देश-भक्ति थी और बाल्यकाल में उन्हीं की प्रेरणा थी कि श्री दयाराम जीवन भर के लिए देश-सेवा के कठिन किन्तु उदात्त पथ के पथिक बन गये। उनके इस देश-प्रेम के अंकुर को लोकमान्य तिलक और श्रीमती एनीबेसेन्ट के देशभक्ति पूर्ण ओजमय व्याख्यानों से खाद और पानी मिलता रहा। यह एक बड़े ही आश्चर्य की बात लग सकती है कि भारत में महात्मा गाँधी के प्रभाव-प्रवर्तन के काफी पहले, प्रथम विश्व युद्धकाल में सन् १९१४ में ही श्री दयाराम को भारतीय सेना में विदेशी ब्रिटिश शासन के विरुद्ध प्रचार करने के फलस्वरूप दण्डित होना पड़ा था।

स्वाभाविक था कि जब महात्मा गाँधी ने भारत आकर अँग्रेजों के खिलाफ अपने असहयोग आन्दोलन का बिगुल फूँका तो श्री दयाराम उनके अनुयायियों की पहली पंक्ति में थे। सन् १९२१ में पहली बार उन्हें कारावास का दण्ड भुगतना पड़ा। अपने इस देश-प्रेम के कारण ही उनका कार्यक्षेत्र अमृतसर से फैलकर समग्र उत्तर भारत में नेपाल, छपरा, वाराणसी होता हुआ पूर्व में सुदूर कलकत्ता तक फैल गया। पंजाब के जालियाँवाला बाग के हत्याकांड से मर्माहत होकर उन्होंने कलकत्ता के आन्दोलन में बड़ी ओजस्वी भूमिका निभाई। उनके प्रयत्न से वहाँ एक अभूतपूर्व हड़ताल का आयोजन हुआ, जिसके फलस्वरूप उन्हें पुलिस की लाठी प्रहार का बुरी तरह शिकार होना पड़ा।

स्वदेशी आन्दोलनों में श्री बेरी को दस बार कारावास जाना पड़ा, जहाँ उन्होंने अपने जीवन का एक चौथाई से अधिक बहुमूल्य भाग २२ वर्ष बिताया। साम्प्रदायिकता के दानव से भी वे बड़े दुखित थे और इसके निवारण के लिए उन्होंने अपने प्रयत्नों में कभी ढिलाई नहीं की। १९२३ में जेल से बाहर आते ही वे इस काम में भी जुट गये और बराबर सभायें आयोजित कर साम्प्रदायिक सद्भाव के लिए जनता को उत्प्रेरित करते रहे।

१९२८ में जब साइमन कमीशन ने भारत का दौरा किया था, तब श्री बेरी जेल से मुक्त हुए ही थे, उन्होंने कलकत्ता में उसके विरोध का आयोजन किया। उनके नेतृत्व में लगभग दो लाख व्यक्तियों ने विरोध प्रदर्शन में भाग लेकर कलकत्ता महानगर के समस्त यातायात को रोक दिया था।

सन् १९२९ का लाहौर कांग्रेस में उनके जीवन में एक और नये अध्याय का सूत्रपात हुआ। उन्होंने देश की पूर्ण-स्वाधीनता का व्रत लिया और मजदूर आन्दोलन के सूत्रधार बने। उनका शेष जीवन देश के श्रमिकों की दशा सुधारने में ही बीता। इस अर्थ में देश में भूतपूर्व राष्ट्रपति श्री वी० वी० गिरी के बाद सबसे अधिक दीर्घ सेवा का गौरव श्री दयाराम बेरी को ही जाता है। यह आज बहुतों को विदित भी नहीं होगा कि रविवार को श्रमिकों को जो साप्ताहिक अवकाश मिलता है, वह १९३३ के पहले प्रचलित नहीं था। श्री बेरी ने ही उसके लिए सर्वप्रथम आन्दोलन किया था और सफलता प्राप्त की थी। उन्हीं के प्रयत्नों से १९३३ के बाद ही श्रमिकों को इस साप्ताहिक अवकाश का अधिकार प्राप्त हुआ है।

सन् १९३० में उन्हें महात्मा गाँधी के नमक आन्दोलन में भाग लेने के लिए जेल जाना पड़ा था। १९३४ में जेल से मुक्त होते ही उन्होंने समाजवादी पार्टी की सदस्यता स्वीकार कर ली थी, क्योंकि उन दिनों उनकी दृष्टि से यही एकमात्र पार्टी मजदूरों के हितों की पैरवी और रक्षा करती थी।

नेतृत्व के गुण उनमें बहुत प्रारम्भ से ही प्रकट थे। सामाजिक-सेवा के क्षेत्र में उन्होंने बंगाल में गंगासागर के मेले के अवसर पर स्वयं सेवक दलों का गठन किया था। बंगाल में ही उन्होंने बच्चों की वानरसेना निर्माण की, जिससे आबालवृद्ध सभी की दृष्टि इनके नेतृत्व-गुण से प्रभावित हुई। ये ही प्रवृत्तियाँ उनके राजनैतिक जीवन की दृढ़ आधार शिलायें प्रभावित हुई और वे तत्कालीन राजनैतिक नेताओं के सम्पर्क में आये। रायगढ़ कांग्रेस में जो ज्योति बंगाल से गई थी, उसे श्री बेरी ही एक रथ पर ले गये थे। इसी रथ पर नेताजी सुभाष चन्द्र बोस की सवारी निकली थी। खत्री सभा ने उनकी सामाजिक सेवा से प्रभावित होकर उन्हें 'जातिरत्न' की उपाधि से अलंकृत किया था।

साम्प्रदायिक एकता की दिशा में भी बेरी जी की सक्रिय भूमिका स्मरणीय है। आजादी के पहले और बाद में जब-जब बंगाल में हिन्दू-मुस्लिम एकता को आँच आई, श्री बेरी ने न केवल उस आँच को शमन करने की दिशा में प्रभावशाली कार्य किया, बल्कि पीड़ित जनता के उद्धार और संरक्षण की दिशा में अधिक महत्वपूर्ण योगदान भी दिया। उत्पातों में उत्पीड़ित मुसलमानों को जीवित निकाल लाने का जैसा साहसपूर्ण कार्य बेरी जी ने किया था, उससे प्रेरित बंगाल की साम्प्रदायिक सहिष्णुता अन्य प्रदेशों के लिए अनुकरणीय बन गई।

सन् १९३९ में श्री बेरी के नेतृत्व में जूट मजदूरों की अपनी माँगों के लिए ऐतिहासिक हड़ताल का आयोजन हुआ था, जिसमें लगभग ढाई लाख मजदूरों ने भाग लिया था। पुलिस ने अपने लाठी तंत्र से इस हड़ताल को विफल करने का प्रयत्न किया,

जिसके फलस्वरूप श्री बेरी सांघातिक रूप से आहत हुए। भीषण प्रहारों के कारण वे लगातार साढ़े तीन घंटों तक बेहोश रहे और बाद में उन्हें इक्कीस दिनों तक चारपाई पर पड़े रहना पड़ा। बेरी जी की इस कष्टकर तपस्या का फल यह हुआ कि जूट मिलों के मजदूरों को कई वर्षों से चले आते हुए कष्टों और निपीड़न से मुक्ति मिली। एक लाख मजदूर काम से अलग कर दिए गये थे, जिन्हें पुन: काम पर लेना पड़ा। उस समय श्री बेरी 'नेशनल यूनियन ऑफ जूट वर्कर्स' के अध्यक्ष थे। उन्हीं के नेतृत्व में १४ दिसम्बर, १९३९ को आम हड़ताल का निर्णय लिया गया था। इसी के समर्थन में श्री बेरी ने बजबज से हालीशहर तथा उलूबेड़िया, बाँसबेड़िया आदि स्थानों के बीच एक के बाद एक ५६ सभाओं में अपने ओजस्वी भाषणों से मजदूरों में जागृति और उत्साह के बीज बोये। उसी उत्साह में सौ से अधिक मिलों के ढाई लाख मजदूरों ने संगठित होकर जो अपने दृढ़ ऐक्य का शान्तिपूर्ण प्रदर्शन किया उससे भारत सरकार तक का आसन डोल गया और उसे वेज बोर्ड की स्थापना का आदेश देना पड़ा। मिल मालिकों ने इसका जमकर विरोध किया था, किन्तु श्रम शक्ति के संगठित प्रयत्नों से उनकी एक न चल सकी।

१९३९ में जब द्वितीय विश्व युद्ध छिड़ा तो भारत सरकार ने श्री बेरी को गिरफ्तार कर सात वर्ष की सजा सुना दी। इस लम्बी अवधि में उन्हें अलीपुर, बनारस, देवली कैम्प, बरेली, फतेहगढ़ आदि स्थानों में कैद रक्खा। देवली कैम्प में उन्होंने ३२ दिनों का अनशन कर अपने अधिकारों की रक्षा की।

श्री बेरी की बहुमुखी प्रतिभा न केवल श्रमिक-आन्दोलन की ओर ही केन्द्रित थी, अपितु वे जन-जागरण के प्रत्येक पहलू के प्रति सजग दृष्टि रखते थे। अँग्रेजों के दमन-चक्र से जब हिन्दी समाचार-पत्र एक के बाद एक बन्द होते जा रहे थे, तब बेरी जी ने 'सेनापति' के नाम से एक साप्ताहिक-पत्र निकालकर जन-जागरण की मशाल जलाये रखी। इस पत्र को उग्र, निराला जैसे प्रखर साहित्यकारों का सहयोग था। 'सेनापति' भी सरकार का कोपभाजन हुआ और श्री बेरी १९३९ में बंगाल से निष्कासित कर दिये गये। १९४६ में सात साल की जेल से छूटे तो उत्तर प्रदेश सरकार ने भी उन्हें अपने यहाँ से निष्कासित कर दिया। जब बेरी जी ने बिहार को अपना कार्यक्षेत्र बनाया, तो बिहार से भी ये निष्कासित कर दिये गये। तब इन्हें बम्बई चले जाना पड़ा। भारत के स्वाधीन होने पर ही ये पुन: अपने प्रदेशों में लौट सके और सन् १९४८ में उन्हें अखिल भारतीय राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस का सर्व सम्मति से उपाध्यक्ष चुना गया।

१९५० में श्री बेरी ने अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संघ सम्मेलन में भारत के प्रतिनिधि के रूप में जेनेवा में भाग लिया। इसी प्रवास में उन्होंने यूरोप के बीस देशों का भ्रमण किया और विभिन्न स्थानों पर श्रमिक समस्या तथा गाँधीवाद पर ५७ भाषण दिये। स्काटलैण्ड की जूट मिलों से तब भारत में जूट का आयात होता था, जब कि भारत में ही जूट मिलें चालू हो गई थीं। श्री बेरी ने इस आयात का घोर विरोध किया था, जिससे यह आयात बन्द हो गया था और स्काटलैण्ड में डण्डी की जूट मिलों को भीषण आर्थिक हानि

१९२८ में जब साइमन कमीशन ने भारत का दौरा किया था, तब श्री बेरी जेल से मुक्त हुए ही थे, उन्होंने कलकत्ता में उसके विरोध का आयोजन किया। उनके नेतृत्व में लगभग दो लाख व्यक्तियों ने विरोध प्रदर्शन में भाग लेकर कलकत्ता महानगर के समस्त यातायात को रोक दिया था।

सन् १९२९ का लाहौर कांग्रेस में उनके जीवन में एक और नये अध्याय का सूत्रपात हुआ। उन्होंने देश की पूर्ण-स्वाधीनता का व्रत लिया और मजदूर आन्दोलन के सूत्रधार बने। उनका शेष जीवन देश के श्रमिकों की दशा सुधारने में ही बीता। इस अर्थ में देश में भूतपूर्व राष्ट्रपति श्री वी० वी० गिरी के बाद सबसे अधिक दीर्घ सेवा का गौरव श्री दयाराम बेरी को ही जाता है। यह आज बहुतों को विदित भी नहीं होगा कि रविवार को श्रमिकों को जो साप्ताहिक अवकाश मिलता है, वह १९३३ के पहले प्रचलित नहीं था। श्री बेरी ने ही उसके लिए सर्वप्रथम आन्दोलन किया था और सफलता प्राप्त की थी। उन्हीं के प्रयत्नों से १९३३ के बाद ही श्रमिकों को इस साप्ताहिक अवकाश का अधिकार प्राप्त हुआ है।

सन् १९३० में उन्हें महात्मा गाँधी के नमक आन्दोलन में भाग लेने के लिए जेल जाना पड़ा था। १९३४ में जेल से मुक्त होते ही उन्होंने समाजवादी पार्टी की सदस्यता स्वीकार कर ली थी, क्योंकि उन दिनों उनकी दृष्टि से यही एकमात्र पार्टी मजदूरों के हितों की पैरवी और रक्षा करती थी।

नेतृत्व के गुण उनमें बहुत प्रारम्भ से ही प्रकट थे। सामाजिक-सेवा के क्षेत्र में उन्होंने बंगाल में गंगासागर के मेले के अवसर पर स्वयं सेवक दलों का गठन किया था। बंगाल में ही उन्होंने बच्चों की वानरसेना निर्माण की, जिससे आबालवृद्ध सभी की दृष्टि इनके नेतृत्व-गुण से प्रभावित हुई। ये ही प्रवृत्तियाँ उनके राजनैतिक जीवन की दृढ़ आधार शिलायें प्रभावित हुई और वे तत्कालीन राजनैतिक नेताओं के सम्पर्क में आये। रायगढ़ कांग्रेस में जो ज्योति बंगाल से गई थी, उसे श्री बेरी ही एक रथ पर ले गये थे। इसी रथ पर नेताजी सुभाष चन्द्र बोस की सवारी निकली थी। खत्री सभा ने उनकी सामाजिक सेवा से प्रभावित होकर उन्हें 'जातिरत्न' की उपाधि से अलंकृत किया था।

साम्प्रदायिक एकता की दिशा में भी बेरी जी की सक्रिय भूमिका स्मरणीय है। आजादी के पहले और बाद में जब-जब बंगाल में हिन्दू-मुस्लिम एकता को आँच आई, श्री बेरी ने न केवल उस आँच को शमन करने की दिशा में प्रभावशाली कार्य किया, बल्कि पीड़ित जनता के उद्धार और संरक्षण की दिशा में अधिक महत्वपूर्ण योगदान भी दिया। उत्पातों में उत्पीड़ित मुसलमानों को जीवित निकाल लाने का जैसा साहसपूर्ण कार्य बेरी जी ने किया था, उससे प्रेरित बंगाल की साम्प्रदायिक सहिष्णुता अन्य प्रदेशों के लिए अनुकरणीय बन गई।

सन् १९३९ में श्री बेरी के नेतृत्व में जूट मजदूरों की अपनी माँगों के लिए ऐतिहासिक हड़ताल का आयोजन हुआ था, जिसमें लगभग ढाई लाख मजदूरों ने भाग लिया था। पुलिस ने अपने लाठी तंत्र से इस हड़ताल को विफल करने का प्रयत्न किया,

जिसके फलस्वरूप श्री बेरी सांघातिक रूप से आहत हुए। भीषण प्रहारों के कारण वे लगातार साढ़े तीन घंटों तक बेहोश रहे और बाद में उन्हें इक्कीस दिनों तक चारपाई पर पड़े रहना पड़ा। बेरी जी की इस कष्टकर तपस्या का फल यह हुआ कि जूट मिलों के मजदूरों को कई वर्षों से चले आते हुए कष्टों और निपीड़न से मुक्ति मिली। एक लाख मजदूर काम से अलग कर दिए गये थे, जिन्हें पुनः काम पर लेना पड़ा। उस समय श्री बेरी 'नेशनल यूनियन ऑफ जूट वर्कर्स' के अध्यक्ष थे। उन्हीं के नेतृत्व में १४ दिसम्बर, १९३९ को आम हड़ताल का निर्णय लिया गया था। इसी के समर्थन में श्री बेरी ने बजबज से हालीशहर तथा उलूबेड़िया, बाँसबेड़िया आदि स्थानों के बीच एक के बाद एक ५६ सभाओं में अपने ओजस्वी भाषणों से मजदूरों में जागृति और उत्साह के बीज बोये। उसी उत्साह में सौ से अधिक मिलों के ढाई लाख मजदूरों ने संगठित होकर जो अपने दृढ़ ऐक्य का शान्तिपूर्ण प्रदर्शन किया उससे भारत सरकार तक का आसन डोल गया और उसे वेज बोर्ड की स्थापना का आदेश देना पड़ा। मिल मालिकों ने इसका जमकर विरोध किया था, किन्तु श्रम शक्ति के संगठित प्रयत्नों से उनकी एक न चल सकी।

१९३९ में जब द्वितीय विश्व युद्ध छिड़ा तो भारत सरकार ने श्री बेरी को गिरफ्तार कर सात वर्ष की सजा सुना दी। इस लम्बी अवधि में उन्हें अलीपुर, बनारस, देवली कैम्प, बरेली, फतेहगढ़ आदि स्थानों में कैद रक्खा। देवली कैम्प में उन्होंने ३२ दिनों का अनशन कर अपने अधिकारों की रक्षा की।

श्री बेरी की बहुमुखी प्रतिभा न केवल श्रमिक-आन्दोलन की ओर ही केन्द्रित थी, अपितु वे जन-जागरण के प्रत्येक पहलू के प्रति सजग दृष्टि रखते थे। अँग्रेजों के दमन-चक्र से जब हिन्दी समाचार-पत्र एक के बाद एक बन्द होते जा रहे थे, तब बेरी जी ने 'सेनापति' के नाम से एक साप्ताहिक-पत्र निकालकर जन-जागरण की मशाल जलाये रखी। इस पत्र को उग्र, निराला जैसे प्रखर साहित्यकारों का सहयोग था। 'सेनापति' भी सरकार का कोपभाजन हुआ और श्री बेरी १९३९ में बंगाल से निष्कासित कर दिये गये। १९४६ में सात साल की जेल से छूटे तो उत्तर प्रदेश सरकार ने भी उन्हें अपने यहाँ से निष्कासित कर दिया। जब बेरी जी ने बिहार को अपना कार्यक्षेत्र बनाया, तो बिहार से भी ये निष्कासित कर दिये गये। तब इन्हें बम्बई चले जाना पड़ा। भारत के स्वाधीन होने पर ही ये पुनः अपने प्रदेशों में लौट सके और सन् १९४८ में उन्हें अखिल भारतीय राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस का सर्व सम्मति से उपाध्यक्ष चुना गया।

१९५० में श्री बेरी ने अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संघ सम्मेलन में भारत के प्रतिनिधि के रूप में जेनेवा में भाग लिया। इसी प्रवास में उन्होंने यूरोप के बीस देशों का भ्रमण किया और विभिन्न स्थानों पर श्रमिक समस्या तथा गाँधीवाद पर ५७ भाषण दिये। स्काटलैण्ड की जूट मिलों से तब भारत में जूट का आयात होता था, जब कि भारत में ही जूट मिलें चालू हो गई थीं। श्री बेरी ने इस आयात का घोर विरोध किया था, जिससे यह आयात बन्द हो गया था और स्काटलैण्ड में डण्डी की जूट मिलों को भीषण आर्थिक हानि

१९२८ में जब साइमन कमीशन ने भारत का दौरा किया था, तब श्री बेरी जेल से मुक्त हुए ही थे, उन्होंने कलकत्ता में उसके विरोध का आयोजन किया। उनके नेतृत्व में लगभग दो लाख व्यक्तियों ने विरोध प्रदर्शन में भाग लेकर कलकत्ता महानगर के समस्त यातायात को रोक दिया था।

सन् १९२९ का लाहौर कांग्रेस में उनके जीवन में एक और नये अध्याय का सूत्रपात हुआ। उन्होंने देश की पूर्ण-स्वाधीनता का व्रत लिया और मजदूर आन्दोलन के सूत्रधार बने। उनका शेष जीवन देश के श्रमिकों की दशा सुधारने में ही बीता। इस अर्थ में देश में भूतपूर्व राष्ट्रपति श्री वी० वी० गिरी के बाद सबसे अधिक दीर्घ सेवा का गौरव श्री दयाराम बेरी को ही जाता है। यह आज बहुतों को विदित भी नहीं होगा कि रविवार को श्रमिकों को जो साप्ताहिक अवकाश मिलता है, वह १९३३ के पहले प्रचलित नहीं था। श्री बेरी ने ही उसके लिए सर्वप्रथम आन्दोलन किया था और सफलता प्राप्त की थी। उन्हीं के प्रयत्नों से १९३३ के बाद ही श्रमिकों को इस साप्ताहिक अवकाश का अधिकार प्राप्त हुआ है।

सन् १९३० में उन्हें महात्मा गाँधी के नमक आन्दोलन में भाग लेने के लिए जेल जाना पड़ा था। १९३४ में जेल से मुक्त होते ही उन्होंने समाजवादी पार्टी की सदस्यता स्वीकार कर ली थी, क्योंकि उन दिनों उनकी दृष्टि से यही एकमात्र पार्टी मजदूरों के हितों की पैरवी और रक्षा करती थी।

नेतृत्व के गुण उनमें बहुत प्रारम्भ से ही प्रकट थे। सामाजिक-सेवा के क्षेत्र में उन्होंने बंगाल में गंगासागर के मेले के अवसर पर स्वयं सेवक दलों का गठन किया था। बंगाल में ही उन्होंने बच्चों की वानरसेना निर्माण की, जिससे आबालवृद्ध सभी की दृष्टि इनके नेतृत्व-गुण से प्रभावित हुई। ये ही प्रवृत्तियाँ उनके राजनैतिक जीवन की दृढ़ आधार शिलायें प्रभावित हुई और वे तत्कालीन राजनैतिक नेताओं के सम्पर्क में आये। रायगढ़ कांग्रेस में जो ज्योति बंगाल से गई थी, उसे श्री बेरी ही एक रथ पर ले गये थे। इसी रथ पर नेताजी सुभाष चन्द्र बोस की सवारी निकली थी। खत्री सभा ने उनकी सामाजिक सेवा से प्रभावित होकर उन्हें 'जातिरत्न' की उपाधि से अलंकृत किया था।

साम्प्रदायिक एकता की दिशा में भी बेरी जी की सक्रिय भूमिका स्मरणीय है। आजादी के पहले और बाद में जब-जब बंगाल में हिन्दू-मुस्लिम एकता को आँच आई, श्री बेरी ने न केवल उस आँच को शमन करने की दिशा में प्रभावशाली कार्य किया, बल्कि पीड़ित जनता के उद्धार और संरक्षण की दिशा में अधिक महत्वपूर्ण योगदान भी दिया। उत्पातों में उत्पीड़ित मुसलमानों को जीवित निकाल लाने का जैसा साहसपूर्ण कार्य बेरी जी ने किया था, उससे प्रेरित बंगाल की साम्प्रदायिक सहिष्णुता अन्य प्रदेशों के लिए अनुकरणीय बन गई।

सन् १९३९ में श्री बेरी के नेतृत्व में जूट मजदूरों की अपनी माँगों के लिए ऐतिहासिक हड़ताल का आयोजन हुआ था, जिसमें लगभग ढाई लाख मजदूरों ने भाग लिया था। पुलिस ने अपने लाठी तंत्र से इस हड़ताल को विफल करने का प्रयत्न किया,

जिसके फलस्वरूप श्री बेरी सांघातिक रूप से आहत हुए। भीषण प्रहारों के कारण वे लगातार साढ़े तीन घंटों तक बेहोश रहे और बाद में उन्हें इक्कीस दिनों तक चारपाई पर पड़े रहना पड़ा। बेरी जी की इस कष्टकर तपस्या का फल यह हुआ कि जूट मिलों के मजदूरों को कई वर्षों से चले आते हुए कष्टों और निपीड़न से मुक्ति मिली। एक लाख मजदूर काम से अलग कर दिए गये थे, जिन्हें पुन: काम पर लेना पड़ा। उस समय श्री बेरी 'नेशनल यूनियन ऑफ जूट वर्कर्स' के अध्यक्ष थे। उन्हीं के नेतृत्व में १४ दिसम्बर, १९३९ को आम हड़ताल का निर्णय लिया गया था। इसी के समर्थन में श्री बेरी ने बजबज से हालीशहर तथा उलूबेड़िया, बाँसबेड़िया आदि स्थानों के बीच एक के बाद एक ५६ सभाओं में अपने ओजस्वी भाषणों से मजदूरों में जागृति और उत्साह के बीज बोये। उसी उत्साह में सौ से अधिक मिलों के ढाई लाख मजदूरों ने संगठित होकर जो अपने दृढ़ ऐक्य का शान्तिपूर्ण प्रदर्शन किया उससे भारत सरकार तक का आसन डोल गया और उसे वेज बोर्ड की स्थापना का आदेश देना पड़ा। मिल मालिकों ने इसका जमकर विरोध किया था, किन्तु श्रम शक्ति के संगठित प्रयत्नों से उनकी एक न चल सकी।

१९३९ में जब द्वितीय विश्व युद्ध छिड़ा तो भारत सरकार ने श्री बेरी को गिरफ्तार कर सात वर्ष की सजा सुना दी। इस लम्बी अवधि में उन्हें अलीपुर, बनारस, देवली कैम्प, बरेली, फतेहगढ़ आदि स्थानों में कैद रक्खा। देवली कैम्प में उन्होंने ३२ दिनों का अनशन कर अपने अधिकारों की रक्षा की।

श्री बेरी की बहुमुखी प्रतिभा न केवल श्रमिक-आन्दोलन की ओर ही केन्द्रित थी, अपितु वे जन-जागरण के प्रत्येक पहलू के प्रति सजग दृष्टि रखते थे। अँग्रेजों के दमन-चक्र से जब हिन्दी समाचार-पत्र एक के बाद एक बन्द होते जा रहे थे, तब बेरी जी ने 'सेनापति' के नाम से एक साप्ताहिक-पत्र निकालकर जन-जागरण की मशाल जलाये रखी। इस पत्र को उग्र, निराला जैसे प्रखर साहित्यकारों का सहयोग था। 'सेनापति' भी सरकार का कोपभाजन हुआ और श्री बेरी १९३९ में बंगाल से निष्कासित कर दिये गये। १९४६ में सात साल की जेल से छूटे तो उत्तर प्रदेश सरकार ने भी उन्हें अपने यहाँ से निष्कासित कर दिया। जब बेरी जी ने बिहार को अपना कार्यक्षेत्र बनाया, तो बिहार से भी ये निष्कासित कर दिये गये। तब इन्हें बम्बई चले जाना पड़ा। भारत के स्वाधीन होने पर ही ये पुन: अपने प्रदेशों में लौट सके और सन् १९४८ में उन्हें अखिल भारतीय राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस का सर्व सम्मति से उपाध्यक्ष चुना गया।

१९५० में श्री बेरी ने अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संघ सम्मेलन में भारत के प्रतिनिधि के रूप में जेनेवा में भाग लिया। इसी प्रवास में उन्होंने यूरोप के बीस देशों का भ्रमण किया और विभिन्न स्थानों पर श्रमिक समस्या तथा गाँधीवाद पर ५७ भाषण दिये। स्काटलैण्ड की जूट मिलों से तब भारत में जूट का आयात होता था, जब कि भारत में ही जूट मिलें चालू हो गई थीं। श्री बेरी ने इस आयात का घोर विरोध किया था, जिससे यह आयात बन्द हो गया था और स्काटलैण्ड में डण्डी की जूट मिलों को भीषण आर्थिक हानि

उठानी पड़ी थी। इसके बावजूद जब बेरी जी डण्डी पहुँचे तो वहाँ श्रमिकों ने उनका मजदूरों के मसीहा के रूप में भावभीना स्वागत समारोह आयोजित किया था।

भारतीय श्रमिक आन्दोलन के प्रति श्री बेरी पूर्णतः समर्पित थे। जिस समय वे अखिल भारतीय राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन के उपाध्यक्ष थे तब सरदार पटेल, आचार्य कृपलानी, शंकरराव देव जैसे नेता सम्बन्धित थे। श्री बेरी ३० वर्षों तक इस कांग्रेस की बंगाल शाखा के सेक्रेटरी रहे। जूट फेडरेशन के सन् १९५२ से मृत्युपर्यन्त अध्यक्ष रहे।

नेताजी श्री सुभाषचन्द्र बोस के अतिरिक्त श्री बेरी के प्रेरणास्रोतों और सहकर्मियों में सर्वश्री जयप्रकाश नारायण, राममनोहर लोहिया, विधानचन्द्र राय, श्रीप्रकाश, आचार्य नरेन्द्रदेव, सम्पूर्णानन्द, पी० सी० घोष, सुरेश बैनर्जी, अजय मुखर्जी, पी० सी० सेन, ज्योति बसु, गोकुलदास शास्त्री, हरिहर नाथ शास्त्री, राजाराम शास्त्री, कमलापति त्रिपाठी, आचार्य बीरबल सिंह, डॉ० केसकर, रफी अहमद किदवई, अलगू राय शास्त्री, पुरुषोत्तम दास टंडन, खण्डूभाई देसाई, मीनू मसानी, सहजानन्द सरस्वती, अनुग्रह नारायण सिंह, विपिन बिहारी गांगुली, राजनारायण आदि धुरन्धर नेता थे। श्रमिक आन्दोलनों के सन्दर्भ में उन्होंने कलकत्ता में बिजली कर्मचारियों की यूनियन बनाई। सन् १९३० के लगभग उन्होंने गाड़ीवानों को संगठित कर आन्दोलन किया। स्वतंत्र भारत में सन् १९५१ में ओरिएण्ट गैस कम्पनी की स्ट्राइक तुड़वाने पर कांग्रेस राज्य में भी उन्हें मार खानी पड़ी थी।

साहित्य और मुद्रण तथा प्रकाशन क्षेत्र भी श्री बेरी की प्रतिभा से अछूता नहीं रहा। 'सेनापति' नामक साप्ताहिक पत्र के तो वे संस्थापक, सम्पादक थे ही। वे जीवन पर्यन्त मजदूरों की समस्याओं के समाधान में सक्रिय रहे। श्रमिकों के उत्थान के लिए गठित कई सरकारी एवं गैर-सरकारी संस्थाओं के वे सदस्य थे। जूट मिल मालिकों ने जूट की कमी का बहाना कर जब काम के घंटे कम कर दिये और इस तरह मजदूरों की आय में क्षति पहुँचाई, तो नेशनल यूनियन की ओर से श्री बेरी ने इसके घोर विरोध में आन्दोलन किया; मजदूरों की माँगों के प्रचार के लिए पद-यात्रायें आयोजित कीं। स्वयं श्री बेरी ने सड़सठ वर्ष की उम्र में पचास मील की पदयात्रा में सबसे आगे चलकर मजदूरों में जागृति फैलाई थी। वेज बोर्ड की घोषणा के बावजूद जब १२ माह तक उसे कार्यान्वित नहीं किया गया तो १३ फरवरी, १९६१ को फिर हड़ताल हुई और श्री बेरी के प्रयत्नों से २ लाख १० हजार श्रमिकों को अन्तरिम सहायता का लाभ मिला।

अपनी सेवाओं के फलस्वरूप जनता ने श्री बेरी को तीन सत्रों तक सन् १९५२, १९६२ तथा १९६७ में बंगाल विधान सभा में अपना प्रतिनिधि चुनकर भेजा।

सवज्ञा आन्दोलन, खिलाफत आन्दोलन, हिन्दु-मुस्लिम एकता का प्रबल हिमायती, श्रमिकों का मसीहा और देश की स्वाधीनता के संग्राम का यह अपराजेय योद्धा १६ मई, १९७८ को ८४ वर्ष की अवस्था में गोलोकवासी हुआ। उनकी सेवाएँ सदा स्मरण की जायेंगी, मजदूरों के हृदय में तो वे सदा ही अमर रहेंगे।

पंजाब में हिन्दी प्रकाशन के अग्रदूत : महाशय राजपाल

स्वतंत्रता से पहले पंजाब में हिन्दी का प्रचलन बहुत कम था, हिन्दी के प्रकाशक तो नगण्य थे। अधिकतर पुस्तकें उर्दू या पंजाबी में प्रकाशित होती थीं। उस जमाने में महाशय राजपालजी ने 'आर्य पुस्तकालय तथा सरस्वती आश्रम' नामों के अन्तर्गत हिन्दी प्रकाशन का न केवल श्रीगणेश किया, बल्कि हिन्दी के प्रचार-प्रसार के सशक्त माध्यम बने।

कल्पना कीजिए, आज से ७० वर्ष पूर्व का समय, जब पुस्तक-प्रकाशन बिल्कुल अव्यवस्थित था, प्रकाशन-कला सिखाने के लिए आज की तरह न कोई सुविधाएँ थीं, न ही इस विषय पर कोई प्रामाणिक पुस्तक ही उपलब्ध थी—उस ज़माने में राजपालजी ने स्तरीय प्रकाशन के ऐसे आयाम स्थापित किए कि आज उन पर विश्वास करना भी कठिन लगता है। लाहौर में रहते हुए उन्होंने अनेक पुस्तकें इलाहाबाद के इण्डियन प्रेस द्वारा छपवाई थीं। पूरे संस्करण की प्रतियाँ लकड़ी की बड़ी पेटियों में बंद होकर इलाहाबाद से दिल्ली आती थीं। पुस्तकों में फेदर वेट एण्टिक कागज का प्रयोग किया गया था। पुस्तकों के बहुरंगी आवरण कलकत्ता के सुप्रसिद्ध चित्रकार टी० के० मित्रा से बनवाए और अनेक पुस्तकों पर राजा रवि वर्मा की उत्कृष्ट पेन्टिंगों का प्रयोग किया गया। ऐसे सभी चित्र बहुरंगी हाफटोन में होते थे।

राजपालजी ने उस जमाने में अँग्रेजी भाषा की चर्चित पुस्तकों के प्रामाणिक हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किए, जैसे मेरी स्टोप्स की लोकप्रिय पुस्तक 'मैरिड लव' का पं० संतराम बी० ए० द्वारा हिन्दी अनुवाद 'विवाहित प्रेम' के नाम से।

दूसरी ओर ऐसे विषयों की पुस्तकों को हिन्दी में प्रकाशित करने का साहस भी किया, जो वर्जित थे। भारत भर में परिवार-नियोजन पर सबसे पहली हिन्दी पुस्तक 'सन्तान-संख्या का सीमा-बन्धन' उन्होंने प्रकाशित की थी। यह ३०० पृष्ठों की सचित्र प्रामाणिक पुस्तक थी। बर्थ कन्ट्रोल के लिए तब हिन्दी का कोई शब्द प्रचलित नहीं हुआ था क्योंकि जन-साधारण में जन्म-निरोध की न समझ थी और न ही उसकी उपयोगिता का ज्ञान था। पुस्तक प्रकाशित होने पर बावेला मचा था कि पुस्तक का विषय ही अनैतिक है, आदि।

सन् १९२० और १९३० के दशक में राजपालजी ने तीन भाषाओं में एक साथ स्तरीय पुस्तकें प्रकाशित कीं। हिन्दी और उर्दू में उनके द्वारा प्रकाशित पुस्तकों की संख्या

२०० से ऊपर थी। अंग्रेजी में भी अनेक पुस्तकें प्रकाशित कीं जो उस समय के विख्यात विद्वानों द्वारा लिखी गई थीं। पं० गुरुदत्त एम० ए०, जो गवर्नमेन्ट कॉलेज लाहौर में प्रोफेसर थे और डी० ए० वी० कॉलेज के संस्थापकों में थे, उनकी ४०० पृष्ठ की पुस्तक 'विस्डम ऑफ रिशीज़' थी। अपने विषय पर यह पुस्तक आज भी प्रामाणिक दस्तावेज के समान मानी जाती है। इसी प्रकार प्रो० टी० एल० वासवानी की पुस्तक 'दि टॉर्च बेयरर' भी प्रकाशित की। वासवानीजी उस समय के चर्चित विद्वान् लेखक व सिन्धी समाज के प्रबुद्ध विचारक थे। एक और पुस्तक जो आर्यसमाज के १० नियमों का अँग्रेजी परिचय देती है और जिसके लेखक थे पं० चमूपति जो बाद में गुरुकुल कांगड़ी के आचार्य बने। पुस्तक का नाम था 'दि टेन कमाण्डेन्ट्स'। इस पुस्तक के आज तक अनेक संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। इसके अतिरिक्त भी अन्य कई पुस्तकें अंग्रेजी में प्रकाशित की गई थीं।

प्रकाशन की स्वतंत्रता

विचार-स्वातंत्र्य और प्रकाशन की स्वतंत्रता सदियों से कठिन परीक्षा से गुजर रही है। इतिहास साक्षी है कि सम्राटों ने और धर्मगुरुओं ने जब भी कोई पुस्तक अथवा विचारधारा उनके मत के प्रतिकूल हुई तो उन्होंने उसे दबा देने, पुस्तक की प्रतियाँ ज़ब्त करने अथवा उन्हें जला देने, ऐसे विचारकों और लेखकों को कठिन से कठिन सज़ा देने में और मृत्यु-दण्ड देने तक में भी जरा भी हिचक नहीं की। अनेक लेखकों को कारावास के दण्ड भुगतने पड़े, उन्हें कत्ल भी कर दिया गया या करवा दिया गया।

महाशय राजपालजी ने प्रकाशन की स्वतंत्रता के लिए एक तरह से अपने प्राणों की बलि दे दी। इस सदी के पहले तीन दशक अर्थात् सन् १९३० तक विभिन्न धर्मों में एक-दूसरे की तीखी आलोचना, घात-प्रतिघात, शास्त्रार्थ, बहस-मुबाहसों का चलन था। एक धर्मावलम्बी अन्य धर्मों के मंतव्यों पर दो टूक भाषा में लिखा करता था और अपने धर्म की श्रेष्ठता सिद्ध करता था।

इसी परिवेश में महाशय राजपालजी ने एक पुस्तक 'रंगीला रसूल' १९२३ में प्रकाशित की, जिसका तीव्र विरोध हुआ। लेखक के नाम के अभाव में और उसका नाम बार बार पूछे जाने पर भी अन्त तक उजागर न करने पर बड़ा बवेला हुआ। १९२४ से [illegible] मुकदमा चला, जिसमें सेशन से एक वर्ष की कैद की सज़ा भी हुई। परन्तु हाई कोर्ट ने सज़ा रद्द कर दी। तत्पश्चात उन पर तीन कातिलाना हमले हुए, जिसमें अन्तिम ६ अप्रैल, १९२९ का आक्रमण राजपाल जी के लिए प्राण लेवा बना।

"प्राण जाय पर वचन न जाई"

वे अपने वचन के बड़े पक्के थे और अपने अन्तिम समय तक इस सिद्धान्त को बखूबी निभाया। वे विचार स्वातंत्र्य और प्रकाशन की स्वतंत्रता में विश्वास करते थे।

इसी प्रसंग में एक बात और—महाशय राजपालजी द्वारा प्रकाशित अनेक पुस्तकों पर तत्कालीन ब्रिटिश सरकार ने मुकदमे चलाये, जुर्माने किए और ऐसी पुस्तकों के

संस्करण भी ज़ब्त कर लिए। इतिहास के प्रसिद्ध विद्वान् भाई परमानन्दजी ने, जिन्हें ब्रिटिश सरकार ने काले पानी की सज़ा दी थी, अनेक इतिहास की पुस्तकें राष्ट्रीय दृष्टिकोण से लिखी थीं। ये सभी पुस्तकें राजपालजी ने प्रकाशित की थीं। इनमें से 'तारीख-ए-हिन्द' (भारत का इतिहास) पुस्तक छपते ही ज़ब्त की गई और मुकदमा भी चला। इसी तरह एक अन्य पुस्तक 'देश की वात' जो हिन्दी में प्रकाशित हुई थी, उस पर बनारस की कोर्ट में मुकदमा चला, जिसके सिलसिले में उन्हें अनेकों बार लाहौर से बनारस की यात्राएँ करनी पड़ीं। अन्य भी ऐसी अनेक पुस्तकें हैं जिनके प्रकाशन के कारण वे ब्रिटिश सरकार के कोपभाजन बने—जैसे डॉ० सत्यपालजी द्वारा लिखित 'पंजाब बीति अथवा जलियाँवाला बाग का हत्याकांड' और 'काले पानी के कारावास की कहानी' भाई परमान्द द्वारा लिखित, इत्यादि।

महाशय राजपालजी स्वयं अच्छे लेखक एवं कुशल सम्पादक थे। उन्होंने अनेक पुस्तकें स्वयं लिखीं तथा अन्य सुयोग्य लेखकों के लेखों तथा भाषणों को लिपिबद्ध एवं सम्पादित करके प्रकाशित किया। अमर बलिदानी स्वामी श्रद्धानन्दजी के पत्र 'सन्दर्भ-प्रचारक' में वे महामना स्वामीजी के सहायक सम्पादक थे। कालान्तर में वे लाहौर से निकलने वाले साप्ताहिक 'प्रकाश' के वर्षों सह-सम्पादक रहे। उन्होंने पुस्तक-प्रकाशन के क्षेत्र में उस समय पदार्पण किया जब इस व्यवसाय में संघर्ष और जोखिम अधिक थी, पैसा कम। परन्तु उस ज़माने में वे लोग ही प्रकाशन में आते थे जो आदर्शवादी थे तथा जो पुस्तकों के माध्यम से सामाजिक एवं राष्ट्रीय चेतना जगाना चाहते थे।

संक्षिप्त परिचय का अंत एक पुस्तक की भूमिका में लिखे उन्हीं के शब्दों में :—

'अच्छे साहित्य की आवश्यकता : यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि किसी देश की उन्नति उसके ऊँचे स्थायी साहित्य व कथनी करनी के धनी लेखकों एवं विद्वानों पर निर्भर करती है। प्राचीन ऐतिहासिक दृष्टान्तों को छोड़ दें, वर्तमान उन्नतिशील देशों की ओर दृष्टि डालिए तो आपको पता चल जाएगा कि उन्नति के पथ पर वही बढ़ रहे हैं जिनका साहित्य अच्छा है। व्याख्यान व उपदेश भी अपने स्थान पर बहुत अच्छा प्रभाव डालते हैं, परन्तु साहित्य का प्रभाव अत्यंत स्थायी व असीम होता है।

आगे वही जिनके पास श्रेष्ट लेखक हैं : एक वक्ता की वाणी यदि दस सहस्र व्यक्तियों पर अपना प्रभाव डाल सकती है तो निःसन्देह एक कथनी-करनी के धनी लेखक की लौह-लेखनी सहस्रों मीलों की दूरी पर बैठे हुए लाखों मनुष्यों के हृदयों को हिला सकती है। लेखनी की शक्ति बड़ी महान् है। ईसाई धर्म के प्रचारकों को संसार के जिन भागों में जाने की अनुमति नहीं मिलती, उनमें वे अपना साहित्य किसी न किसी प्रकार से बिखेर देते हैं।

साहित्य की कमी : परन्तु खेद का विषय है कि आज अच्छे साहित्य के सृजन की किसी को चिन्ता ही नहीं। पहले तो कुछ संस्थाएँ इस दिशा में कुछ प्रशंसनीय उद्योग करती थीं परन्तु अब तो जो कुछ भी हो रहा है, अपने-अपने स्थान पर कुछ व्यक्ति ही

२०० से ऊपर थी। अंग्रेजी में भी अनेक पुस्तकें प्रकाशित कीं जो उस समय के विख्यात विद्वानों द्वारा लिखी गई थीं। पं० गुरुदत्त एम० ए०, जो गवर्नमेन्ट कॉलेज लाहौर में प्रोफ़ेसर थे और डी० ए० वी० कॉलेज के संस्थापकों में थे, उनकी ४०० पृष्ठ की पुस्तक 'विस्डम ऑफ रिशीज़' थी। अपने विषय पर यह पुस्तक आज भी प्रामाणिक दस्तावेज के समान मानी जाती है। इसी प्रकार प्रो० टी० एल० वासवानी की पुस्तक 'दि टॉर्च बेयरर' भी प्रकाशित की। वासवानीजी उस समय के चर्चित विद्वान् लेखक व सिन्धी समाज के प्रबुद्ध विचारक थे। एक और पुस्तक जो आर्यसमाज के १० नियमों का अँग्रेजी परिचय देती है और जिसके लेखक थे पं० चमूपति जो बाद में गुरुकुल कांगड़ी के आचार्य बने। पुस्तक का नाम था 'दि टेन कमाण्डेन्ट्स'। इस पुस्तक के आज तक अनेक संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। इसके अतिरिक्त भी अन्य कई पुस्तकें अंग्रेजी में प्रकाशित की गई थीं।

प्रकाशन की स्वतंत्रता

विचार-स्वातंत्र्य और प्रकाशन की स्वतंत्रता सदियों से कठिन परीक्षा से गुजर रही है। इतिहास साक्षी है कि सम्राटों ने और धर्मगुरुओं ने जब भी कोई पुस्तक अथवा विचारधारा उनके मत के प्रतिकूल हुई तो उन्होंने उसे दबा देने, पुस्तक की प्रतियाँ ज़ब्त करने अथवा उन्हें जला देने, ऐसे विचारकों और लेखकों को कठिन से कठिन सज़ा देने में और मृत्यु-दण्ड देने तक में भी जरा भी हिचक नहीं की। अनेक लेखकों को कारावास के दण्ड भुगतने पड़े, उन्हें कत्ल भी कर दिया गया या करवा दिया गया।

महाशय राजपालजी ने प्रकाशन की स्वतंत्रता के लिए एक तरह से अपने प्राणों की बलि दे दी। इस सदी के पहले तीन दशक अर्थात् सन् १९३० तक विभिन्न धर्मों में एक-दूसरे की तीखी आलोचना, घात-प्रतिघात, शास्त्रार्थ, बहस-मुबाहसों का चलन था। एक धर्मावलम्बी अन्य धर्मों के मंतव्यों पर दो टूक भाषा में लिखा करता था और अपने धर्म की श्रेष्ठता सिद्ध करता था।

इसी परिवेश में महाशय राजपालजी ने एक पुस्तक 'रंगीला रसूल' १९२३ में प्रकाशित की, जिसका तीव्र विरोध हुआ। लेखक के नाम के अभाव में और उसका नाम बार बार पूछे जाने पर भी अन्त तक उजागर न करने पर बड़ा बवेला हुआ। १९२४ से वर्षों मुकदमा चला, जिसमें सेशन से एक वर्ष की कैद की सज़ा भी हुई। परन्तु हाई कोर्ट ने सज़ा रद्द कर दी। तत्पश्चात् उन पर तीन कातिलाना हमले हुए, जिसमें अन्तिम ६ अप्रैल, १९२९ का आक्रमण राजपाल जी के लिए प्राण लेवा बना।

"प्राण जाय पर वचन न जाई"

वे अपने वचन के बड़े पक्के थे और अपने अन्तिम समय तक इस सिद्धान्त को बखूबी निभाया। वे विचार स्वातंत्र्य और प्रकाशन की स्वतंत्रता में विश्वास करते थे।

इसी प्रसंग में एक बात और—महाशय राजपालजी द्वारा प्रकाशित अनेक पुस्तकों पर तत्कालीन ब्रिटिश सरकार ने मुकदमें चलाये, जुर्माने किए और ऐसी पुस्तकों के

संस्करण भी ज़ब्त कर लिए। इतिहास के प्रसिद्ध विद्वान् भाई परमानन्दजी ने, जिन्हें ब्रिटिश सरकार ने काले पानी की सज़ा दी थी, अनेक इतिहास की पुस्तकें राष्ट्रीय दृष्टिकोण से लिखी थीं। ये सभी पुस्तकें राजपालजी ने प्रकाशित की थीं। इनमें से 'तारीख-ए-हिन्द' (भारत का इतिहास) पुस्तक छपते ही ज़ब्त की गई और मुकदमा भी चला। इसी तरह एक अन्य पुस्तक 'देश की बात' जो हिन्दी में प्रकाशित हुई थी, उस पर बनारस की कोर्ट में मुकदमा चला, जिसके सिलसिले में उन्हें अनेकों बार लाहौर से बनारस की यात्राएँ करनी पड़ीं। अन्य भी ऐसी अनेक पुस्तकें हैं जिनके प्रकाशन के कारण वे ब्रिटिश सरकार के कोपभाजन बने—जैसे डॉ॰ सत्यपालजी द्वारा लिखित 'पंजाब बीति अथवा जलियाँवाला बाग का हत्याकांड' और 'काले पानी के कारावास की कहानी' भाई परमान्द द्वारा लिखित, इत्यादि।

महाशय राजपालजी स्वयं अच्छे लेखक एवं कुशल सम्पादक थे। उन्होंने अनेक पुस्तकें स्वयं लिखीं तथा अन्य सुयोग्य लेखकों के लेखों तथा भाषणों को लिपिबद्ध एवं सम्पादित करके प्रकाशित किया। अमर बलिदानी स्वामी श्रद्धानन्दजी के पत्र 'सन्दर्भ-प्रचारक' में वे महामना स्वामीजी के सहायक सम्पादक थे। कालान्तर में वे लाहौर से निकलने वाले साप्ताहिक 'प्रकाश' के वर्षों सह-सम्पादक रहे। उन्होंने पुस्तक-प्रकाशन के क्षेत्र में उस समय पदार्पण किया जब इस व्यवसाय में संघर्ष और जोखिम अधिक थी, पैसा कम। परन्तु उस ज़माने में वे लोग ही प्रकाशन में आते थे जो आदर्शवादी थे तथा जो पुस्तकों के माध्यम से सामाजिक एवं राष्ट्रीय चेतना जगाना चाहते थे।

संक्षिप्त परिचय का अंत एक पुस्तक की भूमिका में लिखे उन्हीं के शब्दों में :—

'अच्छे साहित्य की आवश्यकता : यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि किसी देश की उन्नति उसके ऊँचे स्थायी साहित्य व कथनी करनी के धनी लेखकों एवं विद्वानों पर निर्भर करती है। प्राचीन ऐतिहासिक दृष्टान्तों को छोड़ दें, वर्तमान उन्नतिशील देशों की ओर दृष्टि डालिए तो आपको पता चल जाएगा कि उन्नति के पथ पर वही बढ़ रहे हैं जिनका साहित्य अच्छा है। व्याख्यान व उपदेश भी अपने स्थान पर बहुत अच्छा प्रभाव डालते हैं, परन्तु साहित्य का प्रभाव अत्यंत स्थायी व असीम होता है।

आगे वही जिनके पास श्रेष्ट लेखक हैं : एक वक्ता की वाणी यदि दस सहस्र व्यक्तियों पर अपना प्रभाव डाल सकती है तो निःसन्देह एक कथनी-करनी के धनी लेखक की लौह-लेखनी सहस्रों मीलों की दूरी पर बैठे हुए लाखों मनुष्यों के हृदयों को हिला सकती है। लेखनी की शक्ति बड़ी महान् है। ईसाई धर्म के प्रचारकों को संसार के जिन भागों में जाने की अनुमति नहीं मिलती, उनमें वे अपना साहित्य किसी न किसी प्रकार से बिखेर देते हैं।

साहित्य की कमी : परन्तु खेद का विषय है कि आज अच्छे साहित्य के सृजन की किसी को चिन्ता ही नहीं। पहले तो कुछ संस्थाएँ इस दिशा में कुछ प्रशंसनीय उद्योग करती थीं परन्तु अब तो जो कुछ भी हो रहा है, अपने-अपने स्थान पर कुछ व्यक्ति ही

पुरुषार्थ कर रहे हैं। सभाओं के बारे में कुछ न कहना ही अच्छा है। जिनमें योग्यता है वे और धन्धों में फँसे हुए हैं और पुस्तक-निर्माण का कार्य ऐसे अयोग्य हाथों में आ रहा है जिनसे लाभ के बजाय हानि हो रही है।

रामायण व महाभारत जिन पर पहले ही अनेक टीकायें व ग्रन्थ उपलब्ध हैं, उन्हीं पर शक्ति लगाई जा रही है। जिसके जी में जो आता है, ट्रैक्ट छपा देता है। इस प्रकार बहुत कम पुस्तकें ऐसी प्रकाशित हुई हैं जिनको स्थायी साहित्य का स्थान दिया जा सकता है। (मई १९२५)'

राजपालजी ने अपने छोटे से प्रकाशकीय जीवन-काल में हिन्दी पुस्तकों को सुदूर विदेशों में बसे भारतीय मूल के लोगों तक पहुँचाने में सुनियोजित ढंग से सफल प्रयत्न किया। उनके जीवन-काल में उनके प्रकाशन—मारिशस, फिजी, पूर्वी अफ्रीका, ब्रिटिश तथा डच गायना आदि स्थानों पर बड़ी संख्या में जाते थे। ४२ वर्ष की अवस्था में वे देवलीन हो गये।

परिशिष्ट

- ✍ फेडरेशन ऑफ इण्डियन पब्लिशर्स
- ✍ विएना का अंतर्राष्ट्रीय प्रकाशक सम्मेलन
- ✍ प्रथम विश्व हिन्दी सम्मेलन
- ✍ हिन्दी प्रकाशक संघ की उपलब्धियाँ
- ✍ अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ का महत्वपूर्ण पटना अधिवेशन
- ✍ अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ का तेरहवाँ अधिवेशन
- ✍ अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ के २२वें अधिवेशन में विचारणीय विषय
- ✍ वाराणसी का हिन्दी प्रकाशन उद्योग

पुरुषार्थ कर रहे हैं। सभाओं के बारे में कुछ न कहना ही अच्छा है। जिनमें योग्यता है वे और धन्धों में फँसे हुए हैं और पुस्तक-निर्माण का कार्य ऐसे अयोग्य हाथों में आ रहा है जिनसे लाभ के बजाय हानि हो रही है।

रामायण व महाभारत जिन पर पहले ही अनेक टीकायें व ग्रन्थ उपलब्ध हैं, उन्हीं पर शक्ति लगाई जा रही है। जिसके जी में जो आता है, ट्रैक्ट छपा देता है। इस प्रकार बहुत कम पुस्तकें ऐसी प्रकाशित हुई हैं जिनको स्थायी साहित्य का स्थान दिया जा सकता है। (मई १९२५)'

राजपालजी ने अपने छोटे से प्रकाशकीय जीवन-काल में हिन्दी पुस्तकों को सुदूर विदेशों में बसे भारतीय मूल के लोगों तक पहुँचाने में सुनियोजित ढंग से सफल प्रयत्न किया। उनके जीवन-काल में उनके प्रकाशन—मारिशस, फिजी, पूर्वी अफ्रीका, ब्रिटिश तथा डच गायना आदि स्थानों पर बड़ी संख्या में जाते थे। ४२ वर्ष की अवस्था में वे देवलीन हो गये।

परिशिष्ट

- ✍ फेडरेशन ऑफ इण्डियन पब्लिशर्स
- ✍ विएना का अंतर्राष्ट्रीय प्रकाशक सम्मेलन
- ✍ प्रथम विश्व हिन्दी सम्मेलन
- ✍ हिन्दी प्रकाशक संघ की उपलब्धियाँ
- ✍ अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ का महत्वपूर्ण पटना अधिवेशन
- ✍ अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ का तेरहवाँ अधिवेशन
- ✍ अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ के २२वें अधिवेशन में विचारणीय विषय
- ✍ वाराणसी का हिन्दी प्रकाशन उद्योग

फेडरेशन ऑफ इण्डियन पब्लिशर्स

भारत में प्रकाशकों की बहुत-सी संस्थाएँ बनीं। एक फेडरेशन ऑफ पब्लिशर्स एण्ड बुक सेलर्स एसोसिएशन सन् १९५५ के लगभग बनी जिसमें प्राय: अँग्रेजी के प्रकाशक व पुस्तकों का आयात करनेवाले इम्पोर्टर्स थे। इसी में कुछ-एक अँग्रेजी पुस्तकें छापने वाले भारतीय प्रकाशक थे। इस संस्था की शुरुआत ठीक ढंग से हुई परन्तु जब बहुत से प्रकाशकों ने देखा कि इस तरह की मिश्रित संस्था में काम ठीक प्रकार से नहीं होता है तो सन् १९७० में फेडरेशन ऑफ इण्डियन पब्लिशर्स नाम की एक नयी संस्था बनायी गयी जिसमें केवल भारतीय प्रकाशक रखे गए—पुस्तक विक्रेता व इम्पोर्टर नहीं। यह संस्था विशुद्ध रूप से चली और आज इसको २५ साल से ऊपर हो गए हैं। इस संस्था के सभी अध्यक्ष उच्च कोटि के भारतीय प्रकाशक रहे हैं।

सबसे अधिक श्रेय की बात यह है कि सन् १९९० से इस फेडरेशन ने भारतीय भाषाओं के प्रकाशकों को बढ़ावा देना शुरु किया। पहली बार भारतीय भाषाओं के विभिन्न प्रकाशकों का एक सम्मेलन दिल्ली में किया गया जिसने देश भर के प्रकाशक चाहे वे कन्नड़ में पुस्तकें प्रकाशित करते हों, मलयालम में, उड़िया में या उर्दू अथवा पंजाबी में करते हों, सभी को एक मंच पर ला दिया। उनकी समस्याएँ एक जैसी थीं और उनको पहली बार यह बोध हुआ कि वे सब मिलकर बहुत कुछ कर सकते हैं। जो केवल अँग्रेजी के प्रकाशकों का बोल-बाला था उसको जरा संयमित किया गया। यह ठीक है कि अँग्रेजी भी अब भारतीय भाषा जैसी है और अँग्रेजी पुस्तकों के प्रकाशन में भारत संसार में अमेरिका और इंग्लैण्ड के बाद तीसरा स्थान रखता है। परन्तु यह मूल में तो हमारी भाषा नहीं है। हाँ, उसके द्वारा हम देश भर में सम्प्रेषण कर सकते हैं और विदेशों में भी अपना संदेश पहुँचा सकते हैं।

भारतीय भाषाओं के प्रकाशकों को इकट्ठा करने का श्रेय श्री दीनानाथ मल्होत्रा को है जो फेडरेशन ऑफ इण्डियन पब्लिशर्स के कई बार अध्यक्ष बने और उन्होंने भारतीय भाषाओं के प्रकाशकों को उत्साहित किया और इस प्रोत्साहन के कदम में हर वर्ष विभिन्न भारतीय भाषाओं के एक-एक प्रकाशक को विशिष्ट सेवा का सम्मान भी दिया गया। इन सब प्रकाशकों के आपस में मिलने पर इन्हें यह पता लगा कि भारतीय भाषाओं का प्रकाशन ८० प्रतिशत है और अँग्रेजी केवल २० प्रतिशत, हालाँकि जो नेशनल लायब्रेरी कलकत्ता के आँकड़े हैं वे कुछ और ही चित्र सामने पेश करते थे।

फेडरेशन ऑफ इण्डियन पब्लिशर्स अन्तर्राष्ट्रीय पुस्तक प्रकाशक संघ से भी सम्बन्धित है जिसका मुख्य कार्यालय जेनेवा, स्विटजरलैण्ड में है। सन् १९९२ में भारत के प्रकाशकों की और फेडरेशन ऑफ इण्डियन पब्लिशर्स की अहमियत को समझकर अन्तर्राष्ट्रीय प्रकाशक संघ ने यहाँ पर अन्तर्राष्ट्रीय प्रकाशक कांग्रेस का आयोजन किया जो

बहुत ही सफल रहा। इसके अतिरिक्त भारत के प्रकाशक विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में भी जाने लगे और भारत का सिर ऊँचा हुआ।

फेडरेशन ऑफ इण्डियन पब्लिशर्स के अन्तर्गत एक कॉपीराइट काउन्सिल ऑफ इण्डिया का आयोजन भी किया गया जिसमें न केवल प्रकाशक बल्कि आथर्स गिल्ड ऑफ इण्डिया, फिल्म फेडरेशन, परफॉरमर्स राइट सोसाइटी तथा अन्य कॉपीराइट से सम्बन्धित संस्थाओं ने भी साथ दिया। भारत सरकार की ओर से एक 'कॉपीराइट इन्फोर्समेंट मैनुअल' बनाने का काम भी फेडरेशन को दिया गया जिसे कॉपीराइट काउन्सिल के अध्यक्ष श्री दीनानाथ मल्होत्रा ने पूरा किया और यह हिन्दी तथा अँग्रेजी दोनों में प्रकाशित हुआ। बाद में यह योजना बनी कि भारत की सभी भाषाओं में यह प्रकाशित हो और कॉपीराइट से सम्बन्धित सभी पुलिस अधिकारियों को देश भर में दिया जाए। इन सब प्रयत्नों का यह परिणाम हुआ कि बाहर देशों में जहाँ लोग यह समझते थे कि भारत के लोग बिना पूछे और बिना कॉपीराइट का आदर किए जो मर्जी प्रकाशित कर लेते हैं, वह दूर हुआ। कॉपीराइट और बुद्धिजीवियों का आदर भारत में भी वैसा ही है जैसे अन्य देशों में। बल्कि हमारे यहाँ की तो यह परम्परा है कि जो विद्वान है, जो प्राचार्य है और जो लेखक है उसको खूब सम्मान मिलता है।

❀

विएना का अन्तर्राष्ट्रीय प्रकाशक सम्मेलन

अन्तर्राष्ट्रीय प्रकाशकों का सम्मेलन विएना में २४ मई, १९५९ से ३० मई, १९५९ तक हुआ था। अन्तर्राष्ट्रीय प्रकाशक संघ की स्थापना सन् १८९६ में हुई थी। इस संघ के उन दिनों २६ देश सदस्य थे एशियाई देशों में से भारत, पाकिस्तान, कोरिया, जापान, इजराएल इसके सदस्य रहे।

संघ का उद्देश्य विश्व के प्रकाशकों को इसलिए संयुक्त रखना है कि वे भाषण और मुद्रण की स्वतन्त्रता का उपभोग कर सकें—उस स्वतन्त्रता का जो मानव के आध्यात्मिक जीवन और मानसिक क्रियाओं का केन्द्र-स्थल है। इस स्वतन्त्रता के बिना सम्पूर्ण साहित्य—जो मानसिक क्रिया का मांगलिक फल है—मानव-चरित्र और ज्ञान के विकास के विपरीत जा पड़ेगा। इसलिए उन सबको जिसमें पुस्तक प्रकाशक और वितरक भी शामिल हैं, जो विचार, भाषण और लेखन की स्वाधीनता का मूल्य समझते हैं, उस स्वाधीनता की सुरक्षा के लिए संयुक्त होना चाहिए और जहाँ कहीं भी कोई रोक-टोक लगाने की कोशिश की जाय वहाँ एक साथ मिलकर दृढ़ता से इसका विरोध हो।

अन्तर्राष्ट्रीय प्रकाशक कांग्रेस का २५वाँ अधिवेशन अत्यन्त सफल रहा। परन्तु, एशियाई प्रकाशक उससे उतना अधिक लाभ नहीं उठा सके जितना कि वे उठा सकते थे। इस प्रकार के अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों से तीन प्रकार के लाभ होते हैं:

१. सामाजिक और सांस्कृतिक संबंधों का स्थापन।

२. सदस्य राष्ट्रों से व्यापारिक संबंधों का स्थापन।

३. एक-दूसरे के अनुभव और ज्ञान से लाभ प्राप्त करना।

भारतीय प्रतिनिधि मण्डल के निम्न सदस्य थे: रामलालपुरी (आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली), कृष्णचन्द्र बेरी (हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी) और श्यामलाल गुप्त (एस० चाँद एण्ड कम्पनी, दिल्ली)। रामलालपुरी मण्डल के नेता थे। श्रीओमप्रकाश (राजकमल प्रकाशन, दिल्ली) प्रतिनिधि मण्डल में सम्मिलित न हो सके। उनको किसी कारणवशात् समय या पासपोर्ट नहीं मिला।

२५ मई, १९५९ को २६ सदस्य राष्ट्रों के छः सौ प्रतिनिधियों ने खुले अधिवेशन में भाग लिया। यह अधिवेशन विएना के होपबुर्ग प्रासाद में प्रारम्भ हुआ। लगभग सभी प्रतिनिधि सपत्नीक पधारे थे।

उद्‌घाटन भाषण, विएना के उप-महापौर लुई वेनबर्गर ने किया। शिक्षामंत्री हाइनरिख ड्रिगेल ने अपने भाषण में प्रकाशन-व्यवसाय के महत्व पर प्रकाश डाला और आशा प्रकट की कि प्रकाशकगण पहले की ही तरह सांस्कृतिक जागरूकता और विश्वशान्ति के उन्नयन में संयुक्त रूप से लगे रहेंगे। व्यापार और पुनर्निर्माण मंत्री डॉ० फ्रिट्ज़ वॉक ने प्रकाशकों का स्वागत किया और कामना की कि विश्व-भर के प्रकाशकों का यह सम्मेलन निश्चय ही एक नई और महत्वपूर्ण दिशा का मार्ग प्रशस्त करेगा।

आगत सभापति फ्रिट्ज़ रॉस ने अपने सारगर्भित भाषण में कहा कि पुस्तकों की परावर्ती अर्थात् पारम्परिक ज्ञान प्रदान करनेवाली भूमिका अब नये वैज्ञानिक आविष्कारों यथा रेडियो और टेलिवीजन ने छीन ली है। प्रथम विश्वयुद्ध के प्रारम्भ से वैयक्तिक युग का लोप हो गया और जनता की क्रान्तियों का सूत्रपात हुआ। इसलिए तब से प्रकाशकों के कर्त्तव्य में भी कुछ परिवर्तन आना आवश्यक ही था। अब प्रकाशक के उत्तरदायित्व कम होने के स्थान पर बढ़ गए हैं। मानव और समाज के सामाजिक ढाँचे की भौतिक और आर्थिक प्रगति ने एक बिल्कुल नया स्वरूप ग्रहण कर लिया है। मानसिक उन्नति के मुकाबले भौतिक उपलब्धियों पर जोर है। इस तथ्य से कोई इन्कार नहीं कर सकता कि पुस्तकें संस्कृति के उन्नयन में एक प्रमुख माध्यम हैं। परन्तु कुछ देशों में पुस्तकों को और वस्तुओं के मुकाबले कुछ बेहतर ढंग पर नहीं लिया जाता।

मध्याह्न में दूसरी सभा हुई। इसका प्रारम्भ डॉ० हॉन्स कौजेंट की रिपोर्ट से हुआ। उनकी रिपोर्ट का मुख्य विषय था—विभिन्न देशों के मध्य पुस्तकों का बेरोकटोक आयात-निर्यात। उन्होंने इस संबंध में विभिन्न सरकारों द्वारा निर्यात, चुंगी और कापीराइट के बारे में उत्पन्न की गई कठिनाइयों का भी उल्लेख किया। महामन्त्री की रिपोर्ट पर विचार करने के बाद कांग्रेस ने एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पारित किया, जिसका सारांश निम्न है:

अन्तर्राष्ट्रीय प्रकाशक संघ ने अपने ज्यूरिख (१९५४) और फ्लोरैंस (१९५६) अधिवेशनों में इस बात की आलोचना की थी कि पुस्तकों, पत्रिकाओं और संगीत संबंधी वस्तुओं पर चुंगी लगाई जाय अथवा आयात-संबंधी अन्य कोई शुल्क लिया जाय अथवा आयात में रोड़े अटकाने के लिए कोई और बातें की जायँ। प्रकाशकों ने इस बात की आवश्यकता पर बल दिया था कि 'पुस्तकों की बेरोकटोक आवाजाही' और स्वतंत्रता पर लगे सब प्रतिबन्धों को हटा दिया जाय। फिर भी पिछले ३ वर्षों में कुछ ही देशों ने ये प्रतिबन्ध हटाए हैं। दूसरे देशों में तो इन्हें और जकड़ दिया गया है। इस सम्मेलन में भाग लेनेवाले २६ देशों के ६०० प्रकाशकों ने एक बार फिर अपने देश की सरकारों और जनता से अपील की कि पुस्तकों, पत्रिकाओं और संगीत को दूसरी जिन्सों की तरह न समझें, बल्कि उन्हें 'आध्यात्मिक दूत' मानें। इनको चुंगी तथा अन्य प्रकार के करों से मुक्ति मिलनी चाहिए। यूनेस्को के १९५० वाले 'पुस्तकों की बेरोकटोक आवाजाही' संबंधी समझौते का हवाला देकर उन्होंने सभी देशों का ध्यान चुंगी, करों तथा अन्य बातों में उसे

कार्यान्वित करने की ओर खींचा। इसके साथ ही उन्होंने यूनेस्को से भी अपील की कि १९५० के यूनेस्को समझौते की १ और २ धाराएँ इस रूप में परिवर्तित कर दी जायँ कि पुस्तकें, पत्रिकाएँ और संगीत के रेकार्ड आदि करेन्सी संबंधी सभी प्रकार की बन्दिशों से बरी हों और उन्हें मुक्त रूप से क्रय किया जा सके।

दूसरे दिन कांग्रेस ने विषयानुसार विभाग बनाये और तदनुसार बैठकें होने लगीं। विषयानुसार विभाजन निम्न प्रकार हुआ:

प्रभाग १ - कॉपीराइट

प्रभाग २ - पुस्तक-व्यवसाय

प्रभाग ३ - संगीत

प्रभाग ४ - विविध

प्रत्येक विषय पर पहले एक रिपोर्ट प्रस्तुत की जाती थी और यदि आवश्यक समझा जाता था तो बाद में प्रस्ताव भी रख दिया जाता था। गिल्लौं ने कॉपीराइट के अन्तर्गत चित्रों को मुद्रित करने पर अपनी रिपोर्ट पढ़ी। उन्होंने कहा कि लेखकों और चित्रकारों के आर्थिक अधिकारों की देखभाल करनेवाले अभिकरणों ने प्रकाशकों के लिए बड़ी मुसीबत खड़ी कर दी है, इसलिए सब उपस्थित सज्जनों को इसके कानूनी पहलू का ध्यानपूर्वक अध्ययन कर लेना चाहिए। फ्लोरैंस कांग्रेस के बाद यह घोषणा की गई थी कि प्रकाशकों को एकजुट होकर इस समस्या का सामना करना चाहिए। आज हालाँकि हम मिलकर चित्रों के मुद्रण के अधिकारों के संबंध में चर्चा करने के लिए राजी हो गए हैं, परन्तु विभिन्न देशों में कलाकारों द्वारा अपनी आर्थिक माँगों के रक्षार्थ स्थापित अभिकरणों अथवा संगठनों के कारण हम अपने निर्णयों को अमली जामा नहीं पहना पाये।

अन्तर्राष्ट्रीय प्रकाशक संघ को पेण्टरों, फोटोग्राफरों और शिल्पियों या अन्य प्रकार के रेखाकारों को 'लेखक' की कोटि में मानने से इन्कार करना चाहिए। संक्षेप में, कलाकार और कारीगरों में जो अन्तर है, उसे समझने में सावधानी बरतनी चाहिए। इनका शुल्क प्रतिशत न होकर अनुबन्ध होना चाहिए। कई देशों में कोई निश्चित दर ही नहीं। इसलिए सदैव ही व्यक्तिगत आधार पर इसका निर्णय किया जाता है। प्रत्येक देश का शुल्क के संबंध में अपना-अपना मानक है।

एशियाई प्रकाशकों के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण रिपोर्ट अमरीका के स्टोरर बी० लुंट की थी। उनका विषय था—जीवनपर्यन्त पढ़ने की आदत—विशेषकर बच्चों और तरुणों में पढ़ने की आदत के विकास को उत्साहित करने के संबंध में अन्तर्राष्ट्रीय प्रकाशक संघ के सदस्यों द्वारा किये गए कार्यक्रम और उनकी प्रगति का सर्वेक्षण। यह रिपोर्ट सभी के लिए बहुत मूल्यवान् रही। एशियाई प्रकाशक बच्चों व तरुणों में जीवनपर्यन्त पढ़ने की आदत डालने की ओर बहुत प्रयत्न कर रहे हैं, पर सफलता कम ही मिल रही है। अपनी रिपोर्ट के प्रारम्भ में लुंट ने कहा, 'यह तो प्रकट है कि पुस्तकें मनुष्य के मस्तिष्क के

उद्‌घाटन भाषण, विएना के उप-महापौर लुई वेनबर्गर ने किया। शिक्षामंत्री हाइनरिख ड्रिगेल ने अपने भाषण में प्रकाशन-व्यवसाय के महत्व पर प्रकाश डाला और आशा प्रकट की कि प्रकाशकगण पहले की ही तरह सांस्कृतिक जागरूकता और विश्वशान्ति के उन्नयन में संयुक्त रूप से लगे रहेंगे। व्यापार और पुनर्निर्माण मंत्री डॉ० फ्रिट्ज़ वॉक ने प्रकाशकों का स्वागत किया और कामना की कि विश्व-भर के प्रकाशकों का यह सम्मेलन निश्चय ही एक नई और महत्त्वपूर्ण दिशा का मार्ग प्रशस्त करेगा।

आगत सभापति फ्रिट्ज़ रॉस ने अपने सारगर्भित भाषण में कहा कि पुस्तकों की परावर्ती अर्थात् पारम्परिक ज्ञान प्रदान करनेवाली भूमिका अब नये वैज्ञानिक आविष्कारों यथा रेडियो और टेलिवीजन ने छीन ली है। प्रथम विश्वयुद्ध के प्रारम्भ से वैयक्तिक युग का लोप हो गया और जनता की क्रान्तियों का सूत्रपात हुआ। इसलिए तब से प्रकाशकों के कर्त्तव्य में भी कुछ परिवर्तन आना आवश्यक ही था। अब प्रकाशक के उत्तरदायित्व कम होने के स्थान पर बढ़ गए हैं। मानव और समाज के सामाजिक ढाँचे की भौतिक और आर्थिक प्रगति ने एक बिल्कुल नया स्वरूप ग्रहण कर लिया है। मानसिक उन्नति के मुकाबले भौतिक उपलब्धियों पर जोर है। इस तथ्य से कोई इन्कार नहीं कर सकता कि पुस्तकें संस्कृति के उन्नयन में एक प्रमुख माध्यम हैं। परन्तु कुछ देशों में पुस्तकों को और वस्तुओं के मुकाबले कुछ बेहतर ढंग पर नहीं लिया जाता।

मध्याह्न में दूसरी सभा हुई। इसका प्रारम्भ डॉ० हॉन्स कौजेंट की रिपोर्ट से हुआ। उनकी रिपोर्ट का मुख्य विषय था—विभिन्न देशों के मध्य पुस्तकों का बेरोकटोक आयात-निर्यात। उन्होंने इस संबंध में विभिन्न सरकारों द्वारा निर्यात, चुंगी और कापीराइट के बारे में उत्पन्न की गई कठिनाइयों का भी उल्लेख किया। महामन्त्री की रिपोर्ट पर विचार करने के बाद कांग्रेस ने एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पारित किया, जिसका सारांश निम्न है:

अन्तर्राष्ट्रीय प्रकाशक संघ ने अपने ज्यूरिख (१९५४) और फ्लोरैंस (१९५६) अधिवेशनों में इस बात की आलोचना की थी कि पुस्तकों, पत्रिकाओं और संगीत संबंधी वस्तुओं पर चुंगी लगाई जाय अथवा आयात-संबंधी अन्य कोई शुल्क लिया जाय अथवा आयात में रोड़े अटकाने के लिए कोई और बातें की जायँ। प्रकाशकों ने इस बात की आवश्यकता पर बल दिया था कि 'पुस्तकों की बेरोकटोक आवाजाही' और स्वतंत्रता पर लगे सब प्रतिबन्धों को हटा दिया जाय। फिर भी पिछले ३ वर्षों में कुछ ही देशों ने ये प्रतिबन्ध हटाए हैं। दूसरे देशों में तो इन्हें और जकड़ दिया गया है। इस सम्मेलन में भाग लेनेवाले २६ देशों के ६०० प्रकाशकों ने एक बार फिर अपने देश की सरकारों और जनता से अपील की कि पुस्तकों, पत्रिकाओं और संगीत को दूसरी जिन्सों की तरह न समझें, बल्कि उन्हें 'आध्यात्मिक दूत' मानें। इनको चुंगी तथा अन्य प्रकार के करों से मुक्ति मिलनी चाहिए। यूनेस्को के १९५० वाले 'पुस्तकों की बेरोकटोक आवाजाही' संबंधी समझौते का हवाला देकर उन्होंने सभी देशों का ध्यान चुंगी, करों तथा अन्य बातों में उसे

कार्यान्वित करने की ओर खींचा। इसके साथ ही उन्होंने यूनेस्को से भी अपील की कि १९५० के यूनेस्को समझौते की १ और २ धाराएँ इस रूप में परिवर्तित कर दी जायँ कि पुस्तकें, पत्रिकाएँ और संगीत के रेकार्ड आदि करेन्सी संबंधी सभी प्रकार की बन्दिशों से बरी हों और उन्हें मुक्त रूप से क्रय किया जा सके।

दूसरे दिन कांग्रेस ने विषयानुसार विभाग बनाये और तदनुसार बैठकें होने लगीं। विषयानुसार विभाजन निम्न प्रकार हुआ:

प्रभाग १ - कॉपीराइट

प्रभाग २ - पुस्तक-व्यवसाय

प्रभाग ३ - संगीत

प्रभाग ४ - विविध

प्रत्येक विषय पर पहले एक रिपोर्ट प्रस्तुत की जाती थी और यदि आवश्यक समझा जाता था तो बाद में प्रस्ताव भी रख दिया जाता था। गिल्लौं ने कॉपीराइट के अन्तर्गत चित्रों को मुद्रित करने पर अपनी रिपोर्ट पढ़ी। उन्होंने कहा कि लेखकों और चित्रकारों के आर्थिक अधिकारों की देखभाल करनेवाले अभिकरणों ने प्रकाशकों के लिए बड़ी मुसीबत खड़ी कर दी है, इसलिए सब उपस्थित सज्जनों को इसके कानूनी पहलू का ध्यानपूर्वक अध्ययन कर लेना चाहिए। फ्लोरैंस कांग्रेस के बाद यह घोषणा की गई थी कि प्रकाशकों को एकजुट होकर इस समस्या का सामना करना चाहिए। आज हालाँकि हम मिलकर चित्रों के मुद्रण के अधिकारों के संबंध में चर्चा करने के लिए राजी हो गए हैं, परन्तु विभिन्न देशों में कलाकारों द्वारा अपनी आर्थिक माँगों के रक्षार्थ स्थापित अभिकरणों अथवा संगठनों के कारण हम अपने निर्णयों को अमली जामा नहीं पहना पाये।

अन्तर्राष्ट्रीय प्रकाशक संघ को पेण्टरों, फोटोग्राफरों और शिल्पियों या अन्य प्रकार के रेखाकारों को 'लेखक' की कोटि में मानने से इन्कार करना चाहिए। संक्षेप में, कलाकार और कारीगरों में जो अन्तर है, उसे समझने में सावधानी बरतनी चाहिए। इनका शुल्क प्रतिशत न होकर अनुबन्ध होना चाहिए। कई देशों में कोई निश्चित दर ही नहीं। इसलिए सदैव ही व्यक्तिगत आधार पर इसका निर्णय किया जाता है। प्रत्येक देश का शुल्क के संबंध में अपना-अपना मानक है।

एशियाई प्रकाशकों के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण रिपोर्ट अमरीका के स्टोरर बी० लुंट की थी। उनका विषय था—जीवनपर्यन्त पढ़ने की आदत—विशेषकर बच्चों और तरुणों में पढ़ने की आदत के विकास को उत्साहित करने के संबंध में अन्तर्राष्ट्रीय प्रकाशक संघ के सदस्यों द्वारा किये गए कार्यक्रम और उनकी प्रगति का सर्वेक्षण। यह रिपोर्ट सभी के लिए बहुत मूल्यवान् रही। एशियाई प्रकाशक बच्चों व तरुणों में जीवनपर्यन्त पढ़ने की आदत डालने की ओर बहुत प्रयत्न कर रहे हैं, पर सफलता कम ही मिल रही है। अपनी रिपोर्ट के प्रारम्भ में लुंट ने कहा, 'यह तो प्रकट है कि पुस्तकें मनुष्य के मस्तिष्क के

उद्‌घाटन भाषण, विएना के उप-महापौर लुई वेनबर्गर ने किया। शिक्षामंत्री हाइनरिख ड्रिगेल ने अपने भाषण में प्रकाशन-व्यवसाय के महत्व पर प्रकाश डाला और आशा प्रकट की कि प्रकाशकगण पहले की ही तरह सांस्कृतिक जागरूकता और विश्वशान्ति के उन्नयन में संयुक्त रूप से लगे रहेंगे। व्यापार और पुनर्निर्माण मंत्री डॉ० फ्रिट्ज़ वॉक ने प्रकाशकों का स्वागत किया और कामना की कि विश्व-भर के प्रकाशकों का यह सम्मेलन निश्चय ही एक नई और महत्वपूर्ण दिशा का मार्ग प्रशस्त करेगा।

आगत सभापति फ्रिट्ज़ रॉस ने अपने सारगर्भित भाषण में कहा कि पुस्तकों की परावर्ती अर्थात् पारम्परिक ज्ञान प्रदान करनेवाली भूमिका अब नये वैज्ञानिक आविष्कारों यथा रेडियो और टेलिवीजन ने छीन ली है। प्रथम विश्वयुद्ध के प्रारम्भ से वैयक्तिक युग का लोप हो गया और जनता की क्रान्तियों का सूत्रपात हुआ। इसलिए तब से प्रकाशकों के कर्त्तव्य में भी कुछ परिवर्तन आना आवश्यक ही था। अब प्रकाशक के उत्तरदायित्व कम होने के स्थान पर बढ़ गए हैं। मानव और समाज के सामाजिक ढाँचे की भौतिक और आर्थिक प्रगति ने एक बिल्कुल नया स्वरूप ग्रहण कर लिया है। मानसिक उन्नति के मुकाबले भौतिक उपलब्धियों पर जोर है। इस तथ्य से कोई इन्कार नहीं कर सकता कि पुस्तकें संस्कृति के उन्नयन में एक प्रमुख माध्यम हैं। परन्तु कुछ देशों में पुस्तकों को और वस्तुओं के मुकाबले कुछ बेहतर ढंग पर नहीं लिया जाता।

मध्याह्न में दूसरी सभा हुई। इसका प्रारम्भ डॉ० हॉन्स कौजेंट की रिपोर्ट से हुआ। उनकी रिपोर्ट का मुख्य विषय था—विभिन्न देशों के मध्य पुस्तकों का बेरोकटोक आयात-निर्यात। उन्होंने इस संबंध में विभिन्न सरकारों द्वारा निर्यात, चुंगी और कापीराइट के बारे में उत्पन्न की गई कठिनाइयों का भी उल्लेख किया। महामन्त्री की रिपोर्ट पर विचार करने के बाद कांग्रेस ने एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पारित किया, जिसका सारांश निम्न है:

अन्तर्राष्ट्रीय प्रकाशक संघ ने अपने ज्यूरिख (१९५४) और फ्लोरैंस (१९५६) अधिवेशनों में इस बात की आलोचना की थी कि पुस्तकों, पत्रिकाओं और संगीत संबंधी वस्तुओं पर चुंगी लगाई जाय अथवा आयात-संबंधी अन्य कोई शुल्क लिया जाय अथवा आयात में रोड़े अटकाने के लिए कोई और बातें की जायँ। प्रकाशकों ने इस बात की आवश्यकता पर बल दिया था कि 'पुस्तकों की बेरोकटोक आवाजाही' और स्वतंत्रता पर लगे सब प्रतिबन्धों को हटा दिया जाय। फिर भी पिछले ३ वर्षों में कुछ ही देशों ने ये प्रतिबन्ध हटाए हैं। दूसरे देशों में तो इन्हें और जकड़ दिया गया है। इस सम्मेलन में भाग लेनेवाले २६ देशों के ६०० प्रकाशकों ने एक बार फिर अपने देश की सरकारों और जनता से अपील की कि पुस्तकों, पत्रिकाओं और संगीत को दूसरी जिन्सों की तरह न समझें, बल्कि उन्हें 'आध्यात्मिक दूत' मानें। इनको चुंगी तथा अन्य प्रकार के करों से मुक्ति मिलनी चाहिए। यूनेस्को के १९५० वाले 'पुस्तकों की बेरोकटोक आवाजाही' संबंधी समझौते का हवाला देकर उन्होंने सभी देशों का ध्यान चुंगी, करों तथा अन्य बातों में उसे

कार्यान्वित करने की ओर खींचा। इसके साथ ही उन्होंने यूनेस्को से भी अपील की कि १९५० के यूनेस्को समझौते की १ और २ धाराएँ इस रूप में परिवर्तित कर दी जायँ कि पुस्तकें, पत्रिकाएँ और संगीत के रेकार्ड आदि करेन्सी संबंधी सभी प्रकार की बन्दिशों से बरी हों और उन्हें मुक्त रूप से क्रय किया जा सके।

दूसरे दिन कांग्रेस ने विषयानुसार विभाग बनाये और तदनुसार बैठकें होने लगीं। विषयानुसार विभाजन निम्न प्रकार हुआ:

प्रभाग १ - कॉपीराइट

प्रभाग २ - पुस्तक-व्यवसाय

प्रभाग ३ - संगीत

प्रभाग ४ - विविध

प्रत्येक विषय पर पहले एक रिपोर्ट प्रस्तुत की जाती थी और यदि आवश्यक समझा जाता था तो बाद में प्रस्ताव भी रख दिया जाता था। गिल्लौं ने कॉपीराइट के अन्तर्गत चित्रों को मुद्रित करने पर अपनी रिपोर्ट पढ़ी। उन्होंने कहा कि लेखकों और चित्रकारों के आर्थिक अधिकारों की देखभाल करनेवाले अभिकरणों ने प्रकाशकों के लिए बड़ी मुसीबत खड़ी कर दी है, इसलिए सब उपस्थित सज्जनों को इसके कानूनी पहलू का ध्यानपूर्वक अध्ययन कर लेना चाहिए। फ्लोरैंस कांग्रेस के बाद यह घोषणा की गई थी कि प्रकाशकों को एकजुट होकर इस समस्या का सामना करना चाहिए। आज हालाँकि हम मिलकर चित्रों के मुद्रण के अधिकारों के संबंध में चर्चा करने के लिए राजी हो गए हैं, परन्तु विभिन्न देशों में कलाकारों द्वारा अपनी आर्थिक माँगों के रक्षार्थ स्थापित अभिकरणों अथवा संगठनों के कारण हम अपने निर्णयों को अमली जामा नहीं पहना पाये।

अन्तर्राष्ट्रीय प्रकाशक संघ को पेण्टरों, फोटोग्राफरों और शिल्पियों या अन्य प्रकार के रेखाकारों को 'लेखक' की कोटि में मानने से इन्कार करना चाहिए। संक्षेप में, कलाकार और कारीगरों में जो अन्तर है, उसे समझने में सावधानी बरतनी चाहिए। इनका शुल्क प्रतिशत न होकर अनुबन्ध होना चाहिए। कई देशों में कोई निश्चित दर ही नहीं। इसलिए सदैव ही व्यक्तिगत आधार पर इसका निर्णय किया जाता है। प्रत्येक देश का शुल्क के संबंध में अपना-अपना मानक है।

एशियाई प्रकाशकों के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण रिपोर्ट अमरीका के स्टोरर बी० लुंट की थी। उनका विषय था—जीवनपर्यन्त पढ़ने की आदत—विशेषकर बच्चों और तरुणों में पढ़ने की आदत के विकास को उत्साहित करने के संबंध में अन्तर्राष्ट्रीय प्रकाशक संघ के सदस्यों द्वारा किये गए कार्यक्रम और उनकी प्रगति का सर्वेक्षण। यह रिपोर्ट सभी के लिए बहुत मूल्यवान् रही। एशियाई प्रकाशक बच्चों व तरुणों में जीवनपर्यन्त पढ़ने की आदत डालने की ओर बहुत प्रयत्न कर रहे हैं, पर सफलता कम ही मिल रही है। अपनी रिपोर्ट के प्रारम्भ में लुंट ने कहा, 'यह तो प्रकट है कि पुस्तकें मनुष्य के मस्तिष्क के

लिए होती हैं। कितने मस्तिष्कों के लिए? यह लेखक और प्रकाशक के ज्ञान और चातुर्य पर भी निर्भर करता है और बहुधा भाग्य पर कि वह पूर्ण रूप से और उचित प्रकार के पाठकों के हाथ में पहुँचे। इसलिए प्रकाशक को पाठकों के दिमाग का ख्याल रखना पड़ता है, क्योंकि पाठक ही तो पूर्ण और एकमात्र बाजार का प्रतिनिधित्व करते हैं। पूरे विश्व में करोड़ों लोग ज्ञान-प्राप्ति के लिए उद्‌बुद्ध हो उठे हैं, इसलिए प्रकाशक की हैसियत से यह हमारा काम है कि हम स्थायी पाठक के बनाने के साधन खोजें और प्रत्येक का प्रयोग करें, चाहे हमारा उद्देश्य पूर्णरूपेण व्यावसायिक ही हो, या हमारी आस्था और हमारे अनुभव के विस्तारण का उन्नयन।

कोई भी प्रकाशक, जिसकी तनिक-सी भी प्रतिष्ठा है, अपने माल के लिए व्यापकतम पाठकवर्ग चाहेगा। परन्तु अलग-अलग पड़ा प्रकाशक अपनी आर्थिक सीमाओं के कारण बड़े पैमाने पर काम न कर पाने की कठिनाई का अनुभव करता ही है। इस प्रकार की खामियों की वजह से प्रकाशक अपने को एक समूह में गठित कर लेते हैं और इस तरह के संगठनों ने पाठकों के नये बाजार खोजे हैं और लोगों में पढ़ने की रुचि डाली गई है।

इस प्रकार के संगठनों ने क्या व्यावहारिक कदम उठाये कि वे तरुण नागरिकों में जीवनपर्यन्त पढ़ने की आदत को बढ़ा सके? इसको दो वर्गों में बाँटा जा सकता है—

१. ऐसे कार्यक्रम जो कई देशों में सफल और कारगर सिद्ध हुए।
२. कार्यक्रम के वे विशेष, अद्वितीय अथवा मौलिक आयोजन जो इस प्रकार के समूह के किसी एक सदस्य द्वारा किये गए और जिनको अन्य सदस्यों ने उसी रूप में या कुछ परिवर्द्धित करके प्रयुक्त किया है।

इसके बाद बी० लुंट ने उन देशों के कार्यक्रम का जिक्र किया जिनके द्वारा जीवनपर्यन्त पढ़ने की आदत को सफलतापूर्वक स्थापित किया गया है—

आस्ट्रिया में प्रतिवर्ष पुस्तक सप्ताह मनाया जाता है। समाचार-पत्रों, रेडियो तथा अन्य प्रचार-माध्यमों से इसको विज्ञापित किया जाता है। इसमें बच्चों के पढ़ने पर विशेष जोर दिया जाता है। शिक्षा मन्त्रालय प्रतिवर्ष बाल-साहित्य की सर्वोत्तम पुस्तक पर पुरस्कार देता है। स्कूलों के जरिए बाल-पुस्तकालयों को प्रोत्साहन दिया जाता है। वाचन और नाट्याभिनय बाल-साहित्य के महत्व पर बल देते हैं। रेडियो पर 'बताओ तो जाने' कार्यक्रम में पुस्तकें पुरस्कार के रूप में बाँटी जाती हैं। आस्ट्रियाई पुस्तक-विक्रेताओं के केन्द्रीय संगठन का उल्लेखनीय काम यह है कि बच्चे उनके साहित्य और विशेषकर बाल-साहित्य के उत्कृष्ट अंगों के गुणों को समझें।

बेल्जियम के प्रकाशक संघ ने अब तक कोई सामूहिक कदम नहीं उठाया है, परन्तु पिछले दस वर्षों से प्रकाशकगण पढ़ने की आदत को बढ़ाने के लिए देश और विदेशों में पुस्तक-प्रदर्शनियों का आयोजन करते रहे हैं। संघ विज्ञापन के लिए और पठनोन्नयन के लिए पोस्टर छापता है और उनका वितरण करता है।

कनाडा में प्रथम बार १९५९ में राष्ट्रीय पुस्तकालय सप्ताह का सफल आयोजन

किया गया। पिछले पाँच वर्षों से प्रकाशक संघ कनाडियन पुस्तकालय संघ से मिलकर तरुण कनाडा-पुस्तक सप्ताह का आयोजन करता रहा है। इस पुस्तक सप्ताह में बच्चों में अच्छी पुस्तकें पढ़ने की आदत को बढ़ावा दिया जाता है। इस पुस्तक सप्ताह के अन्तर्गत देश के सभी पुस्तकालयों, स्कूलों और सार्वजनिक हॉलों और पुस्तक की दुकानों में किताबें सजाई जाती हैं। टेलिविजन रेडियो कार्यक्रम के माध्यम से इस पुस्तक सप्ताह में निमन्त्रित लोग भाषण और अपने विचार प्रकट करते हैं। समाचार-पत्रों और पत्रिकाओं में व्यापक पैमाने पर प्रचार किया जाता है। तरुण कनाडा-पुस्तक-सप्ताह को सफल बनाने के लिए २३ अन्य राष्ट्रीय संस्थाएँ सहयोग और सहायता प्रदान करती हैं।

डेनमार्क में साक्षरता का स्तर बहुत ऊँचा है। छोटे-बड़े-बूढ़े सभी का पुस्तकों से घनिष्ट संबंध रहता है। यहाँ का प्रकाशक संघ सीधे-सीधे पठनोन्नयन प्रयत्नों में संलग्न नहीं है, पर यह यहाँ के पुस्तक-विक्रेताओं को समर्थन और सहयोग प्रदान करता है। पुस्तक विक्रेताओं का संघ (डेनिश बुक सर्विस) अपने काम में बड़ा चुस्त है। पूरे साल यह वितरण सर्विस विक्रेताओं को विशेष रूप से प्रकाशित पोस्टर भेजता है। यह उन्हें सूचीपत्र छपवाकर भेजता है। कभी-कभी समाचार-पत्रों में एक ही प्रकार के नारे छपवाता है जो स्थानीय पुस्तक-विक्रेताओं के लिए विज्ञापन जैसा कार्य करते हैं। एक विशेष समाचार-पत्र के तीन अंक (प्रति बार २,५०,०००) छापे जाते हैं, जिनमें पुस्तकों के संबंध में समाचार व लेख होते हैं। बुक सर्विस के रेडियो से भी घने संबंध हैं और प्रत्येक सप्ताह ४०० पुस्तक विक्रेता अपनी खिड़कियों पर आगामी सप्ताह के साहित्यिक कार्यक्रम की सूचना प्रदर्शित करते हैं।

बाल-साहित्य के संबंध में १९५६ में, शिक्षा मंत्रालय ने बाल-पुस्तक सप्ताह के आयोजन में सहयोग दिया। यह सप्ताह कोपेनहैगन के नगर हॉल में मनाया गया। शिक्षा-निर्देशक व अन्य गण्यमान लोगों के भाषण हुए। ७५,००० सूचीपत्र छापे गए जिनमें चुनी हुई ३०० पुस्तकों का विवरण था। डेनिश प्रकाशकों ने स्कूलों और पुस्तकालयों को ४०,००० पुस्तकें निःशुल्क देने की घोषणा की। १६,००० पोस्टर बाँटे गए। समाचार-पत्रों और रेडियो से इसका बड़ा प्रचार हुआ।

इस कार्यक्रम के फलस्वरूप पुस्तकालयों में पुस्तकों के पाठक काफी बढ़े और पुस्तक विक्रेताओं की बिक्री में भी उत्तरोत्तर बढ़ोत्तरी हुई।

फिनलैण्ड में १९२८ से पुस्तक-सप्ताह मनाया जा रहा है। इस सप्ताह में पुस्तक विक्रेता, पुस्तकालय और प्रकाशक साहित्यिक आयोजन और प्रदर्शनी आदि करते हैं। इसमें रेडियो और समाचार-पत्र भी सहयोग देते हैं। १९४७ में फिनिश प्रकाशकों और पुस्तक विक्रेताओं ने पठनोन्नयन और पुस्तक क्रय करने को बढ़ावा देने के लिए एक विशेष संगठन 'बुक सर्विस' की स्थापना की। १९५७ में प्रथम बाल-राष्ट्रीय-पुस्तक महोत्सव मनाया गया। इस अवसर पर रंग-बिरंगे सूचीपत्र छापे गए, लेखन और रेखांकन प्रतियोगिताएँ की गईं। स्कूल पुस्तकालयों और पुस्तक-विक्रेताओं को घूम-घूमकर देखा-दिखाया गया। फिनलैण्ड के प्रकाशक प्रतिवर्ष गिरजाघरों की सहायता से धर्म-संबंधी साहित्य का भी एक सप्ताह आयोजित करते हैं।

लिए होती हैं। कितने मस्तिष्कों के लिए? यह लेखक और प्रकाशक के ज्ञान और चातुर्य पर भी निर्भर करता है और बहुधा भाग्य पर कि वह पूर्ण रूप से और उचित प्रकार के पाठकों के हाथ में पहुँचे। इसलिए प्रकाशक को पाठकों के दिमाग का ख्याल रखना पड़ता है, क्योंकि पाठक ही तो पूर्ण और एकमात्र बाजार का प्रतिनिधित्व करते हैं। पूरे विश्व में करोड़ों लोग ज्ञान-प्राप्ति के लिए उद्‌बुद्ध हो उठे हैं, इसलिए प्रकाशक की हैसियत से यह हमारा काम है कि हम स्थायी पाठक के बनाने के साधन खोजें और प्रत्येक का प्रयोग करें, चाहे हमारा उद्देश्य पूर्णरूपेण व्यावसायिक ही हो, या हमारी आस्था और हमारे अनुभव के विस्तारण का उन्नयन।

कोई भी प्रकाशक, जिसकी तनिक-सी भी प्रतिष्ठा है, अपने माल के लिए व्यापकतम पाठकवर्ग चाहेगा। परन्तु अलग-अलग पड़ा प्रकाशक अपनी आर्थिक सीमाओं के कारण बड़े पैमाने पर काम न कर पाने की कठिनाई का अनुभव करता ही है। इस प्रकार की खामियों की वजह से प्रकाशक अपने को एक समूह में गठित कर लेते हैं और इस तरह के संगठनों ने पाठकों के नये बाजार खोजे हैं और लोगों में पढ़ने की रुचि डाली गई है।

इस प्रकार के संगठनों ने क्या व्यावहारिक कदम उठाये कि वे तरुण नागरिकों में जीवनपर्यन्त पढ़ने की आदत को बढ़ा सके? इसको दो वर्गों में बाँटा जा सकता है—

१. ऐसे कार्यक्रम जो कई देशों में सफल और कारगर सिद्ध हुए।
२. कार्यक्रम के वे विशेष, अद्वितीय अथवा मौलिक आयोजन जो इस प्रकार के समूह के किसी एक सदस्य द्वारा किये गए और जिनको अन्य सदस्यों ने उसी रूप में या कुछ परिवर्द्धित करके प्रयुक्त किया है।

इसके बाद बी० लुंट ने उन देशों के कार्यक्रम का जिक्र किया जिनके द्वारा जीवनपर्यन्त पढ़ने की आदत को सफलतापूर्वक स्थापित किया गया है—

आस्ट्रिया में प्रतिवर्ष पुस्तक सप्ताह मनाया जाता है। समाचार-पत्रों, रेडियो तथा अन्य प्रचार-माध्यमों से इसको विज्ञापित किया जाता है। इसमें बच्चों के पढ़ने पर विशेष जोर दिया जाता है। शिक्षा मन्त्रालय प्रतिवर्ष बाल-साहित्य की सर्वोत्तम पुस्तक पर पुरस्कार देता है। स्कूलों के जरिए बाल-पुस्तकालयों को प्रोत्साहन दिया जाता है। वाचन और नाट्याभिनय बाल-साहित्य के महत्व पर बल देते हैं। रेडियो पर 'बताओ तो जानें' कार्यक्रम में पुस्तकें पुरस्कार के रूप में बाँटी जाती हैं। आस्ट्रियाई पुस्तक-विक्रेताओं के केन्द्रीय संगठन का उल्लेखनीय काम यह है कि बच्चे उनके साहित्य और विशेषकर बाल-साहित्य के उत्कृष्ट अंगों के गुणों को समझें।

बेल्जियम के प्रकाशक संघ ने अब तक कोई सामूहिक कदम नहीं उठाया है, परन्तु पिछले दस वर्षों से प्रकाशकगण पढ़ने की आदत को बढ़ाने के लिए देश और विदेशों में पुस्तक-प्रदर्शनियों का आयोजन करते रहे हैं। संघ विज्ञापन के लिए और पठनोन्नयन के लिए पोस्टर छापता है और उनका वितरण करता है।

कनाडा में प्रथम बार १९५९ में राष्ट्रीय पुस्तकालय सप्ताह का सफल आयोजन

किया गया। पिछले पाँच वर्षों से प्रकाशक संघ कनाडियन पुस्तकालय संघ से मिलकर तरुण कनाडा-पुस्तक सप्ताह का आयोजन करता रहा है। इस पुस्तक सप्ताह में बच्चों में अच्छी पुस्तकें पढ़ने की आदत को बढ़ावा दिया जाता है। इस पुस्तक सप्ताह के अन्तर्गत देश के सभी पुस्तकालयों, स्कूलों और सार्वजनिक हॉलों और पुस्तक की दुकानों में किताबें सजाई जाती हैं। टेलिविजन रेडियो कार्यक्रम के माध्यम से इस पुस्तक सप्ताह में निमन्त्रित लोग भाषण और अपने विचार प्रकट करते हैं। समाचार-पत्रों और पत्रिकाओं में व्यापक पैमाने पर प्रचार किया जाता है। तरुण कनाडा-पुस्तक-सप्ताह को सफल बनाने के लिए २३ अन्य राष्ट्रीय संस्थाएँ सहयोग और सहायता प्रदान करती हैं।

डेनमार्क में साक्षरता का स्तर बहुत ऊँचा है। छोटे-बड़े-बूढ़े सभी का पुस्तकों से घनिष्ट संबंध रहता है। यहाँ का प्रकाशक संघ सीधे-सीधे पठनोन्नयन प्रयत्नों में संलग्न नहीं है, पर यह यहाँ के पुस्तक-विक्रेताओं को समर्थन और सहयोग प्रदान करता है। पुस्तक विक्रेताओं का संघ (डेनिश बुक सर्विस) अपने काम में बड़ा चुस्त है। पूरे साल यह वितरण सर्विस विक्रेताओं को विशेष रूप से प्रकाशित पोस्टर भेजता है। यह उन्हें सूचीपत्र छपवाकर भेजता है। कभी-कभी समाचार-पत्रों में एक ही प्रकार के नारे छपवाता है जो स्थानीय पुस्तक-विक्रेताओं के लिए विज्ञापन जैसा कार्य करते हैं। एक विशेष समाचार-पत्र के तीन अंक (प्रति बार २,५०,०००) छापे जाते हैं, जिनमें पुस्तकों के संबंध में समाचार व लेख होते हैं। बुक सर्विस के रेडियो से भी घने संबंध हैं और प्रत्येक सप्ताह ४०० पुस्तक विक्रेता अपनी खिड़कियों पर आगामी सप्ताह के साहित्यिक कार्यक्रम की सूचना प्रदर्शित करते हैं।

बाल-साहित्य के संबंध में १९५६ में, शिक्षा मंत्रालय ने बाल-पुस्तक सप्ताह के आयोजन में सहयोग दिया। यह सप्ताह कोपेनहैगन के नगर हॉल में मनाया गया। शिक्षा-निर्देशक व अन्य गण्यमान लोगों के भाषण हुए। ७५,००० सूचीपत्र छापे गए जिनमें चुनी हुई ३०० पुस्तकों का विवरण था। डेनिश प्रकाशकों ने स्कूलों और पुस्तकालयों को ४०,००० पुस्तकें नि:शुल्क देने की घोषणा की। १६,००० पोस्टर बाँटे गए। समाचार-पत्रों और रेडियो से इसका बड़ा प्रचार हुआ।

इस कार्यक्रम के फलस्वरूप पुस्तकालयों में पुस्तकों के पाठक काफी बढ़े और पुस्तक विक्रेताओं की बिक्री में भी उत्तरोत्तर बढ़ोत्तरी हुई।

फिनलैण्ड में १९२८ से पुस्तक-सप्ताह मनाया जा रहा है। इस सप्ताह में पुस्तक विक्रेता, पुस्तकालय और प्रकाशक साहित्यिक आयोजन और प्रदर्शनी आदि करते हैं। इसमें रेडियो और समाचार-पत्र भी सहयोग देते हैं। १९४७ में फिनिश प्रकाशकों और पुस्तक विक्रेताओं ने पठनोन्नयन और पुस्तक क्रय करने को बढ़ावा देने के लिए एक विशेष संगठन 'बुक सर्विस' की स्थापना की। १९५७ में प्रथम बाल-राष्ट्रीय-पुस्तक महोत्सव मनाया गया। इस अवसर पर रंग-बिरंगे सूचीपत्र छापे गए, लेखन और रेखांकन प्रतियोगिताएँ की गईं। स्कूल पुस्तकालयों और पुस्तक-विक्रेताओं को घूम-घूमकर देखा-दिखाया गया। फिनलैण्ड के प्रकाशक प्रतिवर्ष गिरजाघरों की सहायता से धर्म-संबंधी साहित्य का भी एक सप्ताह आयोजित करते हैं।

लिए होती हैं। कितने मस्तिष्कों के लिए? यह लेखक और प्रकाशक के ज्ञान और चातुर्य पर भी निर्भर करता है और बहुधा भाग्य पर कि वह पूर्ण रूप से और उचित प्रकार के पाठकों के हाथ में पहुँचे। इसलिए प्रकाशक को पाठकों के दिमाग का ख्याल रखना पड़ता है, क्योंकि पाठक ही तो पूर्ण और एकमात्र बाजार का प्रतिनिधित्व करते हैं। पूरे विश्व में करोड़ों लोग ज्ञान-प्राप्ति के लिए उद्बुद्ध हो उठे हैं, इसलिए प्रकाशक की हैसियत से यह हमारा काम है कि हम स्थायी पाठक के बनाने के साधन खोजें और प्रत्येक का प्रयोग करें, चाहे हमारा उद्देश्य पूर्णरूपेण व्यावसायिक ही हो, या हमारी आस्था और हमारे अनुभव के विस्तारण का उन्नयन।

कोई भी प्रकाशक, जिसकी तनिक-सी भी प्रतिष्ठा है, अपने माल के लिए व्यापकतम पाठकवर्ग चाहेगा। परन्तु अलग-अलग पड़ा प्रकाशक अपनी आर्थिक सीमाओं के कारण बड़े पैमाने पर काम न कर पाने की कठिनाई का अनुभव करता ही है। इस प्रकार की खामियों की वजह से प्रकाशक अपने को एक समूह में गठित कर लेते हैं और इस तरह के संगठनों ने पाठकों के नये बाजार खोजे हैं और लोगों में पढ़ने की रुचि डाली गई है।

इस प्रकार के संगठनों ने क्या व्यावहारिक कदम उठाये कि वे तरुण नागरिकों में जीवनपर्यन्त पढ़ने की आदत को बढ़ा सके? इसको दो वर्गों में बाँटा जा सकता है—

१. ऐसे कार्यक्रम जो कई देशों में सफल और कारगर सिद्ध हुए।
२. कार्यक्रम के वे विशेष, अद्वितीय अथवा मौलिक आयोजन जो इस प्रकार के समूह के किसी एक सदस्य द्वारा किये गए और जिनको अन्य सदस्यों ने उसी रूप में या कुछ परिवर्द्धित करके प्रयुक्त किया है।

इसके बाद बी० लुंट ने उन देशों के कार्यक्रम का जिक्र किया जिनके द्वारा जीवनपर्यन्त पढ़ने की आदत को सफलतापूर्वक स्थापित किया गया है—

आस्ट्रिया में प्रतिवर्ष पुस्तक सप्ताह मनाया जाता है। समाचार-पत्रों, रेडियो तथा अन्य प्रचार-माध्यमों से इसको विज्ञापित किया जाता है। इसमें बच्चों के पढ़ने पर विशेष जोर दिया जाता है। शिक्षा मन्त्रालय प्रतिवर्ष बाल-साहित्य की सर्वोत्तम पुस्तक पर पुरस्कार देता है। स्कूलों के जरिए बाल-पुस्तकालयों को प्रोत्साहन दिया जाता है। वाचन और नाट्याभिनय बाल-साहित्य के महत्व पर बल देते हैं। रेडियो पर 'बताओ तो जानें' कार्यक्रम में पुस्तकें पुरस्कार के रूप में बाँटी जाती हैं। आस्ट्रियाई पुस्तक-विक्रेताओं के केन्द्रीय संगठन का उल्लेखनीय काम यह है कि बच्चे उनके साहित्य और विशेषकर बाल-साहित्य के उत्कृष्ट अंगों के गुणों को समझें।

बेल्जियम के प्रकाशक संघ ने अब तक कोई सामूहिक कदम नहीं उठाया है, परन्तु पिछले दस वर्षों से प्रकाशकगण पढ़ने की आदत को बढ़ाने के लिए देश और विदेशों में पुस्तक-प्रदर्शनियों का आयोजन करते रहे हैं। संघ विज्ञापन के लिए और पठनोन्नयन के लिए पोस्टर छापता है और उनका वितरण करता है।

कनाडा में प्रथम बार १९५९ में राष्ट्रीय पुस्तकालय सप्ताह का सफल आयोजन

किया गया। पिछले पाँच वर्षों से प्रकाशक संघ कनाडियन पुस्तकालय संघ से मिलकर तरुण कनाडा-पुस्तक सप्ताह का आयोजन करता रहा है। इस पुस्तक सप्ताह में बच्चों में अच्छी पुस्तकें पढ़ने की आदत को बढ़ावा दिया जाता है। इस पुस्तक सप्ताह के अन्तर्गत देश के सभी पुस्तकालयों, स्कूलों और सार्वजनिक हॉलों और पुस्तक की दुकानों में किताबें सजाई जाती हैं। टेलिविजन रेडियो कार्यक्रम के माध्यम से इस पुस्तक सप्ताह में निमन्त्रित लोग भाषण और अपने विचार प्रकट करते हैं। समाचार-पत्रों और पत्रिकाओं में व्यापक पैमाने पर प्रचार किया जाता है। तरुण कनाडा-पुस्तक-सप्ताह को सफल बनाने के लिए २३ अन्य राष्ट्रीय संस्थाएँ सहयोग और सहायता प्रदान करती हैं।

डेनमार्क में साक्षरता का स्तर बहुत ऊँचा है। छोटे-बड़े-बूढ़े सभी का पुस्तकों से घनिष्ट संबंध रहता है। यहाँ का प्रकाशक संघ सीधे-सीधे पठनोन्नयन प्रयत्नों में संलग्न नहीं है, पर यह यहाँ के पुस्तक-विक्रेताओं को समर्थन और सहयोग प्रदान करता है। पुस्तक विक्रेताओं का संघ (डेनिश बुक सर्विस) अपने काम में बड़ा चुस्त है। पूरे साल यह वितरण सर्विस विक्रेताओं को विशेष रूप से प्रकाशित पोस्टर भेजता है। यह उन्हें सूचीपत्र छपवाकर भेजता है। कभी-कभी समाचार-पत्रों में एक ही प्रकार के नारे छपवाता है जो स्थानीय पुस्तक-विक्रेताओं के लिए विज्ञापन जैसा कार्य करते हैं। एक विशेष समाचार-पत्र के तीन अंक (प्रति बार २,५०,०००) छापे जाते हैं, जिनमें पुस्तकों के संबंध में समाचार व लेख होते हैं। बुक सर्विस के रेडियो से भी घने संबंध हैं और प्रत्येक सप्ताह ४०० पुस्तक विक्रेता अपनी खिड़कियों पर आगामी सप्ताह के साहित्यिक कार्यक्रम की सूचना प्रदर्शित करते हैं।

बाल-साहित्य के संबंध में १९५६ में, शिक्षा मंत्रालय ने बाल-पुस्तक सप्ताह के आयोजन में सहयोग दिया। यह सप्ताह कोपेनहैगन के नगर हॉल में मनाया गया। शिक्षा-निर्देशक व अन्य गण्यमान लोगों के भाषण हुए। ७५,००० सूचीपत्र छापे गए जिनमें चुनी हुई ३०० पुस्तकों का विवरण था। डेनिश प्रकाशकों ने स्कूलों और पुस्तकालयों को ४०,००० पुस्तकें नि:शुल्क देने की घोषणा की। १६,००० पोस्टर बाँटे गए। समाचार-पत्रों और रेडियो से इसका बड़ा प्रचार हुआ।

इस कार्यक्रम के फलस्वरूप पुस्तकालयों में पुस्तकों के पाठक काफी बढ़े और पुस्तक विक्रेताओं की बिक्री में भी उत्तरोत्तर बढ़ोत्तरी हुई।

फिनलैण्ड में १९२८ से पुस्तक-सप्ताह मनाया जा रहा है। इस सप्ताह में पुस्तक विक्रेता, पुस्तकालय और प्रकाशक साहित्यिक आयोजन और प्रदर्शनी आदि करते हैं। इसमें रेडियो और समाचार-पत्र भी सहयोग देते हैं। १९४७ में फिनिश प्रकाशकों और पुस्तक विक्रेताओं ने पठनोन्नयन और पुस्तक क्रय करने को बढ़ावा देने के लिए एक विशेष संगठन 'बुक सर्विस' की स्थापना की। १९५७ में प्रथम बाल-राष्ट्रीय-पुस्तक महोत्सव मनाया गया। इस अवसर पर रंग-बिरंगे सूचीपत्र छापे गए, लेखन और रेखांकन प्रतियोगिताएँ की गईं। स्कूल पुस्तकालयों और पुस्तक-विक्रेताओं को घूम-घूमकर देखा-दिखाया गया। फिनलैण्ड के प्रकाशक प्रतिवर्ष गिरजाघरों की सहायता से धर्म-संबंधी साहित्य का भी एक सप्ताह आयोजित करते हैं।

फ्रांस ने व्यापक पैमाने पर पठनोन्नयन में बहुत सक्रिय भाग लिया है। १९३१ के मई मास में प्रतिवर्ष दो पुस्तक-दिवस मनाने का मुहूर्त हुआ और १९४८ में पुस्तकोत्सव के लिए पूरा सप्ताह नियत कर दिया गया। फ्रांस के सभी राज्यों और पेरिस में पुस्तकों के प्रदर्शन और विक्रय-संबंधी कार्यक्रम होते हैं। सभी बुकस्टाल फ्रांस के अपने जातीय ढंग पर सज्जित किये जाते हैं। वयस्कों और बच्चों, दोनों को उपहार-पुस्तकें बाँटी जाती हैं। गण्यमान्य महानुभाव, जिनमें गणतंत्र के राष्ट्रपति भी हैं, पुस्तक-मेले का उद्‌घाटन करते हैं। समाचार-पत्र व्यापक पठनोन्नयन के हित में पूर्ण प्रचार करते हैं। ऐसे अवसरों पर लेखक और रेडियो समारोहों को सफल बनाने में सहयोग देते हैं। डाकखाने डाक मुहर पर निम्न वाक्य अंकित करते हैं: 'आज एक पुस्तक खरीदें।'

इस प्रकार के छोटे-छोटे पोस्टर छापे जाते हैं जो उचित स्थानों पर प्रदर्शित किये जाते हैं जैसे:

१. प्रकाशकों और मुद्रकों के लिए: 'पढ़नेवाला व्यक्ति दो के बराबर होता है।'
२. पुस्तक विक्रेताओं के लिए : 'जिसका अनुभव न कर पायें उसे पढ़ें।'
३. नानबाई की दुकानों के लिए : 'पुस्तकें भी जीवनदायी होती हैं—रोटी के बाद किताब पढ़िए।'
४. स्टेशनों और यात्रा-सुविधा प्रदान करनेवाली एजेन्सियों के लिए : 'यात्रा शुभ हो, पुस्तक साथ रखें।'

डच प्रकाशक संघ बहुत पुराना संगठन है और पढ़ने की आदत को प्रोत्साहित करने के इसके अपने तरीके हैं। सम्पूर्ण देश में पुस्तक सप्ताह बड़े शानदार ढंग से मनाया जाता है। इसके खर्च का अधिकांश भाग प्रकाशक उठाते हैं। थोड़ी-सी सरकारी आर्थिक मदद भी मिल जाती है। लेखकों को पुस्तक-सप्ताह में भाग लेने के लिए निमन्त्रित किया जाता है। बाल-विशेषज्ञ औसतन ४० प्रतियोगियों में सर्वोत्तम पांडुलिपि का चयन करते हैं। इसे फिर पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित किया जाता है। इस पुस्तक में उन सब लेखकों के नाम होते हैं जो प्रतियोगिता में भाग लेते हैं। तदुपरान्त इसकी १,५०,००० प्रतियाँ पुस्तक-विक्रेताओं में इसलिए वितरित की जाती हैं कि वे अपनी राय लेखक के बारे में एक निश्चित तिथि तक भेज दें।

पुस्तक-सप्ताह कस्बों में ही नहीं बल्कि गाँवों में भी मनाया जाता है। वहाँ भी भाषण और अन्य सांस्कृतिक हलचलें होती हैं। प्रत्येक पुस्तक-विक्रेता अपनी दुकान के बाहर हरे रंग का पुस्तक सप्ताह झंडा लगाता है। सड़कों के आर-पार पुस्तक-सप्ताह प्रचार करनेवाले बैनर (तोरण) लगाये जाते हैं। इस खर्चे के लिए डेनिश प्रकाशक संघ गद्य या पद्य का एक संग्रह प्रकाशित करता है, जिसकी बिक्री लगभग ३५,००० तक होती हैं। पुस्तक-सप्ताह मनाने के दो माह बाद प्रकाशक, लेखक और पुस्तक-विक्रेता फिर मिलते हैं और आपस में तय करके विजेताओं के नाम घोषित करते हैं, फिर उन्हें पुरस्कार प्रदान किये जाते हैं। जनता में भी जो ऐसे नामों को, जो लोग शीघ्र अनुमान करके बता देते हैं, टोकेन इनाम दिया जाता है। पूरे वर्ष में ५००० पोस्टर वितरित किये

जाते हैं और संघ सर्वोत्तम किताबों की सूचना देनेवाली एक 'बुक-गाइड' प्रकाशित करता है। पढ़ने की आदत डालने और बिक्री के लिए संघ पूरे वर्ष भर सांस्कृतिक-संस्थाओं, बड़ी-बड़ी व्यापारिक संस्थाओं, राजनीतिक कार्यकर्त्ताओं, अध्यापक संघों और कॉलिजों में विख्यात लेखकों के भाषणों का आयोजन करता है।

हिब्रू भाषा के बाल-साहित्य के संबंध में इजराएल रेडियो पर दो साप्ताहिक कार्यक्रम होते हैं। शिक्षा-विभाग स्वीकृत बाल पुस्तकों की एक सूची तैयार करता है जिसे सभी समाचार-पत्रों में भेजा जाता है। प्रकाशक संघ और लेखक संघ संयुक्त रूप से पुस्तक-प्रदर्शनी संयोजित करते हैं।

५. डाकखानों के लिए : 'साभिवादन, मैं पुस्तक भेज रहा हूँ।'

६. होटलों के लिए : 'किताब साथ रखिए, कभी अकेले न रहिए।'

७. प्राथमिक विद्यालयों के लिए : 'मनोरंजन पुस्तकों से प्राप्त करें।'

८. माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों, पेशे से सम्बन्धित विद्यार्थियों और विश्व-विद्यालय के विद्यार्थियों के लिए : 'पठन के बिना वास्तविक संस्कृति कहाँ?'

जर्मनी

वयस्क पठन और फ्रैंकफर्ट मेले के संबंध में जर्मन प्रकाशक संघ ने प्रशंसनीय कार्य किया है। स्कूलों और घरों में रुचि को प्रोत्साहन देने के लिए हर प्रकार के सम्भव प्रयास किये जाते हैं। अध्यापकों के प्रशिक्षण और पाठ्यक्रम में बाल-साहित्य के ज्ञान पर विशेष जोर दिया जाता है। संघ प्रतिवर्ष पठनवृत्ति को प्रोत्साहित करने के लिए पुरस्कार देता है और बाल साहित्य के विशेषज्ञ वर्ष की चुनी हुई पुस्तकों की एक सूची छापते हैं, जिसका उपयोग पुस्तक-विक्रेता, अध्यापक, पुस्तकालय और माता-पिता करते हैं। समाचार-पत्र, टेलिविजन और न्यूजरीलों के द्वारा राष्ट्रव्यापी प्रचार किया जाता है। देशभर में पुस्तक-पठन, पुस्तक प्रदर्शनी और कहानी कहने की प्रतियोगिताएँ होती हैं, ताकि लोगों में उत्साह बढ़े। सभी रेडियो स्टेशनों पर 'बताओ तो जानें' कार्यक्रम होते हैं; जिनमें पुरस्कार के तौर पर प्रकाशनों द्वारा प्रदत्त पुस्तकें दी जाती हैं। स्कूलों के जरिए पोस्टर वितरित किये जाते हैं और सब जगह पुस्तक-विक्रेता, माता-पिता, अध्यापक और बच्चों में पूर्ण सहयोग देखा जाता है।

इंग्लैण्ड के प्रकाशक संघ का सबसे पहला लक्ष्य है 'सम्पूर्ण विश्व में छपी हुई पुस्तकों के व्यापकतम सम्भव प्रसार को प्रोत्साहित करना।' नेशनल बुकलीग का लन्दन के मध्य में अपना निजी सदन है। पूरे ग्रेट ब्रिटेन में इसकी श्रेणी शाखाएँ हैं। नेशनल बुकलीग पूरे देश में साल-भर बाल पुस्तक सप्ताह का आयोजन करती है तथा साथ-साथ पुस्तक-प्रदर्शनियाँ और भाषण भी। पिछले वर्ष इसने देश में ७७ और विदेश में ७ प्रदर्शनियों का संयोजन किया।

इटली का प्रकाशक संघ शिक्षा मंत्रालय से मिलकर अध्यापकों के अनुभवों के आधार पर विभिन्न श्रेणियों के बच्चों और प्राथमिक विद्यालयों के लिए उत्तम पुस्तकों की

फ्रांस ने व्यापक पैमाने पर पठनोन्नयन में बहुत सक्रिय भाग लिया है। १९३१ के मई मास में प्रतिवर्ष दो पुस्तक-दिवस मनाने का मुहूर्त हुआ और १९४८ में पुस्तकोत्सव के लिए पूरा सप्ताह नियत कर दिया गया। फ्रांस के सभी राज्यों और पेरिस में पुस्तकों के प्रदर्शन और विक्रय-संबंधी कार्यक्रम होते हैं। सभी बुकस्टाल फ्रांस के अपने जातीय ढंग पर सज्जित किये जाते हैं। वयस्कों और बच्चों, दोनों को उपहार-पुस्तकें बाँटी जाती हैं। गण्यमान्य महानुभाव, जिनमें गणतंत्र के राष्ट्रपति भी हैं, पुस्तक-मेले का उद्घाटन करते हैं। समाचार-पत्र व्यापक पठनोन्नयन के हित में पूर्ण प्रचार करते हैं। ऐसे अवसरों पर लेखक और रेडियो समारोहों को सफल बनाने में सहयोग देते हैं। डाकखाने डाक मुहर पर निम्न वाक्य अंकित करते हैं: 'आज एक पुस्तक खरीदें।'

इस प्रकार के छोटे-छोटे पोस्टर छापे जाते हैं जो उचित स्थानों पर प्रदर्शित किये जाते हैं जैसे:

१. प्रकाशकों और मुद्रकों के लिए: 'पढ़नेवाला व्यक्ति दो के बराबर होता है।'
२. पुस्तक विक्रेताओं के लिए : 'जिसका अनुभव न कर पायें उसे पढ़ें।'
३. नानबाई की दुकानों के लिए : 'पुस्तकें भी जीवनदायी होती हैं—रोटी के बाद किताब पढ़िए।'
४. स्टेशनों और यात्रा-सुविधा प्रदान करनेवाली एजेन्सियों के लिए : 'यात्रा शुभ हो, पुस्तक साथ रखें।'

डच प्रकाशक संघ बहुत पुराना संगठन है और पढ़ने की आदत को प्रोत्साहित करने के इसके अपने तरीके हैं। सम्पूर्ण देश में पुस्तक सप्ताह बड़े शानदार ढंग से मनाया जाता है। इसके खर्च का अधिकांश भाग प्रकाशक उठाते हैं। थोड़ी-सी सरकारी आर्थिक मदद भी मिल जाती है। लेखकों को पुस्तक-सप्ताह में भाग लेने के लिए निमन्त्रित किया जाता है। बाल-विशेषज्ञ औसतन ४० प्रतियोगियों में सर्वोत्तम पांडुलिपि का चयन करते हैं। इसे फिर पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित किया जाता है। इस पुस्तक में उन सब लेखकों के नाम होते हैं जो प्रतियोगिता में भाग लेते हैं। तदुपरान्त इसकी १,५०,००० प्रतियाँ पुस्तक-विक्रेताओं में इसलिए वितरित की जाती हैं कि वे अपनी राय लेखक के बारे में एक निश्चित तिथि तक भेज दें।

पुस्तक-सप्ताह कस्बों में ही नहीं बल्कि गाँवों में भी मनाया जाता है। वहाँ भी भाषण और अन्य सांस्कृतिक हलचलें होती हैं। प्रत्येक पुस्तक-विक्रेता अपनी दुकान के बाहर हरे रंग का पुस्तक सप्ताह झंडा लगाता है। सड़कों के आर-पार पुस्तक-सप्ताह प्रचार करनेवाले बैनर (तोरण) लगाये जाते हैं। इस खर्चे के लिए डेनिश प्रकाशक संघ गद्य या पद्य का एक संग्रह प्रकाशित करता है, जिसकी बिक्री लगभग ३५,००० तक होती हैं। पुस्तक-सप्ताह मनाने के दो माह बाद प्रकाशक, लेखक और पुस्तक-विक्रेता फिर मिलते हैं और आपस में तय करके विजेताओं के नाम घोषित करते हैं, फिर उन्हें पुरस्कार प्रदान किये जाते हैं। जनता में भी जो ऐसे नामों को, जो लोग शीघ्र अनुमान करके बता देते हैं, टोकेन इनाम दिया जाता है। पूरे वर्ष में ५००० पोस्टर वितरित किये

जाते हैं और संघ सर्वोत्तम किताबों की सूचना देनेवाली एक 'बुक-गाइड' प्रकाशित करता है। पढ़ने की आदत डालने और बिक्री के लिए संघ पूरे वर्ष भर सांस्कृतिक-संस्थाओं, बड़ी-बड़ी व्यापारिक संस्थाओं, राजनीतिक कार्यकर्त्ताओं, अध्यापक संघों और कॉलिजों में विख्यात लेखकों के भाषणों का आयोजन करता है।

हिब्रू भाषा के बाल-साहित्य के संबंध में इजराएल रेडियो पर दो साप्ताहिक कार्यक्रम होते हैं। शिक्षा-विभाग स्वीकृत बाल पुस्तकों की एक सूची तैयार करता है जिसे सभी समाचार-पत्रों में भेजा जाता है। प्रकाशक संघ और लेखक संघ संयुक्त रूप से पुस्तक-प्रदर्शनी संयोजित करते हैं।

५. डाकखानों के लिए : 'साभिवादन, मैं पुस्तक भेज रहा हूँ।'

६. होटलों के लिए : 'किताब साथ रखिए, कभी अकेले न रहिए।'

७. प्राथमिक विद्यालयों के लिए : 'मनोरंजन पुस्तकों से प्राप्त करें।'

८. माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों, पेशे से सम्बन्धित विद्यार्थियों और विश्व-विद्यालय के विद्यार्थियों के लिए : 'पठन के बिना वास्तविक संस्कृति कहाँ?'

जर्मनी

वयस्क पठन और फ्रैंकफर्ट मेले के संबंध में जर्मन प्रकाशक संघ ने प्रशंसनीय कार्य किया है। स्कूलों और घरों में रुचि को प्रोत्साहन देने के लिए हर प्रकार के सम्भव प्रयास किये जाते हैं। अध्यापकों के प्रशिक्षण और पाठ्यक्रम में बाल-साहित्य के ज्ञान पर विशेष जोर दिया जाता है। संघ प्रतिवर्ष पठनवृत्ति को प्रोत्साहित करने के लिए पुरस्कार देता है और बाल साहित्य के विशेषज्ञ वर्ष की चुनी हुई पुस्तकों की एक सूची छापते हैं, जिसका उपयोग पुस्तक-विक्रेता, अध्यापक, पुस्तकालय और माता-पिता करते हैं। समाचार-पत्र, टेलिविजन और न्यूजरीलों के द्वारा राष्ट्रव्यापी प्रचार किया जाता है। देशभर में पुस्तक-पठन, पुस्तक प्रदर्शनी और कहानी कहने की प्रतियोगिताएँ होती हैं, ताकि लोगों में उत्साह बढ़े। सभी रेडियो स्टेशनों पर 'बताओ तो जानें' कार्यक्रम होते हैं; जिनमें पुरस्कार के तौर पर प्रकाशनों द्वारा प्रदत्त पुस्तकें दी जाती हैं। स्कूलों के जरिए पोस्टर वितरित किये जाते हैं और सब जगह पुस्तक-विक्रेता, माता-पिता, अध्यापक और बच्चों में पूर्ण सहयोग देखा जाता है।

इंग्लैण्ड के प्रकाशक संघ का सबसे पहला लक्ष्य है 'सम्पूर्ण विश्व में छपी हुई पुस्तकों के व्यापकतम सम्भव प्रसार को प्रोत्साहित करना।' नेशनल बुकलीग का लन्दन के मध्य में अपना निजी सदन है। पूरे ग्रेट ब्रिटेन में इसकी श्रेणी शाखाएँ हैं। नेशनल बुकलीग पूरे देश में साल-भर बाल पुस्तक सप्ताह का आयोजन करती है तथा साथ-साथ पुस्तक-प्रदर्शनियाँ और भाषण भी। पिछले वर्ष इसने देश में ७७ और विदेश में ७ प्रदर्शनियों का संयोजन किया।

इटली का प्रकाशक संघ शिक्षा मंत्रालय से मिलकर अध्यापकों के अनुभवों के आधार पर विभिन्न श्रेणियों के बच्चों और प्राथमिक विद्यालयों के लिए उत्तम पुस्तकों की

एक सूची तैयार करता है। नार्वे में पुस्तकविक्रेता और स्कूल समय-समय पर प्रदर्शनियाँ अयोजित करते हैं और पढ़ने की आदत डालने के लिए छोटी अध्ययन-गोष्ठियाँ की जाती हैं। पोर्चुगाल में बच्चों में पढ़ने की आदत डालने की दिशा में कोई काम नहीं हुआ है, हालाँकि पुस्तकोत्सव १९३० से हो रहे हैं। लिस्बन और पोर्चो के मेलों में पुस्तकें घटी दर पर भी बेची जाती हैं। स्वीडन के प्रकाशक-संघ का अपना अलग तरीका है जनता के पढ़ने की प्रवृति को व्यापक करने का। पुस्तक-सप्ताह तो राष्ट्रव्यापी घटना है। समाचार-पत्र, रेडियो, स्कूल आदि सब इसमें सहयोग करते हैं, प्रकाशकों की सहायता करते हैं। चुनी हुई पुस्तकों का सूचीपत्र लगभग ७ लाख की संख्या में किताबों की दुकानों के जरिए बाँटा जाता है। बालकों की एक पुस्तक-प्रतियोगिता होती है जिसमें एक हजार पुस्तकें पुरस्कार के रूप में दी जाती हैं। वर्ष में एक बार विशेष आन्दोलन इसलिए किया जाता है कि माता-पिता चुनी हुई पुस्तकें ले सकें। बच्चों के पढ़ने की आदत डालने के लिए, कूपन प्रणाली से घर में ही पुस्तकालय बनाने की एक अद्वितीय विधि बना ली गयी है। स्विडिश बुक सर्विस बच्चों को सस्ते मूल्य पर कूपन देती है। यह विधि पिछले ३५ वर्षों से बरती जा रही है और सफल सिद्ध हुई है। ऐसी व्यवस्था भी है कि वयस्क भी इन कूपनों से पुस्तकें खरीद सकें।

स्विट्जरलैण्ड के प्रकाशक भी पठनोन्नयन की दृष्टि से पीछे नहीं, हालांकि इनका ढंग निराला है। देश-भर में चलती-फिरती पुस्तक प्रदर्शनी आयोजित की जाती है। सबके घरों पर सूचीपत्र भेजे जाते हैं। स्कूलों में प्रतियोगिताएँ होती हैं, पुस्तकों के संबंध में फिल्में भी दिखाई जाती हैं।

अमरीका के ढंग सभी से अलग हैं। यहाँ पर विश्वास किया जाता है कि सार्वजनिक पुस्तकालयों में जितनी अधिक किताबें पढ़ी जायेंगी, उतनी अधिक सभी जगह पढ़ने के लिए किताबों की माँग बढ़ेगी। यहाँ प्रतिवर्ष शिक्षकों, पुस्तकालयाध्यक्षों और प्रकाशकों की दो गोष्ठियाँ होती हैं। इनका सबसे पहला कर्त्तव्य यह होता है कि बच्चों और वयस्कों में जीवनपर्यन्त पढ़ने की आदत का विकास करें। इस प्रकार की गोष्ठियों के फलस्वरूप पठनरुचि संबंधी साहित्य प्रकाशित होता है। पिछले वर्ष एक नया नारा दिया गया : 'जागो और पढ़ो।' प्रचार के विविध साधनों का भरपूर उपयोग पुस्तक-सप्ताह के अवसर पर किया गया। इस प्रकार के आयोजनों को अमरीका के राष्ट्रपति का संरक्षण प्राप्त होता है। देहाती क्षेत्रों में पुस्तकालय-योजना का विकास करने के लिए लगभग ३ करोड़ रुपया अनुदान के रूप में दिया जाता है। पिछले ४१ वर्षों से अमरीका में बाल पुस्तक सप्ताह मनाया जा रहा है। ४१ वर्ष पहले सिर्फ एक बाल-प्रकाशक संस्थान था, आज ६५ हैं। बच्चों के पढ़ने के लिए पुस्तकों का विशाल भण्डार सुलभ है।

लुंट की रिपोर्ट के बाद यह तय पाया गया कि प्रत्येक देश एक विशेष सप्ताह 'पुस्तकोत्सव' के नाम से मनाए और पुस्तकों का शैक्षणिक और सांस्कृतिक महत्व प्रचार के प्रत्येक माध्यम रेडियो, समाचारपत्र, गोष्ठी, प्रदर्शनी आदि से उजागर करे। प्रत्येक देश अपने कार्य की रिपोर्ट महामंत्री को भेजे ताकि उसे अन्य सदस्य देशों को भी सूचनार्थ भेजा जा सके।

२७ तारीख को किश्तों पर पुस्तकें बेचने के संबंध में के. बौनियर ने अपनी रिपोर्ट पेश की। किश्तों पर पुस्तक बेचने में पहल १८८० से १८९० ई० के बीच जर्मनी और आस्ट्रिया ने की। पर दूसरे देशों का अनुभव उत्साहवर्द्धक नहीं है। फ्रांस का उदाहरण हमारे सामने है। हालाँकि इस आधार पर पुस्तकें बेचने से स्टाक तो जल्दी खत्म हो जायेगा, पर रकम वसूल होने का कोई ठिकाना नहीं। भारत में इस प्रणाली से पुस्तकें बेचना हितकारी सिद्ध नहीं होगा।

मध्याह्न में दीनानाथ मल्होत्रा को रिपोर्ट पेश होनी थी, पर उनकी अनुपस्थिति के कारण वह प्रस्तुत न हो सकी। अन्तर्राष्ट्रीय प्रकाशक संघ के महामंत्री के अनुरोध पर भारतीय प्रतिनिधिमण्डल के नेता रामलालपुरी ने भाषण किया। इनका भाषण सारपूर्ण और दिलचस्प रहा। इन्होंने इस बात पर जोर दिया कि पूर्वी और पश्चिमी प्रकाशकों के पारस्परिक लाभ के लिए चुनी हुई पुस्तकों का अनुवाद होना चाहिए लेकिन एकतरफा ही काम नहीं होना चाहिए।

इस कांग्रेस के तीसरे दिन के अधिवेशन में एक और रिपोर्ट पेश हुई जिसका उद्देश्य यह था कि पुस्तकों की निर्बाध आवाजाही के विषय में प्रयत्न किए जायँ, क्योंकि पुस्तकें विचारों का वाहक हैं। इस रिपोर्ट के वक्ता श्री रूजा ने अपने वक्तव्य को चार शीर्षकों में विभाजित किया था—

१. पुस्तकों का अनादर।

२. बौद्धिक और व्यापारी तत्वों के सह-अस्तित्व के कारण उत्पन्न गड़बड़ी।

३. पुस्तकों और मुद्रकों पर लगे विशेष कानूनी नियंत्रण।

४. उपसंहार—पुस्तकों के लिए एक स्टेच्यूट की अपील।

इस रिपोर्ट की समाप्ति पर निम्न प्रस्ताव उभरकर सामने आये :

वियना में २४ से २९ मई, १९५९ तक होनेवाले प्रकाशकों के अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की इस बैठक का विश्वास है कि पुस्तकें विचार का स्थायी प्रकटीकरण हैं और प्रचार का स्थायी माध्यम भी हैं—

विचार पुस्तकों के सिवा अन्य माध्यमों से भी प्रकट किए जा सकते हैं, परन्तु पुस्तकें केवल विचार प्रकट के लिए ही बनी हैं;

इसी कारण पुस्तकों का और किसी निर्मित माल से मुकाबिला नहीं किया जा सकता;

बौद्धिक और आकारी तत्ववाली पुस्तकों के सहअस्तित्व का यह अर्थ कदापि नहीं कि दोनों की समान कोटि है और पुस्तकों का भौतिक आकार मूल रूप से बौद्धिक प्रकार से निम्न हैं:

पुस्तक में प्रकट विचारों का भाग्य भौतिक आकार की आर्थिक सफलता से जुड़ा हुआ है और इस सफलता में जो भी बाधा उत्पन्न होगी वह विचार के स्वाधीन विकास के हित में नहीं होगी;

इसलिए प्रकाशकों का अन्तर्राष्ट्रीय संगठन यह कामना करता है कि समय के दौर से पुस्तकों का जो सम्मान क्षय हुआ है पुन: उसको प्रतिष्ठित किया जाय। एक स्टेच्यूट का निर्माण किया जाय जिसमें पुस्तकों के बौद्धिक तत्व पर जोर दिया जाय और उन्हें इस प्रकार के सभी आर्थिक प्रतिबन्धों से मुक्त किया जाय जो विचार-प्रचार के माध्यम में रुकावट उत्पन्न करते हैं। पुस्तकों को सभी अन्तर्राष्ट्रीय सांस्कृतिक समझौतों में विशेष स्थान दिया जाय। निर्बाध अन्तर्राष्ट्रीय आवाजाही के मार्ग को अवरुद्ध करनेवाले सभी (चुंगी, कर, टैक्स, कोटा, परमिट आदि) तत्वों का धीरे-धीरे उन्मूलन किया जाय।

सम्मेलन में और कई उपयोगी सुझाव सामने आए जिनके परिपार्श्व में निम्न सुझाव भारत के लिये उपयोगी है:

१. विदेशों में स्थित भारतीय राजदूतावासों में इस प्रकार के चार्ट लटकाये जायँ जिनमें विख्यात भारतीय क्लासिकों और सुप्रसिद्ध भारतीय लेखकों की कॉपीराइट कृतियों की एक सूची के साथ कॉपीराइट स्वत्वाधिकारी के पते भी हों।

२. विख्यात भारतीय क्लासिकों और आधुनिक भारतीय साहित्य की एक सूची अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन, स्पेनिश आदि भाषाओं में प्रकाशित की जाय, जिससे विदेशी प्रकाशक और लेखक लाभान्वित होंगे।

३. कागज की कमी को दूर करने के लिए मिलें सीधे प्रकाशकों को माल दें और कागज मिलों को पुस्तकों के प्रकाशन के अनुरूप उत्तम कागज का उत्पादन करने का निर्देश सरकार द्वारा दिया जाय।

४. भारत सरकार प्रकाशकों का राष्ट्रीय पंजीकरण करे और उनके विभिन्न वर्गों का उल्लेख करे। पुस्तक-व्यवसाय के विशेषज्ञ प्रकाशकों की योग्यता का निर्धारण करे।

५. भविष्य में अन्तर्राष्ट्रीय समारोहों में भाग लेने के लिए जानेवाले भारतीय प्रतिनिधि मण्डल को कुछ-न-कुछ सरकारी स्टेटस अवश्य प्रदान किया जाय ताकि पासपोर्ट आदि प्राप्त करने में कोई दिक्कत न हो।

६. प्रकाशकों और लेखकों का मिला-जुला सलाहकार मण्डल स्थापित किया जाय जो प्रकाशकों को ऐसे साहित्य के बारे में मशविरा दे जो अब तक हिन्दी में और भारत की दूसरी भाषाओं में नहीं छपा है।

७. प्रकाशन के विभिन्न अंगों पर विचार-विमर्श करने के लिए समय-समय पर सेमिनार संयोजित किए जायँ, जिनके द्वारा भारतीय प्रकाशकों को प्रचार-प्रणाली, मुद्रण और उत्पादन संबंधी समस्याओं का दिशाबोध मिले।

८. अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय प्रकाशक संघ की वियना में होनेवाले २५वें सम्मेलन के लिए मनोनीत भारतीय प्रकाशक प्रतिनिधिमण्डल की कार्यवाही को शिक्षामंत्रालय की अगली रिपोर्ट में सम्मिलित किया जाय।

९. पुस्तक-प्रकाशन के लिए प्रयुक्त होनेवाले कागज पर से चुंगी हटा दी जाय और कागज की कीमतें आयातित विदेशी कागज के अनुपात से निर्धारित की जायँ, क्योंकि ऐसा न होने से पुस्तकों की निर्बाध आवा-जाही बाधित होती है।

१०. प्रकाशकगण प्रकाशन के क्षेत्र में विषय-विशिष्टता अपनाएँ। इससे पाठक, लेखक और जनता सभी को सहायता मिलेगी।

११. प्रकाशक संघों को चाहिए कि वे पुस्तक-विक्रेताओं के संगठनों को बढ़ावा दें, जिससे बिक्री बढ़ाने में उचित ताल-मेल बने।

१२. प्रतिवर्ष पुस्तकोत्सव या पुस्तक सप्ताह संयोजित किया जाय। इसमें देशभर के प्रकाशक, विक्रेता, लेखक, अध्यापक और पुस्तकालयाध्यक्ष सहयोग करें। अखिल भारतीय हिन्दी-प्रकाशक संघ एक उच्चसत्ता समिति नियुक्त करे जो पुस्तक-सप्ताह के संबंध में योजनादि बनाये।

विशेष—अन्तर्राष्ट्रीय प्रकाशक संघ के २५वें विएना सम्मेलन में कृष्णचन्द्र वेरी ने भारत का प्रतिनिधित्व किया था। उसी पर आधारित एक महत्त्वपूर्ण रिपोर्ट।

❀

प्रथम विश्व हिन्दी सम्मेलन

१० जनवरी से १४ जनवरी, १९७५ को नागपुर में विश्व हिन्दी सम्मेलन का आयोजन हो रहा है। हिन्दी-जगत का यह प्रथम विश्व-स्तरीय आयोजन होगा, जिसमें विभिन्न देशों के हिन्दी लेखक, पत्रकार, प्रकाशक, अध्यापक, प्रचारक आदि बड़ी संख्या में भाग लेंगे। आशा की जाती है कि इस सम्मेलन में लगभग ३ हजार प्रतिनिधि सम्मिलित होंगे, जिनमें हिन्दी के २०० मूर्धन्य प्रकाशक भी हैं।

सम्मेलन के अवसर पर अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ तथा नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया के सहयोग से हिन्दी-पुस्तकों की एक विशाल प्रदर्शनी का आयोजन किया जा रहा है। इस प्रदर्शनी में १९७१ से १९७४ तक प्रकाशित हिन्दी की विभिन्न विधाओं की महत्वपूर्ण कृतियाँ होंगी।

सम्मेलन में देश के शिक्षा-शास्त्री, हिन्दी पढ़ानेवाले अध्यापक एवं विदेशों में, जहाँ बड़ी संख्या में भारतीय हैं, के विद्वान भी आ रहे हैं। इसे देखते हुए पुस्तक प्रदर्शनी में हिन्दी के पाठ्य-पुस्तकों का एक कक्ष विशेष रूप से लगाने का निर्णय लिया गया है। इस कक्ष में प्रारम्भिक कक्षा से लेकर १०वीं कक्षा तक की हिन्दी पाठ्य-पुस्तकें प्रदर्शित की जाएँगी। हिन्दी पाठ्य, आनुषंगिक वाचन, व्याकरण-रचना तथा विभिन्न विदेशी भाषाओं के माध्यम से हिन्दी सीखने की पुस्तकें इस कक्ष का मुख्य आकर्षण होंगी। हिन्दी में बाल-साहित्य, प्रौढ़ साहित्य और पॉकिट बुक्स के अलग-अलग कक्ष सजाए जाएँगे, जिससे इन विषयों पर प्रकाशन-प्रगति का स्पष्ट रूप से पता चल सकेगा। प्रदर्शनी में दो विभाग होंगे—

१. साहित्य : जिसमें शोधग्रन्थ, सन्दर्भ ग्रन्थ, आलोचना, हिन्दी साहित्य का इतिहास, कोश, भाषा विज्ञान, निबन्ध, काव्य, कहानी, उपन्यास, नाटक, एकांकी, जीवन-चरित्र, आत्म कथा, संस्मरण, रेखाचित्र, पत्र, डायरी तथा गद्य-काव्य आदि विषय की पुस्तकें होंगी।

२. साहित्येतर : इसमें भारतीय-संस्कृति, धर्म, इतिहास, राजनीति, दर्शन-शास्त्र, शिक्षा, समाजशास्त्र, वैदिक साहित्य, संस्कृत साहित्य, भाषा शास्त्र, विशिष्ट स्तर का किशोर एवं सामान्य साहित्य आदि विषय की पुस्तकें होंगी।

प्रदर्शनी में भारत में प्रकाशित हिन्दी-पुस्तकों से सम्बन्धित वार्षिक आँकड़ों का चार्ट भी प्रदर्शित किया जाएगा और विषयक्रम से प्रतिवर्ष प्रकाशित होनेवाली पुस्तकों की जानकारी भी दी जाएगी।

नवोदित लेखकों की कृतियों के प्रदर्शन को विशेष महत्व दिया जाएगा, ताकि नई पीढ़ी को प्रदर्शनी और सूची में उचित स्थान मिल सके। हिन्दी के मूर्धन्य साहित्यकारों के चित्र भी प्रदर्शनी के अंग होंगे।

प्रदर्शित की जानेवाली पुस्तकों का चयन केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नेशनल बुक ट्रस्ट ऑफ इण्डिया तथा अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ की ६ सदस्यीय चयन-समिति द्वारा होगा।

प्रदर्शनी के लिए देश के सभी प्रकाशकों से प्रत्येक पुस्तक की एक प्रति तथा पुस्तक का दो या तीन डस्ट कवर भी आमन्त्रित किया गया है। पुस्तकें १५ दिसम्बर, १९७४ तक अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ के कार्यालय, के-१६, नवीन शाहदरा, दिल्ली-३२ में पहुँच जानी चाहिए। २५ दिसम्बर के बाद प्राप्त पुस्तकों को प्रदर्शनी के लिए स्वीकार करना सम्भव न होगा।

प्रदर्शित पुस्तकों की एक पुस्तक-सूची भी इस अवसर पर प्रकाशित की जाएगी, जिसकी तीन हजार प्रतियाँ छपेंगी और विश्व हिन्दी सम्मेलन में उपस्थित सभी वर्ग के प्रतिनिधियों में वितरित की जाएँगी। सूची का प्रकाशन संघ की ओर से किया जा रहा है और सूची में अन्तर्भुक्त होनेवाली प्रत्येक पुस्तक की प्रविष्टि का शुल्क दो रुपया है। आवरण पृष्ठों पर विज्ञापन स्वीकार किए जाएँगे। इस सम्बन्ध में सभी जानकारी प्रधानमंत्री, अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ (पंजीकृत) के-१६, नवीन शाहदरा, दिल्ली-३२ से प्राप्त की जा सकती है।

विश्व हिन्दी सम्मेलन में प्रकाशकों, सरकारी तथा अर्द्ध-सरकारी प्रकाशन संस्थाओं के बिक्री स्टाल भी होंगे, जिनका शुल्क १५ सौ रुपए प्रति स्टाल है। इस अवसर पर विश्व हिन्दी दर्शन पत्रिका का प्रकाशन भी हो रहा है, जिसमें विद्वानों के हिन्दी की बहुमुखी प्रगति सम्बन्धी लेख होंगे। सम्मेलन का प्रतिनिधि बनने के लिए प्रकाशकों को भोजन एवं आवास सहित १०१ रुपए विशिष्ट सदस्य श्रेणी के लिए और ५१ रुपए साधारण श्रेणी के लिए देने होंगे। रेलवे कन्सेशन की सुविधा भी आगन्तुक प्रतिनिधियों को मिलेगी। शुल्क भेजने के लिए महासचिव विश्व हिन्दी सम्मेलन, नागपुर अथवा अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ के महासचिव से सम्पर्क स्थापित किया जा सकता है।

संघ हिन्दी के पुस्तक-व्यवसाय से सम्बन्धी पत्रों को भी इस अवसर पर विशेषांकों को प्रकाशित करने के लिए प्रेरित कर रहा है। आशा की जाती है कि इस अवसर पर हिन्दी प्रचारक पत्रिका, पुस्तक परिचय, प्रकाशन समाचार, नया साहित्य आदि पत्रिकाओं के विशेषांक भी प्रकाशित होंगे, जिनमें हिन्दी स्वतंत्रता के बाद प्रकाशन जगत में हुई प्रगति की विशेष रूप से चर्चा होगी।

नागपुर सम्मेलन के अवसर पर 'हिन्दी लेखन और प्रकाशन को १९७५ की चुनौती' विषय पर एक विचार-गोष्ठी का आयोजन भी किया गया है, जिसमें हिन्दी के

प्रथम विश्व हिन्दी सम्मेलन

१० जनवरी से १४ जनवरी, १९७५ को नागपुर में विश्व हिन्दी सम्मेलन का आयोजन हो रहा है। हिन्दी-जगत का यह प्रथम विश्व-स्तरीय आयोजन होगा, जिसमें विभिन्न देशों के हिन्दी लेखक, पत्रकार, प्रकाशक, अध्यापक, प्रचारक आदि बड़ी संख्या में भाग लेंगे। आशा की जाती है कि इस सम्मेलन में लगभग ३ हजार प्रतिनिधि सम्मिलित होंगे, जिनमें हिन्दी के २०० मूर्धन्य प्रकाशक भी हैं।

सम्मेलन के अवसर पर अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ तथा नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया के सहयोग से हिन्दी-पुस्तकों की एक विशाल प्रदर्शनी का आयोजन किया जा रहा है। इस प्रदर्शनी में १९७१ से १९७४ तक प्रकाशित हिन्दी की विभिन्न विधाओं की महत्वपूर्ण कृतियाँ होंगी।

सम्मेलन में देश के शिक्षा-शास्त्री, हिन्दी पढ़ानेवाले अध्यापक एवं विदेशों में, जहाँ बड़ी संख्या में भारतीय हैं, के विद्वान भी आ रहे हैं। इसे देखते हुए पुस्तक प्रदर्शनी में हिन्दी के पाठ्य-पुस्तकों का एक कक्ष विशेष रूप से लगाने का निर्णय लिया गया है। इस कक्ष में प्रारम्भिक कक्षा से लेकर १०वीं कक्षा तक की हिन्दी पाठ्य-पुस्तकें प्रदर्शित की जाएँगी। हिन्दी पाठ्य, आनुषंगिक वाचन, व्याकरण-रचना तथा विभिन्न विदेशी भाषाओं के माध्यम से हिन्दी सीखने की पुस्तकें इस कक्ष का मुख्य आकर्षण होंगी। हिन्दी में बाल-साहित्य, प्रौढ़ साहित्य और पॉकिट बुक्स के अलग-अलग कक्ष सजाए जाएँगे, जिससे इन विषयों पर प्रकाशन-प्रगति का स्पष्ट रूप से पता चल सकेगा। प्रदर्शनी में दो विभाग होंगे—

१. साहित्य : जिसमें शोधग्रन्थ, सन्दर्भ ग्रन्थ, आलोचना, हिन्दी साहित्य का इतिहास, कोश, भाषा विज्ञान, निबन्ध, काव्य, कहानी, उपन्यास, नाटक, एकांकी, जीवन-चरित्र, आत्म कथा, संस्मरण, रेखाचित्र, पत्र, डायरी तथा गद्य-काव्य आदि विषय की पुस्तकें होंगी।

२. साहित्येतर : इसमें भारतीय-संस्कृति, धर्म, इतिहास, राजनीति, दर्शन-शास्त्र, शिक्षा, समाजशास्त्र, वैदिक साहित्य, संस्कृत साहित्य, भाषा शास्त्र, विशिष्ट स्तर का किशोर एवं सामान्य साहित्य आदि विषय की पुस्तकें होंगी।

प्रदर्शनी में भारत में प्रकाशित हिन्दी-पुस्तकों से सम्बन्धित वार्षिक आँकड़ों का चार्ट भी प्रदर्शित किया जाएगा और विषयक्रम से प्रतिवर्ष प्रकाशित होनेवाली पुस्तकों की जानकारी भी दी जाएगी।

नवोदित लेखकों की कृतियों के प्रदर्शन को विशेष महत्व दिया जाएगा, ताकि नई पीढ़ी को प्रदर्शनी और सूची में उचित स्थान मिल सके। हिन्दी के मूर्धन्य साहित्यकारों के चित्र भी प्रदर्शनी के अंग होंगे।

प्रदर्शित की जानेवाली पुस्तकों का चयन केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नेशनल बुक ट्रस्ट ऑफ इण्डिया तथा अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ की ६ सदस्यीय चयन-समिति द्वारा होगा।

प्रदर्शनी के लिए देश के सभी प्रकाशकों से प्रत्येक पुस्तक की एक प्रति तथा पुस्तक का दो या तीन डस्ट कवर भी आमन्त्रित किया गया है। पुस्तकें १५ दिसम्बर, १९७४ तक अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ के कार्यालय, के-१६, नवीन शाहदरा, दिल्ली-३२ में पहुँच जानी चाहिए। २५ दिसम्बर के बाद प्राप्त पुस्तकों को प्रदर्शनी के लिए स्वीकार करना सम्भव न होगा।

प्रदर्शित पुस्तकों की एक पुस्तक-सूची भी इस अवसर पर प्रकाशित की जाएगी, जिसकी तीन हजार प्रतियाँ छपेंगी और विश्व हिन्दी सम्मेलन में उपस्थित सभी वर्ग के प्रतिनिधियों में वितरित की जाएँगी। सूची का प्रकाशन संघ की ओर से किया जा रहा है और सूची में अन्तर्भुक्त होनेवाली प्रत्येक पुस्तक की प्रविष्टि का शुल्क दो रुपया है। आवरण पृष्ठों पर विज्ञापन स्वीकार किए जाएँगे। इस सम्बन्ध में सभी जानकारी प्रधानमंत्री, अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ (पंजीकृत) के-१६, नवीन शाहदरा, दिल्ली-३२ से प्राप्त की जा सकती है।

विश्व हिन्दी सम्मेलन में प्रकाशकों, सरकारी तथा अर्द्ध-सरकारी प्रकाशन संस्थाओं के बिक्री स्टाल भी होंगे, जिनका शुल्क १५ सौ रुपए प्रति स्टाल है। इस अवसर पर विश्व हिन्दी दर्शन पत्रिका का प्रकाशन भी हो रहा है, जिसमें विद्वानों के हिन्दी की बहुमुखी प्रगति सम्बन्धी लेख होंगे। सम्मेलन का प्रतिनिधि बनने के लिए प्रकाशकों को भोजन एवं आवास सहित १०१ रुपए विशिष्ट सदस्य श्रेणी के लिए और ५१ रुपए साधारण श्रेणी के लिए देने होंगे। रेलवे कन्सेशन की सुविधा भी आगन्तुक प्रतिनिधियों को मिलेगी। शुल्क भेजने के लिए महासचिव विश्व हिन्दी सम्मेलन, नागपुर अथवा अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ के महासचिव से सम्पर्क स्थापित किया जा सकता है।

संघ हिन्दी के पुस्तक-व्यवसाय से सम्बन्धी पत्रों को भी इस अवसर पर विशेषांकों को प्रकाशित करने के लिए प्रेरित कर रहा है। आशा की जाती है कि इस अवसर पर हिन्दी प्रचारक पत्रिका, पुस्तक परिचय, प्रकाशन समाचार, नया साहित्य आदि पत्रिकाओं के विशेषांक भी प्रकाशित होंगे, जिनमें हिन्दी स्वतंत्रता के बाद प्रकाशन जगत में हुई प्रगति की विशेष रूप से चर्चा होगी।

नागपुर सम्मेलन के अवसर पर 'हिन्दी लेखन और प्रकाशन को १९७५ की चुनौती' विषय पर एक विचार-गोष्ठी का आयोजन भी किया गया है, जिसमें हिन्दी कें

लब्ध प्रतिष्ठित लेखक और प्रकाशक भाग लेंगे। गोष्ठी का निदेशन संघ का अध्यक्ष होने के नाते, मैं गोष्ठी में इस बात की विशेष रूप से चर्चा करूँगा कि कागज की मँहगाई, मुद्रण तथा प्रकाशन सम्बन्धी अन्य उपकरणों की बेतहाशा मूल्य वृद्धि के कारण लेखन पर पड़ने वाले प्रभाव को देखते हुए भविष्य में किस तरह हिन्दी लेखन और प्रकाशन को सही दिशा दी जाय, इस विषय पर प्रबन्ध प्रस्तुत किए जाएँगे। गोष्ठी निर्णय करेगी कि भविष्य में जनता को कम मूल्य में साहित्य कैसे उपलब्ध कराया जाय।

नागपुर में संघ का १९वाँ वार्षिक अधिवेशन भी होगा। सम्मेलन का उद्घाटन केन्द्रीय जहाजरानी मंत्री माननीय पं० कमलापतिजी त्रिपाठी करेंगे।

सभी प्रकाशन संस्थाओं से अपील है कि वे संघ के उक्त आयोजन में भाग लें और जो संघ के सदस्य नहीं हैं वे अविलम्ब बन जायँ। संघ के कार्यालय से इस सम्बन्ध में दो हजार प्रकाशन संस्थाओं को आमन्त्रण भेजे गए हैं। जिन प्रकाशन संस्थाओं को यह आमन्त्रण न मिला हो वे समाचार पत्रों से इस सूचना को आमन्त्रण के रूप में स्वीकार करें।

हिन्दी प्रकाशक संघ की उपलब्धियाँ

'अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ' राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रकाशकों की सर्वोच्च आधिकारिक संस्था है। हिन्दी के सभी वर्ग के प्रकाशक इसके सदस्य हैं। देश की विभिन्न प्रान्तीय एवं नगर प्रकाशन संस्थायें इसकी सहयोगी हैं। वैसे हमारे देश में प्रकाशकों की संगठित संस्थायें प्रदेश और नगरस्तर पर १९३० से ही चली आ रही हैं, परन्तु अखिल भारतीय स्तर पर हिन्दी प्रकाशकों की इस संस्था की स्थापना १९५४ की मई में दिल्ली में हुई। संघ के प्रमुख उद्देश्य हैं:

(अ) हिन्दी पुस्तकों के प्रकाशकों के हितों का संरक्षण और उनका सामूहिक प्रतिनिधित्व करना।

(आ) प्रकाशन व्यवसाय को समृद्ध और गौरवान्वित करना।

(ई) प्रकाशन व्यवसाय सम्बन्धी आधुनिक जानकारी एवं तथ्यों का प्रसार करना।

(इ) हिन्दी साहित्य के स्तर को उत्तरोत्तर ऊँचा करना तथा उसके अभावों की पूर्ति के लिए प्रयत्न करना।

(उ) लेखक, प्रकाशक तथा पुस्तक विक्रेताओं के पारस्परिक सम्बन्धों में सामंजस्य स्थापित करना।

(ऊ) उपर्युक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिए पत्र निकालना, पुस्तकालय स्थापित करना, पुस्तक प्रदर्शनियाँ करना तथा अन्य उचित सम्भावित प्रयत्न करना।

उपरोक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिए पिछले ४२ वर्षों में संघ ने बहुत ही सक्रिय कदम उठाये हैं। हिन्दी प्रकाशकों तथा पुस्तक-विक्रेताओं के हितों के संरक्षण की दृष्टि से संघ ने सबसे बड़ा कार्य यह किया कि पाठकों को हिन्दी पुस्तकें सर्वत्र एक ही मूल्य पर उपलब्ध हों, इसके लिए नेट-बुक-समझौता भारत के हिन्दी पुस्तक-विक्रेताओं और प्रकाशकों के बीच लागू किया गया। संघ के इस प्रयत्न से सत्साहित्य उचित मूल्य पर जनता को मिलने लगा, साथ ही प्रकाशकों तथा पुस्तक-विक्रेताओं को भी आर्थिक लाभ हुआ। कतिपय कारणों से संघ के इस समझौते के कार्यान्वयन में व्याघात पड़ा, परन्तु हमें आशा है कि इस अड़चन को दूर करने में संघ सफल होगा। पुस्तकों पर रेल का किराया अधिक न हो इस पर संघ ने सम्बन्धित मंत्रालय से पत्राचार किया। साथ ही अखिल भारतीय प्रकाशक संघ के निश्चयानुसार एक शिष्टमंडल २४ फरवरी, १९५५ में तत्कालीन प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू से देश में विभिन्न प्रकाशकीय समस्याओं पर बातचीत करने के लिए मिला। इस अवसर पर तत्कालीन रेलमंत्री लालबहादुर शास्त्री भी उपस्थित

थे। नेहरूजी ने शास्त्रीजी से प्रकाशकों की माँगों पर विचार करने को कहा, परिणामस्वरूप पुस्तकों का किराया रेल मंत्रालय ने आधा कर दिया। पुस्तकों पर पोस्टेज कम करने की दिशा में संघ ने आन्दोलन किया और अभी इस दिशा में प्रयत्न जारी है। टेण्डर प्रथा के विरुद्ध संघ ने आन्दोलन किया और उसका परिणाम यह हुआ कि केन्द्रीय शिक्षा तथा वित्त मंत्रालय ने विभिन्न राज्य सरकारों को लिखा है कि पुस्तकों पर टेण्डर न माँगा जाय। पुस्तकें बौद्धिक तथा आध्यात्मिक चेतना की प्रतीक हैं और इन पर टेण्डर माँगने की प्रथा उचित नहीं है। पाठ्य-पुस्तकों के राष्ट्रीयकरण के विरुद्ध संघ का प्रयत्न अभी जारी है।

प्रकाशन व्यवसाय को समृद्धिशाली और गौरवशाली बनाने की दिशा में संघ ने अपने अभी तक के कार्यकाल में आशातीत कार्य किये हैं। विभिन्न अवसरों पर संघ द्वारा विचार गोष्ठियों का आयोजन किया गया, जिनके द्वारा प्रकाशकों को सुझाव दिया गया कि वे उच्चकोटि के प्रकाशन करें और मुद्रण आकल्पन में आधुनिक वैज्ञानिक तौर-तरीके अपनायें। प्रकाशकीय मर्यादा को समझते हुए सत्साहित्य प्रकाशित करें। गन्दी व्यापारिक होड़ में न पड़ें और ऐसे कार्य करें जिनसे राष्ट्रीय जीवन में प्रकाशन व्यवसाय का सम्मानजनक स्थान बना रहे। संघ ने दो महत्वपूर्ण विचारगोष्ठियाँ आयोजित कीं। इनमें पहली सन् १९५८ में २८ सितम्बर से ४ अक्टूबर तक दिल्ली में हुई थी, जिसका उद्‌घाटन तत्कालीन केन्द्रीय शिक्षामंत्री डॉ० के० एल० श्रीमाली ने किया था। इस गोष्ठी में ग्रेट ब्रिटेन तथा अमेरिका के आधिकारिक विद्वानों के अतिरिक्त देश के चुने हुए प्रकाशकों, लेखकों तथा सरकारी अधिकारियों ने भी भाग लिया। दूसरी विचारगोष्ठी भी दिल्ली में ही सन् १९६० में १७ से १९ नवम्बर तक 'पुस्तक व्यवसाय में सहकारिता' विषय पर हुई, जिसका उद्‌घाटन भारत सरकार के तत्कालीन शिक्षा सचिव पी० एन० कृपाल ने किया। इस गोष्ठी में भारत सरकार के शिक्षा उपवेष्टा सरदार सोहन सिंह, नीदरलैण्ड दूतावास नई दिल्ली के फर्स्ट कल्चरल सेक्रेटरी जे० ई० शाप, राजपाल एण्ड सन्स के व्यवस्थापक दीनानाथ मल्होत्रा, राजकमल प्रकाशन के डाइरेक्टर इन्चार्ज ओमप्रकाश तथा हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय के व्यवस्थापक कृष्णचन्द्र बेरी ने सहकारिता के विभिन्न पहलुओं पर अपने निबन्ध प्रस्तुत किये।

प्रकाशन व्यवसाय सम्बन्धी आधुनिक जानकारियों और तथ्यों का प्रचार करने में उपरोक्त विचारगोष्ठियाँ उपयोगी रहीं। इनके अतिरिक्त नवम्बर १९५९ में यूनेस्को की दक्षिण पूर्वी एशिया के देशों की क्षेत्रीय विचारगोष्ठी में संघ ने भारत का प्रतिनिधित्व किया। उपरोक्त गोष्ठियों के निष्कर्षों का संघ ने अपने सदस्यों में प्रचार किया। संघ की ओर से १९५६ में इटली के फ्लोरेन्स नगर में आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय प्रकाशक कांग्रेस में दीनानाथ मल्होत्रा तथा ओमप्रकाश घई, वियेना में अनुष्ठित १९५९ की अन्तर्राष्ट्रीय प्रकाशक कांग्रेस में रामलाल पुरी, कृष्णचन्द्र बेरी तथा श्यामलाल गुप्त ने भाग लिया। वहाँ से लौटने पर भारतीय प्रकाशकों तथा सदस्यों के बीच संघ ने इन लोगों के अन्तर्राष्ट्रीय अनुभवों के आधार पर एक रिपोर्ट प्रचारित कराई। संघ ने पुस्तकों के मुद्रण में एकरूपता लाने के लिए अक्षर तथा वर्तनी समिति का निर्माण किया। केन्द्र सरकार के शिक्षा मंत्रालय ने भी संघ के इस कार्य में सहयोग दिया।

हिन्दी साहित्य के स्तर को उत्तरोत्तर ऊँचा करने तथा उसके अभाव की पूर्ति के लिए संघ के सदस्यों ने काफी कार्य किये हैं। आज हिन्दी में सभी विषयों पर पुस्तकें उपलब्ध होने लग गयी हैं। संघ ने यह अनुभव किया कि बौद्धिक और आध्यात्मिक चेतना के लिए ऐसे प्रकाशन किये जाने चाहिए जिससे जनता में विषयमान उपरोक्त चेतना सजीव रहे और भारतीय पुस्तकों की भूमिका युगानुकूल बनी रहे। इसमें सन्देह नहीं कि आज के भौतिकवादी युग में व्यापारी वर्ग की प्रवृत्ति लाभार्जन की ओर अधिक है तथा जनहित की ओर कम। परन्तु संघ का यह मत है कि प्रकाशकों को पुस्तकों के कलात्मक रूप पर अधिक ध्यान देना चाहिए और लाभ पर कम। संघ ने सदस्यों को इस बात की समय-समय पर चेतावनी दी है कि प्रकाशक लाभ कम से कम लें, जिससे सत्साहित्य जनता को कम मूल्य पर सुलभ हो। साथ ही संघ का सत्परामर्श रहा है कि प्रकाशकों को विकृति रुचि पर पुस्तकें प्रकाशित नहीं करनी चाहिए, बल्कि ऐसी पुस्तकें प्रकाशित करनी चाहिए जिनसे जनता की रुचि सत्साहित्य की ओर आकृष्ट हो। प्रसन्नता की बात है कि आजकल हिन्दी में सभी प्रमुख विषयों पर पुस्तकें उपलब्ध हैं। हिन्दी का प्रकाशन तथा मुद्रण स्तर बहुत हद तक सुधरा है। पुस्तकों की रूपसज्जा, बंधाई आदि में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ है। हिन्दी के प्रकाशकों को साहित्य के गौरव के लिए इसके रहे-सहे अभाव की पूर्ति भी यथाशीघ्र करनी चाहिए।

लेखक, प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता में परस्पर सामंजस्य स्थापित करने के लिए संघ ने अनेक प्रयत्न किये हैं। संघ ने अपनी विचारगोष्ठियों में इन विषयों पर निबन्ध पाठ करवाये हैं, जिनमें स्पष्ट रूप से कहा गया है कि जब तक इन तीनों वर्गों में अच्छे सम्बन्ध स्थापित नहीं होंगे तब तक साहित्य के प्रचार की दिशा में उचित प्रगति नहीं हो सकेगी। प्रसन्नता की बात है कि संघ के प्रयत्न से इस दिशा में आशातीत प्रगति हुई है।

दिल्ली में २७ अप्रैल, १९५६ को पुस्तकों के जैकटों की एक अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी संघ की ओर से की गयी जिसमें भारत के विभिन्न भाषाओं के प्रकाशकों के अतिरिक्त आस्ट्रेलिया, आस्ट्रिया, ब्रिटेन, चेकोस्लोवाकिया, चीन, डेनमार्क, फ्रान्स, हंगरी, नार्वे, पाकिस्तान, पोलैण्ड, यू० एस० ए०, युगोस्लाविया और कनाडा जैसे प्रमुख देशों ने भाग लिया। संघ के विभिन्न अधिवेशनों के अवसर पर स्मारिकायें भी प्रकाशित होती हैं, जिनमें प्रकाशन सम्बन्धी उपयोगी सूचनाओं से युक्त लेख आदि रहते हैं। सर्वसाधारण के लिए विभिन्न विचारगोष्ठियों में पढ़े गये निबन्धों की रिपोर्ट भी संघ ने प्रकाशित की है। पुस्तक प्रदर्शनियों में संघ भारतव्यापी पुस्तक-समारोहों का आयोजन करता आ रहा है। संघ के प्रयत्न से ही १४ से २९ नवम्बर तक देश का पहला राष्ट्रीय पुस्तक समारोह मनाया गया, जिसमें यूनेस्को, देश की विभिन्न प्रकाशन संस्थाओं, केन्द्र तथा राज्य सरकारों का सहयोग संघ को मिला। इस समारोह में संघ को सबसे महत्वपूर्ण योगदान केन्द्रीय सूचना तथा प्रसारण मंत्रालय का मिला। आकाशवाणी ने वृत्तचित्रों द्वारा समारोह के कार्यक्रमों को प्रसारित किया। पटना अधिवेशन, जिसका उद्घाटन बिहार के तत्कालीन राज्यपाल डॉ० जाकिर हुसेन ने किया था, राष्ट्रीय पुस्तक-समारोह की योजना संघ ने घोषित की थी और तदनुसार राष्ट्रीय पुस्तक समारोह देश के पाँच बड़े नगरों—वाराणसी, कलकत्ता,

थे। नेहरूजी ने शास्त्रीजी से प्रकाशकों की माँगों पर विचार करने को कहा, परिणामस्वरूप पुस्तकों का किराया रेल मंत्रालय ने आधा कर दिया। पुस्तकों पर पोस्टेज कम करने की दिशा में संघ ने आन्दोलन किया और अभी इस दिशा में प्रयत्न जारी है। टेण्डर प्रथा के विरुद्ध संघ ने आन्दोलन किया और उसका परिणाम यह हुआ कि केन्द्रीय शिक्षा तथा वित्त मंत्रालय ने विभिन्न राज्य सरकारों को लिखा है कि पुस्तकों पर टेण्डर न माँगा जाय। पुस्तकें बौद्धिक तथा आध्यात्मिक चेतना की प्रतीक हैं और इन पर टेण्डर माँगने की प्रथा उचित नहीं है। पाठ्य-पुस्तकों के राष्ट्रीयकरण के विरुद्ध संघ का प्रयत्न अभी जारी है।

प्रकाशन व्यवसाय को समृद्धिशाली और गौरवशाली बनाने की दिशा में संघ ने अपने अभी तक के कार्यकाल में आशातीत कार्य किये हैं। विभिन्न अवसरों पर संघ द्वारा विचार गोष्ठियों का आयोजन किया गया, जिनके द्वारा प्रकाशकों को सुझाव दिया गया कि वे उच्चकोटि के प्रकाशन करें और मुद्रण आकल्पन में आधुनिक वैज्ञानिक तौर-तरीके अपनायें। प्रकाशकीय मर्यादा को समझते हुए सत्साहित्य प्रकाशित करें। गन्दी व्यापारिक होड़ में न पड़ें और ऐसे कार्य करें जिनसे राष्ट्रीय जीवन में प्रकाशन व्यवसाय का सम्मानजनक स्थान बना रहे। संघ ने दो महत्वपूर्ण विचारगोष्ठियाँ आयोजित कीं। इनमें पहली सन् १९५८ में २८ सितम्बर से ४ अक्टूबर तक दिल्ली में हुई थी, जिसका उद्घाटन तत्कालीन केन्द्रीय शिक्षामंत्री डॉ० के० एल० श्रीमाली ने किया था। इस गोष्ठी में ग्रेट ब्रिटेन तथा अमेरिका के आधिकारिक विद्वानों के अतिरिक्त देश के चुने हुए प्रकाशकों, लेखकों तथा सरकारी अधिकारियों ने भी भाग लिया। दूसरी विचारगोष्ठी भी दिल्ली में ही सन् १९६० में १७ से १९ नवम्बर तक 'पुस्तक व्यवसाय में सहकारिता' विषय पर हुई, जिसका उद्घाटन भारत सरकार के तत्कालीन शिक्षा सचिव पी० एन० कृपाल ने किया। इस गोष्ठी में भारत सरकार के शिक्षा उपवेष्टा सरदार सोहन सिंह, नीदरलैण्ड दूतावास नई दिल्ली के फर्स्ट कल्चरल सेक्रेटरी जे० ई० शाप, राजपाल एण्ड सन्स के व्यवस्थापक दीनानाथ मल्होत्रा, राजकमल प्रकाशन के डाइरेक्टर इन्चार्ज ओमप्रकाश तथा हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय के व्यवस्थापक कृष्णचन्द्र बेरी ने सहकारिता के विभिन्न पहलुओं पर अपने निबन्ध प्रस्तुत किये।

प्रकाशन व्यवसाय सम्बन्धी आधुनिक जानकारियों और तथ्यों का प्रचार करने में उपरोक्त विचारगोष्ठियाँ उपयोगी रहीं। इनके अतिरिक्त नवम्बर १९५९ में यूनेस्को की दक्षिण पूर्वी एशिया के देशों की क्षेत्रीय विचारगोष्ठी में संघ ने भारत का प्रतिनिधित्व किया। उपरोक्त गोष्ठियों के निष्कर्षों का संघ ने अपने सदस्यों में प्रचार किया। संघ की ओर से १९५६ में इटली के फ्लोरेन्स नगर में आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय प्रकाशक कांग्रेस में दीनानाथ मल्होत्रा तथा ओमप्रकाश घई, वियेना में अनुष्ठित १९५९ की अन्तर्राष्ट्रीय प्रकाशक कांग्रेस में रामलाल पुरी, कृष्णचन्द्र बेरी तथा श्यामलाल गुप्त ने भाग लिया। वहाँ से लौटने पर भारतीय प्रकाशकों तथा सदस्यों के बीच संघ ने इन लोगों के अन्तर्राष्ट्रीय अनुभवों के आधार पर एक रिपोर्ट प्रचारित कराई। संघ ने पुस्तकों के मुद्रण में एकरूपता लाने के लिए अक्षर तथा वर्तनी समिति का निर्माण किया। केन्द्र सरकार के शिक्षा मंत्रालय ने भी संघ के इस कार्य में सहयोग दिया।

हिन्दी साहित्य के स्तर को उत्तरोत्तर ऊँचा करने तथा उसके अभाव की पूर्ति के लिए संघ के सदस्यों ने काफी कार्य किये हैं। आज हिन्दी में सभी विषयों पर पुस्तकें उपलब्ध होने लग गयी हैं। संघ ने यह अनुभव किया कि बौद्धिक और आध्यात्मिक चेतना के लिए ऐसे प्रकाशन किये जाने चाहिए जिससे जनता में विषयमान उपरोक्त चेतना सजीव रहे और भारतीय पुस्तकों की भूमिका युगानुकूल बनी रहे। इसमें सन्देह नहीं कि आज के भौतिकवादी युग में व्यापारी वर्ग की प्रवृत्ति लाभार्जन की ओर अधिक है तथा जनहित की ओर कम। परन्तु संघ का यह मत है कि प्रकाशकों को पुस्तकों के कलात्मक रूप पर अधिक ध्यान देना चाहिए और लाभ पर कम। संघ ने सदस्यों को इस बात की समय-समय पर चेतावनी दी है कि प्रकाशक लाभ कम से कम लें, जिससे सत्साहित्य जनता को कम मूल्य पर सुलभ हो। साथ ही संघ का सत्परामर्श रहा है कि प्रकाशकों को विकृति रुचि पर पुस्तकें प्रकाशित नहीं करनी चाहिए, बल्कि ऐसी पुस्तकें प्रकाशित करनी चाहिए जिनसे जनता की रुचि सत्साहित्य की ओर आकृष्ट हो। प्रसन्नता की बात है कि आजकल हिन्दी में सभी प्रमुख विषयों पर पुस्तकें उपलब्ध हैं। हिन्दी का प्रकाशन तथा मुद्रण स्तर बहुत हद तक सुधरा है। पुस्तकों की रूपसज्जा, बंधाई आदि में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ है। हिन्दी के प्रकाशकों को साहित्य के गौरव के लिए इसके रहे-सहे अभाव की पूर्ति भी यथाशीघ्र करनी चाहिए।

लेखक, प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता में परस्पर सामंजस्य स्थापित करने के लिए संघ ने अनेक प्रयत्न किये हैं। संघ ने अपनी विचारगोष्ठियों में इन विषयों पर निबन्ध पाठ करवाये हैं, जिनमें स्पष्ट रूप से कहा गया है कि जब तक इन तीनों वर्गों में अच्छे सम्बन्ध स्थापित नहीं होंगे तब तक साहित्य के प्रचार की दिशा में उचित प्रगति नहीं हो सकेगी। प्रसन्नता की बात है कि संघ के प्रयत्न से इस दिशा में आशातीत प्रगति हुई है।

दिल्ली में २७ अप्रैल, १९५६ को पुस्तकों के जैकटों की एक अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी संघ की ओर से की गयी जिसमें भारत के विभिन्न भाषाओं के प्रकाशकों के अतिरिक्त आस्ट्रेलिया, आस्ट्रिया, ब्रिटेन, चेकोस्लोवाकिया, चीन, डेनमार्क, फ्रान्स, हंगरी, नार्वे, पाकिस्तान, पोलैण्ड, यू० एस० ए०, युगोस्लाविया और कनाडा जैसे प्रमुख देशों ने भाग लिया। संघ के विभिन्न अधिवेशनों के अवसर पर स्मारिकायें भी प्रकाशित होती हैं, जिनमें प्रकाशन सम्बन्धी उपयोगी सूचनाओं से युक्त लेख आदि रहते हैं। सर्वसाधारण के लिए विभिन्न विचारगोष्ठियों में पढ़े गये निबन्धों की रिपोर्ट भी संघ ने प्रकाशित की है। पुस्तक प्रदर्शनियों में संघ भारतव्यापी पुस्तक-समारोहों का आयोजन करता आ रहा है। संघ के प्रयत्न से ही १४ से २९ नवम्बर तक देश का पहला राष्ट्रीय पुस्तक समारोह मनाया गया, जिसमें यूनेस्को, देश की विभिन्न प्रकाशन संस्थाओं, केन्द्र तथा राज्य सरकारों का सहयोग संघ को मिला। इस समारोह में संघ को सबसे महत्वपूर्ण योगदान केन्द्रीय सूचना तथा प्रसारण मंत्रालय का मिला। आकाशवाणी ने वृत्तचित्रों द्वारा समारोह के कार्यक्रमों को प्रसारित किया। पटना अधिवेशन, जिसका उद्‌घाटन बिहार के तत्कालीन राज्यपाल डॉ० जाकिर हुसेन ने किया था, राष्ट्रीय पुस्तक-समारोह की योजना संघ ने घोषित की थी और तद्‌नुसार राष्ट्रीय पुस्तक समारोह देश के पाँच बड़े नगरों—वाराणसी, कलकत्ता,

दिल्ली, मद्रास तथा बम्बई में बड़े धूमधाम से मनाया गया। समारोह के समय विभिन्न पत्रों ने अपने विशेषांक प्रकाशित किये। अधिकारी विद्वानों ने 'पुस्तकों की महत्ता' पर व्याख्यान दिये और प्रदर्शनियों का आयोजन भी हुआ, जिन्हें एक लाख से ऊपर व्यक्तियों ने देखा। आशा है, संघ आनेवाले वर्षों में इस समारोह का रूप व्यापक करने में सफल होगा। इन महत्वपूर्ण कार्यक्रमों के अतिरिक्त संघ ने भारत की मानक संस्थाओं एवं देश के विभिन्न रीजनल स्कूलों यथा प्रिन्टिंग टेकनालॉजी तथा फेडरेशन ऑफ इण्डियन पब्लिशर्स से अपना सम्बन्ध स्थापित किया है।

संघ के बढ़ते हुए कार्यक्षेत्र को देखते हुए अब यह आवश्यक हो गया है कि संघ का एक निजी कार्यालय स्थापित हो, जिसमें विभिन्न विभागों को देखने के लिए वेतनप्राप्त कर्मचारी नियुक्त हों। हिन्दी पुस्तकों की बिक्री के लिए सामूहिक प्रयत्न सहकारिता के आधार पर होना चाहिए। विज्ञापन तथा वितरण व्यवस्था के लिए सहकारी संघ स्थापित किये जायँ तो बहुत ही उत्तम होगा। प्रकाशक संघ प्रतिवर्ष हिन्दी की राष्ट्रीय ग्रन्थ सूची स्वत: प्रकाशित करे और उसका मूल्य बहुत ही अल्प रखा जाय, जिससे सभी पुस्तकालय आसानी से ले लें। अच्छा तो हो कि ऐसी ग्रन्थ सूची प्रकाशक संघ की ओर से निःशुल्क भेंट की जाय। प्रकाशक संघ की ओर से यह महत्वपूर्ण कार्य होना चाहिए। १९वीं शताब्दी में प्रकाशित पुस्तकों के सूची प्रणयन के साथ ही प्रकाशक संघ को अपने सदस्यों की जानकारी के लिए एक ऐसी समिति नियुक्त करनी चाहिए जो उन्हें यह सुझाव दे कि कौन-सी अनुपलब्ध पुस्तकें छापी जानी चाहिए। संघ की ओर से पाठकों की रुचि का सर्वेक्षण किया जाना चाहिए, साथ ही ऐसे पाठकों या पुस्तकालयों की सूची बननी चाहिए जो विषय विशेष की पुस्तकों में दिलचस्पी रखते हों। हिन्दी के प्रकाशकों तथा पुस्तक-विक्रेताओं की वार्षिक डायरेक्टरी यदि संघ प्रकाशित कर सके तो अत्युत्तम होगा। हिन्दी में प्रान्तीय भाषा की अच्छी कृतियों का अनुवाद भी संघ के सदस्य प्रकाशकों को प्रस्तुत करना चाहिए। संघ का मुख-पत्र पूर्व योजना के अनुसार प्रकाशित होना चाहिए। आशा है कि संघ हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि में अपनी भूमिका का उचित रूप से निर्वाह करेगा।

१९९६ तक अखिल भारतीय प्रकाशक संघ के ३७ अधिवेशन हो चुके हैं।

सर्वश्री रामचन्द्र टण्डन, देव नारायण द्विवेदी, कृष्णचन्द्र बेरी, रामलाल पुरी, वाचस्पति पाठक, ओम प्रकाश, लक्ष्मीचन्द्र जैन, विश्वनाथ, झुन्नीलाल जसोरिया, जवाहर चौधरी, कन्हैयालाल मलिक, अरविन्द कुमार, दयानंद वर्मा, आशारानी, शिवकुमार सहाय, सुखलाल गुप्त संघ के विभिन्न अधिवेशनों में अब तक सभापति रहे हैं।

अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ का महत्वपूर्ण पटना अधिवेशन

१. नेट बुक समझौता

अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ के इस छठें अधिवेशन में संघ द्वारा प्रचारित बिक्री के नियमों और व्यवस्था में व्यापक ढिलाई के लिए खेद व्यक्त किया है और एतदर्थ कार्य-समिति ने अपने एक प्रस्ताव द्वारा अधिवेशन का ध्यान आकृष्टि किया है कि इसकी रोक-थाम के लिए हिन्दी के प्रकाशकों और पुस्तक-विक्रेताओं से अपील की जाय। संघ का निर्णय है कि पुस्तकों की बिक्री की समुचित व्यवस्था के लिए ऐसे विक्रेताओं का पंजीबन्धन समाप्त कर दिया जाय जो वास्तव में पुस्तक-विक्रेता नहीं हैं। जो प्रकाशक अभी तक संघ से सम्बद्ध नहीं हैं और बिक्री सम्बन्धी व्यवस्था के नियमों में बँधने को तैयार हैं, उन्हें संघ से सम्बद्ध करने का प्रयत्न किए जाय। संघ से असम्बद्ध प्रकाशकों से संघ के सदस्य और पंजीबद्ध पुस्तक-विक्रेता व्यापार व्यवहार न रखें; जो प्रकाशक और पुस्तक-विक्रेता नियमों का उल्लंघन करें, उनके विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही की जाय। यह अधिवेशन कार्य समिति को इस प्रस्ताव के कार्यान्वयन का आदेश देता है।

इसके साथ ही अब तक जिन संस्थाओं के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही हुई है, संघ उनसे नियमों के पालन की आशा करता है। उनके पुनः सदस्य बनने के आवेदन पर संघ की कार्यसमिति सहर्ष विचार करेगी।

२. टेण्डर-प्रथा

अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ का यह छठाँ अधिवेशन भारत की केन्द्रीय और प्रादेशिक सरकारों से अनुरोध करता है कि शासन के शिक्षा, पंचायत, पुस्तकालय आदि विभिन्न विभागों द्वारा खरीद की जानेवाली पुस्तकों के लिए टेण्डर-प्रथा समाप्त कर दी जाय। पुस्तक-व्यवसाय और समाज के सम्मिलित हित को ध्यान में रखते हुए संघ ने बिक्री सम्बन्धी जो नियम प्रचारित किए हैं, सरकार उसके अनुसार पुस्तकों की खरीद का आदेश जारी करें और अपने अधीन अन्य उपविभागों को भी इसकी सूचना दे।

"इस अधिवेशन का यह अनुरोध भी है कि हिन्दी पुस्तकों की थोक और खुदरा खरीद संघ नियमित कमीशन तथा सुविधाओं पर पंजीबद्ध स्थानीय पुस्तक-विक्रेताओं से की जाय। स्थानीय विक्रेताओं से पूर्ति न हो सकने की स्थिति में ही आर्डर बाहर के विक्रेताओं अथवा प्रकाशकों को भेजा जाय।"

३. विधान संशोधन

"अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ का यह छठाँ अधिवेशन निश्चय करता है

दिल्ली, मद्रास तथा बम्बई में बड़े धूमधाम से मनाया गया। समारोह के समय विभिन्न पत्रों ने अपने विशेषांक प्रकाशित किये। अधिकारी विद्वानों ने 'पुस्तकों की महत्ता' पर व्याख्यान दिये और प्रदर्शनियों का आयोजन भी हुआ, जिन्हें एक लाख से ऊपर व्यक्तियों ने देखा। आशा है, संघ आनेवाले वर्षों में इस समारोह का रूप व्यापक करने में सफल होगा। इन महत्वपूर्ण कार्यक्रमों के अतिरिक्त संघ ने भारत की मानक संस्थाओं एवं देश के विभिन्न रीजनल स्कूलों यथा प्रिन्टिंग टेकनालॉजी तथा फेडरेशन ऑफ इण्डियन पब्लिशर्स से अपना सम्बन्ध स्थापित किया है।

संघ के बढ़ते हुए कार्यक्षेत्र को देखते हुए अब यह आवश्यक हो गया है कि संघ का एक निजी कार्यालय स्थापित हो, जिसमें विभिन्न विभागों को देखने के लिए वेतनप्राप्त कर्मचारी नियुक्त हों। हिन्दी पुस्तकों की बिक्री के लिए सामूहिक प्रयत्न सहकारिता के आधार पर होना चाहिए। विज्ञापन तथा वितरण व्यवस्था के लिए सहकारी संघ स्थापित किये जायँ तो बहुत ही उत्तम होगा। प्रकाशक संघ प्रतिवर्ष हिन्दी की राष्ट्रीय ग्रन्थ सूची स्वत: प्रकाशित करे और उसका मूल्य बहुत ही अल्प रखा जाय, जिससे सभी पुस्तकालय आसानी से ले लें। अच्छा तो हो कि ऐसी ग्रन्थ सूची प्रकाशक संघ की ओर से नि:शुल्क भेंट की जाय। प्रकाशक संघ की ओर से यह महत्वपूर्ण कार्य होना चाहिए। १९वीं शताब्दी में प्रकाशित पुस्तकों के सूची प्रणयन के साथ ही प्रकाशक संघ को अपने सदस्यों की जानकारी के लिए एक ऐसी समिति नियुक्त करनी चाहिए जो उन्हें यह सुझाव दे कि कौन-सी अनुपलब्ध पुस्तकें छापी जानी चाहिए। संघ की ओर से पाठकों की रुचि का सर्वेक्षण किया जाना चाहिए, साथ ही ऐसे पाठकों या पुस्तकालयों की सूची बननी चाहिए जो विषय विशेष की पुस्तकों में दिलचस्पी रखते हों। हिन्दी के प्रकाशकों तथा पुस्तक-विक्रेताओं की वार्षिक डायरेक्टरी यदि संघ प्रकाशित कर सके तो अत्युत्तम होगा। हिन्दी में प्रान्तीय भाषा की अच्छी कृतियों का अनुवाद भी संघ के सदस्य प्रकाशकों को प्रस्तुत करना चाहिए। संघ का मुख-पत्र पूर्व योजना के अनुसार प्रकाशित होना चाहिए। आशा है कि संघ हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि में अपनी भूमिका का उचित रूप से निर्वाह करेगा।

१९९६ तक अखिल भारतीय प्रकाशक संघ के ३७ अधिवेशन हो चुके हैं।

सर्वश्री रामचन्द्र टण्डन, देव नारायण द्विवेदी, कृष्णचन्द्र बेरी, रामलाल पुरी, वाचस्पति पाठक, ओम प्रकाश, लक्ष्मीचन्द्र जैन, विश्वनाथ, झुन्नीलाल जसोरिया, जवाहर चौधरी, कन्हैयालाल मलिक, अरविन्द कुमार, दयानंद वर्मा, आशारानी, शिवकुमार सहाय, सुखलाल गुप्त संघ के विभिन्न अधिवेशनों में अब तक सभापति रहे हैं।

❀

अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ का महत्वपूर्ण पटना अधिवेशन

१. नेट बुक समझौता

अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ के इस छठें अधिवेशन में संघ द्वारा प्रचारित बिक्री के नियमों और व्यवस्था में व्यापक ढिलाई के लिए खेद व्यक्त किया है और एतदर्थ कार्य-समिति ने अपने एक प्रस्ताव द्वारा अधिवेशन का ध्यान आकृष्टि किया है कि इसकी रोक-थाम के लिए हिन्दी के प्रकाशकों और पुस्तक-विक्रेताओं से अपील की जाय। संघ का निर्णय है कि पुस्तकों की बिक्री की समुचित व्यवस्था के लिए ऐसे विक्रेताओं का पंजीबन्धन समाप्त कर दिया जाय जो वास्तव में पुस्तक-विक्रेता नहीं हैं। जो प्रकाशक अभी तक संघ से सम्बद्ध नहीं हैं और बिक्री सम्बन्धी व्यवस्था के नियमों में बँधने को तैयार हैं, उन्हें संघ से सम्बद्ध करने का प्रयत्न किए जाय। संघ से असम्बद्ध प्रकाशकों से संघ के सदस्य और पंजीबद्ध पुस्तक-विक्रेता व्यापार व्यवहार न रखें; जो प्रकाशक और पुस्तक-विक्रेता नियमों का उल्लंघन करें, उनके विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही की जाय। यह अधिवेशन कार्य समिति को इस प्रस्ताव के कार्यान्वयन का आदेश देता है।

इसके साथ ही अब तक जिन संस्थाओं के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही हुई है, संघ उनसे नियमों के पालन की आशा करता है। उनके पुन: सदस्य बनने के आवेदन पर संघ की कार्यसमिति सहर्ष विचार करेगी।

२. टेण्डर-प्रथा

अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ का यह छठाँ अधिवेशन भारत की केन्द्रीय और प्रादेशिक सरकारों से अनुरोध करता है कि शासन के शिक्षा, पंचायत, पुस्तकालय आदि विभिन्न विभागों द्वारा खरीद की जानेवाली पुस्तकों के लिए टेण्डर-प्रथा समाप्त कर दी जाय। पुस्तक-व्यवसाय और समाज के सम्मिलित हित को ध्यान में रखते हुए संघ ने बिक्री सम्बन्धी जो नियम प्रचारित किए हैं, सरकार उसके अनुसार पुस्तकों की खरीद का आदेश जारी करें और अपने अधीन अन्य उपविभागों को भी इसकी सूचना दे।

"इस अधिवेशन का यह अनुरोध भी है कि हिन्दी पुस्तकों की थोक और खुदरा खरीद संघ नियमित कमीशन तथा सुविधाओं पर पंजीबद्ध स्थानीय पुस्तक-विक्रेताओं से की जाय। स्थानीय विक्रेताओं से पूर्ति न हो सकने की स्थिति में ही आर्डर बाहर के विक्रेताओं अथवा प्रकाशकों को भेजा जाय।"

३. विधान संशोधन

"अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ का यह छठाँ अधिवेशन निश्चय करता है

कि विधान की सम्बन्धित धाराओं का संशोधन करते हुए संघ के प्रकाशक-सदस्यों की वार्षिक सदस्यता शुल्क रु० ५०.०० से घटाकर रु० २०.०० कर दिया जाय तथा प्रवेश शुल्क को रु० २५.०० से घटाकर रु० १०.०० कर दिया जाय।''

४. संघ के मुख्य-पत्र का प्रकाशन

''अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ का यह अधिवेशन निश्चय करता है कि संघ के मुखपत्र को प्रकाशित करने के लिये पूर्व प्रस्ताव को कार्यान्वित किया जाय। अब यह पत्र, जिसका नाम 'हिन्दी प्रकाशक' होगा, लक्ष्मीचन्द्र जैन के सम्पादकत्व में कलकत्ता से प्रकाशित किया जाय।''

५. पाठ्यक्रमों के लिए पुस्तकों की माँग

''अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ का यह अधिवेशन पाठ्यक्रमों के निर्धारित एवं पुस्तकों को खरीदने वाले केन्द्र तथा प्रदेश के अधिकारियों से अनुरोध करता है कि वे पुस्तकों की कम से कम प्रतियों की माँग किया करें। संघ का विचार है कि अधिकारियों को प्रकाशकों से प्राप्त स्पेसीमेन प्रतियों को अपने सदस्यों में घुमा-फिरा लेना चाहिए, न कि प्रत्येक सदस्य के लिए अलग-अलग प्रति माँगी जाय, जिससे प्रकाशकों पर अतिरिक्त बोझ पड़ता है।''

६. राष्ट्रीय पुस्तक समारोह

अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ का यह अधिवेशन संघ द्वारा आयोजित गत वर्ष के राष्ट्रीय पुस्तक समारोह की पद्धति को देश में शिक्षा तथा साहित्य के प्रचार के लिए परमोपयोगी समझता है। अधिवेशन का मत है कि आगामी वर्ष इस समारोह को और अधिक धूम-धाम से, व्यापक रूप से सारे देश में मनाने का प्रबन्ध किया जाय और इस सम्बन्ध में देश के विभिन्न प्रकाशन संस्थाओं, साहित्यकारों, पत्रकारों, सांस्कृतिक संस्थाओं, केन्द्र तथा राज्य सरकारों आदि का सहयोग प्राप्त करने का उद्योग किया जाय। अधिवेशन इस सम्बन्ध में रामलाल पुरी, लक्ष्मीचन्द्र जैन, ए० के० बोस, वाचस्पति पाठक, मार्तण्ड उपाध्याय, ओमप्रकाश, पं० जयनाथ मिश्र, तेजनारायण टण्डन तथा गोकुलदास धूत की एक समिति नियुक्त करता है, जो राष्ट्रीय पुस्तक समारोह का आयोजन करे। रामलाल पुरी इस समिति के अध्यक्ष होंगे और ए० के० बोस मंत्री।

७. निर्यात-व्यवस्था

अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ का यह अधिवेशन भारत सरकार के वाणिज्य मंत्रालय से अनुरोध करता है कि वह देश के बाहर पुस्तकों के निर्यात से विदेशी मुद्रा अर्जित करने की दिशा में प्रोत्साहन देने के लिये केवल धार्मिक पुस्तकों को ही नहीं, सभी प्रकार की पुस्तकों के निर्यात का लेखा स्वीकार किया करे।

उक्त सभी महत्वपूर्ण प्रस्ताव पटना में १७ अप्रैल १९६१ को आयोजित अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ के अधिवेशन में स्वीकृत किये गये थे, जिसकी अध्यक्षता मैंने की थी।

विशेष—श्री कृष्णचन्द्र बेरी की अध्यक्षता में आयोजित अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ के महत्त्वपूर्ण पटना अधिवेशन में पारित प्रमुख प्रस्ताव ।

❀

अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ का तेरहवाँ अधिवेशन

पुस्तक प्रदर्शनी

कानपुर में २० अप्रैल १९६८ को संघ के तेरहवें अधिवेशन का शुभारंभ स्थानीय प्रकाशकों द्वारा निजी प्रकाशनों की पुस्तक प्रदर्शनी से हुआ। कानपुर विश्वविद्यालय के उपकुलपति आचार्य जुगलकिशोर ने मरचेन्ट चैम्बर में इस पुस्तकप्रदर्शनी का उद्‌घाटन किया। इस प्रदर्शनी में कानपुर के ४१ प्रकाशकों ने लगभग २००० पुस्तकें प्रदर्शित की। प्रदर्शनी में कानपुर के लेखकों की पुस्तकें, विशेष रूप से प्रदर्शित हुई। प्रदर्शनी में भाग लेनेवाले प्रकाशकों में साहित्यिक पुस्तकों के प्रकाशकों के साथ-साथ स्कूली और विश्वविद्यालय स्तर की पुस्तकों के प्रकाशक भी सम्मिलित हुए।

दुर्लभ ग्रन्थों का प्रकाशन

संघ के नवनिर्वाचित अध्यक्ष कन्हैयालाल मलिक की अध्यक्षता में संघ का तेरहवाँ अधिवेशन २१ अप्रैल को प्रात: साढ़े आठ बजे मरचेन्ट चैम्बर हाल में प्रारम्भ हुआ। इस अधिवेशन का उद्‌घाटन केन्द्रीय राज्य शिक्षा मंत्री प्रोफेसर शेरसिंह करनेवाले थे, किन्तु कतिपय कारणों से वे उपस्थित न हो सके, अत: केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय के उपनिदेशक श्री जीवन नायक ने उनका प्रतिनिधित्व किया।

सबसे पहले जीवननायक ने प्रो० शेरसिंह का भाषण पढ़ा। प्रो० शेरसिंह के भाषण के उपरान्त संघ के निवर्तमान अध्यक्ष रूप में मैने नवनिर्वाचित अध्यक्ष कन्हैयालाल मलिक का परिचय दिया और उन्हें अध्यक्ष पद सौंपते हुए उनसे अपना भाषण प्रस्तुत करने का अनुरोध किया। श्री मलिक ने हिन्दी पुस्तक उद्योग की समीक्षा करते हुए सदस्यों को संगठित होने के लिए आह्वान किया।

लोक साहित्यकार के रूप में कानपुर के लोक साहित्य के वयोवृद्ध, सुप्रसिद्ध लेखक तथा प्रकाशक श्रीकृष्ण खत्री के लोक नाटकों के क्षेत्र में की गयी उनकी सेवाओं के लिये अभिनन्दन किया गया।

उद्‌घाटन के उपरान्त प्रकाशकों के लिए उद्योग निदेशालय द्वारा आयोजित 'मुद्रणालयों की स्थापना में सरकारी सहयोग' विषय पर गोष्ठी प्रारम्भ हुई। उद्योग निदेशालय के सहायक निदेशक किशोर मोहन इस अवसर पर उपस्थित थे। उन्होंने बताया कि प्रकाशन व्यवसाय को यद्यपि उद्योग मान लिया गया है, किन्तु इस उद्योग द्वारा उत्पादित सामग्री का मूल्यांकन नहीं किया जा सका है और कुछ अन्य बातों का

स्पष्टीकरण नहीं हुआ है। अतः प्रकाशकों की राजभाषा विचार गोष्ठी उसी दिन भगवतीचरण वर्मा की अध्यक्षता में 'राजभाषा हिन्दी और प्रकाशकों का कर्त्तव्य' विषय पर मरचेन्ट चैम्बर हाल में एक विचारगोष्ठी आरम्भ हुई। गोष्ठी का उद्घाटन हिन्दी के मूर्द्धन्य विद्वान् तथा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के रेक्टर डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने किया। इस गोष्ठी में सर्वश्री डॉ० मुंशीराम शर्मा, अमृतलाल नागर, ठाकुरप्रसाद सिंह, कृष्णचन्द्र बेरी, दयानन्द वर्मा प्रभृति साहित्यकारों तथा प्रकाशकों ने भाग लिया। दूसरे दिन सोमवार २२ अप्रैल, १९६८ को प्रातःकाल खुले अधिवेशन की कार्यवाही आरम्भ हुई। सर्वप्रथम प्रधानमंत्री दयानन्द वर्मा ने विगत वर्ष के कार्यों का विवरण प्रस्तुत किया।

सन् १९६७-६८ का वर्ष कार्य की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण था। अनेक वर्षों से इस बात की चर्चा की जाती रही है कि संघ का अपना कोई कार्यालय नहीं है। इस वर्ष जुलाई १९६७ से ७/१६, दरियागंज, दिल्ली में संघ का निजी कार्यालय विधिवत स्थापित हुआ। इस कार्यालय में एक टाइपिस्ट तथा एक चपरासी नियुक्त है। दूसरा महत्वपूर्ण कार्य है भारत सरकार के आयात-निर्यात विभाग द्वारा संघ को दी जानेवाली प्रामाणिकता की सुविधा। संघ को यह अधिकार प्राप्त है कि संघ अपने उन सदस्यों, जिन्होंने ५० से अधिक पुस्तकें प्रकाशित की हैं, के मुद्रण मशीन आयात करने के आवेदनपत्रों को प्रमाणित कर सकता है। अब तक नेशनल लाइब्रेरी तथा फेडरेशन को ही यह अधिकार प्राप्त था। नेशनल बुक ट्रस्ट द्वारा आयोजित राष्ट्रीय पुस्तक समारोह में संघ ने सक्रिय भाग लिया। इस अवसर पर दो विचार गोष्ठियाँ आयोजित हुईं। विचार गोष्ठियों का विषय था—मासिक पुस्तक प्रदर्शनी योजना एवं बिक्री केन्द्र तथा विश्वविद्यालय स्तर की पुस्तकों का हिन्दी में प्रकाशन। पठन-रुचि विकास हेतु समाचार-पत्रों के माध्यम से एक आन्दोलन चलाया गया। पुस्तकों के महत्व पर वृत्त-चित्र बनाने का सुझाव भी भारत सरकार के सूचना एवं प्रसारणमंत्री को दिया गया। उन्होंने ऐसे वृत्त-चित्र के लिए स्क्रिप्ट प्ले की माँग की जिसे लिखाने का प्रयत्न किया जा रहा है। इस वर्ष का महत्वपूर्ण कार्य है—यूनेस्को के सहयोग से संघ द्वारा संचालित 'ग्राम पुस्तक प्रसार आन्दोलन'। इस कार्यक्रम की विस्तृत रिपोर्ट पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुकी है। संघ के मुखपत्र 'हिन्दी प्रकाशक' को नियमित रूप से प्रकाशित करने में इस वर्ष काफी सफलता मिली। दस मास में इसके नौ अंक प्रकाशित किये जा चुके हैं। संगठन तथा पुस्तक प्रकाशन व्यवसाय के हित में अनेक कार्य होते रहे हैं—जिनका विवरण 'हिन्दी प्रकाशक' में समय-समय पर प्रकाशित होता रहा है।

पिछले कुछ वर्षों में हिन्दी प्रकाशन व्यवसाय में हुई प्रगति और विविधता की दृष्टि से पूना अधिवेशन में यह आवश्यकता अनुभव की गयी कि संघ के विधान में आवश्यक परिवर्तन किया जाय। पूना अधिवेशन में आए इस प्रस्ताव को दृष्टि में रखते हुए विधान में संशोधन हेतु सुझाव आमंत्रित किए गए थे। कुछ सदस्यों ने सुझाव भेजे थे। उनके आधार पर अधिवेशन में विचार-विनिमय हुआ और संघ का नया विधान स्वीकृत हुआ। १० मार्च, १९६८ को सहकारी प्रकाशन प्रसारण, कानपुर में मेरी अध्यक्षता में अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ की एक बैठक हुई जिसमें संघ के प्रधानमंत्री दयानन्द वर्मा तथा

'हिन्दी प्रकाशक' के सम्पादक पुरुषोत्तमदास मोदी भी उपस्थित थे। बैठक में सभी प्रकाशकों ने कानपुर में २१-२२ अप्रैल, १९६८ को अधिवेशन करने का स्वागत किया और उसकी सम्पूर्ण व्यवस्था के लिए आवश्यक समिति बनाने का निश्चय किया।

सन् १९६८ में अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ का एक प्रतिनिधि मण्डल दिल्ली महानगर के मुख्य कार्यकारी पार्षद विजयकुमार मल्होत्रा तथा अन्य शिक्षा अधिकारियों से मिला था और उनसे पुस्तकों की खरीद के लिए टेण्डर प्रणाली खत्म करने की माँग की थी। इन प्रयत्नों के फलस्वरूप दिल्ली के शिक्षा निदेशक ने इस वर्ष टेण्डर द्वारा कमीशन की माँग करने की प्रणाली त्याग कर अपने स्कूलों के लिए एक निश्चित कमीशन पर पुस्तकें खरीदने का निर्णय किया है।

हिन्दी पुस्तकों के प्रकाशकों एवं विक्रेताओं की सूची अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ की ओर से प्रकाशित हो गयी है। इस सूची में ११५२ पते हैं। ये पते कागज के एक ओर इस ढंग से छपे हैं कि ये काटकर दूसरी जगह चिपकाये जा सकें।

संघ अध्यक्ष के रूप में मैने २२ फरवरी, १९६७ को अन्तर्राष्ट्रिय कापीराइट कानून के सम्बन्ध में निम्नलिखित व्यक्तव्य जारी किया जो प्रेस ट्रस्ट ऑफ इण्डिया द्वारा सारे भारत में प्रसारित हुआ।

"खेद है कि ब्रिटिश तथा अमेरिकी प्रकाशकों ने विकासशील देशों की शैक्षिक आवश्यकता एवं कठिनाई को समझे बिना स्टाक होम में प्रस्तावित कापीराइट संशोधन सुझाव को इस आधार पर स्वीकार करने से इन्कार कर दिया कि वह उनके हित में नहीं है।"

सन् १९६८ में अन्तर्राष्ट्रीय प्रकाशक संघ का वार्षिक अधिवेशन एम्सटर्डम (नीदर लैण्ड्स) में गत जून मास में सम्पन्न हुआ। ३० देशों के लगभग बारह सौ प्रकाशकों के प्रतिनिधियों ने इस अधिवेशन में भाग लिया।

भारत की ओर से दीनानाथ मल्होत्रा मैनेजिंग डायरेक्टर हिन्द पॉकेट बुक्स प्रतिनिधि थे, जिन्होंने भारत का दृष्टिकोण विभिन्न समस्याओं पर मजबूती से प्रस्तुत किया। इस अधिवेशन में यूनेस्कों के प्रतिनिधियों ने भी भाग लिया।

अन्तर्राष्ट्रीय कापीराइट के प्रश्न पर दीनानाथजी ने विकासशील भारत का दृष्टिकोण प्रस्तुत किया और भारत के दृष्टिकोण को मान्यता देते हुए वह प्रस्ताव स्वीकृत किया गया। बढ़ी हुई डाक दरों एवं इससे उत्पन्न अन्य समस्याओं पर भी महत्वपूर्ण प्रस्ताव स्वीकृत हुए।

अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ की कार्यसमिति की बैठक १८ मई १९६९ को प्रातः १० बजे कन्हैयालाल मालिक की अध्यक्षता में २/३५, अंसारी रोड, दरियागंज दिल्ली में सम्पन्न हुई, जिसमें समिति के सभी सदस्यों ने भाग लिया। कार्यसमिति ने निम्नांकित विषयों पर प्रस्ताव पारित किया, जो इस प्रकार है—युनेस्को के हिन्दी में अनूदित प्रकाशनों के विषय में कार्यसमिति ने निश्चय किया कि यदि यूनेस्को अपने प्रकाशनों के प्रसार के सम्बन्ध में संघ का सहयोग चाहता है तो उसे सहयोग अवश्य दिया जाय। प्रस्ताव नं० ८ (सरकारी खरीद) के विषय में कार्यसमिति ने निर्णय किया कि कार्यालय विभिन्न राज्यों के सम्बन्धित अधिकारियों से पत्राचार द्वारा इस तथ्य को एकत्रित

करें कि उनके यहाँ सरकारी खरीद की क्या प्रणाली है तथा उनकी डीलिंग में इस सम्बन्ध में क्या कठिनाइयाँ हैं। इन सब तथ्यों को दृष्टि में रखते हुए संघ कार्यालय अपना स्मृतिपत्र विभिन्न राज्यों को भेजे और उसमें इस बात का संकेत हो कि सरकारी खरीद में जो बाधाएँ हैं उसे कैसे दूर किया जाय।

कार्यसमिति ने निर्णय किया कि विश्वविद्यालयीय पाठ्यपुस्तकों के लिए शिक्षामंत्री, शिक्षासचिव एवं शिक्षा संचालकों से मिला जाय और उनके समक्ष विश्वविद्यालयीय पाठ्यपुस्तकों के विषय में संघ का एक स्मृतिपत्र भी प्रस्तुत किया जाय। कार्यसमिति ने निर्णय किया कि केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय की प्रकाशन योजना को समस्त सदस्यों में प्रचारित किया जाय और सदस्यों द्वारा भेजे गए सुझाव को दृष्टि में रखते हुए केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय के पदाधिकारियों से मिला जाय।

कार्यसमिति ने निर्णय किया कि कागज मिल उत्पादक गत दो वर्षों (१९६८ तथा १९६९) से कागज के दाम बढ़ाते जा रहे हैं। इसलिये इस सन्दर्भ में भारत सरकार के उद्योग मंत्री, वाणिज्य मंत्री, शिक्षा मंत्री तथा कागज मिल एसोसिएशन के पदाधिकारियों को एक स्मृति पत्र भेजा जाए, जिसमें यह प्रार्थना की जाय कि वह कागज के मूल्य को घटाकर शिक्षा व्यय के भार को कम करें।

अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ की एक बैठक दिनांक १३ जुलाई, १९६९ को कन्हैयालाल मलिक की अध्यक्षता में इण्डियन प्रेस प्रा० लि०, रोहतक रोड, नई दिल्ली में हुई। कार्य समिति ने अध्यक्ष पद के लिए आये मनोनयन-पत्रों पर विचार किया। इनमें से श्रीमती शीला सन्धू, कन्हैयालाल मलिक तथा रामचन्द्र गुप्त ने अपने नाम अध्यक्ष पद से वापस ले लिया और रामलाल पुरी सर्वसम्मति से आगामी वर्ष १९६९-७० के लिए संघ के अध्यक्ष निर्वाचित किये गये।

अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ के कार्यसमिति की २४ मई, १९६९ को बैठक हुई। विश्वविद्यालयीय पाठ्यपुस्तकों के सम्बन्ध में कार्रवाई करने के लिए मनोनीत शिष्ट मण्डल के सदस्यों की एक बैठक १४ जून को राजकमल प्रकाशन प्रा० लि० के कार्यालय में हुई। इस बैठक में यह फैसला किया गया कि कुछ सदस्य शिक्षा मंत्रालय के ज्वाइण्ट सेक्रेटरी, श्रीकान्ति चौधरी से मिलकर यह पता करें कि विश्वविद्यालयीय पाठ्यपुस्तकों की योजना में क्या प्रगति हुई है।

१४वाँ वार्षिक अधिवेशन–दिल्ली

अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ का १४वाँ वार्षिक अधिवेशन ६-७-८ दिसम्बर, १९६९ को भारत की राजधानी दिल्ली में सम्पन्न हुआ। इस अधिवेशन में दिल्ली के अतिरिक्त इलाहाबाद, कानपुर, अजमेर, जंयपुर, बीकानेर, पूना, आगरा और लखनऊ से प्रकाशक सदस्य दिल्ली आये थे। प्रकाशन व्यवसाय की समस्याओं का निराकरण करने के लिए इस अधिवेशन में विशेष रूप से चर्चा की गयी।

अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ की कार्य समिति की बैठक दिनांक ६ दिसम्बर १९६९ को दिल्ली पब्लिक लाइब्रेरी में कन्हैयालाल मलिक की अध्यक्षता में सम्पन्न हुई।

विषय निर्वाचन समिति में सर्वसम्मति से निश्चय किया गया कि संघ को सोसाइटी ऐक्ट के अन्तर्गत रजिस्टर्ड कराया जाय।

७ दिसम्बर, १९६९ को खुले अधिवेशन का प्रथम सत्र महाकवि निराला की सरस्वती वन्दना से प्रारम्भ हुआ।

अधिवेशन में प्रतिनिधियों के सम्मुख प्रमुख प्रश्न था कि अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ को किस प्रकार संगठित किया जाय और हमें ऐसा कौन-सा कार्य करना चाहिए जिससे संस्था के प्रति सदस्यों में अधिकाधिक सहयोग और सद्भाव की भावना बढ़े।

रविवार ७ दिसम्बर, १९६९ को अधिवेशन का दूसरा सत्र विचार गोष्ठी से प्रारम्भ हुआ; विचारगोष्ठी की अध्यक्षता डॉ० नगेन्द्र ने की। इस गोष्ठी का विषय था 'पुस्तक वितरण की समस्यायें और समाधान'।

पाठकों और लेखकों के पक्ष का समर्थन करते हुए यज्ञदत्त शर्मा ने कहा कि लेखक पुस्तकों की बिक्री में कोई महत्वपूर्ण सहयोग नहीं दे सकता। आज पुस्तकों की बिक्री इसलिए कम है कि लेखकों के मन में प्रकाशकों के प्रति प्रेम नहीं है।

अध्यक्ष पद से भाषण देते हुए डॉ० नगेन्द्र ने कहा कि प्रकाशकों के सम्मुख यह एक विचारणीय प्रश्न है कि उन्होंने जो पुस्तकें प्रकाशित की हैं उनको किस प्रकार वितरित किया जाय।

अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ दिल्ली की वर्ष १९६९-७० सत्र की प्रथम कार्यसमिति की बैठक २७ जनवरी, १९७० को मे० आत्माराम एण्ड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली में रामलाल पुरी की अध्यक्षता में सम्पन्न हुई।

कार्य समिति ने निर्णय किया कि वार्षिक अधिवेशन के अनुसार संघ को ३१ मार्च, १९७० तक सोसायटी ऐक्ट के वर्तमान विधान से पंजीकृत कराया जाय।

निर्वाचन समिति तथा केन्द्रीय कार्यालय की रिपोर्ट में दिए गए प्रस्तावों पर विचार हुआ और निर्णय किया गया कि—

(क) प्रकाशन व्यवसाय को उद्योग की मान्यता प्राप्त करनेवाले पत्र को केन्द्रीय सरकार के गजट में प्रकाशित किया जाय।

(ख) बैंकों से प्रकाशन उद्योग के लिए ऋण की सुविधा मिले, इसके लिए ओमप्रकाश को एक सदस्यीय उपसमिति का सदस्य मनोनीत किया गया। यह तय किया गया कि इस सम्बन्ध में ओमप्रकाशजी ज्ञापन तैयार करके रामलाल पुरी को दे।

(ग) १००० रुपये तक की पुस्तकों की वार्षिक खरीद पर पाठकों द्वारा आय-कर में छूट की सुविधा के सम्बन्ध में वित्त मंत्रालय एवं शिक्षा मंत्रालय से पत्र-व्यवहार किया जाय। यह उत्तरदायित्व विजयचन्द जैन को दिया गया।

(घ) राष्ट्रीय पुस्तकालयों में पुस्तकें भेजने के लिए डाक व्यय हटाया जाय। इसके लिए सम्बन्धित अधिकारियों को संघ का कार्यालय पत्र लिखें।

(ङ) विश्वविद्यालय स्तर की पुस्तकों का प्रकाशन अखिल भारतीय एवं स्तरीय प्रकाशकों के माध्यम से हो और इसके लिए सरकार अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ का सहयोग ले। कार्यालय इस सम्बन्ध में विभिन्न विश्वविद्यालयों एवं राज्यों को पत्र लिखे। इस कार्य को सुखपाल गुप्त, संयुक्त मंत्री को सौंपा गया।

(च) पुस्तकों पर चार्ज किए जानेवाला डाक-व्यय, रजिस्ट्री एवं वी० पी० फीस में छूट दी जाय, इसके लिए सम्बन्धित अधिकारियों को कार्यालय द्वारा पत्र लिखे जायँ।

(छ) कार्य समिति ने रघुबीरशरण बंसल को ग्रन्थ-सूची के प्रकाशन तथा सम्पादन के लिए अधिकृत किया। निर्णय हुआ कि दो तरह की सूचियाँ प्रकाशित हों—

(१) हायर सेकेन्डरी के विद्यालयों के लिए।

(२) विश्वविद्यालय स्तरीय तथा विशेष पुस्तकालयों के लिए।

प्रवेश शुक्ल निर्धारित करने के लिए बंसल के सुझाव के अनुसार प्रधानमंत्री सदस्यों को सूचित करेंगे। अगली कार्यसमिति की बैठक में इस सम्बन्ध में की गई प्रगति के विषय में सदस्यों को सूचित किया जायेगा।

(ज) पुरस्कृत पुस्तकों की खरीद के लिए सरकार को लिखा जाय कि ऐसी पुस्तकों को अवश्य खरीद में शामिल किया जाय।

(झ) कागज के सम्बन्ध में अन्य संस्थाओं के सहयोग से (फेडरेशन तथा मास्टर प्रिन्टर्स आदि) बढ़ते हुए मूल्य को रोकने के लिए आन्दोलन किया जाय।

(य) बुक डेवलपमेन्ट बोर्ड तथा नेशनल बुक ट्रस्ट में संघ का प्रतिनिधित्व हो, इसके लिए सरकार से पत्र-व्यवहार किया जाय।

अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ के महामंत्री के रूप में मैंने भारत सरकार से देश के प्रकाशकों को कागज सुलभ कराने के लिये कागज के मिलों का राष्ट्रीयकरण करने का आग्रह किया। उन्होंने कहा है कि यदि कागज उद्योग का राष्ट्रीयकरण हो जाय तो जहाँ प्रकाशकों को तथा शिक्षा के क्षेत्र में आम लोगों को राहत मिलेगी, वहीं देश की विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं की उच्च स्तरीय पुस्तकों की बढ़ती हुई माँग की पूर्ति भी की जा सकेगी। केन्द्रीय बजट में डाकदरों में विशेषकर रजिस्ट्री और वी० पी० की दर में की गई वृद्धि का अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ ने विरोध किया।

हिन्दी पुस्तक़ों की बिक्री नाम मात्र की ही है। इसमें मुख्य दोष यह है कि पुस्तकें सुलभ नहीं हो पातीं। इस कमी को ध्यान में रखते हुए पुस्तक बिक्री केन्द्रों के गठन की योजना संघ ने बनाई है जो इस प्रकार से है—प्रारम्भ में ये केन्द्र उन स्थानों पर खोले जायेंगे, जहाँ हिन्दी पुस्तकों का मार्केट है, किन्तु वहाँ पुस्तकें उपलब्ध नहीं हैं, जैसे:

कानपुर, भोपाल, गोरखपुर, चंडीगढ़, हैदराबाद, अहमदाबाद आदि। वाराणसी, दिल्ली, पूना, पटना, जयपुर आदि नाम भी प्रस्तावित हैं। प्रकाशक इन केन्द्रों को अपने वर्तमान व्यापारिक कमीशन से सामान्य साहित्य पुस्तकों पर १० प्रतिशत और पाठ्यपुस्तकों पर ५ प्रतिशत अतिरिक्त कमीशन देंगे। प्रकाशक अपना माल इन केन्द्रों को 'आनसेल एण्ड रिटर्न बेसिस' पर भेजेंगे। इन केन्द्रों की व्यवस्था किसी पुस्तक-विक्रेता द्वारा हो अथवा संघ किसी व्यक्ति को इस कार्य के लिए मनोनीत करे, इसका निर्णय आगामी कार्य समिति में किया जायेगा।

अगस्त १९७० में पुस्तकालय विज्ञान न्यास 'वाराणसी' के सहयोग से 'हिन्दी प्रकाशक' के विशेषांक 'सन् १९६९' का प्रकाशन अगस्त में किया जाएगा।

संघ की ओर से सितम्बर महीने में एक सेमिनार का भी आयोजन होने जा रहा है, जिसका विषय है—'हिन्दी संस्कृत पुस्तकों का निर्यात : समस्य और समाधान'।

हिन्दी प्रकाशक संघ सोसाइटी ऐक्ट द्वारा रजिस्टर्ड हो गया है। अब संघ विभिन्न नगरों में सदस्यों की उधारी की वसूली के लिए 'समझौता पंचायत' (आर्बिटेशन बेंच) स्थापित करने जा रहा है। यह पंचायत अपने निर्णय निष्पक्ष रूप से दें और इसके निर्णय को कानूनी मान्यता प्राप्त हो, इस सम्बन्ध में कार्यवाही की जा रही है। अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ ने देश के साहित्यकारों, मुद्रकों, प्रकाशकों, पुस्तक-विक्रेताओं, सम्पादकों, लेखकों, शिक्षकों तथा कागज से सम्बद्ध सभी संस्थाओं का आह्वान किया है कि वे कतिपय कागज-मिलों के संचालकों के विरुद्ध १६ नवम्बर, १९७० को प्रतिवाद दिवस मनायें।

अ० भा० हि० प्रकाशक संघ के अध्यक्ष लक्ष्मीचन्द जैन का १५वें अधिवेशन में भाषण दिया गया कि—'हिन्दी का सौभाग्य है कि केन्द्रीय सरकार की असन्तोष कारक निश्चेष्ठता के बावजूद वह कई दिशाओं में बढ़ रही है।'

हिन्दी के प्रकाशक यह मानकर चलें कि जनतंत्र और समाजवाद के आदर्शों तथा सिद्धान्तों के क्रियान्वयन में ही हमारी सहयोगी भूमिका हो सकती है, उसके बाहर नहीं। जनतंत्र का सिद्धान्त हमें अधिकार देता है कि हम देश के दिमाग को जड़ता से बचाएँ, उसे अपने प्रकाशन के माध्यम से विविधता दें।

प्रकाशकों का कर्त्तव्य है कि जब प्रकाशन व्यवसाय, उद्योग की सीमा-रेखा में आ गया है तब वे लेखकों के विचारों और प्रतिक्रियाओं को समझने का प्रयत्न करें तथा लेखक एवं प्रकाशक के बीच सामंजस्य का एक मानदण्ड निर्धारित करें, जो बड़ा ही सारगर्भित रहेगा।

विशेष—अखिल हिन्दी भारतीय प्रकाशक संघ के १९६८ से १९७२ के बीच की प्रगति पर कृष्णचन्द्र बेरी द्वारा लिखा गया एक महत्त्वपूर्ण आलेख।

❀

(ङ) विश्वविद्यालय स्तर की पुस्तकों का प्रकाशन अखिल भारतीय एवं स्तरीय प्रकाशकों के माध्यम से हो और इसके लिए सरकार अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ का सहयोग ले। कार्यालय इस सम्बन्ध में विभिन्न विश्वविद्यालयों एवं राज्यों को पत्र लिखे। इस कार्य को सुखपाल गुप्त, संयुक्त मंत्री को सौंपा गया।

(च) पुस्तकों पर चार्ज किए जानेवाला डाक-व्यय, रजिस्ट्री एवं वी० पी० फीस में छूट दी जाय, इसके लिए सम्बन्धित अधिकारियों को कार्यालय द्वारा पत्र लिखे जायँ।

(छ) कार्य समिति ने रघुबीरशरण बंसल को ग्रन्थ-सूची के प्रकाशन तथा सम्पादन के लिए अधिकृत किया। निर्णय हुआ कि दो तरह की सूचियाँ प्रकाशित हों—

(१) हायर सेकेन्डरी के विद्यालयों के लिए।

(२) विश्वविद्यालय स्तरीय तथा विशेष पुस्तकालयों के लिए।

प्रवेश शुक्ल निर्धारित करने के लिए बंसल के सुझाव के अनुसार प्रधानमंत्री सदस्यों को सूचित करेंगे। अगली कार्यसमिति की बैठक में इस सम्बन्ध में की गई प्रगति के विषय में सदस्यों को सूचित किया जायेगा।

(ज) पुरस्कृत पुस्तकों की खरीद के लिए सरकार को लिखा जाय कि ऐसी पुस्तकों को अवश्य खरीद में शामिल किया जाय।

(झ) कागज के सम्बन्ध में अन्य संस्थाओं के सहयोग से (फेडरेशन तथा मास्टर प्रिन्टर्स आदि) बढ़ते हुए मूल्य को रोकने के लिए आन्दोलन किया जाय।

(य) बुक डेवलपमेन्ट बोर्ड तथा नेशनल बुक ट्रस्ट में संघ का प्रतिनिधित्व हो, इसके लिए सरकार से पत्र-व्यवहार किया जाय।

अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ के महामंत्री के रूप में मैंने भारत सरकार से देश के प्रकाशकों को कागज सुलभ कराने के लिये कागज के मिलों का राष्ट्रीयकरण करने का आग्रह किया। उन्होंने कहा है कि यदि कागज उद्योग का राष्ट्रीयकरण हो जाय तो जहाँ प्रकाशकों को तथा शिक्षा के क्षेत्र में आम लोगों को राहत मिलेगी, वहीं देश की विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं की उच्च स्तरीय पुस्तकों की बढ़ती हुई माँग की पूर्ति भी की जा सकेगी। केन्द्रीय बजट में डाकदरों में विशेषकर रजिस्ट्री और वी० पी० की दर में की गई वृद्धि का अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ ने विरोध किया।

हिन्दी पुस्तक़ों की बिक्री नाम मात्र की ही है। इसमें मुख्य दोष यह है कि पुस्तकें सुलभ नहीं हो पातीं। इस कमी को ध्यान में रखते हुए पुस्तक बिक्री केन्द्रों के गठन की योजना संघ ने बनाई है जो इस प्रकार से है—प्रारम्भ में ये केन्द्र उन स्थानों पर खोले जायेंगे, जहाँ हिन्दी पुस्तकों का मार्केट है, किन्तु वहाँ पुस्तकें उपलब्ध नहीं हैं, जैसे:

कानपुर, भोपाल, गोरखपुर, चंडीगढ़, हैदराबाद, अहमदाबाद आदि। वाराणसी, दिल्ली, पूना, पटना, जयपुर आदि नाम भी प्रस्तावित हैं। प्रकाशक इन केन्द्रों को अपने वर्तमान व्यापारिक कमीशन से सामान्य साहित्य पुस्तकों पर १० प्रतिशत और पाठ्यपुस्तकों पर ५ प्रतिशत अतिरिक्त कमीशन देंगे। प्रकाशक अपना माल इन केन्द्रों को 'आनसेल एण्ड रिटर्न बेसिस' पर भेजेंगे। इन केन्द्रों की व्यवस्था किसी पुस्तक-विक्रेता द्वारा हो अथवा संघ किसी व्यक्ति को इस कार्य के लिए मनोनीत करे, इसका निर्णय आगामी कार्य समिति में किया जायेगा।

अगस्त १९७० में पुस्तकालय विज्ञान न्यास 'वाराणसी' के सहयोग से 'हिन्दी प्रकाशक' के विशेषांक 'सन् १९६९' का प्रकाशन अगस्त में किया जाएगा।

संघ की ओर से सितम्बर महीने में एक सेमिनार का भी आयोजन होने जा रहा है, जिसका विषय है—'हिन्दी संस्कृत पुस्तकों का निर्यात : समस्य और समाधान'।

हिन्दी प्रकाशक संघ सोसाइटी ऐक्ट द्वारा रजिस्टर्ड हो गया है। अब संघ विभिन्न नगरों में सदस्यों की उधारी की वसूली के लिए 'समझौता पंचायत' (आर्बिटेशन बेंच) स्थापित करने जा रहा है। यह पंचायत अपने निर्णय निष्पक्ष रूप से दें और इसके निर्णय को कानूनी मान्यता प्राप्त हो, इस सम्बन्ध में कार्यवाही की जा रही है। अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ ने देश के साहित्यकारों, मुद्रकों, प्रकाशकों, पुस्तक-विक्रेताओं, सम्पादकों, लेखकों, शिक्षकों तथा कागज से सम्बद्ध सभी संस्थाओं का आह्वान किया है कि वे कतिपय कागज-मिलों के संचालकों के विरुद्ध १६ नवम्बर, १९७० को प्रतिवाद दिवस मनायें।

अ० भा० हि० प्रकाशक संघ के अध्यक्ष लक्ष्मीचन्द जैन का १५वें अधिवेशन में भाषण दिया गया कि—'हिन्दी का सौभाग्य है कि केन्द्रीय सरकार की असन्तोष कारक निश्चेष्टता के बावजूद वह कई दिशाओं में बढ़ रही है।'

हिन्दी के प्रकाशक यह मानकर चलें कि जनतंत्र और समाजवाद के आदर्शों तथा सिद्धान्तों के क्रियान्वयन में ही हमारी सहयोगी भूमिका हो सकती है, उसके बाहर नहीं। जनतंत्र का सिद्धान्त हमें अधिकार देता है कि हम देश के दिमाग को जड़ता से बचाएँ, उसे अपने प्रकाशन के माध्यम से विविधता दें।

प्रकाशकों का कर्त्तव्य है कि जब प्रकाशन व्यवसाय, उद्योग की सीमा-रेखा में आ गया है तब वे लेखकों के विचारों और प्रतिक्रियाओं को समझने का प्रयत्न करें तथा लेखक एवं प्रकाशक के बीच सामंजस्य का एक मानदण्ड निर्धारित करें, जो बड़ा ही सारगर्भित रहेगा।

विशेष—अखिल हिन्दी भारतीय प्रकाशक संघ के १९६८ से १९७२ के बीच की प्रगति पर कृष्णचन्द्र बेरी द्वारा लिखा गया एक महत्त्वपूर्ण आलेख।

❀

अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ के २२वें अधिवेशन में विचारणीय विषय

देश में हिन्दी पुस्तक प्रकाशन के आन्दोलन का प्रारम्भ १९३७ में हुआ। सन् १९५४ में स्थापित अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ आगामी वर्ष अपनी रजत जयन्ती मनायेगा। हिन्दी साहित्य और प्रकाशन को समृद्ध करने के लिए संघ का अपेक्षित स्वरूप अभी तक नहीं बन सका है। ऐसी स्थिति में वाराणसी में २० एवं २१ अप्रैल, १९७७ को आयोजित होनेवाला संघ का २२वाँ अधिवेशन देश के हिन्दी प्रकाशकों के लिए एक चुनौती है।

तत्कालीन प्रधानमंत्री माननीय मुरारजी भाई के नेतृत्व में बनी सरकार का यह वक्तव्य हमारे लिए बहुत ही आशाजनक है कि हिन्दी ही देश की सम्पर्क भाषा रहेगी। साथ ही प्रसन्नता का विषय है कि लेखन और प्रकाशन पर लगी सेंसरशिप भी हट गयी है। इस अधिवेशन में निम्नलिखित विषय विचारणीय हैं:

१. सभी राज्यों में जहाँ प्रान्तीय संगठन हैं उन्हें सुदृढ़ करना और जहाँ नहीं हैं उन्हें रजत जयन्ती वर्ष के पूर्व स्थापित करना ताकि इन संगठनों के माध्यम से पुस्तक-विक्रय की प्रक्रिया को व्यवस्थित किया जाय।

२. इस बात की खोजबीन करना कि हिन्दी-भाषी जनता के बहुत बड़ी संख्या में होते हुए भी हिन्दी का सत्साहित्य क्यों नहीं बिक रहा है? प्रचार का अभाव, पुस्तक-विक्रेताओं का विक्रय में दिलचस्पी न लेना, सरकारी खरीद में भ्रष्टाचार, टेण्डर प्रणाली, पुस्तकों के अधिक मूल्य आदि ऐसी समस्यायें हैं जिन पर सम्मेलन के अवसर पर होनेवाली गोष्ठियों में गम्भीरतापूर्वक विचार होगा।

३. हिन्दी तथा भारतीय भाषाओं के प्रकाशनों को प्रोत्साहित करने के लिए नेशनल बुक ट्रस्ट के अब तक के कार्यों पर विचार होगा।

४. अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ को सरकारी पुस्तक चयन समितियों में स्थान दिलाना।

५. राजा राममोहन राय लाइब्रेरी फाउन्डेशन द्वारा हिन्दी में प्रकाशित सत्साहित्य अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ के माध्यम से क्रय हो, इस व्यवस्था पर भी विचार होगा। ज्ञातव्य है कि बंगला भाषा के प्रकाशन बंगाल पब्लिशर्स एसोसिएशन और उड़िया भाषा के प्रकाशन उत्कल पब्लिशर्स एसोसिएशन के माध्यम से क्रय होते हैं।

६. संघ को अब तक नेशनल बुक ट्रस्ट, बुक डेवलपमेन्ट बोर्ड, इण्डियन स्टैन्डर्ड इंस्टीट्यूशन, शिक्षा मंत्रालय, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय आदि संस्थाओं द्वारा मान्यता प्राप्त है, किन्तु हिन्दी और भारतीय भाषाओं के सम्वर्द्धन के लिए उपर्युक्त माध्यमों का समुचित उपयोग हिन्दी प्रकाशकों के सुदृढ़ संगठन के अभाव में अभी तक नहीं हो पाया है। अत: सम्मेलन को इस दिशा में भी रूपरेखा तैयार करनी है।

७. सहकारिता के आधार पर संघ सभी वर्गों के प्रकाशकों को किस तरह सहायता कर सकता है, यह भी विचारणीय विषय होगा।

८. हिन्दी में विश्वविद्यालय स्तर पर प्रचुर साहित्य प्रकाशित हुआ है। बुक बैंक में खरीद और अधिक मात्रा में हो सकती है, यदि अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ हिन्दी में समस्त प्रकाशित विविध विषयों के एतद् विषयक प्रकाशनों की जानकारी उपलब्ध करा सके।

९. विश्व हिन्दी पुस्तक मेला तथा विश्व हिन्दी सम्मेलन जैसे सार्वजनिक कार्यक्रमों में अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ को सभी प्रकाशकों के सामूहिक प्रयत्न से हिन्दी मण्डप की व्यवस्था करनी चाहिए। इस प्रयत्न से हिन्दी प्रकाशन को विराटत्व प्राप्त होगा और खरीददार एक ही स्थान से सभी पुस्तकें खरीद सकेंगे। संघ इस दिशा में क्या कर सकता है इसपर गम्भीरता पूर्वक विचार किया जायेगा।

१०. इस बात की पुष्टि होनी चाहिए कि हिन्दीभाषी विश्वविद्यालयों में केवल हिन्दी के माध्यम से शिक्षा दी जाय। इससे हिन्दी पुस्तक प्रकाशन को अधिक प्रोत्साहन मिलेगा।

११. सभी पाठ्य पुस्तकों का राष्ट्रीयकरण, उन्मुक्त लेखन और प्रकाशन पर नियंत्रण हमारी गाँधीवादी नीति के अनुकूल नहीं है। सरकार के सहयोग से विचार विमर्श कर संघ सस्ते मूल्य की पाठ्य-पुस्तकें सुलभ कराने में सहयोग दे, क्योंकि पाठ्य-पुस्तक व्यवसाय ९० प्रतिशत और सामान्य पुस्तकों का व्यवसाय १० प्रतिशत मात्र है। यदि पूरा पाठ्य-पुस्तक व्यवसाय सरकारी क्षेत्र में चला गया तो लेखन, प्रकाशन, मुद्रण आदि से जीविका कमानेवाले लाखों लोग बेकार हो जाएँगे। यहाँ यह स्मरणीय है कि बंगाल सरकार ने भी प्राइमरी के अतिरिक्त अन्य सभी पाठ्य पुस्तकें प्रकाशकों को प्रकाशनार्थ सौंप दी है।

१२. १०+२+३ शिक्षा प्रणाली में बहुत अधिक विषयों के होने की बात का अध्यापक समाज का विरोध एक विचारणीय विषय है। शिक्षा मंत्रालय का ध्यान इस विषय की ओर आकृष्ट करना संघ का कर्त्तव्य है, ताकि सहसा नीति के बदलने से प्रकाशकों को आर्थिक क्षति न हो।

१३. संघ को इस बात के लिए प्रयत्नशील होना है कि देश में भारतीय भाषाओं के प्रकाशकों का एक मंच हो और अंग्रेजी के बजाय भारतीय भाषाओं में अधिक

प्रकाशन हो। अंग्रेजी की बिदाई से भारतीय भाषाओं का प्रकाशन पनप सकता है।

१४. हिन्दी में पुस्तकें अधिक छपती हैं, परन्तु लाइब्रेरी रजिस्ट्रेशन ऐक्ट का पालन उचित रीति से हिन्दी प्रकाशकों के द्वारा न करने के कारण अंग्रेजी के मुकाबले हिन्दी प्रकाशनों की संख्या अल्प दिखाई देती है। इस सम्बन्ध में कोई उचित माध्यम स्थिर किया जाय।

१५. राष्ट्रभाषा के प्रकाशकों को राष्ट्रीय सन्दर्भ में अपनी भूमिका समझाना, भारतीय भाषाओं का हिन्दी में अनुवाद और हिन्दी कृतियों का भारतीय भाषाओं में अनुवाद पर बल देना, पुस्तकें कम मूल्य में पाठकों को सुलभ हों आदि अहम प्रश्नों पर भी व्यवहारिक नीति अपनाना आवश्यक होगा।

१६. रियायती मूल्य का कागज मिल से निर्धारित स्पेसिफिकेशन पर समय से न मिलना बहुत बड़ी समस्या है। पुनः मिलों द्वारा सरकारी परमिटों पर रियायती मूल्य का कागज देरी से सप्लाई करना प्रकाशकों के लिए एक बहुत बड़ी परेशानी है। एक ही तरह का कागज विभिन्न मिलों द्वारा विभिन्न रेटों पर बेचना भी विचारणीय विषय है। कुछ राज्य सरकारें पाठ्येत्तर प्रकाशनों के लिए रियायती मूल्य का कागज नहीं दे रही हैं। सत्साहित्य के प्रकाशन को बढ़ावा देने के लिए संघ इस दिशा में उचित कारवाई करे यह अभीष्ट है।

१७. समाचार-पत्र, हिन्दी और भारतीय भाषाओं के प्रकाशनों को भी महत्व दें, इसके लिए सचेष्ट होना है।

१८. पुस्तकों पर डाक शुल्क की रियायती दरें स्थिर हों।

१९. लखनऊ में स्थापित हिन्दी संस्थान के कार्यक्रमों में संघ की भूमिका और सहयोग।

वाराणसी का हिन्दी प्रकाशन उद्योग

भारतेन्दु के आविर्भाव के साथ ही वाराणसी में मुद्रण और प्रकाशन का युग आरम्भ होता है। यों भारतेन्दु के जन्म से पाँच वर्ष पूर्व ही वाराणसी में पहला प्रेस दूधविनायक मुहल्ले में स्थापित हुआ, जिसमें हिन्दी का 'बनारस अखबार' और उर्दू का साप्ताहिक 'बनारस गजट' छपता था, जिसके प्रकाशक, मुद्रक और सम्पादक गोविन्द रघुनाथ थत्ते थे। वैसे पुस्तकों का व्यवस्थित प्रकाशन क्रम १८६० के बाद से ही आरम्भ होता है। १८६० में बनारस मेडिकल हाल प्रेस खुला, वहाँ से रॉबिन्सन क्रूसो का हिन्दी संस्करण प्रकाशित हुआ। इसी समय इ० जे० लाजरस एण्ड कम्पनी ने एक विशाल मुद्रणालय स्थापित किया। यह कम्पनी मुख्यत: दवाओं की थी, किन्तु हिन्दी के प्रकाशन क्षेत्र में इसने महत्वपूर्ण कार्य किये। वैदिक वाङ्मय, लघु कौमुदी, रामायण आदि आर्ष ग्रन्थों के साथ ही साथ सम्भवत: पहला अंग्रेजी हिन्दी कोश भी प्रकाशित किया।

सन् १८८४ में वाराणसी में भारत जीवन प्रेस की स्थापना के साथ ही प्रकाशन व्यवसाय में नये युग का आरम्भ हुआ। हिन्दी साहित्य की महत्वपूर्ण आरम्भिक सेवा इस प्रकाशन संस्थान ने की। रीतिकालीन प्रकाशनों के साथ 'कथासरित सागर' जैसे विशाल ग्रंथों का भी इन्होंने प्रकाशन किया। लगभग ४०० टाइटिल इस संस्थान ने छापे। भारत-जीवन नाम का एक समाचार पत्र भी प्रकाशित किया, जिसकी ग्राहक संख्या लगभग डेढ़ हजार थी।

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक में हिन्दी के पाठकों की संख्या में विकास हुआ। विद्वानों के अतिरिक्त साधारणजन में भी पुस्तकों की भूख बढ़ी। सन् १८८८ में बाबू देवकीनन्दन खत्री लिखित 'चन्द्रकान्ता' का पहला भाग प्रकाशित हुआ और साल के भीतर ही उसका संस्करण बिक गया। खत्री जी ने बाद में चन्द्रकान्ता सन्तति लिखी, जिसने हिन्दी के बहुत पाठक पैदा किये।

इन्हीं दिनों गायघाट में श्यामसुन्दर रसायनशाला नामक संस्था स्थापित हुई। इस संस्था ने स्वास्थ्य विषयक ५० पुस्तकें प्रकाशित कीं। १९०५ में ही हिन्दी प्रचारक संस्थान की मातृ संस्था निहालचन्द एण्ड कम्पनी की स्थापना बनारस के नेपाली खपड़ा मुहल्ले में हुई। विगत ९१ वर्षों के अपने विकास काल में हिन्दी लेखकों की चार हजार से अधिक कृतियाँ हिन्दी प्रचारक संस्थान ने अब तक प्रकाशित की हैं। व्यावसायिक संस्था होते हुए भी हिन्दी भाषा का प्रचार प्रसार इस संस्थान का पवित्र उद्देश्य रहा है। इसी सद्भावना से प्रभावित होकर समय-समय पर प्रकाशन जगत में क्रान्तिकारी प्रयास किए हैं। बेल्जियम के पैटर्न पर इसने लाभ हानि से मुक्त इस देश में सर्वप्रथम बुक क्लब तथा प्रचारक ग्रंथावली योजना आरम्भ की।

१९०५ के प्रकाशन क्षेत्र की इस क्रान्ति के पूर्व ही १८९६ ई० में डॉ० एनीबेसेण्ट की प्रेरणा से तारा प्रिंटिंग वर्क्स की स्थापना की गई, जहाँ से थियोसोफिकल सोसाइटी के कुछ महत्वपूर्ण प्रकाशन हुए। इन्हीं दिनों चौखम्भा संस्कृत सीरीज का भी प्रकाशन आरम्भ हुआ। इनका पहला प्रकाशन हिन्दी संस्थाओं से संबंधित था। इसके बाद इस संस्था ने संस्कृत वाङ्मय के सैकड़ों प्रकाशन किए जिनमें संस्कृत के अलभ्य ग्रन्थ भी हैं। आजकल यह संस्था तीन भागों में विभाजित हो गयी है, जिनके नाम चौखम्भा सुरभारती, चौखम्भा विश्व भारती तथा चौखम्भा विद्या भवन है।

सन् १८९५ में बाबू श्यामसुन्दर दास ने अपने दो साथियों के साथ काशी नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना की। सभा ने एक ओर उच्च कक्षाओं में पढ़ाये जाने के लिए आवश्यक साहित्य का निर्माण आरम्भ किया, हिन्दी साहित्य का इतिहास तथा साहित्या-लोचन ऐसे ग्रन्थ छापे, दूसरी ओर सामान्य पाठकों के लिए उपयोगी हिन्दी साहित्य प्रकाशित किया। संस्था के प्रयत्न से हिन्दी की पुस्तकें साहित्यिक धरातल पर आयीं।

१९०८ में हरिकृष्ण जौहर ने अपने प्रकाशन स्वयं आरम्भ किये, जिनमें 'मिस रोजा' तथा 'भयंकर भेद' आदि उपन्यास बहुत चर्चित हुए।

आरम्भ से ही काशी सांस्कृतिक एवं धार्मिक प्रकाशनों के लिए प्रसिद्ध रही है। इस सन्दर्भ में १९१६ में स्थापित मास्टर खेलाड़ीलाल एण्ड सन्स का नाम कम महत्व का नहीं है। उन्होंने स्तोत्र, कर्मकाण्ड एवं ज्योतिष पर अनेक पुस्तकें प्रकाशित कीं। कचौड़ीगली में बृजभूषण दास जी ने संस्कृत के प्रकाशन आरम्भ किये। १९३० के आस-पास मास्टर खेलाड़ीलाल ने अनेक प्रकाशनगृह खरीद लिए। बाद में १९५२ में लाजरस कम्पनी के प्रकाशनों का अधिकार भी मास्टर खेलाड़ीलाल ने खरीद कर अपने प्रकाशन व्यवसाय को चोटी पर पहुँचा दिया।

धार्मिक प्रकाशनों के क्षेत्र में बाबू बैजनाथ प्रसाद बुक्सेलर का नाम आता है। इस संस्था ने अल्पमोली लोकसाहित्य भी प्रकाशित किया।

१९१६ में अगस्तकुण्डा में श्री गौरीनाथ पाठक ने शारदा पब्लिशिंग हाउस, १९१७ में रामचन्द्र वर्मा ने साहित्य रत्नमाला कार्यालय धर्मकूप में स्थापित किया। शारदा पब्लिशिंग ने संस्कृत की लगभग पचास पुस्तकें और साहित्य रत्नमाला ने करीब २० पुस्तकें प्रकाशित कीं। इस संस्था का नाम १९६५ में बदलकर शब्दलोक प्रकाशन हो गया। शब्दलोक के भी लगभग १५ प्रकाशन हैं।

मुंशी प्रेमचन्द ने १९२० में सरस्वती प्रेस नाम से एक प्रकाशन संस्था आरम्भ की, प्रारम्भ में इसके प्रबन्धक प्रेमचन्दजी के अनुज महताब राय थे। इस संस्था ने प्रेमचन्दजी की कृतियाँ सेवा सदन, प्रेमाश्रम, कर्मभूमि, रंगभूमि, प्रतिज्ञा, कायाकल्प, गबन तथा गोदान आदि प्रकाशित किये। ज्ञातव्य है कि इनमें से कुछ प्रकाशनों के आरम्भिक संस्करण दूसरे प्रकाशकों के यहाँ से प्रकाशित हुए थे।

१९३० में ही एस० एस० मेहता एण्ड ब्रदर्स ने 'चुम्बन मीमांसा' प्रकाशित की। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से लिखी इस पुस्तक की अपने समय में बड़ी चर्चा हुई। इस प्रकाशन की दूसरी बहुचर्चित पुस्तक 'गेरुवा बाबा' थी।

इन दिनों जगन्नाथप्रसाद अरोड़ा ने लक्ष्मी प्रकाशन से जासूसी ब्लैक सीरीज का प्रकाशन आरम्भ किया था। बहुपठित इस सीरीज में लगभग सौ पुस्तकें प्रकाशित हुई थीं। इसी के आस-पास रायकृष्णदास जी ने भारती भण्डार नाम की संस्था स्थापित की, जिसमें इन्होंने अपने गद्य काव्य तथा प्रसाद की रचनाएँ प्रकाशित कीं। बाद में यह संस्था लीडर प्रेस ने खरीद ली।

१९२० में ही देशरत्न शिवप्रसाद गुप्त ने ज्ञानमण्डल की स्थापना की। इसी प्रकाशन संस्थान से भारत विख्यात हिन्दी दैनिक 'आज' का प्रकाशन हुआ। इस संस्था ने शताधिक श्रेष्ठ हिन्दी ग्रन्थों तथा अनेक उच्चकोटि के शब्दकोशों का प्रकाशन किया।

१९४० में डॉ० बलदेव उपाध्याय ने शारदा मंदिर की स्थापना की, जिसमें स्वलिखित भारतीय दर्शन तथा ब्रजचन्द्रिका तथा संस्कृत साहित्य का इतिहास छापा।

श्री मुकुन्दलाल गुप्त ने पुस्तक भवन की स्थापना १९२१ में की। यहाँ से हिन्दी की अनेक विधाओं में पुस्तकें प्रकाशित हुईं। हिन्दी में रेलवे टाइम टेबुल का प्रकाशन इन्होंने किया। पहले इसका मुद्रण कार्य हितचिन्तक प्रेस रामघाट में होता था।

१९२६ के आसपास महावीर प्रसाद पोद्दार ने हिन्दी पुस्तक एजेन्सी का कार्य आरम्भ किया। चार वर्षों तक इसका कार्य साधारण रूप से चलता रहा, फिर १९३० में बैजनाथ प्रसाद केड़िया ने इसे खरीद लिया। प्रेमचन्द एवं जी० पी० श्रीवास्तव की मौलिक तथा टाल्सटाय की अनूदित कृतियाँ यहाँ से प्रकाशित हुई हैं।

१९३० के ही आसपास बनारसी प्रसाद ने रेलवे सीरीज कार्यालय स्थापित किया। दो आने सीरीज की यह पुस्तक कुछ समय तक चर्चा का विषय बनी रही। इस सीरीज में हरिकृष्ण जौहर की कमल कुमारी काफी प्रसिद्ध हुई।

इन्हीं दिनों होमियोपैथी पुस्तकों के प्रकाशन क्षेत्र में एम० भट्टाचार्य का आगमन हुआ। इन पुस्तकों के अधिकांश अनुवाद चन्द्रशेखर पाठक ने किये हैं। होमियोपैथी तथा चिकित्सा संबंधी अन्य प्रकाशन मेडिकल पुस्तक भवन ने किये, जिसकी स्थापना १९४८ के लगभग हुई थी। आपके स्वास्थ्य कार्यालय ने चिकित्सा विषय पर अनेकानेक पुस्तकें प्रकाशित कीं।

१९३५ में ठाकुरप्रसाद बुकसेलर नामक संस्था स्थापित हुई, जिसने आरम्भ में छोटी-छोटी धार्मिक तथा लोक साहित्य की पुस्तकें प्रकाशित करने के उपरान्त रामायण-महाभारत जैसे बृहद् ग्रन्थ भी प्रकाशित किये हैं। ज्योतिष, कर्मकाण्ड तथा पंचाङ्ग जैसे साहित्य के अतिरिक्त उपन्यास और नाटक भी प्रकाशित किए। इसी क्रम में गुल्लूप्रसाद केदारनाथ का भी नाम आता है।

वाराणसी में कुछ स्वनामधन्य लेखकों ने अपनी पुस्तकों के प्रकाशन स्वयं आरम्भ किए। इनमें श्री कृष्णदेव प्रसाद गौड़ 'बेढ़ब बनारसी' का पराग प्रकाशन, मोहनलाल गुप्त 'भैयांजी बनारसी' का प्रकाशन, लक्ष्मीशंकर व्यास का व्यास प्रकाशन विशेष उल्लेखनीय हैं। बाद में यह सभी प्रकाशन सिमटकर रह गये। विस्तार में जाने का न तो इनका उद्देश्य था और न प्रयास ही। धूमिल के दिवंगत होने पर उनका दूसरा काव्य संग्रह 'कल सूचना मुझे' का प्रकाशन भी कवि के छोटे भाई ने किया। भोजपुरी के कवि चन्द्रशेखर मिश्र ने

अपना काव्य 'कुँवर सिंह' स्वयं प्रकाशित किया। इसी तरह डॉ० विश्वनाथप्रसाद ने भी 'बोध' नामक प्रकाशन के द्वारा 'पूर्वांचला' जैसी महत्वपूर्ण पुस्तकों का प्रकाशन किया है।

नागरी प्रचारिणी सभा की तरह वाराणसी की कुछ संस्थाओं ने भी प्रकाशन के क्षेत्र में एक निश्चित उद्देश्य से प्रकाशन आरम्भ किया। आर्य महिला हितकारिणी परिषद् ने गायत्री साहित्य छापा। प्रसाद परिषद ने हिन्दी का स्तरीय प्रकाशन किया, जिसमें बलदेव उपाध्याय का साहित्य शास्त्र अत्यन्त महत्व का था। कालीदास का साहित्य तथा संस्कृत एवं हिन्दी के महत्वपूर्ण ग्रन्थ विक्रम परिषद् ने प्रकाशित किये। महाबोधि सोसाइटी सारनाथ द्वारा बौद्धधर्म के अनेक ग्रन्थ हिन्दी, अंग्रेजी और पाली में प्रकाशित किये गये। सन् १९३० के आसपास बलदेव मिश्र मंडल ने अन्नपूर्णानन्द की पुस्तकें छापीं। आनन्द कानन प्रेस से स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती के आध्यात्मिक प्रकाशन हुए हैं। काशीराज न्यास ने भी कई महत्वपूर्ण प्रकाशन किये। आचार्य पण्डित विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित रामचरितमानस का प्रकाशन इसी संस्था ने किया है।

काशी विश्वविद्यालयों का नगर है। संसार का कदाचित ही ऐसा कोई नगर हो जहाँ चार विश्वविद्यालय साथ-साथ चलते हों। चारों के अपने-अपने प्रकाशन संस्थान हैं। सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय ने संस्कृत के अलभ्य प्रकाशन मानविकी विषयों पर किये हैं। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के प्रकाशन विषय की विविधता के साथ ही साथ गवेषणात्मक एवं बहुमूल्य हैं। काशी विद्यापीठ तथा तिब्बतन इन्स्टीच्यूट ने भी प्रकाशन किये हैं।

डी० ए० वी० कालेज के उपप्रधानाचार्य डॉ० सम्पूर्णानन्द ने आनन्द प्रकाशन नाम से बेढ़ब बनारसी, अन्नपूर्णानन्द, जी० पी० श्रीवास्तव, डॉ० श्रीकृष्ण लाल तथा प्रतापनारायण श्रीवास्तव आदि के ग्रंथों का प्रकाशन किया। वाणी वितान नामक प्रकाशन ने आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र की लगभग सभी मौलिक तथा सम्पादित पुस्तकों का प्रकाशन किया।

वाराणसी के प्रकाशन आकाश का उज्ज्वल नक्षत्र है—भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, जिसने मुख्यत: जैन साहित्य छापा। बाद में इस संस्था से महत्वपूर्ण स्तरीय साहित्यिक ग्रंथ भी प्रकाशित किये गये। भारतीय साहित्यकारों को प्रतिवर्ष ढाई लाख रुपये का ज्ञानपीठ पुरस्कार प्रदान कर यह संस्था प्रतिष्ठा के शीर्षविन्दु पर पहुँच गई है।

इसके अतिरिक्त वाराणसी में मोतीलाल बनारसीदास की भी एक शाखा है। विश्वविद्यालय प्रकाशन ने विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों के उपयुक्त अनेक सुन्दर प्रकाशन किये हैं। श्री रामेश्वर सिंह ने इन्डोलॉजिकल बुक्स द्वारा भारतीय इतिहास और संस्कृत के अनेक अलभ्य अंग्रेजी ग्रन्थों का पुर्नमुद्रण किया। स्वतंत्रता के बाद हिन्दी प्रकाशन उद्योग राजधानियों के चकाचौंध से प्रभावित होकर लखनऊ और दिल्ली की ओर बढ़ा, फिर भी वाराणसी में गहराई तक गई इसकी जड़ें अनेक झंझावातों को सहती हुई आज भी जीवित हैं।

❀

अपना काव्य 'कुँवर सिंह' स्वयं प्रकाशित किया। इसी तरह डॉ० विश्वनाथप्रसाद ने भी 'बोध' नामक प्रकाशन के द्वारा 'पूर्वांचला' जैसी महत्वपूर्ण पुस्तकों का प्रकाशन किया है।

नागरी प्रचारिणी सभा की तरह वाराणसी की कुछ संस्थाओं ने भी प्रकाशन के क्षेत्र में एक निश्चित उद्देश्य से प्रकाशन आरम्भ किया। आर्य महिला हितकारिणी परिषद् ने गायत्री साहित्य छापा। प्रसाद परिषद ने हिन्दी का स्तरीय प्रकाशन किया, जिसमें बलदेव उपाध्याय का साहित्य शास्त्र अत्यन्त महत्व का था। कालीदास का साहित्य तथा संस्कृत एवं हिन्दी के महत्वपूर्ण ग्रन्थ विक्रम परिषद् ने प्रकाशित किये। महाबोधि सोसाइटी सारनाथ द्वारा बौद्धधर्म के अनेक ग्रन्थ हिन्दी, अंग्रेजी और पाली में प्रकाशित किये गये। सन् १९३० के आसपास बलदेव मिश्र मंडल ने अन्नपूर्णानन्द की पुस्तकें छापीं। आनन्द कानन प्रेस से स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती के आध्यात्मिक प्रकाशन हुए हैं। काशीराज न्यास ने भी कई महत्वपूर्ण प्रकाशन किये। आचार्य पण्डित विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित रामचरितमानस का प्रकाशन इसी संस्था ने किया है।

काशी विश्वविद्यालयों का नगर है। संसार का कदाचित ही ऐसा कोई नगर हो जहाँ चार विश्वविद्यालय साथ-साथ चलते हों। चारों के अपने-अपने प्रकाशन संस्थान हैं। सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय ने संस्कृत के अलभ्य प्रकाशन मानविकी विषयों पर किये हैं। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के प्रकाशन विषय की विविधता के साथ ही साथ गवेषणात्मक एवं ब्रहुमूल्य हैं। काशी विद्यापीठ तथा तिब्बतन इन्स्टीच्यूट ने भी प्रकाशन किये हैं।

डी० ए० वी० कालेज के उपप्रधानाचार्य डॉ० सम्पूर्णानन्द ने आनन्द प्रकाशन नाम से बेढ़ब बनारसी, अन्नपूर्णानन्द, जी० पी० श्रीवास्तव, डॉ० श्रीकृष्ण लाल तथा प्रतापनारायण श्रीवास्तव आदि के ग्रंथों का प्रकाशन किया। वाणी वितान नामक प्रकाशन ने आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र की लगभग सभी मौलिक तथा सम्पादित पुस्तकों का प्रकाशन किया।

वाराणसी के प्रकाशन आकाश का उज्ज्वल नक्षत्र है—भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, जिसने मुख्यत: जैन साहित्य छापा। बाद में इस संस्था से महत्वपूर्ण स्तरीय साहित्यिक ग्रंथ भी प्रकाशित किये गये। भारतीय साहित्यकारों को प्रतिवर्ष ढाई लाख रुपये का ज्ञानपीठ पुरस्कार प्रदान कर यह संस्था प्रतिष्ठा के शीर्षविन्दु पर पहुँच गई है।

इसके अतिरिक्त वाराणसी में मोतीलाल बनारसीदास की भी एक शाखा है। विश्वविद्यालय प्रकाशन ने विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों के उपयुक्त अनेक सुन्दर प्रकाशन किये हैं। श्री रामेश्वर सिंह ने इन्डोलॉजिकल बुक्स द्वारा भारतीय इतिहास और संस्कृत के अनेक अलभ्य अंग्रेजी ग्रन्थों का पुर्नमुद्रण किया। स्वतंत्रता के बाद हिन्दी प्रकाशन उद्योग राजधानियों के चकाचौंध से प्रभावित होकर लखनऊ और दिल्ली की ओर बढ़ा, फिर भी वाराणसी में गहराई तक गई इसकी जड़ें अनेक झंझावातों को सहती हुई आज भी जीवित हैं।

❀